पाठ्य सामग्रीः एक नज़र में

पुस्तक - 1

मॉड्यूल 1

प्राचीन भारत

1. भारत के इतिहास को समझना
2. भारत का भौगोलिक परिवेश और प्रागैतिहासिक सभ्यताएँ
3. हड़प्पा सभ्यता
4. वैदिक काल
5. जनपद से साम्राज्य की ओर
6. मौर्योत्तर काल
7. गुप्तवंश तथा उनके उत्तराधिकारी
8. 750-1200 ई. के मध्य भरतीय परिद श्य

मॉड्यूल 2

मध्यकालीन भारत

9. दिल्ली सल्तनत की स्थापना और विस्तार
10. मुगल शासन की स्थापना
11. भारत में प्रादेशिक राज्यों का उदय
12. प्रशासनिक प्रणाली और संस्थाएं
13. अर्थव्यवस्था
14. मध्यकालीन भारत में सांस्क तिक विकास
15. 18वीं शताब्दी में भारत की स्थिति

पुस्तक - 2

मॉड्यूल 3

आधुनिक भारत

16. भारत में ब्रिटिश शासन का संस्थापन 1857 तक
17. ब्रिटिश उपनिवेशवाद का आर्थिक प्रभाव
18. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन
19. कंपनी शासन का जन विरोध

मॉड्यूल 4

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन तथा तत्कालीन भारत

20. राष्ट्रवाद
21. राष्ट्रीय आंदोलन तथा भारतीय प्रजातंत्र

मॉड्यूल 5

20वीं शताब्दी का विश्व

22. 19वीं शताब्दी का महत्त्व
23. प्रथम विश्व युद्ध तथा रूसी क्रांति
24. दोनों विश्व युद्धों के अंतराल का समय व द्वितीय विश्व युद्ध
25. शीत युद्ध व उसके प्रभाव
26. राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन
27. 20वीं शताब्दी में सामाजिक रूपांतरण
28. 20वीं शताब्दी में परिवर्तन

पुस्तक - 3

मॉड्यूल 6ए

भारत में राज्यों का विकास

29. राज्य के निर्माण की ओर
30. प्रारंभिक राज्य
31. मध्यकालीन राज्य
32. औपनिवेशिक राज्य

मॉड्यूल 6बी

भारत में सांस्क तिक विकास

29. समसामयिक सांस्क तिक स्थिति
30. सांस्क तिक उत्पादन
31. सांस्क तिक संचार

विषय-सूची

मॉडयूल 1	**प्राचीन भारत**	
पाठ 1	भारत के इतिहास को समझना	**1**
पाठ 2	भारत का भौगोलिक परिवेश और प्रागैतिहासिक सभ्यताएँ	**13**
पाठ 3	हड़प्पा सभ्यता	**36**
पाठ 4	वैदिक काल	**59**
पाठ 5	जनपद से साम्राज्य की ओर	**78**
पाठ 6	मौर्योत्तर काल	**100**
पाठ 7	गुप्तवंश तथा उनके उत्तराधिकारी	**121**
पाठ 8	**750-1200 ई. के मध्य भारतीय परिद श्य**	**144**
मॉडयूल 2	**मध्यकालीन भारत**	
पाठ 9	दिल्ली सल्तनत की स्थापना और विस्तार	**157**
पाठ 10	मुगल शासन की स्थापना	**186**
पाठ 11	भारत में प्रादेशिक राज्यों का उदय	**209**
पाठ 12	प्रशासनिक प्रणाली तथा संस्थाएँ	**229**
पाठ 13	अर्थव्यवस्था	**252**
पाठ 14	मध्यकालीन भारत में सांस्क तिक विकास	**274**
पाठ 15	18वीं शताब्दी में भारत की स्थिति	**303**

- पाठ्यक्रम
- प्रतिक्रिया पत्र

मॉड्यूल 1

प्राचीन भारत

पाठ 1	भारत के इतिहास की समझ
पाठ 2	भारत का भौगोलिक परिवेश और प्रागैतिहासिक सभ्यताएँ
पाठ 3	हड़प्पा सभ्यता
पाठ 4	वैदिक काल
पाठ 5	जनपद से साम्राज्य की ओर
पाठ 6	मौर्योत्तर काल
पाठ 7	गुप्तवंश तथा उनके उत्तराधिकारी
पाठ 8	750-1200 ई. के मध्य भारतीय परिदृश्य

मॉड्यूल 2

मध्यकालीन भारत

पाठ 9 दिल्ली सल्तनत की स्थापना और विस्तार

पाठ 10 मुगल शासन की स्थापना

पाठ 11 भारत में प्रादेशिक राज्यों का उदय

पाठ 12 प्रशासनिक प्रणाली तथा संस्थाएँ

पाठ 13 अर्थव्यवस्था

पाठ 14 मध्यकालीन भारत में सांस्कृतिक विकास

पाठ 15 18वीं शताब्दी में भारत की स्थिति



1

भारत के इतिहास को समझना

बीती हुई घटनाओं के अध्ययन को इतिहास कहते हैं। इससे हमें उन प्रक्रियाओं को समझने में मदद मिलती है जिन्होंने मानव को अपने वातावरण पर विजय प्राप्त करने की तथा आज की सभ्यता का विकास करने की क्षमता दी। कुछ लोग समझते हैं कि इतिहास में केवल युद्धों और राजाओं के ब्यौरे ही होते हैं। ऐसा नहीं है। इसमें उपलब्ध स्रोतों के आधार पर एक लंबी अवधि के समाज, अर्थव्यवस्था और सांस्क तिक प्रव त्तियो का विश्लेषण किया जाता है। इतिहासकार इस समय के दौरान आई विभिन्न स्थितियों का मूल्यांकन करता है और प्रश्न उठाता है कि कुछ घटनाएँ क्यों घटीं और यह भी देखता है कि समस्त समाज पर उनका प्रभाव क्या रहा? जब भी कोई नया प्रमाण सामने आता है या पहले से मौजूद प्रमाणों की विद्वानों द्वारा नई व्याख्या की जाती है तो इससे अतीत के बारे में हमारी जानकारी और सम द्ध होती है। इतिहासकार तथ्य और कल्पना के बीच अंतर करता है लेकिन किसी समाज में मौखिक परंपरा पर आधारित मिथकों में बीती घटनाओं की स्म तियाँ भी छिपी हो सकती हैं। इतिहासकार का काम है, विभिन्न ऐतिहासिक प्रमाणों की सत्यता की जाँच के द्वारा तथ्य की पहचान करना। इस पाठ में आप सीखेंगे कि किस तरह अनेक प्रकार के ऐतिहासिक साक्ष्यों और उनकी व्याख्या के माध्यम से भारत के प्राचीन इतिहास का ब्यौरा तैयार किया गया।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- ऽ भारत के प्राचीन इतिहास की ऐतिहासिक संरचना समझा सकेगें;
- प्राचीन इतिहासकारों द्वारा प्रयोग में लाई गई विभिन्न प्रकार की स्रोत सामग्री के बारे में बता सकेंगे और
- इतिहास लेखन की बदलती परंपराओं को पहचान सकेंगे।

1.1 प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निमाण के स्रोत

प्राचीन भारतीय इतिहास की पुनः संरचना के लिए प्रयुक्त स्रोत सामग्री की आवश्यकता होती है। लेकिन स्वयं स्रोत अतीत को हमारे सामने नहीं लाते। उन्हें व्याख्या की ज़रूरत



आपकी टिप्पणियाँ

होती है और इतिहासकार उन स्रोतों को वाणी देते हैं। वास्तव में इतिहासकार से अपेक्षा की जाती है कि सार्थक रूप से समझाने के लिए वह स्रोत को ढूँढे, पाठों को पढ़े, सुरागों का पीछा करें, उपयुक्त प्रश्न उठाए और प्रमाणों की सत्यता की जाँच करे। उदाहरण के लिए सन 1826 में चार्ल्स मेसन ने पश्चिमी पंजाब के हड़प्पा गाँव में (जो अब पाकिस्तान में है) किसी पुरानी बस्ती की ऊँची–ऊँची दीवारें और मीनारें देखीं और इसके पाँच दशक बाद सर अलेक्जेंडर कनिंघम ने उसी स्थान से कुछ सील मुहरें एकत्रित कीं। लेकिन इसके भी पचास वर्ष बाद जाकर पुरातत्त्ववेत्ता जॉन मार्शल ने वहाँ सिंध क्षेत्र की प्राचीनतम सभ्यता की पहचान की। इतिहासकार तरह–तरह के साक्ष्यों की पुष्टि कैसे करते हैं, उसका एक और उदाहरण हम दे रहे हैं। राजा हर्षवर्धन (ईसा की सातवीं शताब्दी) से जुड़े किसी भी स्रोत में हमें चालुक्य पुलकेशिन द्वितीय के हाथों उनकी पराजय का उल्लेख नहीं मिलता है, लेकिन राजा पुलकेशिन द्वितीय के एक शिलालेख में उनके द्वारा हराने का दावा किया गया है। इस स्थिति में यह स्पष्ट हो जाता है कि हर्ष की जीवनी हर्षचरित्र के लेखक बाणभट्ट ने जानबूझकर अपने आश्रयदाता की पराजय का उल्लेख नहीं किया है।

इतिहासश्का शाब्दिक अर्थ है, 'ऐसा हुआ'। अंग्रेजी में इसका अनुवाद History (हिस्ट्री) किया जाता है। एक समय था जब लिखित अभिलेखों को ही इतिहास का प्रामाणिक स्रोत माना जाता था। लिखित सामग्री की सत्यता जाँची जा सकती है, उसे उद्ध त किया जा सकता है और अन्य स्रोतों से उसकी पुष्टि भी की जा सकती है। मिथक, लोकगीत आदि मौखिक साक्ष्यों को सही स्रोत माना ही नहीं जाता था। प्रारंभिक इतिहासकार मिथकों, कथाओं और मौखिक परंपराओं का सहारा नाममात्र को ही लेते थे क्योंकि न तो उनके सही होने का कोई प्रमाण होता था, और न उनकी सच्चाई की जाँच हो सकती थी। लेकिन आज अनेक नए तरीकों से गैर पारंपरिक स्रोतों का उपयोग हो रहा है। परंपराओं और सांस्क तिक प्रव त्तियों का अध्ययन अन्य ऐतिहासिक तथ्यों की रोशनी में होना चाहिए।

उदाहरण के लिए, महाभारत दो भाइयों की संतानों के बीच हुए संघर्ष की गाथा है। हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि इस महाकाव्य में वर्णित युद्ध सचमुच हुआ था या नहीं। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि यह युद्ध वास्तव में हुआ था, जबकि कुछ अन्य इतिहासकार दूसरे स्रोतों से पुष्टि हुए बिना इस बात को मानने को तैयार नहीं हैं। मूल कथा शायद सूतों द्वारा रची गई हो जो आम तौर पर क्षत्रिय योद्धाओं के साथ युद्ध क्षेत्र में जाते थे और उनकी विजयों तथा अन्य उपलब्धियों की प्रशंसा में काव्य रच–रचकर सुनाते थे। ये रचनाएँ मौखिक रूप में ही प्रसारित होती थीं और मानव स्म ति का एक हिस्सा बनकर सुरक्षित बची रहीं।

साहित्यिक स्रोत

1.2 धार्मिक साहित्य

भारत की अधिकतम प्राचीन रचनाएँ धर्म से संबद्ध रही हैं। इन्हें वेद कहा जाता है। इनका रचनाकाल 1500 ई.पू. से 500 ई.पू.श्के लगभग माना जाता है। वेदों की संख्या चार है। ऋग्वेद में मुख्य रूप से प्रार्थनाएँ ही हैं। अन्य तीन वेदों– साम, यजुर और अथर्व में प्रार्थनाएँ, अनुष्ठान, मंत्र और पुराण कथाएँ हैं। उपनिषदों में आत्मा और परमात्मा संबंधी दार्शनिक विवेचन है। इन्हें वेदांत भी कहा जाता है।



रामायणश और महाभारत, इन दो महाकाव्यों का संकलन अनुमानतः ईस्वी सन 400 तक जाकर पूरा हुआ होगा। इनमें से 'महाभारत' के रचनाकार व्यास मुनि माने जाते हैं। इसमें मूलतः 8800श्श्लोक थे और इसका नाम 'जय–गीत' अर्थात विजय गान था। आगे चलकर इसका विस्तार 24,000ृश्लोकों में हो गया और इसे 'भारत' कहा जाने लगा क्योंकि इसमें प्राचीनतम वैदिक वंशो में से एक – भरतवंश के उत्तराधिकारियों की गाथाएँ हैं। इसके एक और विस्त त संस्करण 'महाभारत' में 1,00,000 श्लोक हैं। इसी प्रकार मूलतः वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' में 6000 श्लोक थे, मगर आगे चलकर इसका विस्तार 12000 और फिर 24000 श्लोकों में हो गया।

उत्तर–वैदिक (वेदों के बाद वाले) काल (600 ई.पू. के बाद) में हमें अनुष्ठान संबंधी ढेर सारा धार्मिक साहित्य मिलता है जिसे सूत्र कहते हैं। राजाओं द्वारा बड़े–बड़े बलि यज्ञ आदि के विधान 'श्रौतसूत्र' में मिलते हैं जबकि जन्म, नामकरण, यज्ञोपवीत, विवाह, अंत्येष्टि आदि संस्कारों से जुड़े घरेलू अनुष्ठानों का विधान 'ग ह्यसूत्र' में मिलता है। इस साहित्य का संकलन लगभग 600 से 300 ई.पू. के बीच हुआ।

जैनों और बौद्धों के धार्मिक ग्रंथ इन धर्मों से जुड़े ऐतिहासिक व्यक्तित्वों और घटनाओं का विवरण देते हैं। आंरभिक बौद्ध रचनाएँ पालि में लिखी गई थीं। इन्हें 'त्रिपिटक' (तीन पिटारे) कहा जाता है –'सुत्तपिटक' 'विनयपिटक' और 'अभिधम्म पिटक'। धर्म से इतर बौद्ध साहित्य में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान 'जातकों' का है। इनमें गौतम बुद्ध के पूर्व जन्मों की कहानियाँ हैं। माना जाता है कि गौतम के रूप मे जन्म लेने के पहले बुद्ध के 550 जन्म और हुए थे। हर जन्म की कहानी एक जातक कहलाती है। ये कहानियाँ ईसा पूर्व पाँचवीं से दूसरी शताब्दी के बीच के काल की सामाजिक और आर्थिक स्थितियों पर बहुत महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालती हैं। जैन पाठों की रचना प्राक त भाषा में हुई और आगे चलकर इनका संकलन ईसा की छठी शताब्दी में गुजरात के वल्लभी नामक स्थान पर हुआ। इन्हें 'अंग' कहा जाता है और इनमें जैनों की दार्शनिक अवधारणाएँ मिलती हैं।

1.3 धार्मिकेतर साहित्य

इस कोटि के साहित्य का विषय धर्म नहीं होता। इस वर्ग में धर्मशास्त्र या वे संहिताएँ आती हैं जो विभिन्न सामाजिक समुदायों के कर्त्तव्यों का विधान करती हैं। वे चोरी, हत्या, व्यभिचार आदि के अपराधियों के लिए दंड निर्धारित करती हैं। इनमें सबसे पहला ग्रंथ है 'मनु स्म ति'। यह वह पहला ग्रंथ था जिसका अनुवाद करके अंग्रेजों ने उसे भारतीय विधि संहिता (कोड) का आधार बनाया। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में मौर्य काल की भारतीय अर्थव्यवस्था और राजनीति के अध्ययन के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण सामग्री मिलती है। इतिहास की पुनः संरचना के लिए कभी–कभी व्याकरण ग्रंथ भी बड़े काम के साबित होते हैं। व्याकरण पर सबसे पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ पाणिनि रचित 'अष्टाध्यायी' है जिसका रचना काल विद्वानों ने 700 ई.पू. के लगभग माना है।

कालिदास गुप्तकाल में हुए और उन्होने कविताओं और नाटकों की रचना की। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध है 'अभिज्ञानश्शाकुन्तलम्', 'ऋतुसंहार' और 'मेघदूतम्'। महान रचनाएँ होने के साथ ही ये हमें गुप्तकाल के सामाजिक और सांस्क तिक जीवन की झलकियाँ भी दिखलाती हैं। कश्मीर का इतिहास जानने के लिए हमारे पास 'राज तरंगिणी' नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं जिसकी रचना कल्हण (12वीं सदी ईस्वी) ने की

थी। इतिहास लेखन में सहायता के लिए धर्मेतर ग्रंथों में जीवनियाँ या चरित बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी रचना दरबारी कवि अपने आश्रयदाता शासकों के गुणगान के लिए करते थे। वे चूँकि अपने आश्रयदाताओं की उपलब्धियों का बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया करते थे, इसलिए उनका अध्ययन ज़रा सावधानी से करना चाहिए। इस तरह की एक महत्त्वपूर्ण क ति है 'हर्षचरित्र' जिसकी रचना बाणभट्ट्ने हर्षवर्धन की प्रशंसा में की थी।

दक्षिण भारत का सबसे प्रारंभिक साहित्य संगम साहित्य कहलाता है। इसकी रचना तमिल में हुई थी और यह धर्मेतर साहित्य की श्रेणी में आता है। इसके रचयिता वे कवि थे जो ईसा की पहली चार शताब्दियों के दौरान राजाओं और सामंतों के द्वारा प्रायोजित सम्मेलनों (संगम) में एकत्रित होते थे। इस साहित्य में विभिन्न नायकों की प्रशस्ति में रचित छोटी और लंबी कविताएँ मिलती हैं।शायद इन्हें राजदरबारों में सुनाने के लिए रचा जाता था। इस साहित्य के अंतर्गत 'शिल्पदिकारम्' और 'मणिमेकली' जैसे महाकाव्य भी आते हैं। 300 ई.पू. से लेकर ईस्वी सन् 300 की अवधि में दक्षिण भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था और राजनीति के अध्ययन के लिए संगम साहित्य ही हमारा प्रमुख स्रोत है। इस साहित्य में मिले वर्णनों की पुष्टि पुरातात्त्विक खोजों से और विदेशी यात्रियों के व त्तांतों से होती है।

पाठगत प्रश्न 1.1

1. चारों वेदों के नाम बताइए।

2. संस्क त व्याकरण का सर्वप्रथम ग्रंथ कौन सा है?

3. जातक से क्या तात्पर्य है?

4. दक्षिण भारत के संगम साहित्य की भाषा क्या है?

5. 'उपनिषद्' से आप क्या समझते हैं?

1.4 गैर साहित्यिक स्रोत

अभिलेख

पत्थर, धातु, पकी हुई मिट्टी आदि जैसी सख़्त सतह पर खुरचकर उकेरी हुई लिखावट को अभिलेख कहते हैं। इनका अध्ययन पुरालेख विद्या के अंतर्गत होता है। ऐसे बिलकुल प्रारंभिक लेख शिलाओं या पत्थरों पर खुदे हुए मिलते हैं। आम तौर पर इनमें इन्हें खुदवाने वालों की उपलब्धियों, क्रिया–कलापों और विचारों का विवरण मिलता है। इसलिए हमें ऐसे शिलालेख मिलते हैं जिनमें राजाओं की यशोगाथा होती है या लोगों द्वारा धार्मिक



उद्देश्य से किए गए दान–पुण्य का उल्लेख होता है। कवियों ने राजाओं तथा आश्रयदाताओं की प्रशंसा में ऐसे जिन अभिलेखों की रचना की थी, उन्हे प्रशस्तियाँ कहते हैं। कुछ उत्कीर्ण लेखों में तारीखें दी हुई हैं। अन्य के समय का अनुमान पुरालिपिशास्त्र या लेखनशैली के आधार पर काफ़ी सटीकता से लगाया जाता है। बिल्कुल प्रारंभिक शिलालेख प्राक त में मिलते हैं जो आम लोगों की भाषा थी। आगे चलकर इनमें तमिल और संस्क त का प्रयोग भी होने लगा।

शिलालेख लिखवाने वालों में सबसे पहला नाम मौर्य सम्राट अशोक का है। उनके अधिकतर शिलालेख ब्राह्मी लिपि में लिखी प्राक त भाषा में हैं, हालाँकि उत्तर–पश्चिम में मिले कुछ शिलालेखों की लिपि खरोष्ठी है। अफ़गानिस्तान में मिले शिलालेख अरामाइक और ग्रीक लिपि में हैं ताकि स्थानीय लोग उनमें लिखी हुई बातें समझ सकें। ब्राह्मी लिपि को पढ़ने में सबसे पहले जेम्स प्रिंसेप को 1837 मे सफलता मिली। प्रिंसेप ब्रिटिश शासन मे सिविल सर्वेंट थे। ब्राह्मी हिंदी (देवनागरी) की ही भाँति बाएँ से दाएँ लिखी जाती थी जबकि खरोष्ठी दाएँ से बाएँ लिखी जाती थी। अशोक के शिलालेखों से हमें उनकी धर्म तथा प्रशासन संबंधी नीतियों को समझने में बहुत सहायता मिलती है। ईसा पूर्व पहली सदी से राजा धर्मार्थ भूमि का दान करने लगे थे। सबसे पहले दक्कन के सातवाहन राजाओं ने ऐसा दान शुरू किया। उत्कीर्ण लेखों में ऐसे दाताओं और दान प्राप्त करने वालों का विवरण खुदा हुआ मिलता है। ऐसे लेखों से हमें उस युग की धार्मिक तथा आर्थिक गतिविधियों के बारे में जानकारी मिलती है। इनमें से कुछ लेख पत्थरों पर पाए गए हैं पर अधिकतर लेख ताँबे के पत्तरों पर मिलते है। ताँबे के पत्तरों पर खुदे अभिलेख शायद भूमि पानेवालों के हित में भूमि के स्वामित्व के प्रमाण के रूप मे तैयार किए जाते थे।

मगर इस प्रकार के लेखों को प्रमाण के तौर पर पूरी तरह स्वीकारने में कुछ बाधाएँ है। उदाहरण के लिए, कहीं अक्षर काफ़ी हल्के खुदे हैं, इसलिए उन्हें पूरी तरह पढ़ना–समझना संभव नहीं होता। इसके अलावा कहीं–कहीं लिखावट घिस गई है और कुछ अक्षर गायब हो गए हैं। यह भी हो सकता है कि कुछशब्दों के अर्थ हमारे सामने स्पष्ट न हो सकें क्योंकि वे किसी विशेष स्थान या समय से जुड़े हों।

पाठगत प्रश्न 1.2

1. उत्कीर्ण लेखों का अध्ययन क्या कहलाता है?

   _____

2. प्रशस्ति किसे कहते हैं?

   _____

3. पुरालिपिशास्त्र (Palaeology) की परिभाषा दीजिए?

   _____

4. अशोक के अधिकतर शिलालेख किस लिपि में लिखे गए हैं?

   _____



आपकी टिप्पणियाँ

1.5 सिक्के

सिक्कों का अध्ययन मुद्रा शास्त्र कहलाता है। इसके अंतर्गत सिक्कों पर उकेरी हुई लिपि और आक तियों जैसे द श्य तत्व ही नहीं धातुओं के विश्लेषण जैसे तत्त्व भी आ जाते हैं। प्राचीन सिक्के अधिकतर ताँबा, चाँदी, सोना तथा सीसा जैसी धातुओं में ढाले जाते थे। भारत में सबसे पहले पाए जानेवाले सिक्कों में कुछ प्रतीक बने होते थे और इन्हें आहत (पंच मार्क्ड) सिक्के कहा जाता था। ये (ई.पू. छठी शताब्दी के बाद से) चाँदी और ताँबे मे ढले होते थे। पहले–पहल जिन सिक्कों में शासकों के नाम और आक तियाँ दिखाई देती हैं उन्हें भारतीय–यूनानियों ने जारी किया था जिनका (ई.पू. दूसरी शताब्दी के लगभग) इस उपमहाद्वीप के उत्तर–पश्चिमी भाग पर नियंत्रण स्थापित हो चुका था। सर्वप्रथम स्वर्ण मुद्राएँ ईसा की पहली सदी के लगभग कुषाणों ने जारी की थीं। कुछ बहुत ही दर्शनीय स्वर्ण मुद्राएँ गुप्त वंश के शासकों ने जारी की थीं। इनमें प्रारंभिक मुद्राएँ इनके सोने की शुद्धता के लिए जानी जाती हैं।

सिक्के चूँकि विनिमय (लेन–देन) के माध्यम के रूप मे काम में लिए जाते थे इसलिए उनसे आर्थिक इतिहास के बारे में उपयोगी जानकारी मिलती है। कुछ सिक्के शासकों की अनुमति से व्यापारियों और दस्तकारों के संघों द्वारा भी जारी किए जाते थे। इससे दस्तकारी और वाणिज्य के प्रभाव का पता चलता हैं। सिक्कों पर राजाओं और देवताओं की आक तियाँ भी दिखाई देती है और धार्मिक प्रतीक भी। इन सबसे उस समय की कला और धर्म पर प्रकाश पड़ता है।

पाठगत प्रश्न 1.3

1. सिक्कों के अध्ययन को क्या कहा जाता है?

2. आहत (पंच मार्क्ड) सिक्कों में किन धातुओं का प्रयोग होता था?

3. भारत में पहले–पहल किस राजवंश ने सोने के सिक्कों को जारी किया था?

1.6 पुरातत्व

अतीत के भौतिक अवशेषों का अध्ययन पुरातत्त्व की सहायता से होता है जो हमें पुराने टीलों की तहों की एक के बाद एक व्यवस्थित रूप से खुदाई करना और इसके द्वारा मिले अवशेषों के आधार पर बीते युग के मनुष्यों के भौतिक जीवन के बारे में अनुमान लगाना सिखाता है। इतिहास–पूर्व काल, अर्थात् लेखन का आविष्कार होने के पहले के युग के अध्ययन के लिए पुरातत्त्व बहुत महत्त्वपूर्ण है। इतिहास मूलतः लिखित सामग्री पर आधारित होता है। हालाँकि भारत में 2500 ई.पू. में भी सिंधु घाटी संस्क ति के काल में लेखन का प्रचलन हो चुका था, पर उस लिपि को अब तक पढ़ा नहीं जा सका है। इस प्रकार हालाँकि हड़प्पावासी लिखना जानते थे, पर इतिहासकार उस लेखन को पढ़ नहीं



पाए हैं। उनकी संस्क ति को प्रारंभिक ऐतिहासिक दौर में रखा गया है। जिस सबसे पहली लिपि को पढ़ा जा चुका है, वह है ब्राह्मी, जो ई.पू. तीसरी सदी की लिपि है और अशोक के शिलालेखों में प्रयुक्त हुई है।

खुदाई के द्वारा भारत में सात लाख वर्ष पहले रहने वाले मानवों के द्वारा प्रयुक्त औज़ार तक मिले हैं। हड़प्पा के स्थानों की खुदाई से वहाँ की बस्तियों की योजना तथा लोगों के निवास स्थानों के स्वरूप का पता चलता है। साथ ही यह भी पता चलता है कि वे मिट्टी के किस प्रकार के बर्तनों, कैसे औज़ारों और उपकरणों और किस प्रकार के खाद्यानों का इस्तेमाल करते थे। दक्षिण भारत में कुछ व्यक्तियों को उनके मिटट्ी के बर्तनों, औज़ारों, हथियारों, और अन्य निजी वस्तुओं के साथ बड़े–बड़े भारी पत्थरों के नीचे दफ़नाया जाता था। इन कब्रों को महापाषाण (मेगालिथ) कहा जाता है। इनकी खुदाई से हमें तीसरी सदी ई.पू. के पहले दक्षिण भारत में रहने वाले लोगों के जीवन के बारे में पता चलता है।

खुदाई में मिले अवशेषों की प्राचीनता या उम्र का निर्धारण कई पद्धतियों से होता है। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है रेडियो कार्बन या कार्बन–14 (सी–14) काल –निर्धारण पद्धति। कार्बन–14 एक विकिरणशील कार्बन है जो सभी प्रकार के जीवनधारियों में होता है। जीवनधारियों की म त्यु के बाद सभी विकिरणशील पदार्थों की तरह यह भी एक निश्चित समान गति से नष्ट होता है। किसी भी प्राचीन पदार्थ (लकड़ी या हड्डी) की उम्र का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि उसके सी–14 तत्त्वों का किस सीमा तक ह्रास हुआ है।

मौसम और वनस्पतियों के इतिहास का पता पौधों के अवशिष्ट अंशों और मुख्यतः पराग के विश्लेषण से लगता है। इस आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि कश्मीर और राजस्थान में 7000–6000 ई.पू. के लगभग भी खेती होती थी। धातु की बनी वस्तुओं की प्रक ति तथा उनके अवयवों का भी वैज्ञानिक विश्लेषण हो सकता है और इससे उन खदानों का भी पता चल सकता है जिनसे ये धातुएँ निकाली गई थीं। इस प्रकार धातु प्रौद्योगिकी (टेक्नॉलॉजी) के विकास के चरणों को भी पहचाना जा सकता है। भूवैज्ञानिक अध्ययन से प्रागैतिहासिक मानव के निवास स्थल की मिटट्ी, चट्टानों आदि के इतिहास का अनुमान हो जाता है। जब तक एक ओर मनुष्य और दूसरी ओर मिट्टी, पौधों और पशुओं के निरंतर पारस्परिक संपर्क को न समझा जाए तब तक मानव इतिहास को भी नहीं समझा जा सकता। पुरातात्त्विक अवशेषों के साथ ही भूवैज्ञानिक और प्राणिशास्त्रीय अध्ययनों का योग मानव इतिहास की पुनः रचना और विकास के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करता है।

पाठगत प्रश्न 1.4

1. पुरातत्त्वश्शास्त्र की परिभाषा दीजिए।

2. सी–14 काल–निर्धारण की उपयोगिता समझाइए।

1.7 विदेशी यात्रियों के व त्तांत

स्थानीय साहित्य से प्राप्त जानकारी को विदेशियों द्वारा दिए गए ब्यौरों से और बढ़ाया जा सकता है। भारत में समय–समय पर ग्रीस, रोम और चीन से आगंतुक आते रहे – कोई राजदूत बनकर, कोई यात्री के रूप में तो कोई धर्म के अध्ययन के लिए। उन्होंने जो कुछ देखा, वे उसका व त्तांत छोड़ गए हैं। चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में मेगास्थनीज़ नामक ग्रीक राजदूत आया था जिसने 'इंडिका' नामक ग्रंथ लिखा। इसका मूल पाठ आज नहीं मिलता लेकिन इसके कुछ अंश परवर्ती ग्रीक लेखकों की रचनाओं में उद्धरणों के रूप में सुरक्षित रह गए हैं। इन्हें एकत्रित करके पढ़ा जाए तो हमें मौर्य काल की प्रशासन व्यवस्था ही नहीं, बल्कि सामाजिक वर्गों तथा आर्थिक गतिविधियों की भी बहुमूल्य जानकारी मिलती है।

पहली और दूसरी शताब्दी ईस्वी के ग्रीक और रोमन व त्तांतों में कई भारतीय बंदरगाहों का और उन वस्तुओं का उल्लेख हुआ है जिनका व्यापार भारत तथा रोमन साम्राज्य के बीच होता था। इस संदर्भ में ग्रीक में लिखे ग्रंथ 'एरिथ्रियन सी' और टॉलेमी के 'ज्यॉग्रफी' बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध कराते हैं।

चीनी यात्रियों में फ़ाहियान और ह्वेनत्सांग का नाम लिया जा सकता है। दोनों बौद्ध थे और इस देश में बौद्ध तीर्थों के दर्शन तथा बौद्ध धर्म का अध्ययन करने आए थे। ईसा की पाँचवी शताब्दी में भारत में आए फ़ाहियान ने गुप्तकालीन भारत की स्थितियों का वर्णन किया है जबकि ह्वेनत्सांग ने सातवीं सदी में राजा हर्षवर्धन के काल का वैसा ही ब्यौरा दिया है। ह्वेनत्सांग ने उस समय नालंदा विश्वविद्यालय (बिहार) के उत्कर्ष का भी बड़े विस्तार से वर्णन किया है।

पाठगत प्रश्न 1.5

1. 'इंडिका' किसने लिखी?

   _____

2. भारत आने वाले चीनी यात्रियों के नाम बताइए।

   _____

3. नालंदा विश्वविद्यालय के उत्कर्ष का उल्लेख किस चीनी यात्री ने किया?

   _____

1.8 इतिहास की बदलती अवधारणाएँ

एक धारणा विशेषकर पश्चिमी विद्वानों द्वारा फैलाई गई कि प्राचीन काल के भारतीयों में इतिहास लेखन का कोई बोध नहीं था। मगर यह सही नहीं है। वास्तव में भारतीयों का इतिहास लेखन बोध पश्चिमी लोगों से भिन्न था। पश्चिम में घटनाओं को कालक्रम के अनुसार लिखा जाता था जबकि प्राचीन भारत की पद्धति इससे भिन्न थी। इसका उदाहरण हम पुराणों में देख सकते हैं जिनमें चार विभिन्न युगों – सतयुग, त्रेता, द्वापर



और कलियुग का उल्लेख है और हर युग के शासकों और राजवंशों की विस्त त सूची भी हमें मिलती है। इसके अतिरिक्त उत्कीर्ण लेखों की भी बड़ी संख्या मिली है जिनमें विभिन्न राजवंशों के राजाओं की वंशावलियों का और साथ ही उनकी उपलब्धियों का उल्लेख है। इससे पता चलता है कि भारतीयों को घटनाओं के समय (काल) और स्थान का बुनियादी बोध था।

प्राचीन भारत के इतिहास में आधुनिक खोज 1765 में आरंभ हुई जब बंगाल और बिहार ईस्ट इंडिया कंपनी के नियंत्रण में आ गए। हिंदू विधि व्यवस्था लागू करने के लिए भारतीय विधि के प्राचीन ग्रंथ 'मनुस्म ति' का 1776 में अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। अंग्रेजों ने प्राचीन (भारतीय) नियमों और आचारों को जानने–समझने के जो आरंभिक प्रयत्न किए थे, उन्हें सन् 1784 में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना के साथ पूर्णता प्राप्त हुई तथा ऐसी अन्य कई सोसाइटियों के तत्त्वावधान में हिंदू धार्मिक तथा शास्त्रीय लेखन का अंग्रेजी में अनुवाद हुआ। इस के अध्ययन को सबसे अधिक बल जर्मनी में जन्मे विद्वान मैक्समूलर के प्रयत्नों से मिला। अंग्रेजों ने भी जल्द ही समझ लिया कि भारतीयों पर अच्छी तरह से शासन करने के लिए उनके धर्मग्रंथों और समाज–व्यवस्थाओं का ज्ञान आवश्यक है। ईसाई मिशनरियों ने भी भारतीयों का धर्मांतरण करने और ब्रिटिश शासन को सुद ढ़ करने के लिए भारतीय कानूनों और रीति–रिवाजों की अधिक जानकारी हासिल करने की ज़रूरत को महसूस किया था। भारतीय लेखन का अनुवाद करते हुए पश्चिमी विद्वानों ने जताया कि भारतीय परिवर्तन के प्रति अनिच्छुक होते हैं और अत्याचारी शासन के अभ्यस्त हो चुके हैं।

सन 1904 में विन्सेंट ए. स्मिथ ने 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया' लिखी। यह प्राचीन भारत का पहला व्यवस्थित इतिहास था। लेखक ने इसमें इतिहास को ब्रिटिश द ष्टिकोण से देखा है और भारत में ब्रिटिश शासन को आवश्यक ठहराने की चेष्टा की है। अंग्रेजों के तानाशाही शासन को बनाए रखने के लिए इसने अच्छी प्रचार साम्रगी का काम किया।

भारतीय विद्वान, विशेषकर वे जो पश्चिमी शिक्षा प्राप्त कर चुके थे, इस बात से बड़े परेशान थे कि अंग्रेज़ लोग भारतीय इतिहास को अपने नज़रिये से अपने हित के अनुसार तोड़–मरोड़कर पेश कर रहे थे। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर उनमें से कुछ ने इतिहास को फिर से लिखने का दायित्व उठाया ताकि भारतीय संस्कति के वास्तविक गौरव को दुनिया के सामने लाया जा सके । इस प्रकार के दो महत्वपूर्ण राष्ट्रीय इतिहासकार थे, आर. जी. भंडारकर (1837 - 1925) और वी. के. राजवाडे (1869 - 1926) जिन्होंने अनेक स्रोतों से सामग्री एकत्रित करके सामाजिक और राजनीतिक इतिहास की पुनः रचना की। ऐसा करते हुए उन्होंने बाल–विवाह और जाति–प्रथा जैसी कुछ सामाजिक बुराइयों पर प्रहार भी किए और विधवाओं के पुनर्विवाह की हिमायत भी की। पी. वी. काणे (1880-1972) का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होने 'हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र'शीर्षक एक विराट ग्रंथ की रचना की जिसमें प्राचीन भारतीय समाज के प्रमुख तत्वों पर प्रकाश डाला गया था।

इन भारतीय विद्वानों ने राजनीति संबंधी प्राचीन भारतीय ग्रंथों का गहराई से अध्ययन किया ताकि प्राचीन भारतीयों की प्रशासन संबंधी बुद्धि को प्रमाणित किया जा सके। डी. आर. भंडारकर (1875 -1950) पुरालेख विद्या के विद्वान थे। वे प्राचीन भारतीय सामाजिक संस्थाओं पर लिखे हुए ग्रंथ प्रकाशित किया करते थे। एच.सी. रायचौधुरी

(1892 - 1957) ने प्राचीन भारत के इतिहास का पुनः लेखन किया और इस क्रम में कई बिंदुओं पर वी. ए. स्मिथ की आलोचना की। आर. सी. मजूमदार (1888-1980) के लेखन में यह बात और भी मज़बूती से उभरती है। उन्होंने कई खंडों में 'हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडियन पीपुल' का संपादन किया। 1960 तक राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित भारतीय विद्वान अपने–अपने क्षेत्रों के और भारत के इतिहास के गौरव को बढ़ा–चढ़ाकर दिखाते रहे। अंग्रेजों ने प्राचीन भारतीय शासकों के अत्याचारी और निरंकुश होने का जो मिथक गढ़ा था, उसे तोड़ने का श्रेय के.पी. जायसवाल (1881 -1937) को जाता है। उन्होंने प्राचीन भारत में गणतंत्र और स्वशासन के अस्तित्व के बारे में लिखा ।

स्वतंत्रता के बाद इतिहास लेखन में एक नई प्रव त्ति छाने लगी। अब राजनीतिक इतिहास से हटकर समाज और अर्थव्यवस्था के इतिहास पर अधिक बल दिया जाने लगा। इस प्रकार की पहली रचनाओं में से एक थी ए.एल. बाशम (1914-1986) लिखित 'द वॉण्डर दैट वॉज़ इंडिया'। डी.डी. कोसांबी (1907-1966) के ग्रंथ 'एन इंट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री' में यह परिवर्तन और भी स्पष्ट हुआ है। उनका लेखन प्राचीन भारतीय इतिहास के सामाजिक–आर्थिक पक्ष को लेकर चला है। उनके पश्चात बहुत सारे इतिहासकारों ने इस प्रव त्ति का अनुसरण किया और अपने लेखन को सामाजिक, आर्थिक और सांस्क तिक इतिहास पर केंद्रित किया। उनका प्रमुख बल उत्पादन के साधनों और विभिन्न समूहों के व्यक्तियों के बीच के सामाजिक तथा आर्थिक संबंधों पर रहा।

पाठगत प्रश्न 1.6

1. स्वतंत्रता के बाद इतिहास लेखन में उभरी प्रव त्ति पर प्रकाश डालें ?

1.9 भारतीय इतिहास की विषयवस्तु

अतीत के संपूर्ण ज्ञान के लिए विद्यार्थियों को समाज के विभिन्न पक्षों के प्रति जागरूक करना आवश्यक है। इन पक्षों को 'विषयवस्तु' कहा जाता है। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्क तिक आदि विभिन्न क्षेत्रों में जो कुछ भी घटनाएँ हुईं उनके बारे में हमें जानकारी मिलती है। इन तमाम क्षेत्रों में हुई घटनाएँ परस्पर इतनी अधिक सम्बंधि ात होती हैं कि इनके बीच की सीमाएँ अक्सर टूट जाती हैं। उदाहरण के लिए, जब प्रारंभिक वैदिक युग का गोपालक समाज उत्तर वैदिक काल में बस्तियों में बसे क षक समाज में बदला तो परिणामस्वरूप राजनीतिक पद्धति में भी परिवर्तन आया। गोपालक समाज में राजा गोपति कहलाता था। क षि आधारित अर्थव्यवस्था के विकास के साथ वह भूपति कहलाने लगा। साथ ही अब युद्ध दूसरों की गायें छीनने के लिए नहीं बल्कि अधिक भूमि हासिल करने के लिए होने लगे। राजा क्रमशः अधिक शक्तिशाली होने लगे और राजा का पद वंश–परंपरा से मिलने लगा। तो हम देखते है कि विभिन्न क्षेत्रों के परिवर्तन एक–दूसरे से जुड़ जाते हैं। प्रायः उनका प्रभाव बड़ी–बड़ी घटनाओं पर पड़ता है। इस पाठ्य सामग्री में आपको कला, स्थापत्य, जाति व्यवस्था, विज्ञान और अर्थव्यवस्था,



प्रौद्योगिकी आदि के क्षेत्रों में हुए विकास की ही नहीं, विभिन्न धार्मिक पंथों और आचार–अनुष्ठानों की भी जानकारी मिलेगी।

पाठांत प्रश्न

1. प्राचीन भारत के धार्मिकेतर साहित्य पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ?
2. इतिहास की पुनः रचना के स्रोत के रूप मे सिक्कों के विषय पर पाँच वाक्य लिखिए ?
3. अतीत को समझने में पुरातत्त्व हमारी किस प्रकार सहायता करता है ?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1.1

1. ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद
2. अष्टाध्यायी
3. जातक गौतम बुद्ध के पूर्व जन्मों की कथाओं का संग्रह है।
4. तमिल
5. उपनिषद् वेदों का अंतिम भाग है। उनमें आत्मा और परमात्मा के दर्शन की चर्चा की गई है।

1.2

1. पुरालेख विद्या
2. कवियों द्वारा राजाओं तथा अन्य आश्रयदाताओं की प्रशंसा में रचे गए अभिलेख
3. ब्राह्मी

1.3

1. मुद्राशास्त्र
2. चाँदी और ताँबा
3. कुषाण

1.4

1. अतीत को समझने के लिए उत्खनन (खुदाई) का विज्ञान
2. यह पुरातात्विक खुदाई में निकली हड्डियों और लकड़ी के काल (समय) का पता लगाने में सहायक होता है।



आपकी टिप्पणियाँ

1.5

1. मेगास्थनीज
2. फ़ाहियान, ह्वेनत्सांग
3. ह्वेनत्सांग

1.6

1. अनुभाग 1.9 के छठे अनुच्छेद को देखें

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें 1.3
2. देखें 1.5
3. देखें 1.6



2

भारत का भौगोलिक परिवेश और प्रागैतिहासिक सभ्यताएँ

किसी भी देश अथवा क्षेत्र के भूगोल की जानकारी के बिना हम वहाँ के इतिहास को नहीं समझ सकते। वहाँ के लोगों का इतिहास उस स्थान के भूगोल और वातावरण से प्रभावित होता है जिसमें वे निवास करते हैं। किसी भी स्थान के प्राक तिक भूगोल और परिवेशगत परिस्थितियों में वहाँ की जलवायु, मिटट्ी की किस्म, जल–संसाधन और अन्य स्थानीय विशेषताएँ सम्मिलित होती हैं। यही विशेषताएँ किसी क्षेत्र के परिवेश का स्वरूप, वहाँ के जनसमुदाय, खाद्य पदार्थ, मानव व्यवहार और खानपान का ढाँचा निर्धारित करती हैं। भारतीय उपमहाद्वीप के क्षेत्र विभिन्न भौगोलिक विशेषताओं से भरपूर हैं जिन्होंने यहाँ के इतिहास को अत्यधिक प्रभावित किया है।

भौगोलिक द ष्टि से विचार करें तो प्राचीन काल में भारतीय उप–महाद्वीप में वर्तमान भारत, बांगलादेश, नेपाल, भूटान और पाकिस्तान शामिल थे। भौगोलिक विविधताओं के आधार पर भारतीय उपमहाद्वीप को मुख्यतया निम्नलिखित क्षेत्रो में विभाजित किया जा सकता है:

(1) हिमालय क्षेत्र

(2) उत्तर भारत का नदी–तटीय मैदानी क्षेत्र

(3) प्रायद्वीपीय भारत

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप:

- भारतीय उपमहाद्वीप के भौतिक विभाजन की व्याख्या कर सकेंगे;
- प्रत्येक क्षेत्र की भिन्न विशेषताओं की पहचान कर सकेंगे;
- कुछ भौगोलिक क्षेत्र अन्य क्षेत्रों से अधिक महत्त्वपूर्ण क्यों है, इसकी जानकारी प्राप्त दे सकेंगे;
- पर्यावरण का स्वरूप को समझा सकेंगे;
- विभिन्न क्षेत्रों की भौगाोलिक विशेषताओं और ऐतिहासिक विकास में परस्पर संबंध स्थापित कर सकेंगे;

- प्रागैतिहास, प्रागैतिहासिक सभ्यताएँ और लघु पाषाण (माइक्रोलियस) शब्दों को परिभाषित कर सकेंगे;
- पुरा पाषाण युग (पैलियालिथिक) में उपयोग किए गए औजारों के आधार पर आरम्भिक, मध्यम और उत्तर पुरा पाषाण युग में अन्तर कर सकेंगे;
- जलवायु और प्रयुक्त औजारों के आधार पर मध्य पाषाण–युग को संक्रमण काल के चरण के रूप में स्थापित कर सकेंगे;
- नव–पाषाण युग और इसकी प्रमुख विशेषताओं को परिभाषित कर सकेंगे; और
- प्रागैतिहासिक कलाओं का परिचय दे सकेंगे।

2.1 हिमालय क्षेत्र

हिमालय पर्वतीय क्षेत्र विश्व की विशालतम और उच्चतम पर्वतीय श्रंखलाएँ है। यह औसतन 2,400 कि.मी. लंबी है (देखे मानचित्र 2.1) इन श्रंखलाओं ने न सिर्फ

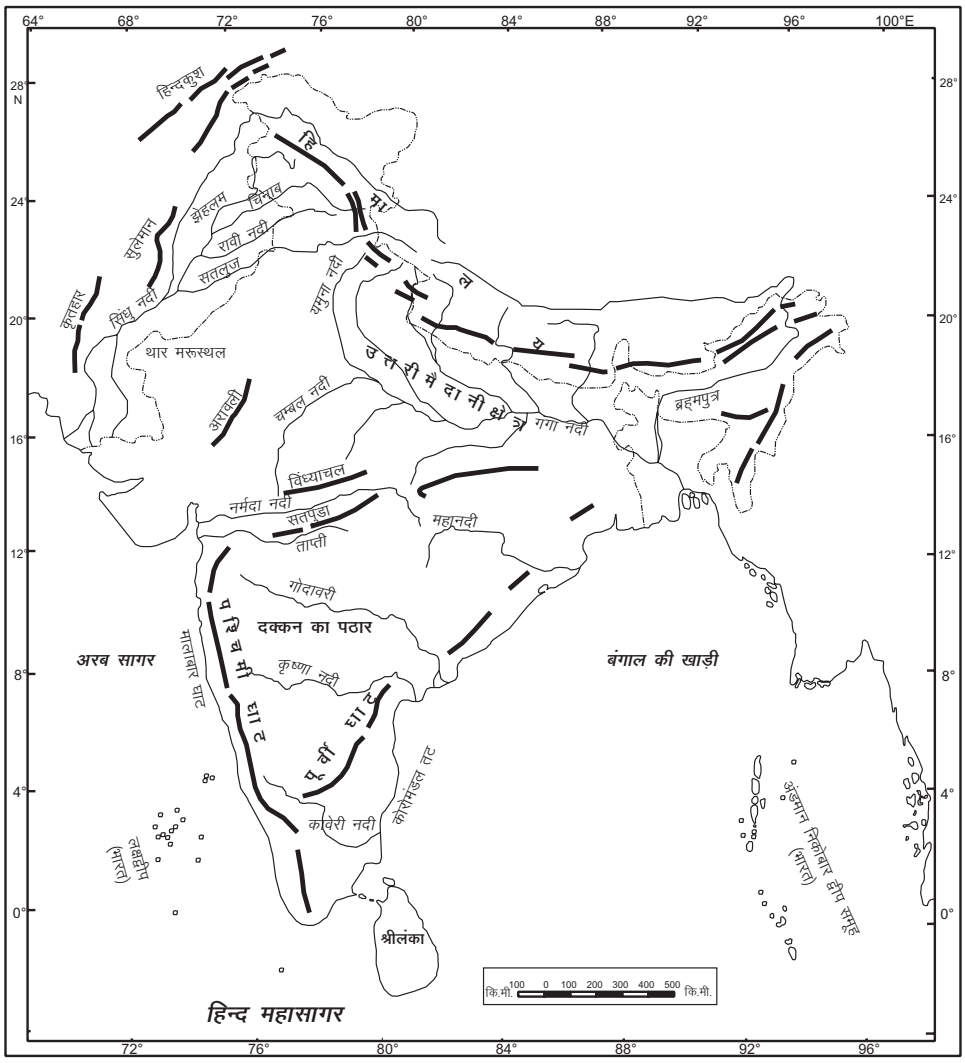

मानचित्र 2.1 विशाल उत्तरी पर्वत श्रं खलाए



हमलावारों को आने से रोका बल्कि उत्तर की ओर से आने वाली मानसूनी शीत लहर से भी हमारी सुरक्षा की। यह समुद्र से उठने वाली मानसूनी हवाओं को रोककर उत्तरी मैदानी क्षेत्रों में वर्षा का कारण बनती है। तथापि कुछ ऐसे पर्वतीय दर्रे है, जिनसे गुजर कर हमलावर, व्यापारी और धर्मप्रचारक यहाँ पहुँचे यद्यपि यह जटिल क्षेत्र है। इन्होंने प्राचीन काल में मध्य एशिया, चीन और तिब्बत जैसे देशों से सांस्क तिक संबंध विकसित करने में सहायता की।

उत्तर–पश्चिमी दिशा में विभाजित, हिमालय श्रंखलाओं में भारतीय मैदानी क्षेत्रों को अफ़गानिस्तान के जरिए ईरान और मध्य एशिया को जोड़ने वाले मुख्य मार्ग शामिल हैं। इनमें गोमल, बोलन और ख़ैबर–पास शामिल हैं। ग्रीक, शक, कुषाण, हूण और अन्य विदेशी जनजातियाँ ने इन्हीं मार्गों के जरिये भारत में प्रवेश किया। इसी प्रकार बौद्ध धर्म और अन्य भारतीय विशिष्टताएँ इन्हीं पर्वतीय मार्गो के जरिये अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक पहुँची।

2.2 उत्तर भारत का नदी तटीय मैदानी क्षेत्र

हिमालय क्षेत्र ने भारत को सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों से प्रभावित तीन नदी तंत्र उपलब्ध कराए हैं। इन नदियों ने अपने–अपने क्षेत्रों को उपजाऊ बनाने के साथ–साथ यहाँ के स्थायी निवासियों और हमलावरों को भी आकर्षित किया।

सिंधु नदी के मैदानी क्षेत्र में पंजाब और सिंध सम्मिलित हैं। सिंधु नदी की सहयोगी नदियों की सिंचाई ने इस भू–क्षेत्र को एक विस्त त उपजाऊ मैदान बना दिया है जिसके कारण यह क्षेत्र इस उप–महाद्वीप का खाद्य–केन्द्र बन गया है। इस कथन का यह कारण है, क्योंकि यह क्षेत्र गेहूँ की खेती के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। पंजाब की सामरिक स्थिति और सम द्धि ने प्राचीन काल से ही विदेशी हमलावरों को आकर्षित किया है। सिंध क्षेत्र में निचली सिंधु घाटी और डेल्टा शामिल हैं। सिंधु नदी के मैदान में ही इस उपमहाद्वीप में पहली बार हड़प्पा संस्क ति की शहरी सभ्यता के विकास की झाँकी देखने को मिली। (देखें पाठ 3)

गंगा की घाटी में सिंधु क्षेत्र की तुलना में अधिक वर्षा होती है और यह क्षेत्र अधिक नमी वाला है। गंगा के मैदानी क्षेत्रों को तीन उप–क्षेत्रों में बाँटा गया है। वे हैं– ऊपरी, मध्य और निम्न। गंगा नदी के ऊपरी क्षेत्र में उत्तर प्रदेश के पश्चिमी और दक्षिणी क्षेत्र शामिल हैं। प्राचीन काल से ही इस क्षेत्र में सांस्क तिक विकास दिखाई देता है। उत्तर वैदिक युग में यह आर्यों का निवास स्थान बना जब यहाँ रहकर उन्होंने खेती–बाड़ी की। मध्य गंगा का मैदानी क्षेत्र अधिक उपजाऊ है, उसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार शामिल हैं। यह वह क्षेत्र है जहाँ छठी सदी ईसा पूर्व कौशल, काशी और मगध जैसे महाजनपद (प्रदेशीय प्रांत) क्षेत्र स्थापित हए। भारत के दो प्रमुख धर्मों, जैन और बौद्ध धर्म का जन्म भी इन्हीं क्षेत्रों में ही हुआ।

गंगा के निचले मैदानी क्षेत्रों में बंगाल क्षेत्र शामिल है। इसका उत्तरी क्षेत्र ब्रह्मपुत्र द्वारा सिंचित क्षेत्र है। भारी वर्षा से यहाँ घने जंगल और दलदली भूमि विकसित हो गई, जिसके परिणामस्वरूप शुरू–शुरू में यहाँ आवास विकसित करने में कठिनाइयाँ पैदा

हुई, लेकिन इसके तटीय क्षेत्र इस उप–महाद्वीप के अन्य क्षेत्रों और दक्षिण–पूर्वी एशियाई देशों के बीच भी, परस्पर संचार के महत्त्वपूर्ण मार्ग साबित हए। ताम्रलीप्ति अथवा तामलुक इस क्षेत्र का एक प्रमुख बन्दरगाह था जिसने व्यापारिक गतिविधियों में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पूर्वी भारत को महानदी और इसकी अन्य धाराओं द्वारा विकसित तटीय मैदानों के रूप में पहचाना जाता है। इस क्षेत्र के उपजाऊ तटीय क्षेत्र ने क षि, समाज और संस्क ति के विकास में बहुत योगदान दिया। नंद और मौर्य राजवंशों के काल में (चौथी सदी ईसा–पूर्व) यह गंगा सभ्यता के संपर्क में आया। 1000 ई. (ईसा पश्चात) के आसपास उड़ीसा की अपनी भाषायी और सांस्क तिक पहचान विकसित होनी शुरू हुई।

पश्चिमी भारतीय क्षेत्र में राजस्थान और गुजरात के आधुनिक प्रदेश सम्मिलित हैं। यह अपनी काली मिटट्ी की वजह से विशिष्ट पहचान रखता है जो कपास की खेती के लिए बहुत ही उपयोगी है। अर्ध–शुष्क क्षेत्रों से घिरा राजस्थान का थार मरुस्थल गंगा के मैदानी क्षेत्रों की तरह उपजाऊ नहीं था। इसलिए इस क्षेत्र को क षि के लिए अधिक उपयोगी नहीं समझा गया। तथापि, बाद में 8वीं सदी में, रहट यांत्रिकी की सिंचाई के विकास के बाद यहाँ अनेक प्रकार की आबादी का निवास शुरू हुआ। राजस्थान अनेक राजपूत वंशों का भी मूल निवास स्थल रहा है। गुजरात में साबरमती, माही, नर्मदा और ताप्ति नदियों के उपजाऊ मैदानों के कारण यहाँ बहुत ही सम द्धि आई। गुजरात के अत्यधिक लम्बे तटीय क्षेत्र ने भी अपने बन्दरगाहों के ज़रिये अन्य देशों से संबंध विकसित करने में भारी सहयोग दिया। इस क्षेत्र के बहुत ही महत्त्वपूर्ण समुद्रतटीय बन्दरगाह रहे हैं ¬गुकच्छ या भड़ूच (भरोच)।

2.3 प्रायद्वीपीय भारत

प्रायद्वीपीय भारत में दक्षिण का पठार और दक्षिण भारत के समुद्रतटीय मैदानी क्षेत्र शामिल हैं (मानचित्र 2.2)। यह पठार विंध्य पर्वत श ंखला के दक्षिण में स्थित है। इसे तीन मुख्य क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। जिनमें अधिकतर महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक के आधुनिक प्रदेश हैं। तांबे और पत्थर के औजारों का उपयोग करने वाले लोगों के ताम्र–पाषाण–युगीन स्थल ज्यादातर यहीं पर पाए गए हैं। कर्नाटक में दक्षिण पश्चिमी दक्कन क्षेत्र शामिल है। यह जल और अन्य संसाधनों की उपलब्धता के लिए अधिक सुविधाजनक रहा है। चावल की खेती के कारण रायचूर दोआब क्षेत्र को, दक्षिण भारत का चावल–केन्द्र कहा जाता है। यह क्षेत्र विभिन्न बादशाहों में परस्पर युद्व का कारण रहा है। प्रागैतिहासिक काल से ही इन क्षेत्रों में लोगों का निवास रहा है।

पठार क्षेत्र में भी पश्चिमी और पूर्वी घाटों पर पहाड़ी भू–प्रदेश है। ये पहाड़ियां पश्चिमी तट पर पश्चिमी घाट के नज़दीक से बिल्कुल सीधी ऊँचाई की तरफ बढ़ते हुए, पूर्व दिशा में पठार की तरफ ढलान में चली जाती हैं। जुन्नार, कन्हेरी और कार्ले पर इनमें अनेक मार्ग (दर्रों) श्रेणियाँ स्थित हैं। यह मार्ग इस बन्दरगाह को पश्चिमी समुद्र तट को जोड़ने वाले व्यापारिक मार्गों के रूप में उपयुक्त रहे हैं। पश्चिमी घाटों के दक्षिणी किनारे

पालघाट दर्रा है जो कि पश्चिम समुद्री तट को कावेरी घाटी से जोड़ता है और जिसने प्राचीन काल से लेकर आज तक भारत–रोम (इंडो–रोम) व्यापार में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। पूर्वी घाट धीरे–धीरे पठार और समुद्रतटीय मैदानी क्षेत्र में ढलते चले जाते हैं।

समुद्री तट मैदानी क्षेत्र में पूर्व में तमिलनाडु और पश्चिम में केरल प्रदेश आते हैं। तमिलनाडु में नदियाँ मौसमी होती हैं जिसके परिणामस्वरूप प्राचीन काल से ही इस क्षेत्र के लोग तालाबों द्वारा सिंचाई पर अधिक निर्भर रहे हैं। फिर भी, कावेरी डेल्टा क्षेत्र मानव के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र रहा है। इसने चावल की खेती के लिए अवसर प्रदान किए और यहीं पर

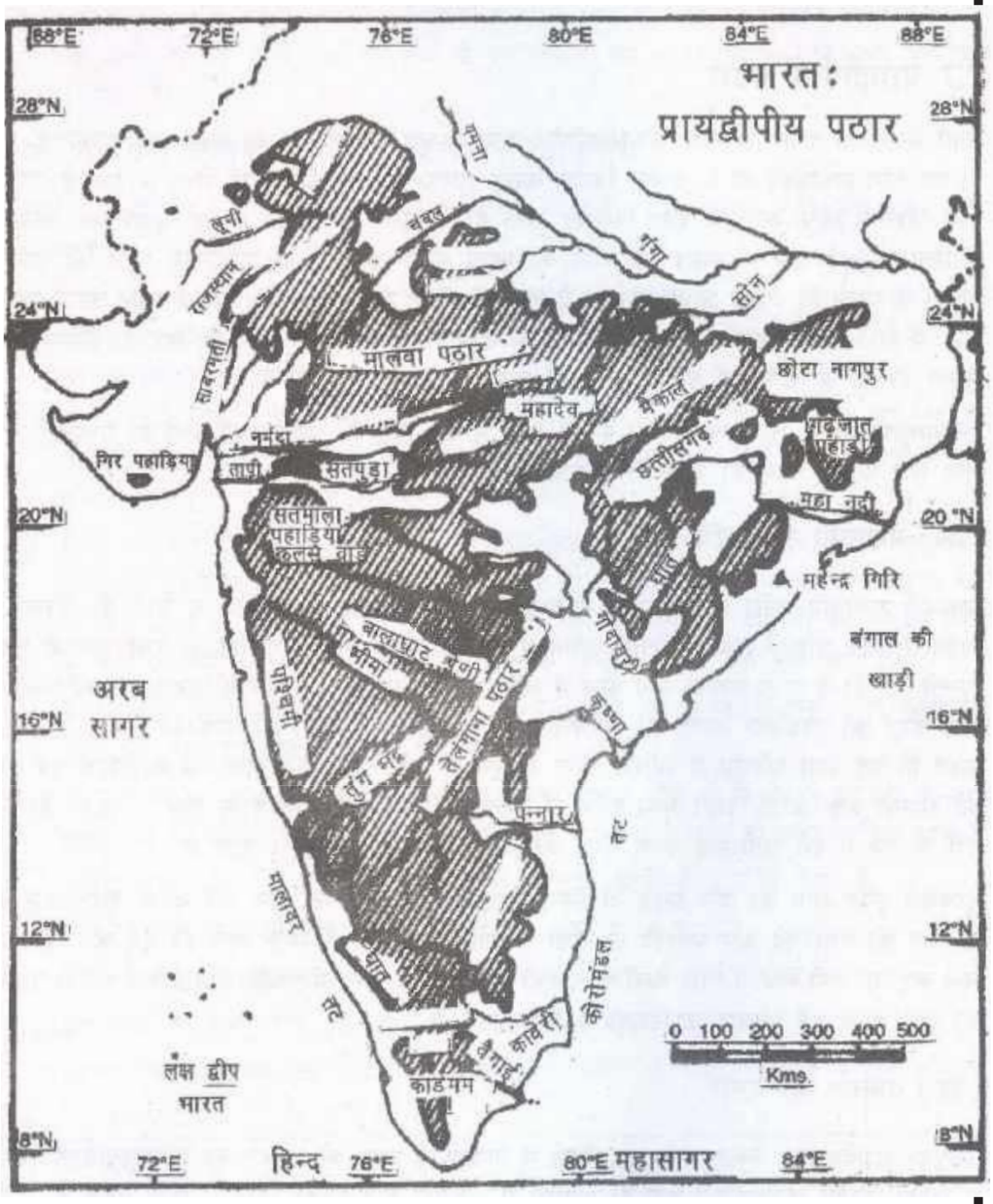

मानचित्र 2.2 प्रायद्वीपीय भारत



आपकी टिप्पणियाँ

ही प्रागैतिहासिक काल की संगम सभ्यता का विकास दिखाई दिया। तमिल क्षेत्र में इन्होंने अपनी एक भिन्न भाषायी सांस्क तिक पहचान विकसित की।



पाठगत प्रश्न 2.1

1. भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर–पश्चिमी भाग में स्थित मुख्य पहाड़ी रास्तों के नाम लिखें?

2. उत्तर वैदिक काल में गंगा नदी के ऊपरी मैदानी क्षेत्र में कौन निवास करते थे?

3. मध्य गंगा मैदानी क्षेत्रों में किन दो धर्मों का जन्म हुआ?

4. किस प्रदेश में प्रागैतिहासिक काल से तालाबों द्वारा सिंचाई लोकप्रिय थी?

5. कावेरी डेल्टा किस फसल के लिए प्रसिद्ध है?

6. किन्हीं दो ऐसी जनजातियों का नाम लिखें जिन्होंने प्राचीन काल में उत्तर–पश्चिमी पहाड़ी मार्गों से भारत में प्रवेश किया?

7. किस क्षेत्र को इस महाद्वीप का खाद्य केन्द्र कहा जाता है?

2.4 पर्यावरण का प्रभाव

किसी भी क्षेत्र में लोगों के आवास की स्थिति इस बात पर निर्भर होती है कि उस स्थान के परिवेश (पर्यावरण) की स्थिति कैसी है। पर्यावरण हमारे आसपास की परिवेशीय स्थितियाँ या वातावरण होता है जिसमें विभिन्न प्रकार की जातियाँ (मानव, पशु और पेड़–पौधे) जीवित रहते और काम करते हैं। पर्यावरण में मुख्य रूप से किसी स्थान का वातावरण, भू–भाग, पेड़–पौधे और पशु (वनस्पति और प्राणिजगत आदि) शामिल होते हैं। आइए अब हम देखते हैं कि प्राचीन काल से लेकर आज तक पर्यावरण ने लोगों के जीवन और इतिहास को किस प्रकार प्रभावित किया है। लोगों के स्थायी आवास के लिए अर्ध–शुष्क क्षेत्र अधिक उपयोगी होते हैं। उदाहरण के लिए सिंध क्षेत्र ,जहाँ पर प्राचीन काल में इसी प्रकार का वातावरण रहा है, में सम द्ध हड़प्पा सभ्यता विकसित हुई, इसने शहरी आवास विकसित कराने में भी सहयोग दिया। इसी प्रकार बिहार में पाटलीपुत्र का विकास और मगध के महत्व को भी वहाँ की भौतिक विशेषताओं और पर्यावरण के मद्देनजर इनके परस्पर संबंधों के अनुरूप परिभाषित किया जा सकता है। पाटलीपुत्र गंगा, सोन और गंडक नदियों से घिरा था जिन्होंने इस स्थान को नैसर्गिक सुरक्षा प्रदान करने के



साथ–साथ आंतरिक संचार की सुविधा भी उपलब्ध करवाई। इसके अतिरिक्त उपजाऊ सिंध–गंगा के मैदानी क्षेत्रों ने यहाँ घनी आबादी के निवास बनाए रखने में सहायता की।

पर्यावरणीय परिस्थितियाँ किसी क्षेत्र के संभावित संसाधनों को भी निर्धारित करती हैं। वनांचल क्षेत्र लकड़ी का बड़ा स्रोत हो सकते हैं तो समुद्र तटीय क्षेत्र समुद्री उत्पादों के स्रोत हो सकते हैं। चटट्ानों से भरपूर पहाड़ी क्षेत्र, जिनमें खनिज अयस्क (कच्ची धातुएँ) भी शामिल हैं, धातु विज्ञान के विकास में सहायक हो सकता है, जैसे मगध लोहे की कच्ची खानों के नजदीक और छोटा नागपुर पठार के क्षेत्र में पत्थर के स्रोत (उद्गम स्थलों) और लकड़ी के क्षेत्र के नज़दीक स्थित था। इस वजह से मगध की स्थिति मजबूत हुई।

जीवन के रहन–सहन और आहार–व्यवहार भी पर्यावरणीय परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं। नदियों के मैदानी क्षेत्रों में कछार वाली मिट्टी बाढ़ से प्रभावित होती है। मिट्टी की उपजाऊ शक्ति अधिक पैदावार में सहायक होती है। मिट्टी की किस्म किसी स्थान की फसल पद्धति को भी निर्धारित करती है। जैस, काली मिट्टी कपास की खेती करने के लिए बहुत अच्छी होती है। बढ़ते उत्पादन के फलस्वरूप वस्तुओं के परस्पर लेन–देन की गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है जिससे बड़े पैमाने पर व्यापार विकसित होता है।

जलमार्ग की सुविधा से सम्पन्न नदियों वाले क्षेत्रों में विकसित व्यापार और संचार नेटवर्क देखने में आए हैं। जातक और अन्य उपलब्ध हमारी प्राचीन साहित्यिक पुस्तकों में प्राचीन भारत में अनेक जलमार्गों के होने के उल्लेख मिलते हैं। इसी प्रकार समुद्र तटीय जलमार्ग विभिन्न सुदूर देशों से व्यापार की प्रगति को बढ़ावा देते हैं। पहाड़ी मार्ग इस संदर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। उदाहरण के रूप में पालघाट दर्रा ने पूर्व और पश्चिमी समुद्री तट को आपस में जोड़ा और प्राचीन काल में भारत–रोम व्यापार करने में सहायता की।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि किसी क्षेत्र की भौतिक विशेषताएँ और पर्यावरण उस क्षेत्र की ऐतिहासिक प्रक्रिया का खुलासा करने में सहायक होते हैं। संसाधनों से सम द्ध क्षेत्र महत्त्वपूर्ण थे जबकि जहाँ इन संसाधनों की कमी रही, वहाँ कम विकास हुआ। यह समीक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है कि आवास पद्धति और जीविका का तरीका स्थानीय संसाधनों के उपयोग पर निर्भर होता है, जिसके परिणाम पर उस क्षेत्र का तकनीकी विकास निर्भर होता है।

पाठगत प्रश्न 2.2

1. पाटलिपुत्र (आधुनिक पटना) को प्राक तिक सुरक्षा प्रदान करने वाली नदियों के नाम लिखें?

   _____

2. मगध को लौह अयस्क और लकड़ी की आपूर्ति किस क्षेत्र से होती थी?

   _____



आपकी टिप्पणियाँ

3. कपास की खेती के लिए किस प्रकार की मिट्टी उत्तम है 'काली, लाल या रेतीली'?

4. कौन से प्रसिद्ध पहाड़ी मार्ग ने भारत के पूर्व और पश्चिमी समुद्र तट को परस्पर जोड़ा?

2.5 प्रागैतिहासिक सभ्यताएँ

प्रागैतिहासिक काल हमारे इतिहास की वह अवधि है जिसका कोई लिखित वर्णन उपलब्ध नहीं है। इसलिए उन सभ्यताओं के संबंध में हमारा ज्ञान केवल पुरातात्विक खुदाई में मिली सामग्री पर आधारित है। इस समय में रहने वाले प्राचीन मानव पत्थर के औजार बनाकर और पत्थर से बनाई गई चीजें उपयोग में लाते थे जो उन स्थलों के आसपास पाई गई है। यह औजार उन्हें शिकार करने और अपनी भूख शांत करने के लिए खाद्य सामग्री इकट्ठी करने में मदद करते थे। चूँकि इस समय में लोगों द्वारा सबसे पहले उपयोग किए गए औजार पत्थरों से बनाए गए थे, इसलिए मानव विकास के इस चरण को पाषाण युग के नाम से जाना जाता है।

इस अध्याय में हम प्रागैतिहासिक काल के व्यक्ति के शिकारी और भोजन संग्रह करने वाले व्यक्ति से भोजन उत्पादक में परिवर्तित होने के विकास क्रम के अवशेष खोजेंगे। यह परिवर्तन अचानक नहीं हुआ बल्कि इसमें हजारों साल का समय लगा।

2.6 पुरा पाषाण-युग (पैलियोलिथिक) सभ्यता

पैलियोलिथिक शब्द ग्रीक शब्द ''पैलियो'', से लिया गया है जिसका अर्थ है पुराना और ''लिथिक'' जिसका अर्थ है पत्थर से लिया गया है। इसलिए पैलियोलिथिक–युग का अर्थ है पुरा पाषाण–युग। पुरातत्वविदों ने इस सभ्यता का कालखंड दो मिलियन वर्ष पूर्व अत्यन्त नूतन युग (प्लिस्टोसीन एज) को बताया है। प्लिस्टोसीन काल इस युग का वह भौगोलिक काल है जब धरती की सतह बर्फ से ढँकी थी और मौसम इतना ठंडा था कि मनुष्य अथवा वनस्पति किसी का भी जीवित रहना संभव नहीं था। लेकिन उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में, जहाँ बर्फ पिघल गई थी, मानव की प्रागैतिहासिक जातियाँ जीवित रह सकती थीं।

लोग पहाड़ी चट्टानों के आसपास रहते थे और अपनी सुरक्षा के लिए सिर्फ़ पत्थर से बने औजारों का उपयोग करते थे । फिर भी औजार बनाने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली कच्ची सामग्री का चुनाव एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न होता था और इस सामग्री की उपलब्धता पर निर्भर होता था, जैसे महाराष्ट्र क्षेत्र में उपलब्ध बेसाल्ट और कर्नाटक क्षेत्र में पाया जाने वाला चूना–पत्थर । औजारों की किस्म और उन्हें गढ़ने की तकनीक की प्रगति की प्रक ति के आधार पर पैलियोलिथिक सभ्यताओं (पाषण युगीन सभ्यताओं) को तीन चरणों में विभाजित किया गया है। ये हैं :– (1) आरंभिक अथवा पुरा पाषाण युग (अर्ली पैलियोलिथिक), (2) मध्य पाषाण युग (मिडल पैलियोलिथिक), और (3) उन्नत या उच्च पाषाण युग।



(क) पुरा पाषाण युग (पैलियोलिथिक) के औजार

पुरा पाषाण युग चरण में मुख्य औज़ार थे हाथ की कुल्हाड़ी, गंडासा और काटने के औजार। ये औज़ार बहुत बेढंगे और भारी थे और पत्थरों से बनाए गए थे. धीरे–धीरे नुकीले और हल्के औज़ार बनाए जाने लगे।

मध्य पाषाण युग के मुख्य औजार थे खप्पचियों की तरह के चपटे औजार (चित्र 2.2)। उत्तर पाषण युग में मूलतः तक्षणी (बूरीन) और कुरेदने वाले (स्क्रैपर्स) औजार होते थे (चित्र 2.3)।

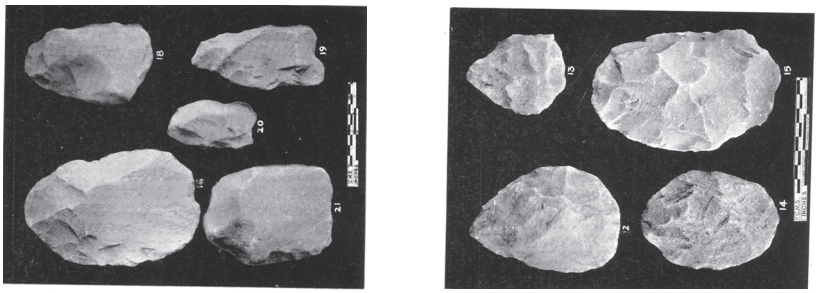

चित्र 2.1 पुरा पाषाण युग के काटने वाले औजार और हाथ की कुल्हाड़ी

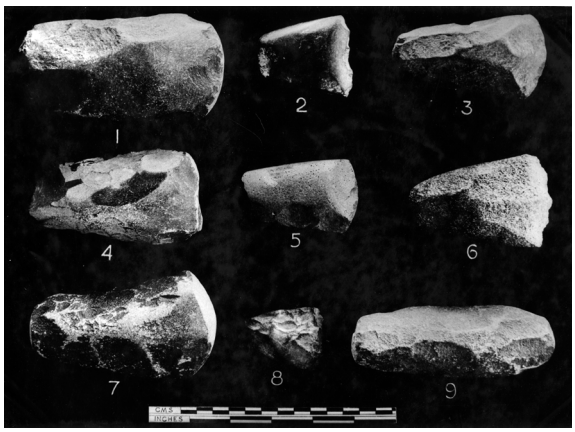

चित्र 2.2 मध्य पाषाण युग के काटने वाले औजार और हाथ की कुल्हाड़ी

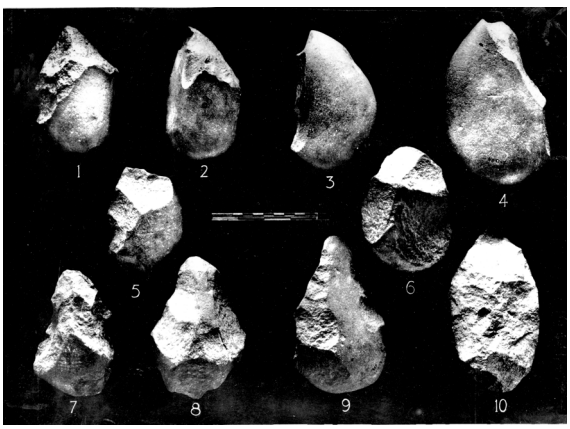

चित्र 2.3 उत्तर पाषाण युग के काटने वाले औजार और हत्थे वाली कुल्हाड़ी



आपकी टिप्पणियाँ

आइए अब हम संक्षेप में ऊपर उल्लिखित कुछ औजारों की मुख्य विशेषताओं और उपयोगों पर विचार करते हैं। हत्थे वाली कुल्हाड़ी में हत्था चौड़ा है और काम करने वाला हिस्सा पतला। पेड़ काटने और जड़ों को खोदने के लिए इनका उपयोग होता था।

आरी का सिरा दो भागों में बँटा होता था और इनका उपयोग पेड़ों के तनों को चीरने के लिए होता था। गंडासा एक मुख्य औजार था जिसका काम करने का एक ही सिरा होता था और इसे काटने के काम के लिए उपयोग में लाया जाता था। बूरिन (तक्ष) पतली खपच्चियों या ब्लेडों की तरह होते थे । इनका उपयोग नरम पत्थरों, हड्डियों या चट्टानों पर खुदाई के काम के लिए किया जाता था। छीलने वाले औजार (स्क्रैपर्स) भी पतली खपचियों के बने होते थे। पेड़ों की छालें और पशुओं की चमड़ी प्राप्त करने के लिए तथा छीलने के काम के लिए इनका उपयोग किया जाता था।

(ख) पाषाण युगीन स्थानों का भौगोलिक विभाजन

पाषाण युगीन स्थलों के भौगोलिक विभाजन से यह संकेत मिलता है कि यह सभ्यता भारतीय उप–महाद्वीप की सम्पूर्ण लम्बाई और चौड़ाई के विस्तार में फैली हुई थी। उत्तर में कश्मीर घाटी और रावलपिंडी (अब पाकिस्तान में) की सोहन घाटी में से प्राचीन पत्थरों के औजार प्राप्त हुए हैं, राजस्थान में लूणी नदी के किनारे के स्थानों पर पत्थर के प्राचीन औजार प्राप्त हुए हैं। पश्चिमी भारत में भी साबरमती, माही और इनकी सहयोगी नदियों के स्थलों पर पत्थरों के प्राचीन औजार मिले हैं। महाराष्ट्र में इनके प्रमुख स्थान रहे हैं, गोदावरी की सहयोगी नदी नेवासा के पास और ताप्ती नदी तंत्र में पटन का पास, मध्य प्रदेश में भीमबेट्का (भोपाल के पास) और होशंगाबाद जिले में आदमगढ़ स्थित चटट्ानी आड़ में पुरा पाषाण–युग और मध्य प्राचीन युग से संबद्ध औजार प्राप्त हुए हैं।

उत्तर प्रदेश में, बेलन घाटी (मोटे तौर पर इलाहाबाद और वाराणसी के मध्य फैला क्षेत्र) इसका बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थल रही है। यहाँ मिले औजारों से प्राचीन पाषाण–युग से लेकर निरंतर आज तक मानवीय व्यवसाय के दर्शन होते हैं।

यदि पूर्व की ओर बढ़ें तो असम और मेघालय (गारो की पहाड़ियाँ) सहित वहाँ के आसपास के क्षेत्र से इतिहास–पूर्व काल की कलाक तियाँ पाई गई हैं। बंगाल, उड़ीसा और बिहार के अनेक स्थानों पर भी प्राचीन पाषाण युग के औजार प्राप्त हुए हैं। प्रायद्वीपीय भारत में आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में प्राचीन पाषाण युग से संबद्ध औजार मिलने के समाचार मिले हैं। तमिलनाडु में इनका मुख्य स्थल रहा है अटिट्रमपक्कम जो चिंगलपुर क्षेत्र में स्थित है। प्राचीन पाषाण युग की जीविका का मुख्य आधार पशुओं का शिकार और फलों और उसकी जड़ों से खाद्य सामग्री संग हित करना रहा है। अन्य शब्दों में, उस युग के लोग मूलतः शिकारी और संग्रहकर्ता थे जिनका कोई स्थायी निवास नहीं होता था।

ऊपर की चर्चा के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि इतिहास–पूर्व काल के प्राचीन पाषाण युग की सभ्यताएँ लगभग संपूर्ण भारतीय उप–महाद्वीप में फैली हुई थीं।



औजारों के अध्ययन से संकेत मिलता है कि औजार बनाने की तकनीक में सतत विकास हुआ है जिसने बेहतर संसाधनों की उपलब्धता का मार्ग प्रशस्त किया है।

(ग) जीविकोपार्जन की पद्धति

प्राचीन पाषाण युग के लोगों में जीविकोपार्जन के लिए शिकार और खाद्य सामग्री संग हीत करने का चलन था। उन्होंने शिकार करने, कुतरने/काटने, खोदने और अन्य उद्देश्य के लिए पत्थरों के साधारण औजार बनाए। उन्होंने खानाबदोशों जैसा जीवन बिताया और जहाँ पर भी पानी की आसानी से उपलब्धता के साथ–साथ पेड़–पौधे और पशुओं जैसे संसाधन की बहुलता मिली, उन्हीं स्थानों पर स्थानांतरित होते रहे।

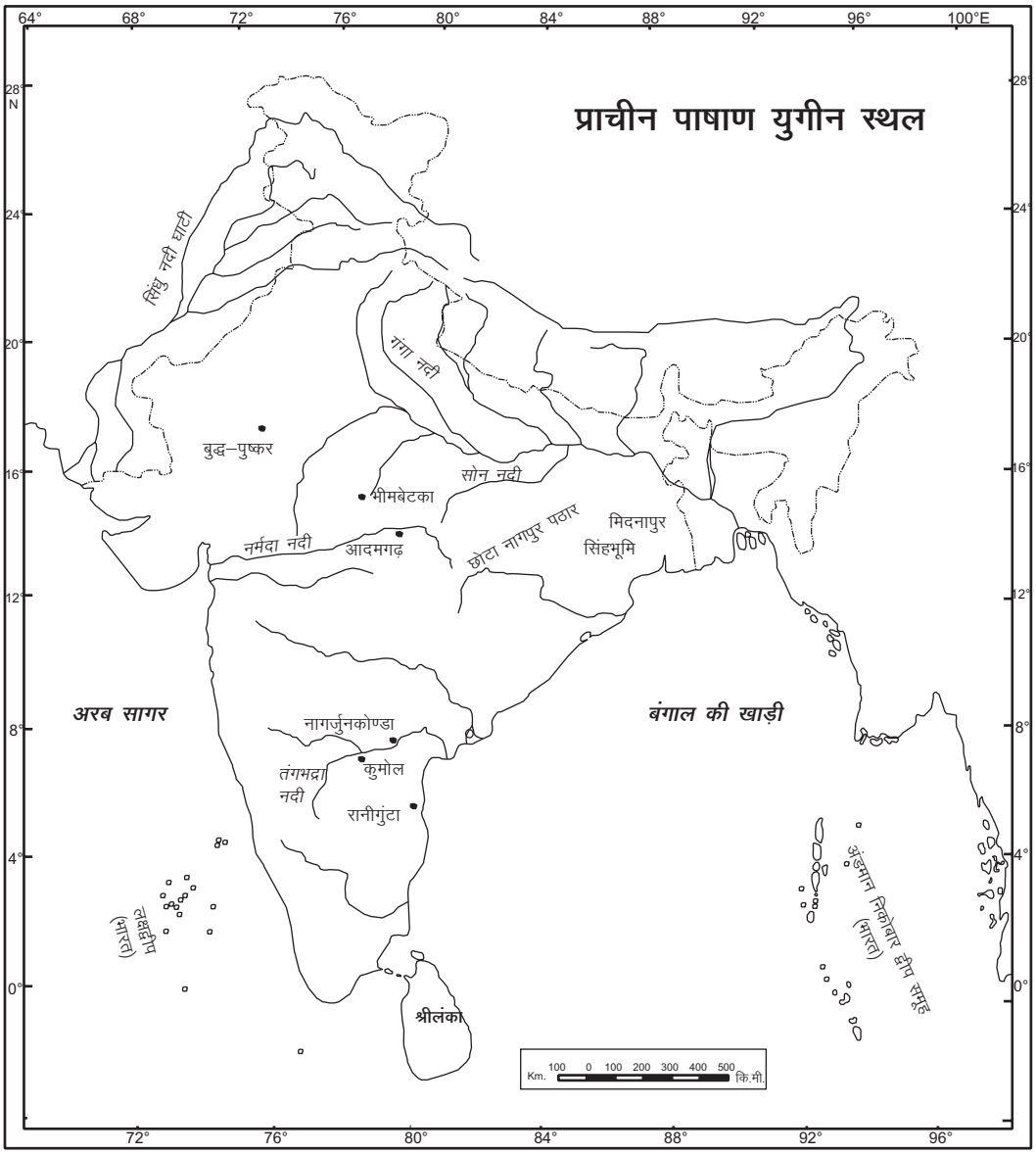

मानचित्र 2.3 प्राचीन पाषाण युगीन स्थल



आपकी टिप्पणियाँ

पाठगत प्रश्न 2.3

1. प्राचीन पाषाण युग में मानव के कौन से दो मुख्य व्यवसाय थे?

2. वे कौन से उद्देश्य थे, जिन्हें पूरा करने के लिए उन्होंने औजार बनाए?

3. पुरा पाषाण युग के मुख्य औजारों के नाम लिखें?
   (क)_____ (ख) _____ (ग) _____

2.7 मध्य पाषाण युगीन सभ्यताएँ (मैसोलिथिक संस्क ति)

मैसोलिथिक शब्द दो शब्दों के संयोजन से बना है, 'मैसो और लिथिक'। ग्रीक भाषा में 'मैसो' का अर्थ है मध्यम और 'लिथिक' का अर्थ है पत्थर, अर्थात इतिहास–पूर्व काल के मैसोलिथिक युग को मध्य पाषाण युग के रूप में पहचाना जाता है। यह समय प्राचीन पाषाण युग और नव पाषाण युग के मध्य का संक्रमणकालिक चरण रहा है। पुरातात्विक खोजों के आधार पर भारतीय महाद्वीप में मध्य पाषाण युग का प्रारम्भ 10,000 ईसा पूर्व के आसपास माना जाता है।

इस अवधि के दौरान तापमान में व द्धि दिखाई दी जिसके परिणामस्वरूप वातावरण में गरमी आई। इन परिवर्तनों की वजह से प्राचीन युग की और बर्फ पिघलती गई जिससे वनस्पति और प्राणी जगत में बहुत से परिवर्तन दिखाई दिए। यद्यपि मनुष्य अभी भी शिकारी और भोजन संग्रहकर्त्ता के स्तर पर ही था परन्तु अब उसने मछली पालन और जानवरों को पालना भी शुरू कर दिया था । भीमबेट्का (भोपाल के पास) में चटट्ानों पर इस काल में की गई चित्रकारी से यह संकेत मिलता है कि लोगों मे कलात्मक रुचि विकसित हो गई थी।

(क) मध्य पाषाण युग के औज़ार

मध्य पाषाण युग में प्रयुक्त किए जाने वाले पत्थर के सूक्ष्म औजार आकार में बहुत छोटे थे और इनकी लंबाई 1 से 8 सें.मी. के बीच अलग–अलग होती थी और इन्हें मोटे तौर पर छीले गए पतली खपचियों जैसे टुकड़ों से बनाए जाता था। इनमें से कुछ औजारों का आकार ज्यामितीय रूप में होता था, जैसे–त्रिकोण, अर्ध–चन्द्राकार और समलंबाकार। इनके औजारों को तीर या भाला बनाने के लिए बांधा या उनमें बैठाया जा सकता था।

(ख) मध्य पाषाण युगीन स्थलों का भौगोलिक विभाजन

मध्य पाषाण युगीन स्थलों के विभाजन से संकेत मिलता है कि मध्य पाषाण युगीन सभ्यताओं का आवास उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम संपूर्ण भारत में मिलता है। इस सभ्यता के प्रमुख स्थल हैं। गुजरात में लंघनाज (जिला मेहसागणा) मध्य प्रदेश में भीमबेट्का (भोपाल के पास), उत्तर प्रदेश में चोपाणी मांडो (इलाहाबाद के पास बेलन

घाटी); पश्चिम बंगाल में बीरभानपुर (जिला बर्दवान), कर्नाटक में संगनाकल्लु (जिला बेल्लारी), और दक्षिणी तमिलनाडु में तूतीकोरिन ।

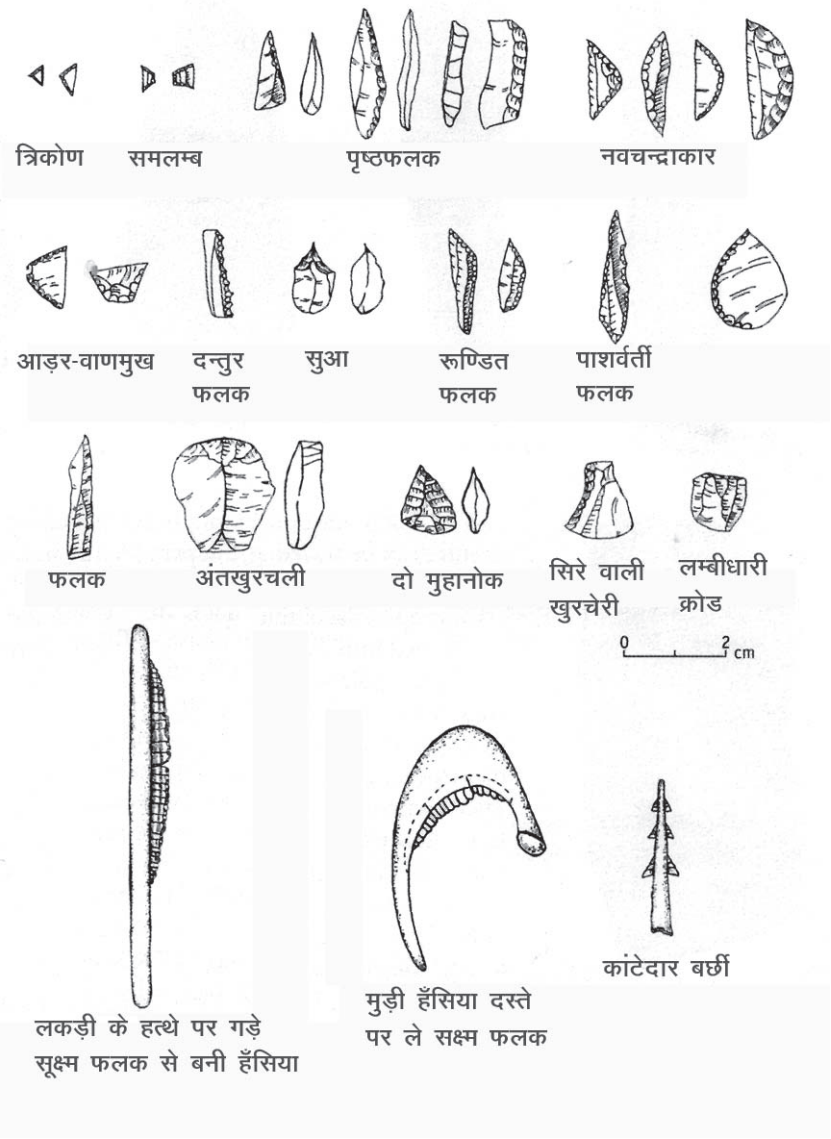

चित्र 2.4 मध्य पाषाण युग के औजार

(ग) जीवन यापन की पद्धति

मध्य पाषाण युग के लोग अभी भी अपना जीविकोपार्जन शिकार और संग्रहण से करते थे, परन्तु अब शिकार के तरीके मे कुछ बदलाव आ गया था, जैसे अब प्राचीन पाषाण युग के बडे जानवरों के स्थान पर छोटे–छोटे पशुओं का भी शिकार होने लगा था, जिन पर धनुषबाण और तीरों से आक्रमण किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त मछलीपालन और पक्षियों के शिकार को भी महत्त्व दिया जाने लगा था। मवेशियों, भेड़ों, बकरी, भैंस, सूअर, चूहे, जंगली सांड, दरियाई घोड़े, कुत्ते, लोमड़ी, छिपकली, मेंढक और मछली आदि प्राणियों के अवशेष मध्य कालीन पाषाण युगीन स्थान से प्राप्त हुए हैं।

पाठगत प्रश्न 2.4

1. मध्य पाषाण युग के औजारों को किस नाम से पुकारा जाता है?

2. मध्य पाषाण युग में निर्मित कुछ औजारों के नाम लिखें?

3. मध्य पाषाण युग के किन्ही दो स्थानों का नाम लिखें?

2.8 नव पाषाण युग की सभ्यताएँ और खाद्य उत्पादों का आगमन

इतिहास–पूर्व अंतिम चरण को नव पाषाण युग का नाम दिया गया है। नियोलिथिक शब्द को ग्रीक शब्द 'नियो' जिसका अर्थ है नया, और 'लिथिक' जिसका अर्थ है, पत्थर से लिया गया है. अतः नियोलिथिक युग' का अर्थ है मानव सभ्यता का 'नव पाषाण युग'। भारतीय उप–महाद्वीप में इसका काल क्रम 8000 बी.सी. (ईसा पूर्व) माना जाता है। 'नियोलिथिक' शब्द का निर्माण जॉन लुब्बॉक द्वारा किया गया था। युग की प्रमुख विशेषता थी, नए किस्म के घिसाई और पॉलिश किए गए पत्थर के औजार। इस काल को पौधों की खेती और घरेलू पशुपालन की शुरुआत के रूप में भी पहचाना जाता है। इसकी वजह से जीवन में स्थायी आवास की शुरुआत हुई और गांवो में आबादी का विकास हुआ। नव पाषाण युग में निम्नलिखिति विशेषताएँ थीं:

(1) क षि संबंधी गतिविधियों का आरम्भ

(2) घरों में पशुपालन

(3) तीखे नुकीले पत्थर के औजारों की घिसाई और उन पर पॉलिश की शुरुआत

(4) पॉटरी (मिटट्ी के बर्तनों) का उपयोग

(क) नव-पाषाणिक क्रांति

व्यक्ति के जीवन में आए महत्त्वपूर्ण सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों के आधार पर कभी–कभी इस कालावधि को नव पाषाणिक क्रांति का नाम दिया जाता है। पैने और पॉलिश किए गए पत्थर के नए औजारों ने मिटट्ी की जुताई को आसान बना दिया था। इसके साथ–साथ पशुओं को घरों में रख कर पालने का चलन भी शुरू हो चुका था। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप खेतीबाड़ी करने वाली स्थायी जातियों की स्थापना हुई। नव पाषाण युग के चरण में पुनर्विकास ने मानव जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया जिसके फलस्वरूप अनेक विद्वानों ने इन परिवर्तनों के महत्व को दर्शाने करने के लिए 'नव पाषाण कालीन क्रान्ति' (नियोलिथिक रिवॉल्यूशन) का नाम दिया। परन्तु अधिकतर विद्वानों का यह विश्वास है कि यद्यपि यह परिवर्तनश्अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, तथापि इन परिवर्तनों को प्राचीन पाषाण युग और मध्य पाषाण युग के दौरान हुई पिछली प्रगति के संदर्भ में देख जाना चाहिए। अतः इसे 'सतत विकास' माना जाए न कि क्रान्ति।

(ख) नव पाषाण युग के औजार

नव पाषाण युग के औजारों में चिकनी सतह वाले घिसाई के औजार और भली–भांति गोलाई किए हुए नपे तुले आकार के औजार शामिल हैं। घिसाई ने औज़ारें को पैना और पॉलिश किया गया आकार दिया और पॉलिश ने इन औजारों को पहले की अवधि के औज़ारों से अधिक प्रभावी बना दिया। (चित्र 2.5)

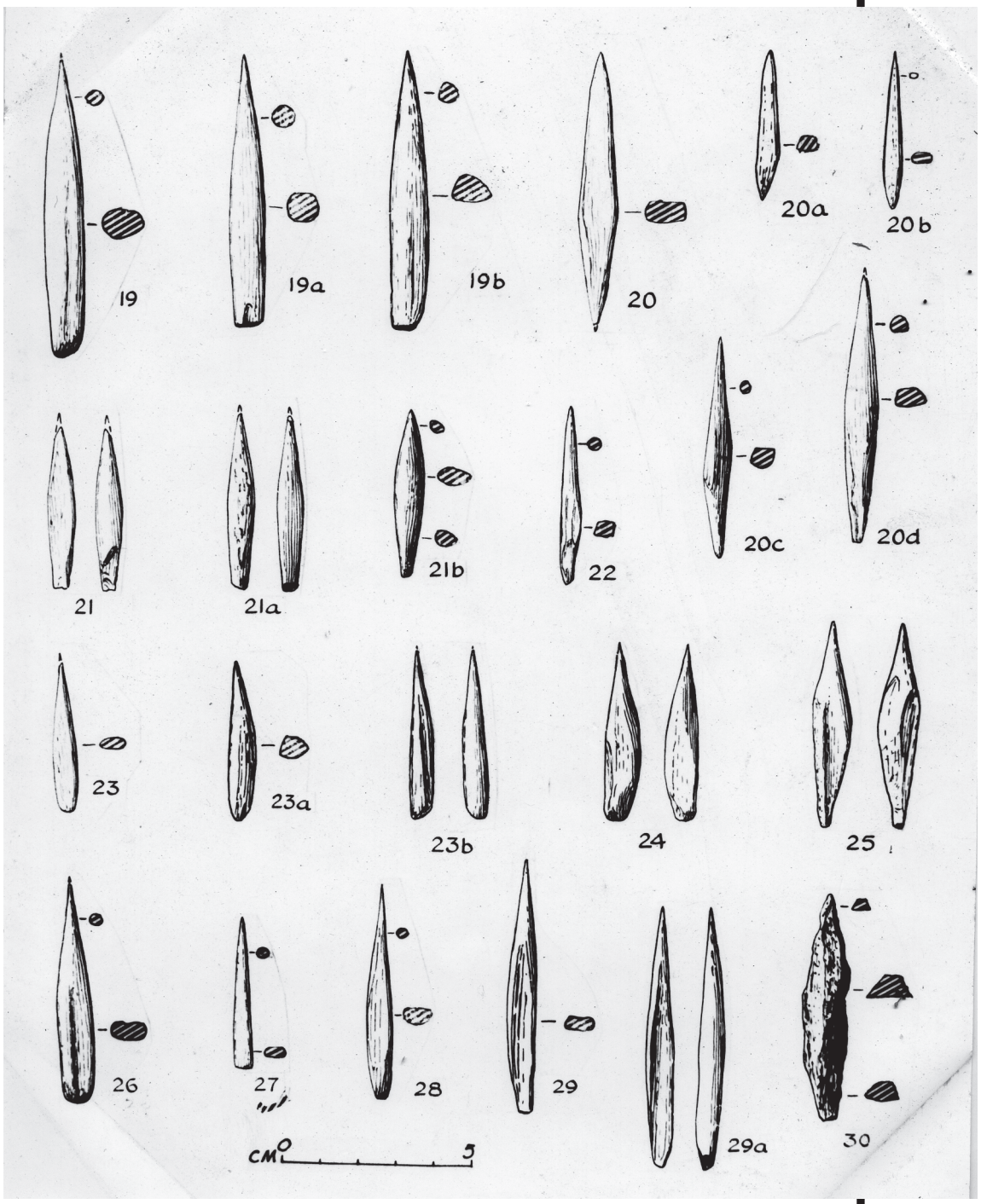

चित्र 2.5 नव पाषाण युग के औज़ार

नव पाषाण युग के घिसाई किए गए औज़ारों में विभिन्न प्रकार की कुल्हाड़ियाँ शामिल है। जिन्हें 'सेल्ट' (आदिम कुल्हाड़ी) कहा जाता है। पत्थर के औजारों के अतिरिक्त इस युग के स्थानों पर विविध प्रकार की हड्डियों से बनी वस्तुएँ, जैसे सुइयाँ, स्क्रैपर, भूमि में छिद्र करने वाले औजार (बोरट) तीरों के अग्रभाग, पेंडेन्ट, चूड़ियाँ और कान के बुंदे आदि भी पाए गए हैं। (चित्र 2.6)

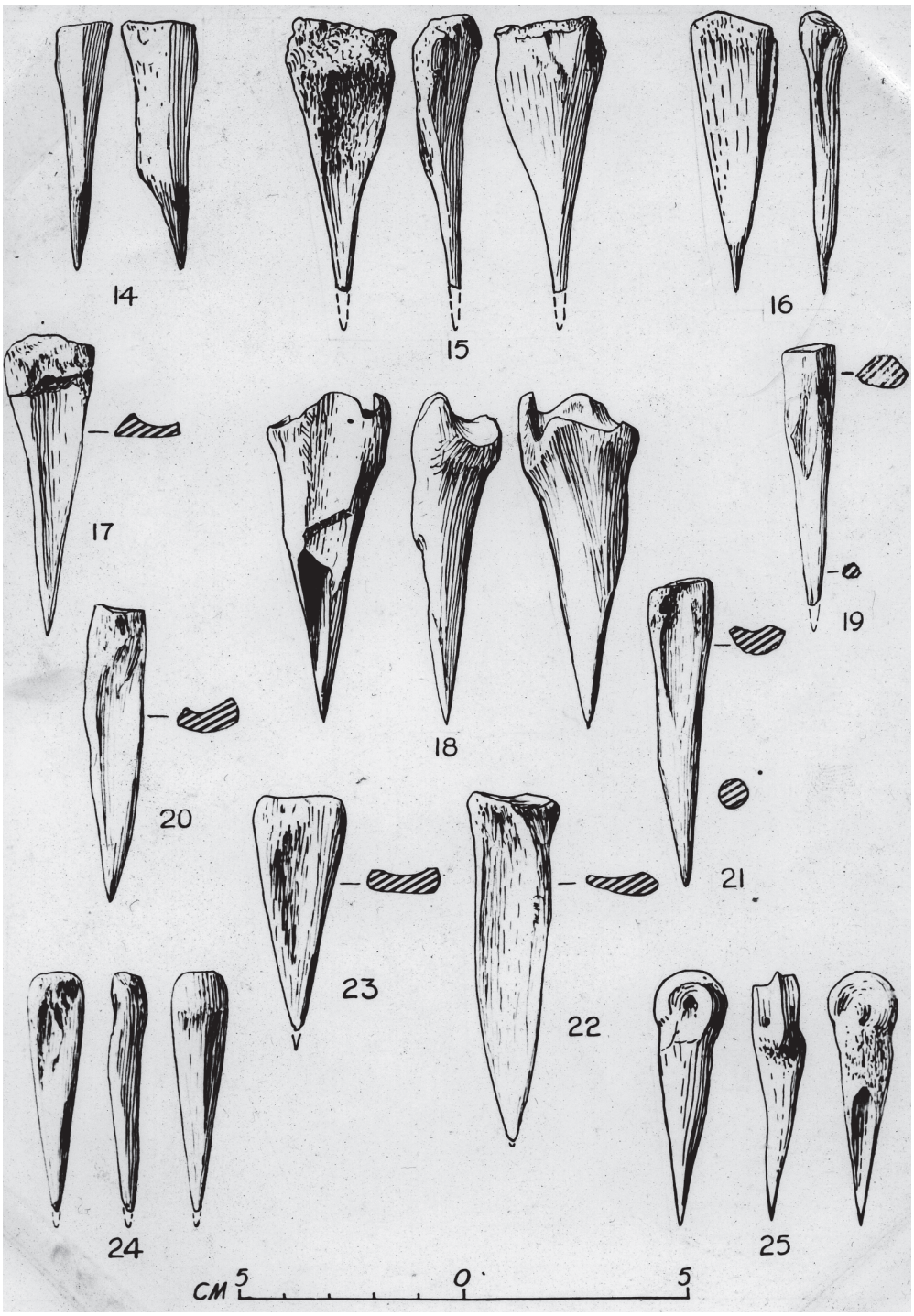

चित्र 2.6 बुर्जाहोम सें मिले नव पाषाण युग के छिद्रक औज़ार

(ग) नव पाषाण युगीन स्थलों का भौगोलिक विभाजन

भारतीय उपमहाद्वीप के लगभग संपूर्ण भू–भाग में नव पाषाण युगीन स्थलों का विस्तार मिलता है। उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र में बलूचिस्तान के कच्छी मैदानी क्षेत्र में मेहरगढ़ ऐसा ही एक उत्क ष्ट स्थल है। मेहरगढ़ में की गई खुदाई से नव पाषाण युग के लोगों द्वारा घरों के निर्माण के साक्ष्य सामने आए हैं। ये घर धूप में सुखाई गई ईंटों से बने थे। इन घरों में छोटे कमरों के विभाजन किए गए थे। गेहूँ, जौ और कपास की खेती किए जाने के प्रमाण इन स्थलों पर पाए गए। कश्मीर घाटी के प्रमुख स्थानों मे बुर्ज़होम और गुफ़्क्राल शामिल हैं। नव पाषाण युग की सभ्यता की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक विशेषता इन जगहों पर रहने के लिए पाए गए गोलाकार या आयताकार गड्ढे। विंध्य पठार के किनारे के साथ–साथ उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद के पास स्थित बेलन घाटी में भी अनेक स्थान हैं, जैसे–कोल्हडीहवा और महागारा।

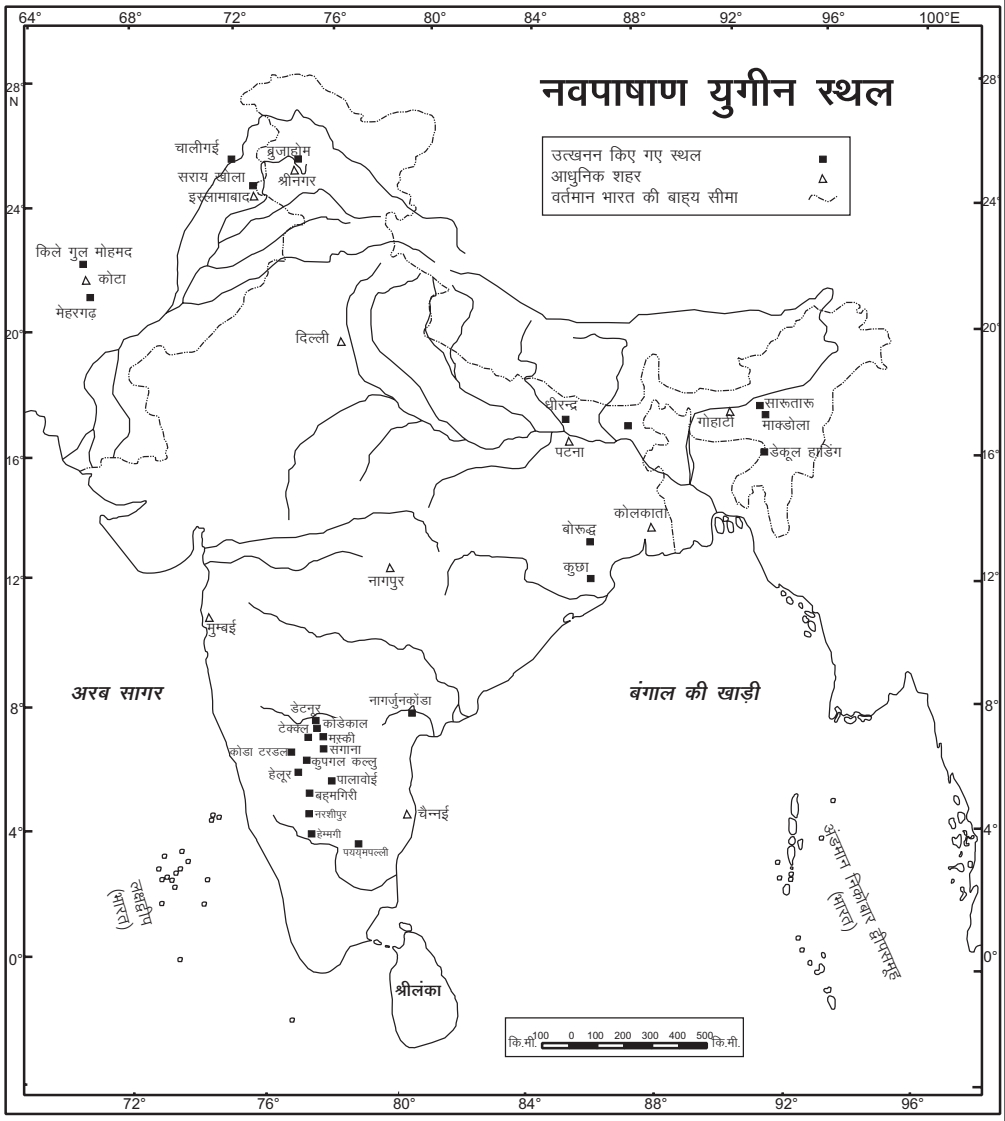

मानचित्र 2.4 नवपाषाण युगीन स्थल

नव पाषाण युग के औजार (पत्थर और हडड़ी दोनों से बने), मिटट्ी के बर्तन, अन्य कलाक तियाँ, फूल–पौधों और प्राणियों के अवशेष इन स्थानों पर मिले हैं। बिहार और मध्य–गंगा घाटी क्षेत्र में चिरंड बहुत ही लोकप्रिय स्थल है। असाम, मेघालय और नागालैंड की पहाड़ियों पर भी अनेक स्थल मौजूद हैं। घिसाई की गई छोटी कुल्हाड़ियों के साथ–साथ मिटट्ी के बर्तन आदि इस क्षेत्र से मिले है। दक्षिण भारत में भीम, क ष्णा, तुंगभद्रा और कावेरी नदियों के किनारे–किनारे अनेक स्थलों/आबादी की खोज की गई है। कुछ प्रमुख स्थल हैं–संगनकल्लु, ब्रहमगिरि, मस्की, पिक्लीहाल, हल्लूर, कर्नाटक में उत्नुर, नागार्जुनकोंडा, आंध्र प्रदेश में बुडिहाल और तमिलनाडु में पल्ली। इन स्थानों पर खेती और पशुपालन के भी प्रमाण मिले हैं। रागी दक्षिण भारत के गांवों में उगाई गई सबसे प्राचीन फसल थी।

(घ) <u>जीविकोपार्जन की पद्धति</u>

नव पाषाण चरण में खेती–बाड़ी का आगमन बहुत ही महत्वपूर्ण परिवर्तन था। भौगोलिक परिस्थितियों के आधार पर इस काल के लोगों ने विविध प्रकार की फसलें उगाईं जैसे गेहूँ, जौ, दालें आदि। खेती–बाड़ी के काम ने पशुपालन को गति दी। शिकार अभी भी लोगों का मुख्य व्यवसाय था। लोगों द्वारा घरों में पाले गए पालतू जानवरों में भेड़, बकरी, गाय–भैंस आदि शामिल थे, तो शिकार किए गए जंगली जानवरों में थे सूअर, नीलगाय और चिंकारा आदि। नव पाषाण युग के लोगों द्वारा बनाए गए विविध प्रकार के पत्थर के औजारों के संबंध में पहले ही चर्चा की जा चुकी है। नियोलिथिक काल के लोगों ने मिट्टी के बर्तन भी पहले हाथ से बनाए और बाद में चाक पहिये पर बनने लगे और इन्हें बड़ी–बड़ी भटिट्यों में पकाया भी गया। अनाज भंडारण के लिए यह मुख्य साधन थे। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि नियोलिथिक सभ्यताओं को विशेष रूप से शिकारी से संग्रहकर्त्ता और संग्रहकर्त्ता से पेड़–पौधों की खेती–बाड़ी करने और पशुपालन करने वाले लोगों में परिवर्तित होने वाले जनसमूह के रूप में पहचाना जाता है। पॉलिश किए गए नए औजारों ने मानवों के लिए खेती–बाड़ी, शिकार करने और अन्य गतिविधियों से संबद्ध कामों को आसान कर दिया था। इसके परिणामस्वस्प खाद्य संसाधनों की बहुतायत में उपलब्धता से जनसंख्या में भी बढ़ोतरी दर्ज की गई और बढ़ती आबादी के कारण गांवो की स्थायी आबादियों में भी व द्धि हुई। नव पाषाण युग की सभ्यताओं ने ऐसी परिस्थितियां पैदा कीं, जिनसे बाद के समय में शहरों और कस्बों के विकास में सहायता मिली।

पाठगत प्रश्न 2.5

1. नव पाषाण शब्द की रचना किसने की?

   _____

2. नव पाषाण सभ्यताओं की प्रमुख विशेषताएँ लिखें:

   (क) _____



(ख) _____

(ग) _____

(घ) _____

3. उत्तर पश्चिमी क्षेत्र के किसी नव पाषाण युगीन स्थल का नाम लिखें?

_____

2.9 प्रागैतिहासिक कला

चटट्ानों पर चित्रकारी मध्य पाषाण (मैसोलिथिक) युग के लोगों की बहुत ही महत्त्वपूर्ण और भिन्न विशेषता थी यद्यपि इसकी शुरुआत के संकेत उत्तर पुरापाषाण काल मे भी पाए गए हैं। यह चित्रकारी चटट्ानों में बनाए गए बसेरों की दीवारों पर बनाई गई थी और इनमें से अधिकतर चित्रकारी मध्य प्रदेश में भीमबेट्का में पाई गई हैं। इनसे मध्य पाषाण लोगों के सामाजिक और आर्थिक जीवन की झांकी मिलती है। चित्रकारी में पाए गए चित्रों का मुख्य विषय है–शिकार, मछली पकड़ना और भोजन एकत्र करना। जंगली सूअर, भैंस, बकरी, और नीलगाय आदि के चित्र आमतौर पर मिलते हैं (चित्र 2.7)। चटट्ानों पर की गई चित्रकारियों में बच्चे का जन्म, बच्चों का पालन–पोषण और दफ़नाये जाने की रीतियाँ पूरी किए जाने संबंधी चित्र भी दर्शाये गए हैं। एक समूह में रहकर शिकार करने के द श्यों से संकेत मिलता है कि मध्य पाषाण लोग समूह बनाकर रहते थे। अतः हम यह कह सकते हैं कि मध्य पाषाण कालिक समाज पुरापाषाण युग के लोगों सें अधिक स्थिर था यद्यपि शिकार–संग्रहण अभी भी इनका मुख्य पेशा था।



चित्र 2.7 प्रागैतिहासिक कला

पाठगत प्रश्न 2.6

1. चटट्ानों पर चित्रकारी अथवा भित्ति चित्र किस काल की भिन्न विशिष्ट कला थी?

2. मध्य प्रदेश के उन स्थानों के नाम लिखें जहाँ अधिकतम संख्या में चटट्ानों पर बनाई गई चित्रकारी पाई गई है?

3. प्रागैतिहासिक भित्ति–चित्र कला में किन विषयों पर मुख्य तौर पर प्रकाश डाला गया है, उनका उल्लेख करें?

आपने क्या सीखा

भारत के इतिहास पर इसकी भौगोलिक विशेषताओं और पर्यावरण की परिस्थितियों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। विभिन्न क्षेत्रों को उनकी भिन्न स्थलीय व रूपरेखीय विशेषताओं से पहचाना जाता है जो उन क्षेत्रों में हुए ऐतिहासिक परिवर्तनों को निर्धारित करती हैं। हिमालय ने हमें हमलावरों और कठोर शीत पवनों से सुरक्षा प्रदान की है। पहाड़ी दर्रों ने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्क तिक क्रियाकलापों के लिए मार्ग उपलब्ध कराए। उत्तर भारत की नदी के उपजाऊ मैदानी क्षेत्रों ने भरपूर क षि उत्पादों की पैदावार में सहायता की जिसके परिणामस्वरूप छठी सदी ईसा पूर्व में शक्तिशाली प्रदेशों के बनने में सहायता प्रदान की। पठार क्षेत्र समुद्रतटीय मैदानी क्षेत्र और प्राय– द्वीपीय भारत के पहाड़ी क्षेत्रों ने क षि से संबद्ध आबादियों की स्थापना और प्राचीन काल से ही विदेशों से संपर्क साधने के लिए प्रेरित किया। विभिन्न परिवेशीय परिस्थितियों और विविध संसाधनों की उपलब्धता के परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न सामाजिक–आर्थिक और सांस्क तिक संरचनाओं की स्थापना हुई।

प्रागैतिहासक काल से लेकर आज तक मानव सांस्क तिक विकास के अनेक चरणों से गुजरा है। पुरातत्विक स्रोतों ने इस महाद्वीप के विभिन्न भागों में अनेक स्थानों पर मानव के अस्तित्व और उनकी जीविकोपार्जन पद्धतियों का परचम दर्शाया है। पुरा पाषाण और मध्य पाषाण काल में वह शिकारी–संग्रहकर्ता था। नवपाषाण काल आते–आते उसने फसलों की खेती–बाड़ी करना और पशुपालन का काम सीखा। इन समय में वह मिट्टी के बर्तन बनाना भी सीख चुका था। इन विकासों के परिणामस्वरूप गांवों में आबादियों की स्थापनाएँ भी विकसित होने लगी थीं। विभिन्न समय में उपयोग किए जाने वाले पत्थर के औजारों में भी परिवर्तन आ गया था। पुरा पाषाण युग के कुंद औजारों ने नव–पाषाण युग तक आते–आते पैने और पॉलिश किए गए औजारों का रूप ले लिया था। मध्य पाषाण युग (मैसोलिथिक) युग को लघु–पाषाण नाम के अति सूक्ष्म पत्थर के औजारों के लिए विशेष रूप से पहचाना जाता है। अन्य शब्दों मे कहें तो पुरा पाषाण युग का शिकारी–संग्रहकर्त्ता मानव नव–पाषाण काल तक आते–आते क्रमिक खाद्य उत्पादक के रूप में विकसित हो गया था।



पाठांत प्रश्न

1. भारत के मानचित्र पर निम्नलिखित को चिह्नित करें?
   (1) हिमालयी श्रंखला
   (2) पूर्वी और पश्चिमी घाट
   (3) नदियाँ गंगा, नर्मदा, और कावेरी
   (4) अरिकमेडु (पांडिचेरी), तामलुक (ताम्रलिप्ति) और भड़ूच (भरोच)
   (5) पाटलीपुत्र (पटना) और पालघाट
   (6) आदमगड़, भीमबेट्का और कोलडिहवा
2. हिमालय क्षेत्र और प्रायद्वीपीय भारत के संदर्भ में भारत की भौगोलिक विशेषताओं के भारत के इतिहास पर पड़े प्रभाव का आकलन करें।
3. किसी क्षेत्र की परिवेशीय परिस्थितियाँ वहाँ के संभावित संसाधनों का निर्धारण कैसे करती हैं? उदाहरण देकर समझाएँ?
4. पुरा पाषाण युग के दौरान उपयोग किए जाने वाले औजारों की प्रमुख विशेषताएँ और उपयोग लिखें?
5. मध्य पाषाण काल में हुए जलवायु के परिवर्तनों ने शिकार की पद्धतियों में कैसे परिवर्तन संभव किया?
6. नव पाषाण युग के भौगोलिक विभाजन का उल्लेख करें?
7. नव पाषाण काल के लोगों के जीवन की एक झांकी प्रस्तुत करें?
8. कुछ विद्वान इस काल खण्ड के लिए 'नव पाषाणिक क्रांति' शब्द का उपयोग क्यों करते हैं?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

2.1

1. गोमल पास (दर्रा), बोलन पास (दर्रा), और खैबर पास (दर्रा)
2. आर्य लोग
3. (1) जैन धर्म (2) बौद्ध धर्म
4. तमिलनाडु
5. चावल
6. कुषाण और हूण
7. सिंधु नदी के मैदानों में पंजाब और सिंध

2.2

1. गंगा, सोन और गंडक
2. छोटा नागपुर
3. काली
4. पालघाट दर्रा (मार्ग)

2.3

1. शिकार, संग्रहण
2. शिकार, कटाई, खुदाई और अन्य प्रयोजन
3. (क) हत्था कुल्हाड़ी (ख) विदारक (क्लीवर) (ग) कर्न्तक (चॉपर, गंडासा)

2.4

1. सूक्ष्म–पाषाण (पत्थर के सूक्ष्म औजार)
2. त्रिकोण, अर्धचंद्रकार और टिपेज़िज (समलंब)
3. भीमबेट्का और चौपाणी मांडो

2.5

1. जॉन लुब्बॉक
2. (क) क षि संबंधी गतिविधियो का प्रारंभ

   (ख) पशुओं का घरों में पालन

   (ग) पत्थर के औजारों की घिसाई और पॉलिशिंग

   (घ) मिटट्ी के बर्तनों का उपयोग
3. मेहरगढ़

2.6

1. मध्य पाषाण युग
2. भीमबेट्का
3. शिकार, मछली पकड़ना, भोजन एकत्र करना, बच्चे का जन्म, बच्चे का पालन–पोषण और दफ़नाने की रीति।

<u>पाठांत प्रश्नों के संकेत</u>

1. मानचित्र 2.1 और 2.2 देखें
2. अनुच्छेद 2.1 और 2.3 देखें
3. अनुच्छेद 2.4 देखें



4. अनुच्छेद 2.6 (क) देखें
5. अनुच्छेद 2.7 (ग) देखें
6. अनुच्छेद 2.8 (ग) देखें
7. अनुच्छेद 2.8 (घ) देखें
8. अनुच्छेद 2.8 (क) देखें

शब्दावली

आर्य	–	घुमन्तू मानवजाति जो मध्य एशिया से आई।
बट्ट एंड	–	किसी औजार का चौड़ा सिरा जो आमतौर पर हत्थे के काम आता है।
सेल्ट	–	एक प्रकार की पत्थर की कुल्हाड़ी जिसे नियोलिथिक काल में बनाए गया ।
जीव–जन्तु	–	किसी भी क्षेत्र का प्राणी–जीवन
पेड़–पौधे	–	किसी भी क्षेत्र का वानस्पतिक जीवन
जातक	–	बौद्ध काल की पुस्तकें जिनमे बुद्ध के जीवन से संबंधित कथाएँ हैं।
मध्य पाषाण	–	मध्य पाषाण युग में लोगों द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले बहुत ही सूक्ष्म और पैने औज़ार
दर्रा	–	पहाड़ों के मध्य बने खाली स्थान/मार्ग जो पहाड़ के दूसरी तरफ पहुचँने की सुविधा प्रदान करते हैं।
प्रागैतिहासिक	–	हमारे इतिहास का वह कालखण्ड जिसका कोई लिखित आलेख नहीं है।



3

हड़प्पा सभ्यता

पिछले पाठ में आपने सीखा कि प्रागैतिहासिक काल में लोग पत्थर से बने औज़ारों और शस्त्रों का उपयोग करते थे। इसके बाद लोगों ने धातुओं का उपयोग प्रारंभ कर दिया था। तांबा ऐसी पहली धातु थी, जिसका उपयोग व्यक्ति ने औजार बनाने के लिए किया। धीरे–धीरे भारतीय उप–महाद्वीप में अनेक ऐसी सभ्यताओं का विकास हुआ, जो पत्थर और तांबे के औजारों के उपयोग पर आधारित थीं। वे इस प्रयोजन के लिए कांसे का उपयोग भी करती थीं, जो तांबे और रांगे (टिन) का मिश्रण था। इतिहास के इस चरण को ताम्र–पाषाण (चाल्कोलिथिक) युग के नाम से जाना जाता है। (चाल्को यानी तांबा और लिथिक यानी पत्थर) भारत में ताम्र–पाषाण काल का सर्वाधिक उदीयमान अध्याय है, हड़प्पा की सभ्यता, जिसे सिंधु घाटी की सभ्यता भी कहते हैं।

हड़प्पा की सभ्यता की खोज 1920-22 में की गई थी, जब इसके दो बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थलों पर खुदाई की गई थी। ये स्थान थे, रावी नदी के किनारे बसा हड़प्पा और सिंधु नदी के किनारे बसा मोहनजोदड़ो। पहले स्थान की खुदाई की गई थी डी.आर. साहनी द्वारा और दूसरे की आर.डी. बनर्जी द्वारा। पुरातात्विक खोजों के आधार पर हड़प्पा की सभ्यता को 2600 ईसा पूर्व–1900 ईसा पूर्व के कालखंड के बीच माना गया है और ये विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। कई बार इसे 'सिंधु घाटी सभ्यता' भी कहा जाता है, क्योंकि प्रारंभ में इसकी जितनी भी बस्तिंः की खोज हुई, वे सभी सिंधु नदी या इसकी सहयोगी नदियों के पास या इसके आसपास के मैदानों में स्थित थीं। परन्तु आजकल इसे हड़प्पा सभ्यता कहा जाता है, क्योंकि हड़प्पा ही वह पहला स्थान था, जिससे इस सभ्यता का अस्तित्व प्रकाश में आया। इसके अतिरिक्त, हाल ही के पुरातात्विक अन्वेषणों से ये संकेत मिलता है कि इस सभ्यता का विस्तार सिंधु नदी के पूरे के सुदूर विस्तार तक फैला हुआ था। इसीलिए, यैा बेहतर है कि इस सभ्यता को हम हड़प्पा सभ्यता के नाम से ही पुकारें। ये भारत की प्रथम नागरिक सभ्यता है और विश्व की अन्य प्राचीन सभ्यताओं, जैसे मैसोपोटामिया और मिस्र की समकालीन है। हड़प्पाकालीन लोगों के जीवन और सभ्यता के संबंध में हमारी जानकारी सिर्फ पुरातात्विक खुदाइयों पर ही आधारित है, क्योंकि उस काल की लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है।

हड़प्पा सभ्यता का उद्‌भव अचानक नहीं हुआ। इसका विकास धीरे–धीरे नवपाषाण युग की ग्रामीण सभ्यता से हुआ। ऐसा विश्वास किया जाता है कि सिंधु नदी के उपजाऊ मैदानी क्षेत्र से अधिकतम उपज लेने के लिए बेहतर तकनीकों के उपयोग के परिणामस्वरुप



आपकी टिप्पणियाँ

क षि उत्पादन में व द्धि हुई होगी। इसके फलस्वरुप इतनी बढ़ती फसल पैदा हुई होगी, जिससे गैर–क षि आबादी के लोगों और प्रशासकीय वर्ग इत्यादि के लिए, खाद्यों और उनके जीवन–यापन के लिए उत्पादन उपलब्ध हुआ होगा। इससे दूर–दराज के प्रदेशों के साथ विनिमय और व्यापारिक संबंध बढ़ाने में भी सहायता मिली होगी। इससे हड़प्पा के लोगों में सम द्धि आई होगी और वे शहर बसाने के योग्य बने होंगे।

2000 ईसा पूर्व के आसपास इस उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में अनेक प्रादेशिक सभ्यताओं का विकास हुआ और ये भी पत्थर और तांबे के औजारों के उपयोग पर ही आधारित थीं। ये ताम्र पाषाण सभ्यताएं, जो हड़प्पा सभ्यता के क्षेत्र से बाहर थीं, अधिक सम द्ध और फली–फूलीं नहीं थी। बुनियादी तौर पर ये सभ्यताएं ग्रामीण प्रक ति की थीं। कालक्रमानुसार इन सभ्यताओं के उद्भव और विकास का काल 2000 ई.पू.–700 ई.पू. के आसपास माना गया है। ये सभ्यताएं पश्चिमी और मध्य भारत में मिलीं और इन्हें गैर–हड़प्पा ताम्र पाषाण (चाल्कोलिथिक) सभ्यता के रुप में उल्लिखित किया गया है।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- हड़प्पा सभ्यता के उद्भव और विस्तार के बारे मे विस्त त विवरण दे सकेंगे;
- हड़प्पाकालीन नगर–योजना का वर्णन कर सकेंगे;
- हड़प्पा काल के सामाजिक और आर्थिक जीवन को समझा सकेंगे;
- हड़प्पा के लोगों के धार्मिक विश्वासों पर विचार–विमर्श कर सकेंगे;
- ये सभ्यता लुप्त कैसे और क्यों हुई, इसकी विस्त त व्याख्या कर सकेंगे;
- हड़प्पा के क्षेत्र के बाहर, ताम्र पाषाण समुदायों की पहचान कर सकेंगे, और
- इन ताम्र पाषाण समुदायों की आर्थिक स्थिति और रहन–सहन की पद्धति का वर्णन कर सकेंगे।

3.1 उद्भव और विस्तार

पुरातात्विक अवशेषों से पता चलता है कि हड़प्पा सभ्यता से पहले लोग छोटे–छोटे गांवों में रहते थे। समय बीतने के साथ–साथ छोटे कस्बे बने और इन कस्बों से हड़प्पा काल के दौरान पूर्ण विकसित शहरों का विकास हुआ। वास्तव में हड़प्पा काल की संपूर्ण अवधि को तीन चरणों में बांटा गया है (1) प्रारंभिक हड़प्पा काल (3500 ई.पू. से 2600 ई.पू.)। इस काल की विशेषता का उल्लेख मिलता है, इसके मिट्टी से बने ढांचों, प्रारंभिक व्यापार, कला और शिल्पों इत्यादि में, (2) परिपक्व हड़प्पा काल (2600 ई.पू.–1900 ई.पू.) यह वह चरण है, जब हमें भट्ठे में पकी ईंटों से बने ढांचों वाले भली–भांति विकसित शहर, स्वदेशी और विदेशी व्यापार और विविध प्रकार के शिल्प देखने को मिले और (3) उत्तर हड़प्पा काल (1900 ई.पू.–1400 ई.पू.)– यह पतन का काल था, जिसके दौरान

शहर उजड़ने लगे थे और व्यापार समाप्त हो गया था, जिससे धीरे–धीरे शहरीकरण की मुख्य विशिष्टताएं लुप्त होती गईं।

आइए सर्वप्रथम हम, हड़प्पा सभ्यता के भौगोलिक विस्तार का जायजा लेते हैं।

पुरातात्विक खुदाइयों से पता चला है कि यह सभ्यता विस्त त क्षेत्र में फैली हुई थी, जिसमें न सिर्फ भारत के आधुनिक राज्य, जैसे–राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र, पश्चिमी उत्तर प्रदेश सम्मिलित थे, बल्कि पाकिस्तान और अफगानिस्तान के कुछ भाग भी शामिल थे। इस सभ्यता के कुछ मुख्य स्थान हैं – जम्मू और कश्मीर में मांडा; अफगानिस्तान में शॉरतुलई; पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) में हड़प्पा; सिंध में मोहनजोदड़ो और चन्हुदड़ो; राजस्थान में कालीबंगन; गुजरात में लोथल और धौलावीरा; हरियाणा में बनवाली और राखीगढ़ी; महाराष्ट्र में दाइमाबाद, जबकि मकरान तट (पाकिस्तान–ईरान की सीमा के पास) पर स्थित सुतकागेन्दारे हड़प्पा सभ्यता सुदूर पश्चिमी छोर और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में आलमग़ीर इसकी सुदूर पूर्वी सीमा है।

आबादियों के स्थान के संकेत मिलते हैं कि हड़प्पा कालीबंगन (घग्गर–हाकरा नदी के किनारे पर, जिसे आम तौर पर लुप्त नदी सरस्वती के साथ जोड़ा जाता है), मोहनजोदड़ो

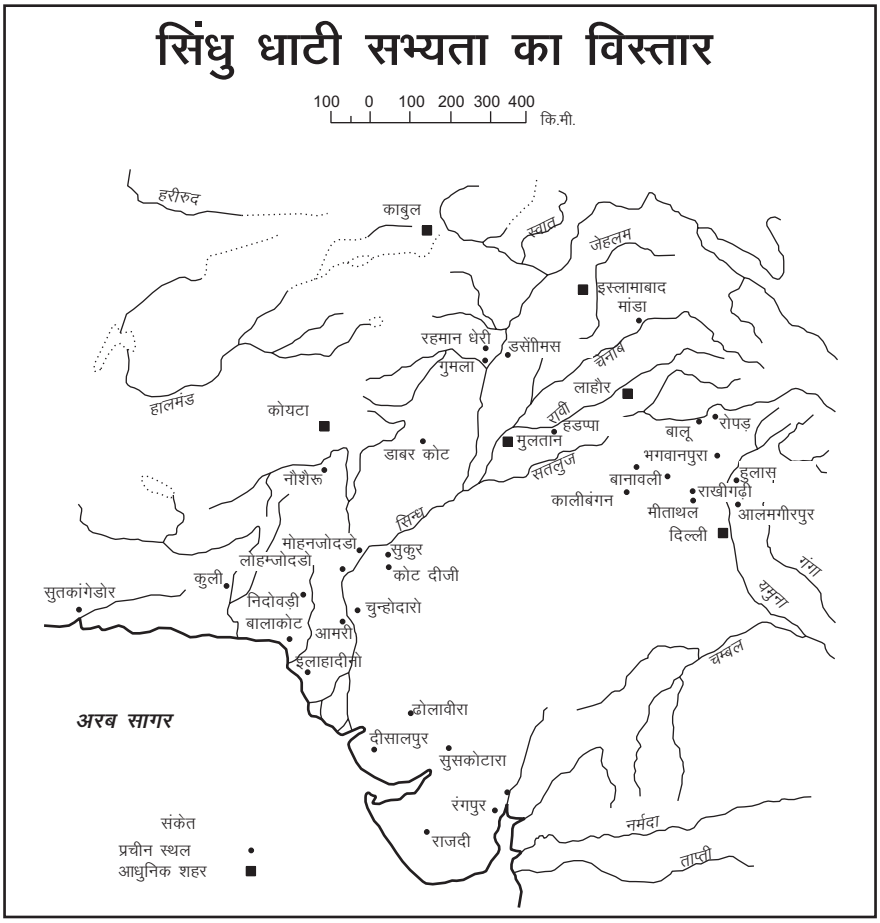

मानचित्र 3.1 सिंधु घाटी सभ्यता का विस्तार

की धुरी, इस सभ्यता का प्रमुख स्थल था और अधिकांश आबादी इसी क्षेत्र में स्थित थी। मिट्टी की किस्म, वातावरण और रहन–सहन की पद्धति के परिप्रेक्ष्य में इस क्षेत्र की कुछ सामान्य विशेषताएं थीं। यहां की भूमि समतल थी और सिंचाई और जल आपूर्ति के लिए मानसून और हिमालयी नदियों पर निर्भर थी। यहां की विशिष्ट भौगोलिक विशेषताएं और क षि पशुपालन संबंधी अर्थव्यवस्था इस क्षेत्र के प्रमुख लक्षण थे।

हड़प्पा की शहरी आबादी के अतिरिक्त अनेक ऐसे स्थल थे, जहां पर पाषाण युग के शिकारी–संग्रहकर्ता या घुमन्तु चरवाहों वाले प्रागैतिहासिक काल के समुदायों के लोग भी साथ–साथ रहते थे। कुछ स्थल बंदरगाहों या व्यापारिक स्थलों के रुप में काम में लाए जाते थे। ध्यान देने योग्य बात है कि शहरीकरण को निर्धारित करने के प्रमुख कारक व्यापार, कर प्रणाली और लिपि इत्यादि होते हैं। शहरी सभ्यता कहलाए जाने के लिए हड़प्पा सभ्यता इन सभी मानकों पर खरी उतरती है।

पाठगत प्रश्न 3.1

1. सिंधु घाटी सभ्यता को हड़प्पा सभ्यता क्यों कहते हैं?

2. हड़प्पा सभ्यता के विभिन्न चरण कौन–कौन से थे?

3. हरियाणा और गुजरात के किन्हीं दो–दो प्रमुख हड़प्पाकालीन स्थलों के नाम लिखें?

4. मोहनजोदडो की खोज किसने की?

5. हड़प्पा किस नदी के किनारे पर स्थित है?

6. किसी नगरीय सभ्यता की प्रमुख विशेषताएँ क्या होती हैं?

3.2 नगर योजना

हड़प्पा सभ्यता की सबसे दिलचस्प विशिष्टता है, यहाँ की नगर योजना। इसमें अत्यधिक समरुपता देखने में आई है, यद्यपि कहीं–कहीं पर प्रादेशिक रुप से विविधताएं भी देखने में आती हैं। नगरों, गलियों, मकानों के ढांचों, ईंटों के आकार और नालियों इत्यादि की योजना में एकरुपता दिखाई देती है। लगभग सभी मुख्य स्थलों (हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, कालीबंगन और अन्य), को दो भागों में विभाजित किया गया है–पश्चिम की ओर एक ऊंचे चबूतरे पर बना किला और आबादी के पूर्वी भाग में बना निचला नगर। किले में बड़े–बड़े ढांचे बने हुए हैं जो शायद शासकीय या धार्मिक अनुष्ठानों के केन्द्रों के रुप में कार्य करते होंगे। रिहायशी भवन निचले नगर में बने हुए हैं। सड़कों का ढांचा

इस प्रकार बना था कि ये एक–दूसरे मार्ग को समकोण पर काटते हुए निकलते थे। इनसे शहर अनेक रिहायशी खंडों में बंट जाता है। मुख्य मार्ग को छोटी गलियों के साथ जोड़ा गया है। घरों के द्वार मुख्य मार्गों पर न होकर इन संकरी गलियों में खुलते थे। अधिकांश मकान भट्ठी में पकी ईंटों से बने थे। बड़े घरों में कई कमरे होते थे, जिसमें एक चौकोर आंगन भी होता था। इन घरों में अपने निजी कुएं, रसोई घर और स्नानागार के चबूतरे होते थे। घरों के आकार में अंतर से ये संकेत मिलता है कि धनी लोग बड़े घरों में रहते थे और एक कमरे के घरों या बैरकों में संभवतः समाज के निर्धन वर्ग के लोग रहते होंगे। हड़प्पा काल के लोगों की जल निकासी व्यवस्था बहुत व्यवस्थित और विकसित थी। हर घर में, नालियां थीं, जो गली की नाली से जाकर मिलती थीं। ये नालियां ईंटों से बने नरमोखों (मैनहोल्स) पर पत्थर की सिल्लियों से ढँकी होती थीं (जिन्हें सफाई के लिए हटाया जा सकता था) जिन्हें नियमित अंतराल पर गलियों के किनारे बनाया जाता था। इससे पता चलता है कि उन लोगों को सफाई विज्ञान की अच्छी जानकारी थी।

3.3 हड़प्पा के नगरों के कुछ मुख्य ढांचों के अवशेष

मोहनजोदड़ो का 'विशाल स्नानागार' एक बहुत ही प्रमुख स्थल है (चित्र 3.1)।इसके चारों ओर बरामदे बने हैं और उत्तरी और दक्षिणी, दोनों छोरों पर सीढ़ियां बनी हैं। स्नानागार के फर्श पर बिटूमन कोयले का पलस्तर किया गया था ताकि पानी का रिसाव न हो। साथ के एक कमरे से पानी की आपूर्ति होती थी और पानी की निकासी के लिए नाली थी।

स्नानागार के चारों ओर किनारे पर कुछ कमरे बने थे, जो शायद कपड़े बदलने के काम में आते होंगे। विद्वानों का मत है कि 'विशाल स्नानागार' धार्मिक क्रियाओं के लिए स्नान के लिए उपयोग में लाया जाता था। 'विशाल स्नानागार' के पश्चिम की ओर अन्न भंडारण के लिए एक धान्य कोठार स्थित थी। इसमें अन्न के भंडारण के लिए ईंटों से बने कई चौकोर खंड बने थे। हड़प्पा में भी एक कोठार मिला है। इसमें ईंटों से बने गोल चबूतरों



चित्र 3.1 मोहनजोदड़ो का विशाल स्नानागार

की पंक्तिः हैं, जो शायद अन्न की कुटाई के लिए उपयोग में लाए जाते होंगे। इसकी जानकारी यह से प्राप्त गेहूं और जौ के भूसों के छिलकों से मिली है।

लोथल में ईंटों से बना एक ढांचा मिला है, जिसे गोदीबाड़ा माना जाता है, जहां जहाजों के लंगर डाले जाते होंगे और ये माल के उतारने–चढ़ाने के काम में आता होगा (चित्र 3.2)। इससे ये संकेत मिलता है कि लोथल हड़प्पा के लोगों के लिए एक प्रमुख बंदरगाह और व्यापारिक केंद्र था।

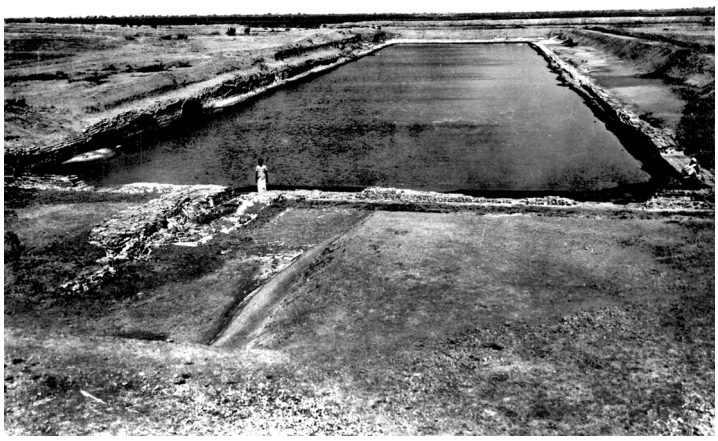

चित्र 3.2 लोथल का गोदी बाड़ा

पाठगत प्रश्न 3.2

1. हड़प्पा के नगरों में किले का निर्माण सामान्यतः किस दिशा में होता था?

2. घरों को बनाने के लिए किस प्रकार की ईंटों का उपयोग होता था?

3. 'विशाल स्नानागार' की खोज कहां पर हुई?

4. लोथल में पाए गए प्रमुख भवन के ढांचे का नाम बताएं?

3.4 आर्थिक क्रिया-कलाप

1. क षि

हड़प्पा सभ्यता की सम द्धि इसकी फली–फूली विकसित आर्थिक गतिविधियों पर आधारित थी, जैसे क षि, कला, शिल्प और व्यापार। सिंधु नदी की उपजाऊ कछार भूमि ने यहां की अत्यधिक क षि उपज में अपना भारी योगदान किया। इससे, हड़प्पा के लोगों को

आन्तरिक और बाह्य दोनों स्तरों पर और उद्योगों को विकसित करने में भी सहायता मिली। क षि के साथ–साथ पशु–पालन हड़प्पा की अर्थव्यवस्था का आधार था। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और लोथल जैसे स्थानों पर मिले कोठार, अन्न भंडारण के काम में लिए जाते थे। क षि के कामों में प्रयुक्त औजारों के संबंध में हमारे पास कोई स्पष्ट साक्ष्य नहीं हैं। फिर भी कालीबांगन के एक खेत में हल चलाने या जुताई के कुछ चिह्न देखने में आए हैं। इससे संकेत मिलता है कि हल से खेती होती थी।

हरियाणा के हिसार जिले में बनवाली से मिट्टी से बने हल के मिलने की सूचना मिली है। कुओं से पानी निकालकर छोटे पैमाने पर और नदियों के पानी का नहरों के जरिये रुख मोड़कर खेतों की सिंचाई की जाती थी। मुख्य खाद्य फसलों में गेहूं, जौ, तिल, सरसों, मटर और राई इत्यादि शामिल थी। लोथल और रंगपुर में मिट्टी के बर्तनों में चावल की भूसी के बचे हुए कणों से वहां चावल की बड़ी खेती के साक्ष्य भी मिले हैं। कपास यहां की एक अन्य प्रमुख फसल थी। मोहनजोदड़ो में बुने हुए कपड़े का एक टुकड़ा प्राप्त हुआ है। अनाजों के अतिरिक्त मछली और पशुओं का मांस भी हड़प्पा के लोगों के आहार का हिस्सा था।

(2) उद्योग और शिल्प

हड़प्पा के लोग लोहे के अतिरिक्त लगभग सभी प्रकार की धातुओं से परिचित थे। वे सोने और चांदी की वस्तुएँ बनाते थे। सोने की वस्तुओं में मोती, बाजूबंद, सुइयां और अन्य गहने शामिल थे। परन्तु सोने से ज्यादा चांदी का उपयोग अधिक प्रचलन में था। बहुत बड़ी संख्या में चांदी के गहने, तश्तरियां इत्यादि प्राप्त हुई हैं। तांबे के औजार और अस्त्र–शस्त्र भी बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं। सामान्य औजारों में कुल्हाड़ी, आरी, छैनी, चाकू, भाले की नोकें और तीरों के शीर्ष इत्यादि शामिल हैं। ध्यान देने की बात है कि हड़प्पा के लोगों द्वारा बनाए गए शस्त्र ज्यादातर सुरक्षात्मक प्रक ति के थे, क्योंकि

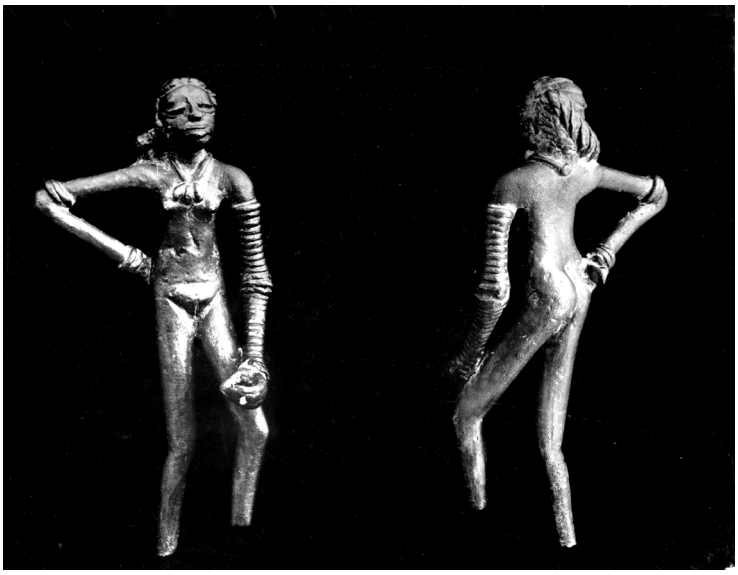

चित्र 3.3 मोहनजोदड़ो में मिली नर्तकी का मूर्ति चित्र

तलवार जैसे शस्त्रों के मिलने के कोई प्रमाण नहीं मिले हैं। पत्थर के औजारों का भी आम तौर पर उपयोग होता था। तांबा, राजस्थान में खेतड़ी नामक स्थान से आता था। सोना हिमालयी नदियों की तराई और दक्षिण भारत से आता था, और चांदी मैसोपोटामिया से। हमें कांसे के उपयोग के प्रमाण भी मिले हैं परन्तु बहुत ही सीमित स्तर पर। इस संबंध में सबसे प्रसिद्ध नमूना है मोहनजोदड़ो से मिली कांसे से बनी 'न तंगना का एक मूर्ति चित्र। ये नग्न नारी की एक मूर्ति है, जिसका एक हाथ नितम्ब पर है दूसरा न त्य की मुद्रा में हवा में झूल रहा है। इसने बहुत सारी चूड़ियाँ पहन रखी हैं।

मनके बनाने की कला भी प्रमुख शिल्पकारी थी। बहुमूल्य पत्थरों और रत्नों से मोती बनाए जाते थे जैसे गोमेद (अगेट) और कॉर्नेलियन। मोती बनाने के लिए स्टिएटाइट का उपयोग होता था। चन्हुदड़ों और लोथल में मोती बनाने वालों की दुकानों के साक्ष्य मिले हैं। सोने और चांदी के मनके भी प्राप्त हुए हैं। हाथी दांत की नक्काशी और मोतिंः, बाजूबंद और अन्य सजावटी सामनों पर मीनाकारी का काम भी चलन में था। अतः हम कह सकते हैं कि हड़प्पा के लोगों को अनेक कलाओं और शिल्पकारी के कामों में दक्षता प्राप्त थी।

हड़प्पा काल की कलाक तिंः में एक प्रसिद्ध कलात्मक मूर्ति है मोहनजोदड़ो में मिली दाढ़ी वाले पुरुष की पत्थर से बनी एक मूर्ति (चित्र 3.4)। इसकी आंखें अधमुंदी हैं जैसे कि ये ध्यान मगन मुद्रा में है।

इसके बाएँ कंधे पर कशीदाकारी किया गया दुशाला है। कुछ विद्वानों के मत में ये किसी प्रचारक का धड़ हो सकता है।

हड़प्पा के अनेक स्थलों से पुरुषों और महिलाओं की बहुत बड़ी संख्या में मिट्टी की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं (चित्र 3.5) । महिलाओं की मूर्तियों की संख्या पुरुषों की मूर्तियों से अधिक है और ऐसा माना जाता है कि ये मातहृदेवी की पूजा के संबंध में प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इसके अतिरिक्त पक्षियों, बंदरों, कुत्तों, भेड़ों, पालतू पशुओं, कूबड़ सहित और कूबड़–रहित बैलों के, अनेक प्रकार के मूर्तियों के नमूने प्राप्त हुए हैं। फिर भी, इस संबंध में सबसे उल्लेखनीय नमूने हैं–पकी मिट्टी की बनी गाड़ियां।

मिट्टी के बर्तन बनाना भी हड़प्पा काल के लोगों का एक प्रमुख उद्योग था। ये मुख्य रुप से चाक–पहिये पर बनाए जाते थे और इन पर लाल रंग करने के बाद काले रंग से सजावट की जाती थी। ये विभिन्न आकारों और शक्लों में पाए गए हैं। चित्रकारी के नमूनों में अलग–अलग मोटाई की आड़ी लकीरें, पत्तों के नमूने, पाम और पीपल के पेड़, पक्षी, मछलियां और पशु इत्यादि के चित्र भी मिट्टी के बर्तनों पर बनाए गए हैं। हड़प्पा के लोग विभिन्न प्रकार की मुहरें बनाते थे। विभिन्न स्थानों से लगभग दो हजार से भी ज्यादा मुहरें प्राप्त हुई हैं। ये मुहरें आम तौर पर चौकोर शक्ल में थीं और सेलखड़ी से बनी थीं। ध्यान देने की बात है कि इन मुहरों पर अनेक पशुओं के चित्र थे परन्तु किसी भी मुहर पर घोड़े का चित्र नहीं था। इससे हमारे विद्वान ये तर्क करते रहे हैं कि हड़प्पा के लोग घोड़े से परिचित नहीं थे। यद्यपि ऐसे विद्वान भी हैं जो इस मत से सहमत नहीं हैं। विभिन्न प्रकार के पशुओं के अतिरिक्त, हड़प्पा की मुहरों पर हड़प्पाकाल की लिपि के कुछ चिह्न भी बने हैं परन्तु अभी तक इस लिपि को पढ़ा नहीं जा सका है। सबसे प्रसिद्ध मुहर वह है, जिस पर सींगों वाले एक पुरुष–देव का चित्र बनाया





चित्र 3.4 दाढी वाले पुरूष की पत्थर की मूर्ति



चित्र 3.5 मानव और पशु की, मिट्टी की मूर्तियां

गया है। इसके तीन सिर हैं और ये पद्मासन की मुद्रा में बैठा है और ये चारों तरफ से हाथी, बाघ, गैंडा और एक भैंस जैसे जानवरों से घिरा है। अनेक विद्वान इसे भगवान पशुपति (पशुओं के देवता) का प्राचीन रुप मानते हैं परन्तु कुछ विद्वानों का इस विचार से मतभेद है।



चित्र 3.6 कालीबंगन में मिली पकी मिट्टी की गाड़ी





चित्र 3.7 पशुपति की मुहर

(3) व्यापार

हड़प्पा के लोगों की नगरीय अर्थव्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी, उनका आंतरिक (देश के अंदर) और बाह्य (विदेशों में) दोनों तरह का व्यापारिक तंत्र जाल (नेटवर्क)। नगर की आबादी अपने खाद्यों और अन्य जरुरी चीजों के लिए अपने आसपास के गावों पर निर्भर थी। इसलिए गांवों–शहरों (ग्रामीण–नगरों) के परस्पर संबंध विकसित हुए। इसी प्रकार शहरों के शिल्पकारों को अपनी चीजें बेचने के लिए बाजारों की जरुरत थी। इससे शहरों के बीच परस्पर संपर्क स्थापित हुए। व्यापारियों ने विदेशी भूभागों, विशेष रुप से मैसोपोटामिया के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित किए, जहां इन चीजों की अधिक मांग की। ध्यान देने की बात है कि शिल्पकारों को अपनी चीजें बनाने के लिए अनेक प्रकार की धातुओं और बहुमूल्य रत्नों की जरुरत पड़ती थी परन्तु स्थानीय रुप से उपलब्ध न होने के कारण इन चीजों को बाहर से मंगवाना पड़ता था। अपने उद्‌गम स्थल से दूर इस कच्चे माल की दूसरे स्थानों पर उपस्थिति से स्वाभाविक रुप में ये संकेत मिलता है कि ये वस्तुएं निश्चित तौर पर उन स्थानों पर वस्तुओं के विनियम की प्रक्रिया के माध्यम से ही वहां पहुंची होंगी। इस प्रकार राजस्थान में तांबे की बहुतायत होने के कारण हड़प्पा के लोग यहां खेतड़ी स्थित तांबे की खानों से मुख्यतः तांबा प्राप्त करते थे। कर्नाटक में कोलार स्थित सोने की खानों और हिमालयी नदियों के तराई के क्षेत्रों से संभवतः सोने की पूर्ति होती थी। चांदी का स्रोत शायद राजस्थान की ज्वार स्थित खानें रही होंगी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि चांदी संभवतः हड़प्पा की वस्तुओं के विनियम के बदले में

मैसोपोटामिया से भी प्राप्त की जाती थी। मोती बनाने के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले बहुमूल्य रत्न नील वैदूर्य मणि का स्रोत अफगानिस्तान के उत्तर–पूर्व मे बदकशान खानों में स्थित था। फीरोज़ा और हरिताश्म शायद मध्य एशिया से लाए जाते थे। गोमेद, स्फटिक और कार्नेलियन की आपूर्ति पश्चिमी भारत से होती थी। सीप–शंख इत्यादि गुजरात और इसके आसपास के तटीय क्षेत्रों से आते होंगे। अच्छे किस्म की इमारती लकड़ी और अन्य वनोत्पाद शायद जम्मू जैसे उत्तरी क्षेत्रों से आते होंगे। हड़प्पा के लोग मैसोपोटामिया के साथ विदेश–व्यापार भी करते थे। ये व्यापार मुख्य रुप से फारस की खाड़ी में स्थित ओमान और बहरीन के जरिये होता था। हड़पा के क्षेत्रों में मिले मोतिं:, मुहरों, पांसे की गोटियों जैसी कलाक तिं: इत्यादि की मौजूदगी से इसकी पुष्टि होती है। यद्यपि उन क्षेत्रों की कलाक तिं: हड़प्पा के स्थलों में बहुत ही कम स्थानों पर मिली हैं, परन्तु पश्चिमी एशिया या पारसी मूल की एक मुहर लोथल में प्राप्त हुई है, जिससे इस संबंध की पुष्टि होती है। सूसा, उर और मैसोपोटामिया के नगरों से लगभग दो दर्जन हड़प्पा की मुहरें मिली हैं। मुहरों के अतिरिक्त हड़पा मूल की जो अन्य कलाक तिं: वहां मिली हैं, उनमें मिट्टी के बर्तन, उत्कीर्ण कार्य किए गए कार्नेलियन के मोती और पांसे शामिल हैं।

मैसोपोटामिया से मिले शिलालेखों से हमें हड़प्पा के साथ मैसोपोटामिया के संपर्क के संबंध में हमें बहुमूल्य सूचना मिलती है। इन शिलालेखों से दिलमुन, मगन और मेलुलूह के साथ व्यापार के संकेत मिलते हैं। विद्वानों ने मेलुलूह के हड़प्पा के क्षेत्र के साथ, मगन के मकरान तट के साथ और दिलमुन के बहरीन के साथ संपर्कों की पहचान की है। इनसे संकेत मिलते हैं कि मैसोपोटामिया मेलुलूह से तांबा, कार्जेलियन, हाथी दांत, सीपियां, वैदूर्य मणि, मोती और आबनूस आयात करता था। मैसोपोटामिया से हड़प्पा को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में शामिल थे तैयार कपड़े, ऊन, इत्र, चमड़े की वस्तुएं और चांदी। चांदी के अतिरिक्त ये सभी वस्तुएं नाशवान हैं। यें मुख्य कारण रहा होगा, जिसकी वजह से हड़प्पा के स्थलों पर हमें इन वस्तुओं के अवशेष नहीं मिलते।

पाठागत प्रश्न 3.3

1. खेती–बाड़ी के अतिरिक्त हड़प्पा के लोगों में कौन–सी आर्थिक गतिविधियों का प्रचलन था?

   _____

2. हड़प्पा के लोगों द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली दो मुख्य खाद्य फसलों के नाम लिखें।

   _____

3. हड़प्पा काल के उन दो स्थानों के नाम लिखें, जहां से हमें उस दौरान खाद्य फसल के रुप में चावल के होने के प्रमाण मिले हैं?

   _____



4. कांसे की नर्तकी की मूर्ति किस स्थान से मिली थी?

_____

5. हड़प्पा काल के दौरान प्रचलित किन्हीं दो शिल्पों के नाम लिखें?

_____

6. हड़प्पा के लोगों के लिए तांबा प्राप्त करने का प्रमुख स्रोत कौन–सा स्थान था?

_____

3.5 सामाजिक विशिष्टताएं

ऐसा लगता है कि हड़प्पा के लोगों का समाज मात सत्तात्मक प्रक ति का था। इस मत का आधार है मात देवी की लोकप्रियता जैसा कि पंजाब और सिंध प्रदेशों में बड़ी संख्या में मिली पक्की मिट्टी की बनी नारी मूर्तियां से भी संकेत मिलता है। क्योंकि हड़प्पा की लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है, इसलिए हमें इस संबंध में मिली सीमित सूचनाओं पर ही संतुष्ट रहना होगा।

हड़प्पा के समाज में विविध व्यवसायों से जुड़े लोग शामिल थे। इनमें पुजारी, योद्धा, किसान, व्यापारी और कारीगर (राजगीर, बुनकर, सुनार, कुम्हार इत्यादि) शामिल थे। हड़प्पा और लोथल जैसे स्थानों पर मिले मकानों के ढांचों से पता चलता है कि विभिन्न वर्गों के लोगों द्वारा आवास के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के भवनों का उपयोग किया जाता था। हड़प्पा के कोठार के पास बने कारीगरों के घरों से इस वर्ग के कारीगरों की उपस्थिति के संबंध में पुष्टि होती है। इसी प्रकार, लोथल में तांबे का काम करने वाले कारीगरों और मोती बनाने वाले कामगारों की कार्यशालाओं और उनके लिए आवासीय घरों के मिलने के भी प्रमाण मिले हैं। वास्तव में, हम ये कह सकते हैं कि जो लोग बड़े घरों में रहते थे, वे धनी वर्ग से थे और जो कारीगरों के क्वार्टरों जैसी कोठरियों (बैरकों) में रहते थे, वे मजदूर वर्ग से संबंधित थे।

उनकी वेशभूषा के ढंग के संबंध में हमारी सीमित जानकारी उस काल के दौरान मिली पक्की मिट्टी और पत्थर की बनी महिलाओं की मूर्तियों पर आधारित है। पुरुषों को अधिकतर जिस पहनावे में दर्शाया गया है, उसमें नीचे के आधे भाग में चारों ओर एक धोती–सी बंधी है, जिसका एक सिरा बाएं कंधे और दाएं बाजू के नीचे हैं। एक अन्य पोशाक है चोगे (ढीला कपड़ा) की तरह का परिधान, जिससे शरीर के निचले भाग को ढँका गया है। वे लोग सूती और ऊनी कपड़े उपयोग में लाते थे। मोहनजोदड़ो में बुनाई किया गया एक कपड़ा मिला है। अनेक स्थानों पर मिली तकलियों और सुइयों से ये साक्ष्य मिलता है कि उस समय कताई और बुनाई का प्रचलन था।

हड़प्पा के लोगों को सजने–संवरने का शौक था। विभिन्न स्थलों पर मिली पुरुषों और महिलाओं की मूर्तियों से बाल संवारने के प्रमाण मिलते हैं। पुरुष और महिलाएं अपने बाल अलग–अलग तरीके से संवारते थे। लोग आभूषण पहनने के भी शौकीन थे। इनमें मुख्य तौर पर स्त्री और पुरुष दोनों द्वारा उपयोग किए जाने वाले नेकलेस, बाजूबंद, कानों के

बूंदे, मोती–मनकें, चूड़ियां इत्यादि शामिल थीं। ऐसा लगता है कि धनी लोग सोने, चांदी और बहुमूल्य रत्नों से बने गहने पहनते थे, जबकि निर्धन लोगों को पकी मिट्टी के गहनों से ही संतुष्ट होना पड़ता था।

पाठगत प्रश्न 3.4

1. हड़प्पा के समाज को _____ समाज समझा जाता था?
2. कारीगरों के मकान किस स्थान पर पाए गए थे?

   _____

3. हड़प्पा के लोग किस सामग्री से बने कपड़े पहनते थे?

   _____

3.6 धार्मिक विश्वास और रीतियां

हड़प्पा के लोगों के धार्मिक विश्वासों और रीति–रिवाजों के संबंध में हमारी जानकारी, अधिकतर हमें उपलब्ध म णमूर्तियों पर आधारित है। हड़प्पा के लोगों के धर्म को आम तौर पर जीवोपासक यानी पेड़ों व पत्थरों के उपासक के रुप में जाना गया है (चित्र 3.8)। हड़प्पा के विभिन्न स्थलों पर मिली पकी मिट्टी की असंख्य म णमूर्तियों को मात ृदेवी की उपासना के साथ जोड़कर देखा जाता है (चित्र 3.9)। इनमें से अधिकांश मूर्तियों में महिलाओं ने चौड़ी–सी करधनी, बाघ की खाल का कपड़ा और गले में हार पहन रखा है। वे पंखे के आकार का शिरोवस्त्र पहने हुए हैं। कुछ मूर्तियों में महिला को गोद में एक शिशु लिए दिखाया गया है तो एक मूर्ति में एक महिला के गर्भ से एक पौधा उगता हुआ दर्शाया गया है। दूसरी मूर्ति शायद भू–देवी की प्रतीक है। बहुत से विद्वान मानते हैं कि हड़प्पा वासी लिंग (पुरुष यौनांग) और योनि (महिला यौनांग) के उपासक थे, परन्तु कुछ इस मत से असहमत हैं।

हड़प्पावासियों का पुरुष देवता में आस्था का साक्ष्य मिलता है। एक मुहर पर बनी एक आक ति से, जिसमें एक पुरुष के सिर पर भैंसे के सींग वाला मुकुट है, जो यौगिक मुद्रा में बैठा है और इसके आसपास कई पशु हैं। अनेक विद्वान इसे भगवान पशुपति (पशुओं के देवता) या 'आदि शिव' के रुप में देखते हैं। यद्यपि कुछ विद्वानों का इससे मतभेद है। एक अन्य मुहर में एक सींगों वाले देवता की आक ति है, जिसके बाल हवा में उड़ते हुए हैं और वह नग्न है और पीपल के पेड़ की शाखाओं के बीच खड़ा है, एक उपासक घुटनों के बल उसके समक्ष बैठा है। इससे पेड़ों की उपासना का पता चलता है। हड़प्पावासियों में पशुओं की उपासना के प्रचलन का भी प्रमाण मिलता है।

ई.पू. के मध्य देखने में आया। आबादी के क्षेत्र भी सिकुड़ने लगे थे। उदाहरणत:, उत्तर काल की अवधि के दौरान हड़प्पा, जो मूल रुप से 85 हैक्टेयर के क्षेत्र में फैला था। इस काल में सिर्फ तीन हैक्टेयर की आबादी में सिकुड़ कर रह गया था। ऐसा लगता है कि यहां की आबादी किन्हीं दूसरे क्षेत्रों में स्थानांतरित हो गई थी। इसका संकेत मिलता है



कालीबंगन और लोथल जैसे कुछ स्थानों से अग्नि की उपासना के भी कुछ साक्ष्य मिले हैं। कालीबंगन में ईंटों से बने अनेक चबूतरों की पंक्तियों और उन पर बने गड्ढ़ों में राख और पशुओं की हड्डियां भी मिली हैं। अनेक विद्वान इन्हें हवन कुंड मानते हैं। इससे यह भी प्रदर्शित होता है कि विभिन्न क्षेत्रों के हड़प्पावासियों में भिन्न–भिन्न धार्मिक रीति–रिवाज प्रचलित थे, क्योंकि हड़प्पा



चित्र 3.8 मोहनजोदड़ों से मिला प्रतीकात्मक पीपल–व क्ष



चित्र 3.9 मोहनजोदड़ों की मात देवी

या मोहनजोदड़ो में किसी भी हवन कुंड के होने के प्रमाण नहीं मिले हैं। दफन के रीति–रिवाज और इनसे संबंधित धार्मिक कर्मकांड, किसी भी सभ्यता के धर्म का बहुत ही महत्त्वपूर्ण पहलू होते हैं। तथापि इस संदर्भ में हड़प्पा–कालीन स्थलों पर मिले मिश्र पिरामिडों जैसी इमारतों या मैसोपोटामिया स्थित दर में बनी शाही कब्रगाहों की तरह की कोई भी इमारत नहीं मिली है।

शवों को प्रायः उत्तर–दक्षिण दिशा में लिटाया जाता था, जिसमें सिर उत्तर की ओर और पांव दक्षिण की ओर होते थे। म तकों को, अलग–अलग संख्या में, उनके साथ मिट्टी के बर्तन रखकर दफनाया जाता था। कुछ कब्रों में शवों के साथ चूड़ियां, मोती, तांबे के दर्पण



चित्र 3.10 मोहनजोदड़ों में मिली कूबड़ वाले बैल की मुहर

इत्यादि जैसी वस्तुएं रखकर दफनाया जाता था। इससे यह भी संकेत मिलता है कि हड़प्पावासी पुनर्जन्म में विश्वास रखते थे। लोथल में तीन ऐसी कब्रें मिली हैं, जिनमें महिला और पुरुष को इकट्ठे दफनाया गया है। कालीबंगन में प्रतीकात्मक रूप से दफनाने का एक साक्ष्य मिला है। यानी एक कब्र मिली है, जिसमें बर्तन रखे हैं, परन्तु कोई हड्डियां या कंकाल नहीं है। रीति–रिवाजों में पाई गई इन विविधताओं से पता चलता है कि हड़प्पा सभ्यता में संभवतः भिन्न–भिन्न प्रकार के धार्मिक विश्वास प्रचलन में थे।

पाठगत प्रश्न 3.5

1. प्रसिद्ध 'पशुपति' मुद्रा किस स्थान से मिली है?

2. हड़प्पाकालीन मुद्राओं पर प्रायः कौन–से व क्ष की आक ति पाई गई है?

3. क्या अग्नि की उपासना का कोई साक्ष्य मिला है? यदि हाँ, तो यह कहाँ पर मिला है?

4. संयुक्त कब्रें किस स्थान पर मिली हैं?

3.7 लिपि

हड़प्पावासी शिक्षित थे। हड़प्पा की मुद्राओं पर अनेक प्रकार के चिह्न या आक तियां बनी हैं। हाल ही में किए गए अध्ययनों से यह संकेत मिले हैं कि हड़प्पा की लिपि में लगभग 400 चिह्न हैं और इसे दाईं से बाईं ओर को लिखा जाता है। परन्तु अभी तक इस लिपि को पढ़ा नहीं जा सका है। ऐसा समझा जाता है कि ये अपने भावों को सीधे व्यक्त करने के लिए किसी भावचित्र यानी चित्राक ति, चिह्न या अक्षर का प्रयोग करते थे। हमें उनकी भाषा की कोई जानकारी नहीं है, परन्तु कुछ विद्वानों को विश्वास है कि वे 'ब्राहुई' भाषा बोलते थे, जिस बोली को पाकिस्तान के बलूची लोग आज भी बोलते हैं। तथापि अभी इस बारे में साफ़ तौर से कुछ नहीं कहा जा सकता।

3.8 हड़प्पा सभ्यता का पतन

हड़प्पा की सभ्यता 1900 ई.पू. तक फलती–फूलती रही। इस सभ्यता के बाद की अवधि को नगरी सभ्यता के बाद के चरण (उत्तरवर्ती हड़प्पावासी काल) के रूप में जाना जाता है। इस काल की विशेषता को इस प्रकार रेखांकित किया गया कि इसमें नगर–योजन, लेखन कला, माप–तोलों में एकरूपता, मिट्टी के बर्तनों में समानता इत्यादि जैसे मुख्य लक्षण धीरे–धीरे लुप्त होने लगे थे। यह अधोपतन 1900 ई.पू. –1400



ई.पू. के मध्य देखने में आया। आबादी क्षेत्र भी सिकुड़ने लगे थे। उदाहरणतः, उत्तर काल की अवधि के दौरान हड़प्पा, जो मूल रूप से **85** हैक्टेयर के क्षेत्र में फैला था। इस काल में सिर्फ तीन हैक्टेयर की आबादी में सिकुड़ कर रह गया था। ऐसा लगता है कि यहां की आबादी किन्हीं दूसरे क्षेत्रों में स्थानांतरित हो गई थी। इसका संकेत मिलता है उत्तर हड़प्पा काल में गुजरात, पूर्वी पंजाब, हरियाणा और अपर–दोआब क्षेत्रों के बाहरी क्षेत्रों में पाई गई नई बस्तिें की अनेक स्थापनाएं।

आपको हैरानी होगी कि हड़प्पा सभ्यता का अंत कैसे हुआ। इस संबंध में विद्वानों के अनेक मत हैं।

1. कुछ विद्वानों का सुझाव है कि बाढ़ और भूकंप जैसी प्राक तिक आपदाओं ने इस सभ्यता को खत्म किया होगा। ऐसा विश्वास किया जाता है कि भूकंप के परिणामस्वरुप सिंधु नदी के निचले मैदानी, बाढ़ वाले क्षेत्रों का स्तर ऊंचा उठ गया होगा। इससे समुद्र की तरफ जाने को नदी के तल मार्ग में रुकावट आ गई होगी, जिससे मोहनजोदड़ो नगर डूब गया होगा। परन्तु इससे केवल मोहनजोदड़ो के खत्म होने का उल्लेख मिलता है न कि पूरी सभ्यता का।

2. कुछ विद्वानों के मतानुसार घग्गर–हाकरा नदी के मार्ग में परिवर्तन आने के कारण शुष्क बंजर धरती बढ़ती गई होगी, जिसकी वजह से पतन हुआ। इस सिद्धांत के अनुसार 2000 ई.पू. के आसपास बंजरता की परिस्थितिः बढ़ती गईं, इससे क षि उत्पादन पर प्रभाव पड़ा होगा, जिससे इसका लोप हुआ।

3. पतन के कारणों में, आर्यों के आक्रमण के सिद्धांत का भी उल्लेख किया गया है, लेकिन आंकड़ों के आलोचनात्मक व गंभीर विश्लेषण के आधार पर अब इस मत को पूरी तरह नकार दिया गया है।

इस प्रकार कोई भी एक अकेला ऐसा कारण नहीं है, जिससे संपूर्ण सभ्यता के विनाश का पता लग सके। ज्यादा से ज्यादा इनसे सिर्फ कुछ शिष्ट स्थलों या क्षेत्रों के नष्ट होने के संबंध में ही पता चल सकता है। अतः प्रत्येक सिद्धांत की आलोचना हुई। फिर भी, पुरातात्विक साक्ष्यों से संकेत मिलता है कि हड़प्पा सभ्यता का पतन अचानक नहीं हुआ, बल्कि धीरे–धीरे हुआ और अंत में ये सभ्यता अन्य सभ्यताओं में घुलती–मिलती चली गई।

पाठगत प्रश्न 3.6

1. हड़प्पा की लिपि में लगभग कितनी संख्या में चिह्न हैं?

   _____

2. कौन–सी प्राक तिक आपदाओं को हड़प्पा सभ्यता के पतन के लिए जिम्मेदार माना जाता है?

   _____



आपकी टिप्पणियाँ

3. हड़प्पा की लिपि कैसे लिखी जाती थी? (दाएं से बाएं या बाएं से दाएं)

3.9 भारत के गैर-हड़प्पाई ताम्र-पाषाण समुदाय

प्रमुख ताम्रपाषाण (चाल्कोलिथिक) सभ्यताएं और उनके महत्त्वपूर्ण मुख्य स्थल और गैर–हड़प्पा ताम्रपाषाण सभ्यताओं का विस्तार पश्चिमी भारत और दक्कन में मिलता है। इनमें शामिल हैं राजस्थान के दक्षिण–पूर्व में स्थित बानस सभ्यता (2600 ई.पू.–1900 ई.पू.), उदयपुर के निकट अहर और गिलुंड जैसे मुख्य स्थलों सहित, मालवा सभ्यता (1700 ई.पू.–1400 ई.पू.) पश्चिमी मध्य प्रदेश में नवदातोली जैसे मुख्य स्थल सहित जोर्वे सभ्यता (1400 ई.पू.–700 ई.पू.), महाराष्ट्र में पुणे के पास स्थित मुख्य स्थलों इनामगांव और चन्दौली सहित पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल में भी ताम्रपाषाण सभ्यताओं (चाल्कोलिथिक कल्चर्स) के प्रमाण मिले हैं। ध्यान देने योग्य बात है कि यद्यपि गैर हड़प्पा (चाल्कोलिथिक सभ्यताएं) विभिन्न प्रदेशों में फलती–फूलती रहीं परन्तु उनमें कुछ पहलुओं में बुनियादी समानताएं थीं, जैसे उनके मिट टी के घर, खेती और शिकार संबंधी गतिविधियां, चाक–पहिये पर बनाए गए मिट्टी के बर्तन इत्यादि। इन ताम्रपाषाण सभ्यताओं के मिट्टी के बर्तनों में शामिल थे गेरुए (ओकरे) रंग के बर्तन (ओसीपी), काले और लाल रंग के बर्तन (बी आर डब्ल्यू) और इसके साथ ही विभिन्न प्रकार की कटोरियां, बेसिन (चिल्मचियां), टोंटीदार जार जिनकी गर्दन संकरी थी और स्टैंड पर रखी तश्तरियां इत्यादि भी मिली हैं।

3.10 औजार, आवश्यक उपकरण और अन्य वस्तुएं

ताम्रपाषाण सभ्यताओं की विशेषता है उनके द्वारा उपयोग किए जाने वाले तांबे और पत्थर से बने औजार। पत्थर के औजार बनाने के लिए वे लोग, मकीक (कैलसेडनी) चकमक पत्थर (चर्ट) इत्यादि का उपयोग करते थे। उपयोग किए जाने वाले मुख्य औजार थे गंडासा (फरसा), चाकू, हंसिया, त्रिकोण और सबंल इत्यादि। खेती में पत्ती की तरह के खुरपी (ब्लेड) जैसे औजार प्रयुक्त होते थे। तांबे से बनी चीजों में चपटी कुल्हाड़ियां, तीरों की नोकें, भालों, नेज़ों के सिरे, छेनियां, मछली के कांटे, तलवारें, फरसे, चूड़ियां, अंगूठियां, मनके इत्यादि उपयोग में लाए जाते थे। कार्नेलियन, सूर्यकांत मणि (जैस्पर) स्फटिक, गोमेद, सीपियों इत्यादि से बने मनके खुदाइयों के दौरान बहुत से स्थलों पर मिलते हैं। इस संदर्भ में दइिमाबाद संग्रहालय से प्राप्त हुई वस्तुएं बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। इन खोजों में हैं कांसे से बना गैंडा, हाथी, दो पहियों वाली गाड़ी जिस पर एक सवार भी है और एक भैंस। ये बहुत बड़े आकार में हैं और इनका वजन साठ किलोग्राम से भी अधिक है। कायथा (चम्बल घाटी) से भी, पैनी तराशी गई धारों वाली तांबे से बनी वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। इनसे उस कालावधि के शिल्पकारों की कुशलता के संबंध में पता चलता है।

3.11 जीवन यापन से संबंधित अर्थव्यवस्था

इन बस्तिेः के लोग क षि और पशुपालन पर जीवन यापन करते थे। तथापि उन लोगों में शिकार और मछली पकड़ने का भी प्रचलन था। इस अवधि की मुख्य फसलों में चावल, जौ, दालें, गेहूं, ज्वार, सफेद चने, मटर, हरे चने इत्यादि शामिल थे। ध्यान देने की बात



आपकी टिप्पणियाँ

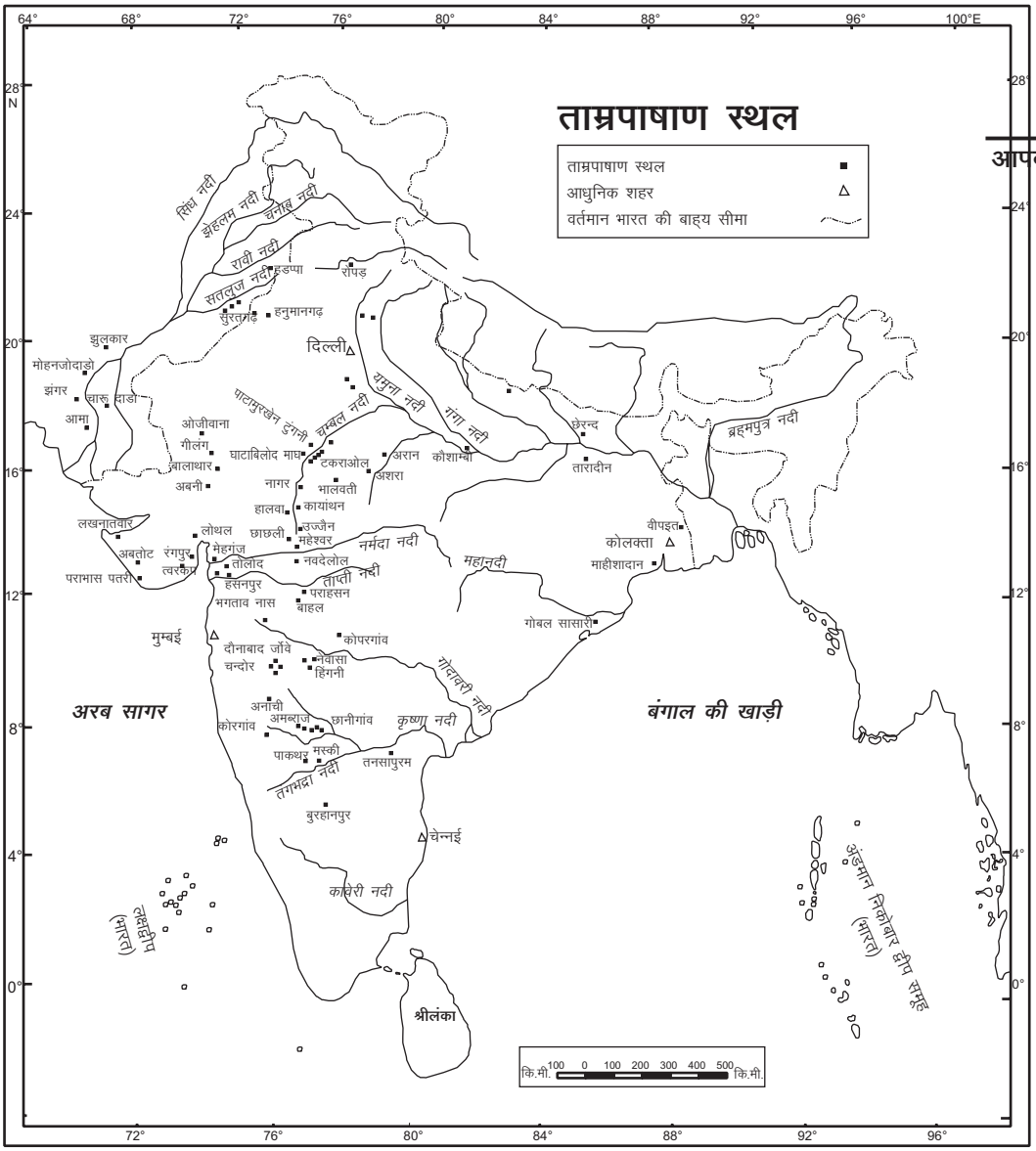

मानचित्र 3.2 ताम्रपाषाण स्थल

है कि इस सभ्यता के प्रमुख भागों का उन्हीं क्षेत्रों में समूह रुप से विकास हुआ, जहां मुख्यतः काली मिट्टी बहुतायत में थी जो कपास उगाने के लिए उपयोगी हैं। इन स्थलों से मिले पशुओं के कंकालों से संकेत मिलते हैं कि इन सभ्यताओं में घरेलू पशुपालन और जंगली पशु भी मौजूद थे। घरों में पाले जाने वाले पशुओं में गाय, भैंस, भेड़ें, बकरी, कुत्ते, सूअर और घोड़े इत्यादि शामिल थे। वन्य प्राणियों में काले हिरण, ऐटिलोप, नीलगाय, बारहसिंगा, साम्भर–चीता, जंगली भैंसा और एक सींग वाली भैंस शामिल थे। मछली, जल में रहने वाली बतखें, मेंढक और चूहों की हड्डियां भी मिली हैं।

3.12 घर और निवास

ताम्रपाषाण सभ्यताओं की विशेषता है, उनकी ग्रामीण बस्तिः। लोग आयताकार और गोलाकार घरों में रहते थे जिनकी दीवारें कच्ची मिट्टी की और छतें घास–फूस की होती थीं। अधिकतर घर एक ही कमरे के घर थे, परन्तु कुछ घरों में दो या तीन कमरे थे। घरों के फर्श आग से पकी ईंटों या मिट्टी तथा नदियों की बजरी से मिश्रित करके बनाए जाते थे। जोर्वे सभ्यता (महाराष्ट्र) से संबद्ध 200 से भी अधिक स्थलों की खोज की गई है। इनामगांव की बस्तिः (जोर्वे सभ्यता) से संकेत मिलते हैं कि इन बस्तिः को बसाने में योजनाबद्ध रुपरेखा अपनाई गई थी।

पाठगत प्रश्न 3.7

1. मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र, प्रत्येक में से एक–एक ताम्रपाषाण स्थल का नाम लिखें?

   _____

2. ताम्रपाषाण युग में औजारों के निर्माण के लिए किस सामग्री का उपयोग होता था?

   _____

3. ताम्रपाषाण युग के लोग मकान बनाने के लिए किस सामग्री का उपयोग करते थे?

   _____

4. ताम्रपाषाण सभ्यताएं _____ प्रक ति की थीं? (ग्रामीण/नगरी)

   _____

5. किन्हीं दो गैर–हड़प्पा कालीन ताम्रपाषाण सभ्यताओं के नाम लिखें?

   _____

आपने क्या सीखा

हड़प्पा सभ्यता भारतीय उपमहाद्वीप की पहली नगरीय सभ्यता थी। पुरातात्विक अन्वेषणों से पता चलता है कि इस सभ्यता का क्रमिक विकास प्रारंभिक ग्रामीण समुदायों से हुआ। हड़प्पा मोहनजोदड़ो, चन्हुदड़ो, कालीबंगन, लोथल, बनावली, राखीगढ़ी और धौलावीरा हड़प्पा सभ्यता के कुछ प्रमुख स्थल थे। कुछ हड़प्पाकालीन केंद्रों पर भली–भांति विनियोजित नगर देखने में आए हैं। इन नगरों को इनकी विशेषताओं के अनुसार मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया गया था। एक ऊंचे चबूतरे पर बना किला और दूसरा निचला नगर। घर बनाने के लिए भट्ठी में पकाई गई ईंटों का उपयोग होता था। नगरों में बहुत अच्छी जल–निकासी व्यवस्था थी। हड़प्पा के नगरों में पाए गए कुछ प्रमुख भवन



थे–मोहनजोदड़ो का विशाल स्नानागार, हड़प्पा का धान्य कोठार और लोथल का गोदीबाड़ा। खेतीबाड़ी के साथ–साथ हड़प्पा के लोग पशु–चराने (चरवाहे) का काम भी करते थे। यद्यपि ऐसे कुशल कारीगर भी थे, जो तांबे और अन्य धातुओं का काम करते थे, परन्तु सामान्यतः पत्थर के औजार ही उपयोग में लाए जाते थे। वे मोती–मनके, पकी मिट्टी की म ण मूर्तियां, मिट्टी के बर्तन और विविध प्रकार की मुद्राएं बनाते थे। हड़प्पावासी आंतरिक और बाह्य दोनों स्तर पर व्यापार करते थे। फारस की खाड़ी में ओमान और बहरीन के जरिये उनके मैसोपेटामिया के साथ व्यापारिक संबंध थे। व्यापारी, विभिन्न उपभोक्ता वस्तुओं के आयात और निर्यात का व्यापार करते थे। हड़प्पा की सभ्यता को मात सत्तात्मक प्रक ति का माना जाता है। वहां के लोग विभिन्न व्यवसाय करते थे, जैसे पुजारी, चिकित्सक, योद्धा, सूती और ऊनी कपड़े पहनते थे, परन्तु वे स्वयं को विविध प्रकार के आभूषणों से सजाने–संवारने के शौकीन थे। हड़प्पावासी मात देवी, पशुपति (आदि शिव), व क्षों और पशुओं की उपासना करते थे। शवों को दफनाने के संबंध में भी उनमें अनेक प्रकार को रीति–रिवाज और धार्मिक कार्यकलाप प्रचलित थे। हड़प्पावासी शिक्षित थे और उनकी लिपि में भावचित्र शामिल हैं। लेकिन उनकी लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। एक बार इस लिपि को पढ़ना संभव हुआ तो हम इस हड़प्पा सभ्यता के संबंध में और अधिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। विद्वानों के मतानुसार प्राक तिक आपदाएं, बढ़ती शुष्कता (बंजरता) और आर्यों के आक्रमण संभवतः इस सभ्यता के पतन के विविध कारण हो सकते हैं। पुरातात्विक साक्ष्यों से संकेत मिलते हैं कि इस सभ्यता का पतन अचानक नहीं हुआ, बल्कि धीरे–धीरे लोप हुआ।

पुरातात्विक स्रोतों से लक्षित होता है कि गैर–हड़प्पा ताम्रपाषाण सभ्यताओं की पहचान विविध प्रादेशिक भिन्नताओं से होती थी। पत्थर और तांबे (चाल्कोलिथिक) के औजारों का उपयोग इन सभ्यताओं की एक सुस्पष्ट भिन्नता थी। इनके स्थलों के विभाजन की पद्धति से ही इनकी बस्तिेः के श्रेणी वर्गीकरण का पता चलता है। कुछ बस्तिः बहुत विशाल आकार की थीं, जिनमें बहुत भव्य भवन थे, जिससे ये संकेत मिलता है कि ये प्रमुख केंद्र थे। हड़प्पा सभ्यता के दायरे से बाहर की ताम्रपाषाण सभ्यताओं में, हड़प्पा सभ्यता की नगरीय और सम द्धि जैसी विशिष्टताएं नहीं थीं। ये गैर–शहरीक त सभ्यताएं थीं, जिनमें इनकी कुछ निजी विशेषताएं थीं, जैसे–घर बनाने की पद्धति, मिट्टी के बर्तनों की किस्में, औजारों की किस्में, और धार्मिक रीति–रिवाजों का प्रचलन इत्यादि। ये सभ्यताएं अभी भी क षि और शिकार–संग्रहकर्ताओं के कामों के साथ–साथ पशुओं को चराने जैसी अर्थव्यवस्था पर ही जीवन यापन करती थीं।

पाठान्त प्रश्न

1. हड़प्पाकालीन नगर योजना की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करें?
2. हड़प्पा काल में प्रचलित उद्योगों और शिल्पों का संक्षिप्त ब्यौरा दें?
3. हड़प्पावासियों के मैसोपोटामिया के साथ व्यापार के संबंध में एक संक्षिप्त विवरण दें?

4. हड़प्पावासियों के धार्मिक जीवन के संबंध में कुछ प्रमुख विशिष्टताओं का उल्लेख करें?
5. हड़प्पा सभ्यता के पतन के संबंध में ब्यौरा दें?
6. गैर–हड़प्पा ताम्रपाषाणिक लोगों के जीवन के संबंध में संक्षिप्त विवरण दें?

पाठगत प्रश्नों के उतर

3.1

1. सिंधु घाटी सभ्यता को हड़प्पा सभ्यता इसलिए कहते हैं, क्योंकि हड़प्पा वह पहला स्थान था, जहाँ पर इस सभ्यता के अवशेष सबसे पहले प्राप्त हुए थे?
2. 1. प्रारंभिक हड़प्पा काल (3500 ई.पू.–2600 ई.पू.)
   2. परिपक्व हड़प्पा काल (2600 ई.पू.–1900 ई.पू.)
   3. उत्तर हड़प्पा काल (1900 ई.पू.–1400 ई.पू.)
3. हरियाणा में बनवाली और राखीगढ़ी और गुजरात में लोथल और धौलावीरा
4. श्री आर. डी. बनर्जी
5. रावी
6. किसी नागरीय सभ्यता की प्रमुख विशिष्टताएं हैं। भली–भांति नियोजित शहर, विशिष्ट कलाएं और शिल्प, व्यापार, कर–नीति (टैक्सेशन) और लिपि इत्यादि।

3.2

1. पश्चिमी
2. भट्ठी में पकी ईंटें
3. मोहनजोदड़ो
4. गोदीबाड़ा

3.3

1. पशु चराना (पशु–पालन)
2. गेहूं, जौ, तिल, सरसों, मटर, जेजुबी इत्यादि
3. लोथल और रंगपुर
4. मोहनजोदड़ो
5. मनके–मोती बनाना, मिट्टी के बर्तन बनाना
6. राजस्थान में खेतड़ी की खदानें



3.4

1. मात सत्तामक
2. हड़प्पा
3. सूत (कपास), ऊन

3.5

1. मोहनजोदड़ो
2. पीपल
3. हां, कालीबंगन और लोथल
4. लोथल

3.6

1. 400
2. बाढ़, भूकंप
3. दाएं से बाएं

3.7

1. मध्यप्रदेश में नवदातोली और महाराष्ट्र में इनामगांव
2. पत्थर, तांबा
3. मिट्टी
4. ग्रामीण
5. मध्यप्रदेश में क्याथा सभ्यता और महाराष्ट्र में जोर्वे सभ्यता

पाठान्त प्रश्नों के लिए संकेत

1. अनुच्छेद 3.2 देखें
2. अनुच्छेद 3.4 (2) देखें
3. अनुच्छेद 3.8 देखें
4. अनुच्छेद 3.8 देखें
5. अनुच्छेद 3.10 देखें
6. अनुच्छेद 3.13 और 3.14 देखें

शब्दावली

जीवोपासक - पौधों, पत्थरों और प्राक तिक घटनाक्रम की इस आस्था के साथ उपासना करना कि इनमें भी जीवन है, अतः इसीलिए इनका आध्यात्मिक महत्त्व है।



आपकी टिप्पणियाँ

बी. आर. डब्ल्यू. - काले और लाल म दभांड (बर्तन), एक प्रकार के मिट्टी के बर्तन, जो ताम्रपाषाण कालीन स्थलों पर पाए गए थे।

दुर्ग - सिटेडल (दुर्ग), हड़प्पा के नगरों का ऊंचे चबूतरे पर बना हुआ हिस्सा था और जो नगर के पश्चिमी भाग में स्थित था।

भावचित्र - आक तिः या चिन्ह, जिनसे कोई भाव संप्रेषित होते हों।

लाजवर्र (रावट) - एक चमकदार नीले रंग की शिला जिससे आभूषण बनाने के लिए उपयोग किया जाने वाला लेजुराइट मिलता है। हड़प्पाकाल में ये अफगानिस्तान क्षेत्र में मिलता था।

मैसोपोटैमिया - ईराक में इयूफ्रेट्स और टिगरिस, दो नदियों के बीच की जगह (दोआब भूमि)

ओसीपी - गेरुएं (आकरे) रंग के मिट्टी के बर्तन

पैशुचारण - जीवन निर्वाह के लिए घरेलू पशुपालन पर निर्भरता।

आदि-शिव - शिव का एक प्राचीन या प्रारंभिक (आदि) रुप जिससे बाद की कालावधियों में शिव के अन्य रुप विकसित हुए।

सेलखड़ी - सोप स्टोन के रुप में पाया जाने वाला एक खनिज, जिसे हड़प्पा काल के दौरान मुहरें बनाने के लिए उपयोग किया जाता था।

अधिशेष - अपनी जरुरतों से अधिक उत्पादन।

यूनिकार्न - हड़प्पा की मुहरों पर पाई गई एक सींग वाले पशु (गैंडे) की आक ति।

शहरीकरण - शहरी जीवन, जिसमें बढ़ती क षि उत्पाद, विशिष्ट कलाओं और शिल्प व्यापार, बड भवनों के ढांचे और संस्तरित समाज जैसे लक्षण मौजूद हों।



4

वैदिक काल

पिछले पाठ में आपने हड़प्पा सभ्यता के बारे में पढ़ा। हड़प्पा के लोग पूरी तरह से व्यवस्थित नगरों में रहते थे और उनकी व्यापारिक और शिल्पकारी संबंधी कार्यविधियाँ बहुत व्यवस्थित थीं, उनकी एक लिपि भी थी, परन्तु अभी तक हम उसे पढ़ नहीं पाए हैं। परन्तु 1900 ई. पू. के आसपास इन नगरों का पतन शुरू हो गया था। इसके पश्चात अनेक ग्रामीण बस्तियों का उदय हुआ। इन ग्रामीण बस्तियों में अनेक तत्त्व थे, जो हड़प्पा कालीन सभ्यता की निरंतरता दर्शाते थे। इसी कालावधि के दौरान हड़प्पा के क्षेत्रों के आसपास की बाहरी सीमाओं में आर्य या इंडो आर्य नाम के नए लोगों के भारत में प्रवेश के पुरातात्त्विक साक्ष्य मिलते हैं। इस पाठ में हम उन परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करेंगे, जिनके कारण इन नए लोगों ने प्रवेश किया और यह जानने का भी प्रयास करेंगे कि वैदिक साहित्य में इनकी सभ्यता के संबंध में इनकी किन–किन मुख्य विशेषताओं का उल्लेख मिलता है।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- वैदिक ग्रन्थों और उसकी विषय–वस्तु की जानकारी दे सकेंगे;
- आर्यों के बारे में जानकारी दे सकेंगे और जहाँ से वे स्थानांतरित हुए उन क्षेत्रों को पहचान सकेंगे;
- प्रारंभिक वैदिक काल (1500 ई.पू.–1000 ई.पू.) और उत्तर वैदिक काल (1000 ई. पू.–600 ई.पू.) के लोगों के निवास स्थलों को पहचान सकेंगे;
- लोहे से बनी चीज़ों के महत्त्व का उल्लेख कर सकेंगें, जिसका प्रयोग उत्तर वैदिक काल में शुरू हुआ; और
- 1000 ई.पू. से 600 ई.पू. की कालावधि के बाद शुरू होने वाली अवधि के दौरान वैदिककालीन लोगों की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक संरचनाओं और संस्थानों में हुए परिवर्तनों को पहचान सकेंगे।

4.1 वैदिक साहित्य

वेद क्या है? 'वेद' विद् धातु से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'जानना'। 'वेद' शब्द का अर्थ है वेद साहित्य के रूप में जाने वाले वैदिक साहित्य में निहित पवित्र ज्ञान। वैदिक साहित्य की संपूर्ण ग्रन्थावली में दो प्रकार की पुस्तकें शामिल हैं। ये हैं–'मन्त्र' और 'ब्राह्मण'। मंत्र वर्ग की ग्रन्थावली वैदिक ग्रन्थों की प्रमुख ग्रन्थावली है, जिसमें चार प थक ग्रन्थ शामिल हैं–ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। ब्राह्मण ग्रन्थों को ब्राह्मणीय वर्ग मानने की भूल न करें। वास्तव में गद्य रूप में लिखे गए ग्रन्थ हैं, जिनमें मंत्रों की परिभाषाओं के विस्तार हैं, जिनमें बलिदान संबंधी कर्मकाण्ड भी हैं। ब्राह्मण सहित चारों वेदों में उपलब्ध साहित्य को 'श्रुति' कहते हैं, जिसे प्रत्यक्ष रूप में ऋषियों से सुना गया था। आरण्यक (शाब्दिक अर्थ है जंगल संधि पत्र) और 'उपनिषद्' (पास में ही नीचे बैठना) मुख्य रूप से ब्राह्मण ग्रन्थों के परिशिष्ट हैं। इन्हें वेदान्त (वेदों का अन्त) भी कहा जाता है और इनमें दार्शनिक विचार–विमर्श हैं।

'ऋग्वेद' 1028 मंत्रों का संकलन है, जिसे 10 मण्डलों में बाँटा गया है। ये प्रारंभिक रचनाएं हैं, अतः इनमें भारत के वैदिक कालीन लोगों के प्रारंभिक जीवन का उल्लेख किया गया है। 'सामवेद' काव्य पदों का संकलन है, जो अधिकतर ऋग्वेद से लिए गए हैं–और इन्हें काव्यात्मक रूप दिया गया है ताकि इन्हें गाया जा सके। यजुर्वेद दो रूप में मिला है, श्याम (क ष्ण) और शुक्ल (सफेद) और इनमें सार्वजनिक और व्यक्तिगत रूप में किए जाने वाले अनुष्ठानों का विवरण है। 'अथर्ववेद' जादुई तंत्रों और मंत्रों का संग्रह है, जिनका प्रयोग भूत–प्रेतों को भगाने और रोगों के उपचार के लिए किया जाता था।

वैदिक साहित्य के गहन अध्ययन से पता चलता है कि वैदिक ग्रन्थ साहित्यिक द ष्टि से सामाजिक और सांस्क तिक विकास के दो चरणों के क्रमिक विकास की जानकारी देते हैं। 'ऋग्वेद' जो कि प्राचीनतम ग्रन्थ है, सामाजिक और सांस्क तिक विकास के एक चरण की जानकारी देता है तो अन्य तीन वेद दूसरे चरण के विकास क्रम की जानकारी देते हैं। प्रथम चरण को ऋग्वैदिक काल या प्रारंभिक वैदिक काल कहते हैं और उसके बाद के चरण को उत्तर वैदिक काल कहते हैं। प्रारंभिक वैदिक काल ऋग्वैदिक मंत्रों की रचना का काल है। 1500 ई.पू. से 1000 ई.पू. के कालखंड को इस कालावधि में रखा गया है। उत्तर वैदिक काल की अवधि 1000 ई.पू. से 600 ई.पू. मानी गई है। हाल ही में संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्क तिक संगठन (यूनेस्को) द्वारा 'ऋग्वेद' को विश्व मानव धरोहर के साहित्य में शामिल किया गया है।

पाठगत प्रश्न 4.1

1 'वेद' शब्द से आप क्या समझते हैं?

2. वैदिक ग्रन्थों में से कौन–से ग्रन्थों को मंत्रों की श्रेणी में रखा गया है? उनका उल्लेख करें?



3. 'श्रुति' कहे जाने वाले साहित्य की श्रेणी में किस प्रकार के ग्रन्थ हैं? उनका उल्लेख करें?

4. 'ब्राह्मण' श्रेणी के ग्रन्थों की विषय–वस्तु का विस्त त विवरण दें?

5. 'वेदान्त' शब्द को परिभाषित करें?

4.2 आर्यों का स्थानांतरण

वेद मंत्रों के लेखक आर्य हैं। 19वीं सदी में आर्यों को एक वंश माना जाता था, परन्तु अब इन्हें ऐसे भाषायी समूह के लोगों के रूप में माना जाता है, जो इंडो–यूरोपियन भाषा बोलते थे और उस भाषा से बाद में संस्क त, लैटिन और ग्रीक इत्यादि भाषाओं का जन्म हुआ। इसकी जानकारी इन भाषाओं के शब्दों से मिलती है, जिनकी ध्वनि और अर्थ समान हैं। अतः संस्क त शब्द 'मात्' और 'पित्' लैटिन शब्द मातर और पितर से मिलते हैं। इसी प्रकार 'इनार' शब्द जो कि हित्ती (तुर्की) भाषा से है वेदकाल के 'इन्द्र' शब्द के समान हैं। 'सूरय्यास' और 'मारुत्तश' शब्द जो कस्साइट (मैसोपोटामिया) के शिलालेखों में मिले हैं वेदकालीन 'सूर्य' और 'मारुत' के समान हैं।

माना जाता है कि आर्य लोग मूलतः दक्षिणी रूस से मध्य एशिया के बीच फैले घास के मैदानों (स्टेप्स) में रहते थे। यहाँ से आर्यों के एक समूह ने भारत के उत्तर–पश्चिम में प्रवेश किया और इन्हें इंडो–आर्यन अथवा केवल आर्यों के नाम से पुकारा जाने लगा। स्थानांतरण के पुरातात्त्विक साक्ष्यों से पता चलता है कि ये स्थानांतरित लोग दक्षिणी साइबेरिया स्थित एन्द्रोनोवो सभ्यता से आए थे। यह सभ्यता दो सहस्राब्दि ई.पू. काल में विकसित हुई थी। यहाँ से ये लोग हिन्दुकुश के उत्तर (जिसे बैक्ट्रिया मार्जियाना आर्कियॉलोजिकल कॉम्प्लेक्स कहा जाता था) की ओर अग्रसर हुए और वहाँ से इन्होंने भारत में प्रवेश किया। इस काल में यानी 1900 ई.पू. से 1500 ई.पू. के दौरान इन क्षेत्रों से हमें घोड़ों, आयु पहियों, अग्नि की उपासना और शवदाह के साक्ष्य मिले हैं, और ये सब चीजें बाद में भारत में आर्यों के जीवन का प्रमुख भाग रहीं। इनके अतिरिक्त कलाक तियां और मिट्टी के बर्तनों के अवशेषों से भी यही संकेत मिलते हैं कि लोग मध्य एशिया से दक्षिणी एशियाई क्षेत्रों की ओर स्थानांतरित हुए। परन्तु कुछ विद्वान अभी भी इस तर्क पर बहस करते हैं कि आर्य भारत के स्वदेशी लोग थे और किसी बाहरी स्थान से भारत में नहीं आए।

नए लोग कई हज़ार वर्षों की अवधि के दौरान अनेक समूहों में भारत आए। इस अवधि में देशज आबादी और बाहर से आए नए लोगों में परस्पर कार्यकलाप चलते रहे। परस्पर कार्यकलापों की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप एक मुख्य बात यह हुई कि आर्यों की वैदिक किस्म की भाषा संपूर्ण उत्तर भारत क्षेत्र की प्रमुख भाषा बन गई। इस भाषा में रची गई प्रचलित पुस्तकें, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, वैदिक साहित्य हैं।



मानचित्र 4.1 युरेशिया की प्राचीन सभ्यताएँ

पाठगत प्रश्न 4.2

1. आप कैसे जानते हैं कि संस्क त, लैटिन, ग्रीक, हित्ती (हैटाइट) और कैस्साइट भाषाएँ एक ही भाषायी समूह से संबंधित हैं?

2. आर्यों के स्थानांतरण के पुरातात्त्विक साक्ष्य कहाँ से प्राप्त हुए हैं?

3. वे कौन–से स्थान हैं, जिन्हें आर्य सभ्यता की विशेषताओं वाले क्षेत्रों के रूप में पहचाना गया है?

4. आर्य सभ्यता के प्रमुख स्थलों का उल्लेख करें?

4.3 वैदिक आर्यों का भौगोलिक विस्तार क्षेत्र

प्राचीन आर्य लोग 'सप्त–सिंधु' नाम के क्षेत्र में रहते थे, जिसका अर्थ है सात नदियों वाला क्षेत्र। यह क्षेत्र मुख्यतया दक्षिण एशिया के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र से लेकर यमुना नदी तक के क्षेत्र में फैला है। सात नदियों में शामिल हैं, सिंधु, वितस्ता (झेलम), असिकनी (चिनाब), परुश्नी (रावी), विपाशा (व्यास), शुतुद्री (सतलुज) और सरस्वती। इस क्षेत्र में ऋग्वैदिक काल के लोगों ने निवास किया, युद्ध लड़े, अपने और अन्य पशुओं के झुंडों को चराया पशुओं को घरेलू पालतू जानवर बनाया। धीरे–धीरे पूर्व दिशा की ओर बढ़ते हुए उत्तर वैदिक काल में वे उत्तर प्रदेश (कौशल) और बिहार (विदेह) में पहुंचे। यहाँ आकर वे ऐसे लोगों के संपर्क में आए, जो उनसे भिन्न भाषाएँ बोलते थे और बहुत लम्बे समय से इस क्षेत्र में निवास कर रहे थे।

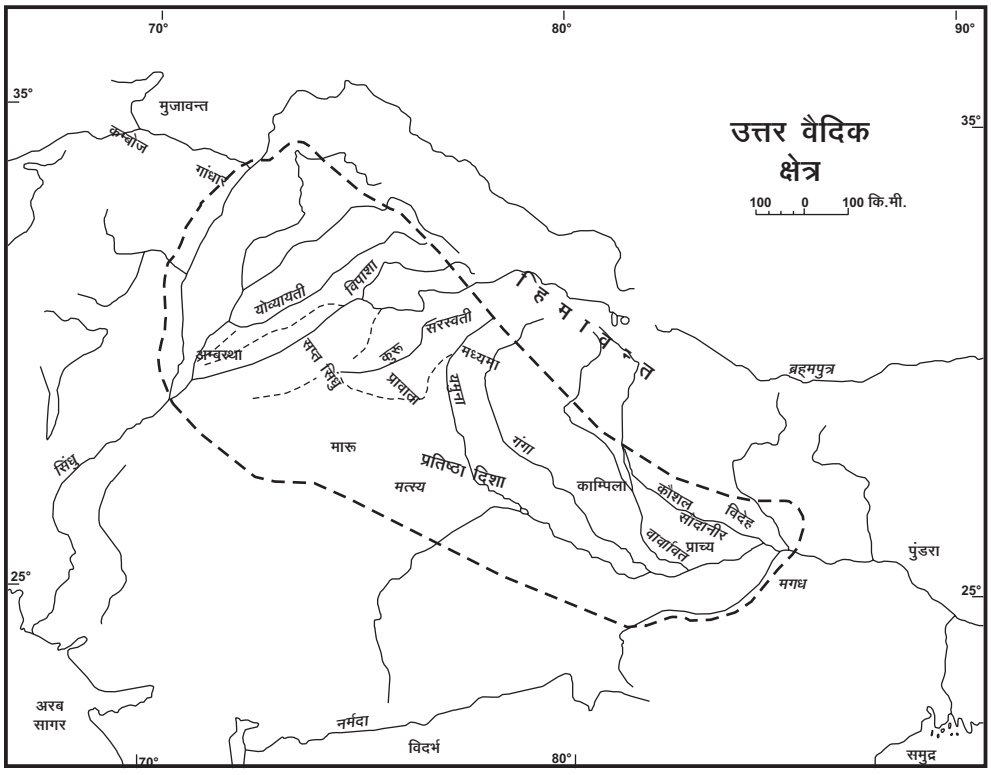

मानचित्र 4.2 उत्तर वैदिक क्षेत्र



आपकी टिप्पणियाँ



पाठगत प्रश्न 4.3

1. 'सप्तसिंधु' में शामिल सात नदियों के नाम लिखें?

2. उत्तर वैदिक काल में आर्य किस क्षेत्र के लोगों के संपर्क में आए?

4.4 प्रारंभिक वैदिक अर्थव्यवस्था

प्राचीन वैदिक आर्य लोग पशुपालक थे। पशुपालन उनका मुख्य व्यवसाय था। ये दूध, मांस और चमड़ा प्राप्त करने के लिए गाय, भैंस, भेड़ें, बकरियां और घोड़े पालते थे। ऋग्वेद में मिले साहित्यिक साक्ष्यों के विश्लेषण से हमें इनके साक्ष्य मिले हैं। 'गौ' शब्द से अनेक शब्दों का उद्‌भव हुआ, जिसका अर्थ है गाय। धनी व्यक्ति को 'गोमत' कहते थे और बेटी को 'दुहित्री' जिसका अर्थ है, जो गाय का दूध दुहती है। 'गवेषणा' शब्द का शाब्दिक अर्थ है गायों की खोज करना, परन्तु इस शब्द का अर्थ लड़ाई भी है, क्योंकि पशुओं के कारण अनेक लड़ाइयां भी लड़ी गई थीं। गायों को संपूर्ण इच्छाएँ पूरी करने वाली कामदा समझा जाता था। पशुओं की संख्या में व द्धि के लिए प्रार्थनाएं की जाती थीं। ऊपर उल्लिखित संदर्भों और इसके साथ ही अन्य अनेक संदर्भों से ये संकेत मिलते हैं कि ऋग्वैदिक काल के आर्यों के लिए घरेलू पशुपालन सबसे महत्त्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि थी।

परंतु इसका मतलब यह नहीं है कि प्रारंभिक वैदिक काल के लोगों को खेती–बाड़ी का ज्ञान नहीं था। पशु चराने के कार्यों की तुलना में खेती–बाड़ी करने के साक्ष्य बहुत कम मिलते हैं और लगता है ये संदर्भ प्रायः बाद में जोड़े गए हैं। कुछेक संदर्भों से यह पता चलता है कि उन्हें क षि की जानकारी थी और अपनी भोजन संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वे खेती करते थे। ये 'यव' उगाते थे (आधुनिक जौ या बार्ले), जिसका अर्थ खाद्यान्नों की जाति की फ़सलों के लिए प्रयुक्त किया जाता था।

पशु पालन और लघु–स्तर पर खेती–बाड़ी करने के अतिरिक्त वे अनेक अन्य आर्थिक कार्यकलाप भी करते थे। शिकार, बढ़ईगिरी, रंगाई, कपड़ों की बुनाई, रथ बनाना और धातुओं को गला कर ढलाई के काम इत्यादि जैसे कुछ अन्य काम भी थे, जो वे करते थे। इन कार्यों के द्वारा बनाए गए उत्पादों को वे वस्तुओं की अदला–बदली के काम में लाते थे। परन्तु, वस्तु–विनियम का सबसे पसंदीदा माध्यम थीं, गायें। बलियों के अनुष्ठानों के उपरान्त ब्राह्मण पुजारियों को गायें, घोड़े और सोने के गहने शुल्क के रूप में मिलते थे।



पाठगत प्रश्न 4.4

1. प्राचीन वैदिक आर्यों के व्यवसाय का वर्णन करें?



2. कुछ उदाहरण देकर, पशुपालन के महत्त्व को रेखांकित करें?

3. प्राचीन आर्यों के जीवन में क षि का क्या महत्त्व था? विस्तार से लिखें।

4. प्राचीन आर्यों में कौन–सी आर्थिक गतिविधियां प्रचलित थीं? एक सूची बनाएँ।

5. प्राचीन वैदिक काल के दौरान परस्पर विनिमय प्रणाली का वर्णन करें?

4.5 उत्तर वैदिक काल में आए परिवर्तन

उत्तर वैदिक काल में क षि, वैदिक लोगों का मुख्य व्यवसाय बन गया थी। खेती–बाड़ी की प्रक्रिया शुरू करने के लिए अनेक धार्मिक अनुष्ठान प्रारंभ किए गए थे। इसमें यह भी कहा गया कि हल चलाने के लिए छह और आठ जोड़े बैल जोते जाएं। भैंसे को खेती के उद्देश्य से घरों में पाला जाता था। दलदली भूमि पर हल चलाने के लिए यह पशु बहुत ही उपयोगी था। इन्द्र देवता को इस काम में नया उपनाम दिया गया था 'क षि का देवता'। पौधों से उगाए जाने वाले खाद्य पदार्थों की संख्या में काफी व द्धि हुई। जौ के अतिरिक्त अब ये लोग गेहूँ, चावल, दालों, मसूर, ज्वार–बाजरा, गन्ने इत्यादि की खेती करते थे। पका हुआ चावल 'दान–दक्षिणा' की चीज़ों में शामिल था। इस प्रकार खाद्य उत्पादों की शुरुआत के बाद क षि के उत्पादनों को धार्मिक अनुष्ठानों में दान किया जाने लगा था। तिल, जिसमें से सर्वाधिक खाद्य वनस्पति–तेल निकाला जाता था, धार्मिक कर्मकांड में प्रयोग किया जाने लगा था।

उत्तर वैदिक काल में आर्य सभ्यता के विस्तार का एक मुख्य तत्त्व, 1000 ई.पू. के आस–पास लोहे के प्रयोग की शुरुआत होना था। ऋग्वैदिक काल के लोग 'अयस' नाम की जिस धातु से परिचित थे वह शायद 'तांबा' या 'कांसा' रही होगी। उत्तर वैदिक काल में 'अयस' के साथ 'श्याम' या 'क ष्ण' का विशेषण जोड़ा गया, जिसका अर्थ था 'काला' और इसे लोहे के संकेतक के रूप में जाना जाता था। पुरातात्त्विक साक्ष्यों से पता चला है कि लोहे का प्रयोग 1000 ई.पू. के आसपास आरंभ हुआ था, जिसे उत्तर वैदिक साहित्य का काल माना जाता है।

भारत के उत्तरी और पूर्वी भागों में, भारत के उत्तर–पश्चिमी भागों से अधिक वर्षा होती थी, जहाँ बाद में आर्य लोग स्थानांतरित हुए थे। वर्षा के परिणामस्वरूप यह क्षेत्र घने जंगलों से भरा था, जिनका सफाया ऋग्वैदिक काल के लोगों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले तांबे या पत्थर के औजारों से होना संभव नहीं था। घने वर्षा वनों का अच्छे ढंग से सफाया करने के लिए लोहे के औजारों ने बहुत सहायता की, खास तौर पर जलावन के बाद बचे पेड़ों के बड़े–बड़े ठूंठों को पहले की तुलना में कम समय में विस्त त जंगली भू–भागों को क षि योग्य भूमि में परिवर्तित किया जा सकता था। लोहे के हल से गहरी मिट्टी की जुताई की जा सकती थी ताकि भूमि को उपजाऊ बनाया जा सके। ऐसी संभावना है कि यह प्रक्रिया ऋग्वैदिक काल के उत्तर काल में प्रारंभ हो गई थी, परन्तु लोहे से बने औजारों और उपकरणों के प्रयोग करने के प्रभावों के साक्ष्य उत्तर वैदिक काल के अंतिम चरण में ही ज्ञात हुए।

उत्तर वैदिक काल के दौरान क षि आधारित अर्थव्यवस्था के विस्तार से जनसंख्या में लगातार व द्धि होती गई। चित्रकारी किए गए सुरमई रंग के बर्तनों (पी.जी. डब्ल्यू.) की संख्या और आकार बढ़ने के अवशेष मिलने के कारण दोआब क्षेत्रों की आबादी बढ़ने के साक्ष्य मिलते हैं। समय बीतने के साथ–साथ वैदिक लोगों को मौसमों, खाद और सिंचाई की बेहतरीन जानकारी भी हासिल हो गई थी। इन सभी विकासों के परिणामस्वरूप उत्तर वैदिक काल के अंतिम चरण में कुछ स्थलों, जैसे हस्तिनापुर और कौशांबी में वास्तविक रूप में विस्तार हुआ। इन स्थलों में धीरे–धीरे नगरों की विशेषताएं विकसित होनी शुरू हो गईं थीं। ऐसे अर्धविकसित नगर जहां मुख्तः श्रेष्ठि राजकुमार, पादरी और कारीगर रहते थे, उनकी आबादी का भरण–पोषण किसान लोग करते थे, जो अपनी इच्छा या बिना इच्छा से अपने अनाज उन्हें देते थे।

पाठगत प्रश्न 4.5

1. उत्तर वैदिक काल के दौरान कौन–कौन से प्रमुख आर्थिक कार्यकलाप थे?

2. क षि का महत्त्व बढ़ने के साथ–साथ आर्यों के जीवन में कौन–से परिवर्तन आए?

3. 'क षि देवता' किसे कहा जाता था?

4. 'तिल' को धार्मिक अनुष्ठानों में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण क्यों समझा जाता है?

5. उत्तर वैदिक काल में लोहे के बने उपकरणों के प्रयोग से क षि में क्या सहायता मिली?

6. चित्रित सुरमई बर्तन प्रयोग करने वाले स्थलों के आकार बढ़ने के पीछे क्या कारण थे?

4.6 प्रारंभिक वैदिक समाज

ऋग्वैदिक समाज की मूलभूत इकाई परिवार थी। यह पिता प्रधान समाज था और विवाह की परंपरा थी। एक पत्नीव्रत धर्म था परन्तु श्रेष्ठिजन कभी–कभी अनेक पत्नियां भी रखते थे। बालिग होने पर ही शादियां होती थीं और विवाह के बाद पत्नी पति के घर में जाती थी। परिवार एक विशाल समूह का हिस्सा होता था, जिसे 'विस' या 'वंश' कहते थे। एक से अधिक वंशों के समूह को 'जन' या 'जाति' कहा जाता था। 'जन' सबसे बड़ी सामाजिक इकाई थी। एक वंश के लोग परस्पर रक्त संबंधों से जुड़े होते थे। किसी जाति के सदस्य बनने का आधार उस जाति में जन्म लेना था न कि किसी विशेष क्षेत्र में निवास होना। इस तरह भरत जाति के लोगों को भारत कहा जाता था। इसमें किसी प्रकार के



क्षेत्र की कोई भूमिका नहीं थी। ऋग्वैदिक समाज बहुत ही साधारण और आम तौर पर 'सामंतावादी' समाज था। इसमें किसी प्रकार का जातीय वर्गीकरण नहीं था। व्यवसाय जन्म पर आधारित नहीं थे, बल्कि परिवार के विभिन्न सदस्य अलग–अलग व्यवसाय कर सकते थे। परन्तु उस काल में कुछ भिन्नताएं अवश्य मौजूद थीं। आर्यों और अनार्यों में वर्ण या रंग भिन्नता का आधार था। आर्य लोग गौर–वर्ण के थे, जबकि गैर–आर्य (अनार्य) देशज लोग सांवले रंग के थे और अलग भाषा का प्रयोग करते थे। अतः ऋग्वेद में 'आर्य वर्ण' और 'दास वर्ण' का उल्लेख मिलता है। यहाँ 'दास' शब्द का उपयोग उस समूह के लोगों के लिए दिया गया है, जो ऋग्वैदिक लोगों से अलग थे। बाद में 'दास' का अर्थ गुलाम (सेवक) के रूप में रूढ़ हो गया। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य चीज़ें भी चलन में थीं, जैसे प्रमुख व्यक्तियों और पुजारियों के हाथों में युद्ध में लूटे माल का बड़ा हिस्सा हाथ लगने के परिणामस्वरूप उत्तर वैदिक काल में जाति के भीतर ही कुछ असमानताएँ पनप गई थीं। ऋग्वैदिक जाति में क्षत्रिय, पुजारी (पंडित) और सामान्य व्यक्तियों के तीन वर्ग थे। 'शूद्र' वर्ग ऋग्वैदिक काल के अंत में ही अस्तित्व में आया। इसका मतलब है कि प्रारंभिक वैदिक काल में समाज का वर्गीकरण अत्यधिक कठोर नहीं था। ऋग्वेद की इस काव्य रचना से इसका संकेत मिलता है जिसका भावार्थ है : 'मैं एक कवि हूं, मेरे पिता चिकित्सक हैं, और मेरी माता चक्की पर अन्न पीसती हैं, सम द्धि की कामना करते हैं, जिसके लिए हमारी विविध योजनाएँ हैं, हम पशुओं की तरह अपनी इच्छाएँ पूरी करते हैं। महिलाओं का समाज में बहुत ही सम्मानजनक स्थान था। उपयुक्त उम्र में उनका विवाह होता था और उन्हें अपनी पसंद का पति चुनने का अधिकार था। 'सभा' और 'समिति' जैसे संगठनों के कार्यों में भी वे भाग ले सकती थीं।

पाठगत प्रश्न 4.6

1. प्रारंभिक वैदिक काल में होने वाले विवाहों के बारे में विवरण दें?

   _____

2. क्या प्रारंभिक वैदिककालीन समाज समतावादी प्रव त्ति का था? अपने उत्तर को कारण सहित प्रमाणित करें?

   _____

3. प्रारंभिक वैदिक समाज के वर्गीकरण का आधार क्या था?

   _____

4. प्रारंभिक वैदिक काल में असमानताएँ किस प्रकार से आईं?

   _____

4.7 उत्तर वैदिक काल के सामाजिक परिवर्तन

परिवार अभी भी उत्तर वैदिक समाज की बुनियादी इकाई थी। तथापि इसके रचनात्मक ढाँचे में परितर्वन आ गया था। उत्तर वैदिक कालीन परिवार काफी विशाल हो गए थे, जिन्हें संयुक्त परिवार कहा जाता था, जिसमें तीन या चार पीढ़ियों के लोग एक साथ एक ही परिवार में रहते थे। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अतरंजीखेड़ा और अहिछत्र में मिले चूल्हों

की कतारों से पता चलता है कि यहाँ सामूहिक भोज के लिए या फिर विशाल परिवारों के लिए भोजन पकाया जाता होगा। गोत्र की संकल्पना भी इसी काल में विकसित हुई इसका अर्थ यह हुआ कि एक ही गोत्र के लोग एक ही वंशावली से थे और एक ही गोत्र के व्यक्तियों में परस्पर विवाह संबंध नहीं होते थे। यद्यपि बहुपति प्रथा भी प्रचलित थी, परन्तु एक पत्नी विवाह प्रथा को ही बेहतर समझा जाता था। इस काल के दौरान महिलाओं पर कुछ प्रतिबंध भी लगाए गए थे। एक ग्रन्थ में उल्लेख मिलता है कि नारी को जूए और मद्यपान की तरह व्यसन माना जाता था। एक अन्य ग्रन्थ में पुत्री को सभी दुखों के मूल के रूप में वर्णित किया गया है। महिला विवाह के बाद अपने पति के घर में रहती थी। सार्वजनिक सभाओं में महिलाओं की भागीदारी पर प्रतिबंध लगा दिया गया था।

तथापि सबसे बड़ा परितर्वन था, 'वर्ण व्यवस्था' के रूप में समाज के वर्गीकरण का उद्‌भव और विकास। समाज को जिन चार वर्णों में बांटा गया था, वे थे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इस काल में बलियों और धार्मिक कर्मकांड की बढ़ती संख्या ने ब्राह्मणों को बहुत हीशक्तिशाली बना दिया था। वे विभिन्न प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान कराते थे, जिनमें क षि से संबंधित कार्यकलापों के विभिन्न चरणों से संबद्ध अनुष्ठान भी सम्मिलित थे। इसकी वजह से वे बहुत ही महत्त्वपूर्ण समझे जाने लगे थे। इसकी अगली सामाजिक श्रेणी में आते थे 'क्षत्रिय' जो शासक वर्ग में थे। ब्राह्मणों के साथ मिलकर ये जीवन के सभी पक्षों पर नियंत्रण करते थे। 'वैश्य वर्ण' जो बहुत बड़ी संख्या में थे, क षि कार्यों के साथ–साथ व्यापार और कारीगरी के काम भी करते थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय, वैश्यों द्वारा दिए जाने वाले दान–दक्षिणा (उपहार और कर) पर निर्भर थे। 'शूद्र' अर्थात् चौथे वर्ण के लोग सामाजिक श्रेणी क्रम में सबसे निचले स्तर पर आते थे। उन्हें तीनों उच्च वर्णों की सेवा करने का आदेश दिया गया था। उन्हें उपनयन संस्कार (शिक्षा ग्रहण करने के लिए किया जाने वाला पवित्र यज्ञोपवीत संस्कार) जैसे धार्मिक क त्यों का अधिकार नहीं था। अन्य तीनों वर्णों के लोगों को इस संस्कार की अनुमति थी और इसीलिए इन्हें 'द्विज' कहा जाता था जिसका सांकेतिक अर्थ है कि वे दो बार जन्म लेते थे (द्वि = दो, ज = जन्म लेना) इसे शूद्रों को कमजोर बनाने और धार्मिक कर्मकांड में बुराइयों की संकल्पना की शुरुआत के रूप में माना जा सकता है।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण संस्था जिसने इस काल में रूप लेना प्रारंभ किया, वह थी 'आश्रम' व्यवस्था या जीवन की विभिन्न अवस्थाएँ। 'ब्रह्मचर्य' (विद्यार्थी जीवन), 'ग हस्थाश्रम' (घर मे रहना), 'वानप्रस्थ' (वैराग्य) अवस्थाओं का वर्णन ग्रन्थों में मिलता है। बाद में 'संन्यास आश्रम' की चौथी अवस्था को भी जीवन में जोड़ा गया। वर्ण व्यवस्था के साथ इसे वर्णाश्रम धर्म का नाम दिया गया था।

पाठगत प्रश्न 4.7

1. उत्तर वैदिक कालीन परिवार की प्रक ति क्या थी?



2. 'गोत्र' शब्द से आप क्या समझते हैं?

3. किन शब्दों से संकेत मिलता है कि शूद्रों को अशक्त बनाने का प्रारंभ हो रहा है?

4. 'वर्णाश्रम धर्म' की व्याख्या करें?

4.8 प्रारंभिक वैदिक धर्म

शारीरिक सुरक्षा और सुख–सम द्धि की सामग्री प्राप्त करने के लिए देवताओं के समक्ष प्रार्थना – पूजा अर्चना ऋग्वैदिक काल के लोग प्रमुखता से करते थे। ऋग्वैदिक काल के देवता प्राक तिक शक्तियों के विभिन्न रूप थे, जैसे वर्षा, तूफान, सूर्य इत्यादि। इन देवताओं के लक्षणों और विशेषताओं से भी यही प्रतिबिंबित होता है कि समाज का स्वरूप जनजातीय और पित सत्तात्मक (पुरुष प्रधान) था, क्योंकि उनके ग्रन्थों में किसी देवी के अस्तित्व का उल्लेख नहीं मिलता। इन्द्र, अग्नि, वरुण, मित्र, द्यौ, पुष्य, यम, सोम इत्यादि सभी देवता पुरुष देव थे। इसकी तुलना में हमारे पास कुछ ही देवियां हैं, जैसे उषा, सरस्वती, प थ्वी इत्यादि जिन्हें धर्म की व्याख्या में द्वितीय स्थान पर रखा गया है।

विभिन्न देवताओं के कार्यों से समाज में उनकी आवश्यकता का पता चलता है। अतः ऋग्वैदिक काल के लोग इन्द्र की युद्ध के देवता की तरह पूजा करते थे। ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर इन्द्र देव का उल्लेख मिलता है। उसके हाथ में वज्र होता है और इन्हें मौसम के ऐसे देवता के रूप में भी पूजा जाता है, जो वर्षा लाते हैं। पवन देव मारुत, युद्धों में इन्द्र की उसी प्रकार सहायता करते थे, जैसे जनजातीय लोग जनजातीय युद्धों में अपने नायकों की सहायता करते थे। 'अग्नि देव' जो आग के देवता थे, उन्हें घर का देव मानते थे और उन्हें देवताओं और मनुष्य के बीच की कड़ी माना जाता था। सोम का संबंध पौधों और जड़ी–बूटियों के साथ था। 'सोम' एक ऐसा पौधा था, जिससे मादक रस निकाला जाता था। बलि दिए जाने के समय सोम रस का पान किया जाता था। 'वरुण' एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण देव थे, जिसे ब्रह्मांड का व्यवस्थापक माना जाता है, जिसे 'रीत' कहते थे। यह 'रीत' जनजातीय व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष थी। पुष्य सड़कों, चरवाहों और पालतू पशुओं का देवता था। पशु चराने वाले खानाबदोशों के जीवन में इस देवता का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा होगा। अन्य देवों का भी इसी प्रकार प्रक ति और जीवन के अन्य पक्षों से संबंध था।

इन सभी देवताओं का आह्वान किया जाता था और 'यज्ञों' या 'बलिदानों' के समय इनकी पूजा की जाती थी। इन बलियों की व्यवस्था जनजातियों के प्रमुख व्यक्तियों द्वारा की जाती थी और संपूर्ण कर्मकांड (ब्राह्मणों) पुजारियों द्वारा कराया जाता था। बलियाँ दिए जाने के समय जिन देवताओं का आह्वान किया जाता था, वे इन बलिदानों के फलस्वरूप युद्धों में विजय, संतानोत्पत्ति, पशु धन में व द्धि और दीर्घायु का वरदान देते थे। इस कार्य में ब्राह्मणों को दान–दक्षिणा के रूप में बहुत बड़ी संख्या में उपहार मिलते थे। ध्यान देने की बात है कि संपूर्ण वैदिक काल के दौरान लोगों ने किसी मंदिर का निर्माण नहीं किया और न ही किसी प्रकार की मूर्ति की पूजा–अर्चना की।



आपकी टिप्पणियाँ

पाठगत प्रश्न 4.8

1. किस आधार पर हम यह मानते हैं कि ऋग्वैदिक काल के देवताओं के लक्षणों से जनजातीय और पित सत्तात्मक समाज के स्वरूप का पता चलता है?

2. ऋग्वैदिक काल के 'इन्द्र देवता' की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें?

3. जनजातियों के प्रमुख 'यज्ञों' का आयोजन क्यों करते थे?

4. ऋवैदिक लोगों के लिए पुष्य देव का क्या महत्त्व था?

5. आग के देवता 'अग्नि देव' का क्या मुख्य कार्य था?

4.9 उत्तर वैदिक काल में हुए परिवर्तन

हमने पहले ही यह रेखांकित किया है कि उत्तर वैदिक काल में खेती–बाड़ी लोगों का मुख्य कार्य बन चुका था। भौतिक जीवन में आए परिवर्तनों के परिणामस्वरूप देवी और देवताओं के प्रति उनकी अभिरुचियों में भी परिवर्तन आया। स्थानीय अनार्य लोगों के साथ परस्पर लगातार लेन–देन ने भी इन परिवर्तनों में योगदान दिया। इस प्रकार 'विष्णु' और 'रुद्र' जो ऋग्वैदिक काल में कम महत्त्वपूर्ण देवता थे, अब बहुत ही महत्त्वपूर्ण देवता माने जाने लगे थे। तथापि हमें उत्तर वैदिक काल के किसी भी साहित्य में विभिन्न अवतारों या विष्णु के उन अवतारों का कोई संकेत नहीं मिलता, जिन से हम आज परिचित हैं।

उस काल की एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता थी, बार–बार यज्ञ कराना और इनकी संख्या में व द्धि और इन यज्ञों का समापन प्रायः बहुत बड़ी संख्या में पशु बलि दिए जाने से होता था। शायद इसका कारण था, ब्राह्मण वर्ग का बढ़ता महत्त्व और बदलते समाज में अपना प्रभुत्व बनाए रखने के लिए किए गए उनेक प्रयास। इन यज्ञों से ब्राह्मणों को बहुत बड़ी मात्रा में दान–दक्षिणा और सम्पदा मिलती थी। कुछ प्रमुख यज्ञ थे – 'अश्वमेध', 'वाजपेय' और 'राजसूय' यज्ञ इत्यादि। महाभारत और रामायण की गाथाओं में आपने इन यज्ञों के बारे में अवश्य सुना होगा। इन यज्ञों, जो कि कई दिनों तक चलते थे, इनके संपन्न होने पर उपहारों का अधिकांश हिस्सा ब्राह्मणों को मिलता था। इन यज्ञों को करने का दोहरा उद्देश्य था। प्रथम तो इनसे लोगों के ऊपर वर्चस्व स्थापित होता था और दूसरे राजनीतिक द ष्टि से विशिष्ट प्रादेशिक क्षेत्र में राजनीतिक महत्ता स्थापित होती थी, क्योंकि इन बलियों में संपूर्ण राज्य क्षेत्रों से लोगों को आमंत्रित किया जाता था।

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि उत्तर वैदिक काल में इस पशुवध का विरोध होना शुरू हो गया था। बहुत बड़ी संख्या में पशुओं और अन्य जानवरों की यज्ञ के अन्त में बलि दिए जाने के कारण आर्थिक विकास में बाधा आती थी क्योंकि पशुपालन एक प्रमुख



व्यवसाय था। इसलिए वेदांत के उपनिषद कहे जाने वाले साहित्य में सम द्धि और कल्याण के लिए सद्व्यवहार और आत्म–त्याग की अनुशंसा की गई थी। उपनिषदों में भारतीय दर्शन के दो मूल सिद्धांत निहित हैं यानी कर्म और आत्मा का पुनर्जन्म लेना अर्थात कर्मानुसार पुनः जन्म लेना। इन ग्रन्थों के अनुसार वास्तविक परमानन्द 'मोक्ष' यानी मानव को जन्म–मरण के आवागमन से मुक्ति मिलने पर मिलता है।

पाठगत प्रश्न 4.9

1. उत्तर वैदिक काल में बड़ी संख्या में यज्ञों में व द्धि के क्या कारण थे?

2. यज्ञ आयोजित कराने के क्या उद्देश्य थे?

3. यज्ञों के महत्त्व के बारे में विस्तार से लिखें?

4. लोगों ने यज्ञ करवाने का विरोध करना क्यों शुरू कर दिया था?

4.10 प्रारंभिक वैदिक राज्य व्यवस्था

ऊपर हमने उल्लेख किया है कि आर्यों की प्रमुख सामाजिक इकाई थी 'जन'। इस इकाई का प्रमुख राजनीतिक नेता होता था, जिसे 'राजन' कहते थे। इस प्रमुख का मुख्य काम था, जनता और पशुधन की शत्रुओं से रक्षा करना। अपने इस काम में उसकी सहायता करती थीं, जनजातीय संस्थाएँ जिन्हें सभा, समिति, विदिथा, गण और परिषद कहते थे। इन सबमें 'सभा' और 'समिति' सबसे महत्त्वपूर्ण संगठन थे। इन सभाओं में जीवन के सभी पक्षों पर विचार–विमर्श होता था। इनमें युद्ध, युद्धों में प्राप्त आय का वितरण, न्यायिक और धार्मिक क त्य इत्यादि कुछ भी शामिल हो सकता था। इस प्रकार ये सभाएँ एक तरह से इन राजनीतिक प्रमुखों की शक्तियों को नियंत्रित करती थीं। दिलचस्प बात यह है कि महिलाएं भी इन सभाओं और समितियों के विचार–विमर्श में भाग ले सकती थीं। प्रमुख का पद वंशानुगत नहीं था। आम तौर पर उसका चुनाव जनजाति करती थी। यद्यपि उसके उत्तराधिकारी उसी प्रमुख के परिवार से होने के संकेत मिलते हैं, परन्तु यह ज्येष्ठाधिकार (यानी सबसे बड़े पुत्र का पिता का स्थान ग्रहण करना) के नियम पर आधारित नहीं था। अनेक मामलों में पुरोहित मुखिया को परामर्श देता था। पुरोहित के अतिरिक्त कुछ सीमित संख्या में पदाधिकारी/कर्मचारी भी होते थे, जो मुखिया को दिन–प्रति–दिन के जनजातीय मामलों में सहायता करते थे। सेनानी, कुलापा, ग्रामणी इत्यादि कुछ कार्मिक थे, जिनके नामों का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। सेना स्थायी योद्धाओं का समूह नहीं था और इसमें योग्य जनजातीय व्यक्ति भी शामिल थे, जिन्हें केवल युद्ध के दौरान ही सक्रिय किया जाता था। 'तक्षण' यानी बढ़ई और 'रथकार' यानी रथ–निर्माता, रथ बनाने की सरकारी जिम्मेदारी निभाते थे। कर संग्रह के लिए किसी भी कर्मचारी का उल्लेख नहीं मिलता है। लोग जो भी भेंट मुखिया को देते थे उसे 'बलि'

कहते थे और यह आम जनजातीय लोगों द्वारा विशिष्ट अवसरों पर दिया जाने वाला स्वैच्छिक योगदान था। इससे यही द ष्टिगोचर होता है कि प्रारंभिक वैदिक कालीन राज्य व्यवस्था बिलकुल भी जटिल नहीं थी और सभी जनजातीय लोगों की सहायता और भागीदारी पर आधारित थी। परन्तु, उत्तर वैदिक काल में इस परिस्थिति में परिवर्तन आ गया था, जिसका परिचय आगे दिया जाएगा।

पाठगत प्रश्न 4.10

1. 'सभा' और 'समिति' के कार्यों का वर्णन करें?

2. 'राजन' का मुख्य काम क्या था?

3. प्रारंभिक वैदिक काल में 'बलि' की क्या प्रव त्ति थी?

4. विविध मामलों में मुखिया के मुख्य कार्यकर्ताओं की सूची बनाएं?

4.11 उत्तर वैदिक काल में आए परिवर्तन

उत्तर वैदिक काल के दौरान भौतिक और सामाजिक जीवन में आए परिवर्तनों का प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र में आए परिवर्तनों पर भी पड़ा। प्रमुख नेता से लोगों का नियंत्रण ढीला पड़ने लगा और जिसके परिणामस्वरूप लोकप्रिय संस्थाएँ धीरे–धीरे समाप्त हो गईं।

मुखिया का पद वंशानुगत पिता के बाद पुत्र बन गया था। इस काल के साहित्य में उल्लेख मिलता है कि लोगों में धारणा थी कि राजा का पद दैवीय होता है। ब्राह्मणों ने मुखियाओं को इस प्रक्रिया में सहायता की। 'वाजपेय' और 'राजसूय' जैसे राज्याभिषेक के विस्त त धार्मिक कर्मकांड 'मुखिया' का प्राधिकार स्थापित करते थे। जैसे–जैसे मुखिया की शक्ति बढ़ती गई, जनप्रिय सभाओं के प्राधिकार कम होने लगे। मुखिया को प्रशासनिक सहायता देने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी और उन्होंने प्रमुख परामर्शदाताओं के रूप में लोकप्रिय सभा के कार्यों को हथिया लिया था।

इस काल के दौरान एक प्रारंभिक सेना की संरचना भी राजनीतिक व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण तत्व था। इन सभी की जीविका लोगों द्वारा दिए जाने वाले एक प्रकार के कर जैसे बलि, 'शुल्क' और 'भाग' पर निर्भर थी।

इस काल में मुखिया क्षत्रिय वर्ण से संबद्ध थे और उन्होंने ब्राह्मणों के सहयोजन से 'धर्म' के नाम पर लोगों पर नियंत्रण करने का प्रयास किया। परन्तु इन सभी तत्वों से यह जानकारी नहीं मिलती कि 'जनपद' या 'प्रादेशिक राज्य' अपनी सभी विशेषताओं, जैसे स्थायी सेना और नौकरशाही की व्यवस्था, का उद्भव उत्तर वैदिक काल में हुआ



परन्तु यह प्रक्रिया छठी सदी ईसा पूर्व के आसपास वैदिक काल के तुरंत बाद शुरू हुई, जब हमें उत्तर भारत में सोलह महाजनपदों के उत्थान की जानकारी मिलती है।

पाठगत प्रश्न 4.11

1. उत्तर वैदिक काल में मुखिया के पद की प्रक ति का विस्त त वर्णन करें?

2. उत्तर वैदिक काल के दौरान जनप्रिय सभाओं की शक्तियों में कमी क्यों आ गई थी?

3. राज्याभिषेक संस्कार के क्या–क्या कार्य थे?

आपने क्या सीखा

हड़प्पा कालीन नगरीकरण के पतन के पश्चात देखने में आया कि भारत के उत्तर–पश्चिमी क्षितिज पर, नए किस्म के लोगों का आगमंन दिखाई दिया। ये लोग पशुओं के झुंड रखते थे और दक्षिणी रूस के विभिन्न भागों से निकलकर समूहों में सभी जगह पर फैले थे। ऐसे अनेक लोगों के समूह अलग–अलग समय में अफ़गानिस्तान के मार्ग से भारत में प्रविष्ट हुए। उनकी भाषा, जिसे इंडो–आर्यन अथवा संस्क त कहा जाता था, स्थानीय भाषाओं से शब्द लेते हुए प्रधान भाषा बन गई थी। उनकी प्राचीनतम रचना थी 'ऋग्वेद' और इसके पश्चात अनेक प्रकार की साहित्यक रचनाएं लिखी गईं। इन लोगों की सभ्यता के संबंध में हमें इस वैदिक ग्रन्थावली से जानकारी मिलती है। प्रारंभ में आर्य लोग सात नदियों के अपवाह क्षेत्र 'सप्त सिंधु' में रहते थे, जिनका विस्तार आज के पंजाब और हरियाणा प्रदेशों में मिलता है। तत्पश्चात वे लोग गंगा, यमुना, सरयू, घाघरा और गंडक नदियों के बहाव क्षेत्र की ओर अग्रसर हुए जो कि आज के पूर्वी उत्तर–प्रदेश और पश्चिमी बिहार के आधुनिक प्रदेशों में से निकलती हैं।

आर्यन, जो पशु पालने वाले चरवाहे थे, बाद में किसान बन गए थे और जिन्हें लोहे की तकनीक का ज्ञान था, गंगा–यमुना के दोआब क्षेत्र में बड़ी बस्तियां बसाने में कामयाब हो गये थे। पी० जी० डब्ल्यू०, पुरातात्त्विक साक्ष्यों और उत्तर वैदिक साहित्य में निहित विषयों से हमें यह जानकारी मिलती है। इस परिवर्तन के सिलसिलेवार गहन अध्ययन से जीवन के अन्य क्षेत्रों में हुए परिवर्तन की कड़ी की भी जानकारी मिलती है। प्रारंभिक वैदिक काल में समतावादी, जनजातीय सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था से वैदिक काल के अंतिम काल तक आते–आते आर्य लोगों में क्षेत्रीयता के आधार पर वर्णों में विभाजित सामाजिक व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी। जनजातीय मुखियाओं ने वंशगत स्थान ग्रहण कर लिया था और शासकीय कार्मिकों ने लोकप्रिय सभा–समितियों की भूमिका को बलपूर्वक हथिया लिया था। यज्ञों की बढ़ती संख्या से राजाओं और ब्राह्मणों के महत्त्व का पता चलता है। इसी प्रकार जो देवता पहले बहुत महत्त्वपूर्ण

स्थान रखते थे अब अपना महत्त्व खो चुके थे, और उनका स्थान नए देवताओं ने ले लिया था। इन सभी परिवर्तनों के परिणामस्वरूप 'जनपदों' और 'महाजनपदों' का जन्म हुआ जो छठी सदी ईसा पूर्व काल में पहले से बड़े प्रादेशिक राज्य थे।

पाठांत प्रश्न

1. आर्य कौन थे? वे कहाँ से आकर सब जगहों पर बस गए?
2. प्रारंभिक वैदिक काल के लोगों के भौगोलिक स्थान के बारे में लिखिए।
3. आर्यों की सभ्यता की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें।
4. उत्तर वैदिक काल के दौरान आर्यों की अर्थव्यवस्था की पद्धतियों में आए परिवर्तनों का उल्लेख करें।
5. लोहे के तकनीकी ज्ञान से क षि के विस्तार में किस प्रकार सहायता मिली?
6. उत्तर वैदिक काल में महिलाओं पर किस प्रकार के प्रतिबंध लगाए गए थे?
7. उत्तर वैदिक काल में ब्राह्मण कैसे इतने महत्त्वपूर्ण बन गए थे?
8. प्रारंभिक वैदिक काल में जनप्रिय सभाओं के क्या कार्य थे, उनका वर्णन करें?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

4.1

1. पवित्र ज्ञान
2. ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद
3. आरण्यक और उपनिषद
4. मंत्रों और बलि देने संबंधी धार्मिक अनुष्ठानों की टीका (परिभाषा) संबंधी गद्य–ग्रन्थावली
5. दार्शनिक विचार–विमर्श

4.2

1. इन भाषाओं में, समान ध्वनि और अर्थ वाले शब्द हैं।
2. दक्षिणी साइबेरिया में स्थित एन्द्रोनोवो सभ्यता।
3. बैक्ट्रिया–मार्जियाना
4. घोड़ों, पहियों, आग की भट्ठियाँ, शवदाह के साक्ष्य।

4.3

1. सिंधु, झेलम, चिनाब, रावी, व्यास, सतलुज, सरस्वती



2. उत्तर प्रदेश (कौशल) और उत्तरी बिहार (विदेह)

4.4

1. चरवाहे
2. देखें 4.4 अनुच्छेद 1
3. देखें 4.4 अनुच्छेद 2
4. शिकार, बढ़ईगिरी, प्रशिक्षण, कपड़ा बुनाई, जुआ (द्यूतक्रीड़ा), रथ–निर्माण और धातुओं को गला कर ढलाई
5. गायों के माध्यम से परस्पर वस्तु–विनिमय

4.5

1. कषि
2. देखें 4.5 अनुच्छेद 2
3. इन्द्र देवता
4. यह पहला वनस्पति तेल था, जिसका बड़े पैमाने पर प्रयोग होता था।
5. घने जंगलों की कटाई के लिए; लोहे के हल से मिट्टी को उपजाऊ बनाने के लिए इसकी जुताई (ऊपर–नीचे) की जा सकती थी।
6. कषि पर आधारित अर्थव्यवस्था के विस्तार और जनसंख्या में लगातार वद्धि के कारण।

4.6

1. एक–पत्नी धर्म और बहु–पत्नी धर्म
2. हां, कोई जाति विभाजन नहीं, व्यवसाय जन्म के आधार पर नहीं थे और कोई भी व्यवसाय वर्जित नहीं था।
3. वर्ण या रंग के आधार पर
4. मुखियाओं और पुजारियों के हाथों में, युद्ध में प्राप्त माल (पुरस्कारों) का ज्यादा भाग हाथ लगना।

4.7

1. संयुक्त परिवार
2. एक ही पूर्वज की संतान, एक समान गोत्र के सदस्यों (व्यक्तियों) में विवाह संबंध वर्जित
3. उपनयन संस्कार के अधिकारी नहीं थे (धार्मिक बुराई)
4. 4.7 अंतिम अनुच्छेद



आपकी टिप्पणियाँ

4.8

1. देखें 4.8
2. मौसम का देवता जिसके हाथ में वज्र है।
3. देवताओं के आह्वान और आराधना के लिए
4. क्योंकि वह मार्गों, चरवाहों और पशुओं का देवता था
5. देवों और मानवों के मध्य कड़ी के रूप में था।

4.9

1. ब्राह्मण वर्ण के लोगों के बढ़ते महत्त्व और अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने के प्रयासों के कारण।
2. लोगों के ऊपर मुखियाओं द्वारा अपना प्राधिकार स्थापित करने और राजनीति में प्रादेशिक वर्चस्व पुनः स्थापित करने के लिए।
3. दान–दक्षिणा के रूप में धन की अत्यधिक मात्रा ब्राह्मणों को मिलती थी।
4. इससे उनके आर्थिक जीवन पर प्रभाव पड़ रहा था।

4.10

1. जीवन के सभी पक्षों पर विचार के लिए जैसे युद्ध में जीते गए पुरस्कारों के वितरण, न्यायिक और धार्मिक कर्मकाण्ड।
2. जन और पशुधन की शत्रुओं से रक्षा के लिए।
3. साधारण जनजातीय लोगों द्वारा विशेष अवसरों पर दिया जाने वाला स्वैच्छिक योगदान।
4. पुरोहित, सेनानी, कुलाप, ग्रामणी।

4.11

1. यह वंशानुगत बन गया था।
2. क्योंकि मुखिया अधिक शक्तिशाली बन गए थे, प्रशासकीय कामों में मुखिया की सहायता के लिए बनाए गए अधिकारियों ने बलपूर्वक 'जनप्रिय सभाओं' के कार्यों को हथिया लिया था।
3. मुखिया के प्राधिकार स्थापित करने के लिए।

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. देखें 4.2 अनुच्छेद 1 और 2
2. देखें अनुच्छेद 4.3
3. देखें अनुच्छेद 4.2 और 2
4. देखें 4.5



5. देखें 4.5 अनुच्छेद 2
6. देखें 4.7 अनुच्छेद 1
7. देखें 4.11
8. देखें 4.10

शब्दावली

पशुपालन - मूल रूप से पशुपालन और सीमित क षि कार्यों पर आधारित जीवन पद्धति।

पित सत्तामक - परिवार/समाज के पुरुष सदस्य की श्रेष्ठता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था।

एक पत्नी व्रत- जीवन में किसी भी समय एक पत्नीव्रत का धर्म

बहु पत्नी व्रत - एक समय में एक से अधिक पत्नियां रखने की सामाजिक व्यवस्था।

गोत्र - एक ही पूर्वज से उत्पन्न एक वंशावली के परिवारों का समूह जिनके सदस्यों के परस्पर कुछ कर्त्तव्य होते थे।

जनजाति - यह उन समूहों की ओर संकेत करती है, जिनकी एकता रक्त संबंधों के विस्तार यानी प्रादेशिक संगठनों के विस्तार पर नहीं, बल्कि संबंधों के बढ़ने पर निर्भर होती है।

समतावादी - ऐसा समाज जिसमें सभी को समानता का अधिकार हो।

पी.जी.डब्ल्यू - चित्रित सुरमई बर्तन; इस शब्द का अभिप्राय था उत्तर वैदिक काल में लोहे का प्रयोग करने वाले वे लोग जो समाज के सम द्ध वर्ग के लोगों के लिए इस शब्द का प्रयोग करते थे।



6

मौर्योत्तर काल

पिछले अध्याय में आपने मौर्य वंश के बारे में पढ़ा, जो आधुनिक अफगानिस्तान के कंधार क्षेत्र सहित भारतीय उपमहाद्वीप के बड़े हिस्से तक फैला हुआ था। 197 ई.पू. के लगभग मौर्य वंश का पतन हो गया। इस पाठ में हम मौर्य वंश के पतन से लेकर गुप्त वंश के उदय तक भारतीय उपमहाद्वीप में हुए राजनीतिक तथा सांस्क तिक चरणों का अध्ययन करेंगे अर्थात 200 ई.पू. से 300 ई. तक। इन पाँच सौ वर्षों में हम मात्र उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में विभिन्न शक्तियों का ही नहीं, बल्कि कला, स्थापत्य कला तथा धर्म के क्षेत्र में भी नई विशेषताओं का विकास देखेंगे।



उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप जान सकेंगे:

- मौर्य वंश के पतन के पश्चात कौन–कौन से राजनीतिक वंशों का उदय हुआ;
- मध्य एशिया से आने तथा बसने वाले विदेशियों को जान सकेंगे;
- भारत और रोम के बीच व्यापार की प्रगति तथा इसके प्रभाव का मूल्यांकन कर सकेंगे;
- 200 ई. पू. से 300 ई. में कला तथा मूर्तिकला की विभिन्न शैलियों की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं बता सकेंगे और
- दक्षिण भारत का प्रारंभिक इतिहास तथा संगम साहित्य के महत्त्व का विश्लेषण कर सकेंगे।

6.1 उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास

मौर्य वंश के पतन ने देश के विभिन्न भागों में क्षेत्रीय वंशों का उदय हुआ। उसी समय मध्य एशिया तथा पश्चिमी चीन से भी कई आक्रमणकारियों ने भारत पर आक्रमण किए। वे थे भारती–यूनानी, शक, पह्लव तथा कुषाण। इन्हीं राजनीतिक प्रक्रियाओं ने भारत को मध्य एशिया की राजनीति तथा सभ्यता के निकट जाने का अवसर दिया।



क) शुंग वंश

मौर्य वंश का आखिरी सम्राट ब हद्रत अपने सेनापति पुष्यमित्र शुंग के हाथों मारा गया, जिसने बाद में अपना साम्राज्य उत्तरी भारत में स्थापित किया। इसे शुंग वंश के रूप में जाना गया। एक तरफ जहाँ शुंग उत्तर भारत में शासन कर रहे थे, उसी समय भारतीय–यूनानी, जिन्हें यवन भी कहा जाता है, बल्ख में स्वतंत्र शक्ति के रूप में उभरे तथा जल्द ही उन्होंने भारत के उत्तर पश्चिमी तथा उत्तर क्षेत्रों में अपने साम्राज्य का विस्तार करना प्रारंभ कर दिया। इसका अध्ययन हम बाद में करेंगे। इस बात के भी संकेत मिलते हैं कि पुष्यमित्र शुंग का बल्ख के शासक डेमीट्रियस से संघर्ष भी हुआ, लेकिन उसका कोई राजनीतिक नुकसान नहीं हुआ।

बेसनगर (आधुनिक विदिशा) में एक स्तम्भ पर अंकित विवरण से किसी हेलीडोरियस, जो कि तक्षशिला (वर्तमान पाकिस्तान में रावलपिंडी के निकट) का निवासी था, के भागभद्र के राजदरबार के एक भारतीय यूनानी शासक अतिलकी दास के दूत के रूप में विवरण मिलता है। उल्लेख के अनुसार वह श्रीक ष्ण का भक्त था।

ई.पू. की प्रथम शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में, अंतिम शुंग शासक की हत्या धोखे से उसके मंत्री वासुदेव ने की, जिसने कण्व वंश की नींव डाली। कण्व वंश के विषय में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

ख) बैक्ट्रीयन या भारतीय यूनानी

323 ई. पू. में सिकन्दर की म त्यु के पश्चात कई यूनानी भारत के उत्तरी पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र बैक्ट्रीया (हिन्दुकुश पर्वत का उत्तर पश्चिम क्षेत्र, वर्तमान उत्तर अफगानिस्तान) को महत्त्वपूर्ण केंद्र बनाकर वहाँ निवास करने आ बसे। अपने यूनानी उच्चारण की वज़ह से बैक्ट्रीया के शासक बैक्ट्रीया–यूनानी कहलाए। ऊपर वर्णित भारतीय यूनानी शासक डेमीट्रियस का पुष्यमित्र के साथ संघर्ष हुआ।

सर्वाधिक सफल भारतीय–यूनानी शासक मेनेन्दर या जिसके साम्राज्य में सम्भवतः उत्तरी अफगानिस्तान तथा सिंधु नदी का पूर्वी क्षेत्र गंधार भी सम्मलित थे। प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ मिलिन्दपन्हो में उसका परिचय मिलिन्द के रूप में दिया गया है जिसमें मिलिन्द द्वारा ग्रन्थ के बौद्ध लेखक महाराज नागसेन से पूछे गए सवाल हैं। इससे हमें जानकारी मिलती है कि दिए गए उत्तरों से प्रभावित होकर राजा ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। माना जाता है कि मेनेन्दर ने 155 ई.पू. से 130 ई.पू. तक शासन किया।

ग) शक वंश

शक, साइथियन वंश के लिए प्रयोग होने वाला हिन्दी नाम है, जो मूल रूप से मध्य एशिया के निवासी थे। अपने पड़ोसियों यू–चिस (कुषाणों से संबंधित आदिवासी समूह) से पराजित होकर वे ई.पू. प्रथम शताब्दी में भारत के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र तक्षशिला के आसपास निवास करने आए। सफल शक शासकों के राज्य में उनकी सीमाएं मथुरा तथा गुजरात तक व्यापक हो चली थीं।

शक शासकों में सबसे उल्लेखनीय शासक रुद्रदमन रहा, जिसने द्वितीय शताब्दी के मध्य शासन किया। उसका साम्राज्य लगभग समस्त पश्चिमी भारत तक विस्त त था। उसकी तमाम उपलब्धियों की जानकारी गिरनार अथवा जूनागढ़ में खुदे शिलालेख से

मिलती है। इस विवरण को प्राचीन भारत में पवित्र संस्क त में लिखा हुआ प्रथम शाही विवरण माना जाता है।

घ) पार्थियन

पार्थियन मूलतः ईरानी मूल के थे तथा शकों के साथ अपने मजबूत सांस्क तिक संबंधों की वजह से भारतीय मूल में उन्हें शक–पह्लव के रूप में जाना गया। पार्थियन शासन के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी पाकिस्तान के उत्तर पश्चिम क्षेत्र में पेशावर के निकट मरदान में प्रसिद्ध तख्त–ए–बही विवरण से मिलती है। 5वीं ईस्वी के आसपास के इस उल्लेख में पार्थियन शासक के रूप में गोंडोफ्रेंस या गोंडोफेयर्स का विवरण मिलता है। कुछ इतिहासकार इसे संत थॉमस के समकालीन मानते हैं। माना जाता है कि इन्होंने राजा तथा उसके भाई को ईसाई धर्म में धर्मान्तरण कराया था।

पाठगत प्रश्न 6.1

1. आखिरी मौर्य शासक कौन था?

2. हेलीडोरियस कौन था?

3. प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ मिलिन्दोपन्हों में किस भारतीय–यूनानी शासक का विवरण मिलिन्द के रूप में मिलता है?

4. कौन–सा खुदा हुआ संस्क त में लिखा गया विवरण प्राचीन भारत का प्रथम विवरण माना जाता है?

5. शक किस क्षेत्र के निवासी थे?

6.2 कुषाण वंश

कुषाण मूल रूप से पश्चिमी चीन के निवासी थे। उन्हें यू–चिस भी कहा जाता है। शकों तक पह्लवों को पराजित कर कुषाणों ने पाकिस्तान में बड़े साम्राज्य की स्थापना की। कुषाण वंश का प्रथम महत्त्वपूर्ण शासक कुंजुल कडफीसिस था। उसके बाद उसका पुत्र वेया कडफीसिस राजा बना। अगला शासक कनिष्क था। वह कुषाण वंश का सबसे महान शासक था। उसके शासन काल का आरंभ 78 ई. के लगभग माना जाता है। उसने एक नए युग की नींव डाली, जिसे शक संवत के रूप में जाना जाता है। कनिष्क के शासन काल में कुषाण साम्राज्य का क्षेत्रीय विस्तार अधिकतम क्षेत्रों में हुआ। उसका साम्राज्य मध्य एशिया से लेकर उत्तर प्रदेश के वाराणसी, कौशाम्बी और श्रावस्ती सहित उत्तर भारत तक विस्त त था। कुषाण के शासन का राजनीतिक महत्त्व इस तथ्य से सिद्ध



होता है कि उसने उत्तर भारत तथा मध्य एशिया को एक ही साम्राज्य का अविभाज्य अंग बनाया। परिणामस्वरूप विभिन्न अन्तर्क्षेत्रीय संस्क तियों का समन्वय हुआ तथा अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार में व द्धि हुई।

इतिहास में कनिष्क को बौद्ध धर्म के महान संरक्षक के रूप में जाना जाता है। उसने कुंडलवन (वर्तमान में जम्मू–कश्मीर में श्रीनगर के निकट हरवान) में चतुर्थ बौद्ध समिति का आयोजन कराया, जिसमें बड़ी संख्या में बौद्ध भिक्षुओं ने भाग लिया था। उसी सम्मेलन में बौद्ध धर्म दो शाखाओं में विभक्त हो गया था हीनयान तथा महायान। कनिष्क ने स्थापत्य कला की दो शाखाओं–गांधार तथा मथुरा को भी संरक्षित किया, जिसके बारें में आप बाद में इसी पाठ में पढ़ेंगे। उसने पुरुषपुर नगर (वर्तमान पेशावर) में बौद्ध अवशेषों को संरक्षित करते हुए विशाल स्तूप का निर्माण कराया था। 15वीं शताब्दी के प्रारंभ में जब चीनी तीर्थयात्री फाह्यान ने यहां यात्रा की थी तो यह इमारत पूर्ण भव्यता के साथ मौजूद थी। कुषाण वंश का तीसरी शताब्दी के प्रारंभ में पतन हो गया।

कुषाण राजतंत्र तथा प्रशासन

कुषाणों की प्रशासनिक तंत्र के संबंध में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। संभवतः पूरा साम्राज्य छोटे–छोटे क्षेत्रों में विभाजित था तथा हर क्षेत्र एक महाक्षत्रप (सेनापति) द्वारा संचालित होता था। जिसका सहायक क्षत्रप होता था। किन्तु पूरे साम्राज्य में कितने क्षेत्र थे, यह ज्ञात नहीं है। सूत्र इंगित करते हैं कि कुषाण घुड़सवार घुड़सवारी करते समय पतलून का प्रयोग करते थे। मथुरा में पाई गई शीर्षविहीन मूर्ति से इस बात की जानकारी मिलती है। कुषाणों की सबसे महत्त्वपूर्ण विशिष्टता देवपुत्र शीर्षक का प्रयोग है, जिसका अर्थ है भगवान की संतान। यह कुषाण शासकों द्वारा दिव्यता के दावे की ओर संकेत करता है।

कुषाणों की उपलब्धियाँ

प्राचीन भारतीय इतिहास में कुषाण वंश जीवन के हर क्षेत्र में अपने विशेष योगदान की वजह से महत्त्वपूर्ण स्थान रखता हैं। उनके विशाल साम्राज्य की वजह से आंतरिक तथा बाहरी व्यापार में प्रगति हुईं इसके फलस्वरूप नए नगर केंद्रों का उदय हुआ। कुषाण काल की सम्पन्नता की झलक उनके द्वारा प्रयुक्त होने वाली सोने तथा तांबे की मुद्राओं से भी मिलती है।

साहित्य तथा चिकित्सा के क्षेत्र में भी भारत ने प्रगति की। आयुर्वेद का जनक माने जाने वाले चरक ने चिकित्सा आधारित पुस्तक 'चरक–संहिता' की रचना की, वहीं प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान अश्वघोष ने बुद्ध की विस्त त जीवन चरित्र की रचना की। दोनों ही विद्वान कनिष्क के समकालीन माने जाते हैं। कुषाणों ने मूर्तिकला की गंधार तथा मथुरा कला को संरक्षण प्रदान किया, जो कि बुद्ध तथा बोधिसत्वों की प्रारंभिक छवियों के स जन के लिए विख्यात है।

पाठगत प्रश्न 6.2

1. कुषाण वंश का सबसे प्रसिद्ध शासक कौन था?

   _____

2. शक संवत किसके द्वारा तथा कब प्रारंभ हुआ?

   _____



आपकी टिप्पणियाँ

3. किसके संरक्षण में चतुर्थ बौद्ध समिति का आयोजन किया गया?

4. चरक कौन थे?

6.3 मध्य एशिया के साथ संबंध

भारत पर बैक्ट्रीया यूनानी तथा शक पह्लव के आक्रमण कुषाणों के शासन काल में मध्य एशिया के राजनीतिक सम्पर्कों ने दो क्षेत्रों के मध्य उत्तरवर्ती सांस्क तिक समन्वय को जन्म दिया। धीरे–धीरे इन विदेशी समूहों ने अपनी पहचान खो दी तथा क्षत्रिय के रूप में अवतरित हो गए। कईयों ने बौद्ध धर्म धारण कर लिया। भारतीय–बैक्ट्रीया शासक मेनेन्दर का उल्लेख पहले हो चुका हैं, जिसने बौद्ध धर्म की दीक्षा नागसेन नामक भिक्षुक से ली थी।

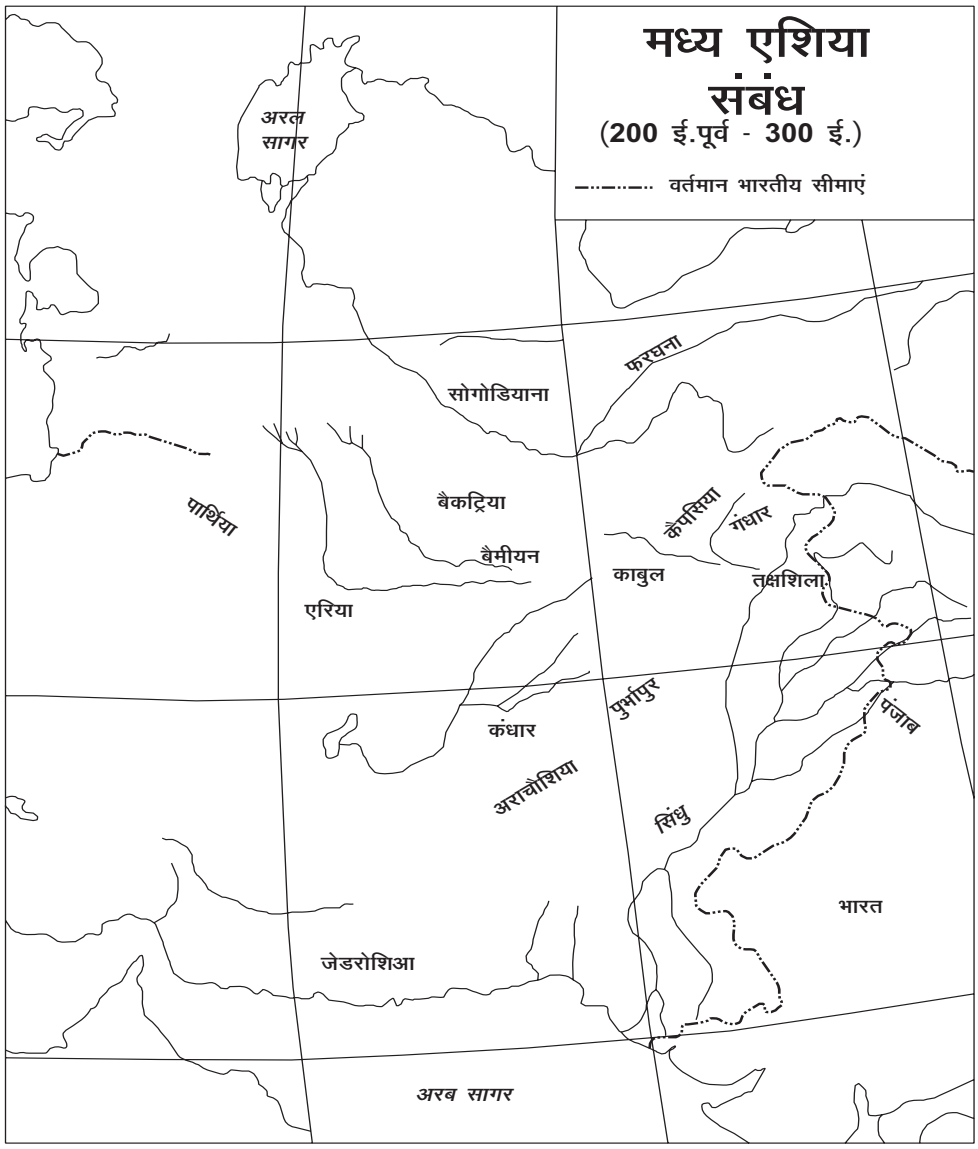

मानचित्र 6.1 मध्य एशिया संबंध



मध्य एशिया के साथ सम्पर्क ने भारत में मुद्रा निर्माण की नई विधियों को जन्म दिया। छिद्र वाले अपरिष्क त सिक्कों का स्थान धीरे–धीरे महान विभूतियों तथा पूर्व प्रचलित शासकों के चित्र वाले परिष्क त यूनानी शैली के सिक्कों ने ले लिया। यह नया प्रकार भारत में उत्तरवर्ती सिक्का प्रणाली के लिए प्रतिमान बन गया। इसके अतिरिक्त, मध्य एशिया से विशेषकर यूनानियों से खगोलशास्त्र का ज्ञान लिया। खगोल–विज्ञान के प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में यूनानी खगोल–वैज्ञानिकों का संदर्भ यवनाचार्यों के रूप में मिलता है। भविष्यफल ज्ञात करने की कला भी भारतीयों ने यूनानियों से सीखी। मध्य एशिया सम्पर्कों की वजह से मूर्तिकला के क्षेत्र में भी नए युग की शुरुआत हुई। गांधार शाखा, भारतीय तथा यूनानी शैली के समन्वय के फलस्वरूप उत्पन्न हुई।

पाठगत प्रश्न 6.3

1. यूनानी शैली के सिक्कों की क्या विशेषताएँ थीं?

2. आरंभिक भारतीय साहित्य में यूनानी खगोलविदों के लिए किस शब्द का प्रयोग किया गया है?

6.4 उड़ीसा तथा दक्कन में प्रारंभिक राज्य का उदय

हम जानते हैं कि दक्कन तथा पूर्वी भारत अशोक के साम्राज्य के हिस्से थे। उसने हिंसक युद्ध द्वारा कलिंग पर विजय प्राप्त की थी, जिसमें व्यापक जनहानि हुई थी। यह मौर्य शासन का ही प्रभाव है कि इसके पतन के पश्चात भारतीय इतिहास में प्रथम बार कलिंग तथा दक्कन का उदय हम देखते हैं।

कलिंग

अशोक के पश्चात कलिंग (वर्तमान उड़ीसा) चेदी वंश के शासन काल में महत्त्वपूर्ण हो गया था। दुर्भाग्यवश खारवेल के अतिरिक्त इस वंश के किसी शासक के विषय में सूचना उपलब्ध नहीं है। उसकी उपलब्धियाँ उड़ीसा में भुवनेश्वर के निकट उदयगिरि पहाड़ियों पर हाथीगुम्फा अभिलेख में संग हीत हैं। शिलाखंड के निकट हाथी की छवि अंकित होने के कारण अभिलेख का नाम हाथीगुम्फा पड़ा। इस विवरण से हमें ज्ञात होता है कि वह जैन धर्म का उपासक था तथा अपने पड़ोसियों के विरुद्ध कई युद्धों में उसने सफलता पाई थी। सम्भवतः उसकी कालावधि ई.पू. प्रथम शताब्दी थी।

पाठगत प्रश्न 6.4

1. खारवेल कौन था?

2. हाथीगुम्फा अभिलेख कहाँ है?

6.5 सातवाहन वंश

ई. पू. प्रथम शताब्दी के मध्य सातवाहन वंश भारतीय राजनीतिक परिद श्य में प्रमुख रूप से उभरा। सातवाहन शासकों में महानतम शासक गौतमीपुत्र शतकर्णी (पहली शताब्दी) को माना जाता है। सबसे पश्चिम भारत के शक शासक नहपन को पराजित कर सातवाहन साम्राज्य के विस्तार का श्रेय उसे जाता है। उसका साम्राज्य दक्षिण में क ष्णा नदी से लेकर उत्तर में गोदावरी नदी तक फैला हुआ था। सातवाहन साम्राज्य की राजधानी महाराष्ट्र में औरंगाबाद के निकट प्रतिष्ठान (वर्तमान पैथन) थी। तीसरी शताब्दी के चतुर्थ भाग में सातवाहन वंश का पतन हो गया तथा इक्ष्वाकु वंश का शासन स्थापित हो गया।

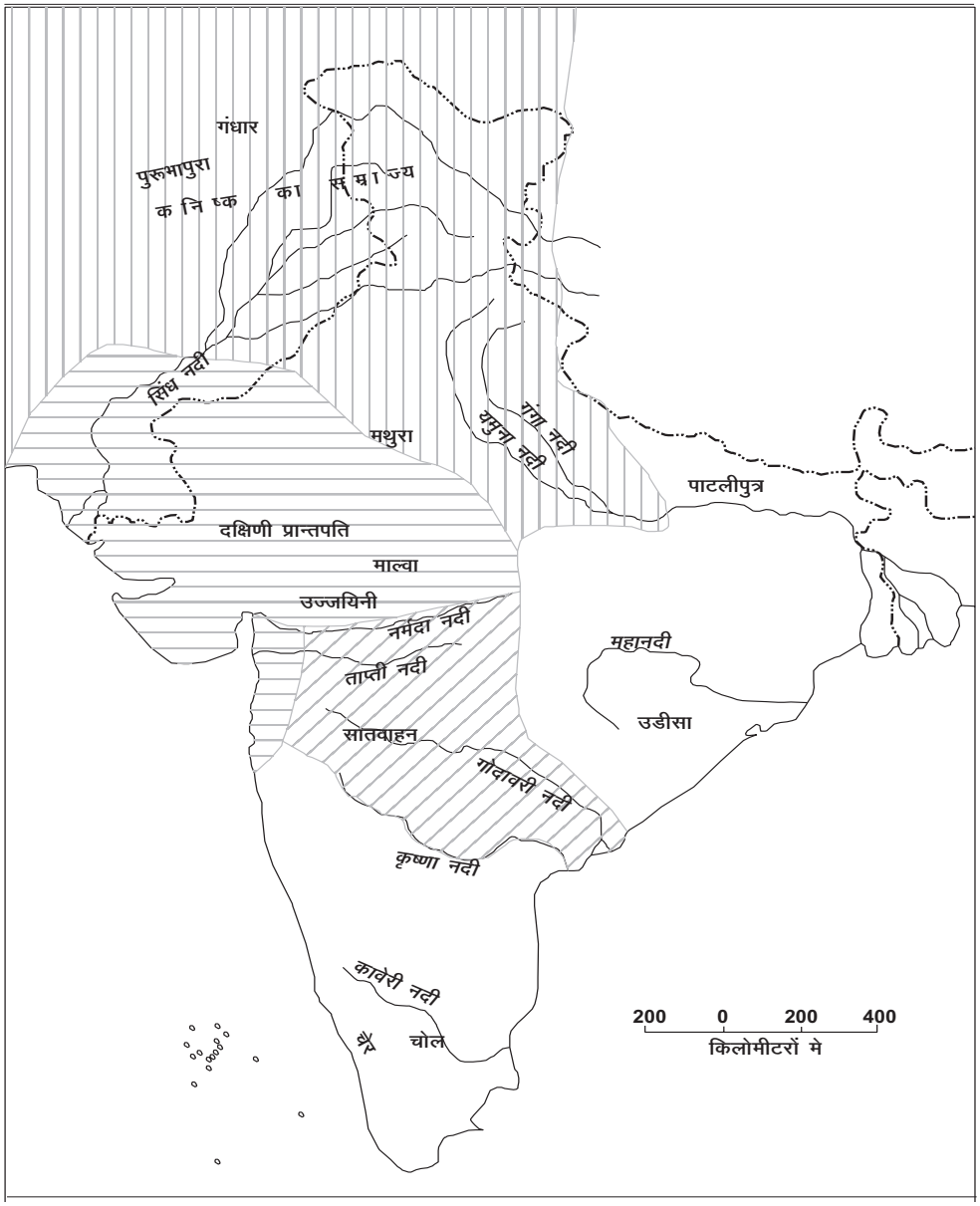

मानचित्र 6.2 सातवाहन तथा कुषाण साम्राज्य



सातवाहनः राजव्यवस्था तथा प्रशासन

सातवाहन साम्राज्य 'आहार' अथवा 'राष्ट्ररूपी' उप–प्रभागों अर्थात जिलों में विभाजित था। प्रशासन की लघुतम इकाई 'ग्राम' थी, जिसका अध्यक्ष 'ग्रामिक' हुआ करता था। राजा के सहायक तथा मंत्री के रूप में 'अमात्य' का भी विवरण मिलता है। नकद तथा वस्तुएँ दोनों ही प्रकार से राजस्व एकत्र किया जाता था। भारतीय इतिहास में प्रथम बार सातवाहन शासकों ने धर्म को स्वीकार करने के लिए बौद्धों तथा ब्राह्मणों को कर–मुक्त भू–दान की व्यवस्था की। बाद के काल में यह व्यवस्था और भी महत्त्वपूर्ण हो गई थी। सातवाहन शासक स्वयं को ब्राह्मण मानते थे तथा वर्ण व्यवस्था को बनाए रखना अपना प्रथम उद्देश्य समझते थे।



पाठगत प्रश्न 6.5

1. सातवाहन शासकों में सबसे महान शासक कौन माना जाता है?

   _____

2. सातवाहन वंश की राजधानी का नाम लिखे?

   _____

3. सातवाहन साम्राज्य में प्रशासन की सबसे छोटी इकाई क्या थी?

   _____

4. कर–मुक्त धार्मिक अनुदान की परम्परा भारत मे किस वंश के शासकों ने प्रारंभ की?

   _____

5. सातवाहन शासक स्वयं को किस वर्ण से संबंधित मानते थे?

   _____

6.6 व्यापारिक तथा व्यावसायिक गतिविधियाँ

क) आंतरिक तथा बाहरी मार्ग

मौर्योत्तर युग की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता आंतरिक तथा बाह्य व्यवसाय व्यापार के क्षेत्र में प्रगति रही। प्राचीन भारत के दो मुख्य आंतरिक मार्ग माने जाते हैं पहला उत्तरपथ जो कि भारत के उत्तरी तथा पूर्वी हिस्सों को उत्तरपश्चिमी सीमाओं से जोड़ता था अर्थात वर्तमान में पाकिस्तान तथा उससे आगे का क्षेत्र द्वितीय दक्षिणपथ जो भारतीय प्रायद्वीप को पश्चिमी तथा उत्तरी हिस्सों से जोड़ता था।

उत्तर तथा दक्षिण भारत को जोड़ने वाला प्रमुख मार्ग दक्षिणपथ था। यह इलाहाबाद के निकट कौशाम्बी से प्रारंभ होता था तथा आधुनिक उज्जैन, तत्कालीन उज्जैयनी से होता हुआ पश्चिमी तट के महत्त्वपूर्ण बंदरगाह भ गुकच्छ अथवा भड़ौच तक पहुंचता था। दक्षिणपथ आगे जाकर प्रतिष्ठान (वर्तमान पैठान) तक था जो कि सातवाहन साम्राज्य की राजधानी थी।

बाह्य व्यापार मार्ग की बात करें, तो हम पाएंगे कि 45 ई. में एक यूनानी समुद्री यात्री हिप्पेट्स द्वारा मानसून की खोज के पश्चात व्यापारिक उद्देश्यों के लिए ज्यादा से ज्यादा



आपकी टिप्पणियाँ

समुद्री यात्राएँ प्रारंभ हो गईं भारत के पश्चिमी तट (उत्तर से दक्षिणो–मुखी) के प्रमुख बंदरगाह थे भारुकच्छ, सोपारा, कल्याण, मुजिरिस इत्यादि। इन बंदरगाहों से मालवाहक जहाज लाल सागर द्वारा रोम साम्राज्य में जाते थे।

दक्षिण–पूर्व एशिया के साथ व्यापार समुद्री मार्ग से होता था। भारत के पूर्वी तट पर स्थित प्रमुख बंदरगाह थे ताम्रलिप्ति (प. बंगाल), अरिकमेडु (तमिलनाडु समुद्री तट)। दक्षिण–पूर्वी एशिया के बंदरगाहों तथा भारुकच्छ के मध्य भी समुद्री मार्ग से व्यापार होता था।

ख) पश्चिम तथा मध्य एशिया के साथ व्यापार

मौर्योत्तर कालीन व्यावसायिक गतिविधियों की महत्त्वपूर्ण विशेषता भारत तथा पश्चिम के साथ होने वाला व्यापार या, जब रोमन साम्राज्य अपने चरम पर था। प्रारंभ में व्यापार भूमि के माध्यम से होता था, किन्तु इन मार्गों के रास्ते पर शासन करने वाले पारसियों द्वारा उत्पन्न अवरोधों के पश्चात समुद्री मार्ग पर स्थानांतरित हो गया। अब मालवाहक पोत भारतीय तटों से सीधे लाल सागर तथा फ़ारस की खाड़ी होते हुए जा सकते थे।

प्रथम ईस्वी में एक अज्ञात लेखक द्वारा लिखी गई पुस्तक 'पेरिप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी' में भारत–रोम व्यापार का सर्वश्रेष्ठ विवरण प्राप्त होता है। रोमवासियों द्वारा वांछित भारतीय उत्पाद थे मसाले, इत्र, रत्न, हाथी दांत तथा परिष्क त वस्त्र जैसे मलमल। भारत से रोम साम्राज्य को निर्यात होने वाले मसालों में काली–मिर्च भी शामिल थी, जिसे 'यवनप्रिया' के नाम से भी जानते हैं (संभवतः रोमवासियों के मध्य लोकप्रियता के आधार पर)। रोम साम्राज्य के साथ भारतीय मसालों का व्यापार मुख्यतः दक्षिण भारत से संचालित होता था। रोमवासी कई बहुमूल्य तथा आंशिक कम दुर्लभ रत्नों का भी आयात करते थे। यथा–हीरे, फ़िरोजा, नीलम, गोमेद इत्यादि तथा मोती, नील, चन्दन की लकड़ी तथा इस्पात आदि।

इन आयातों के बदले में रोमवासी भारत को स्वर्ण तथा चांदी का निर्यात करते थे। इस तथ्य का प्रमाण प्रथम सदी में महाद्वीप में प्रचलित रोमन सिक्कों से मिलता है। इससे रोम साम्राज्य का भारत के साथ सोने के अत्यधिक निर्यात का संकेत मिलता है। रोम द्वारा निर्यात होने वाली महत्त्वपूर्ण वस्तु थी 'वाइन' अंगूर की शराब, जिसका प्रमाण दक्षिण भारत में अरिकमेडु में व्यापक मात्रा में पाए गए अंगूर की शराब के पात्रों तथा रोमन लिपि की कतरनों से मिलता है। अन्य निर्यातित वस्तुओं में टिन, शीशा, मूंगा तथा दासी लड़कियाँ थीं।

ग) हस्तशिल्प तथा उद्योग

इस काल में हस्तशिल्प का उत्पादन असाधारण गति से हुआ क्योंकि आंतरिक तथा विदेशी दोनों ही प्रकार के व्यवसाय तथा व्यापार बहुत हद तक हस्तशिल्प गतिविधियों पर ही आधारित थे। मिलिन्दपन्हो नामक ग्रन्थ में 750 व्यवसायों का उल्लेख है, जिनमें से 60 हस्तशिल्प पर आधारित थे। कुशलता का स्तर बहुत ही ऊँचा था तथा सोने, चांदी बहुमूल्य रत्नों के कारीगर भिन्न–भिन्न थे। उज्जैन माला उत्पादन का प्रमुख केंद्र था। वस्त्र उद्योग अन्य प्रमुख उद्योग था। सूती तथा रेशमी वस्त्रों के प्रकारों के लिए मथुरा वंग (पूर्वी बंगाल) प्रसिद्ध थे।

दक्षिण भारत के कुछ स्थानों पर प्राप्त रंगों की टंकियों से यह संकेत मिलता है कि इस काल में उस क्षेत्र में रंगाई एक विकसित हस्तशिल्प उद्योग था। इस काल में शिल्पियों ने सम्पन्नता की नई ऊंचाइयों को छुआ तथा बहुत से प्राप्त अभिलेखों से यह भी संकेत मिलता है कि शिल्पियों ने धार्मिक मठों को भी अनुदान किया।



घ) कारीगरों के संघ-श्रेणी

व्यापारियों का समुदाय एक समूह के रूप में संगठित था, जिसे श्रेणी कहा जाता था तथा 'श्रेष्ठि' जिसका अध्यक्ष होता था। अन्य प्रकार का व्यावसायिक समूह 'सार्थ' कहलाता था, जो अर्न्तक्षेत्रीय व्यवसाय के घुमन्तु या कारवां प्रकार के व्यवसाय को परिभाषित करता था। इस संगठन का अध्यक्ष 'सार्थव' के नाम से जाना जाता था। इन व्यापारियों की भाँति सभी हस्तशिल्पी समूह भी संघ के रूप में संगठित थे तथा 'ज्येष्ठ' उनका प्रधान होता था। इसमें बुनकर, अनाज व्यवसायी, बांस के तेल उत्पादक, कुम्हार इत्यादि शामिल थे। मुख्य रूप से ये संघ उन व्यापारियों तथा शिल्पियों का संगठन था, जो या तो एक ही व्यवसाय में थे या एक ही प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करते थे। वे अपने प्रमुख का चुनाव स्वयं करते थे तथा पारस्परिक सद्भाव के आधार पर अपने व्यवसाय को नियंत्रित करने के लिए मूल्य तथा गुणवत्ता से संबंधित नियमों का निर्माण करते थे। वे बैंक की तरह भी कार्य करते थे एक निश्चित ब्याज दर पर जनता से अमानती रकम प्राप्त करते थे।



पाठगत प्रश्न 6.6

1. उत्तरपथ से आप क्या समझते हैं?

   _____

2. दक्षिणपथ क्या था?

   _____

3. भारतीय इतिहास में मानसून की खोज का क्या प्रभाव पड़ा?

   _____

4. भारतीय–रोम व्यापार संबंधों को कौन–सी पुस्तक दर्शाती है?

   _____

5. 'श्रेणी' का क्या अर्थ है?

   _____

6.7 कला तथा स्थापत्य कला

मौर्योत्तर काल में कला मुख्यतः धार्मिक थी। कला तथा स्थापत्य कला के क्षेत्र में इस युग की दो मुख्य विशेषताएँ स्तूपों का निर्माण तथा मूर्तिकला की विभिन्नृशैलियों का विकास रहीं। बुद्ध की मूर्तियाँ इसी काल में प्रथम बार बनाई गईं। उत्तर–पश्चिम क्षेत्र के साथ संपर्कों की वजह से मूर्तिकला में नई शैली का विकास हुआ, जिसे गांधार कला कहा गया। बहुत हद तक यह यूनानी शैली से प्रभावित थी।

1. स्तूप

स्तूप एक विशाल अर्द्धव त्ताकार गुम्बद होता है, जिसमें एक केंद्रीय प्रकोष्ठ होता था, जहाँ एक छोटी संदूकची में बुद्ध अथवा बौद्ध भिक्षुओं के अवशेषों को रखा जाता था। उसका

आधार दक्षिणावर्त रास्ते से घिरा हुआ होता था, जिसमें लकड़ी की बाड़ होती थी, जो बाद में पत्थरों की हो गई थी। इस काल के प्रमुख स्तूप थे भरहुत सांची (दोनों मध्य प्रदेश में) जो कि अशोक द्वारा निर्मित थे। जिनका बाद में विस्तार किया गया तथा अमरावती और नागार्जुन कोंडा (दोनों आंध्र प्रदेश में)।

भरहुत स्तूप का निर्माण काल ई.पू. दूसरी शताब्दी माना जाता है। यह इसकी मूर्तिकला के लिए महत्त्वपूर्ण है। इसकी बाड़ लाल पत्थरों से बनी हुई है। इस काल में सांची में तीन

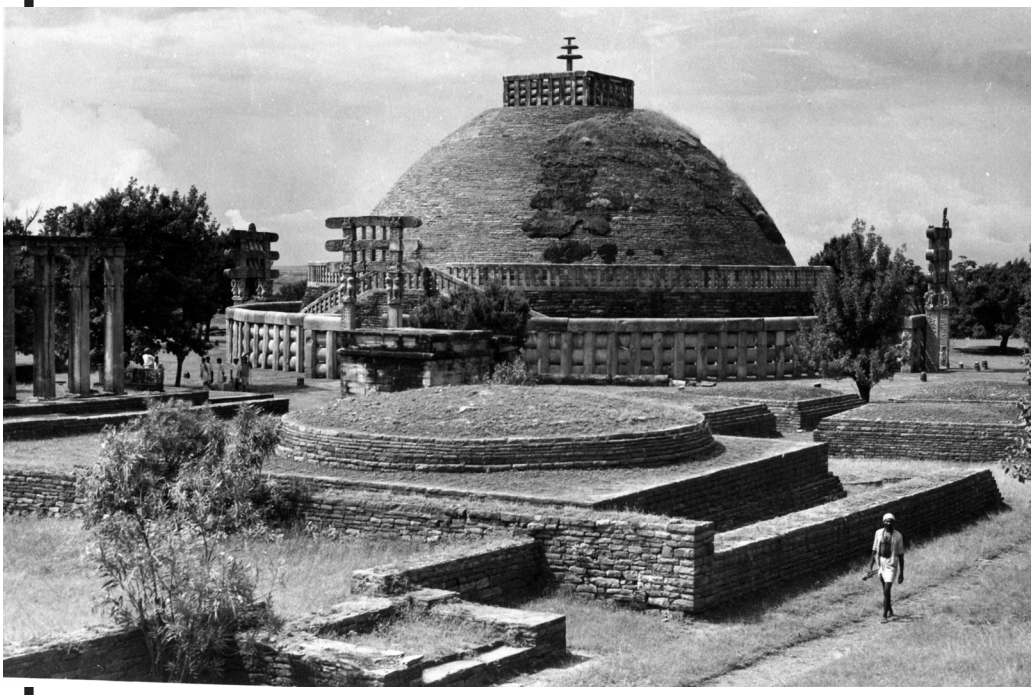

चित्र 6.1 सांची स्तूप

विशाल स्तूपों का निर्माण हुआ। इन तीनों में सबसे बड़ा सम्राट अशोक द्वारा बनवाया गया था, जिसका ई.पू. दूसरी शताब्दी में दो बार विस्तार हुआ। दक्षिण भारत में भी कई स्तूपों का निर्माण हुआ, किन्तु अपने पूर्ण रूप में कोई भी न बच सका। आंध्र प्रदेश में अमरावती स्थित अमरावती स्तूप अपने निर्णायक रूप में दूसरी शताब्दी में आया। स्तूप पर बसी मूर्तियां जातक तथा अन्य बौद्ध कहानियों पर आधरित हैं।

2. चट्टान स्थापत्यकला

स्तूपों के अतिरिक्त इस काल में चट्टान काटकर भवन निर्माण/स्थापत्य कला के क्षेत्र में भी प्रगति हुई। सातवाहन शासकों के काल में महाराष्ट्र में पुणे तथा नासिक के निकट ठोस चट्टानों को काटकर बड़ी संख्या में मंदिरों, भवनों तथा भिक्षुओं के रहने के लिए निवास स्थलों का निर्माण करते थे। उस स्थान को चैत्य के नाम से जाना जाता था तथा भिक्षुओं के निवास स्थान को विहार कहा जाता था।

3. मूर्तिकला की शैलियाँ

ईसा के बाद की प्रथम शताब्दी में बौद्ध धर्म में दो विभाजन हुए, हीनयान तथा महायान। महायान बौद्धों ने बुद्ध को भगवान मानकर मानव रूप में पूजा करने पर बल दिया। परिणाम



स्वरूप बड़ी संख्या में विभिन्न क्षेत्रों में महात्मा बुद्ध की प्रतिमाओं का स जन हुआ। इस काल में मूर्ति निर्माण की तीन मुख्य शैलियां विकसित हुईं। वे थीं मथुरा शैली, गांधार शैली तथा अमरावती शैली।

(i) मथुरा शैली, समकालीन कला में मथुरा शैली का सबसे बड़ा योगदान महात्मा बुद्ध की वे मूर्तियां रहीं, जो कला के इस प्रकार में सम्भवतः पहली बार तराशी गईं। मथुरा शैली के कलाकार मूर्ति बनाने के लिए स्थानीय लाल पत्थरों का प्रयोग काले बिन्दुओं के साथ करते थे। मथुरा शैली में बड़ी संख्या में 'अयागपता' या पूजा के लिए पत्थरों के टुकड़ों के अतिरिक्त जैन तीर्थंकरों की मूर्तियां भी गढ़ी गईं। मथुरा शैली में ब्राह्मणों का प्रभाव भी देखा जा सकता है। कुषाण के शासन काल के दौरान व्यापक संख्या में हिन्दू देवी–देवताओं की मूर्तियों का निर्माण हुआ, जैसे कार्तिकेय, विष्णु तथा कुबेर।

4. कला की गांधार शैली

भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र में गांधार क्षेत्र स्थित था। इस क्षेत्र पर यूनानी, मौर्य, शुंग, शक तथा कुषाण वंशियों ने सदियों तक सफलतापूर्वक शासन किया। ईसाई युग के आरम्भ में इस क्षेत्र में जिस कला की शैली का विकास हुआ, उसे कई नामों से जाना गया, जैसे यूनानी–रोमन, भारतीय–यूनानी या यूनानी–बौद्ध। इसका कारण सम्भवतः इस



चित्र 6.2 गांधार कला बोधिसत्व



आपकी टिप्पणियाँ

शैली पर रोम, यूनानी तथा भारतीय प्रभाव था। मुख्यतया मूर्तियों का विषय बौद्ध धर्म था, किन्तु शैली यूनानी थी। गांधार–कला के मुख्य संरक्षक शक तथा कुषाण थे।

इस शैली में बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्ति निर्माण के लिए प्रयुक्त होने वाले पत्थर मुख्यतः भूरे–नीले रंग के होते थे। कला की गांधार शैली की मुख्य विशेषता मानव आक तियों के शरीर की विभिन्न मांसपेशियों सहित आकर्षक चित्रण में निवास करती है। महात्मा बुद्ध का चित्रण यूनानी शैली में कपड़ा ओढ़कर घुंघराले बालों के साथ किया गया है। महात्मा बुद्ध की ये प्रतिमाएं मूर्तिकला के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ मूर्तियों में आंकी जाती हैं।

5. कला की अमरावती शैली

क ष्णा तथा गोदावरी की निचली घाटी के मध्य आंध्र प्रदेश के क्षेत्र में कला की अमरावती शैली विकसित हुई इस कला को मुख्य संरक्षण सातवाहन वंश के शासकों द्वारा मिला, किन्तु यह उसके उत्तरवर्ती इक्ष्वाकु वंश के शासकों द्वारा संरक्षण मिलने के कारण बाद में भी फली–फूली। इस कला का उन्नत काल 150 ई.पू. से 300 ई. तक समझा जाता है। इस शैली की मुख्य कलाक तियां बांड़ों, खंभों तथा स्तूप के अन्य हिस्सों में पाई जाती हैं। इनकी विषय–वस्तु में महात्मा बुद्ध के जीवन से संबंधित कथाएँ सम्मिलित हैं।

अमरावती शैली की मुख्य विशिष्टता आख्यान कला है। गोलाकार आभूषण इस प्रकार उकेरे गए हैं कि वे स्वाभाविक तरीके से घटना का वर्णन करते हैं। जैसे एक आभूषण महात्मा बुद्ध द्वारा एक हाथी को पालतू बनाने की कथा की व्याख्या करता है। अमरावती शैली की दूसरी मुख्य विशेषता आक तियों को उभारने के लिए सफेद संगमरमर का प्रयोग था। इस शैली में प्रक ति की तुलना में मानव आक तियों का महत्त्व अधिक था।



पाठगत प्रश्न 6.7

1. मौर्योत्तर कालीन स्थापत्य कला की दो प्रमुख विशेषताएँ क्या थीं?

2. स्तूप से आप क्या समझते हैं?

3. मौर्योत्तर काल के प्रमुख स्तूप कौन–से थे?

4. चैत्य तथा विहार में क्या अंतर है?

5. मूर्तिकला की दो प्रमुख शैलियों के नाम बताएं जो मौर्योत्तर युग में विकसित हुई।



6. मथुरा शैली में किस प्रकार के पत्थर प्रयुक्त किए जाते थे?

_____

7. गांधार शैली के प्रमुख संरक्षक कौन थे?

_____

6.8 दक्षिण भारत का प्रारंभिक इतिहास

क) दक्षिण भारत की महापाषाणिक संस्क ति

दक्षिण भारत में नवप्रस्तरकाल जिसमें पत्थरों को परिष्क त कुल्हाड़ी तथा धारदार हथियारों के प्रयोग की झलक मिलती है, के बाद महापाषाणिक संस्क ति अस्तित्व में आई (1200 ई.पू. से 300 ई.पू. तक) महापाषाणिक विशाल पत्थरों के साथ दफन तथा कब्रों को संग हीत करते गुम्बद स्थल हुआ करते थे। अधिकतर वे निवास स्थल से दूर ही स्थित होते थे। इन्हीं महापाषाणिक दफन स्थलो ने दक्षिण भारत से प्रथम लौह पदार्थ को उपलब्ध कराया। इनके अतिरिक्त काले तथा लाल मिट्टी के बर्तन महापाषाणिक सभ्यता की विशेषता थे। ये महापाषाणिक महाराष्ट्र में नागपुर के उत्तर से लेकर भारतीय प्रायद्वीप के दक्षिण बिन्दु तक बड़ी संख्या में पाए जाते थे। महापाषाणिक के महत्त्वपूर्ण स्थान रहे ब्रह्मगिरी, मस्की (कर्नाटक), आदिचल्लानुर (तमिलनाडु) तथा नागपुर (महाराष्ट्र) के निकट जूनापानी।

लोहे के औजार हर महापाषाणिक कब्र में पाए गए हैं। ये औजार उनकी शिल्प गतिविधियों की ओर संकेत करते हैं तथा इनमें मुख्य है–तीर का सिरा, कटार, तलवार, त्रिशूल, कुल्हाड़ी, हंसिया, कुदाली तथा हल इत्यादि। इन औजारों के साथ महापाषाणिक स्थानों में अनाज जैसे चावल, गेहूं की उपलब्धता यह संकेत करती है कि महापाषाणिक वंशज अपनी आजीविका के लिए क षि तथा शिकारी गतिविधियों पर निर्भर थे। दक्षिण भारत में महापाषाणिक सभ्यता के पश्चात संगमकाल का प्रारंभ हुआ।

ख) संगम काल

संगम काल से तात्पर्य दक्षिण भारत के आरम्भिक इतिहास का वह युग है, जब तमिल कवियों द्वारा बड़ी संख्या में तमिल कविताओं की रचना की गई। 'संगम' शब्द कवियों के समागम या एक साथ आने को बतलाता है। परम्परागत रूप से एक के पश्चात एक तीन संगम आयोजित किए गए। सभी तीनों संगम मदुरै के पांड्य शासकों के संरक्षण में विभिन्न स्थानों पर आयोजित किए गए। संगम साहित्य में रची कविताएं दो विषय–वस्तु पर आधारित थीं प्रेम तथा युद्ध। जिन्हें बाद में इत्तोतोगई नामक आठ संग्रहों में संग हीत किया गया। इस साहित्य का स जन काल ई.पू. 300 से 300 ई. तक माना जाता है। इस साहित्य की एक स्मरणीय विशेषता तत्कालीन तमिल समाज का विविधतापूर्ण वर्णन तथा उत्तर (आर्य) सभ्यता के साथ सामंजस्यपूर्ण रिश्तों का विवरण है।

तमिल क्षेत्र तिरुपति की पहाड़ियों से लेकर कन्याकुमारी के छोर तक विस्तत था। यह बड़ी संख्या में कबीलाई समूहों में विभक्त था तथा कबीले के सरदार की परम्परा वंशवादी थी।

संगम युग के दौरान तमिल क्षेत्र पर शासन करने वाले बड़े कबीलाई सरदार थे चोल, जिनकी राजधानी थी उरैयर, चेर जिनकी राजधानी थी। वनजी (करुर के निकट) तथा पांड्या जिनकी राजधानी थी मदुरै। चोल, चेर तथा पांड्यों के बीच बार–बार संघर्ष होते रहते थे। इसके फलस्वरूप संगम कवियों के युद्ध आधारित कविताओं के सजन की प्रेरणा मिली।

इस युग का तमिल क्षेत्र पाँच 'टिनाइयों' अर्थात आर्थिक क्षेत्रों में विभाजित था अर्थात विशेष आर्थिक स्रोतों पर आधारित क्षेत्र। वे थे–'कुरिनजी' (पहाड़ी क्षेत्र) 'पलाई' (निर्जल क्षेत्र): 'मुलई' (चरवाहे क्षेत्र):'मरुदम' (नम क्षेत्र) तथा 'नीतल' (समुद्री तट)। इन क्षेत्रों का सीमांकन स्पष्ट नहीं था तथा पूरे क्षेत्र में ये बिखरे थे। अपनी विभिन्न भौगोलिक संदर्भों तथा पर्यावरण विषयक विशेषताओं की वजह से विभिन्न 'टिनाइयों' के नागरिकों के अपने स्वयं के निर्वाह के लिए स्वयं के माध्यम थे। जैसे कुरिंजी में शिकार करना तथा कंदमूल चुनना था। पलाई में, जहाँ कुछ उत्पादन सम्भव नहीं था, यह आक्रमण तथा लूटपाट था। मुलाई में यह पशुओं की देखभाल के रूप में या, मरुदम में क षि तथा नीतल में यह मछली पकड़ना तथा नमक उत्पादन था।

हालाँकि वर्ण व्यवस्था का ज्ञान होने के बावजूद उत्तर भारतीयों की भाँति संगम काल में समाज के वर्ग को उच्च अथवा निम्न श्रेणी से नहीं पहचाने जाते थे। जैसे समाज में ब्राह्मणों का अस्तित्व था तथा सभी वैदिक कर्मकाण्ड तथा समारोह वे ही संचालित करते

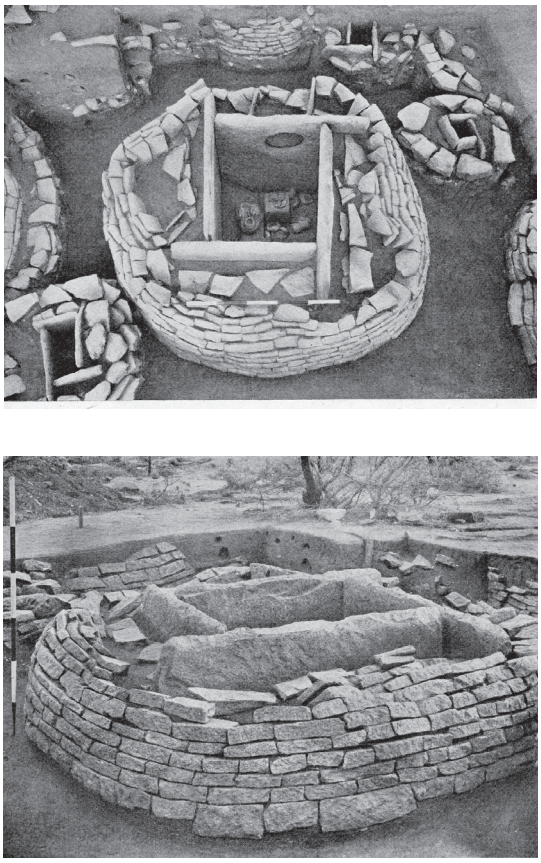

चित्र 6.3 महापाषाणिक कब्रें

थे सरदार के सलाहकार के रूप में भी कार्य करते थे, किन्तु उन्हें समाज में विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था। व्यक्ति अपने व्यवसाय के अनुसार ही जाने जाते थे। जैसे कारीगर, शिल्पी, नमक विक्रेता, व्यवसायी, कपड़ा व्यवसायी। सम्पन्न वर्ग ईंटों से बने पक्के मकानों में निवास करता था तथा मूल्यवान वस्त्र धारण करता था, वहीं निर्धन वर्ग मिट्टी की झोंपड़ी में निवास करता था साधारण वस्त्र धारण करता था।

योद्धाओं को समाज में विशिष्ट स्थान प्राप्त था तथा युद्ध करते समय अपने प्राण अर्पित करने वाले योद्धाओं के सम्मान में पत्थर के स्मारक 'नटुकल' या 'विरुकल' स्थापित किए

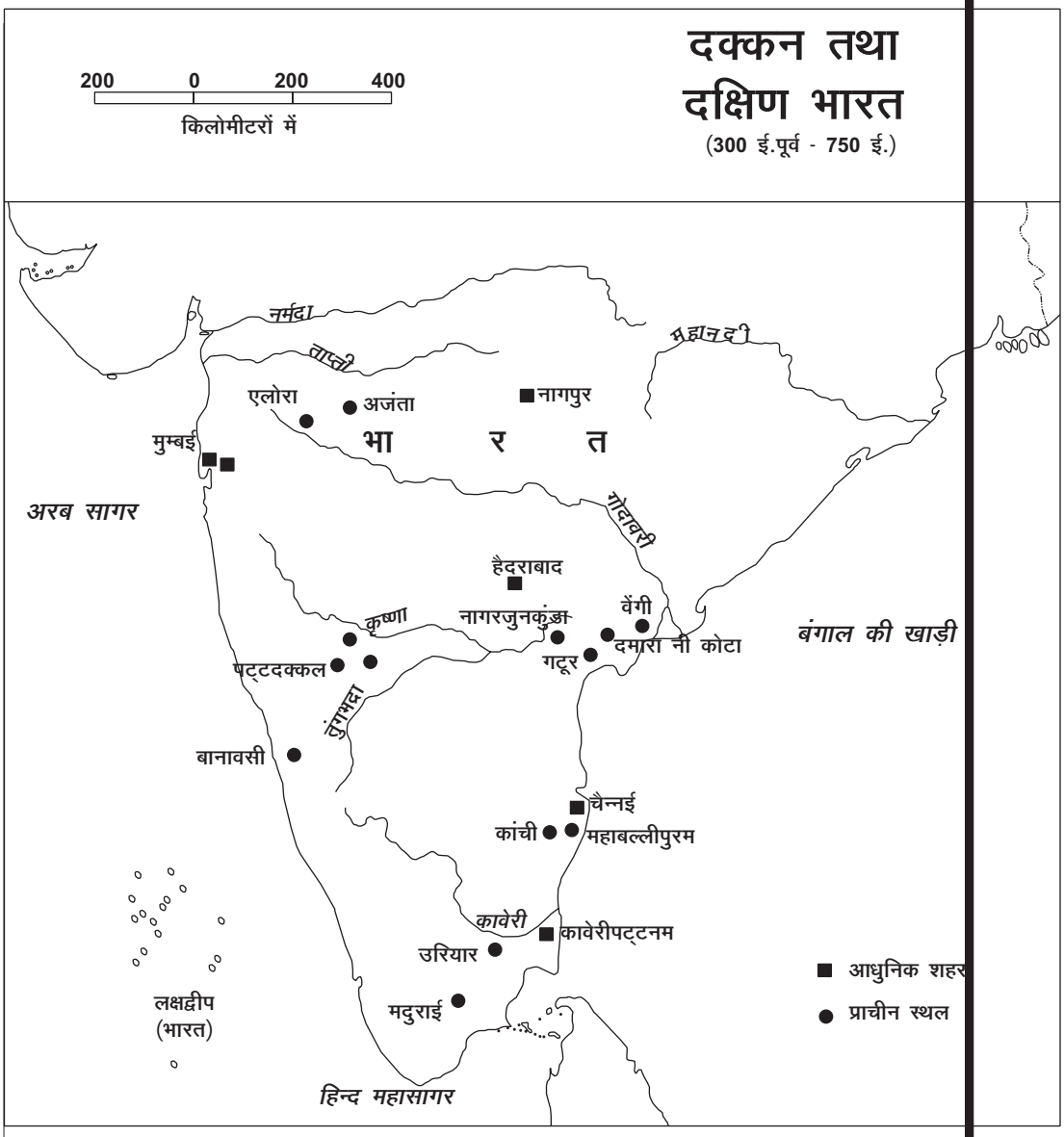

मानचित्र 6.3 तमिलनाडु तथा उत्तर संस्क ति



आपकी टिप्पणियाँ

जाते थे उन्हें देव–प्रतिमाओं के समान पूजा जाता था। संगम युग की महिलाएं शिक्षित प्रतीत होती हैं। यह संगम साहित्य में कवियत्रियों द्वारा रचनाओं के योगदान से ज्ञात होता है। महिलाओं की क्रियाशीलता आर्थिक गतिविधियों में भी मिलती है यथा धानारोपण, पशुओं का पालन–पोषण, टोकरी निर्माण, धागा बनाना इत्यादि। हालाँकि सती प्रथा जैसी क्रूर परम्परा भी तमिल समाज में अस्तित्व में थी तथा इसे 'तिपायदल' कहते थे। किन्तु यह बाध्यकारी नहीं थी, क्योंकि समाज में कई विधवाओं के संदर्भ भी प्राप्त होते हैं। हालाँकि उनकी स्थिति शोचनीय थी, क्योंकि उनके साज–सिंगार पर तथा किसी भी प्रकार के आमोद–प्रमोद में भाग लेने पर प्रतिबंध था।

लोग क षि, शिल्प तथा व्यवसाय जैसी विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में व्यस्त थे। धान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पैदावर मानी जाती थी। यह लोगों के भोजन का अभिन्न अंग होने के साथ–साथ वस्तु विनिमय में भी काम आती थी। चूंकि तमिल क्षेत्र में निरन्तर बहने वाली नदी नहीं है अतः शासक वर्ग तालाब तथा बांधों का निर्माण करके क षि गतिविधियों को प्रोत्साहित करता था। चोल शासक कारिकल को कावेरी नदी पर बांध का निर्माण करने का श्रेय दिया जाता है। इसे देश में प्रथम बांध होने का भी गौरव प्राप्त है। शिल्प के क्षेत्र में सूती तथा रेशमी वस्त्रों की कताई सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थी। नमक उत्पादन अन्य महत्त्वपूर्ण गतिविधि थी। संगम काल की सबसे विशिष्ट विशेषता रोम साम्राज्य के साथ व्यापारिक प्रगति थी। दक्षिण भारत से मिली रोम मुद्राओं से इस तथ्य की पुष्टि होती है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि मानसूनों की खोज तथा भारतीय तटों पश्चिमी विश्व के मध्य प्रत्यक्ष समुद्री मार्ग इस व्यावसायिक प्रगति का मुख्य कारक रहा। इसने तमिल क्षेत्र में नए जिलों तथा शिल्प केंद्रों को जन्म दिया। वनजी जो तमिलनाडु में वर्तमान करूर के नाम से जाना जाता है, चेर वंश की राजधानी होने के साथ–साथ व्यापार तथा शिल्प का महत्त्वपूर्ण केंद्र था। 'मुजरिस' अर्थात दक्षिण पश्चिम तट पर क्रैंगेनोर चेर साम्राज्य का सर्वोत्तम बंदरगाह था। हमें बताया जाता है कि सोने से लदे रोम के पोत यहाँ आते थे तथा बड़ी मात्रा में काली मिर्च ले जाते थे। यह उत्क ष्ट वस्तुओं तथा हाथी दाँत का महत्त्वपूर्ण केंद्र था। तमिलनाडु के तिरुनेलवल्ली जिले में स्थित कोरकेई पांड्यों का एक प्रमुख बंदरगाह था। यह अपने मोतियों के लिए प्रसिद्ध था। चोल वंश की राजधानी उरैयुर (तमिलनाडु मे तिरुचनापल्ली) वैभवशाली भवनों वाली भव्य नगरी थी। चोलों का प्रमुख बंदरगाह केवरीपट्टनम अथवा पुहार था। संगम कवियों ने बाज़ार को सैनिकों द्वारा सुरक्षित बताया है।

धर्म के क्षेत्र में संगम काल में उत्तर भारतीय तथा दक्षिण भारतीय परम्पराओं के मध्य शांतिपूर्ण तथा निकट संबंध थे। धार्मिक कर्मकांड करवाने वाले ब्राह्मणों ने दक्षिण भारत में इन्द्र, विष्णु तथा शिव इत्यादि की अराधना को लोकप्रिय बनाया। जैन तथा बौद्ध भिक्षुओं के भी तमिल क्षेत्र में अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। स्थानीय नागरिक, विशेषकर पहाड़ों पर निवास करने वाले, मुरुगन नामक देवता की आराधना करते थे, जिसे उत्तर भारत में युद्ध का देवता कार्तिकेय माना जाता है।

संक्षेप में, संगम साहित्य प्रेम तथा भावनाओं (अहम्) युद्ध तथा सामाजिक आचरण (पूरम) के माध्यम से ई.पू. 300 से 300 ई. तक तमिल क्षेत्र के राजनीतिक संघर्ष, सामाजिक विषमता तथा आर्थिक सम द्धि का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है।

पाठगत प्रश्न 6.8

1. महापाषाणिक से आाप क्या समझते हैं?

2. संगम शब्द से क्या तात्पर्य है?

3. संगम साहित्य की विषय–वस्तु क्या थी?

4. संगम साहित्य में वर्णित मुख्य कबीले तथा सरदार कौन थे?

5. संगम कविताओं में वर्णित पाँच टिनाई अथवा आर्थिक क्षेत्र कौन से थे?

6. किस चोल शासक ने कावेरी नदी पर बांध का निर्माण किया?

आपने क्या सीखा

मौर्योत्तर काल में शुंग उत्तर भारत में मौर्यों के उत्तराधिकारी बने। उनके पश्चात कुषाणों ने शक तथा पह्लवों को पराजित कर वाराणसी से लेकर मध्य–एशिया तक बड़े साम्राज्य की स्थापना की। कुषाण शासकों ने सर्वाधिक प्रसिद्ध शासक कनिष्क था। वह बौद्ध धर्म का महान संरक्षक था। उसने चतुर्थ बौद्ध समिति का आयोजन कराया तथा कला की गांधार मथुरा शैली को राजकीय संरक्षण दिया। उसके विशाल साम्राज्य की वज़ह से आंतरिक तथा विदेशी व्यापार में प्रगति हुई।

दक्षिण में सातवाहन वंश का साम्राज्य क ष्णा नदी तथा गोदावरी नदी के मध्य स्थापित हुआ तथा इस वंश ने औरंगाबाद के निकट प्रतिष्ठान को अपनी राजधानी बनाया। रोम साम्राज्य के साथ होने वाले लाभकारी व्यापार की वजह से भारतीय उपमहाद्वीप में व्यापार तथा वाणिज्य में अभूतपूर्व प्रगति देखी गई। कला की अमरावती शैली आंध्र प्रदेश में उनके प्रश्रय में फूली–फली।

दक्षिण भारत में नवप्रस्तर काल के बाद 1200 ई. पू. से 300 ई. पू. के मध्य महापाषाणिक सभ्यता अस्तित्व में आई।

महापाषाणिक नागरिक अपने जीवन निर्वाह के लिए क षि आधारित गतिविधियों पर आश्रित थे। ई.पू. 300 से 300 ई. तक संगम साहित्य दक्षिण भारत के आरम्भिक इतिहास पर प्रकाश डालता है। इससे हमें दक्षिण भारत के तीन प्रमुख नायक चोल, चेर तथा पांड्या की गतिवधियों का ज्ञान होता है। यह तत्कालीन तमिल समाज की अर्थव्यवस्था तथा सभ्यता का विविधतापूर्ण चित्रण करता है।

पाठांत प्रश्न

1. मौर्य वंश के बाद उत्तर भारत में प्रमुख राजनीतिक विकास पर प्रकाश डालिए।
2. कुषाण कौन थे? भारत में उनके योगदान की समीक्षा कीजिए?
3. ईसाई युग की आरम्भिक शताब्दी में भारत तथा मध्य एशिया के मध्य संबंधों की विस्तार से चर्चा कीजिए?
4. गौतमीपुत्र शतकर्णी की उपलब्धियों पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए?
5. भारत के समुद्री व्यापार की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए?
6. उत्तर मौर्योत्तर काल में प्रस्फुटित में मूर्तिकला की विभिन्न शैलियों का विस्तार से वर्णन करें?
7. ईस्वी सम्वत की आरम्भिक शताब्दियों के बारे में तमिल क्षेत्र की राजनीतिक सामाजिक व्यवस्था की जानकारी संगम साहित्य हमें किस प्रकार देता है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

6.1

1. बहद्रत
2. शुंग शासक भागभद्र के दरबार में हेलीडोरस भारतीय यूनानी शासक अतिलकी दास का राजदूत था।
3. मेनेन्दर
4. जूनागढ़ का रुद्रदमन अथवा गिरनार शिलालेख
5. मध्य एशिया

6.2

1. कनिष्क
2. 78 ई. में, कनिष्क
3. कुंडलवन (वर्तमान में जम्मू/कश्मीर में श्रीनगर के निकट हरवान) कनिष्क के संरक्षण में
4. आयुर्वेद के जनक के रूप में, जिन्होंने चरकसंहिता नामक पुस्तक लिखी।

6.3

1. उनमें शासक के चित्रों का चित्रण होता था।
2. यवना



6.4

1. चेरी वंश का शासक खारवेल, जिसने कलिंग पर ई.पू. द्वितीय शताब्दी के लगभग शासन किया
2. भुवनेश्वर के निकट उड़ीसा

6.5

1. गौतमी पुत्र शतकर्णी (प्रथम शताब्दी उत्तरार्द्ध)
2. प्रतिष्ठान (महाराष्ट्र में औरंगाबाद के निकट पैठान)
3. ग्राम
4. सातवाहन
5. ब्राह्मण

6.6

1. उत्तरपथ एक भूमिपथ था, जो भारत के उत्तरी तथा पूर्वी हिस्सों को उत्तर–पश्चिमी सीमाओं से जोड़ता था (आधुनिक पाकिस्तान तथा उसके आगे)
2. दक्षिणपथ वह थलमार्ग था, जो भारतीय प्रायद्वीप को भारत के उत्तर तथा पश्चिमी हिस्सों के साथ जोड़ता था।
3. इससे भारत तथा रोम के मध्य समुद्री व्यापार को प्रोत्साहन मिला।
4. 'फैरीप्लस ऑफ द एरीथ्रियन सी' एक अज्ञात लेखक द्वारा प्रथम शताब्दी में लिखी गईं।
5. कारीगरों व्यापारियों का संघ।

6.7

1. स्तूपों का निर्माण तथा कला की क्षेत्रीय शैलियों का विकास।
2. स्तूप बौद्धों का उपासना स्थल हुआ करते थे, क्योंकि इसमें बुद्ध अथवा बौद्ध भिक्षुओं के अवशेष संग हीत होते थे।
3. सांची, बरहुत अमरावती तथा नागार्जुनकोंडा स्तूप
4. बौद्ध स्थापत्य कला के अन्तर्गत चैत्य तथा विहार चट्टान काट कर बनाए गए भवन थे। चैत्य मंदिर की भाँति था विहार भिक्षुओं का निवास स्थान था।
5. कला की मथुरा, गांधार तथा अमरावती शैलियां।
6. काले बिन्दुओं के साथ लाल पत्थर
7. शक कुषाण

6.8

1. महापाषाणिक कब्र स्थल थे, जिसमें कब्रें हुआ करती थीं।

2. यह तमिल कवियों के सम्मेलन को इंगित करता है।
3. प्रेम तथा युद्ध
4. 'कुरनिजी' (पहाड़ी क्षेत्र), 'पलाई' (निर्जल क्षेत्र), 'मुलाई' (चरवाहे क्षेत्र) 'मरुदम' (नम क्षेत्र) तथा 'नीतल' (समुद्री तट)
5. संगमकालीन चोल शासक करिकल

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें अनुच्छेद 6.2
2. देखें अनुच्छेद 6.2.2
3. देखें अनुच्छेद 6.3
4. देखें अनुच्छेद 6.5
5. देखें अनुच्छेद 6.6.2
6. देखें अनुच्छेद 6.7.3
7. देखें अनुच्छेद 6.8.2



7

गुप्तवंश तथा उनके उत्तराधिकारी

कुषाण वंश के पतन के पश्चात उत्तर भारत में गुप्त वंश का उदय हुआ। इस वंश के शासकों ने बड़े साम्राज्य की स्थापना की, जिसमें पूरा उत्तर भारत शामिल था। गुप्तों के पास कुछ अनुकूल भौतिक परिस्थितियां थी, जिन्होंने साम्राज्य के गठन में सहायता प्रदान की। वे पूर्वी उ.प्र. तथा बिहार से संचालन किया करते थे, जो कि बेहद उपजाऊ क्षेत्र थे। वे अपने लाभ के लिए मध्य भारत तथा बिहार के लौह अयस्कों को भी ले सकते थे। इस युग में कला, वास्तुकला तथा साहित्य के क्षेत्र में बहुत प्रगति हुई। उन्होंने सन् 550 तक शासन किया। उनके पतन के पश्चात् उत्तर भारत विभिन्न क्षेत्रीय शक्तियों में विभाजित हो गया। दक्षिण भारत में भी दो महत्त्वपूर्ण वंशों क्रमशः चालुक्य तथा पल्लवों का सन् 550 से 750 तक शासन रहा।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- गुप्त साम्राज्य का उदय तथा उनके शासकों की राजनीतिक उपलब्धियों की व्याख्या कर सकेंगे;
- गुप्तों के पतन के पश्चात् क्षेत्रीय शक्तियों के शासन का वर्णन कर सकेंगे;
- गुप्तकालीन तथा गुप्तोत्तरकालीन राजनीतिक व्यवस्था का विश्लेषण कर सकेंगे;
- सन् 300 से सन् 700 के मध्य हुए सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों का विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे;
- कला तथा साहित्य के संदर्भ में सांस्क तिक विकास को दिखा सकेंगे;
- ब्राह्मणवादी परम्पराओं/रीतिरिवाजों को मजबूत होने तथा पौराणिक धर्म के उदय के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे और
- विज्ञान तथा तकनीकी के क्षेत्र में हुए विकास को दिखा सकेंगे।



आपकी टिप्पणियाँ

7.1 राजनीतिक इतिहास

गुप्त वंश की स्थापना श्रीगुप्त ने की थी जो संभवतया वैश्य जाति से संबंधित थे। वे मूलतः मगध (बिहार) तथा प्रयाग (पूर्वी उ.प्र.) के वासी थे। उसके पुत्र घटोत्कच जिसने महाराजा की उपाधि धारण की थी, एक छोटा–मोटा शासक प्रतीत होता है, किन्तु उसके विषय में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

क) चन्द्रगुप्त प्रथम

गुप्त वंश की वास्तविक नींव चन्द्रगुप्त प्रथम के शासनकाल में (सन् 319 से 334) पड़ी। सन् 319 में उसके राज्यारोहरण को गुप्त साम्राज्य का प्रारम्भ माना जाता है। समस्त अभिलेखों में इसी का उल्लेख मिलता है तथा उनके सामंतो में भी। उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की थी। उसका विवाह लिच्छवी वंश की राजकुमारी कुमारदेवी से हुआ था। चन्द्रगुप्त द्वारा ज़ारी की गई स्वर्ण मुद्राओं की श्रंखला में इस घटना को वर्णित किया गया है। प्रतीत होता है कि इस वैवाहिक सम्बन्ध ने गुप्त सम्राट को वैधता, सम्मान तथा शक्ति प्रदान की। चन्द्रगुप्त का साम्राज्य मगध (बिहार), साकेत (आधुनिक अयोध्या) तथा प्रयाग (वर्तमान इलाहाबाद) तक विस्त त था। उसकी राजधानी पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) थी।

पाठगत प्रश्न 7.1

1. गुप्त वंश का वास्तविक संस्थापक कौन था?

   _____

2. ऐसी दो अनुकूल परिस्थितियों को बतलाएं जिन्होंने गुप्त वंश के प्रसार में सहायता दी।

   _____

3. लिच्छवी के साथ हुए वैवाहिक संबंध ने चन्द्रगुप्त को किस प्रकार सहायता प्रदान की।

   _____

(ख) समुद्रगुप्त

समुद्रगुप्त (सन् 335-375) चन्द्रगुप्त प्रथम का उतराधिकारी बना। समुद्रगुप्त ने युद्ध तथा विजय की नीति का अनुसरण किया एवं अपने साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार किया। उसकी उपलब्धियों का सम्पूर्ण विवरण उसके राजदरबारी कवि हरिसेन द्वारा संस्क त में लिखे गए वर्णन में लिपिबद्ध किया गया है। यह आलेख इलाहाबाद के निकट एक स्तंभ पर वर्णित है। यह समुद्रगुप्त द्वारा जीते गए वंशों तथा क्षेत्रों के नाम को बतलाती है। उसने हर जीते हुए क्षेत्र के लिए भिन्न नीतियाँ अपनाई थीं।

गंगा यमुना दोआब में उसने दूसरे राज्यों को बलपूर्वक सम्मिलित करने की नीति का अनुसरण किया। उसने नौ नागा शासकों को पराजित कर उनके राज्य को अपने साम्राज्य में मिलाया। तत्पश्चात् वह मध्य भारत के वन प्रदेशों की ओर बढ़ा जिनका उल्लेख 'अतवीराज्य' के रूप में मिलता है। इन कबायली क्षेत्रों के शासक



पराजित हुए तथा दासत्व को बाध्य हुए। इस क्षेत्र का राजनीतिक द ष्टि से भी व्यापक महत्त्व हैं क्योंकि इससे दक्षिण भारत को मार्ग जाता था। इसने समुद्रगुप्त को दक्षिण की ओर कूच करने में सक्षम किया तथा पूर्वीतट को जीतते हुए, बारह शासकों को पराजित करते हुए वह सुदूर काँची (चेन्नई के निकट) तक पहुँच गया। समुद्रगुप्त ने राज्यों को बलपूर्वक अपने साम्राज्य में सम्मिलित करने के स्थान पर उदारता का परिचय दिया तथा उन शासकों को उनके राज्य वापस लौटा दिए। दक्षिण भारत के लिए राजनीतिक समझौते की नीति इसलिए अपनाई गई क्योंकि उसे ज्ञात था कि एक बार उत्तर–भारत में अपने क्षेत्र में लौटने के पश्चात इन राज्यों पर नियन्त्रण स्थापित रखना दुष्कर होगा। अतः उसके लिए इतना पर्याप्त था कि ये शासक उसकी सत्ता को स्वीकारें तथा उसे कर तथा उपहारों का भुगतान करें।

इलाहाबाद अभिलेख के अनुसार पाँच पड़ोसी सीमावर्ती प्रदेश तथा पंजाब एवं पश्चिम भारत के नौ गणतन्त्र समुद्रगुप्त की विजयों से भयभीत हो गए थे। उन्होंने बिना युद्ध किए ही समुद्रगुप्त को धन तथा करों का भुगतान करना तथा एवं उसके आदेशों का पालन करना स्वीकार कर दिया था। अभिलेख से यह भी ज्ञात है कि दक्षिण–पूर्वी एशिया के भी कई शासकों से समुद्रगुप्त को धनादि प्राप्त होता था।

मुख्य रूप से यह माना जाता है कि हालांकि उसका साम्राज्य एक विस्त त भू–खण्ड तक फैला हुआ था, किन्तु समुद्रगुप्त का प्रत्यक्ष प्रशासनिक नियन्त्रण मुख्य गंगा घाटी में था। वह अपनी विजय का उत्सव अश्वबलि देकर मनाता था अश्वमेध एवं इस अवसर पर अश्वमेध प्रकार के सिक्के (बलि को वर्णित करते सिक्के) जारी करता था। समुद्रगुप्त केवल विजेता ही नहीं, बल्कि एक कवि, एक संगीतकार, तथा शिक्षा का महान संरक्षक था। संगीत के प्रति उसका प्रेम उसकी उन मुद्राओं से मुखरित होता है, जिसमें उसे वीणा बजाते हुए दिखाया गया है।

पाठगत प्रश्न 7.2

1. समुद्रगुप्त के इतिहास में इलाहाबाद स्तंभ के अभिलेख की क्या महत्ता है?

2. समुद्रगुप्त के काल की मुद्राओं से उसकी कौन–सी विशेषताओं का पता चलता है।

(ग) चन्द्रगुप्त द्वितीय

समुद्रगुप्त के पश्चात् उसका पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय उसका उत्तराधिकारी बना। उसे चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के नाम से भी जाना जाता है। उसने मात्र अपने पिता के साम्राज्य का विस्तार ही नहीं किया, बल्कि इस युग के अन्य वशों के साथ वैवाहिक संबंधों द्वारा अपनी स्थिति को भी सुद्ढ़ किया।

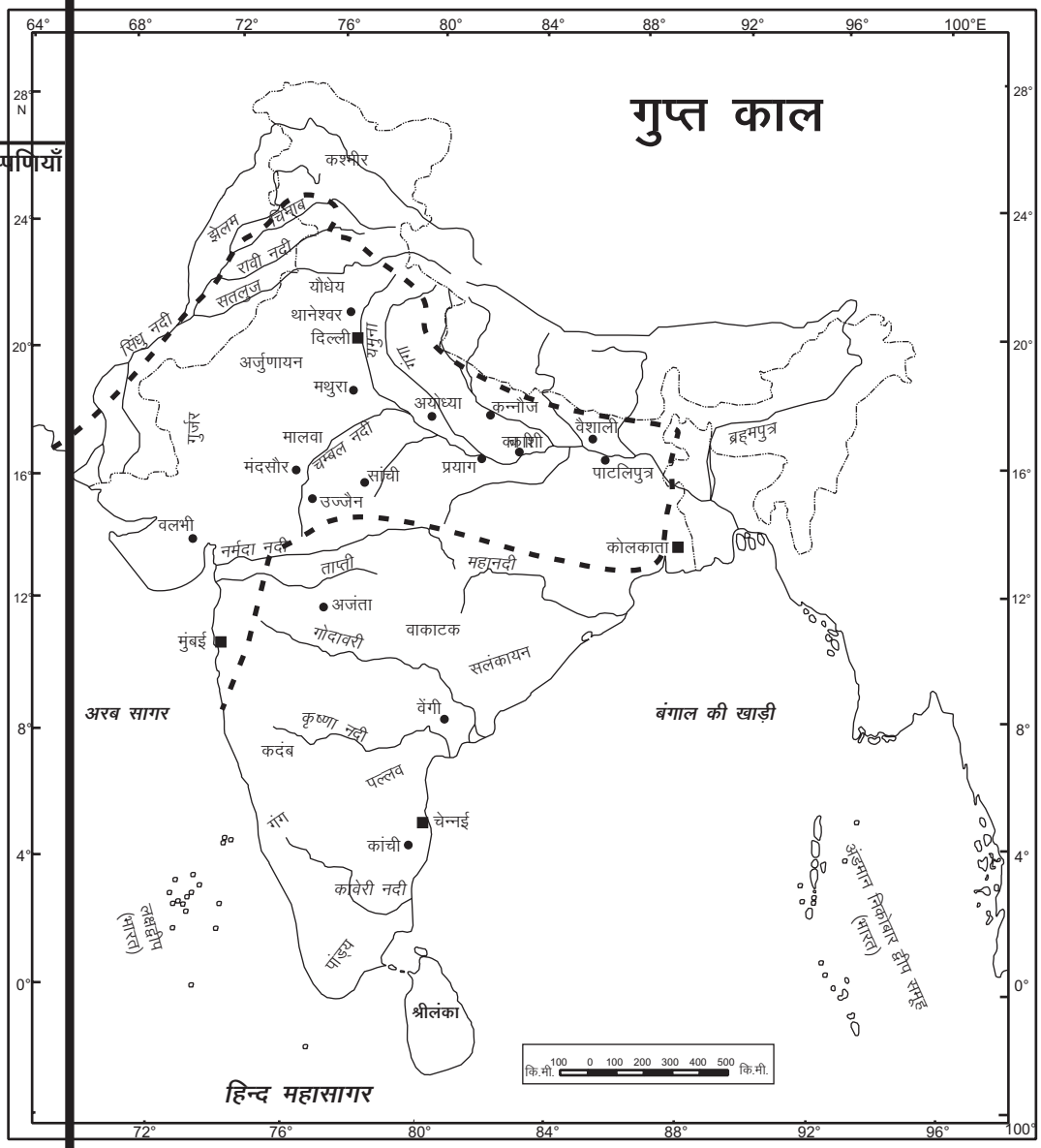

मानचित्र 7.1 गुप्त साम्राज्य

उसने नागा राजकुमारी कुवेरनाग से विवाह किया तथा उसे प्रभावती नामक पुत्री भी थी। प्रभावती का विवाह दक्षिण में शासन कर रहे वाकाटक वंश के शासक रुद्रसेन द्वितीय से हुआ था। अपने पति की म त्यु के उपरान्त कलावती ने अपने पिता की सहायता से अपने अवयस्क पुत्र के संरक्षक के रूप में शासन किया था। वाकाटक क्षेत्र पर नियंत्रण चंद्रगुप्त द्वितीय के लिए वरदान सिद्ध हुआ, क्योंकि अब वह अपने अन्य शत्रुओं पर और बेहतर तरीके से आक्रमण कर सकता था।

उसकी महानतम सैन्य उपलब्धि पश्चिमी भारत में 300 वर्षों से शासन कर रहे शासक साम्राज्य पर विजय रही। इस विजय के फलस्वरूप गुप्त साम्राज्य की सीमाएं भारत के पश्चिमी तट तक पहुंच गईं



मेहरौली, दिल्ली में स्थित एक लौह स्तंभ से हमें संकेत मिलते हैं कि उसके साम्राज्य में उत्तर–पश्चिम भारत तथा बंगाल के भी राज्य थे। उसने विक्रमादित्य की उपाधि धारणा की थी अर्थात् सूर्य के समान बलशाली। चंद्रगुप्त द्वितीय कला तथा साहित्य के संरक्षण के लिए विख्यात है। उसके दरबार में नवरत्न हुआ करते थे। संस्क त के महान कवि तथा नाटककार कालिदास इनमें सर्वाधिक चर्चित रहे। चीनी बौद्ध तीर्थयात्री फाह्यान (सन् 404-411) ने उसके शासन काल में भारत की यात्रा की थी। उसने पांचवी शताब्दी के लोगों के जीवन का विवरण दिया है।

पाठगत प्रश्न 7.3

1. चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री का विवाह किस वंश के शासक से हुआ था?

   _____

2. इस संबंध ने चन्द्रगुप्त को किस प्रकार लाभान्वित किया?

   _____

3. चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में यात्रा करने वाले चीनी तीर्थयात्री का नाम बताएं?

   _____

4. चन्द्रगुप्त द्वितीय के दरबार में अलंक त होने वाले चर्चित संस्क त कवि तथा नाटककार का नाम बताएं।

   _____

(घ) पतन

चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र कुमारगुप्त (सन् 415 से 455) सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। अपने पिता के साम्राज्य की रक्षा करने में वह प्रारंभ में सफल रहा, किन्तु उसके शासन के उत्तरार्द्ध में मध्य एशिया में शासन कर रहे हूणों से उन्हें चुनौती मिलनी प्रारंभ हो गईं। बैक्ट्रिया पर अधिपत्य स्थापित करने के उपरान्त हूणों ने हिन्दुकुश पर्वत को पार कर भारत में प्रवेश किया। हूणों का प्रथम आक्रमण राजकुमार स्कन्दगुप्त द्वारा विफल कर दिया गया। किन्तु गुप्त शासक हूणों के उत्तरवर्ती आक्रमणों से अपने साम्राज्य की रक्षा नहीं कर पाए तथा बार–बार के आक्रमणों ने साम्राज्य को दुर्बल बना दिया। यह गुप्त साम्राज्य के विघटन के लिए उत्तरदायी घटकों में मुख्य घटक था।

हूणों द्वारा लिखे गए आलेखों से ज्ञात होता है कि सन् 485 तक उन्होंने मालवा तथा मध्य भारत के बड़े हिस्से पर अधिपत्य स्थापित कर लिया था। पंजाब तथा राजस्थान भी उनकी झोली में थे। हूण वंश का प्रथम चर्चित शासक तोरमण था, जिसने मध्य भारत में भोपाल के निकट एरान तक अपने साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। उसका पुत्र मिहिरकुल सन् 515 में उसका उत्तराधिकारी बना। आलेखों में उसका विवरण तानाशाह

तथा क्रूर शासक के रूप में मिलता है। मालवा के शासक यशोधर्मन तथा गुप्त शासक नरसिंहगुप्त बालादित्य ने अंततः मिहिरकुल को पराजित किया, किन्तु हूणों पर यह विजय भी गुप्त साम्राज्य को नया जीवन न दे सकी।

हूणों के आक्रमण के अतिरिक्त आर्थिक सम द्धि में भी ह्रास हुआ। यह उत्तरवर्ती गुप्त शासकों के काल की मुद्राओं से ज्ञात होता है, जिसमें सोने की मात्रा कम थी तथा मिश्र धातु की अधिकता थी। हम गुप्तोत्तर काल में मुद्राओं की क्रमिक कमी भी पाते हैं। इसने शासकों को नकद राशि के स्थान पर भूमि के रूप में भुगतान करने की प्रक्रिया को जन्म दिया। इस तथ्य का ज्ञान ब्राह्मणों तथा अधिकारियों को बड़े पैमाने पर दान किए भूखण्डों के अधिकार पत्रों से मिलता है।

धार्मिक तथा साम्प्रदायिक उद्देश्यों से भूखण्ड दान के बदले शासन को सेवाएं प्रदान करने की परम्परा जागीरदारी प्रथा कहलाई। इस प्रथा के अंतर्गत, दान पाने वाले व्यक्ति को मात्र कर संग्रह का ही नहीं, बल्कि दान में प्राप्त भूमि के प्रबंध का भी अधिकार दिया जाता था। इसने विभिन्न छोटे शक्ति केंद्रों को जन्म दिया, जिन्होंने शासन को चुनौती देने के लिए अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार किया।

गुप्त साम्राज्य के पतन के परिणामस्वरूप उत्तर भारत में विभिन्न क्षेत्रों में बड़ी संख्या में शासक वंशों का उदय हुआ। इनमें प्रमुख रहे थानेसर के पुष्यभूति, कन्नौज के मौखरी एवं वलभी के मैत्रक। भारतीय प्रायद्वीप में भी राजनीतिक परिद श्य भिन्न नहीं था। दक्षिण तथा उत्तरी तमिलनाडु में क्रमशः चालुक्य तथा पल्लव मजबूत राजनीतिक शक्तियों के रूप में प्रकट हुए।

पाठगत प्रश्न 7.4

1. तोरमण किस वंश से सबंधित था?

   _____

2. हूणों के प्रथम आक्रमण को विफल करने वाले गुप्त वंश के राजकुमार का नाम लिखें।

   _____

3. गुप्त वंश के पतन के उपरांत उदय होने वाले दो वंशों का नाम लिखें।

   _____

7.2 मैत्रक

मैत्रक गुप्त वंश के सहायक मुखिया थे, जिन्होंने पश्चिम भारत में एक स्वतंत्र सत्ता की स्थापना की थी। मैत्रक वंश का सर्वाधिक प्रमुख शासक ध्रुवसेन द्वितीय था। वह हर्षवर्धन का समकालीन था तथा हर्षवर्धन की पुत्री के संग उसका विवाह हुआ था। ह्वेनत्सांग के विवरणों से हमें पता चलता है कि ध्रुवसेन द्वितीय ने हर्षवर्धन द्वारा प्रायोजित



सभा में प्रयाग (इलाहाबाद) में हिस्सा लिया था। गुजरात में सौराष्ट्र पर शासन करते हुए मैत्रक सम्राटों ने वलभी को अपनी राजधानी के रूप में विकसित किया। यह नगर शीध्र ही ज्ञानार्जन का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया। अरब सागर के किनारे स्थित होने के कारण यह प्रमुख बंदरगाही शहर था, जिसमें व्यवसाय तथा वाणिज्य सम द्व था। मैत्रक वंश का शासन आठवीं शताब्दी तक सुचारू रूप से चलता रहा जब तक कि अरब आक्रमणकारियों ने उनकी शक्ति को क्षीण नहीं कर दिया।

7.3 मौखरी

मौखरी वंश का शासन पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले में रहा जो धीरे–धीरे पाटलिपुत्र के स्थान पर उत्तर भारत में सत्ता का केन्द्र बन कर उभरा। मौखरी शासक गुप्त शासकों के अधीन शासक थे तथा 'सामंत' उपाधि का प्रयोग करते थे। हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री का विवाह ग हवर्मन से हुआ था। बंगाल के शासक शशांक एवं उत्तरवर्ती गुप्त शासक देवगुप्त ने संयुक्त रूप से ग हवर्मन पर आक्रमण किया तथा उनकी हत्या कर दी। कन्नौज के राज्य का पुष्यभूति के राज्य में विलय हो गया एवं हर्षवर्धन ने अपनी राजधानी थानेसर (कुरूक्षेत्र) से कन्नौज में स्थानान्तरित कर दी।

7.4 थानेसर का पुष्यभूति वंश

गुप्त साम्राज्य के क्षीण होने के पश्चात प्रमुख शासक वंश पुष्यभूति रहा जिनकी राजधानी थानेसर (कुरूक्षेत्र में थानेस्वर) थी। प्रभाकरवर्धन के सिंहासनारोहण के पश्चात् यह वंश अत्यधिक प्रभावी हो गया था। प्रभाकरवर्धन ने हूणों को पराजित करने में सफलता प्राप्त की एवं पंजाब तथा हरियाणा क्षेत्र में अपनी स्थिति को सुद ढ़ किया। उसकी म त्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र सिंहासन पर बैठा, किन्तु बिहार तथा बंगाल के शासक शशांक द्वारा उसकी निर्मम हत्या कर दी गई। सन् 606 के लगभग हर्षवर्धन का राज्याभिषेक हुआ। उस समय वह मात्र 16 वर्ष का था। तथापि उसने स्वयं को एक महान योद्धा तथा कुशल प्रशासक सिद्ध किया। हर्षवर्धन (606–647) के जीवन तथा काल के संबंध में प्रकाश डालने के लिए हमारे पास मूल्यवान स्रोत है। वे हैं उसके दरबारी कवि बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित्र तथा चीनी बौद्ध तीर्थयात्री ह्वेनत्सांग का यात्रा व त्तांत 'सी–यू–की', जिससे सन् 629 से लेकर 644 तक भारत यात्रा की।

गद्दी संभालने के पश्चात् हर्षवर्धन ने अपने साम्राज्य को अपनी बहन के साम्राज्य के साथ मिला कर संयुक्त किया एवं अपनी राजधानी को कन्नौज में स्थानान्तरित किया। हर्षवर्धन को उत्तर का देव की उपाधि दी गई । उसने पंजाब, उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा को संगठित किया। हर्ष अपने साम्राज्य की पताका दक्षिण में भी फैलाना चाहता था किन्तु नर्मदा नदी के तट पर चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय ने उसे पराजित कर दिया। इस प्रकार नर्मदा नदी उसके साम्राज्य की दक्षिणी सीमा बन गई।

हर्षवर्धन की म त्यु के उपरान्त सन् 647 से भारत में राजनीतिक अनिश्चितता का दौर प्रारंभ हुआ जो आठवीं शताब्दी तक चला, जब उत्तर भारत में गुर्जर, प्रतिहार, राजपूत शासक बड़ी शक्तियों के रूप में उभरे।

पाठगत प्रश्न 7.5

1. हर्षचरित्र का रचयिता कौन था?

2. किस राजा के शासन काल में ह्वेनत्सांग ने भारत की यात्रा की?

3. हर्षवर्धन को किस शासक ने पराजित किया।

भारतीय प्रायद्वीप

7.5 वाकाटक साम्राज्य

भारतीय प्रायद्वीप में वाकाटक एक स्थानीय सत्ता थे जिनका साम्राज्य उत्तरी महाराष्ट्र तथा विदर्भ में था। उनका इतिहास ब्राह्मणों को दान की गई भूमि के लिए जारी किए गए अधिकार पत्रों की सहायता से पुनः लिखा जा सकता है। शाही वाकाटक वंश के रूद्रसेन द्वितीय का विवाह महान गुप्तवंश के प्रतापी शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्त के साथ हुआ था। वाकाटक साम्राज्य सांस्कतिक रूप से महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि वह दक्षिण भारत में ब्राह्मणवाद की संस्कति के विस्तार का माध्यम बना।

7.6 चालुक्य वंश

दक्कन तथा दक्षिण भारत के इतिहास में चालुक्य वंश ने छठी शताब्दी के प्रारंभ से लेकर 200 वर्ष तक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने पश्चिमी दक्कन में अपने साम्राज्य की स्थापना की तथा वातापी (वर्तमान कर्नाटक में बादामी) को अपनी राजधानी बनाया।

पुलकेशिन द्वितीय के शासन काल में (सन् 610–642) साम्राज्य की ख्याति शीघ्रता से शिखर पर पहुंच गई वह चालुक्य वंश का महानतम शासक था। उसने अपनी स्थिति को महाराष्ट्र में सुदढ़ किया तथा दक्कन के बड़े भू–भाग पर विजय प्राप्त की। उसने सन् 630 के निकट हर्षवर्धन को पराजित कर 'दक्षिणपथेश्वर' अर्थात् दक्षिण के देव की उपाधि अर्जित की। हालांकि वह स्वयं सन् 642 में पल्लव शासक नरसिम्हवर्मन के हाथों पराजित होकर मारा गया। इसने चालुक्य तथा पल्लवों के मध्य लंबे राजनीतिक संघर्ष के युग को प्रारंभ किया जो कि सौ वर्षों से अधिक उत्थान एवं पतन के साथ निरंतर चलता रहा। इस संघर्ष पर विराम सन् 757 के निकट लगा जब उन्हीं के सामन्तों राष्ट्रकूट वंश ने उनका तख्ता पलट दिया। सांस्कतिक रूप से दक्कन क्षेत्र में कला तथा स्थापत्य कला की प्रगति के लिए इस युग की अपनी महत्ता है।

पाठगत प्रश्न 7.6

1. चालुक्य साम्राज्य की राजधानी क्या थी?

2. पुलेकशिन द्वितीय को किस नाम से जाना जाता है?

_____

7.7 पल्लव वंश

पल्लव वंश ने अपना साम्राज्य दक्षिण आंध्र प्रदेश से लेकर उत्तरी तमिलनाडु तक स्थापित किया। उन्होंने कांची को अपनी राजधानी बनाया। उनके शासनकाल में कांची व्यापारिक तथा व्यावसायिक गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण केन्द्र तथा मंदिरों के लिए विख्यात नगर बन गया था।

महेन्द्रवर्मन (सन् 600–630) तथा नरसिम्हवर्मन (सन् 630–668) के शासन काल में पल्लव वंश के साम्राज्य का विस्तार हुआ। अपने शासन के दौरान उनका संघर्ष उत्तर

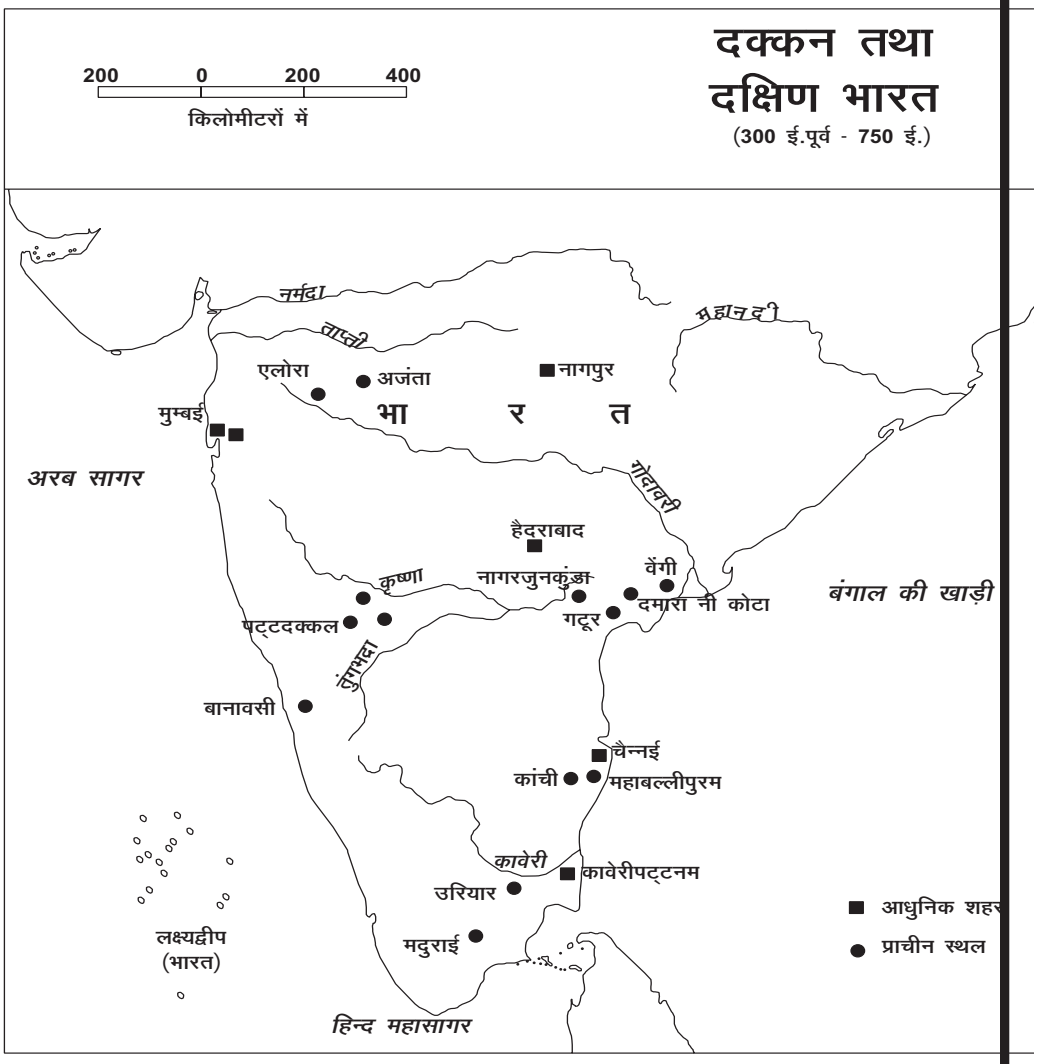

मानचित्र 7.2 दक्कन तथा दक्षिण भारत

में वातापी के चालुक्य वंश, चोलों के तमिल साम्राज्य तथा दक्षिण में पांड़यों के साथ निरंतर चलता रहा। प्रतापी चोल शासकों द्वारा दक्षिण भारत में उनके शासन का अंत हुआ। सांस्क तिक रूप से उनका शासन काल तमिल साहित्य में भक्ति धारा के विकास के लिए एवं दक्षिण भारत में कला तथा स्थापत्य कला के क्षेत्र में द्रविड़ शैली की प्रगति के लिए स्मरणीय रहेगा। उन्हीं के शासनकाल में चेन्नई का दक्षिण क्षेत्र महाबलीपुरम, मंदिरों की वास्तुकला के महत्त्वपूर्ण केन्द्र के रूप में प्रकट हुआ।

पाठगत प्रश्न 7.7

1. पल्लवों की राजधानी का नाम लिखें?

2. उत्तर के पल्लवों के प्रमुख दुश्मनों के नाम क्या थे?

7.8 प्रशासनिक प्रणाली (300-750 ई०)

मौर्ययुग में राजनीतिक शक्ति राजा के हाथों में ही केन्द्रित थी किन्तु गुप्त प्रशासन स्वभावतया विकेन्द्रित था। इसका तात्पर्य जागीरें अर्थात् स्थानीय शासक एवं छोटे मुखिया उनके साम्राज्य के बड़े हिस्से पर शासन करते थे। प्रतापी गुप्त शासकों ने महाराजाधिराज, परमेश्वर जैसी शानदार उपाधियां धारण की हुई थीं। इनके दुर्बल शासकों ने राजा अथवा महाराजा उपाधियों से अपने नाम को अलंक त किया।

सामान्यतया राजपद वंशानुगत था। प्रशासन का मुख्य बिंदु राजा होता था। राजकुमार मंत्री तथा सलाहकार उसकी सहायता करते थे। राजकुमारों को भी क्षेत्रों का राज्यपाल नियुक्त किया जाता था। प्रान्त मुख्यतः देश, राष्ट्र अथवा भुक्ति के नाम से जाने जाते थे। उनका प्रधान 'उपारिक' कहलाता था। प्रान्त विभिन्न जिलों में विभक्त हुआ करते थे जिन्हें 'प्रदेश' अथवा 'विषय' कहा जाता था। 'विषय' का प्रधान 'विषयपति' के नाम से जाना जाता था। 'विषय' भी ग्रामों में विभक्त हुआ करते थे। ग्राम प्रमुख 'ग्रामाध्यक्ष' कहलाता था तथा ग्राम के वरिष्ठ नागरिकों की सहायता से ग्राम के विषयों की जिम्मेदारी निभाता था। गुप्त काल के दौरान कलाकार तथा व्यापारी नगर प्रशासन में सक्रिय भूमिका निभाते थे। मौर्यो की तुलना में गुप्त अधिकारी वर्ग कम बड़ा था। गुप्तों के अधीनस्थ उच्च स्तरीय केन्द्रीय अधिकारी कुमारअमात्य से संबोधित होते थे। महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी, यथा–मंत्री, सेनापति सभी इसी संवर्ग से चयनित होते थे। प्रशासनिक पद मात्र वंशानुगत ही नहीं होते थे बल्कि प्रायः कई कार्यालय संयुक्त रूप से एक ही व्यक्ति द्वारा संचालित होते थे जैसे कि इलाहाबाद स्थित समुद्रगुप्त के आलेख का रचयिता, हरिसेन उसका उल्लेख 'महादण्डनायक' (युद्ध तथा शक्ति मंत्री) के रूप में प्राप्त होता है। प्रायः उच्च पदाधिकारियों का चयन शासक स्वयं करता था किन्तु पद वंशानुगत होने से प्रशासन पर शाही नियंत्रण दुर्बल हो गया था।



गुप्तकाल में भू–करों में व्यापक व द्धि हुईं। भू–कर अर्थात 'बालि', कुल उत्पादन का 1/4 से 1/6 हिस्से तक भिन्न होता था। गुप्त काल में हमें आलेख से दो नए क षि करों का भी आभास होता है यथा 'उपरिकर' तथा 'उद्रंग।' तथापि इनका यथार्थ स्वरूप स्पष्ट नहीं है। साथ ही क षक वर्ग को सामन्तों की आवश्यकताओं को भी पूर्ण करना होता था। उन्हें गांव से शाही सैन्य बल को भोजन भी कराना होता था जिस गांव से वे गुजरते थे। ग्रामवासियों से बेगार कार्य भी लिया जाता था।अपने पिछले समय की तुलना में गुप्तकाल की न्यायिक व्यवस्था अत्यधिक उन्नत थी। अपने पिछले समय की तुलना में प्रथम बार दीवानी तथा अपराधिक विधि नियमों का स्पष्ट वर्गीकरण हुआ था। विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों से संबंधित विवाद दीवानी कानून के अन्तर्गत आए। उत्तराधिकार से संबंधित विस्त त नियमों की रचना इस युग में हुईं। चोरी तथा व्यभिचार आपराधिक न्याय विधान के अन्तर्गत आए। राजा ने नियमों को मजबूत बनाया तथा ब्राह्मणों की सहायता से विषयों का निराकरण किया। कारीगरों तथा व्यापारियों के संगठन स्वनिर्मित नियमों द्वारा नियंत्रित होते थे।

हर्षवर्धन ने इसी पद्धति पर अपने साम्राज्य का संचालन किया, किन्तु उसके शासन काल में प्रशासन में विकेन्द्रीकरण की गति में प्रगति हुई तथा सामंत जागीरों की संख्या में भी व द्धि हुईं। हर्षवर्धन के शासन काल में अधिकारी तथा धार्मिक व्यक्तियों को भूमि के रूप में भुगतान किया जाता था। इसने सामंती प्रथा को प्रोत्साहन दिया जो कि हर्षोत्तर काल में असाधारण रूप से विकसित हुईं।

हर्षवर्धन के शासन काल में कानून, न्याय एवं दंड व्यवस्था उतनी प्रभावी प्रतीत नहीं होती है। भारत में अपनी यात्रा के दौरान ह्वेनत्सांग को दो बार लूट लिया गया जबकि गुप्त काल के यात्री फाह्यान ने ऐसी किसी भी कठिनाई का उल्लेख नहीं किया है।

पाठगत प्रश्न 7.8

1. गुप्त शासकों द्वारा धारण की गई उपाधियों के नाम लिखें?

   _____

2. गुप्त काल में प्रान्तों को किस नाम से जाना जाता था?

   _____

3. गुप्त कालीन प्रशासन की लघुतम इकाई का नाम लिखें?

   _____

4. कुमारअमात्य कौन थे?

   _____

5. गुप्तों द्वारा आरोपित किए गए दो नए करों के नाम लिखें?

   _____



आपकी टिप्पणियाँ

6. हर्ष के काल में कानून एवं दंड व्यवस्था कैसी थी?

_____

7.9 समाज

गुप्तकाल में समाज का तानाबाना एक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। ब्राह्मणों की सर्वोच्चता में व द्धि हो रही थी। उन्हें न सिर्फ शासकों से बल्कि साधारण जनता से भी दान के रूप में भूखण्डों की प्राप्ति हो रही थी। भूखण्ड उन्हें प्रबन्ध के अधिकार तथा करों में छूट के सहित प्राप्त होते थे। अतः भू–स्वामी ब्राह्मणों के नए वर्ग का निर्माण हुआ। शासक का समर्थन प्राप्त होने की वजह से उनमें किसानों के शोषण की प्रव त्ति को जन्म लिया।

इस युग में हम जातियों में भी व द्धि पाते हैं। सुदूर एवं विभिन्न क्षेत्रों में ब्राह्मणवादी सभ्यता के विस्तार के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में आदिवासी जनजातियां तथा कुछ विदेशी आक्रमणकारी, जैसे–हूण वंश, वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था में सम्मिलित हो गए। जहां विदेशी तथा जनजाति के मुखिया क्षत्रिय कहलाए वहीं साधारण जनजातियों को शूद्रों की स्थिति प्राप्त हुई।

तथापि कुछ हद तक शूद्रों की स्थिति में इस युग में सुधार दिखलाई पड़ता है। उन्हें महाकाव्य तथा पुराण सुनने की अनुमति थी। वे घरेलू कर्मकाण्डों को भी कर सकते थे जो पूर्व में उनके लिए प्रतिबंधित थे। सातवीं शताब्दी में ह्वेनत्सांग ने शूद्रों को क षक तथा वैश्यों को व्यापारी कहा है। शूद्रों तथा अस्प श्यों के मध्य भी अंतर किया गया। अस्प शयों को समाज में शूद्रों से भी निम्न स्थान प्राप्त था।

अस्प श्यों को चाण्डाल कहा जाता था। उनका निवास गांव से बाहर होता था तथा वे नाली साफ करना अथवा कसाईगीरी जैसे कार्य करते थे। चीनी यात्री फाह्यान के अनुसार जब वे जिलों अथवा व्यापारिक केन्द्रों में प्रवेश करते थे, तब वे अपने आने की घोषणा लकड़ी के टुकड़े को बजाकर करते थे जिससे कि अन्य उनसे छूकर भ्रष्ट न हो जाएं।

दासों का संदर्भ भी समकालीन धर्मशास्त्रों में मिलता है। नारद के अनुसार 15 प्रकार के दास हुआ करते थे। उनमें मुख्यतः ग हकार्य हेतु अर्थात् सफाई करने तथा झाड़ू लगाने हेतु दास थे। युद्ध के कैदी, कर्जदार, दास मां की कोख से जन्म लेने वाले सभी दास ही समझे जाते थे।

गुप्तकाल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति ठीक नहीं थी। स्त्रियों की अधीनता का मुख्य कारण पुरुषों पर उनकी पूर्ण निर्भरता रही। सम्पत्ति को पैत क रूप में पाने का अधिकार महिलाओं को नहीं था। तथापि स्त्रीधन अर्थात विवाह के समय प्राप्त उपहारों पर उसका पूर्णाधिकार था। कला में स्त्रियों का मुक्त चित्रण समाज में पर्दा प्रथा न होने का संकेत देते हैं। तथापि सती प्रथा का अस्तित्व अवश्य मिलता है। मध्य प्रदेश के एरान में अंकित एक उल्लेख (सन् 510) में प्रथम सती का प्रमाण मिलता है। बाणभट्ट के हर्ष चरित्र में रानी, अपने पति राजा प्रभाकरवर्धन की म त्यु पर सती हो जाती है। यहां तक कि हर्षवर्धन की बहन राजश्री भी सती प्रथा का पालन करने जा रही थी जब हर्षवर्धन ने उनकी जान बचाई।

पाठगत प्रश्न 7.9

1. ह्वेनत्सांग द्वारा शूद्रों के विषय में क्या विवरण किया गया है?

2. स्त्रीधन क्या है?

3. किस ग्रन्थ में सती प्रथा का प्रथम सबूत मिलता है?

7.10 अर्थव्यवस्था

चौथी शताब्दी से आंठवी शताब्दी का काल एक महान क षि विस्तार का युग था। भूमि का बड़े क्षेत्र पर जुताई प्रारंभ हुई तथा उच्च परिणाम प्राप्त करने हेतु उत्पादन के तत्कालीन उपलब्ध तरीकों में सुधार किए गए। इस सुधार का एक मुख्य कारण ब्राह्मणों तथा गैर धार्मिक कर्मिकों को विभिन्न क्षेत्रों में भूमि दान करने की परम्परा रही। इसने बिना काम वाली भूमि को भी क षि के योग्य बना दिया। लौह वाले हल, गोबर की खाद, सिंचाई, तथा पिछड़े क्षेत्रों में पशुधन संरक्षण ने ग्रामीण सम्पन्नता में अपना सहयोग दिया। तथापि कर्ज से पीड़ित किसानों को इससे कोई लाभ नहीं हुआ।

गुप्त तथा गुप्तोत्तर युग में व्यापार तथा वाणिज्य के क्षेत्र में पतन हुआ। सन् 550 तक भारत के पूर्वी रोम साम्राज्य के साथ व्यापारिक संबंध थे, जब भारत मसालों तथा रेशम का निर्यात किया करता था। छठी शताब्दी के लगभग रोम नागरिकों ने रेशम के धागे बुनने की कला को सीख लिया। इस विशेष वस्तु के उत्पादन क्षेत्र में विदेशी व्यापार को इससे काफी ठेस पहुंची। हूणों द्वारा उत्तर पश्चिमी मार्ग पर अवरोध उत्पन्न करना भी इस पतन के घटकों में रहा। भारत ने इसकी क्षतिपूर्ति दक्षिण पूर्वी एशिया के साथ वाणिज्य संबंध बना कर करनी चाही किन्तु इससे भी अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने में सहायता प्राप्त नहीं हुई। निम्न व्यापार ने देश में सोने एवं चांदी की आपूर्ति पर भी असर डाला। इसका प्रमाण गुप्तकाल के पश्चात स्वर्ण की कमी से मिलता है।

गुप्त शासकों द्वारा बड़ी संख्या में स्वर्ण मुद्राएं प्रचलन में लाई गई थीं, जिन्हें दीनार कहते थे। किन्तु चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् हर गुप्त शासक के शासन काल में स्वर्ण मुद्राओं में सोने की तुलना में मिश्र धातु की अधिकता रही। गुप्त वंश के उपरांत कुछ ही वंशों के समकालीन सिक्के प्राप्त हो पाए है। सिक्कों की अनुपलब्धता से यह समझा जा सकता है कि गुप्तों के पतन के पश्चात एक सीमित व्यापार वाली अपने में संपूर्ण अर्थव्यवस्था का उदय हुआ।

पाठगत प्रश्न 7.10

1. भारतीयों द्वारा पूर्वी रोमन साम्राज्य को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के नाम लिखें?



आपकी टिप्पणियाँ

2. गुप्तकालीन स्वर्ण मुद्राएं किस नाम से जानी जाती थीं?

7.11 साहित्य

कला तथा साहित्य के क्षेत्र में गुप्तकाल स्वर्ण युग माना जाता था। बड़ी संख्या में धार्मिक तथा अन्य साहित्य की रचना इस काल में हुईं। रामायण तथा महाभारत दोनों महाकाव्य चौथी शताब्दी में पूरे हो गए। दोनों ही महाकाव्यों की विषयवस्तु में अधर्म पर धर्म की विजय है। राम तथा क ष्ण दोनों ही भगवान विष्णु के अवतार माने गए।

गुप्तकाल से साहित्य में 'पुराणों' का स जन प्रारंभ हुआ। इन रचनाओं में हिन्दू देवी–देवताओं की कहानियां हैं तथा व्रत एवं कर्मकाण्डों और तीर्थ यात्रा द्वारा उन्हें प्रसन्न करने के तरीकों का विवरण है। इस काल में स जित मुख्य पुराण थे–'विष्णु पुराण,' 'वायु पुराण' एवं 'मत्स्य पुराण। शिव की आराधना के लिए 'शिव पुराण' की रचना हुई वहीं विष्णु के विभिन्न अवतारों का महिमामंडन 'वाराह पुराण,' 'वामन पुराण' तथा 'नरसिम्हा पुराण' में मिलता है। ये साधारण जन के लिए लिखे गए थे। गुप्त काल में कुछ विधि विषयक पुस्तकें 'स्म ति' भी लिखी गईं इनमें से नारद स्म ति सामान्य सामाजिक तथा आर्थिक नियमों तथा नियमावलियों पर प्रकाश डालती है।

गुप्तकालीन साहित्य की भाषा संस्क त थी। संस्क त के महानतम कवि, कालिदास पांचवीं शताब्दी में चन्द्रगुप्त द्वितीय के दरबार के मुख्य रत्न थे। उनके साहित्यिक कार्य बहुत ही लोकप्रिय हैं तथा कई यूरोपीय भाषाओं में उनका अनुवाद हुआ। उनकी कुछ चर्चित रचनाएं 'मेघदूत', 'अभिज्ञान–शाकुन्तलम', 'रघुवंश', 'कुमार संभव' तथा 'ऋतुसंहार' है। उनकी रचनाओं का मुख्य आकर्षण उच्च कुल के पात्रों द्वारा संस्क त का प्रयोग तथा साधारण लोगों द्वारा प्राक त भाषा का प्रयोग रहा। इस युग के अन्य चर्चित लेखक 'शूद्रक' जिन्होंने 'म च्छकटिकम' तथा 'विशाखादत्त' जिन्होंने 'मुद्राराक्षस' की रचना की।

सातवी शताब्दी में हर्षवर्धन के दरबारी कवि ने अपने संरक्षक की प्रशंसा करते हुए 'हर्षचरित्र' का स जन किया। अत्यधिक अलंक त भाषा में लिखी गई यह रचना बाद के लेखकों के लिए बन गईं उदाहरण हर्षवर्धन के शासन काल के आरम्भिक इतिहास की जानकारी इसी पुस्तक से प्राप्त होती है। उसके द्वारा लिखित अन्य रचना है 'कादम्बरी'। हर्षवर्धन स्वयं भी एक साहित्यिक सम्राट था। कहा जाता है कि उसने तीन नाटक लिखे–प्रिय दर्शिका, नागनन्द तथा रत्नावली।

दक्षिण भारत में सन् 550 से 750 तक तमिल में भक्ति साहित्य का स जन हुआ। अपने–अपने देवताओं की प्रशंसा में वैष्णव संतों (अल्वर) तथा शैव संतों (नयन्नर) ने गीतों का स जन किया। अल्वर संतों में सर्वाधिक चर्चित संत एक महिला 'अन्दल' थी। वैष्णव भजनों को बाद में 'नलयिरा प्रबंधम्' तथा शैव भजनों को 'देवराम' नामक संकलनों में संकलित कर लिया गया।

पाठगत प्रश्न 7.11

1. पुराण क्या थे?



2. अन्दल कौन थी?

_____

3. नयन्नरों का भक्ति–साहित्य किस नाम से प्रसिद्ध हुआ?

_____

7.12 कला तथा स्थापत्य कला

प्राचीन भारतीय कला मुख्यतः धर्म पर आधारित हेाती थी। गुप्त काल में भी बौद्ध धर्म ने कला को आश्चर्यजनक रूप से प्रभावित किया। सुल्तानगंज, बिहार में तांबे की बनी विशालकाय प्रतिमा पाई गई है। मथुरा एवं सारनाथ में महात्मा बुद्ध की आकर्षक प्रतिमाएं गढ़ी गई हैं। गुप्तकालीन बौद्ध कला का सबसे परिष्क त उदाहरण अजन्ता की गुफाओं में की गई चित्रकारी है। महात्मा बुद्ध एवं जातक कहानियों का वर्णन करते इन चित्रों का पक्का रंग चौदह शताब्दी उपरान्त भी फीका नहीं हुआ। अजन्ता की गुफाएं अब संयुक्त राष्ट्र द्वारा विश्व धरोहर स्थलों की सूची में सम्मिलित हो चुकी हैं।

गुप्तकाल में ही प्रथम बार भवन के आकार के मंदिर–निर्माण की शैली उत्तर भारत में विकसित हुई। इन मंदिरों को स्थापत्य कला में 'नागर' के नाम से जाना गया। इस प्रकार के दो मंदिर उत्तर प्रदेश में कानपुर में भितरगांव एवं झांसी में देवगढ़ में पाए गए हैं, जो क्रमशः ईंट तथा पत्थरों द्वारा निर्मित है। इन मंदिरों में विष्णु की प्रतिमाएं केंद्र में मुख्य देव के रूप में स्थापित हैं।

गुप्तकालीन मुद्राएं भी कला का ही उत्क ष्ट उदाहरण थीं। उनकी बनावट सुंदर थी तथा सतर्कता से उन्हें गढ़ा जाता था। उन पर शासकों की गतिविधियों का आकर्षक ढंग से



चित्र 7.1 देवगढ़ नर–नारायण

चित्रण होता था। समुद्रगुप्त द्वारा चलाई गई संगीतात्मक स्वर्ण मुद्राओं में उसे वीणा बजाते देखा जा सकता है। इस चित्रण में संगीत के प्रति उसका आकर्षण दिखाई देता है। जैसा कि ऊपर वर्णित है उसने अश्वमेध प्रकार की मुदाएं भी प्रचलन में लाईं। भारतीय प्रायद्वीप में शिव तथा विष्णु की आराधना लोकप्रिय हो रही थी।



चित्र 7.2 रथ मंदिर महाबलिपुरम

इन देवताओं की प्रतिमाओं को स्थापित करने के लिए सातवी तथा आठवी शताब्दी में पल्लव शासकों ने पत्थरों के मंदिरों का निर्माण कराया। सर्वाधिक प्रसिद्ध सात रथ मंदिर हैं; प्रत्येक मंदिर पत्थर के ठोस टुकड़े से बना हुआ है। यह चेन्नई से 65 किलोमीटर दूर महाबलीपुरम् में स्थित है एवं इसका निर्माण राजा नरसिंहवर्मन ने करवाया था। पल्लवों के शासन में सर्वाधिक उल्लेखनीय मन्दिर आठवी शताब्दी के कैलाशनाथ मंदिर है।

वातापी के चालुक्य भी मंदिर निर्माण में पीछे नहीं रहे तथा उन्होंने एहोल, बादामी तथा पत्तादकल में असंख्य मंदिरों का निर्माण कराया। सातवी, आठवीं शताब्दी में पत्तादकल में ही दस मंदिरों का निर्माण हुआ तथा विरुपोक्ष मंदिर का भी। मंदिरों की दक्षिण भारत की स्थापत्य कला को द्रविड़–कला का नाम मिला।

पाठगत प्रश्न 7.12

1. उत्तर प्रदेश में गुप्तकालीन मंदिर कहाँ पाए गए हैं?

2. उत्तर तथा दक्षिण स्थापत्य शैलियों के नाम लिखें?



3. महाबलीपुरम क्यों महत्त्वपूर्ण है?

7.13 धर्म

गुप्त शासकों ने भागवत पंथ को प्रश्रय दिया, किन्तु वे अन्य धर्मो के प्रति भी सहिष्णु थे। गुप्त काल तथा हर्षवर्धन के समय में भारत यात्रा पर आए चीनी तीर्थ यात्री क्रमशः फाहयान एवं ह्वेनत्सांग के यात्रा व त्तांतों से यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म भी प्रगति कर रहा था। हर्ष ने शैव मत को मानने के बावजूद बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया था तथा वह इस धर्म का महान संरक्षक बन गया था। उसने महायान को लोकप्रिय बनाने के लिए कन्नौज में एक सभा का आयोजन किया था। उसके शासन–काल में नालन्दा बौद्ध धर्म की महायान शाखा का प्रमुख शिक्षा केंद्र बन कर उभरा। बाहर के देशों के विद्यार्थी भी इस विश्वविद्यालय में ज्ञानार्जन को आते थे। ह्वेनत्सांग के अनुसार सौ गांवों के राजस्व से यह संचालित होता था।

भागवत पंथ भगवान विष्णु तथा उनके अवतारों की पूजा–अर्चना पर आधारित था। इसमें वैदिक कर्मकाण्डों तथा बलि के स्थान पर भक्ति एवं अहिंसा पर बल दिया जाता था। नया पंथ उदारवादी था तथा निम्न जाति के लोग भी इसका अनुसरण करते थे। 'भगवदगीता' के अनुसार जब भी अधर्म होता है, भगवान विष्णु मानवरूप में जन्म लेते हैं तथा जगत की रक्षा करते हैं। इस प्रकार विष्णु के दस अवतारों को माना गया। हर अवतार के गुणों को लोकप्रिय बनाने के लिए पुराणों की रचना की गई थी। गुप्तकालीन मंदिरों में भगवान की प्रतिमाएं स्थापित होती थीं।

दक्षिण भारत में सातवी शताब्दी के पश्चात् अलवर तथा नयन्नर तमिल संतों ने भक्ति के सिद्धांत को लोकप्रिय बनाया। अल्वर संतों ने भगवान् विष्णु के रूप को तथा नयन्नर संतों ने भगवान शिव के रूप को जन–जन में लोकप्रिय बनाया। तंत्रवाद का उदय भी हम इस युग में देखते हैं। पांचवीं शताब्दी के पश्चात् ब्राह्मणों को नेपाल, असम, बंगाल, उड़ीसा तथा मध्य भारत एवं दक्कन के प्रदेशों में जनजातीय क्षेत्रों में भूखण्ड मिलने प्रारंभ हो गए। परिणामस्वरूप ब्राह्मणों के समाज में ये जनजातीय तथ्य सम्मिलित हो गए। ब्राह्मणों ने उनके देवी, देवताओं, कर्मकाण्डों को अपना लिया। यह ब्राह्मणवादी संस्क ति तथा जनजातीय परम्पराओं का सम्मिश्रण है, जिसने तंत्रवाद को जन्म दिया। इसमें लिंग अथवा जाति आधारित भेदभाव नहीं था तथा महिलाओं एवं शूद्रों को स्थान प्राप्त था। उन्होंने स्त्री को शक्ति तथा ऊर्जा का केंद्र बताया। तन्त्र के सिद्धांत ने शैव, वैष्णव, बौद्ध तथा जैन सभी धर्मों पर प्रभाव डाला। परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में देवी पूजन की प्रथा प्रारंभ हुई।

पाठगत प्रश्न 7.13

1. बौद्ध धर्म के लिए सभा का आयोजन हर्षवर्धन ने कहाँ पर किया था?

2. हर्ष के शासनकाल में महायान सम्प्रदाय के प्रमुख शिक्षा केंद्र का नाम लिखें?

3. भगवान विष्णु के कितने अवतार माने जाते हैं?

4. दक्षिण भारत में विष्णु तथा शिव की अर्चना को लोकप्रिय बनाने वाले संतों के क्या नाम थे?

7.14 विज्ञान तथा तकनीक

गुप्त काल में विज्ञान तथा तकनीक के क्षेत्र में प्रगति के बारे में जानकारी हमें इस काल में इन विषयों में रचित ग्रन्थों से हो जाता है। इन ग्रन्थों में सर्वाधिक चर्चित ग्रन्थ खगोल–विज्ञान पर आधारित 'आर्यभट्टयम' है, जो कि आर्यभट्ट द्वारा पाचवीं शताब्दी में लिखा गया था। आर्यभट्ट एक खगोल विज्ञानी तथा गणितज्ञ थे। उन्होंने ही प्रथम बार यह सिद्ध किया था कि प थ्वी अपनी धुरी पर घूमती है तथा सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है, जिसकी वजह से सूर्य ग्रहण होता है। उन्होंने ही 'शून्य' की खोज की थी तथा दशमलव प्रणाली का प्रयोग प्रथम बार किया था। एक अन्य विद्वान वराहमिहिर (छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध) महान खगोल शास्त्री थे, जिन्होंने खगोल विज्ञान पर कई पुस्तकों की रचना की। उनकी रचना 'पंचसिद्धांन्ति' में पांच प्रकार की खगोलीय पद्धतियां बतलाई गई हैं। एक सुप्रख्यात गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त भी गुप्तकालीन थे।

गुप्त वंश में धातु विज्ञान में भी नई तकनीकों का आगमन हुआ। इस युग में निर्मित महात्मा बुद्ध की तांबे की विशालकाय मूर्ति उन्नत तकनीक का एक उदाहरण है। मेहरौली स्थित लौह स्तंभ भी धातु के क्षेत्र में गुप्त वंश की विकसित तकनीक का बखान करता है। खुले क्षेत्र में स्थापित होने के बावजूद भी पन्द्रह शताब्दियों उपरान्त भी इस स्तंभ में जंग नहीं लगी है। अजन्ता की गुफाओं में उकेरे गए पक्के रंग के चित्र रंगों के क्षेत्र में रंग बनाने की कला की व्याख्या करते हैं।

पाठगत प्रश्न 7.14

1. आर्यभट्ट कौन थे एवं उन्होंने किन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया?

2. वराहमिहिर द्वारा रचित ग्रंथ का नाम लिखें?

3. धातु विज्ञान में गुप्त वंश की विकसित स्थिति का ज्ञान आपको किस महत्त्वपूर्ण उदाहरण से ज्ञात होता है।



आपने क्या सीखा

चन्द्रगुप्त प्रथम (319 ई.–334 ई.) गुप्त साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था। गुप्त शासक मध्य भारत तथा बिहार के लौह अयस्कों के दोहन तथा इन क्षेत्रों के उपजाऊ होने की वजह से बड़ा साम्राज्य स्थापित करने में सक्षम रहे। उसके उत्तराधिकारी क्रमशः समुद्रगुप्त (335–375 ई.) तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय (375–414 ई.) थे। सन् 404 ई. से 411 ई. तक चीनी बौद्ध तीर्थ यात्री ने भारत की यात्रा की एवं यहां के जीवन का विविधतापूर्ण चित्रण किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय के राजदरबार के मुख्य रत्नों में संस्क त के महान कवि एवं नाटककार 'कालिदास' थे। मध्य एशिया के हूण वंश ने गुप्त वंश की सत्ता को चुनौती दी एवं उनके आक्रमणों ने गुप्त वंश की नींव हिला दी। आर्थिक सम द्धि का क्रमशः पतन भी गुप्त वंश के विघटन का कारण बना।

एक महान योद्धा तथा कुशल प्रशासक हर्षवर्धन (606–647 ई.) ने उत्तर में अपना राज्य स्थापित किया, जिसका विवरण उसके राजदरबारी कवि बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित्र में मिलता है। चीनी बौद्ध तीर्थ यात्री ह्वेनत्सांग ने उसके शासनकाल के दौरान भारत की यात्रा की थी। हर्षवर्धन, दक्षिण के चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय द्वारा पराजित हुआ। इस प्रकार नर्मदा नदी हर्षवर्धन के साम्राज्य की दक्षिणी सीमा बन गईं।

भारतीय प्रायद्वीप में पल्लव मुख्य सत्ता में आए। इस काल में दक्षिण भारत में भक्ति साहित्य तथा कला की द्रविड़ शैली का विकास हुआ।

गुप्त शासन काल में समाज परिवर्तन के दौर से गुजरा। ब्राह्मणवादी संस्क ति का सुदूर दक्षिण तक प्रसार हुआ। बड़ी संख्या में जनजातियों ने स्वयं को वर्ण व्यवस्था में आत्मसात कर लिया। कई विदेशी, जैसे–हूण आदि भी इसी व्यवस्था का अंग बन गए। महिलाओं की सामाजिक स्थिति इस काल में कमज़ोर हुईं।

कला तथा साहित्य के क्षेत्र में गुप्त काल 'स्वर्णयुग' था। चतुर्थ शताब्दी में रामायण एवं महाभारत दोनों ही महाकाव्यों की रचना पूर्ण हुईं। पुराणों का लेखन आरम्भ हुआ। दक्षिण भारतीय सन्तों अल्वर एवं नयन्नरों ने साहित्य की रचना की।

मंदिरों की उत्तर भारतीय स्थापत्य शैली 'नागर' तथा दक्षिण भारत की द्रविड़ शैली इसी युग में अस्तित्व में आईं। महात्मा बुद्ध के जीवन पर आधारित चित्र भी अजंता की गुफाओं में पक्के रंग से उकेरे गए। चर्चित महाबलीपुरम् रथ मंदिर भी इसी काल में निर्मित हुआ था।

प्रख्यात खगोलविद आर्यभट्ट ने खगोल ग्रन्थ आर्यभट्टयम् की रचना इसी काल में की। उन्होंने प्रथम बार यह खोज की कि प थ्वी अपनी धुरी पर सूर्य के चारों ओर घूमती है। धातु शास्त्र में भी गुप्त काल ने शिखर छुआ। दिल्ली में मेहरौली लौह स्तंभ तथा महात्मा बुद्ध की ताम्र प्रतिमा इस सम द्धि के उदाहरण हैं।

पाठांत प्रश्न

1. इलाहाबाद स्तंभ लेख के अनुसार समुद्रगुप्त की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए?
2. गुप्त साम्राज्य के पतन के क्या कारण थे?



आपकी टिप्पणियाँ

3. गुप्त साम्राज्य की प्रशासन व्यवस्था का विवरण दीजिए।
4. इस काल के दौरान जाति व्यवस्था उद्‌भव पर टिप्पणी लिखें।
5. गुप्तकाल में महिलाओं तथा अश्प श्यों की स्थिति की विवेचना कीजिए।
6. गुप्त वंश में क षि विस्तार के प्रमुख कारण लिखें।
7. गुप्त साम्राज्य में वाणिज्य तथा व्यापार के पतन के मुख्य कारण लिखें?
8. कला तथा साहित्य के क्षेत्र में गुप्त काल स्वर्णयुग क्यों कहलाता है?
9. गुप्तकालीन मुद्राओं पर टिप्पणी लिखें?
10. स्थापत्य कला के क्षेत्र में पल्लव तथा चालुक्य की उपलब्धियां लिखें।
11. भागवत पंथ पर एक अनुच्छेद लिखें?
12. तन्त्रवाद के उदय के क्या मुख्य कारण थे?
13. विज्ञान तथा तकनीक के क्षेत्र में 300–750 ई तक के विकास की व्याख्या करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

7.1

1. चन्द्रगुप्त प्रथम
2. उपजाऊ भूमि, लौह अयस्कों की सम द्धि
3. वैधता, प्रतिष्ठा, शक्ति

7.2

1. इससे समुद्रगुप्त के काल की जानकारी प्राप्त होती है।
2. कवि, संगीतज्ञ तथा शिक्षा का संरक्षक

7.3

1. वाकाटक
2. अपने दुश्मनों से निपटने में ज़्यादा सक्षम हो सका।
3. फाह्यान
4. कालिदास

7.4

1. हूण
2. स्कन्दगुप्त
3. थानेसर में पुष्यभूति, कन्नौज में मौखरी



7.5

1. बाणभट्ट
2. हर्ष
3. पुलकेशिन द्वितीय

7.6

1. वातापी
2. दक्षिणपथेश्वर

7.7

1. कांची
2. चालुक्य

7.8

1. महाराजाधिराज, परमभतरक, परमेशवर
2. देश, राष्ट्र, भुक्ति
3. ग्राम
4. उच्चस्तरीय केंद्रीय अधिकारी
5. उपरिकर एवं उद्रंग
6. यह अच्छी नहीं थी, क्योंकि ह्वेन त्सांग को दो बार लूटा गया था।

7.9

1. कषक
2. विवाह के समय दुल्हन को मिलने वाले उपहार
3. मध्य प्रदेश में एरान

7.10

1. रेशम, मसाला
2. दीनार

7.11

1. हिन्दू देवताओं तथा उन्हें प्रसन्न करने के तरीकों को बतलाता ग्रन्थ
2. दक्षिण भारत की महिला अल्वर सन्त
3. देवराम

7.12

1. कानपुर में भितरगांव एवं झांसी में देवगढ़
2. नागर एवं द्रविड़
3. पल्लव शासकों द्वारा निर्मित सात रथों का मंदिर यहां है।

7.13

1. कन्नौज
2. नालन्दा
3. दस
4. अल्वर एवं नयन्नर

7.14

1. खगोलविद तथा गणितज्ञ। शून्य का अविष्कार किया तथा दशमलव पद्धति की महत्ता स्थापित की। धरती अपनी धुरी पर धूमती है एवं सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है, सिद्धांत का प्रतिपादन किया।
2. पंचसिद्धान्तिक
3. मेहरौली दिल्ली में लौह स्तम्भ

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें अनुच्छेद 7.1–3
2. देखें अनुच्छेद 7.1
3. देखें अनुच्छेद 7.8
4. देखें अनुच्छेद 7.9–2
5. देखें अनुच्छेद 7.9–4
6. देखें अनुच्छेद 7.10–1
7. देखें अनुच्छेद 7.10–2
8. देखें 7.11 तथा 7.12
9. देखें अनुच्छेद 7.10–3 तथा 7.12–3
10. देखें अनुच्छेद 7.12 –4 तथा 5
11. देखें अनुच्छेद 7.13–1
12. देखें अनुच्छेद 7.13–3
13. देखें अनुच्छेद 7.14



शब्दावली

दानप्राप्तकर्ता – भू–दान का लाभ प्राप्त करने वाला

प्रशस्ति – प्रशंसा पत्र

सांमतवाद – भू–स्वामी द्वारा भूखण्ड के वित्तीय, प्रशासनिक एवं न्यायिक अधिकारों सहित भूखण्ड का दान

भू-दान परिपत्र – ताम्रपत्र पर अंकित। इनके द्वारा भूदान लेने वाले ब्राह्मणों द्वारा किसानों से राजस्व एकत्र करने का प्रमाण मिलते हैं।



8

750-1200 ई. के मध्य भारतीय परिद श्य

सन 750 से 1200 के मध्य का समय भारतीय इतिहास में आरम्भिक मध्यकालीन युग के नाम से जाना जाता है। पूर्व में इतिहासकारों द्वारा इसे 'अंधेरे–युग' की संज्ञा दी गई थी। यह संभवतः इसलिए कि इस दौरान संपूर्ण राष्ट्र छोटे–छोटे प्रांतों में विभक्त था, जो आपस में युद्ध करने में व्यस्त रहते थे। किन्तु नवीनतम अध्ययन इस बात की ओर इशारा करते हैं कि राजनीतिक रूप से छिन्न–भिन्न भारत भी कला, साहित्य तथा भाषा के क्षेत्र नई सम द्ध सांस्क तिक उपलब्धियों का केन्द्र बना। जबकि मंदिर स्थापत्य कला भारतीय साहित्य के क्षेत्र में तो कुछ सर्वश्रेष्ठ उदाहरण इसी काल की देन हैं। इस प्रकार 'अंधेरे' से हट कर इसे भारतीय इतिहास का सबसे प्रभावशाली काल कहा जा सकता है।



उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- 750 ई. तथा 1200 ई. के मध्य प्रस्फुटित होने वाले विभिन्न राज्यों को पहचान सकेंगे;
- शासन की प्रक ति को परख सकेंगे;
- सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन को चिह्नित कर सकेंगे;
- सांस्क तिक गतिविधियों को जांच सकेंगे और
- 8वीं 12वीं शताब्दियों के मध्य भारत दक्षिण–पूर्व एशिया के संबंधों की महत्ता स्थापित कर सकेगे।

8.1 राजनीतिक गतिविधियाँ

हर्षवर्धन, जिसके विषय में हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं, के पश्चात का राजनीतिक विकास तभी बेहतर ढंग से समझा जा सकता है यदि हम 750–1200 ई. तक की कालावधि को दो चरणों में विभाजित करें– 750 ई. 1000 ई. तथा 1000 ई.–1200 ई। प्रथम चरण में भारत में तीन प्रमुख राजनीतिक शक्तियों का उदय हुआ। ये थे, उत्तर भारत में प्रतिहार, पूर्वी भारत में पाल तथा दक्षिण भारत में राष्ट्रकूट। ये तीनों वंश उत्तर

भारत के गंगा क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए आपस में लगातार युद्ध करते रहते थे। इन शक्तियों के मध्य सशस्त्र संघर्ष को त्रिपक्षीय युद्ध की संज्ञा दी जाती है। दूसरे चरण में हम इन शक्तियों का विघटन पाते हैं। इसके परिणामस्वरूप भारत में कई छोटी–छोटी सत्ताओं का उदय हुआ। उदाहरण के लिए, उत्तर भारत में प्रतिहार वंश के विघटन के फलस्वरूप विभिन्न राजपूत वंशों, जैसे–चौहान, चंदेल तथा परमार इत्यादि के नियंत्रण में राजपूत वंश आ गए। ये वहीं प्रान्त थे, जिन्होंने 11वीं तथा 12वीं शताब्दी में मुहम्मद गोरी तथा महमूद गजनबी के आक्रमणों से भारत की रक्षा की। किन्तु आक्रमणकारियों के खिलाफ संगठित न हो पाने की वजह से वे अन्ततः हार गए।

हम अब ऊपर वर्णित तीनों शक्तियों के विषय में संक्षेप में चर्चा करेंगे हैं। गुर्जर प्रतिहार वंश की स्थापना 8वीं शताब्दी में नागाभट्ट प्रथम ने मालवा क्षेत्र में की थी। वह एक

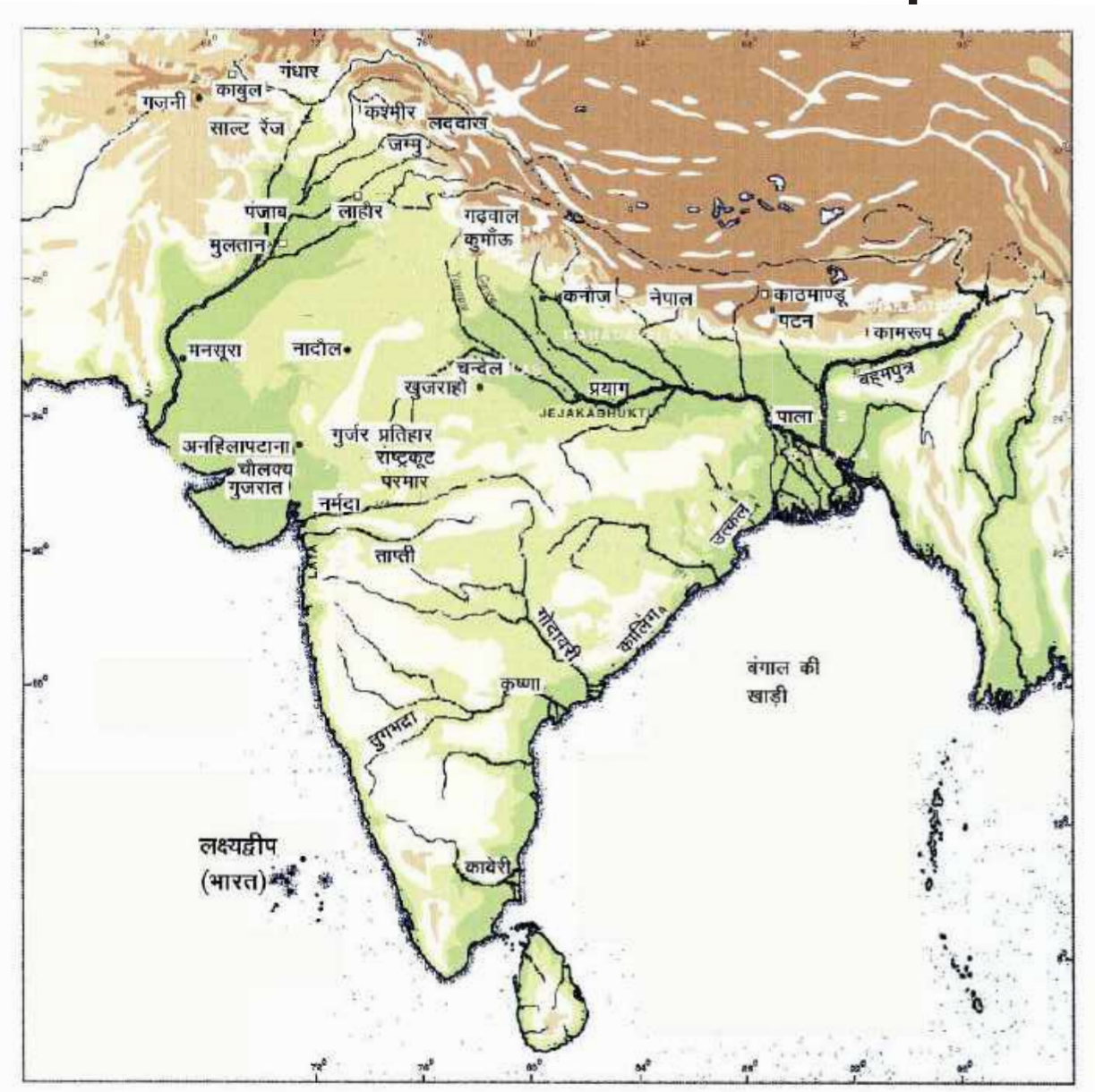

मानचित्र 8.1 भारत का राजनीतिक मानचित्र (750-1000 ई.)

आपकी टिप्पणियाँ

राजपूत था तथा उसके उत्तराधिकारी वत्सराज ने अपने साम्राज्य को उत्तर भारत के एक बड़े हिस्से तक फैलाया तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। वत्सराज की विस्तार नीति ने उसका बंगाल तथा बिहार के शासक धर्मपाल के साथ संघर्ष कराया। शीघ्र ही दक्षिण भारत से राष्ट्रकूट सम्राट भी इस संघर्ष में कूद पड़ा तथा तभी त्रिकोणीय संघर्ष का प्रारम्भ हुआ अर्थात तीन शक्तियों के बीच युद्ध। यह अगले डेढ़ सौ वर्षों तक आगे के विभिन्न शासकों के मध्य जारी रहा। तथापि कन्नौज पर अपना आधिपत्य बनाए रखने के लिए गुर्जर–प्रतिहारों का संघर्ष चलता रहा। इस वंश का एक और महान शासक नवीं शताब्दी में मिहिर भोज था। अपने साम्राज्य को लुटरों से सुरक्षित बनाए रखने के लिए अरब विद्वान सुलेमान ने उसकी प्रशंसा की है।

पूर्वी भारत में 8वीं शताब्दी में 'गोपाल' द्वारा पाल वंश की स्थापना हुई। चूँकि सभी शासकों के नाम पाल पर ही समाप्त होते थे, अतः इस वंश को 'पालवंश' के नाम से जाना जाता

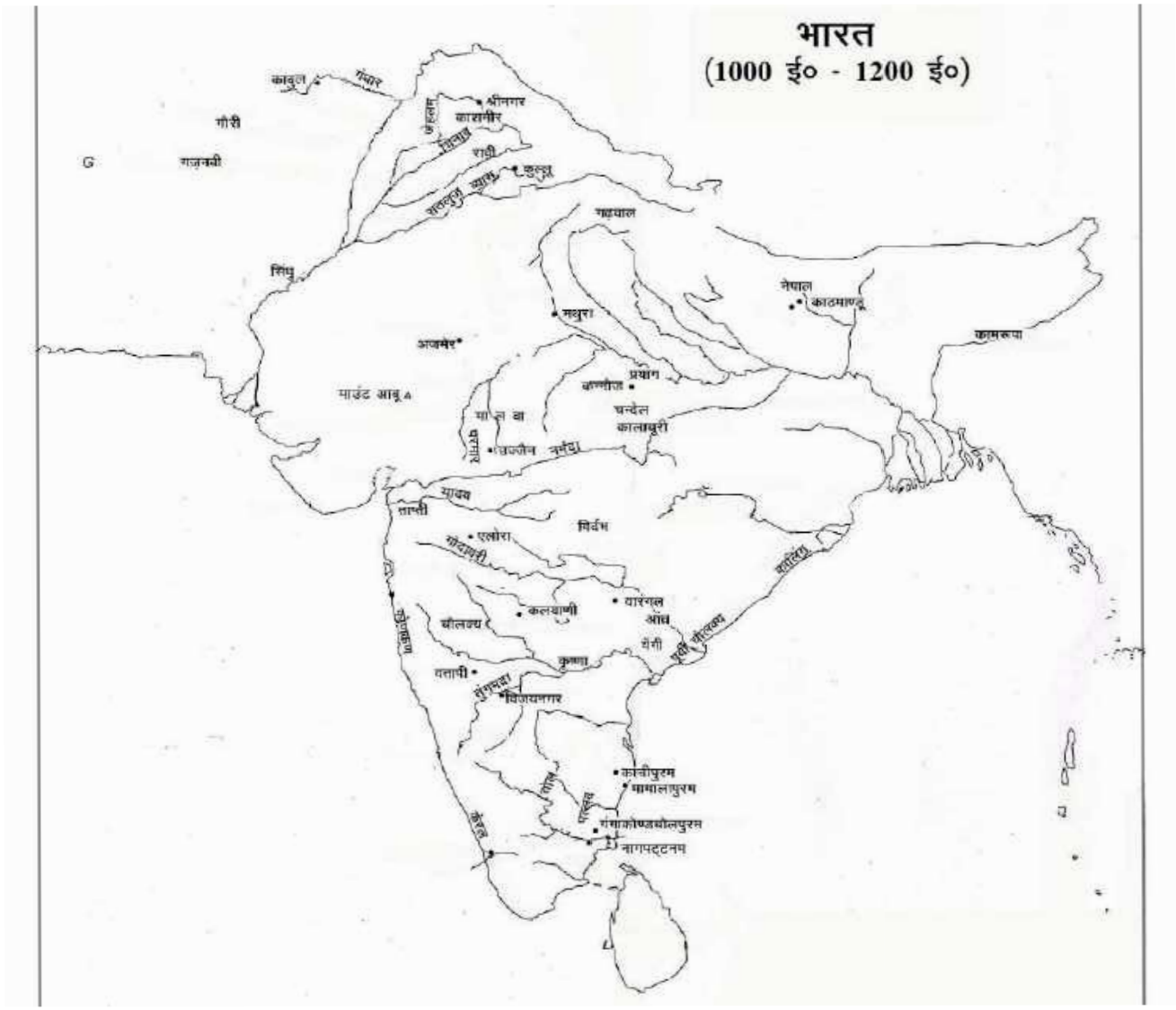

मानचित्र 8.2 भारत का राजनीतिक मानचित्र (1000-1200 ई.)



है। गोपाल के पुत्र तथा पौत्र अर्थात धर्मपाल तथा देवपाल ने पालवंश की प्रतिष्ठा तथा शक्ति में चार चाँद लगाए। हालाँकि पश्चिम की ओर उनका विस्तार प्रतिहारों ने रोक दिया, लेकिन पालों ने बिहार तथा बंगाल में छोटे से अन्तराल के साथ लगभग चार सौ वर्षों तक शासन किया। पाल शासक बौद्ध धर्म को मानते थे। उन्होंने अपने धर्म का विस्तार करने के लिए पूर्वी भारत में विहारों तथा मन्दिरों का बड़ी संख्या में निर्माण कर दिया। भागलपुर (बिहार) के निकट विक्रमशिला विश्वविद्यालय को स्थापित करने का श्रेय भी धर्मपाल को ही जाता है। नालन्दा विश्वविद्यालय की ही भाँति यह पूरे भारत तथा तिब्बत के विद्यार्थियों को आकर्षित करता था। इस विहार में कई संस्क त ग्रंथों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया गया। विक्रमशिला विश्वविद्यालय से सम्बद्ध सर्वाधिक चर्चित नाम अतिशा दीपंकर का रहा, जो तिब्बत में बड़े आदरणीय थे।

दक्षिण भारत में 8वीं शताब्दी में दंतीदुर्ग ने राष्ट्रकूट वंश की स्थापना की। राष्ट्रकूटों की राजधानी शोलापुर के निकट माल्खेड अथवा मान्यखेत थी। ध्रुव के शासन काल में राष्ट्रकूटों ने वैभवशाली नगरी कन्नौज पर आधिपत्य के लिए उत्तर भारत की ओर रुख किया, किन्तु जैसा कि पहले बताया गया है, इसने त्रिकोणीय संघर्ष को जन्म दिया। राष्ट्रकूट वंश का प्रमुख शासक क ष्ण प्रथम था। इसने एलोरा में विख्यात कैलाश मन्दिर का निर्माण कराया। यह पत्थर के एक ही टुकड़े से बना है तथा भगवान शिव को समर्पित है। अरब लोगों द्वारा लिखे विवरण हमें सूचना देते हैं कि राष्ट्रकूट शासकों के अरब व्यापारियों के साथ बहुत अच्छे संबंध थे। इन व्यापारियों को मस्जिदों का निर्माण करने बिना किसी अवरोध के अपने धर्म का अनुसरण करने की स्वतंत्रता थी। यह राष्ट्रकूट शासकों की धार्मिक उदारता को ही उजागर नहीं करता, बल्कि अरब लोगों के साथ व्यापार बढ़ाकर आर्थिक लाभ प्राप्त करने की उनकी प्रव त्ति को भी दर्शाता है।

दक्षिण भारत में चोल शासकों ने एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना 1000–1200 ई. के दौरान की। संगम काल के दौरान वर्णित 'प्रतापी चोल शासक' इस काल के चोल शासकों के मध्य संबंधों में स्पष्टता नहीं है। दक्षिण भारत में पल्लव वंश को सिंहासन से हटाने के बाद चोल शासक सत्ता में आए। चोल साम्राज्य का संस्थापक विजयालय (9वीं शताब्दी) था किन्तु उसके गौरव के वास्तविक वास्तुकार राजराजा प्रथम (985–1014 ई.) तथा उसका पुत्र राजेन्द्र प्रथम (1014–1044 ई.) थे। अपने सर्वोत्तम काल में चोल साम्राज्य उत्तर में तुंगभद्र नदी (क ष्ण नदी की सहायक नदी) से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक विस्त त था। चोल शासकों ने अपनी जल सेना का सफल उपयोग किया तथा न सिर्फ मालदीव तथा लक्षद्वीप द्वीपों को पराजित किया बल्कि श्रीलंका को भी अपने अधीन किया। उन्होंने जाबा, सुमात्रा तथा मलाया के भी शासकों को पराजित किया। राजराजा प्रथम का महानतम योगदान तंजौर स्थित प्रभु श्री शिव को समर्पित उस प्रसिद्ध मन्दिर का निर्माण है जिसे राजराजेश्वर ब हदेश्वर मन्दिर के नाम से जाना जाता है। उसके पुत्र राजेन्द्र प्रथम का शासन और भी अधिक रोमांचक था। उसने पाल शासक मणिपाल को पराजित कर बंगाल में गंगा तक अपनी शक्ति का डंका बजवाया। इस विजय को स्मरणीय बनाने के लिए उसने एक नई राजधानी 'गंगईकोंडचोलपुरम' की नींव डाली तथा स्वयं 'गंगई–कोंड' (गंगा विजेता) की उपाधि धारण की। वह शिक्षा का महान प्रश्रयदाता था तथा पंडित–चोल के उपनाम से प्रख्यात था। अन्तिम प्रमुख चोल शासक कुल्लोतुंग (1070–1122 ई.) था। उसके शासन काल में चोल साम्राज्य में विघटन प्रारम्भ हुआ वह एक बहुत छोटे क्षेत्र में सिमट गया।

उपर्युक्त विवरण से आप समझ गए होंगे कि हालाँकि अंतर्क्षेत्रीय संघर्ष निरन्तर हो रहे थे परन्तु साथ ही संस्क ति भी सम द्धि की ओर बढ़ रही थी। वास्तव में बड़ी राजनीतिक शक्तियों के उदय से विभिन्न क्षेत्रों में अपेक्षाक त शांति की स्थापना हुई। इसने इन क्षेत्रों के कला, वास्तु तथा साहित्य से संबंधित विशेष क्षेत्रीय तरीकों के विकास को जन्म दिया। हम इन तरीकों का इस अध्याय में बाद में अध्ययन करेंगे।

पाठगत प्रश्न 8.1

1. त्रिपक्षीय संघर्ष में भाग लेने वाली तीन प्रमुख शक्तियों के नाम लिखें। साथ ही तीनों वंशों के एक–एक प्रमुख शासक का नाम लिखें।

2. तीनों शक्तियों के मध्य संघर्ष का मुख्य कारण क्या था?

3. वह कौन सा प्रतिहार शासक था जिसकी प्रशंसा अरब विद्वानों ने की है?

4. विक्रमशिला विश्वविद्यालय की नींव किसने रखी थी?

5. पाल शासकों द्वारा कौन से धर्म को प्रश्रय प्रोत्साहन प्राप्त हुआ?

6. किस चोल शासक ने 'गंगईकोंड' की उपाधि धारण की और क्यों?

8.2 शासन की प्रव त्ति

शासन का तत्कालीन ढाँचा प्रायः विकेन्द्रीक त राजनीतिक पद्धति के रूप में दर्शाया गया है। विकेन्द्रीक त राजतंत्र है क्या? यह वह प्रणाली है जिसमें निस्संदेह सर्वोच्च पद पर राजा ही होता है किन्तु वह अपना शासन जागीरदारों अथवा सामंतों जैसे उप–प्रमुखों के सहयोग से करता था। सामन्त व्यवस्था से तात्पर्य ऐसे शासकों से था, जो पराजित हो जाते थे किन्तु उनका राज्य उन्हें इस शर्त पर वापस मिल जाता था कि वह विजयी राजा की अधीनता स्वीकार करेगें तथा उसे नकद तथा अन्य प्रकार से शुल्क की आपूर्ति करते रहेंगे, और आवश्यकता के समय वे सैन्य सहायता भी करेंगे। चूँकि ये सामन्त अपने क्षेत्र में शासन करने के लिए स्वतंत्र होते थे, अतः वे बहुत शक्तिशाली थे। आप अनुमान लगा सकते हैं कि ये सरदार शासन के लिए खतरा भी हो सकते थे तथा इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि दुर्बल शासक के समय ये बगावत का झण्डा उठाकर अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर लेते थे। ऊपर दिये गए प्रतिहार साम्राज्य के साथ यही हुआ था।

विकेन्द्रित राजव्यवस्था का अन्य पहलू ब्राहमणों तथा अन्य को भूखंड दान करने की प्रथा में भी देखा जा सकता है। इस परम्परा को सातवाहन वंश के शासकों ने प्रथम तथा द्वितीय शताब्दी में प्रारम्भ किया था, किन्तु गुप्त साम्राज्य के शासन के पश्चात तो यह सम्पूर्ण भारत में प्रचलन में आ गईं। अब भूखंडों का दान मात्र धार्मिक व्यक्तियों को ही नहीं बल्कि कुछ राजकीय अधिकारियों को भी किया जाने लगा था। इसके क्या कारण थे? माना जाता है कि व्यापार में लगातार पतन की स्थिति ने इस काल में भूमि दान की परम्परा को जारी करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई होगी क्योंकि सरकारी कर्मचारियों तथा अन्य को उनकी सेवाओं का भुगतान करने के लिए मुद्राओं का अभाव हो चला था। गुप्तोत्तर काल में पुरातत्व खोज में सिक्कों की उपलब्धता न होने से पता चलता हैं कि मुद्राओं का अभाव हो गया था। दान में मिलने वाली भूमि कर मुक्त होती थी अर्थात दान प्राप्त करने वाला व्यक्ति शासन को कोई भी शुल्क अदा करने के लिए बाध्य नहीं था तथा अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए वह उस भूमि का उपयोग करता था। दान प्राप्तकर्ता दान की गई भूमि पर किसी भी शासकीय हस्तक्षेप से मुक्त था। इस प्रकार दान प्राप्त करने वाला दान में मिली भूमि को अपने अधिकार में ले लेता था।

दक्षिण भारत में चोल शासकों की प्रशासनिक व्यवस्था थोड़ी भिन्न थी। ग्राम स्तर पर, स्थानीय लोग स्वशासन का आनन्द उठाते थे। स्वयं द्वारा निर्वाचित जन–प्रतिनिधियों की सहायता से वे अपने प्रशासन की देख–रेख किया करते थे। अभिलेखों में दो प्रकार की ग्राम सभाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। वे थे, सभा तथा उर। ब्राह्मणों द्वारा वंशानुगत रूप से शासित ग्रामों की समितियों को सभा कहा जाता था, जबकि गैर–ब्राह्मण प्रभुत्व वाली समितियां उर कहलाती थीं। ये समितियां ग्रामीणों द्वारा एक निश्चित प्रणाली के तहत निर्वाचित सदस्यों की सहायता से जन–कल्याणकारी कार्य, कर संचरण तथा मंदिर प्रबंधन जैसे कार्यों के उत्तरदायित्व का निर्वाह करती थीं। यह चोल प्रशासन की एक अनुपम विशिष्टता थी, क्योंकि इससे केंद्रीय सत्ता तथा स्थानीय स्व–शासन के बीच बेहतर संबंध का पता चलता है।

पाठगत प्रश्न 8.2

1. विकेंद्रित राजतंत्र प्रणाली से क्या तात्पर्य है? यह आरम्भिक मध्यकालीन इतिहास के दौरान उत्तर भारत के राजतंत्र के लिए किस प्रकार हानिकारक थी?

   _____

2. किस वंश ने ग्राम समितियों को महत्ता प्रदान की? ग्राम समितियां किस नाम से जानी जाती थीं?

   _____

8.3 सामाजिक आर्थिक परिवर्तन

आरम्भिक मध्य काल में कई सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन भी देखे गए। सामाजिक द ष्टि से इस काल का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम जातियों की संख्या में व द्धि होना था।

आपकी टिप्पणियाँ

यह कैसे घटित हुआ? इसका एक प्रमुख कारण ब्राह्मणों में नए समूहों का समावेश रहा। समझा जाता है कि ज्यों–ज्यों भूदान में व द्धि हुई, क षि के दायरे में नए क्षेत्र भी आने लगे। इसने स्थानीय नागरिकों को शिकार करना त्यागने तथा क षि को अपनाने को प्रेरित किया। वे क षक के रूप में सामने आए तथा समाज में शूद्र के रूप में स्थापित हो गए। वास्तव में भूदान की परम्परा ने विभिन्न आंतरिक प्रान्तों में ब्राह्मणों के स्थान परिवर्तन तथा प्रवास को जन्म दिया, जहां वे अपनी ब्राह्मणवादी संस्क ति को पल्लवित और पोषित कर सकें। भूदान ने कायस्थों की संख्या में भी व द्धि की। कायस्थ मूलतः लिपिक थे तथा भूदान के लेख–पत्रों के लेखन में दक्ष थे। स्वाभाविक रूप से ज्यों–ज्यों भूदान में व द्धि हुई, कायस्थों के महत्त्व में भी अभूतपूर्व व द्धि हुई।

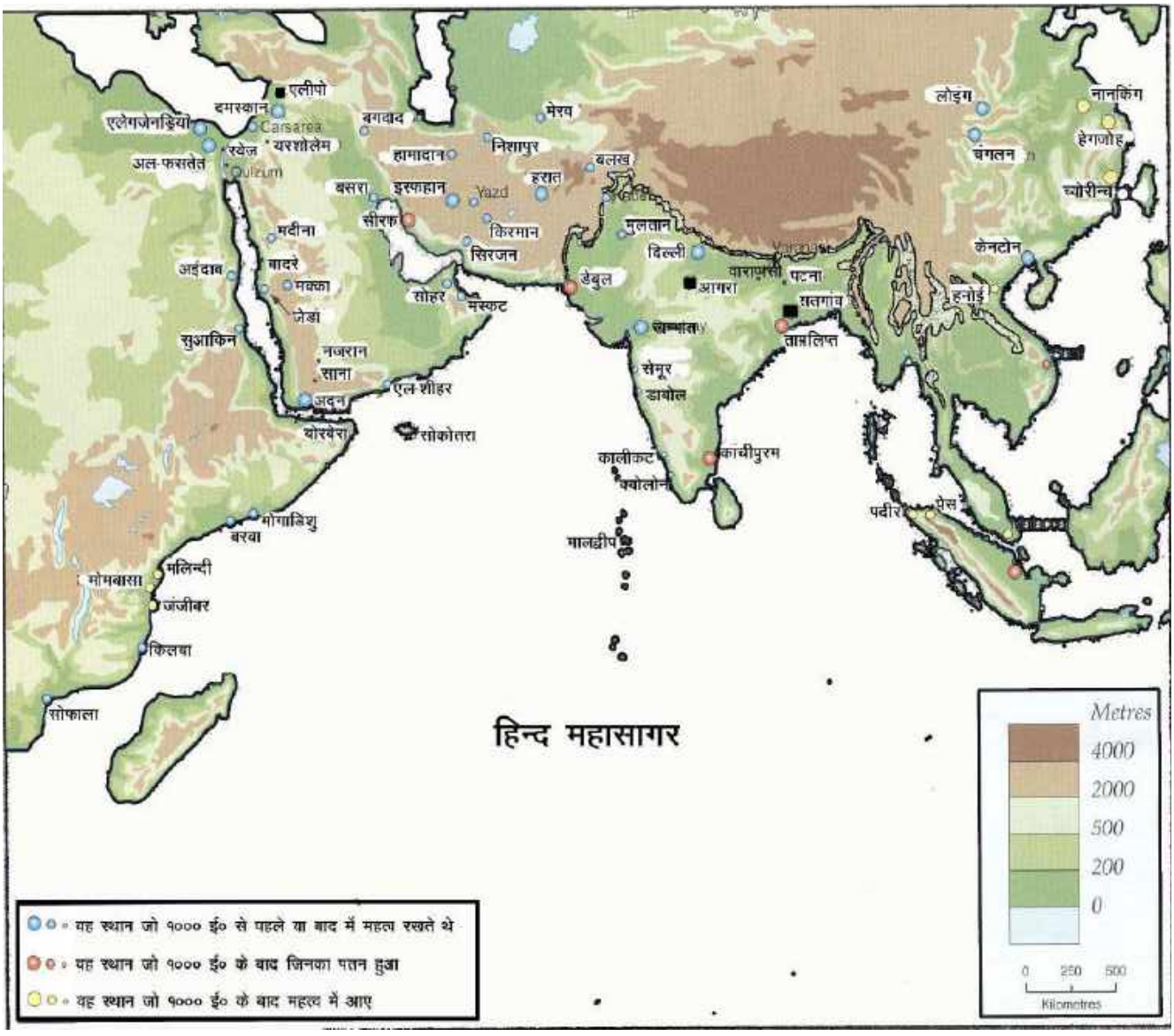

मानचित्र 8.3 दक्षिण–पूर्व एशिया



किन्तु इस युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता नए राजपूत वर्ग का उदय रहा, जैसे चौहान, परमार तथा चंदेल इत्यादि। बहुत से इतिहासकारों के अनुसार वे विभिन विदेशी शासकों, जैसे शक, हूण तथा कुषाण इत्यादि के वंशज थे, जो इतिहास में भिन्न युगों में उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र से भारत में आए थे। धीरे–धीरे ये व्यक्ति राजस्थान के निवासी हो गए भारतीय समाज में शामिल होने के पश्चात, योद्धा वर्ग के रूप में उभरे। कई इतिहासकार इन्हें ब्राह्मणवादी समाज के क्षत्रिय वर्ग के रूप में भी देखते हैं, किन्तु वर्तमान में कई विद्वान राजस्थान में राजपूतों के उदय क षि गतिविधियों की प्रगति में कुछ संबंध मानते हैं। यह स्पष्ट है कि भूखंड दान करने में व द्धि होने पर क षि बस्तियों में व द्धि हुई थी। परिणामस्वरूप कई स्थानीय प्रमुखों के पास अपनी स्वतंत्र इकाई की स्थापना करने के लिए पर्याप्त आर्थिक राजनीतिक शक्ति थी। अपनी नवीनतम स्थिति की प्रमाणिकता को बनाए रखने के लिए उन्होंने गंगा क्षेत्र के ब्राह्मणों को कर्मकांड तथा शाही उत्सव प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया तथा बदले में उन्हें भूमि दक्षिणा के रुप में दी। उन्होंने ब्राह्मणों को अपने विषय में राम (सूर्यवंशी) क ष्ण (चन्द्रवंशी) के वंशज होने के बारे में भी लिखने को प्रोत्साहित किया, जिससे वे योद्धा वर्ग में एक सम्मानजनक स्थिति को कायम रख सकें।

आर्थिक रूप से प्रथम–चरण (750–1000 ई.) पतन का काल माना जाता है। यह सिक्कों के आदान–प्रदान उत्तर भारत में नगरों की वर्तमान स्थिति से ज्ञात होता है। किन्तु सन 1000 ई. में द्वितीय चरण में इस व्यापारिक परिस्थितियों में सुधार की अवस्था को देखते हैं। न सिर्फ हमें नई मुद्राओं के प्राप्त होने बल्कि व्यापारिक वस्तुओं नगरों का भी विवरण मिलता है। इसके क्या कारण हो सकते हैं? इसके दो मुख्य कारण प्रतीत होते हैं–पहला भूखंड दान देने की प्रक्रिया के फलस्वरूप क षि में व द्धि हुई, जिससे हम वस्तु विनिमय के लिए अतिरिक्त उत्पादन की स्थिति पाते हैं तथा दूसरा अंतर्राष्ट्रीय जल व्यापार में भारतीय तटीय क्षेत्रों में अरब व्यापारियों का उदय हुआ। अरबों ने 712 ई. में सिंध में अपना राज्य स्थापित किया तथा धीरे–धीरे उन्होंने अरब से चीन तक अपना औपनिवेशिक विस्तार किया। इन उपनिवेशों ने भारतीय उत्पादों के विक्रय तथा उत्पादन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा भारत के बाहरी व्यापार की प्रगति में सहायता की। चोल शासकों के शासन काल में दक्षिण–पूर्व एशिया (मलय, इंडोनेशिया) तथा चीन के साथ घनिष्ठ व्यापारिक संबंध देखने को मिलते हैं।

पाठगत प्रश्न 8.3

1. राजपूत वर्ग के उदय के मुख्य कारण क्या थे?

8.4 सांस्क तिक विकास

नई क्षेत्रीय शक्तियों के आने से नए राजनीतिक सांस्क तिक क्षेत्रों का उदय हुआ जैसे–उत्तरी गुजरात में बंगाल उड़ीसा, मध्य भारत में महाराष्ट्र तथा दक्षिण भारत में आंध्र, कर्नाटक तमिलनाडु। हमारे वर्तमान कला, साहित्य, भाषाओं के रूप की नींव उसी



आपकी टिप्पणियाँ

युग में पड़ी। बंगाली, असमिया, उड़िया तथा मराठी इत्यादि भारत के उत्तर–दक्षिण पूर्वी भाग में बोली जाने वाली भाषाएँ इसका उदाहरण हैं। इन भाषाओं में रचे गए साहित्य ने संस्क त के एकाधिकार को समाप्त किया। नए क्षेत्रीय शासकों के संरक्षण के कारण ही स्थानीय भाषाओं में विविध–साहित्य का स जन हो सका। इस काल की सर्वाधिक प्रमुख क्षेत्रीय भाषाओं की रचना, चोल शासकों के शासन काल में कदम्ब द्वारा रचित तमिल में 'रामायण' रही। इसी प्रकार कर्नाटक क्षेत्र में पंपा, जिसे कन्नड साहित्य के महत्त्वपूर्ण रत्नों में से एक माना जाता है, ने, 'पंपा–भारत' के नाम से प्रचलित विक्रमार्जुन–विजय की रचना की। इसी प्रकार आंध्र क्षेत्र में ननिया ने महाभारत के कुछ अंशों का अनुवाद तेलुगू में किया, जिसे कवि तिकन्ना ने 13वीं शताब्दी में पूर्ण किया।

तथापि संस्कत की महत्ता विद्वानों में ज्ञान की भाषा के रूप में बनी रही। संस्कत में लिखी गई इस काल की प्रमुख रचनाएं थी कथा–संग्रह 'कथासरितसागर', कश्मीर के विभिन्न शासकों का विवरण प्रस्तुत करने वाली कल्हण द्वारा रचित 'राजतरंगिणी', तथा पाल शासकों के काल में बंगाल के कवि 'जयदेव' द्वारा रचित 'गीतगोविन्दम'।

राजसंरक्षण प्राप्त करने वाली अन्य गतिविधि थी, मन्दिर–निर्माण। इन मंदिरों का निर्माण करवाने वाले शासकों ने गौरव तथा शक्ति को दर्शाया। जितना भव्य मंदिर, उतना ही शक्तिशाली उसका निर्माण करवाने वाला माना जाता था। यकीनन इनमें परस्पर संबंध था। मंदिर–निर्माण तथा उनके नियमित रख–रखाव में बड़ी मात्रा में मानव तथा वितीय संसाधनों की आवश्यकता पड़ती होगी यह तभी संभव था जब वह राजा धनी तथा शक्तिशाली हो।

इस काल के दौरान निर्मित हुए मंदिरों की स्थापत्य कला में हम तीन श्रेणियों का उदय पाते हैं, जिन्हें नागर, द्रविड़ तथा वेसर (मिश्रित) के नाम से जाना गया। नागर शैली की प्रमुख विशेषता विशाल मीनारों का निर्माण था। इस शैली में निर्मित मंदिर उत्तर भारत के विस्त त भूभाग में फैले हैं, विशेषकर मध्यभारत, गुजरात तथा उड़ीसा में। तथापि प्रचलित नागर शैली में भी क्षेत्रीय स्तर पर क्षेत्रीय विशेषताएं थीं। इस शैली के प्रमुख मंदिरों में भुवनेश्वर में लिंगराज मंदिर, कोणार्क का सूर्य मंदिर, दक्षिण भारत में मंदिर–निर्माण की द्रविड़ शैली विकसित हुई। चोल शासन काल में यह अपने गौरव के उच्चतम स्तर तक पहुंची। इस शैली की प्रमुख विशेषताएं थीं गर्भग ह, विमान, मंडप गोपुरम का निर्माण। गर्भग ह से तात्पर्य था मुख्यदेव का अन्तर्निवास स्थल। गर्भग ह के ऊपर बनी इमारतों को विमान कहा गया, मंडप अंकित स्तंभों का विशाल भवन, जो गर्भग ह के सम्मुख निर्मित होता था। मन्दिर क्षेत्र के चारों ओर बने भव्य बड़े दरवाजों को गोपुरम कहा गया।

इस शैली का सर्वाधिक प्रमुख मंदिर चोल शासक राजराजा द्वारा तंजौर स्थित ब हदेश्वर मंदिर है। वेसर मन्दिर मिश्र पद्धति का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये चालुक्य शासकों के संरक्षण में निर्मित हुए तथा बदामी (कर्नाटक) के निकट पट्टकल में पाए गए। मूर्ति निर्माण के क्षेत्र में भी इस युग ने नई ऊंचाइयों को छुआ। चोल कलाकारों द्वारा तांबे की बनी नटराज की मूर्ति इस युग की अनमोल देन है। इन मूर्तियों में शिव को न त्य करने की भंगिमा में दर्शाया है, जो कि अपनी धुन तथा संतुलन में अतुलनीय है।



चित्र 8.1 नटराज

पाठगत प्रश्न 8.4

1. उत्तर भारत में विकसित होने वाली स्थापत्य कला की शैली का नाम लिखें?

2. मूर्ति निर्माण के क्षेत्र में चोल कलाकारों का योगदान लिखें?

8.5 दक्षिण पूर्व एशिया के साथ संबंध

भारतीय प्राचीन काल से ही व्यापार तथा अन्य गतिविधियों की वजह से विश्व के तमाम हिस्सों में भ्रमणशील रहे हैं। जहां तक भारत के दक्षिणपूर्व एशिया के साथ संबंधों का प्रश्न है, वह ई.पू. पांचवीं शताब्दी के लगभग प्रतीत होता है। जातक तथा अन्य बौद्ध साहित्य में भारतीयों द्वारा स्वर्णद्वीप की यात्रा का उल्लेख मिलता है, जिसे जावा के रूप में जाना जाता है। दक्षिण–पूर्व एशिया के साथ इन संबंधों की पहचान हमें नवीनतम पुरातत्व खोजों में थाइलैंड, वियतनाम तथा इंडोनेशिया के तटीय क्षेत्रों से प्राप्त भारतीय मोती, गोमेद तथा

अन्य बहुमूल्य रत्नों से प्राप्त होती है। ये खोजें ई.पू. प्रथम शताब्दी तक चलती चीनी कथाओं के अनुसार दक्षिण–पूर्व एशिया में प्रथम साम्राज्य की स्थापना फूनान (कम्बोडिया) में प्रथम शताब्दी में कौन्दिन्य नामक ब्राह्मण ने की, जो भारत से आया तथा उसने स्थानीय राजकुमारी से विवाह किया। हालांकि दक्षिण–पूर्व एशिया के साथ भारतीय व्यापारिक संबंध 5वीं शताब्दी के लगभग और प्रगाढ़ हुए, जब संस्क त भाषा में लिखे उल्लेख विभिन्न क्षेत्रों में प्रारंभ हुए। यह अपने सर्वोच्च शिखर पर 800 ई०–1300 ई० तक रहा, जब पूरे दक्षिण–पूर्व एशिया में भारतीय नाम के कई शासक तथा वंशों का उदय हुआ।

दक्षिण और पूर्व के संबंध मुख्यतः व्यापार पर आधारित थे। दक्षिण–पूर्व एशिया इलायची, चन्दन की लकड़ी तथा लौंग में सम द्ध था जिसने भारत तथा पश्चिम के बीच व्यापारिक संबंधों में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। प्रारंभ में भारतीय व्यापारी वर्ग ने तटीय क्षेत्र में निवास करना प्रारंभ किया, किन्तु धीरे–धीरे उन्होंने अपना सूचनातंत्र आंतरिक क्षेत्रों में स्थानांतरित कर दिया। भारतीयों की धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मुख्यतः बौद्ध ब्राह्मण पुजारी भी व्यापारियों के साथ आए। इस प्रकार दक्षिण–पूर्व एशिया में भारतीय संस्क ति सभ्यता का विस्तार हुआ, किन्तु यहां यह स्मरणीय होगा कि भारतीय संपर्कों ने स्थानीय संस्क ति को अलग नहीं किया। यह स्थानीय विशेषताओं तथा भारतीय संस्क ति का एक मिला–जुला रूप था। उदाहरण के लिए संस्क त न्यायालय की भाषा के रूप में अपनाई गई, वहीं विभिन्न क्षेत्रीय भाषाएं भी साथ में प्रयुक्त होती रहीं। क्योंकि हमें संस्क त तथा स्थानीय भाषाओं में वर्णित उल्लेख प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार दक्षिण–पूर्वी एशियावासियों तथा ब्राह्मणों में वर्ण–व्यवस्था तो थी, किन्तु समाज का वर्गीकरण भारत की तरह कठोर नहीं था।

दक्षिण–पूर्व एशिया में सर्वाधिक प्रमुख वंश 8वीं शताब्दी में स्थापित हुआ शैलेन्द्र वंश था। इसमें जावा, सुमात्रा तथा दक्षिण–पूर्व एशिया के अन्य हिस्से थे। वे एक विकसित नौ–शक्ति थे तथा अपनी भौगोलिक परिस्थितियों के चलते चीन, भारत तथा पश्चिम के अन्य देशों के व्यापार को नियंत्रित करते थे। शैलेन्द्र शासक बौद्ध धर्म के अनुयायी थे तथा भारतीय शासकों के साथ उनके घनिष्ठ संबंध थे। इसी वंश के एक शासक ने नवीं शताब्दी में नालन्दा में एक बौद्ध मठ का निर्माण करवाया तथा उसके अनुरोध पर बंगाल के पाल शासक देवपाल ने उसके रख–रखाव के लिए पांच गांव दान में दिए। इसी प्रकार अन्य चोल शासक राजपाल प्रथम द्वारा तमिल तट पर एक बौद्ध मठ के निर्माण की अनुमति प्रदान की गई। शैलेन्द्र शासकों ने एक भव्य बौद्ध मंदिर का निर्माण जावा में बारोबुदुर में किया। यह एक पहाड़ी पर स्थित है तथा उसमें नौ चबूतरे हैं।

बौद्ध धर्म के अतिरिक्त हिन्दू देवी–देवता जैसे शिव, विष्णु की आराधना भी दक्षिण–पूर्व एशिया में प्रचलित थी। उन्हें समर्पित कई मंदिर विभिन्न स्थानों पर पाए जाते हैं। यह भारतीय प्रेरणा तथा प्रभाव की झलक देता है। भगवान विष्णु को समर्पित सर्वाधिक प्रसिद्ध मंदिर अंगकोरवाट में स्थित है, जो 12वीं शताब्दी में कम्बोडिया के शासक सूर्यवर्मन द्वितीय द्वारा बनवाया गया था। यह पानी से भरी हुई खाई से घिरा हुआ है। इसमें विशाल गोपुरम है तथा इसमें विशाल दीर्घाएं हैं, जिनकी भित्तियों पर रामायण महाभारत से संबंधित मूर्तियां अलंक त हैं।

पाठगत प्रश्न 8.5

1. दक्षिण–पूर्व एशिया के शासकों के किन भारतीय शासकों के साथ 9वीं तथा 11वीं शताब्दी के मध्य घनिष्ठ संबंध थे?

2. दक्षिण–पूर्व एशिया के दो प्रमुख मंदिरों के नाम लिखें। वे किन्हें समर्पित थे?

आपने क्या सीखा

सन 750 से 1200 तक की कालावधि अब 'अंधेरे युग' के नाम से नहीं जानी जाती है। इसमें कई महत्त्वपर्ण राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्क तिक घटनाएं हुईं। राजनीतिक रूप से 750–1200 ई. के मध्य विभिन्न क्षेत्रीय सत्ताओं का उदय हुआ। उत्तर भारत में गुर्जर–प्रतिहार, पूर्व में पाल तथा दक्षिण में राष्ट्रकूटों का उदय प्रारम्भिक काल (750–1000 ई.) के मध्य हुआ तथा आगे चलकर (1000–1200) उत्तर में राजपूत दक्षिण में चोल शासकों ने पूर्ववर्ती शासकों से सत्ता हासिल की।

शासन की प्रव त्ति विकेंद्रीयक त थी, जहां सर्वोच्च पद पर राजा होता था तथा सामन्त उप–प्रमुख हुआ करते थे। धार्मिक व्यक्तियों तथा राज अधिकारियों को उनके वेतन में भूखंड दान करने का प्रचलन बढ़ा था। सभा (ब्राह्मणों के प्रभुत्व वाले गांव) तथा उर (गैर–ब्राह्मण प्रभुत्व वाले गांव) दक्षिण भारत में दो प्रमुख प्रशासनिक शक्तियां थीं।

समुद्रपार के घटते व्यापार ने इस युग में आर्थिक प्रगति को क्षीण किया। इस युग के दौरान ही विभिन्न जनजातीय लोगों ने शिकार त्यागकर क षि करना आरंभ किया तथा ब्राह्मणवादी समाज में प्रवेश किया।

इस युग को अभूतपूर्व साहित्यक विकास के लिए जाना जाता है। क्षेत्रीय साहित्य तथा क्षेत्रीय भाषाओं का विकास इस काल में हुआ। मंदिर स्थापत्य कला में नागर, द्रविड़ तथा वेसर शैलियों का विकास हुआ। भारतीय व्यापारियों द्वारा दक्षिण–पूर्व एशिया (जावा, सुमात्रा, मलय, कम्बोडिया, थाइलैंड, वियतनाम, इंडोनेशिया) में व्यापार स्थापित करने के कारण सांस्क तिक संबंध स्थापित हुए।

पाठांत प्रश्न

1. 10वीं तथा 12वीं शताब्दी के मध्य दक्षिण भारत के इतिहास में ऐसे वंश का नाम लिखें जो शिखर पर पहुंचा। इस वंश के शासकों की मुख्य उपलब्धियों का वर्णन करें।

2. त्रिपक्षीय संघर्ष में सम्मिलित तीनों वंशों के नाम लिखें।

3. जनता की नजरों में अपनी शाही वैधता स्थापित करने की आवश्यकता राजपूतों को क्यों हुई?
4. आरंभिक मध्यकाल में सांमतों का शासन के राजनीतिक ढांचे में अभिन्न अंग बनने की प्रक्रिया समझाएं?
5. आरंभिक मध्यकाल में हुए सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों का विश्लेषण कीजिए।
6. आरंभिक मध्यकाल में हुए मुख्य सांस्क तिक विकास समझाएं?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

8.1

1. गुर्जर प्रतिहार–नागभट

   पाल–गोपाल

   राष्ट्रकूट–क ष्ण प्रथम
2. कन्नौज पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए
3. मिहिरभोज
4. धर्मपाल
5. बौद्ध धर्म
6. राजेन्द्र प्रथम क्योंकि उसने गंगा को जीता था

8.2

1. सर्वोच्च पद पर राजा होता था तथा अपनी प्रशासनिक उत्तरदायित्वों को उप–प्रमुख (सामन्तों) के साथ साझा करता था। जब भी कोई दुर्बल शासक सिंहासन पर बैठता था, वे शासन के विरुद्ध झंडा उठा देते थे।
2. चोल : सभा उर

8.3

1. राजस्थान में क षि गतिविधियों का विस्तार

8.4

1. नागर
2. नटराज की ताम्र प्रतिमा

8.5

1. जावा, सुमित्रा तथा मलय
2. अंगरकोवाट (कम्बोडिया) बराबुदुर–जावा



पाठान्त प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें अनुच्छेद 8.2
2. देखें अनुच्छेद 8.1
3. देखें अनुच्छेद 8.3
4. देखें अनुच्छेद 8.2
5. देखें अनुच्छेद 8.3 और
6. देखें अनुच्छेद 8.4

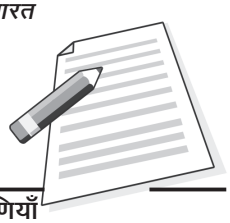

9

दिल्ली सल्तनत की स्थापना और विस्तार

सन 1200 से 1526 के दौरान उत्तर भारत के विशाल भू–भाग पर शासन करने वाले शासकों को सुल्तान तथा उनके शासन काल को दिल्ली सल्तनत के नाम से जाना गया। ये शासन मूलतः तुर्क तथा अफग़ान मूल के थे। उन्होंने उत्तर भारत के मुख्य वंशों, मुख्यतः राजपूतों को हराकर अपनी सत्ता की स्थापना की। आक्रमणकारी तुर्क मुहम्मद गोरी ने प्रसिद्ध शासक प थ्वीराज चौहान को सत्ता से अलग कर दिल्ली में अपना राज्य स्थापित किया था। इन सुल्तानों ने सन 1200 से 1526 तक लगभग 300 वर्षों से अधिक शासन किया। सल्तनत के आखिरी सुल्तान इब्राहिम लोदी को सन 1526 में मुगल वंश के संस्थापक बाबर ने पराजित कर भारत में मुगल वंश की नींव डाली थी।

इन 300 वर्षों की कालावधि में पांच विभिन्न वंशों ने दिल्ली पर शासन किया था। ये थे, गुलाम वंश के नाम से मशहूर 'मामलुक' (1206–1290 ई.), खिलज़ी वंश (सन 1290-1320), तुगलक वंश (सन 1320-1412), सैय्यद वंश (सन 1412-1451) तथा लोधी वंश (1452-1526) इन सभी वंशों का शासनकाल दिल्ली सल्तनत के नाम से जाना जाता है।

इस पाठ में हम आपको दिल्ली सल्तनत के गठन की प्रक्रिया से परिचित कराएंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- अरबों द्वारा भारत के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों पर किए गए आरंभिक आक्रमणों का उल्लेख कर सकेंगे;
- महमूद गज़नबी के हमलों की चर्चा कर सकेंगे;
- मुहम्मद गोरी के आक्रमण की प्रक ति की व्याख्या कर सकेंगे।;
- उन तथ्यों की पहचान कर सकेंगे, जो उत्तर भारत में मुहम्मद गोरी द्वारा तुर्क–शासन के मुख्य कारण बने;
- मामलुक सुल्तानों द्वारा दिल्ली सल्तनत के विस्तार का विवरण दे सकेंगे;
- खिलज़ी तुगलक वंशों के दौरान दिल्ली सल्तनत की स्थिति की व्याख्या कर सकेंगे;
- अपने शासन को संगठित करने में सुल्तानों की चुनौतियों का वर्णन कर सकेंगे और

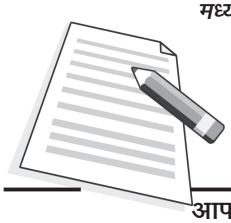

आपकी टिप्पणियाँ

- सल्तनत के पतन के कारणों को समझा सकेंगे।

9.1 भारत पर अरब आक्रमण

8वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र पर अरबों ने आक्रमण किया। सन 712 में भारत पर किए गए आक्रमण का नेत त्व उमैयद खलीफा के सेनापति मुहम्मद बिन कासिम ने किया था। भारत में हुए आक्रमण का उद्देश्य अरब राज्य का विस्तार था। अरब में इस्लाम के उदय (बॉक्स देखें) ने एक नई राजनीतिक व्यवस्था को जन्म दिया। इस्लाम के प्रचार–प्रसार की प्रक्रिया पैगम्बर मुहम्मद साहब द्वारा मक्का पर आधिपत्य स्थापित करने के बाद, उनकी म त्यु के पश्चात भी जारी रही।

इस्लाम का उदय और विस्तार

7वीं शताब्दी में अरब में इस्लाम नामक एक नए धर्म का उदय हुआ तथा शीघ्र ही इसकी पताका उत्तरी अफ्रीका से अरब प्रायद्वीप तथा ईरान और भारत तक लहराने लगी। इस्लाम पैगम्बर मुहम्मद साहब द्वारा स्थापित किया गया उन्होंने इस धर्म के उपदेश प्रचारित किए (570-632 ई.)। इस धर्म ने सिर्फ अरब के ही धार्मिक, राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन को नहीं बदला, बल्कि विश्व के कई हिस्सों पर अपना प्रभाव स्थापित किया। इस्लाम एक ही ईश्वर की उपासना पर जोर डालता है और उसकी पवित्र पुस्तक 'कुरान' है। मुस्लिमों का विश्वास है कि स्वयं ईश्वर ने कुरान का इलहाम मुहम्मद साहब को दिया है। कुरान को इस्लाम जगत में सर्वोच्च दर्जा हासिल है। प्रत्येक मुस्लिम को दिन में पांच बार नमाज़ पढ़ने को कहा गया, रमज़ान के माह में रोज़े रखने, दान करने तथा मुमकिन हो तो मक्का की तीर्थयात्रा करने को कहा गया। पैगम्बर की म त्यु के पश्चात (632 ई.) मुस्लिमों को राजनीतिक तथा धार्मिक नेत त्व प्रदान करने की जिम्मेदारी खलीफा (अर्थात उप–प्रमुख, यह उपाधि पैगम्बर मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारियों को दी गई) पर आ गई। 632 ई. से 661 तक चार पवित्र खलीफा हुए जो मुहम्मद साहब के नजदीकी थे। उमैयद खलीफा (661-750 ई.) पवित्र खलीफाओं के उत्तराधिकारी के रूप में आए। उमैयद वंश ने खलीफाओं को स्थिरता सम्पन्नता प्रदान की। उमैयद वंश में बाद में अब्बासिद खलीफा थे (सन 750-1258) अब्बासिद के बाद खलीफा की राजनीतिक शक्ति का ह्रास होने लगा था विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्र मुस्लिम शासकों का उदय हुआ।

अरब के विस्तार की कहानी उल्लेखनीय है, जिसमें वे पूर्णतः निपुण थे। सन 633-637 के मध्य अरबों ने पश्चिमी एशिया, जोर्डन, सीरिया, इराक, तुर्कों तथा पर्शिया पर विजय हासिल की। उन्होंने उत्तरी अफ्रीका तथा दक्षिण यूरोप में भी अपना झंडा लहराया। सन 637-639 के दौरान मिस्र भी अरबों के अधीन हो चुका था। सन 712 तक स्पेन में प्रवेश के उपरान्त जल्द ही उन्होंने फ्रांस की ओर कूच किया। 8वीं शताब्दी तक अरबों ने स्पेन

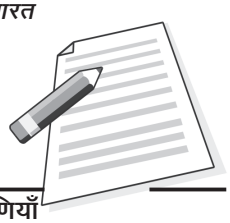

से लेकर भारत तक, भूमध्य सागर हिन्द महासागर के व्यापार को संयुक्त करते हुए मुख्य भूमिका हासिल की।

8वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उमैयद वंश अपनी सत्ता के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचा। उन्होंने सबसे विशाल मुस्लिम राज्य का निर्माण किया। अरब भारत की सम द्धि द्वारा भी आकर्षित हुए। अरब व्यापारी तथा नाविक भारत की सम्पन्नता की कहानियां साथ लेकर जाते थे। हालांकि सिंध पर आक्रमण का कारण देबोल के लुटेरों द्वारा अरब मालवाहक पोतों मे हुई लूट का बदला लेना था। किंतु राजा दाहिर ने लुटेरों को दंडित करने से इंकार कर दिया। इराक के शासक हज्जाज ने मुहम्मद बिन कासिम के नेत त्व में एक सेना भेजी। वह 712 ई. में सिंध पहुंचा तथा उसने समुद्र तट पर राज कर रहे देबोल को पराजित किया। सिंधु नदी को पार करने के बाद वह आगे की ओर बढ़ा। रावार में मुहम्मद बिन कासिम ने दाहिर पर आक्रमण कर उसे पराजित किया। अरबों ने बड़ी संख्या में जान बचाकर भाग रहे सैनिकों का कत्लेआम किया। दाहिर भी पकड़ा गया और मारा गया। मुहम्मद बिन कासिम और आगे बढ़ा तथा जल्द ही उसने सिंध के महत्त्वपूर्ण स्थानों पर विजय हासिल कर ली। कासिम के अभियानों के चलते सिंध की आर्थिक दशा चरमरा गई। बड़ी संख्या में लोग तथा व्यापारी सिंध से भाग निकले। उसने पंजाब के निचले हिस्से तक सिंध के महत्त्वपूर्ण भागों को जीत लिया था। उसका शासन काल दो वर्ष ही चला। हालांकि बहुत से अरब यहीं बस गए तथा उन्होंने स्थानीय लोगों के साथ रिश्ते स्थापित कर लिए। अरब का प्रभाव सिंध में काफी समय तक चला, क्योंकि सिंध के कई हिस्सों में हमें मुस्लिम शासन देखने को मिलता है।

9.2 महमूद गजनी

महमूद गजनी ने सन 1000-1026 के दौरान कुल मिलाकर 17 बार भारत पर आक्रमण किया। महमूद गजनी, सबुक्तिगिन का पुत्र, गजनी वंश का संस्थापक तथा तुर्की गुलाम सेनापति था।

महमूद गजनी ने भारत में पहला युद्ध 1001 ई. में हिन्दुशाई शासक जयपाल के विरुद्ध लड़ा। 1004-1006 के दौरान गजनी ने मुल्तान के शासकों पर धावा बोला। जल्द ही पंजाब भी गजनी के अधीन हो गया। 1014-1019 के मध्य गजनी ने नगरकोट, थानेसर, मथुरा तथा कन्नौज के मंदिरों को लूटकर अपने खजाने को और भी सम द्ध बनाया। सन 1008 में नगरकोट मंदिर पर किया गया आक्रमण उसकी सबसे महान विजय के रूप में जाना जाता है। सन् 1025 में गजनी ने सौराष्ट्र के सोमनाथ मंदिर पर आक्रमण कर अपने सबसे महत्त्वाकांक्षी अभियान की शुरुआत की। एक भीषण संघर्ष के पश्चात महमूद ने शहर पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया जिसमें बचाव पक्ष के 50,000 से अधिक सैनिक हताहत हुए। महमूद ने 15 दिनों बाद तब शहर छोड़ा जब उसे गुजरात के शासक भीम प्रथम द्वारा अपने विरुद्ध की जा रही युद्ध की तैयारियों की जानकारी मिली। भारत पर किए गए उसके आक्रमणों का मुख्य उद्देश्य मध्य एशिया की राजनीति में अपनी महत्ता स्थापित करना था। भारत पर किए गए हमले सिर्फ भारत की दौलत को हथियाने के लिए किए गए थे। इस संपदा से मध्य एशिया में उसके विशाल साम्राज्य को संगठित करने में मदद मिलनी थी। उसने भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने का कोई प्रयास नहीं किया। गजनी वंश के कुछ शासकों का नियंत्रण पंजाब तथा सिंध के कुछ हिस्सों में था जो 1135 तक चलता

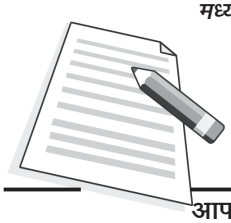

आपकी टिप्पणियाँ

रहा। इन आक्रमणों ने भारत की रक्षानीति की दुर्बलताएं उजागर कीं। इन्होंने भविष्य में तुर्कों द्वारा आक्रमणों के लिए भी रास्ते खोल दिए।

9.3 मुहम्मद गोरी (शहाबुद्दीन मुहम्मद)

सन 1173 में शहाबुद्दीन मुहम्मद उर्फ मुहम्मद गोरी (1173-1206) गजनी की गद्दी पर बैठा। ख्वारिज्मी साम्राज्य की बढ़ती शक्ति तथा बल का सामना करने में गोरी वंश सक्षम नहीं था। अतः उन्होंने भाँप लिया था कि मध्य एशिया से उन्हें कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है। इसने मुहम्मद गोरी को अपनी विस्तारवादी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भारत की ओर मोड़ दिया।

मुहम्मद गोरी भारत में लूटपाट करने के स्थान पर स्थायी शासन की स्थापना के पक्ष में था। उसके सभी अभियान सुनियोजित थे तथा उसने हर जीते हुए क्षेत्र में एक सेनापति की नियुक्ति की, जो उसकी अनुपस्थिति में शासन का संचालन कर सके। उसके आक्रमणों के परिणामस्वरूप विध्यांचल पर्वत के उत्तर में स्थायी तुर्क साम्राज्य की स्थापना को हुई।

पंजाब तथा सिंध में विजय

मुहम्मद गोरी ने अपना पहला अभियान सन 1175 में छेड़ा। उसने मुल्तान की ओर रुख किया और उसे उसके शासक से मुक्त कराया। इसी अभियान के तहत उसने भाटी राजपूतों से कच्छ को जीता। सन 1178 में उसने पुनः गुजरात पर विजय हासिल करने के लिए आक्रमण किया, किन्तु गुजरात के चालुक्य शासक घीम–द्वितीय ने उसे अहिलवारा के युद्ध में पराजित कर दिया। हालांकि यह हार भी उसे निराश न कर सकी। उसने समझ लिया था कि पंजाब में मजबूत आधार बनाए बिना वह भारत के अन्य हिस्सों को जीत नहीं सकता।

उसने गजनवी शासकों के खिलाफ पंजाब में अभियान आरंभ किया। परिणामस्वरूप सन 1179-80 में पेशावर और 1186 में लाहौर उसके कब्जे में आ गया। सियालकोट का किला देबोल अगला शिकार बने। इस प्रकार 1190 तक मुल्तान, सिंध तथा पंजाब को अपने अधीन करने के उपरान्त मुहम्मद गोरी ने गंगा के दोआब में प्रवेश के लिए रास्ता साफ कर लिया था।

तराई का प्रथम युद्ध (1191 ई.)

पंजाब पर गोरी का आधिपत्य और गंगा दोआब में अपने साम्राज्य के विस्तार का प्रयास उसे राजपूत शासक प थ्वीराज चौहान के सामने ले आया। प थ्वीराज चौहान ने कई छोटे राजपूत शासकों को जीत कर, दिल्ली पर भी अधिकार स्थापित किया था और उसकी योजना पंजाब तथा गंगा घाटी तक विस्तार की थी। भटिंडा के दावे को लेकर युद्ध प्रारंभ हुआ। तराई के मैदान में हुए प्रथम युद्ध (1191) में गोरी की सेना पराजित हुई और वह भी मरते–मरते बचा। प थ्वीराज चौहान ने भटिंडा को जीत लिया पर उसकी मोर्चाबन्दी करने का प्रयास उसने नहीं किया। इसने गोरी को भारत पर दोबारा आक्रमण के लिए अपनी शक्ति संगठित करने का एक और मौका दे दिया।

तराई का द्वितीय युद्ध (1192 ई.)

इस युद्ध को भारतीय इतिहास का निर्णायक मोड़ माना जाता है। मुहम्मद गोरी ने इस आक्रमण के लिए बड़ी चतुराई से तैयारियां कीं। तुर्की तथा राजपूत सेनाएं एक बार फिर

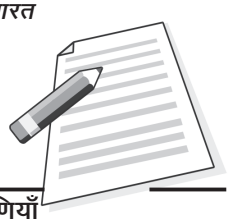

तराई के मैदान में आमने–सामने आईं। भारतीय सेना हालांकि संख्या में अधिक थी पर तुर्क सेना अधिक सुनियोजित और तेज दौड़ने वाली अश्वरोही टुकड़ी के साथ थी। भारी–भरकम भारतीय सेना किसी भी प्रकार से सुनियोजित, कुशल तथा तेज तुर्की अश्वरोही सेना के मुकाबले की नहीं थी। तुर्कों ने अपनी अश्वारोही सेना में दो उत्तम तकनीकों का प्रयोग किया। पहली, उन्होंने घोड़ों के पैरों में नाल लगवाई पहनाएं जिससे न सिर्फ घोड़ों की उम्र लंबी हुई, बल्कि उनके खुरों की भी रक्षा हुई तथा दूसरे रकाब का प्रयोग, जिससे घुड़सवारों की घोड़ों पर पकड़ बन सकी और युद्ध में वह दोगुनी मारक क्षमता का उपयोग कर सके। बड़ी संख्या में भारतीय सैनिक मारे गए। प थ्वीराज चौहान ने भी भागने का प्रयत्न किया, किन्तु सरस्वती नदी के निकट वह पकड़ा गया। तुर्की सेना ने हांसी, सरसुती तथा सामाना के किलों पर कब्जा कर लिया। उसके बाद वे दिल्ली तथा अजमेर की ओर बढ़ चले।

तराई के युद्ध के पश्चात मुहम्मद गोरी अपने विश्वस्त सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक के हाथ में भारत की सत्ता सौंप कर गजनी वापस लौट गया। सन 1194 में मुहम्मद गोरी वापस भारत लौटा। उसने 50,000 घुड़सवारों के साथ यमुना पार कर कन्नौज की ओर रुख किया। उसने कन्नौज के निकट चंदवार में जयचन्द्र को पराजित किया। इस प्रकार तराई तथा चंदवार के युद्ध के पश्चात उत्तर भारत में तुर्की शासन की नींव पड़ी।

मुहम्मद गोरी के आक्रमण के भारतीय राजनीति पर प्रभाव महमूद गजनवी के आक्रमण की तुलना में दीर्घकालिक थे। जहां महमूद गजनवी का उद्देश्य लूटपाट मात्र था, वहीं मुहम्मद गोरी अपना राजनीतिक नियंत्रण स्थापित करना चाहता था। सन 1206 में हुई उसकी म त्यु के बाद भी भारत में तुर्क शासन अप्रभावित रहा। उसने अपने पीछे अपने दास सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक को नियुक्त किया था, जो दिल्ली सल्तनत का प्रथम सुल्तान बना।

पाठगत प्रश्न 9.1

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें:

   (क) सुल्तान मुहम्मद गोरी _____ का शासक था।

   (ख) तराई का प्रथम युद्ध _____ तथा _____ के बीच लड़ा गया।

   (ग) मुहम्मद गोरी ने अपने भारतीय साम्राज्य का उत्तराधिकारी _____ को बनाया।

2. तराई का द्वितीय युद्ध कब लड़ा गया?

   _____

3. महमूद गजनवी और मुहमद गोरी के आक्रमणों में सबसे बड़ा अंतर आप क्या देखते है?

   _____

9.4 मामलुक सुल्तान

कुतुबुद्दीन ऐबक के शासन के साथ भारत में मामलुक सुल्तान/गुलाम वंश के युग का प्रारंभ हुआ। मामलूक एक अरबी शब्द है जिसका अर्थ है स्वामित्व। यह सैन्य अभियानों के लिए उपयोग किए जाने वाले तुर्की गुलामों को निम्न गुलामों से जो घरेलू कार्य अथवा कारीगरों से, अंतर व्यक्त करने के लिए प्रयोग किया जाता था। मामलुक सुल्तानों का शासन 1206 ई. से 1290 ई. तक रहा।

कुतुबुद्दीन ऐबक

कुतुबुद्दीन ऐबक तुर्की गुलाम था जो मुहम्मद गोरी की सेना में उच्च पद तक पहुंचा था। सन 1206 में मुहम्मद गोरी की म त्यु के पश्चात भारतीय साम्राज्य का नियंत्रण कुतुबुद्दीन के पास चला गया। गुलाम वंश का संस्थापक, ऐबक उत्तर भारत में प्रथम प्रसिद्ध मुस्लिम शासक था।

ऐबक को राजपूतों अन्य भारतीय सरदारों की ओर से विद्रोह का सामना करना पड़ा था। गजनी का शासक तजुद्दीन यल्दौज दिल्ली पर अपना अधिकार समझता था। मुल्तानं सिंध का शासक नसीरूद्दीन कबाचा स्वतंत्रता पाने के लिए व्याकुल था। कुतुबुद्दीन ऐबक समझौतों और शक्ति प्रदर्शन द्वारा इन शत्रुओं पर विजय पाने में सफल रहा। उसने यल्दौज को पराजित कर गजनी को जीता। जयचन्द के उत्तराधिकारी हरिश्चन्द्र ने बदायूं तथा कन्नौज से तुर्को को बाहर खदेड़ दिया था। ऐबक ने ये दोनों क्षेत्र पुनः जीत लिए।

कुतुबुद्दीन ऐबक वीर, वफादार तथा नम्र था। उसकी विनम्रता के चलते ही उसे 'लाख बक्श' की उपाधि मिली हुई थी। कई विद्वान ऐबक को भारत में मुस्लिम शासन का वास्तविक संस्थापक मानते हैं।

इल्तुतमिश (सन 1210-1236)

सन 1210 में चौगान (पोलो) खेलते समय घोड़े से गिरने से ऐबक की म त्यु हो गई। उसकी म त्यु के पश्चात कुछ अमीरों ने उसके पुत्र आरामशाह को गद्दी पर बैठा दिया। किन्तु आरामशाह अयोग्य व्यक्ति था तथा तुर्की अमीरों ने उसके खिलाफ़ विद्रोह आरंभ कर दिया। दिल्ली के तुर्की सरदारों ने बदायूं के शासक (ऐबक के दामाद) इल्तुतमिश को दिल्ली आमंत्रित किया। आरामशाह ने बड़ी सेना के साथ लाहौर से दिल्ली आकर उसका सामना किया किन्तु इल्तुतमिश ने उसे पराजित किया 'शम्सुद्दीन' के नाम से गद्दी पर बैठा। दिल्ली सल्तनत को संगठित करने का श्रेय उसी को जाता है।

जब इल्तुतमिश गद्दी पर बैठा तो वह चारों ओर से समस्याओं से घिरा हुआ था। यलदौज, क्बाचा अली मर्दान जैसे अन्य तुर्क सेनापति फिर से सिर उठा रहे थे। जालार और रणथम्भौर के शासक ग्वालियर और कालिंजर शासकों के साथ मिलकर स्वतंत्रता की घोषणा कर चुके थे। इनके अतिरिक्त सल्तनत की उत्तर पश्चिमी सीमा पर चंगेज खान की बढ़ती शक्ति का भी भय था।

इल्तुतमिश ने सर्वप्रथम स्वयं को संगठित करना प्रारंभ किया। उसने तराइन के मैदान में यल्दौज को 1215 में पराजित किया। सन 1217 में उसने क्वाचा के पांव पंजाब से उखाड़े। सन 1220 में जब चंगेज खाँ ने ख्वारिज साम्राज्य का विनाश किया तो

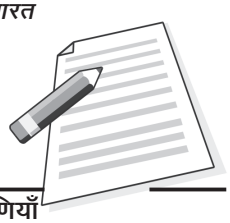

इल्तुतमिश को मंगोलों से प्रत्यक्ष संघर्ष को टालने की आवश्यकता महसूस हुई। अतः जब ख्वारिज के शाह का पुत्र जलालुद्दीन मंगबरानी मंगोलों से बचता हुआ शरण पाने इल्तुतमिश के दरबार में आया तो इल्तुतमिश ने उसे इंकार कर दिया। इस प्रकार इल्तुतमिश ने दिल्ली सल्तनत को मंगोलों द्वारा होते विनाश से बचाया।

सन 1225 के उपरांत इल्तुतमिश ने अपनी सेनाओं को पूर्व प्रदेश के विरोधों को दबाने के लिए प्रयोग किया। सन 1226-1227 में इल्तुतमिश ने अपने पुत्र के नेत त्व में विशाल सेना भेजी, जिसने इवाजखान को पराजित कर बंगाल और बिहार को पुनः दिल्ली सल्तनत का हिस्सा बनाया। राजपूत शासकों के विरुद्ध भी समान अभियान चलाया गया। सन 1226 में रणथम्भौर को जीता तथा सन 1231 तक इल्तुतमिश ने अपना अधि ाकार मन्दौर, जालौर, बयाना तथा ग्वालियर पर कर लिया था।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इल्तुतमिश ने ऐबक के छूटे हुए कार्य को पूर्ण किया था। दिल्ली सल्तनत अब एक विस्त त भू–भाग तक फैली थी। इसके अतिरिक्त उसने अपने विश्वासपात्र अधिकारियों का एक समूह तुर्क–ए–चहलगनी (चालीस) बनाया था। वह एक दूरदर्शी शासक था और उसने नवस्थापित दिल्ली सल्तनत को संगठित और नियोजित किया।

> इल्तुतमिश ने तुर्क–ए–चहलगनी (चालीस का समूह) की स्थापना की थी। इस समूह में वे अमीर हुआ करते थे जो शासन के प्रबंधन में सुल्तान की सहायता किया करते थे। इल्तुतमिश की म त्यु के पश्चात इनके हाथों में काफी शक्ति आ गई थी। कई वर्षों तक वे एक के बाद दूसरे सुल्तानों का चयन करते रहे। अन्ततः बलबन ने इस समूह को नष्ट कर दिया।

इल्तुतमिश ने सफलतापूर्वक दिल्ली के असंतुष्ट अमीरों का सफाया किया। उसने दिल्ली सल्तनत को गजनी, गोर मध्य एशिया से अलग किया। इल्तुतमिश ने बगदाद के अब्बासी खलीफा से बैधता पाने के लिए पत्र भी सन 1229 में हासिल किया था।

इल्तुतमिश ने प्रशासनिक संस्थानों जैसे 'इक्त', 'सेना' तथा 'सिक्का' व्यवस्था को रूप देने के लिए उल्लेखनीय कार्य किए। उसने सल्तनत को दो मूल सिक्के दिए –चांदी का टंका तथा तांबे का जीतल। अपने अधीनस्थ क्षेत्रों पर बेहतर नियंत्रण स्थापित करने के लिए इल्तुतमिश ने व्यापक स्तर पर अपने तुर्क अधिकारियों को (वेतन के बदले भूमि समझौता) इक्ता दान किए। इक्ता को पाने वाले को इक्तदार कहा जाता था तथा वे अपने अधीन क्षेत्रों से राजस्व वसूल करते थे। इसके द्वारा वे सत्ता की सेवा प्रदान करने के लिए एक सेना का रख–रखाव किया करते थे, कानून तथा व्यवस्था का पालन करवाया करते थे तथा अपने खर्चों की भरपाई किया करते थे। इल्तुतमिश ने दोआब के आर्थिक संभावनाओं को पहचाना और मुख्यतः उसी क्षेत्र में इक्ता बांटे गए। इसने इल्तुतमिश को उत्तर भारत के सर्वाधिक प्रतिष्ठित क्षेत्रों में से एक पर वित्तीय और प्रशासनिक नियंत्रण के प्रति आश्वस्त किया। (आप 12वें पाठ में प्रशासनिक जानकारी विस्तार से पढ़ेंगे।)

रजिया (1236-40 ई०)

अपने अंतिम दिनों में इल्तुतमिश के सम्मुख उत्तराधिकारी की मुख्य समस्या थी। इल्तुतमिश ने अपने किसी भी पुत्र को सुल्तान बनने के काबिल नहीं समझा। उसने अपनी

पुत्री रजिया को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। किंतु उसकी म त्यु के उपरांत उसका पुत्र रूकुनुद्दीन फिरोज सेना के कुछ अधिकारियों की सहायता से गद्दी पर बैठ गया, और दिल्ली की जनता के समर्थन से तथा कुछ सैन्य अधिकारियों के सहयोग से रजिया गद्दी पर बैठ गई।

अपनी खूबियों के बावजूद रजिया बेहतर शासन नहीं कर पाई, क्योंकि मुख्यतः उसने गैर तुर्को को कुलीन वर्ग के बराबरी का दर्जा देकर तुर्की अमीरों में विरोध पैदा कर दिया। इसमें सबसे मुख्य उत्तेजित करने वाली बात अबीसियाई मलिक जमालुद्दीन याकूत को अमीर–ए–अखनूर (घोड़ों का मालिक) नियुक्त करना रहा। कई अन्य महत्त्वपूर्ण पदों पर अन्य गैर तुर्कों की नियुक्ति ने भी आग में घी का काम ही किया।

विद्वान मानते हैं कि महिला होने के बावजूद वह दूसरे के हाथों की कठपुतली नहीं बनना चाहती थी। अतः सरदारों ने उसके क्षेत्रों में विद्रोह करना प्रारंभ कर दिया। उन्होंने उसे महिला की मर्यादा भंग करने और अबीसियाई सरदार याकूब के साथ अति करीबी होने का आरोप लगाया। वह सरदारों द्वारा पराजित हुई और मारी गई। इस प्रकार उसका शासन काल छोटा रहा तथा 1240 में समाप्त हो गया।

नसीरूद्दीन महमूद (1246-66 ई.)

सुल्तान तथा तुर्की सरदारों 'चहलगनी' के बीच सत्ता का संघर्ष जो रजिया के समय से प्रारंभ हुआ था, वह चलता रहा। रजिया की मत्यु के बाद इन चहलगनियों की शक्ति इतनी बढ़ गई कि वे राजा को गद्दी पर बैठाने और उतारने के लिए बहुत हद तक काबिल हो गए। बेहराम शाह (1240-42) तथा मसूद शाह (1242-44) क्रमशः सुल्तान बनाए तथा हटाए गए। इसके पश्चात सन 1246 में उलुग खान (कालांतर में जिसे बलबन के नाम से जाना गया) ने एक प्रयोग किया तथा युवा नसीरूद्दीन (इल्तुतमिश का पोता) को सुल्तान बनाकर खुद उसका नाइब बना। अपनी स्थिति को और सुदढ़ बनाने के लिए उसने अपनी पुत्री का विवाह नसीरूद्दीन से कर दिया। सुल्तान नसीरूद्दीन मसूद 1265 में मारा गया। इब्नबतूता तथा इलामी के अनुसार बलबन ने अपने राजा को जहर देकर मारा तथा उसके सिंहासन पर कब्जा कर लिया।

बलबन (1266-87 ई.)

सुल्तान तुर्की सरदारों के बीच सत्ता का संघर्ष तब तक चलता रहा जब तक इतिहास में बलबन के नाम से प्रसिद्ध उलुग खान ने सत्ता का केन्द्रीकरण करके सन 1266 में सिंहासन पर कब्जा नहीं कर लिया। जब बलबन सुल्तान बना, उसकी स्थिति मजबूत नहीं थी। कई तुर्क सरदार उसके विरोधी हो चुके थे। मंगोल दिल्ली सल्तनत पर कब्जा करने का अवसर तलाश रहे थे। सुदूर प्रांतों के शासक स्वतंत्र होने की कोशिश कर रहे थे। वहीं, भारतीय शासक भी विद्रोह करने के लिए छोटे से मौके की तलाश में थे।

दिल्ली तथा दोआब क्षेत्र में कानून और व्यवस्था की स्थिति सोचनीय थी। गंगा–यमुना दोआब अवध के मध्य सड़कों पर डकैतों और लुटेरों का वर्चस्व था जिस वजह से पूर्वी

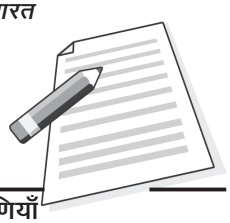

क्षेत्रों में यातायात असंभव हो चला था। कुछ राजपूत जमींदारों ने इन क्षेत्रों में अपने किले बनवाकर सरकार के प्रति विद्रोह दर्शाया था। मेवाती इतने निर्भीक हो चले थे कि बाहरी दिल्ली क्षेत्र में भी लोगों को लूट लिया करते थे। इन तत्वों से निबटने के लिए बलबन ने कठोर नीति अपनाई, मेवात में कई मारे गए। राजपूतों के मजबूत गढ़ बदायूं के आसपास का क्षेत्र नष्ट कर दिया गया।

बलबन ने निरकुंश तरीके से शासन किया तथा सुल्तान के रूप में अपनी स्थिति सुद ढ़ करने के लिए बहुत मेहनत की। उसने किसी भी कुलीन वर्ग के व्यक्ति के पास ज्यादा शक्ति अर्जित नहीं होने दी। उसने राजत्व के सिद्धांत की भी स्थापना की। इतिहासकार बरनी, जो स्वयं भी तुर्की विद्वानों में श्रेष्ठ था, के अनुसार बलबन कहता था, जब भी मैं नीच कुल में जन्मे, नीच व्यक्ति को देखता हूं तो मेरी आंखें सुलग उठती है तथा गुस्से में मैं तलवार उठा लेता हूं (मारने के लिए)। हमें नहीं पता कि बलबन ने वास्तव में ऐसा कहा था किन्तु गैर तुर्कों के प्रति उसके विचार इसी प्रकार के थे। बलबन अपनी सत्ता किसी से नहीं बांट सकता था, यहाँ तक कि परिवार वालों से भी नहीं।

बलबन चहलगनी की शक्तियां नष्ट करने के लिए कटिबद्ध था। स्वयं को सजग रखने के लिए बलबन ने हर विभाग में गुप्तचर नियुक्त किए। उसने एक मजबूत केंद्रीय सेना का गठन किया, जो आंतरिक विद्रोहों से भी लड़ सके तथा पंजाब की ओर रुख कर रहे तथा दिल्ली सल्तनत के लिए गंभीर खतरा बन रहे मंगोलों को भी माकूल जवाब दे सके। उसने सैन्य विभाग का (दीवान–ए–अर्ज) का पुनर्गठन किया तथा विद्रोहों का दमन करने के लिए देश के विभिन्न हिस्सों में सेना की नियुक्ति की। मेवात, दोआब, अवध और कौशल के विद्रोह निर्ममतापूर्वक कुचल दिए गए। बलबन ने पूर्वी राजपूताना क्षेत्र अजमेर और नागौर पर विजय पाई किन्तु ग्वालियर और रणथम्भौर पर विजय हासिल करने में वह नाकामयाब रहा। सन 1279 में मंगोलों के खतरों से उत्साहित होकर और सुल्तान की बढ़ती आयु देखकर बंगाल के शासक तुगरिल बेग ने विद्रोह कर, सुल्तान की उपाधि धारण की तथा अपने नाम का खुतबा पढ़वाया। बलबन ने अपनी सेना को बंगाल भेजा और तुगरिल मारा गया। परिणामस्वरूप उसने अपने पुत्र बुगरा खान को बंगाल का शासक नियुक्त किया।

इन सब कठोर निर्णयों द्वारा बलबन ने स्थिति को नियंत्रित किया। लोगों को अपनी सत्ता की शक्ति तथा भव्यता से प्रभावित करने के लिए बलबन ने एक वैभवशाली दरबार बनाया। उसने दरबार में हंसना तथा चुटकुले सुनना बंद कर दिया तथा शराब का सेवन भी बंद कर दिया, जिससे कोई भी उसे आरामवाली अवस्था में न देख ले। उसने दरबार में सिजदा (सलाम) तथा पाइबोस (राजा के कदम चूमने) जैसी प्रथाओं पर बल दिया।

बलबन ने विस्तार के स्थान पर संगठन की नीति अपनाई। उसने राजपद के नए सिद्धांत का प्रतिपादन किया कुलीनों तथा सुल्तान के मध्य रिश्तों को पुनः परिभाषित किया। इन तरीकों द्वारा ही बलबन ने दिल्ली सल्तनत को मजबूती प्रदान की।

बलबन निस्संदेह दिल्ली सल्तनत के मुख्य निर्माताओं में से एक था, विशेषकर सरकार और उसके संस्थानों राजा की शक्तियों को सुद ढ़ कर बलबन ने दिल्ली सल्तनत को

मजबूती प्रदान की। किन्तु फिर भी वह मंगोलों के आक्रमणों से उत्तर भारत को बचा नहीं पाया और तो और गैर तुर्कों को महत्त्वपूर्ण पदों और अधिकारों से विमुक्त कर मात्र कुछ ही समूहों के बीच अधिकारों/शक्तियों के वितरण ने अन्य लोगों में उसके प्रति असंतोष उत्पन्न किया। इसने उसकी म त्यु के पश्चात् नए संघर्षों को जन्म दिया।

बलबन की म त्यु 1287 में हो गई। उसकी म त्यु के उपरान्त कुलीनों ने उसके पोते कैकवाबाद को गद्दी पर बैठाया। किन्तु जल्द ही उसके पुत्र कैमूर ने उसे सत्ता से अलग कर दिया, जो स्वयं मात्र तीन माह तक ही शासन कर सका। बलबन के शासन के दौरान फिरोज उत्तर–पश्चिमी सैन्य अभियानों का संचालक था तथा उसने मंगोलों के खिलाफ कई सफल अभियान लड़े थे। उसे दिल्ली में बुलाया गया तथा अर्ज–ए–मुमालिक (युद्ध–मंत्री) बनाया गया। उसने 1290 में एक कड़ा कदम उठाकर कैमूर की हत्या कर दी तथा खुद गद्दी पर बैठ गया। खिलज़ी कुलीनों के एक वर्ग ने खिलज़ी वंश की नींव डाली। कुछ विद्वान इसे वांशिक क्रांति के रूप में परिभाषित करते हैं। इसने तथाकथित गुलाम वंश का अन्त किया तथा फिरोज जलालुद्दीन खिलज़ी के रूप में सिंहासन पर बैठा।

पाठगत प्रश्न 9.2

1. सिंहासन पर बैठते समय इल्तुतमिश के सम्मुख कौन–सी कठिनाइयाँ आई? किन्हीं दो का उल्लेख करें?

   _____

2. इल्तुतमिश द्वारा बनाया गया तुर्क–ए–चहलगनी क्या था?

   _____

3. दिल्ली सल्तनत का प्रथम सुलतान आपके अनुसार कौन था?

   _____

4. सत्ता के वर्चस्व को सुलतान के पास कायम रखने के लिए बलबन ने किन उपायों को अपनाया?

   _____

9.5 खिलज़ी (1290-1320 ई.)

जलालुद्दीन खिलजी ने खिलज़ी वंश की नींव डाली। जलालुद्दीन 70 वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठा। हालांकि जलालुद्दीन ने अपने प्रशासन में पूर्व कुलीनों को बरकरार रखा, किन्तु खिलज़ियों के उदय ने महत्त्वपूर्ण कार्यालयों में कुलीन वर्ग में गुलामों के वर्चस्व को कम कर दिया। जलालुद्दीन का शासन मात्र 6 वर्ष ही रहा। उसने बलबन द्वारा अपनाए कड़े नियमों को भी ढीला किया वह सल्तनत का पहला ऐसा सुल्तान था, जिसने विचार दिया कि शासन जनता के समर्थन से चलना चाहिए तथा चूंकि भारत में हिन्दू आबादी अधिक है अतः यह सच्चा इस्लामिक राज्य नहीं हो सकता।

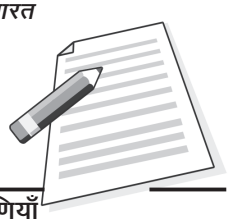

जलालुद्दीन खिलज़ी ने उदारता की नीति अपनाकर अभिजात्य वर्ग का समर्थन हासिल किया। उसने कड़े दंड वाली नीति का त्याग किया। यहां तक कि उन्हें भी कड़ा दंड नहीं दिया, जिन्होंने उसके खिलाफ विद्रोह किया था। उसने न सिर्फ उन्हें क्षमादान दिया, बल्कि उनका विश्वास जीतने के लिए सम्मानित भी किया। हालांकि उसके कई समर्थकों ने उसे कमजोर सुल्तान की संज्ञा दे डाली थी। जलालुद्दीन खिलजी की सभी नीतियां अलाउद्दीन खिलज़ी द्वारा पलट दी गई, जिसने अपना विरोध करने वाले को कड़ा दंड देने का प्रावधान किया था।

अलाउद्दीन खिलज़ी (1296 – 1316 ई.)

अलाउद्दीन खिलज़ी, जलालुद्दीन खिलज़ी का महत्त्वाकांक्षी भतीजा और दामाद था। उसने अपने चाचा की मदद सत्ता पाने में की थी तथा अमीर–ए–तुजुक (उत्सवों का शहंशाह) के रूप में नियुक्त हुआ था। जलालुद्दीन के शासनकाल में अलाउद्दीन की दो प्रमुख जीत थीं। सन 1292 में भीलसा (विदिशा) को अधीन करने के उपरान्त कारा के साथ–साथ उसे अवध का इक्ता प्रदान किया गया था। वह अरिजि–ए–मुमालिक (युद्ध मंत्री) के रूप में नियुक्त हुआ था। सन 1294 में पहली बार दक्षिण की ओर तुर्क साम्राज्य का विस्तार किया तथा देवगिरि को अपने अधीन किया। इस सफल अभियान ने साबित कर दिया कि अलाउद्दीन खिलज़ी एक सक्षम सेनाध्यक्ष और कुशल योजनाकार था। जुलाई 1296 में उसने अपने चाचा तथा ससुर जलालुद्दीन खिलज़ी की हत्या कर दी तथा स्वयं गद्दी पर बैठ गया।

अलाउद्दीन ने बलबन के शासन की निष्ठुर नीतियां पुनः लाने का निर्णय लिया। उसने कुलीन वर्ग की स्वतंत्रता छीनी शासन में उलेमाओं का हस्तक्षेप बंद किया। उसे अपने शासनकाल के आरम्भिक वर्षों में कई विद्रोहों का भी सामना किया। तारीख–ए–फिरोजशाही के लेखक बरनी के अनुसार अलाउद्दीन खिलज़ी ने महसूस किया कि इन विद्रोहों के चार प्रमुख कारण हैं–

1. गुप्तचर व्यवस्था की अयोग्यता,
2. शराब का आम उपयोग,
3. कुलीनों के मध्य सामाजिक व्यवहार और आपस में विवाह संबंध, तथा
4. कुछ कुलीनों के पास अत्यधिक संपत्ति।

इन विद्रोहों की कड़ियों को तोड़ने के लिए अलाउद्दीन ने कुछ नियम बनाए तथा उन्हें लागू किया-

1. वे परिवार जिन्हें मुफ्त में जमीन मिली हुई है, वे अपने स्वामित्व वाली वस्तुओं के लिए करों का भुगतान करेंगे।
2. सुल्तान ने गुप्तचर व्यवस्था को पुनः संगठित किया तथा उसे और प्रभावी बनाने के लिए समुचित उपाय किए।
3. शराब का प्रयोग प्रतिबंधित किया। तथा

4. शासन की अनुमति के बगैर अभिजात्य वर्गों के आपस में सामाजिक समारोह तथा शादी–विवाह पर रोक लगा दी।

अलाउद्दीन खिलज़ी ने इलाके जीतने की महत्त्वाकांक्षा और मंगोलों से देश की रक्षा के लिए एक विशाल स्थायी सेना की स्थापना की।

अलाउद्दीन खिलज़ी के बाजार सुधार

बाजार पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए अलाउद्दीन द्वारा किए गए उपाय सबसे महत्त्वपूर्ण नीतियों में से एक है। चूंकि अलाउद्दीन एक विशाल सेना रखना चाहता था, अतः उसने आवश्यक वस्तुओं के मूल्य कम किए तथा निर्धारित किए। मूल्यों को नियंत्रित करने के लिए अलाउद्दीन ने विभिन्न वस्तुओं के विभिन्न बाजार बनाए। ये थे अनाज बाजार (मंडी), कपड़ा बाजार (सराय आदिल) तथा घोड़ों/जानवरों/गुलामों का बाजार। अलाउद्दीन ने एक पर्यवेक्षक शाहना–ए–मंडी की नियुक्ति की, जिसके अधीन एक सूचनाधिकारी होता था। शहाना–ए–मंडी के अतिरिक्त, अलाउद्दीन 'बरीद' (सूचना अधिकारी) तथा मुहियन (गुप्तचर) के द्वारा भी बाजार की दैनिक जानकारी पाता था। सुल्तान के आदेशों का उल्लंघन का अर्थ होता था कड़े से कड़ा दंड, जैसे राज–धानी से निष्कासन, आर्थिक दंड, जेल तथा अंगभंग।

घोड़ों के मूल्यों का नियंत्रण सुल्तान के लिए बहुत आवश्यक था, क्योंकि अच्छे घोड़ों की आपूर्ति के बिना सेना की कार्यकुशलता सुनिश्चित नहीं हो सकती थी। दिल्ली बाजार में घोड़ों के विक्रेताओं तथा दलालों द्वारा घोड़ों की खरीददारी से उनके कम मूल्य सुनिश्चित किए गए।

दिल्ली सल्तनत का विस्तार

अलाउद्दीन खिलज़ी के शासन काल में दिल्ली सल्तनत की सीमाएं उत्तर भारत को पार कर अपनी सर्वोच्च ऊंचाई तक पहुंची।

अलाउद्दीन ने क्षेत्रीय विस्तार अभियान की शुरुआत गुजरात के खिलाफ की। अलाउद्दीन खिलज़ी अपने साम्राज्य विस्तार के साथ–साथ गुजरात की विशाल संपदा के प्रति भी आकर्षित था। गुजरात की दौलत से उसके आगामी अभियानों में मदद होती तथा उसके समुद्री तट से उसकी सेना के लिए अरबी घोड़ों की आपूर्ति सुनिश्चित हो जाती। सन 1299 में अलाउद्दीन के दो प्रमुख सेनापतियों उलुगखान तथा नुसरत खान ने गुजरात की ओर रुख किया। गुजरात का शासक राय करन जान बचाकर भाग गया तथा सोमनाथ मंदिर जीत लिया गया। विशाल मात्रा में लूट का माल इकट्ठा किया गया। यहां तक कि सम्पन्न मुस्लिम व्यापारी भी नहीं बख्शे गए। कई गुलाम बंदी बनाए गए। उनमें से एक मलिक काफूर था, जो बाद में जाकर खिलज़ी सेना का मुख्य सेनापति बना तथा उसने दक्षिण अभियानों का संचालन किया। गुजरात अब दिल्ली सल्तनत का ही हिस्सा था।

गुजरात पर अधिकार स्थापित करने के उपरान्त अलाउद्दीन ने अब अपना ध्यान राजस्थान पर केंद्रित किया उसका पहला लक्ष्य रणथम्भौर था। रणथम्भौर का किला

राजस्थान का सबसे प्रतिष्ठित किला माना जाता था तथा पूर्व में वह जलालुद्दीन खिलज़ी को चुनौती दे चुका था। राजपूतों का नैतिक मनोबल तोड़ने के लिए रणथम्भौर को जीतना अत्यंत ही आवश्यक था। रणथम्भौर पर आक्रमण करने का तत्कालीन कारण राजपूत शासक हमीरदेव द्वारा दो विद्रोही मंगोल सैनिकों को शरण देना था तथा उनको खिलज़ी शासकों को देने से इंकार कर दिया था। अतः रणथम्भौर के खिलाफ मोर्चा खोला गया। प्रारंभ में खिलज़ी सेना को नुकसान हुआ। यहां तक कि नुसरत खान को अपनी जान गंवानी पड़ी। अंततः अलाउद्दीन खिलज़ी को युद्ध के मैदान में खुद आना पड़ा तथा सन 1301 में अलाउद्दीन ने किले को जीत लिया।

सन 1303 में अलाउद्दीन ने एक अन्य शक्तिशाली प्रदेश चित्तौड़ को जीता। कुछ विद्वानों के अनुसार अलाउद्दीन ने राजा रतन सिंह की सुंदर पत्नी पद्मावती के प्रति आकर्षित होकर चित्तौड़ पर हमला किया था। हालांकि कुछ इतिहासकार इस कथा को मानने से इंकार करते हैं, क्योंकि इस गाथा का वर्णन जायसी द्वारा 200 वर्ष बाद पद्मावत में पहली बार किया गया। अमीर खुसरो के अनुसार सुल्तान ने आम जनता के कत्लेआम की आज्ञा दी थी। अपने पुत्र खिजरखान के नाम पर उसने चित्तौड़ का नाम खिजराबाद कर दिया। अलाउद्दीन को दिल्ली वापस आना पड़ा, क्योंकि मंगोल सेना दिल्ली की ओर कूच कर रही थी।

सन 1305 में एन–उल–मुल्क के नेत त्व में खिलज़ी सेना ने मालवा पर अधिकार स्थापित किया। अन्य राज्य जैसे उज्जैन, मंडू, धर तथा चंदेरी भी जीत लिए गए। मालवा विजय के उपरांत अलाउद्दीन ने मालिक काफूर को दक्षिण में भेजा स्वयं सिवाना पर आक्रमण किया। सिजाना के शासक राजा शीतल देव ने दुर्ग की वीरतापूर्वक रक्षा की, किन्तु अंततः पराजित हुआ। सन 1311 में अन्य राजपूत प्रदेश जालौर भी सल्तनत का हिस्सा था। इस प्रकार 1311 तक अलाउद्दीन ने राजपूतों के सभी क्षेत्रों को जीत लिया तथा उत्तर भारत का शहंशाह बन गया।

दक्कन तथा दक्षिण भारत

अलाउद्दीन की साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा उत्तर भारत पर अधिकार के साथ पूर्ण नहीं हुई थी। वह दक्षिण को जीतने के लिए भी कटिबद्ध था। दक्षिण भारत की सम्पत्ति ने उसे आकर्षित किया। दक्षिण में युद्ध के लिए अलाउद्दीन के विश्वसनीय सेनापति मलिक काफूर के नेत त्व में फौज को भेजा गया, जो नायब का कार्य भार संभाले था। सन 1306-07 में अलाउद्दीन ने दक्कन में पहला अभियान प्रारंभ किया। उसका पहला निशाना (गुजरात का पूर्व शासक) रायकरन था जो अब बगलाना का शासक था तथा खिलजी से पराजित हुआ। उसका अगला निशाना देवगिरि का शासक रामचन्द्र था, जिसने पहले सुल्तान को राशि देने का वादा किया था, किन्तु कभी दी नहीं। रामचंद्र ने हल्के संघर्ष के उपरान्त मलिक काफूर के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया तथा उसके साथ सम्मानजनक व्यवहार हुआ। उसे गुजरात का एक जिला प्रदान किया गया तथा उसकी एक पुत्री का विवाह अलाउद्दीन से हुआ था। अलाउद्दीन ने रामचंद्र के प्रति गरमजोशी का परिचय दिया, क्योंकि वह दक्षिण के अभियानों में रामचंद्र को साथी बनाना चाहता था।

सन 1309 के उपरान्त मलिक काफूर दक्षिण भारत के खिलाफ अभियान पर रवाना हुआ। पहला आक्रमण तेलंगाना क्षेत्र में वारंगल के शासक प्रताप रुद्रदेव के खिलाफ था।

आपकी टिप्पणियाँ

घेराबंदी कई महीनों तक चली तथा तब समाप्त हुई जब प्रताप रुद्रदेव के सुल्तान को अपनी सम्पत्ति में हिस्सा देने तथा सुल्तान को शुल्क अदा करने का वादा किया।

दूसरा अभियान द्वार समुद्र तथा मालबार (वर्तमान कर्नाटक तमिलनाडु) के खिलाफ था। द्वार समुद्र के शासक वीर बल्ला त तीय यह समझने के पश्चात कि मलिक काफूर को

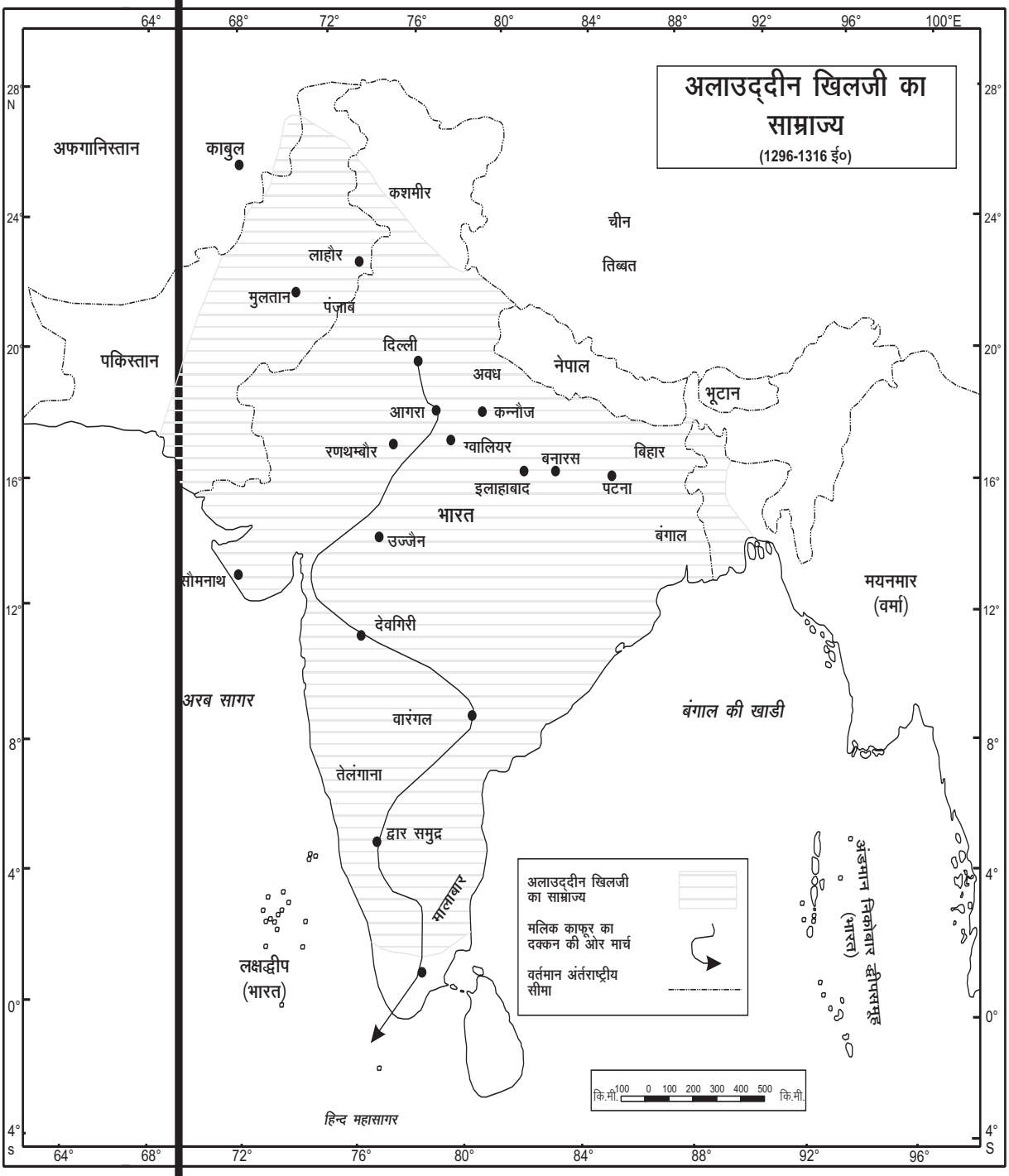

मानचित्र 9.1 अलाउद्दीन खिलज़ी का साम्राज्य

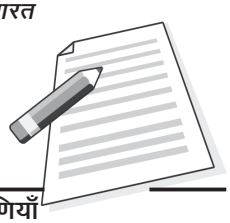

हराना असंभव है, बिना किसी संघर्ष के सुल्तान को शुल्क अदा करना स्वीकार कर लिया। मालबार (पांड्य राज्य) की यदि बात करें तो सीधा संघर्ष नहीं हो सका। हालांकि मलिक काफूर ने सम द्ध मंदिरों सहित बहुत ज्यादा लूटपाट की इनमें चिदम्बरम का मंदिर मुख्य था। अमीर खुसरों के अनुसार काफूर 512 हाथियों, 7000 घोड़ों तथा 500 मन बहुमूल्य पत्थरों के साथ लौटा था। सुल्तान ने मलिक को साम्राज्य का नायब बनाकर पुरस्क त किया था। मलिक के नेत त्व में अलाउद्दीन की सेनाओं ने दक्कन प्रदेशों में अपना नियंत्रण कायम रखा।

पाठगत प्रश्न 9.3

1. रणथम्भौर का नियंत्रण क्यों आवश्यक था?

   _____

2. अलाउद्दीन खिलज़ी के शासन काल में दक्षिण में सेना का नेत त्व किसने किया था?

   _____

3. जलालुद्दीन के शासन काल में दो प्रमुख सैन्य अभियानों के नाम लिखें?

   _____

4. विद्रोहों को दबाने के लिए अलाउद्दीन खिलज़ी द्वारा किए गए चार प्रावधानों का उल्लेख करें?

   _____

1316 मे अलाउद्दीन की म त्यु के पश्चात दिल्ली सल्तनत में पुनः भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो गई थीं। कुछ दिनों के लिए मलिक काफूर सिंहासन पर बैठा पर कुतुबुद्दीन मुबारकशाह ने उसे हटा दिया। कुतुबुद्दीन मुबारक शाह भी जल्द ही मारा गया तथा खुसरो ने गद्दी हासिल की। हालांकि उसका शासन भी अधिक लम्बा न चल सका तथा गयासुद्दीन तुगलक के नेत त्व में कुछ असंतुष्ट अधिकारियों ने उसे युद्ध में पराजित कर मार डाला। इस प्रकार अलाउद्दीन खिलज़ी की म त्यु के मात्र चार वर्ष बाद ही खिलज़ी साम्राज्य का पतन हो गया।

9.6 तुगलक वंश (1320-1412 ई.)

तुगलक वंश का संस्थापक गजनी मलिक था, जिसने ग्यासुद्दीन तुगलक के रूप में सन् 1320 में सिहांसन हासिल किया था तथा जिसका वंश 1412 ई. तक सत्ता में रहा। अलाउद्दीन के शासन काल में ग्यासुद्दीन तुगलक ने विशिष्ट पदों पर कार्य किया था (1325 ई.) छोटे से शासन काल के उपरांत ग्यासुद्दीन तुगलक की म त्यु हो गई तथा उसका पुत्र मुहम्मद तुगलक गद्दी पर बैठा। तुगलकों के शासन काल में दिल्ली सल्तनत और संगठित हुई सल्तनत के सीधे नियंत्रण में कई नए क्षेत्र भी आए।

दक्कन और दक्षिण प्रदेश

अलाउद्दीन द्वारा विजित दक्कन के क्षेत्रों ने शुल्क अदा करना बंद कर दिया था तथा स्वतंत्रता का झंडा उठा दिया था। मुहम्मद बिन तुगलक ने राजकुमार होते हुए (जूना खान के नाम से प्रचलित) राय रुद्रदेव के खिलाफ अभियान छेड़ा, जो लम्बे युद्ध के पश्चात् पराजित हुआ। वारंगल अब दिल्ली सल्तनत के सीधे नियंत्रण में था। मालबार भी पराजित हुआ। अब पूरे तेलंगाना क्षेत्र को प्रशासनिक टुकड़ियों में बांटा तथा सल्तनत का हिस्सा बनाया। मुहम्मद तुगलक ने तो दिल्ली के स्थान पर देवगिरी को राजधानी बनाने का निर्णय लिया उसका नाम दौलताबाद रखा गया। वास्तव में वह उत्तर क्षेत्र को यहीं से नियंत्रित करना चाहता था। व्यापक संख्या में कुलीन वर्ग, धार्मिक व्यक्ति और शिल्पी नई राजधानी में स्थानांतरित किए गए। प्रतीत होता है कि उसका इरादा दौलताबाद को दिल्ली के साथ–साथ दूसरी राजधानी बनाने का था। कालान्तर में यह योजना त्याग दी गई हालांकि इस योजना ने दक्षिण तथा उत्तर के मध्य रिश्तों में सुधार किया। क्षेत्रीय विस्तार के साथ–साथ सामाजिक, सांस्क तिक तथा आर्थिक संबंध भी बने और फले–फूले।

पूर्वी भारत

जाजनगर उड़ीसा के शासक भानुदेव द्वितीय ने वारंगल के राय रुद्रदेव की सहायता सुल्तानों के खिलाफ युद्ध में की थी। उलुग खान के नेत त्व में सन् 1324 में भानुदेव द्वितीय पराजित हुआ और उसके राज्य को भी सम्मिलित कर लिया गया। बंगाल में सुल्तान के खिलाफ दरबारियों में असंतोष था। असंतुष्टों ने राजकुमार को आमंत्रित किया कि वहां के शासक पर हमला करें। बंगाल की सेना पराजित हुई तथा नसीरुद्दीन नामक सरदार को गद्दी सौंप दी गई।

राजधानी परिवर्तन

मुहम्मद तुगलक के सर्वाधिक विवादास्पद निर्णयों में एक था, दिल्ली से देवगिर (दौलताबाद) राजधानी परिवर्तन करना। डॉक्टर मेंहदी हसन के अनुसार सुल्तान दोनों राजधानियों को बरकरार रखना चाहता था। बर्नी के अनुसार सन 326-27 मे सुल्तान ने अपनी राजधानी स्थानांतरित करने का निर्णय लिया, क्योंकि वह केंद्रीय स्थिति में स्थित था। इब्नबतूता के अनुसार दिल्ली की जनता सुल्तान को गालियों वाले पत्र भेजा करती थी। अतः उन्हें दंडित करने के लिए सुल्तान ने राजधानी परिवर्तन का निर्णय लिया। इमामी कहते हैं कि वह स्थान उत्तर–पश्चिमी सीमा से काफी दूर था अतः मंगोलों की पहुंच से परे था। विभिन्न मतों की वजह से इस स्थानांतरणा की मुख्य वजह पर पहुंचना बहुत ही मुश्किल है।

दिल्ली के समस्त लोगों को दिल्ली छोड़ने को नहीं कहा गया था, मात्र उच्च वर्ग जैसे शेख, अभिजात्य वर्ग, उलेमा इत्यादि ही दौलताबाद ले जाए गए थे। बाकी लोगों को ले जाने का कोई प्रयास नहीं किया गया। मुहम्मद तुगलक ने हालांकि दिल्ली से देवगिर तक सड़क का निर्माण किया था तथा विश्राम ग हों को भी स्थापित किया था, किन्तु लोगों के लिए सफर आसान नहीं था। कष्टदायक यात्रा और भयानक गरमी की वजह से काफी लोग मर गए। बढ़ते असंतोश को देखकर तथा यह भांपकर कि दक्षिण से उत्तर भारत नियंत्रित नहीं हो पाएगा, सुल्तान ने दौलताबाद छोड़ने का निर्णय ले लिया।

उत्तर पश्चिम

नियमित अंतराल पर दिल्ली सल्तनत पर मंगोलों के आक्रमण होते रहते थे। सन 1326-27 में तरमशरीन खान के नेत त्व में बड़ा मंगोली आक्रमण हुआ। मुहम्मद तुगलक ने सीमाओं को सुरक्षित करने का निर्णय लिया। लाहौर से कलानौर, पेशावर तक जीत लिए गए तथा नया प्रशासनिक नियंत्रण लागू किया गया। इसके अतिरिक्त सुल्तान ने कराचिल क्षेत्र (वर्तमान हिमाचल) तथा कंधार को भी जीतने का प्रयत्न किया, किन्तु सफल नहीं हुआ। वास्तव में इन योजनाओं में बहुत नुकसान हुआ।

नई नीतियां अपनाने के विषय में मुहम्मद तुगलक अच्छा था। उसने क षि के विकास के लिए नए विभाग का निर्माण कराया। जिसे 'दीवान–ए–कोही, कहा गया। किसानों को जुताई के लिए बीज लेने की सहायता प्रदान की गई। फसल बरबाद होने पर भी यह ऋण दिया जाता था। अन्य महत्त्वपूर्ण सुधार चांदी की कमी से पार पाने के लिए प्रतीकात्मक मुद्रा का चलन था। हालांकि यह योजना असफल हुई तथा इसने सल्तनत को भारी आर्थिक नुकसान पहुंचाया।

प्रतीकात्म्क मुद्रा

मुहम्मद बिन तुगलक द्वारा आरंभ की गई अन्य विवादास्पद योजना 'प्रतीकात्मक मुद्रा' का प्रयत्न था। बर्नी के अनुसार सुल्तान ने प्रतीकात्मक मुद्रा का प्रचलन प्रारंभ किया, कि अति विस्तारवादी योजनाओ की वजह से तथा अत्यधिक उदारता की वजह से खजाना खाली हो चुका था। कुछ इतिहासकारों का मत है कि उन दिनों विश्व स्तर पर चांदी की कमी थी, इसलिए भारत भी इससे अछूता नहीं था अतः सुल्तान को चांदी के स्थान पर तांबे के सिक्के चलाने पड़े।

मुहम्मद ने चांदी के सिक्के (टका) के स्थान पर तांबे की मुद्रा (जितल) चलाई तथा आदेश दिया कि इसे टका के रूप में स्वीकार किया जाए। हालांकि प्रतीकात्मक मुद्रा का विचार भारत के लोगों के लिए नया था तथा व्यापारियों आम लोगों के लिए इसे स्वीकारना अत्यंत कठिन था। शासन ने भी सिक्कों की गढ़ाई के विषय में उचित सावधानी नहीं बरती। सरकार लोगों को नए सिक्के ढालने से रोक न सकी तथा जल्द ही बाजार में नकली प्रतीकात्मक मुद्राओं की बाढ़ आ गई। बर्नी के अनुसार लोगों ने सिक्के घर मे ही ढालने प्रारंभ कर दिए थे। अतः सामान्य जनता के लिए सरकारी सिक्कों तथा लोगों द्वारा ढले सिक्कों में अंतर करना मुश्किल हो रहा था। अंततः सुलतान को यह योजना वापस लेनी पड़ी।

मुहम्मद बिन तुगलक के पश्चात उसका चचेरा भाई फिरोज तुगलक सुल्तान बना। उसके शासन काल में कोई भी नया क्षेत्र नहीं जीता गया। उसने विशाल साम्राज्य को बनाए रखने के लिए बहुत प्रयत्न किए। हालांकि दिल्ली पर शासन की पकड़ फिरोज के उत्तराधिकारियों के समय में ढीली होने लगी थी। सन 1398 में तैमूर के हमलों ने सल्तनत को हिला दिया। तुगलक साम्राज्य के अंतिम दिनों में 1412 ई. में सल्तनत उत्तर भारत के एक छोटे से हिस्से में सिमट गई थी। कई राज्यों ने खुद को स्वतंत्र

घोषित कर दिया था। पूर्व में उड़ीसा तथा बंगाल पूर्ण स्वायत्तता घोषित कर चुके थे। पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार के कई हिस्सों में एक नए वंश का उदय हुआ –शरकी प्रशासन। दक्कन तथा दक्षिण में विजयनगर और बहमनी राजनीतिक शक्तियां बन गईं। पंजाब का बड़ा हिस्सा स्वतंत्र सरदारों द्वारा जीत लिया गया। गुजरात और मालवा स्वतंत्र हो गए। राजस्थान के राजपूत सल्तनत को अपना स्वामी स्वीकार नहीं करते थे।

पाठगत प्रश्न 9.4

1. गाजी मालिक किस नाम से गद्दी पर सन 1320 में बैठा?

2. दक्षिण विजय के लिए ग्यासुद्दीन को किसने भेजा था?

3. मुहम्मद बिन तुगलक द्वारा राजधानी स्थानांतरण के पीछे राजनीतिक कारण क्या था?

4. प्रतीकात्मक मुद्रा के सिद्धांत का वर्णन करें?

9.7 सैय्यद वंश 1414-1450 ई.

1398 में दिल्ली की सेना को पराजित करने के उपरांत तैमूर ने खिज्रखान को मुल्तान का शासक नियुक्त किया। खिज्रखान ने सुल्तान दौलत खान को पराजित कर सैय्यद वंश की स्थापना की। उसने सुल्तान की उपाधि धारण नहीं की। बल्कि वह रायत–ए–आला से ही संतुष्ट था। तारीख–ए–मुबारकशाही के लेखक याहया सिरहिंदी दावा करते हैं कि सैयद वंश का संस्थापक पैगम्बर मुहम्मद साहब का वंशज था।

खिज्रखान, सैय्यद शासन का सबसे सक्षम शासक था, खिज्रखान की म त्यु के पश्चात मुबारक शाह (1412-34) तथा मुहम्मद शाह (1434-45 ई.) तक क्रमशः दिल्ली की गद्दी पर बैठे। इन शासकों ने कटेहर, बदायूं, इटावा, पटियाली, ग्वालियर, काम्पिल, नागौर तथा मेवात जैसे विद्रोही क्षेत्रों को नियंत्रित करने का प्रयत्न किया, किन्तु कुलीन वर्ग के षड्यंत्र के चलते वे ऐसा न कर सके।

सन 1445 में आलम शाह गद्दी पर बैठा। वह एकदम निकम्मा सुल्तान साबित हुआ। आलमशाह के वजीर हमीद खां ने बहलोल लोदी को सैन्य अध्यक्ष बनने के लिए आमंत्रित किया तथा यह महसूस करने के उपरान्त कि अब वह अधिक समय तक सुल्तान न रह सकेगा, आलम शाह बदायूं भाग गया।

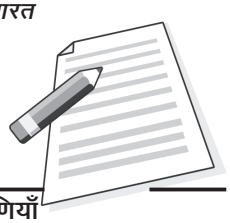

9.8 लोधी वंश तथा सल्तनत का पुर्नगठन (1451-1526 ई.)

कुछ सरदारों की मदद से बहलोल लोदी ने सेना का कार्यभार संभाला (1451-1484 ई.) तथा सुल्तान बन गया। इस प्रकार उसने लोधीवंश की नींव डाली, जो अफगान के शासक थे। लोधी शासक दिल्ली सल्तनत के आखिरी शासक थे तथा प्रथम अफगानी शासक थे।

सुल्तान बहलोल लोदी सक्षम सेनापति था। वह इस सत्य से भलीभांति परिचित था कि सल्तनत पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिए उसे अफगान कुलीनों की आवश्यकता पड़ेगी। अफगान अमीर सुल्तान से अपेक्षा करते थे कि वह उनके साथ पूर्ण शासक के बजाय समान सहयोगी जैसा बर्ताव करे। उन्हें प्रसन्न करने के लिए बहलोल ने स्वयं घोषणा की कि वह सुल्तान नहीं है, बल्कि अफगान साथियों में से ही एक है। न तो लोदी गद्दी पर बैठा तथा न ही उसने अपने दरबार में अमीरों के खड़े होने पर जोर दिया। उसके लंबे शासनकाल के लिए यह नीति कारगर रही तथा उसे शक्तिशाली अफगान अमीरों द्वारा किसी भी विरोध का सामना नहीं करना पड़ा।

दोआब तथा मेवात के विद्रोहों का बहलोल लोदी ने सफलतापूर्वक दमन किया। सन 1476 में उसने जौनपुर के सुल्तान को पराजित कर दिल्ली सल्तनत में शामिल कर लिया। कालपी तथा धोलपुर के शासकों को भी वह दिल्ली साम्राज्य का अंग बनाने में सफल रहा। हालांकि वह बंगाल, गुजरात तथा दक्कन प्रदेशों को जीत न सका।

बहलोल लोदी की म त्यु के उपरांत सिकंदर लोदी (1489-1517) गद्दी पर बैठा। सिकंदर लोदी गैर मुस्लिमों के प्रति सहनशील नहीं था तथा उसने जजिया कर गैर मुस्लिमों पर दोबारा से लगाया।

सिकन्दर लोदी सुल्तान की सर्वोच्चता में विश्वास करता था। उसने सरदारों और अमीरों को दरबार में सुल्तान के प्रति आदर दर्शाने को विवश किया तथा दरबार के बाहर उनसे कड़ाई से बर्ताव किया। उसने बिहार, धौलपुर, नारवार तथा ग्वालियर और नागौर के कुछ हिस्सों को दिल्ली सल्तनत का दोबारा से हिस्सा बनाया।

सन् 1517 में सिकन्दर लोदी की म त्यु के पश्चात उसके सरदारों ने इब्राहिम लोदी को सुल्तान बनाया। उसका साम्राज्य शासन काल विद्रोहों का काल साबित हुआ। पहले उसके भाई जलाल खान ने विद्रोह किया। सुल्तान इब्राहिम लोदी ने उसे मरवा दिया। बिहार ने खुद को स्वतंत्र घोषित कर दिया। पंजाब के शासक दौलत खां ने भी विद्रोह का बिगुल बजा दिया। सुल्तान के व्यवहार ने भी असंतोष उत्पन्न किया। असन्तुष्ट दौलत खान ने काबुल में बाबर को भारत पर आक्रमण के लिए आमंत्रित किया। बाबर ने 1526 पानीपत के प्रथम युद्ध में सुल्तान इब्राहिम लोदी को पराजित कर दिया।

सल्तनत के अंत की व्याख्या करते हुए एक विद्वान का कथन है ''दिल्ली सल्तनत ने, जिसने 1192 में तराई के प्रथम युद्ध से जन्म पाया था, अपनी आखिरी साँस पानीपत के मैदान से कुछ मील दूर 1526 में अपनी आखिरी साँस ली।''

पाठगत प्रश्न 9.5

1. अफगान अभिजात्य वर्ग का समर्थन पाने के लिए बहलोल लोदी ने क्या नीति अपनाई?

2. सैय्यद वंश का संस्थापक कौन था?

3. तारीख–ए–मुबारकशाह की रचना किसने की?

4. सुल्तान के पद के गौरव को बनाए रखने के लिए सिकन्दर लोदी ने क्या कदम उठाए?

9.9 सल्तनत के सम्मुख चुनौतियां

दिल्ली में मुगल वंश की स्थापना के साथ ही दिल्ली सल्तनत का अन्त हो गया। 300 वर्षों से अधिक के शासन काल में सल्तनत ने काफी उतार–चढ़ाव देखे पर एक राजनीतिक शक्ति के रूप में वर्चस्व कायम रखा। यहाँ हम सल्तनत के समक्ष आई चुनौतियों पर चर्चा करेंगे।

मंगोल तथा अन्य शक्तियों द्वारा आक्रमण

अपनी स्थापना के साथ ही सल्तनत मंगोल के आक्रमणकारियों के निशाने पर रही। मंगोलेंकबीलाई समूह थे जो उत्तर–चीन तथा बाइकल झील के पूर्व के मूल निवासी थे। उन्होंने चंगेज खां के नेत त्व में 12वीं शताब्दी में साम्राज्य की स्थापना की। 13वीं शताब्दी के बाद से ही उन्होंने भारत पर लगातार आक्रमण किए। एक नीति के अंतर्गत सुल्तानों ने उन्हें प्रसन्न रखा तथा कई बार रोका भी। बलबन तथा अलाउद्दीन खिलज़ी ने विशाल सैन्य शक्ति की मदद से उन्हें रोका। खिलज़ी के शासन काल के दौरान कुतलुग ख्वाजा के नेत त्व में मंगोल दिल्ली तक पहुंचे तथा बहुत नुकसान भी पहुंचाया। मंगोलों द्वारा किया गया अंतिम महत्त्वपूर्ण हमला मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में तरशमरीन के नेत त्व में हुआ था। सुल्तानों की शक्ति तथा संसाधनों का बड़ा हिस्सा इन हमलों को रोकने में प्रयुक्त हुआ, किन्तु ये हमले सल्तनत को नष्ट नहीं कर पाए।

एक अन्य हमला जिसने सल्तनत को पूरी तरह हिलाकर रख दिया था, 1398 में तैमूर का हमला था। दिल्ली सल्तनत की कमजोर स्थिति तैमूर के दिल्ली आक्रमण के बाद और कमजोर हो गई थी। तैमूर तुर्कों की चगताई जाति के सरदार का पुत्र था। जब उसने भारत पर आक्रमण किया। उस समय वह पूरे मध्य एशिया का सुल्तान था। भारत पर तैमूर द्वारा किया गया हमला लूट–पाट वाला हमला था तथा उसका मुख्य उद्देश्य 200 वर्षों में दिल्ली के सुल्तानों द्वारा एकत्र की गई दौलत को लूटना था। सुल्तान

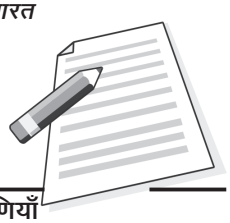

नसीरुद्दीन तथा उनके वजीर मुल्लू एकबसल ने हालांकि तैमूर का सामना करने की कोशिश की, परन्तु वे पराजित हुए। तैमूर ने दिल्ली में प्रवेश किया तथा 15 दिन रहा। उसने कत्लेआम का आदेश दिया तथा महिलाओं बच्चों सहित बड़ी संख्या में हिन्दू–मुसलमान मारे गए। भारत छोड़ने से पूर्व तैमूर के आक्रमण ने दिल्ली सल्तनत की नींव हिला दी। दिल्ली सल्तनत ने पंजाब से नियंत्रण खो दिया। तैमूर ने मुल्तान के शासक के रूप में खिज्ररखान को नियुक्त किया, जिसका नियंत्रण पंजाब पर भी था। तुगलक वंश के पतन के पश्चात उसने दिल्ली पर नियंत्रण स्थापित कर लिया तथा सैय्यद वंश की नींव डाली।

कुलीन वर्ग की आपसी जंग

300 वर्ष के दिल्ली सल्तनत के युग ने पांच वंशों का शासन देखा। इन वंशों के परिवर्तन तथा शासकों के सत्ताच्युत होने में मुख्य भूमिका सुल्तान तथा कुलीनों (उमरों) के संघर्ष ने निभाई ऐबक की म त्यु के तुरंत बाद ही वे उत्तराधिकार के मुद्दे पर उलझ गए। अंततः इल्लुतमिश विजेता बनकर उभरा। इल्तुतमिश ने वफादार उमरों का समूह बनाया, जिसे तुर्क–ए–चहलगनी (चालीस) कहा गया। इल्लुतमिश की म त्यु के उपरांत चालीस समूह के कुछ सदस्य अपने प्रिय पुत्र/पुत्री को सुल्तान बनाने की फिराक में लग गए। 10 वर्षों में 5 सुल्तान बदले गए। इसके पश्चात जिस सुल्तान ने शासन किया वह नसीरुद्दीन महमूद था, जिसने लगभग 20 वर्ष शासन किया बलबन कार्यकारी सुल्तान था। यही बलबन नसीरुद्दीन महमूद की म त्यु के पश्चात सुल्तान बना। हर शक्तिशाली शासक की म त्यु के पश्चात् समान घटनाएं हुईं (बलबन, अलाउद्दीन खिलज़ी, फिरोज तुगलक इत्यादि)। उत्तराधिकारी का कोई निश्चित नियम न होने की वजह से हर शक्ति शाली अमीर अपने पसन्द के उत्तराधिकारी को गद्दी पर बैठाने का प्रयत्न करता था। अंततः बहलोल लोदी के सिंहासनारोहण के साथ, अफगानों ने सुल्तान पद की दौड़ से तुर्कों को बाहर कर ही दिया।

प्रान्तीय शक्तियां

संघर्ष का अन्य रूप विभिन्न क्षेत्रों में विविध प्रान्तीय प्रमुखों द्वारा स्वतंत्रता का झंडा बुलंद करना था। परिणामस्वरूप कई स्वतंत्र तुर्क तथा अफगान शक्तियों का उद्य हुआ। ऐसे प्रदेशों में मुख्य थे बंगाल (लखनौती) जौनपुर, मालवा, गुजरात तथा दक्कन का बहमनी राज्य, ये प्रदेश अकसर सल्तनत के साथ युद्धरत रहते थे। इस प्रक्रिया ने सल्तनत को दुर्बल बनाया।

भारतीय शासकों के विद्रोह

सुल्तानों को भारतीय शासकों की चुनौतियों का भी सामना करना पड़ा था। राजपूताना के राजपूत सरदार (मेवाड़, रणथम्भौर, चित्तौड़ आदि) वारंगल, देवगिर, दक्कन तथा दक्षिण में मालबार, धार का राजा, मध्य भारत में मालवा, उड़ीसा में जाजनगर, तथा कई छोटे प्रान्त प्रमुख लगातार पराजयों के पश्चात भी सल्तनत के साथ संघर्षरत रहते थे। इन सभी संघर्षों ने सल्तनत को कमजोर किया।

खिलज़ी तथा तुगलक वंश के शासन के उपरान्त सल्तनत की स्थिति कमजोर होती चली गई। अतः 1526 में बाबर ने निर्णायक आक्रमण करके इसका अंत कर डाला। अब एक अधिक संगठित मुगल साम्राज्य भारत में स्थापित हुआ उसने आगे 200 वर्षों तक शासन

किया। इसकी चर्चा हम अपने अगले पाठ मुगलश्शासन में करेंगे। किन्तु मुगल काल पर चर्चा करने से पूर्व क्षेत्रीय शक्तियों को जानना आवश्यक होगा।

क्षेत्रीय शक्तियों का उदय

आप पढ़ चुके हैं कि मुहम्मद तुगलक के शासनकाल से ही दिल्ली सल्तनत का विघटन प्रारंभ हो चुका था। हालांकि फिरोजशाह तुगलक ने नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया, किन्तु असफल हुआ। इस अवधि के दौरान कुछ प्राचीन शक्तियों ने खुद को सल्तनत के शासन से स्वतंत्र घोषित कर दिया था।

जौनपुर

दिल्ली सल्तनत के पूर्वी भाग की एक प्रमुख सम द्ध शक्ति जौनपुर थी। मलिक सरवर जौनपुर का शासक था। जल्द ही वह कन्नौज, कारा, अवध, संदील, दालमऊ, बहराइच, बिहार तथा त्रिहुट का भी शासक बन बैठा। हालांकि उसने सुल्तान की उपाधि धारण नहीं की, पर उसने शरकी वंश की नींव डाली।

सन 1399 मे मलिक सरवर की म त्यु के पश्चात उसका गोद लिया पुत्र मलिक करनफुल सिंहासन पर बैठा। उसने मुबारक शाह की उपाधि धारण की और शरकी वंश का प्रथम सुल्तान बना। जहां मुबारकशाह जौनपुर का शासक था, उसी समय महमूद तुगलक, दिल्ली का सुल्तान, मल्लू इकबाल के हाथों की कठपुतली था। मल्लू इकबाल ने जौनपुर को जीतने का प्रयास किया, पर असफल रहे। सन 1402 में मुबारक शाह की म त्यु के पश्चात उसका छोटा भाई इब्राहिम शासक बना, जिसकी शासन अवधि 34 वर्ष तक रही।

इब्राहिम के शासनकाल के दौरान दिल्ली और जौनपुर के संबंध मधुर नहीं रहे। इब्राहिम शरकी वंश का महान शासक था, जिसके शासन काल में जौनपुर शिक्षा का महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गया था। उसके शासनकाल के दौरान विशेष प्रकार की स्थापत्य कला का विकास हुआ, जिसे स्थापत्य की शरकी शैली कहा गया। इस कला की प्रमुख इमारत जौनपुर की अटाला मस्जिद है।

इब्राहिम के उत्तराधिकारी ने चुनार के किले पर विजय पाई उसने कालपी को विजय करने का भी प्रयत्न किया पर असफल हुए। उसने दिल्ली पर आक्रमण किया पर बहलोल लोदी ने उसे पराजित कर दिया। महमूद के पश्चात मुहम्मद शाह तथा हुसैन शाह का शासन काल चला। सन 1500 में हुसैन शाह की म त्यु के साथ ही शरकी वंश का अंत हो गया।

कश्मीर

शम्सुद्दीन शाह (1339 ई.) कश्मीर का प्रथम मुस्लिम शासक हुआ। सन 1398 में सिकन्दर गद्दी पर बैठा। वह एक शक्तिशाली तथा वीर शासक था। सिकन्दर की म त्यु 1416 ई. में हुई तथा उसका पुत्र अली शाह गद्दी पर बैठा। कुछ वर्षों के उपरान्त उसका भाई शाह खान जैनुल आबिदिन के नाम से गद्दी पर बैठा।

जैनुल आबिदिन उदार तथा बुद्धिमान शासक था। प्रत्येक समूह का समर्थन प्राप्त करने के लिए उसने उन सभी संघों का आह्वान किया, जिन्हें सिकंदर ने नष्ट कर दिया था। उसने जजिया कर को हटाया तथा गौवध पर प्रतिबंध लगाया। जैनुल आबिदिन ने कश्मीर के आर्थिक विकास पर विशेष बल दिया। वह फ़ारसी, संस्क त, तिब्बती तथा कश्मीरी भाषा

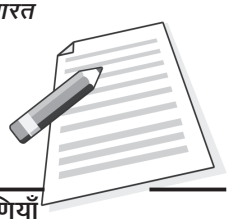

का विद्वान था। उसने महाभारत तथा राजतरंगिणी (कश्मीर का इतिहास) के फ़ारसी में अनुवाद की आज्ञा दी थी। जैनुअल आबिदिन के उत्तराधिकारी कमजोर शासक साबित हुए। उनकी दुर्बलताओं का फायदा उठाकर बाबर के एक रिश्तेदार मिर्जा हैदर ने कश्मीर पर कब्जा कर लिया। सन 1586 में अकबर ने कश्मीर को मुगल साम्राज्य में शामिल कर दिया।

मालवा

मालवा दिल्ली सल्तनत का दक्षिण–पश्चिमी क्षेत्र था। सन 1310 में सुल्तान अलाउद्दीन ने इसे जीता था तथा फिरोज तुगलक की म त्यु तक यह दिल्ली सल्तनत का ही हिस्सा बना रहा। सन 1401 में तैमूर के आक्रमण के पश्चात् दिलावर खान ने दिल्ली के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को उतार फेंका। उसने सुल्तान की शाही उपाधि धारण नहीं की। सन 1405 में दिलावर खान की म त्यु के पश्चात् उसका पुत्र आला खान सिंहासन पर बैठा तथा होशांग शाह की उपाधि धारण की। उसने मांडू को अपनी राजधानी बनाया। हिन्दी महल, जामा मस्जिद तथा जहाज महल मांडू स्थापत्यकला के कुछ नमूने हैं।

होशांग खान के पश्चात गाजी खान सिंहासन पर बैठा, जिसे 1436 ई. में उसके मंत्री महमूद खान ने सत्ताच्युत कर दिया। महमूद ने शाह की उपाधि धारण की और मालवा के खिलजी वंश की स्थापना की। महमूद खिलजी के शासनकाल में मालवा शक्तिशाली तथा सम द्ध राज्य बन गया था। फरिश्ता के अनुसार वह विनम्र, बहादुर तथा विद्वान व्यक्ति था। महमूद के बाद उसके उत्तराधिकारी क्रमशः गयासुद्दीन नसीरुद्दीन हुए। सन 1510 में महमूद द्वितीय ने गद्दी संभाली। उसने दगाबाज अमीरों को दबाने के लिए वीर राजपूत मेदिनी राय को बुलाया तथा उसे अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया। दरबार में राजपूतों के वर्चस्व ने ईर्ष्या के माहौल का निर्माण किया। गुजरात के सुल्तान ने मालवा को हराकर उसे गुजरात का एक अंग बना दिया।

गुजरात

गुजरात की भौगोलिक स्थिति, सम्पन्नता तथा उपजाऊ उर्वरता ने आक्रमणकारियों को सदा ही अपनी ओर आकर्षित किया। सुल्तान अलाउद्दीन खिलज़ी पहला सुल्तान था, जिसने गुजरात को दिल्ली सल्तनत का हिस्सा बनाया। उसके बाद यह तुर्क शासकों के ही अधीन रहा। तैमूर के आक्रमण के समय ज़फर खान उस क्षेत्र का संचालन कर रहा था। उसने दिल्ली के प्रति अपनी निष्ठा को छोड़ दिया। सन 1410 में वह गुजरात का स्वतंत्र शासक बन गया। गुजरात के शासकों में सबसे प्रमुख शासक अहमद शाह (1411-1441) था। अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए उसने राजपूतों को नियंत्रण में रखा। अहमदशाह ने अहमदाबाद शहर की स्थापना की।

सन 1441 में अहमदशाह की म त्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद शाह सिंहासन पर बैठा। वह ज़र–बख्श के नाम से जाना जाता है। 1451 में षड्यंत्रकारियों के हाथों उसकी म त्यु हो गई। मुहम्मद शाह के बाद दो अयोग्य शासकों का समय चला। अमीरों ने अहमद शाह के पौत्र फतेह खान को सिंहासन पर बैठाया। वह इस वंश का सफलतम शासक था। उसने 52 वर्षों तक शासन किया। उसके पश्चात कई उत्तराधिकारी हुए, जिनके शासनकाल बहुत छोटे रहे। सन 1572 में अकबर ने गुजरात को जीत कर मुगल साम्राज्य का हिस्सा बना लिया।

बंगाल

दिल्ली सल्तनत का सुदूर पूर्वी क्षेत्र बंगाल था। यातायात तथा संचार के साधनों के अभाव की वजह से इस क्षेत्र के नियंत्रण में कठिनाई आती थी। हालांकि बंगाल दिल्ली सल्तनत का ही हिसा बन गया था। परन्तु कई बार इसने स्वयं को स्वतंत्र घोषित किया था।

12वीं शताब्दी के अंतिम दशक में मुहम्मद बिन बख्तियार ने बंगाल को मुहम्मद गोरी द्वारा विजित क्षेत्रों का ही एक हिस्सा बना दिया था। किन्तु उसकी म त्यु के पश्चात उसके उत्तराधिकारियों ने स्थानीय जनता की सहायता से स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया था। बलबन ने बंगाल को दिल्ली की अधीनता स्वीकारने को बाध्य किया तथा अपने पुत्र बुगराखान को वहां का शासक नियुक्त किया। किन्तु बलबन की म त्यु के उपरान्त उसने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया। ग्यासुद्दीन तुगलक ने इस झगड़े को सुलझाने का प्रयास किया तथा बंगाल को तीन प्रशासनिक इकाइयों में बांटा–लखनौती, सतगाँव सोनारगावं। मुहम्मद बिन तुगलक ने दिल्ली की सर्वोच्चता घोषित करने का प्रयत्न किया किन्तु जब सुल्तान अन्य विद्रोहों को दबाने में व्यस्त था तो बंगाल ने खुद को दिल्ली से एकदम अलग कर दिया।

एक अभिजात हाज़ी इलियास ने बंगाल को पुनः संगठित किया शम्सुद्दीन इलियास शाह के नाम से गद्दी पर बैठा। हाज़ी इलियास के बढ़ते प्रभाव को कम करने के लिए फिरोज तुगलक ने बंगाल को जीतने का प्रयत्न किया, किन्तु उसे असफलता ही हाथ लगीं। उसे इलियास के साथ संधि करनी पड़ी। संधि के अनुसार दोनों राज्यों के बीच कोसी नियंत्रण रेखा बनी। सन् 1357 ई. में हाज़ी इलियास की म त्यु के पश्चात उसका पुत्र सिकन्दर गद्दी पर बैठा। उसके शासन काल के दौरान फिरोजशाह तुगलक ने बंगाल को सल्तनत में मिलाने का दोबारा प्रयत्न किया, किन्तु वह पुनः असफल हुआ सिकन्दर की म त्यु के पश्चात ग्यासुद्दीन आज़म सिंहासन का अधिकारी बना। उसने चीन के शासक के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध कायम किए, जिसने सम द्ध विदेशी व्यापार को जन्म दिया। इसके पश्चात नसीरुद्दीन, हाज़ी इलियास का पौत्र बंगाल का शासक था। उसका शान्तिपूर्ण शासन काल 17 वर्षों तक चला।

अलाउद्दीन हुसैन शाह के शासन काल में बंगाल धनी तथा सम्पन्न प्रदेश बन गया। उसकी म त्यु के पश्चात 1518 ई. में नसीब खान सिंहासन पर नसीरउद्दीन नुसरत शाह के नाम से बैठा।

सन 1538 में शेरशाह सूरी ने सुल्तान ग्यासुद्दीन महमूद शाह को पराजित कर बंगाल को अपने साम्राज्य का ही अंग बनाया।

पाठगत प्रश्न 9.6

1. दिल्ली सल्तनत पर मंगोल आक्रमण क्यों करते थे?

2. अमीरों के मध्य संघर्ष का मुख्य कारण क्या था?

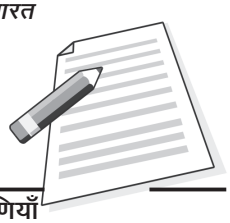

3. जौनपुर शासकों के वंश को किस नाम से जाना गया?

_____

4. बुगरा खान द्वारा स्वतंत्रता घोषित करने से निबटने के लिए ग्यासुद्दीन तुगलक ने क्या कदम उठाए?

_____



आपने क्या सीखा

इस्लाम अरब मे उदय हुआ तथा खलीफाओं के नेत त्व मे जल्द ही विश्व के सम्पूर्ण हिस्सों में फैल गया। अरब की सेनाओं ने मध्य एशिया के बड़े भू–भाग पर अधिकार स्थापित किया तथा सन् 712 ई. में भारत पर आक्रमण किया। अन्य महत्त्वपूर्ण हमला महमूद गज़नबी द्वारा भारत पर किया गया आक्रमण था। उसके आक्रमण का मुख्य उद्देश्य भारत की दौलत को गजनी लेकर जाना था।

12वीं शताब्दी में भारत छोटे–छोटे प्रांतों में विभक्त हो गया, जिनकें शासक मुख्यतः राजपूत थे। इस समय भारत की राजनीतिक स्थिति सुद ढ़ न होने की वजह से मुहम्मद गोरी ने अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए भारत का रुख किया। सन् 1191 में तराई के प्रथम युद्ध में मुहम्मद गोरी राजपूत राजा प थ्वीराज चौहान से पराजित हुआ। किन्तु 1192 में (तराई के द्वितीय युद्ध) मुहम्मद गोरी वापस लौटा तथा इस बार राजपूत पराजित हुए। इस प्रकार दिल्ली तुर्क शासकों के नियंत्रण में चला गया। मुहम्मद गोरी भारत का शासन अपने विश्वसनीय सिपहसालार कुतुबुद्दीन ऐबक के हाथों सौंप कर वापस चला गया। कुतुबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली सल्तनत की नींव डाली। इल्तुतमिश ने आंतरिक विद्रोहियों का दमन करके तथा विश्वसनीय अमीरों का समूह बनाकर सल्तनत को संगठित किया। गुलाम वंश का अंतिम शक्तिशाली सुल्तान बलबन था, जो सन् 1266 में सुल्तान बना। उसने निरंकुश शासन किया तथा सुल्तान की गरिमा को कायम करने के लिए कई कदम उठाए। सन् 1287 में बलबन की म त्यु के उपरान्त सन् 1290 में खिलज़ी सत्ता में आए।

खिलज़ियों के उदय ने तुर्क शासकों के एकाधिकार पर लगाम लगा दी। जलालुद्दीन खिलज़ी ने खिलज़ी वंश की नींव डाली। सन् 1296 में अलाउद्दीन खिलज़ी ने अपने चाचा जलालुद्दीन खिलज़ी को मारकर स्वयं सुल्तान की पदवी धारण की। उसने पद की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया। उसने अमीरों का दमन किया तथा एक तानाशाह की तरह शासन किया। उसके योग्य सेनापतियों, अल्पखान, नुसरत खान, ज़फर खान, अलुग़खान तथा मलिक काफूर ने कई महत्त्वपूर्ण विजय हासिल की। अलाउद्दीन खिलज़ी की एक अन्य उपलब्धि बाजार सुधार थे, जहां वस्तुएं निर्धारित मूल्य पर ही बेची जाती थी तथा व्यापारी अधिक लाभ नहीं कमा सकते थे। उसने विभिन्न वस्तुओं के लिए विभिन्न बाजारें की स्थापना की।

खिलज़ी वंश के पश्चात् तुगलक वंश ने गद्दी की बागडोर अपने हाथ में ले ली। सन् 1320 में ग्यासुद्दीन तुगलक सिंहासन पर बैठा। सन् 1325 में मुहम्मद बिन तुगलक उसका उत्तराधिकारी बना। मुहम्मद बिन तुगलक को उसकी नयीश्योजनाओं के लिए

जाना जाता है। इन योजनाओं में मुख्य है दिल्ली से दौलताबाद राजधानी का स्थानांतरण तथा प्रतीकात्मक मुद्रा का चलन।

मुहम्मद तुगलक की म त्यु के पश्चात् अमीरों तथा उलेमाओं ने फिरोज तुगलक को गद्दी पर बैठाया। उसके शासन काल में विघटन प्रारंभ हो गया। सन् 1398 ई. में तैमूर ने दिल्ली सल्तनत पर लूटपाट के उद्देश्य से आक्रमण किया। तैमूर के आक्रमणों ने सभी क्षेत्रीय शक्तियों को सल्तनत से स्वतंत्रता घोषित करने का अवसर दिया।

मलिक सरवर ने जौनपुर के कार्यकारी शासक के रूप में शासन किया। अन्य प्रांत मालवा ने भी दिल्ली सल्तनत की प्रभुता को झटक दिया तथा उसके शासक महमूद खिलज़ी ने मालवा की सीमाओं का विस्तार किया। गुजरात भी सल्तलत के प्रभाव से तब मुक्त हो गया जब उसके शासक जफरखान ने खुद को स्वतंत्र घोषित कर दिया। गुजरात का सर्वाधिक प्रसिद्ध शासक अहमद शाह था, जिसने अहमदाबाद की स्थापना की। प्रान्तीय शासनों में सर्वाधिक उल्लेखनीय शासन कश्मीर के शासक जैनल आबिदिन का रहा। उसके शासनकाल में कश्मीर शक्तिशाली तथा सम द्ध राज्य बन गया था।

सल्तनत के सुदूरपूर्वी क्षेत्र बंगाल को बार–बार सल्तनत का हिस्सा बनाया, किन्तु उसने बार–बार स्वतंत्रता हासिल कर ली। हाजी इलियास ने सल्तनत द्वारा तीन प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित बंगाल को संयुक्त किया।

तैमूर ने खिज्ररखान को मुल्तान का शासक नियुक्त किया। जिसने सैय्यद वंश की स्थापना की। इस वंश को लोधी शासकों द्वारा सत्ताच्युत कर दिया गया। बहलोल लोदी ने सन् 1451 में लोधी वंश की नींव डाली। बहलोल लोदी एक सक्षम शासक था तथा वह कुलीनों का विश्वास जीतने में सफल रहा। उसका उत्तराधिकारी सिकन्दर लोदी हुआ। लोदी वंश के आखिरी शासक इब्राहिम लोदी को बाबर ने सन् 1526 में पानीपत के प्रथम युद्ध में पराजित कर दिया। सन् 1192 में जन्मी दिल्ली सल्तलत ने आखिरी सांस 1526 में ली तथा मुगल साम्राज्य की स्थापना के लिए रास्ता बनाया।

पाठान्त प्रश्न

1. महमूद गज़नी कौन था? उसने भारत पर आक्रमण क्यों किया?
2. मामलुक सुल्तान कौन थे? इल्तुतमिश ने अपनी स्थिति को किस प्रकार सुद ढ़ किया?
3. दिल्ली सल्तनत के संचालन के लिए उच्चस्तरीय केंद्रीयक त प्रणाली विकसित करने के लिए बलबन ने कौन से कदम उठाए?
4. बाजार पर नियंत्रण रखने के लिए अलाउद्दीन खिलज़ी द्वारा अपनाए गए कदमों की विस्तार से व्याख्या कीजिए?
5. मुहम्मद तुगलक द्वारा राजधानी परिवर्तन तथा प्रतीकात्मक मुद्रा के चलन का वर्णन करें?
6. दिल्ली सल्तनत पर तैमूर के आक्रमण के क्या प्रभाव पड़े?
7. किन कारणों से बंगाल दिल्ली सल्तनत के लिए समस्या बना रहा?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

9.1

1. • गजनी
   • प थ्वीराज चौहान तथा महुम्मद गोरी
   • कुतुबुद्दीन ऐबक
2. सन् 1192 ई.
3. महमूद गजनवी जहां भारत में सम्पत्ति की लूटपाट के लिए आया था, वहीं मुहम्मद गोरी भारत में तुर्की शासन की स्थापना करना चाहता था।

9.2

1. क. अमीरों तथा अभिजात्य वर्ग में असंतोष और विद्रोह

   ख. असंगठित प्रशासन

   ग. सल्तनत की अव्यवस्थित अपरिभाषित सीमाएं (कोई दो)
2. शासन का समर्थन करने के लिए
3. कुतुबुद्दीन ऐबक
4. क. कड़े नियमों वाला शानदार दरबार

   ख. शासक के सिद्धांत को स्थापित किया तथा सुल्तान और अमीरों के रिश्तों को पुनः परिभाषित किया।

   ग. सिज़दा (सिर झुकाने) तथा पायबोस (शासक के पैर चूमने) की शरुआत

   घ. किसी भी कुलीन को शक्ति केंद्रित नहीं करने दीं।

9.3

1. राजपूतों की शक्ति तथा मनोबल को तोड़ने के लिए रणथम्भौर का जीता जाना आवश्यक था।
2. मलिक काफूर
3. देवगिरी और भील्सा
4. क) वे परिवार जो स्वयं के निर्वाह के लिए भूमि को मुक्त रूप से भोग रहे थे, उन्हें अब अपनी सम्पत्ति के लिए कर चुकाना अनिवार्य हो गया था।

   ख) सुल्तान ने गुप्तचर व्यवस्था को पुनः संगठित किया तथा इसे अधिक प्रभावी बनाने के लिए कदम उठाए।

   ग) शराब तथा नशे की वस्तुओं के सेवन पर प्रतिबंध लगाया।

घ) कुलीन वर्गों को हिदायत दी गई कि वे शासन की अनुमति के बगैर सामाजिक समारोह तथा आपस में विवाह नहीं करेंगे।

9.4

1. ग्यासुद्दीन तुगलक
2. उसका पुत्र उलुग़खान
3. क) दक्कन पर नियंत्रण के लिए

   ख) केंद्र में राजधानी स्थापित करने के लिए
4. चांदी की कमी से निपटने के लिए चांदी के सिक्कों 'टका' के स्थान पर सुल्तान ने तांबे की मुद्रा प्रचलन में शुरू की।

9.5

1. अमीरों के साथ बराबरी
2. खिज्ररखान
3. याहया सरहिन्दी
4. अमीरों को दरबार में खड़ा होने, तथा राजा को इज्जत देने और उसकी आज्ञा मानने को बाध्य किया।

9.6

1. मध्य एशिया की राजनीति में परिवर्तन और अमीरों को लूटने के लिए
2. अमीरों के मध्य संघर्ष का मुद्दा उत्तराधिकार का प्रश्न होता था
3. शरकी राजवंश
4. ग्यासुद्दीन तुग़लक ने बंगाल को तीन स्वतंत्र प्रशासनिक इकाइयों लखनौती, सतगावं तथा सोनार गाँव में विभाजित कर इस समस्या से निपटने का प्रयास किया।

पाठान्त प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें अनुच्छेद 9.2, 1 तथा 2
2. देखें मुमालुक सुल्तान का उपशीर्षक तथा अनुच्छेद 9.4 इल्तुतमिश
3. देखें अनुच्छेद 9.4 में बलबन
4. देखें अनुच्छेद 9.5
5. देखे पहले बॉक्स का पहला अनुच्छेद तथा अनुच्छेद 9.6 में दूसरे बॉक्स का दूसरा अनुच्छेद
6. देखें अनुच्छेद 9.9 बॉक्स 3 के अन्दर
7. देखें अनुच्छेद 9.9 बंगाल उपशीर्षक।

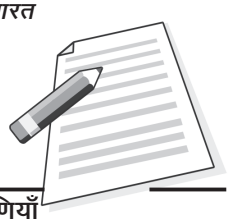

शब्दावली

अमीर - सेनापति, दिल्ली सल्तनत का तीसरा सबसे ऊंचा आधिकारिक पद

अरीज-ए-मुमालिक - पूरे देश की सेना का मंत्री

अमीर-ए-अखनूर - अश्वों का प्रधान

अमीर-एक-तुजुक - समारोह प्रमुख

बरीद - सूचना अधिकारी

चौग़ान - पोलो जैसा खेल

दलाल - मध्यस्थ

दरबार - शाही दरबार

दोआब - गंगा तथा यमुना के बीच की भूमि

दीवान-ए-अर्ज - बलबनकालीन सैन्य विभाग

इक्ता - भूखंड जो वेतन के बदलें में दिया जाता है

इक्तादार - इक्ता प्राप्त करने वाला

जज़िया - गैर मुस्लिमों पर लगने वाला व्यक्तिगत कर

जित्तल - दिल्ली सल्तनत का तांबे का सिक्का

खुतबा - धार्मिक प्रवचन

ख्वाज़ा - मालिक, व्यापारी

मालिक - दिल्ली सल्तनत में इसका अर्थ अधिकारियों की दूसरी उच्च श्रेणी

मामलुक - गुलाम अधिकारी

मंडी - अनाज बाजार

मुहियान - गुप्तचर

नायब - उप सलाहकार

पायबोस - पैरों को चूमना

राय रायन - अलाउद्दीन खिलवी द्वारा देवगीर के शासक रामदेव को दी गई उपाधि।

सराय आदिल - कपड़ा बाजार

टंका - सल्तनत कालीन चांदी के सिक्के

उलेमा - मुस्लिम धार्मिक विद्वान

उमरा - अमीर का बहुवचन। अमीर का अर्थ है दिल्ली सल्तनत के कुलीन व्यक्ति।

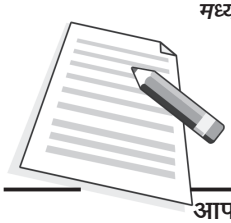

10

मुगल शासन की स्थापना

पिछले अध्याय में आपने दिल्ली सल्तनत की स्थापना (1206–1526) और संघटन के संबंध में पढ़ा। इस अवधि के दौरान शासक थे, तुर्क और अफ़गान। आपने ध्यान दिया होगा कि सम्पूर्ण सल्तनत शासन की अवधि के दौरान विविध तुर्क समूहों और अफगानों के बीच परस्पर संघर्ष ही होता रहा। दिल्ली सल्तनत समाप्त होने के कारण यहाँ विभिन्न प्रादेशिक शक्तियों का उद्भव हो गया था। इसलिए, जब 1526 में बाबर ने भारत पर आक्रमण किया तो दिल्ली सल्तनत की केन्द्रीय शक्ति मूलतः बहुत क्षीण हो गई थी और प्रादेशिक स्तर पर अनेक स्वतंत्र साम्राज्य पैदा हो गए थे। दिल्ली और उसके आसपास के क्षेत्र सुल्तान इब्राहिम लोधी के अधीन थे। अन्य महत्त्वपूर्ण साम्राज्य थे गुजरात, मालवा, बंगाल, बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर, बरार, मेवाड़ और दक्षिण में विजयनगर का साम्राज्य। इसके अतिरिक्त बहुत बड़ी संख्या में छोटे–छोटे स्वयंभू राजा भी थे जो देश के विभिन्न भागों पर शासन कर रहे थे।

इस पाठ में हम जानेंगे कि भारत पर मुगल शासक वंश ने कैसे विजय प्राप्त की। मुगलों का नेत त्व मध्य एशिया से आए एक बहुत ही योग्य सेनापति और प्रशासक ज़हीरुद्दीन मोहम्मद बाबर के हाथों में था। उसके उत्तराधिकारी धीरे–धीरे सम्पूर्ण भारत में एकछत्र राज्य स्थापित करने में सफल हो गए थे। आइए भारत में बाबर के आगमन से शुरुआत करते हैं।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के बाद आप :

- बाबर की उन परिस्थितियों के बारे में बता सकेंगे जिसमें उसने भारत में प्रवेश किया;
- भारतीय शासकों पर मुगलों की जीत की सफलता के कारण बता सकेंगे;
- बाबर की म त्यु के पश्चात् हुमायूँ को किन चुनौतियों का सामना करना पड़ा, उसका परिचिय दे सकेंगे;
- उन परिस्थितियों का विश्लेषण कर सकेंगे जिनके अधीन बाबर को हार स्वीकार करनी पड़ी और अफ़गानों की शक्ति का पुनरुद्धार हुआ;

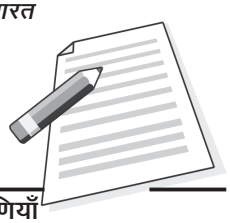

- हुमायूँ द्वारा दोबारा भारत पर विजय प्राप्त करने से संबंधित घटनाओं का वर्णन कर सकेंगे;
- अकबर के अधीन मुग़ल साम्राज्य के विस्तार और संघटन की परिस्थितियों का आकलन कर सकेंगे;
- औरंगज़ेब के शासन काल तक राज्य के प्रादेशिक विस्तार का विस्त त वर्णन कर सकेंगे; और
- भारत में मुग़ल साम्राज्य को किन चुनौतियों का सामना करना पड़ा। इसका विश्लेषण कर सकेंगे।

10.1 बाबर का आगमन (1526-30)

सन् 1494 में बारह व़र्ष की उम्र में, अपने पिता की म त्यु के उपरान्त, बाबर ट्रांसौक्सियाना में एक छोटी सी जागीर फ़रग़ाना की राजगद्दी पर बैठा। मध्य एशिया में उस समय बहुत अस्थिरता थी और बाबर को अपने ही अभिजात वर्ग से विरोध का सामना करना पड़ा। य़द्यपि वह समरक़न्द को जीतने के लिए समर्थ था, परन्तु बहुत जल्द ही उसे पीछे हटना पड़ा क्योंकि उसके अपने ही कुलीनों ने साथ छोड़ दिया था। उसे उज़बेगियों के हाथों फरग़ाना को हारना पड़ा।

तिमूरियन (तिमूर वंश)

बाबर, मध्य एशिया को जीतने वाले महान विजेता तिमूर और बहुत ही विशिष्ट महान विजेता चंगे़ज़ ख़ान के वंश से था। अपनी माता के पक्ष से वह मंगोल वंश से संबंधित था और पिता की ओर से महान सेनानायक तिमूर से। तिमूर वंश से संबद्ध होने के कारण मुगलों को तिमूरियन भी कहा जाता है।

मध्य एशिया में बाबर को शासन के प्रारंभिक काल में बहुत कठिन संघर्ष करना पड़ा। इस पूरी अवधि के दौरान वह हिन्दोस्तान की तरफ बढ़ने की योजनाएँ बनाता रहा। और अंत में 1517 में बाबर ने भारत की ओर बढ़ने का द ढ़ निश्चय कर लिया। भारत में उस दौरान हुई कुछ उथल–पुथल ने भी बाबर को भारत पर आक्रमण करने की योजनाओं पर अमल करने में मदद की।

सिकंदर लोदी की म त्यु के उपरान्त उभरी भारत की राजनीतिक अस्थिर परिस्थितियों ने उसे यह सोचने का मौका दिया कि लोदी साम्राज्य में कितना राजनीतिक असंतोष और अव्यवस्था फैली हुई थी। इसी दौरान कुछ अफ़गानी सूबेदारों के साथ परस्पर संघर्ष हुआ। उनमें से एक प्रमुख सूबेदार था दौलतख़ान लोदी, जो पंजाब के एक विशाल भूभाग का सूबेदार था। मेवाड़ का राजपूत राजा राणा सांगा भी इब्राहिम लोदी के खिलाफ अधिकार जताने के लिए ज़ोर–अज़माइश कर रहा था और उत्तर भारत में अपने प्रभाव का क्षेत्र बढ़ाने की कोशिश कर रहा था। उन दोनों ने ही बाबर को संदेश भेजकर उसे भारत पर आक्रमण करने का न्यौता दिया। राणा सांगा और दौलत खान लोदी के आमंत्रण ने शायद बाबर को उत्साहित किया होगा।

बाबर भीरा (1519-1520), सियालकोट (1520) और पंजाब में लाहौर (1524) को जीतने में कामयाब हुआ। अन्त में, इब्राहिम लोदी और बाबर की सेनाओं का सामना 1526 में पानीपत में हुआ। बाबर की सेना में कम संख्या में सैनिकों के बावजूद उनकी सैनिक व्यवस्था बहुत ही श्रेष्ठ थी। पानीपत की लड़ाई में बाबर की जीत उसकी सैनिक पद्धतियों की एक बड़ी जीत थी। बाबर की सेना में 12000 सैनिक थे जबकि इब्राहिम के पास औसतन 1,00,000 सैनिक बल था। युद्ध के मैदान में आमने सामने की लड़ाई में बाबर की युद्ध नीतियाँ बहुत ही अद्वितीय थीं। उसने युद्ध लड़ने के लिए रुमी (आटोमैन) युद्ध पद्धति को अपनाया। उसने इब्राहिम की सेना को दो पंक्तियों से घेर लिया। बीच में से उसके घुड़सवारों ने तीरों से और अनुभवी ओटोमैन तोपचियों ने तोपों से आक्रमण किया। खाइयों और राह में खड़ी की गई बाधाओं से सेना को दुश्मन के विरुद्ध आगे बढ़ने में बचाव का काम किया। इब्राहिम लोदी की अफ़गानी सेना के बहुत भारी संख्या में सैनिक मारे गए। इब्राहिम लोदी की युद्ध के मैदान में ही म त्यु हो गईं और इस प्रकार दिल्ली और आगरा पर बाबर का नियंत्रण हो गया और लोदी की अपार सम्पदा पर भी इसका कब्ज़ा हो गया। इस धन को बाबर के सेनापतियों और सैनिकों में बाँट दिया गया था।

पानीपत की विजय ने बाबर को अपनी विजयों को संघटित करने के लिए एक द ढ़ आधार प्रदान किया। परन्तु इस समय उसको इन समस्याओं का सामना करना पड़ा :

1. उसके कुलीन वर्ग के लोग और सेनापति मध्य एशिया में वापस लौटने के लिए उत्सुक थे क्योंकि उन्हें भारत का वातावरण पसंद नहीं था। सांस्क तिक द ष्टि से भी वे खुद को अजनबी महसूस करते थे।

2. राजपूत मेवाड़ के राजा राणा सांगा के नेत त्व के अधीन अपनी शक्ति को एकजुट करने में लगे हुए थे और मुगल सेनाओं को खदेड़ना चाहते थे।

3. अफ़गानियों को यद्यपि पानीपत में हार का मुँह देखना पड़ा परन्तु अभी भी उनकी सेनाएँ उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागों, बिहार और बंगाल में शक्तिशाली बनी हुई थीं। वे अपनी खोई शक्ति को पुनः संगठित करने में लगे हुए थे।

प्रारम्भ में बाबर ने अपने साथियों और कुलीनों को वहीं रुके रहने के लिए और जीते गए प्रदेशों को संगठित करने में उसकी मदद करने के लिए राज़ी कर लिया। इस कठिन काम में सफलता हासिल करने के बाद उसने अपने पुत्र हुमायूँ को पूर्व में बसे अफगानियों का सामना करने के लिए भेजा। मेवाड़ के राणा सांगा बहुत बड़ी संख्या में राजपूत राजाओं का समर्थन एकत्रित करने में सफल हो गए थे। इनमें प्रमुख थे जालौर, सिरोही, डूंगरपुर, अम्बर, मेड़ता इत्यादि। चन्देरी के मेदिनी राय, मेवात के हसन खान और सिकंदर लोदी के छोटे बेटे महमूद लोदी भी अपनी सेनाओं सहित राणा सांगा के साथ आ मिले। शायद, राणा सांगा को आशा थी कि बाबर काबुल वापस चला जाएगा। बाबर के यहीं रुके रहने से राणा सांगा की महत्त्वाकांक्षाओं को गहरा झटका लगा। बाबर को भी पूरी तरह यह समझ आ गया था कि जब तक राणा की शक्ति को क्षीण नहीं किया जाएगा तब तक भारत में अपनी स्थिति को संगठित करना उसके लिए असंभव होगा। बाबर और राणा सांगा की सेनाओं का मुकाबला, फतेहपुर सिकरी के पास एक स्थान, खनवा में हुआ। सन् 1527 में राणा सांगा की हार हुई और एक बार फिर बाबर की

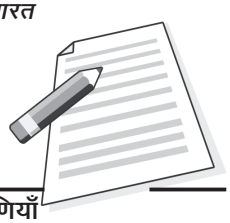

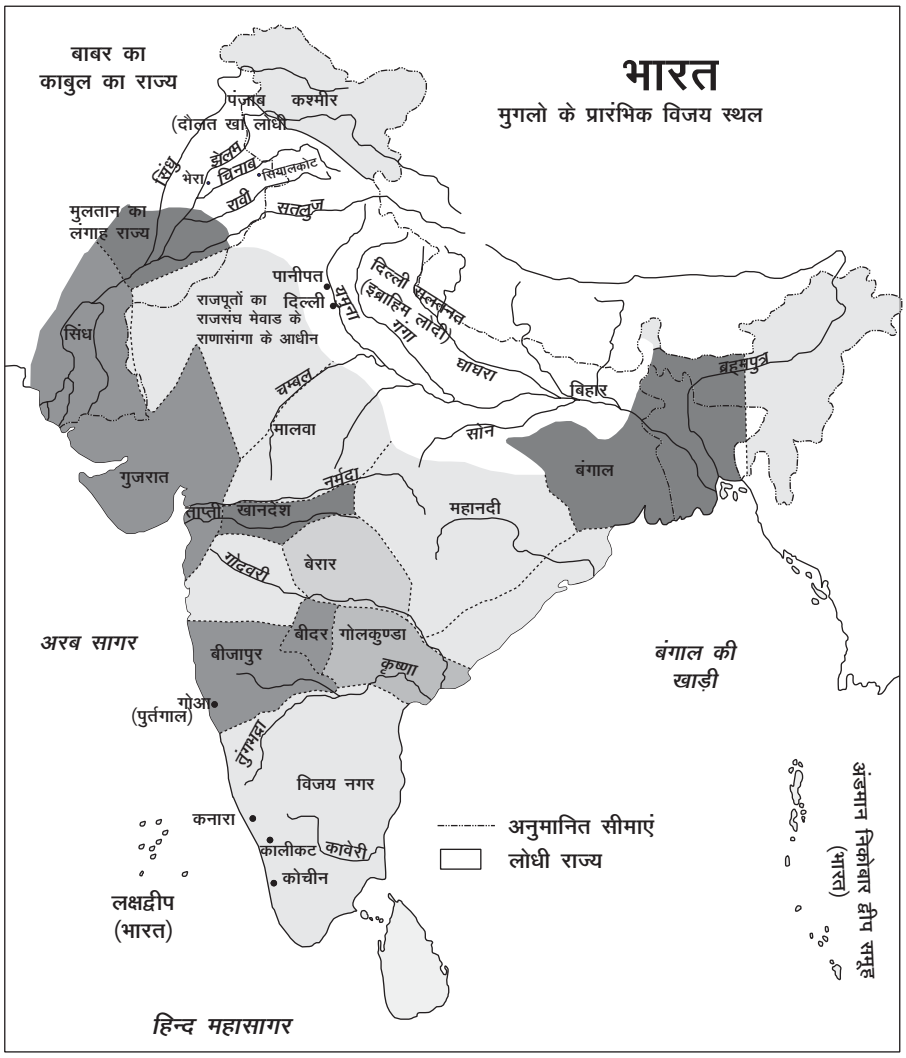

मानचित्र 10.1 मुगलों के प्रारंभिक विजय स्थल

बेहतरीन सैनिक युक्तियों के कारण उसे सफलता मिली। राणा की हार के साथ ही उत्तर भारत में उसे सबसे बड़ी चुनौती देने वाली ताकत बिखर गई।

यद्यपि मेवाड़ के राजपूतों को खनवा में गहरा आघात लगा, परन्तु मालवा में मेदिनी राय अभी भी बाबर को चुनौती दे रहा था। जिस बहादुरी से राजपूतों ने चंदेरी में (1528) युद्ध किया बाबर को मेदिनी राय पर विजय प्राप्त करने में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा। इसकी हार के बाद राजपूतों की ओर से विरोध का स्वर बिल्कुल समाप्त हो गया था। पर अभी भी बाबर को अफ़गानियों को हराना था। अफ़गानियों ने दिल्ली पर अपना अधिकार छोड़ दिया था। परन्तु पूर्व (बिहार और जौनपुर के कुछ भाग) में वे अभी भी काफी शक्तिशाली थे। अ़फ़गानों और राजपूतों पर पानीपत और खनवा में जीत बहुत ही महत्त्वपूर्ण थी परन्तु विरोध के स्वर अभी भी मौजूद थे। परन्तु अब हम यह कह सकते हैं कि यह जीत मुगल साम्राज्य की स्थापना की दिशा में आगे बढ़ने के लिए महत्त्वपूर्ण कदम था। सन् 1530 में बाबर की म त्यु हो गई। अभी भी गुजरात, मालवा और बंगाल के शासकों के पास

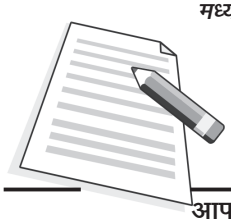

आपकी टिप्पणियाँ

काफी सशक्त सैनिक बल था और उनका दमन नहीं हो सका था। इन प्रादेशिक शक्तियों का मुकाबला करने का काम हुमायूँ के सामने अभी बाकी था।

पाठगत प्रश्न 10.1

1. बाबर ने भारत पर आक्रमण क्यों किया?

   _____

2. पानीपत में बाबर की युद्ध रणनीति क्या थी?

   _____

3. पानीपत की लड़ाई के बाद बाबर को किन समस्याओं का सामना करना पड़ा?

   _____

4. राजपुताना के कौन से दो शासकों को बाबर ने हराया?

   _____

10.2 हुमायूँ का पीछे हटना और अफ़गानों का पुनर्जागरण (1530-1540)

सन् 1530 में बाबर की म त्यु के उपरान्त उसका पुत्र हुमायूँ उत्तराधिकारी बना। हुमायूँ के अधीन परिस्थितियाँ काफी निराशाजनक थीं। हुमायूँ ने जिन समस्याओं का सामना किया वे थीं :

1. नए जीए गए प्रदेशों का प्रशासन संगठित नहीं था।
2. बाबर की तरह हुमायूँ को उतना सम्मान और मुगलों के आभिजात्य वर्ग से इतनी इज़्ज़त नहीं मिल पाई।
3. चुगतई आभिजात्य वर्ग उसके पक्ष में नहीं था और भारतीय कुलीन, जिन्होंने बाबर की सेवाएँ ग्रहण की थीं, उन्होंने हुमायूँ को राजसिंहासन मिलने पर मुगलों का साथ छोड़ दिया था।
4. उसे अफगानियों की दुश्मनी का भी सामना करना पड़ा, मुख्यतः बिहार में एक तरफ थे शेर खान तो दूसरी तरफ था गुजरात का शासक बहादुरशाह।
5. तैमूरी परम्पराओं के अनुसार उसे अपने साथियों के साथ बाँट कर शक्तियों पर अधिकार पाना था। नवस्थापित मुगल साम्राज्य के दो केन्द्र थे–दिल्ली और आगरा मध्य भारत का नियन्त्रण हुमायूँ के हाथ में था तो अफगानिस्तान और पंजाब उसके भाई कामरान के अधीन था।

हुमायूँ ने महसूस किया कि अफगानी उसके लिए एक बड़ा खतरा थे। वह पूर्व और पश्चिम से अफगानियों के संयुक्त विरोध से बचना चाहता था। उस समय तक बहादुरशाह ने भीलसा, रायसेन, उज्जैन और जगरौन पर कब्जा कर लिया था और वह अपनी शक्ति का संयोजन कर रहा था। जबकि हुमायूँ पूर्व में चुनार में घेराबंदी कर रहा था, वहीं बहादुरशाह

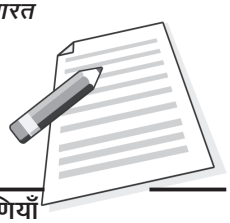

मालवा और राजपूताना की तरफ पांव फैला रहा था। इन परिस्थितियों में हुमायूँ को आगरा वापस आना पड़ा (1532-33)। विस्तार की नीति को जारी रखते हुए बहादुरशाह ने 1534 में चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। युद्ध नीति की द ष्टि से चित्तौड़ एक मज़बूत आधार स्थल होने का फायदा उपलब्ध करवा सकता था। इससे उसे राजस्थान, विशेष रुप से अजमेर, नागौर और रणथम्भौर की ओर बढ़ने में मदद मिल सकती थी। हुमायूँ ने मांडू पर जीत हासिल कर ली और यहीं पर शिविर बना लिया क्योंकि उसने सोचा कि यहाँ रहकर वह बहादुरशाह की गुजरात वापसी के रास्ते में रुकावट बन सकता है। आगरा से लम्बी अवधि तक उसके अनुपस्थित रहने के कारण दोआब और आगरा में बगावत शुरु हो गई और उसे तुरंत वापस लौटना पड़ा। माण्डू का नियन्त्रण अब हुमायूँ के भाई मिर्ज़ा असकरी की सरपरस्ती में छोड़ा गया था। जिस अवधि के दौरान हुमायूँ गुजरात में बहादुरशाह की गतिविधियों की निगरानी रख रहा था, उस अवधि में शेरशाह ने बंगाल और बिहार में अपनी शक्ति का संगठन शुरु कर दिया था।

शेरशाह सूरी का उद्‌भव

फरीद, बाद में जिसे शेर खान और अंत में शेरशाह कहा जाने लगा था, जौनपुर साम्राज्य के अधीन एक जागीरदार का पुत्र था। उसके पिता हसन खान सूर, लोदी शासन के अधीन बिहार में सासाराम के जागीरदार थे। शेरशाह अपने पिता की जागीर के प्रशासकीय कार्यों में उसकी मदद करते थे। बाद में उसको अपने पिता से संबंधों में मतभेद हो गया और वह उनको छोड़कर चला गया। उसने अफगानी कुलीन के अधीन सेवा करनी शुरू कर दी। 1524 में उसके पिता की म त्यु के बाद इब्राहिम लोदी ने उसे उसके पिता की जागीर दे दी। जागीर का कब्ज़ा लेने के लिए उसे अपने परिवार के साथ लड़ाई करनी पड़ी। उसने अपने पिता की जागीर को बहुत ही प्रभावी ढंग से व्यवस्थित किया। उसने सैनिक और प्रशासकीय कौशल में बहुत दक्षता हासिल कर ली थी। उसकी योग्यता ने उसे अफगानियों का नेता बना दिया। धीरे–धीरे उसका प्रभाव बढ़ता गया और बंगाल के महमूद शाह को हरा दिया। पूर्वी प्रदेशों में वह बहुत ही शक्तिशाली सैनिक कमांडर बनकर उभरा। शेरशाह बिहार में अपनी स्थिति मजबूत करने का प्रयास करता रहा। उसे बिहार में कई प्रमुख अफगानी अभिजात्यों और बंगाल के शासक से अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी। और अंत में वह पूर्वी भारत में खुद को अत्यन्त शक्तिशाली अफ़गानी प्रमुख के रूप में स्थापित करने में सफल हुआ।

शेरशाह खुद को एक निर्विवाद अफगानी नेता के रुप में स्थापित करना चाहता था। उसने बंगाली सेना पर आक्रमण किया और सूरजगढ़ की लड़ाई में उनको हरा दिया। शेरशाह ने बंगाल से बहुत बड़ी धन–सम्पदा हासिल की जिसने उसे एक बड़ा सैन्य बल खड़ा करने में मदद की। अब उसने बनारस और उससे परे के मुगल प्रदेशों पर आक्रमण करना शुरु कर दिया। हुमायूँ को शेरशाह की महत्त्वाकांक्षाओं पर संदेह तो था परन्तु वह उसकी क्षमताओं का अनुमान नहीं लगा पाया। उसने अपने जौनपुर के गवर्नर हिन्दु बेग से कहा कि वह शेरशाह की गतिविधियों पर नजर रखे। इस बीच शेरशाह ने (1538 में) बंगाल की राजधानी गौड़ पर जीत हासिल कर ली। जब हुमायूँ बंगाल की तरफ बढ़ रहा था तो शेरशाह ने आगरा के मार्ग पर नियंत्रण कर लिया और हुमायूँ के लिए संचार



मानचित्र 10.2 शेरशाह का साम्राज्य

संबंधी कार्यों में बाधा उत्पन्न कर दी। दूसरी तरफ हुमायूँ के भाई हिंदल मिर्जा ने खुद को स्वतंत्र घोषित कर दिया। अब हुमायूँ ने चुनार वापस लौटने का फैसला कर लिया जिसने उसकी सेना के लिए रसद की पूर्ति करनी थी। जब वह चौसा पहुँचा (1539), तो उसने कमनासा नदी के पश्चिमी किनारे पर शिविर बनाया। शेरशाह ने नदी के किनारे जाकर हुमायूँ पर आक्रमण करके उसे हरा दिया। शेरशाह ने खुद को स्वतन्त्र राजा घोषित कर दिया। हुमायूँ बच सकता था, परन्तु उसकी अधिकांश सेना नष्ट हो चुकी थी, बहुत मुश्किल से वह आगरा पहुँच पाया। उसका भाई कामरान आगरा से निकलकर लाहौर की तरफ बढ़ गया था और हुमायूँ बहुत थोड़ी–सी सेना के साथ अकेला रह गया। अब शेरशाह भी आगरा की तरफ बढ़ने लगा। हुमायूँ भी अपनी सेना को लेकर आगे बढ़ने लगा और दोनों सेनाओं का कन्नौज में टकराव हुआ। कन्नौज की लड़ाई में हुमायूँ की बुरी तरह हार हुई (1540)।

10.3 द्वितीय अफ़गानी साम्राज्य

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि लोदी वंश के अधीन पहले अफ़गानी साम्राज्य को बाबर के नेत त्व में मुगलों द्वारा 1526 में स्थापित किया गया था। 14 वर्ष

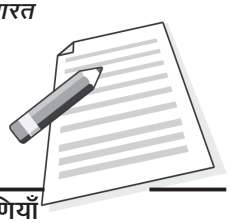

के अंतराल के पश्चात 1540 में शेरशाह भारत में दोबारा अफ़गानी शासन स्थापित करने में सफल हुआ। शेरशाह और उसके उत्तराधिकारियों ने 15 वर्ष तक राज किया। इस अवधि को द्वितीय अफ़गानी साम्राज्य काल के रुप में जाना जाता है। इस अफ़गानी शासन का संस्थापक शेरखान रण–कौशल में कुशल और योग्य सेना नायक था। हुमायूँ से उसकी लड़ाई के संबंध में हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं। हुमायूँ को हराने के बाद 1540 में शेरशाह सर्वप्रभुतासम्पन्न शासक बन गया और उसे शेरशाह का खिताब दिया गया।

शेरशाह ने उत्तर पश्चिम में सिंध तक की चढ़ाई में हुमायूँ का पीछा किया। हुमायूँ को खदेड़ने के बाद उसने उत्तरी और पूर्वी भारत में संघटन का काम शुरु कर दिया था। 1542 में उसने मालवा पर विजय प्राप्त की और तत्पश्चात चन्देरी को जीता। राजस्थान में उसने मारवाड़, रणथम्भौर, नागौर, अजमेर, मेड़ता, जोधपुर और बीकानेर के विरुद्ध लड़ाई लड़ी। उसने बंगाल में बागी अफगानियों को हराया। 1545 तक उसने सिंध और पंजाब से लेकर पश्चिम में लगभग पूरे राजपुताना पर और पूर्व में बंगाल तक के क्षेत्र में, खुद को सर्वोच्च शासक के रुप में स्थापित कर लिया था। अब वह बुंदेलखंड की ओर मुड़ा। यहाँ कालिंजर के किले की घेराबंदी के दौरान 1545 में एक बारुदी विस्फोट की दुर्घटना में उसकी म त्यु हो गई।

अपने संक्षिप्त शासन काल में शेरशाह ने बहुत महत्त्वपूर्ण प्रशासकीय और लगान पद्धतियों में परिवर्तन लागू किए। उनमें से कुछ प्रमुख हैं:

1. सरकारों और परगना स्तर पर स्थानीय प्रशासन को व्यवस्थित करना।
2. मुख्य मार्गों पर यात्रियों और व्यापारियों के लिए सड़कों और सरायों या विशाल स्थलों का निर्माण कराया जिनसे संचार स्थापित करने में भी सहायता मिली। उसने पेशावर से कोलकाता तक ग्रांड ट्रंक (जी.टी.) रोड का निर्माण कराया।
3. मुद्रा प्रणाली, भूमि के मापन और लगान के आकलन के उपायों का मानकीकरण।
4. सेना का पुनर्गठन और घोड़ों को दागने की प्रथा को पुनः शुरु करना, और
5. न्यायिक प्रणाली को व्यवस्थित करना।

शेरशाह का उत्तराधिकारी बना उसका पुत्र इस्लाम शाह। इस्लाम शाह को अपने भाई आदिल खान और कई अन्य अफगानी आभिजात्यों के साथ अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। 1553 में उसकी म त्यु हो गई। धीरे–धीरे अफगानी साम्राज्य शक्तिहीन होता गया। इसी मौके का फायदा उठाकर हुमायूँ ने फिर भारत की तरफ बढ़ना शुरु कर दिया। 1555 तक आते–आते उसने फिर से अपना खोया साम्राज्य वापिस छीन लिया और द्वितीय अफगानी साम्राज्य को समाप्त कर दिया।

1555 में हुमायूँ ने आगरा और दिल्ली पर विजय प्राप्त की और भारत में खुद को बादशाह के रुप में स्थापित कर लिया। अपनी स्थिति को वह पूरी तरह संगठित कर पाता उससे पहले ही 1556 में शेर मंडल पुस्तकालय (दिल्ली में) की सीढ़ियों से गिरकर उसकी म त्यु हो गई।

पाठगत प्रश्न 10.2

1. ¸शेरशाह को हराने में हुमायूँ असफल क्यों हुआ?

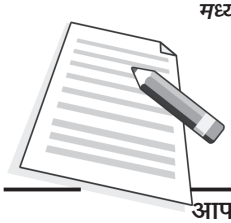

आपकी टिप्पणियाँ

2. अफगानियों के नेता के रुप में शेरखान कैसे उभरा?

3. शेरशाह के शासन के अधीन शामिल प्रदेशों की सूची बनाएँ।

4. शेरशाह की दो महत्त्वपूर्ण सफलताओं का नाम लिखें?

10.4 अकबर से औरंगजेब तक मुगल साम्राज्य

अकबर

हुमायूँ की म त्यु के समय अकबर केवल तेरह वर्ष का था। जब उसके पिता की म त्यु हुई, अकबर पंजाब में कलानौर में था इसलिए 1556 में उसका राज्यभिषेक कलानौर में ही हुआ। उसके शिक्षक और हुमायूं के प्रिय और विश्वासपात्र बैरम खान ने 1556 से 1560 तक मुगल साम्राज्य के दरबारी प्रशासक की तरह काम किया। उसने खान–ए–खाना की उपाधि प्राप्त कर के राज्य में वकील का पद हासिल किया। उसकी दरबारी प्रशासन की अवधि के दौरान उसकी प्रमुख सफलताओं में से एक थी 1556 में पानीपत के दूसरे युद्ध में हेमू और अफ़गानी सेनाओं की हार, जो कि मुगल साम्राज्य के लिए एक बहुत गंभीर खतरा बनी हुई थी।

बैरम खान का दरबारी प्रशासन (रीजेन्सी) 1556-1560

बैरम ख़ान मुगल साम्राज्य के सभी मामलों में लगभग चार वर्षों तक सबसे ऊंचे स्थान पर रहा और इस अवधि को बैरम ख़ान की दरबारी प्रशासन के काल के रूप में जाना जाता है। इस काल खंड में उसने अपने प्रिय कुलीनों को महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया। बैरम ख़ान बहुत ही शक्तिशाली दरबारी प्रशासक के रूप में उभरा। वह बहुत ही घमंडी बन गया। आभिजात्यों का एक वर्ग उसका विरोधी हो गया था। उन्होंने अकबर को भी अपनी बातों से प्रभावित कर दिया था। इस समय तक अकबर भी सब कुछ अपने पूरे नियंत्रण में लेना चाहता था। उसने बैरम खान को हटा दिया। बैरम खान ने प्रतिरोध किया परन्तु हार गया। अकबर ने उसे माफ कर दिया और सेवानिव त्त होने का अनुरोध किया। उसने हज के लिए मक्का जाने का फैसला किया। अहमदाबाद के पास एक अफ़गानी द्वारा उसकी हत्या कर दी गई। उसका बेटा बाद में अकबर के दरबार में एक बहुत ही प्रभावशाली दरबारी बना और अब्दुर रहीम खान–ए–खाना के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अपनी प्रारंभिक समस्याओं को हल करने और राज्य पर अपना पूरा नियंत्रण स्थापित करने के बाद अकबर ने विस्तार की नीति अपनाई। उस समय देशों में फैली कुछ मुख्य राजनीतिक शक्तियां थीं:

1. वे राजपूत जो पूरे देश में स्वतंत्र सूबेदारों और राजाओं के रुप में फैले हुए थे और मुख्य रुप से राजस्थान में केंद्रित थे।

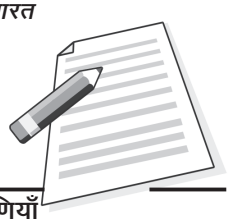

2. अफगानियों ने मुख्यतः गुजरात, बिहार और बंगाल पर राजनीतिक नियंत्रण कर रखा था।
3. खानदेश, अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुंडा और दक्षिण भारत के कुछ अन्य साम्राज्य और दक्कन बहुत ही शक्तिशाली थे।
4. काबुल और कंधार पर यद्यपि मुगल गुटों का शासन था पर वे अकबर से दुश्मनी रखते थे।

अकबर ने बहुत ही व्यवस्थित नीति से साम्राज्य को फैलाने का काम शुरु कर दिया। बैरम खान को बर्खास्त करने के बाद अकबर का पहला कदम था अपने अभिजात्य वर्ग से संघर्ष समाप्त करना। इसके नियंत्रण के लिए उसने अत्यंत कूटनीतिक कौशल और संगठनात्मक योग्यताओं का प्रदर्शन किया। अपनी विस्तार की नीति की शुरुआत उसने मध्य भारत से की। 1559-60 में अकबर ने, अपने पहले अभियान दल को मालवा की तरफ बढ़ने से पूर्व ग्वालियर को जीतने के लिए भेजा। मध्य भारत में मालवा पर उस समय बाज बहादुर का शासन था। इसके विरुद्ध लड़ाई के अभियान पर अकबर ने आधम खान को तैनात किया। बाज बहादुर हार गया और बुरहानपुर की तरफ भाग गया। गोंडवाना, दलपत शाह की विधवा रानी दुर्गावती द्वारा शासित मध्य भारत का स्वतंत्र प्रदेश था जिसे जीतने के बाद अकबर ने 1564 में मुगल साम्राज्य में शामिल कर लिया।

राजस्थान

ऐसा लगता है कि अकबर को राजपूत रजवाड़ों के महत्त्व की पूरी जानकारी थी और वह अपने राज्य का बड़े क्षेत्र में विस्तार करने की अपनी महत्तवाकांक्षा को पूरा करने के लिए उन्हें अपना मित्र बनाना चाहता था। जहाँ भी संभव हुआ उसने राजपूतों को जीतने का प्रयास किया और उन्हें मुगल सेवा में नियुक्त किया। उसने भारमल जैसे राजपूत राज–परिवारों के साथ वैवाहिक संबंध भी स्थापित किए। आमेर (अम्बर) का राजा भारमल अकबर के साथ ऐसे संबंध जोड़ने वाला पहला राजा था। मेड़ता और जोधपुर जैसे राजपूत साम्राज्यों पर भी उसने बहुत आसानी से जीत हासिल कर ली थी। परन्तु मेवाड़ शासक महाराणा प्रताप अभी भी मुगलों के लिए गंभीर चुनौती बने हुए थे और उन्होनें अकबर के सामने हथियार नहीं डाले थे। बहुत लंबे संघर्ष और चितौड़ के किले की घेराबंदी के बाद अकबर मेवाड़ की सेनाओं पर जीत हासिल करने में कामयाब हुआ। बहुत बड़ी संख्या में राजपूत सैनिक युद्ध में मारे गए। परन्तु अभी भी उसे पूरी तरह हराया नहीं जा सका था और कुछ न कुछ प्रतिरोध लंबे समय तक मेवाड़ की ओर से किया जाता रहा था। चितौड़ को हराने के बाद ही रणथम्भौर और कालिंजर को जीता जा सका था। मारवाड़, बीकानेर और जैसलमेर ने भी अकबर के सामने हार मान ली। 1570 तक अकबर ने लगभग पूरे राजस्थान को जीत लिया था। अकबर की सबसे महत्तवपूर्ण सफलता यह थी कि पूरे राजस्थान को अपने अधीन करने के बावजूद राजपूतों और मुगलों में कोई शत्रुता नहीं थी। इस सब कारणों के सबंध में हम इस पाठ में आगे चर्चा करेंगे।

अफगान (गुजरात, बिहार और बंगाल)

अफगानियों के खिलाफ जंग अकबर ने 1572 में शुरु की थी। वहां के राजकुमारों में से एक राजकुमार इत्तिमाद ख़ान ने अकबर को आमंत्रित किया था कि वह वहाँ आकर

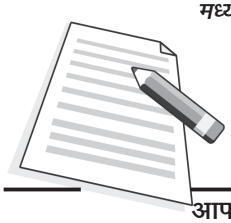

आपकी टिप्पणियाँ

इसे जीत ले। अकबर खुद अहमदाबाद पहुँचां। किसी विशेष विरोध के बगैर ही अकबर ने नगर को जीत लिया। सूरत ने मजबूत किलेबंदी करके कुछ विरोध जताया परन्तु उस पर भी अकबर ने जीत हासिल कर ली। बहुत छोटी सी अवधि के दौरान अकबर ने गुजरात के अधिकांश रजवाड़ों पर कब्जा कर लिया। अकबर ने गुजरात को संगठित करके उसे एक प्रदेश बना दिया और इसे मिर्जा अजीज कोका के शासन के अधीन करके, खुद राजधानी वापस आ गया। छह महीने की अवधि में अनेक बागी गुटों ने एकता कर ली और मिलकर मुगल शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और मुगल सूबेदार को कई प्रदेशीय क्षेत्रों से अपना कब्ज़ा छोड़ना पड़ा। बागियों के नेता थे, इख्तियार–उल–मुल्क और मोहम्मद हुसैन मिर्ज़ा। अकबर ने आगरा में विद्रोह की खबर सुनी, तो वह अहमदाबाद के लिए निकल पड़ा। अकबर बहुत तेज़ गति से आगे बढ़ा और दस दिन के अंदर अहमदाबाद पहुँच गया। बादशाह ने बहुत जल्दी ही विद्रोह को कुचल दिया।

गुजरात के अभियान के बाद बंगाल और बिहार की तरफ रुख किया गया जो अफ़गानियों के नियंत्रण मे थे। 1574 में, अकबर मुनीम खान खान–ए–खाना के साथ बिहार की तरफ बढ़ा। बहुत कम समय में ही हाजीपुर और पटना जीत लिए गए और गौड़ (बंगाल) को भी जीत लिया गया। इसके साथ ही 1576 तक बंगाल में स्वतंत्र शासन समाप्त हो गया था। 1592 तक मुगल मनसबदार राजा मान सिंह ने लगभग पूरे उड़ीसा को मुगल साम्राज्य के अधीन कर दिया था।

1581 में मुगल साम्राज्य के कुछ क्षेत्रों में सिलसिलेवार लड़ाइयाँ शुरु हो गईं। बंगाल, बिहार, गुजरात और उत्तर–पश्चिम असंतोष के मुख्य केन्द्र थे। इस समस्या के मूल में थे अफ़गानी, जिन्हें मुगलों ने हर जगह से बाहर निकाल दिया था। इसके अतिरिक्त, जागीरों के कठोर प्रशासन की अकबर की नीति भी इसके लिए ज़िम्मेदार थी। एक नई नीति अपनाई गई जिसके तहत जागीरदारों को अपनी जागीरों का लेखा प्रस्तुत करने के लिए कहा गया। इससे असंतोष पैदा हो गया और जागीरदार विरोध में खड़े हो गए। मासूम खान काबुली, रौशन बेग, मिर्ज़ा शराफुद्दीन और अरब बहादुर बागियों के मुख्य नेता थे। वहां तैनात शाही अधिकारियों ने इस बगावत को दबाने की कोशिश की मगर कामयाब नहीं हो सके। अकबर ने तत्काल राजा टोडरमल और शेख फरीद बख्शी के अधीन एक बड़ी फौज देकर उन्हें वहाँ भेजा। कुछ समय के बाद, अज़ीज़ कोका और शाहबाज खान को भी टोडरमल की सहायता के लिए भेजा गया। बागियों ने अकबर के भाई हकीम मिर्ज़ा को, जो उस वक्त काबुल में था, अपना राजा घोषित कर दिया। परन्तु शीघ्र ही मुगल सेनाओं ने बिहार, बंगाल और उसके आसपास के क्षेत्रों में विद्रोह को बहुत सफलतापूर्वक दबा दिया।

पंजाब और उत्तर पश्चिम

पंजाब में मिर्ज़ा हाकिम अकबर के लिए समस्या खड़ी कर रहा था और उसने लाहौर पर हमला कर दिया। हाकिम मिर्ज़ा को उम्मीद थी कि बहुत से मुगल अफसर उसका साथ देंगे परन्तु किसी बड़े समूह ने उसका साथ नहीं दिया। अकबर ने खुद लाहौर की तरफ बढ़ने का फैसला किया। हाकिम मिर्ज़ा तुरंत पीछे हट गया और अकबर ने पूरे क्षेत्र पर कब्ज़ा कर लिया। उसकी सबसे पहली प्राथमिकता रही उत्तर–पश्चिमी सीमांत क्षेत्रों की सुरक्षा व्यवस्थित करना। इसके बाद उसने काबुल की तरफ बढ़ना शुरु किया और उस प्रदेश पर विजय प्राप्त की। काबुल का कार्यभार उसने अपनी बहन बख्तूनिनसा बेगम को

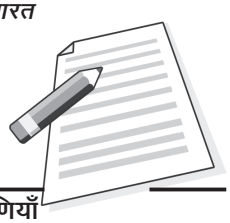

सौपा। बाद में राजा मान सिंह को वहां का सूबेदार तैनात किया गया और उसे जागीर के रुप में इसे दे दिया गया।

उत्तर पश्चिम क्षेत्र में जो अन्य गतिविधि विकसित हुई, वह थी रौशनाइयों की बगावत, जिसने काबुल और हिन्दुस्तान के बीच के मार्ग पर कब्जा कर लिया था। रौशनाई एक सैनिक सिपाही द्वारा स्थापित सम्प्रदाय था जिसे उस प्रदेश में पीर रौशनाई कहते थे। उसका पुत्र उस पंथ का सरदार था जिसके बहुत बड़ी संख्या में अनुयायी थे। अकबर ने, रौशनाइयों को दबाने और वहां मुगलों का नियंत्रण स्थापित करने के लिए बहुत बलशाली फौज का सेनापति बनाकर ज़ायेन ख़ान को वहाँ भेजा। ज़ायेन ख़ान की मदद करने के लिए सईद ख़ान गखड़ और राजा बीरबल को भी अलग–अलग सैनिक टुकड़ियों के साथ वहाँ भेजा गया। एक सैनिक कार्यवाही के दौरान अपने अधिकतर सैनिकों के साथ, बीरबल मारा गया। उसने बगावत को दबाने के लिए राजा टोडरमल और राजा मान सिंह को नियुक्त किया और वे दोनों रौशनाइयों को हराने में कामयाब रहे।

लंबे समय तक अकबर कश्मीर को जीतने के लिए उस पर आँखे गड़ाए रहा। 1586 में कश्मीर मुगल साम्राज्य में शामिल कर लिया गया था।

सिंध में उत्तर–पश्चिम में, अभी भी कुछ रिहायशी क्षेत्र स्वतंत्र थे। 1590 में अकबर ने खान–ए–खाना को मुल्तान का गवर्नर नियुक्त किया और उसे बिलोचियों को हराने के लिए कहा, जो उस क्षेत्र की एक जनजाति थी, और उस पूरे प्रदेशीय क्षेत्र को जीतने का आग्रह किया। सबसे पहले थट्टा पर अधिकार किया गया और 'मुल्तान' के सूबे में उसे सरकार के रुप में स्थापित किया गया। आसपास के क्षेत्रों में बिलूचियों के साथ झड़पें होती रहीं। अन्त में वर्ष 1595 में पूरे उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों पर मुगलों की संपूर्ण सर्वोच्चता स्थापित कर दी गई।

दक्कन

1590 के पश्चात् दक्कन के प्रदेशों को मुगलों के नियंत्रण के अधीन लाने के लिए दक्कन नीति को साकार रुप दिया। इस अवधि के दौरान दक्कन के प्रदेशों में आंतरिक तनाव और निरंतर युद्ध चल रहे थे। 1591 में अकबर ने दक्कन प्रदेशों को उपहार भेजकर यह संदेश भिजवाया कि वे मुगलों की प्रभुसत्ता को स्वीकार कर लें, परन्तु इसमें उसे कोई विशेष सफलता नहीं मिली। अब अकबर ने आक्रमण की नीति अपनाने का निर्णय किया। पहला अभियान अहमदनगर के लिए कूच किया जिसके सेना नायक थे राजकुमार मुराद और अब्दुल रहीम खान खाना। 1595 में मुगल सेनाओं ने अहमदनगर पर आक्रमण कर दिया। इसकी शासिका चांद बीबी ने मुगलों का मुकाबला करने का फैसला किया। उसने सहायता के लिए बीजापुर के इब्राहिम आदिल शाह और गोलकुंडा के कुतुब शाह से संपर्क किया परन्तु उसे कोई सफलता नहीं मिली। घमासान युद्ध हुआ। दोनों तरफ भारी नुकसान होने के बाद एक समझौता किया गया जिसके तहत चांदी बीबी ने बरार मुगलों के हवाले कर दिया। कुछ समय के बाद चांद बीबी ने बरार को वापस लेने के लिए फिर से हमला कर दिया। इस वक्त निज़ामशाही, कुतुबशाही और आदिलशाही टुकड़ियों ने मिलकर मोर्चा संभालने का निर्णय किया। मुगलों को भारी नुकसान हुआ, इसके बावजूद वे अपनी स्थिति बनाए रखने में कामयाब रहे। इस बीच मुराद और खान खाना में आपस में गंभीर मतभेद पैदा होने से मुगलों की ताकत घटने



मानचित्र 10.3 अकबर के अधीन मुगल साम्राज्य का विस्तार

लगी। इसीलिए अकबर ने खान खाना को वापिस बुला लिया और दक्कन में अबुल फजल को नियुक्त कर दिया। 1598 में राजकुमार मुराद की म त्यु के बाद, राजकुमार दानियाल और खान खाना को दक्कन भेजा गया। अहमदनगर जीत लिया गया। जल्दी ही मुगलों ने असीरगढ़ और उसके आसपास के क्षेत्रों को जीत लिया। बीजापुर के आदिलशाह ने भी मित्रता दर्शाई और राजकुमार दानियाल से अपनी पुत्री के विवाह का प्रस्ताव भेजा। इस बीच चांद बीबी का भी देहांत हो गया। अब दक्कन में मुगलों के प्रदेशों में असीरगढ़, बुरहानपुर, अहमदनगर और बरार शामिल थे।

प्रदेशीय विस्तार के साथ–साथ अकबर ने सेना नायकों को मुगल अभिजात्यों में मिलाने की नीति शुरु की। उसकी इस नीति से मुगल साम्राज्य को बहुत फायदा हुआ। मुगल शासक अपनी नई जीतों के लिए सेना नायकों और उनकी सेनाओं की सहायता हासिल करने में कामयाब हो गया। मुगल आभिजात्यों की भूमिका, इतने बड़े साम्राज्य के शासन कार्यों को चलाने के लिए भी मदद के रुप में उपलब्ध थी। इसके अतिरिक्त उनके साथ शांतिपूर्ण संबंधों की वजह से साम्राज्य में शांति भी सुनिश्चित हुई। सेना नायकों को भी

इस नीति से बहुत फायदा हुआ। अब वे अपने अपने क्षेत्रों को अपने पास रखकर अपनी इच्छानुसार शासन कर सकते थे। इसके अतिरिक्त उन्हें जागीर और मनसब भी दिए गए (इन प्रशासकीय उपायों के संबंध में आप पाठ 12, मॉड्यूल 2 में पढ़ेंगे)। उन्हें जागीर में जो प्रदेश दिए जाते थे, वे अकसर उनके अपने साम्राज्यों से बड़े होते थे। इससे उन्हें दुश्मनों और बागियों से भी सुरक्षा प्राप्त हुई। कई मनसबदारों को 'वतन जागीर' के रुप में उन्हें अपना प्रादेशिक क्षेत्र भी दिया गया, जो वंशानुगत था और उसे किसी को हस्तांतरित नहीं किया जा सकता था।

अकबर के अधीन हुए प्रादेशिक विस्तार ने मुगल साम्राज्य को निश्चित आकार दिया। प्रादेशिक विस्तार की बात करें, तो अकबर के बाद बहुत कम प्रदेश साम्राज्य में शामिल हो सके थे। शाहजहां और औरंगजेब के काल में दक्कन और उत्तर पूर्व भारत के कुछ प्रदेश साम्राज्य में शामिल जरुर हुए थे।

पाठगत प्रश्न 10.3

1. अकबर ने बैरम खान को क्यों बर्खास्त किया?

   _____

2. अकबर के राजसिंहासन के समय भारत में कौन–कौन सी राजनीतिक शक्तियां मौजूद थीं?

   _____

3. किन राजपूत शासकों ने अकबर को चुनौती दी थी और हथियार नहीं डाले?

   _____

4. किस महिला शासक ने मुगलों से युद्ध किया? उसने किस प्रदेश पर राज किया?

   _____

जहाँगीर और शाहजहाँ

जहाँगीर ने दक्कन में अकबर की विस्तार नीति को अपनाया। परन्तु कुछ समस्याओं के कारण उसे इस काम में बहुत कम सफलता मिली। खुर्रम की बगावत की वजह से पैदा हुए संकट के कारण वह इस तरफ अधिक ध्यान नहीं दे पाया। दक्कन से कुछ फायदा उठाने के लिए मुगल आभिजात्य वर्ग भी अनेक षड्यंत्रों और लड़ाइयों में शामिल था।

पहले तीन वर्ष के दौरान, दक्कन ने बालाघाट और अहमदनगर के काफी जिलों को फिर से हासिल कर लिया था। मलिक अम्बर इनमें से प्रमुख शासक था जिसने मुगल सेनाओं को हराकर बरार, बालाघाट और अहमदनगर के कुछ भागों को वापस जीता। हारे हुए प्रदेशों पर मुगल फिर दोबारा कब्ज़ा हासिल नहीं कर सके। इस दौरान शाहजहाँ ने अपने पिता के खिलाफ बगावत कर दी और मलिक अम्बर से मित्रता स्थापित कर ली।

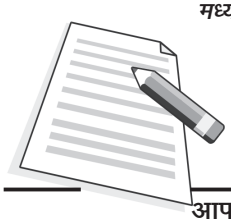

आपकी टिप्पणियाँ

मलिक अम्बर ने अहमदनगर पर कब्ज़ा करने की कोशिश की मगर असफल रहा; उसने आदिलशाह से शोलापुर छीन लिया और शाहजहाँ के साथ मिलकर बुरहानपुर पर कब्ज़ा करने की कोशिश की, परन्तु असफल रहा। एक बार तो जहाँगीर और शाहजहाँ के बीच शांति स्थापित हो गई। मलिक अम्बर भी शांत हो गया। सन 1627 में मलिक अम्बर की म त्यु हो गई और साम्राज्य के 'वकील' और 'पेशवा' के रुप में उसका उत्तराधिकारी बना उसका पुत्र फतेह खान;। फतेह खान बहुत आक्रामक प्रक ति का था और उसके शासन के दौरान दक्कनियों और आभिजात्यों के बीच परसपर लड़ाई शुरु हो गई। जहाँगीर के शासनकाल के दौरान मुगल साम्राज्य में दक्कन से कोई भी प्रदेश शामिल नहीं हो सका। असल में दक्कनी शासकों ने अपने प्रदेशों में मुगल साम्राज्य को बहुत कमज़ोर बना दिया था। मलिक अम्बर की अति महत्त्वाकांक्षा दक्कन प्रदेशों के संयुक्त मोर्चे की राह में एक बड़ी बाधा थी।

जहाँगीर की म त्यु होने और शाहजहाँ के राजसिंहासन पर बैठने की अवधि के दौरान, दक्कन के मुगल सूबेदार खान जहान लोदी ने, जरुरत के वक्त मदद लेने के इरादे से, बालाघाट, निजामशाह को दे दिया। सिंहासन पर बैठने के बाद शाहजहाँ ने खान जहान लोदी को, बालाघाट वापस लेने का आदेश दिया परन्तु वह इसमें असफल रहा, और इसके बाद शाहजहाँ ने उसे दरबार में वापस बुला लिया। इस पर ख़ान जहान उसका दुश्मन बन गया और उसने बगावत कर दी। उसने निज़ामशाह के पास जाकर आश्रय ले लिया। इसने शाहजहाँ को क्रोधित कर दिया और उसने दक्कन प्रदेशों के विरुद्ध आक्रामक रुख अपनाने का निर्णय कर लिया। शाहजहाँ का मुख्य उद्दश्ेय था दक्कन के खोए हुए प्रदेशों को वापस हासिल करना।

उसे विश्वास था कि दक्कन में अहमदनगर की स्वतंत्रता मुगल नियंत्रण के आड़े आ रही थी। उसने अहमदनगर को छोड़कर बीजापुर और मराठों को जीतने का निर्णय किया। इसमें उसे सफलता मिली। मलिक अम्बर के पुत्र फैथ ख़ान ने भी मुगलों से सुलह कर ली। अब महाबत ख़ान को दक्कन का सूबेदार नियुक्त किया गया। परन्तु दक्कन के राज्यों के साथ लड़ाई अभी भी जारी रही। अंत में सन् 1636 में बीजापुर और गोलकुंडा के बीच एक समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। बीजापुर के साथ समझौते की कुछ मुख्य शर्तें थीं:

1. आदिलशाह मुगलों की अधीनता स्वीकार करेगा।
2. उसे 20 लाख रुपए क्षतिपूर्ति के रुप में देने होंगे।
3. वह गोलकुंडा के मामलों में कोई दखलंदाजी नहीं करेगा।
4. बीजापुर और गोलकुंडा के बीच कोई विवाद होने पर मुगल शासक उनका बिचौलिया होगा।
5. शाहजी भौंसले के खिलाफ लड़ाई में आदिलशाह मुगलों की सहायता करेगा।

गोलकुंडा ने भी एक प थक संधि पत्र तैयार किया। इस संधि पत्र के अनुसार:

1. गोलकुंडा ने मुगल शासक के प्रति वफादारी की शपथ ली। उसने मुगल शासक के नाम को खुतबा में स्वीकार करने की सहमति दी और ईरान के शाह का नाम छोड़ दिया।
2. गोलकुंडा ने मुगलों को 2 लाख हूण प्रति वर्ष देने की सहमति दी।

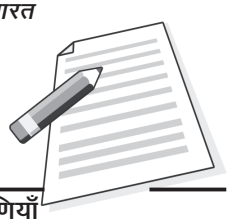

इन समझौतों से दक्कन में लड़ाइयों का अंत हो गया। अब मुगल अपना अधिकार क्षेत्र दक्षिण भारत के अधिकांश क्षेत्र तक फैलाने में कामयाब हो सके। 1656-57 में जब इन समझौतों की अनदेखी की गई तो मुगल नीति में एक विशिष्ट तब्दीली आई। अब शाहजहाँ ने औरंगजेब से दक्कन के साम्राज्यों के सभी प्रदेशों को जीतकर मुगल साम्राज्य के साथ जोड़ने का आदेश दिया। कुछ इतिहासकार ने यह तर्क दिया कि इस नीति के बदलने का कारण था, दक्कन के प्रदेशों में उपलब्ध संसाधनों का दोहन करना। परन्तु, इस परिवर्तन से मुगल साम्राज्य को कोई खास लाभ नहीं मिला बल्कि इससे भविष्य के लिए और अधिक समस्याएँ पैदा हो गईं।

औरंगजेब

औरंगज़ेब दक्कन के प्रति बहुत आक्रामक नीति अपनाने में विश्वास रखता था। प्रो. सतीश चन्द्र दक्कन प्रदेशों के प्रति उसकी नीति के तीन विभिन्न चरणों को रेखांकित करते हैं:

1. 1658 से 1668 के दौरान मुख्य लक्ष्य था बीजापुर से कल्याणी, बिदर और परेन्डा प्रदेशों को छीनकर अपने कब्जे में करना। इस चरण के दौरान मराठों के विरुद्ध दक्कन प्रदेशों से सुरक्षा सहायता पाने की कोशिशें की गई। दक्कन के सूबेदार जय सिंह ने भी बीजापुर को जीतने के प्रयास किए परन्तु असफल रहा।

2. 1668 से 1684 के दौरान इस नीति में थोड़ी तब्दीली की गई। आदिलशाह की म त्यु, शिवाजी की बढ़ती शक्ति और गोलकुंडा प्रशासन के दो भाइयों अखन्ना और मदन्ना ने मुगल नीति को प्रभावित किया। गोलकुंडा ने शिवाजी और बीजापुर के साथ गुप्त समझौता करने की कोशिश की। मराठों को घेरने की औरंगज़ेब की कोशिशों को कोई बहुत ज़्यादा कामयाबी नहीं मिली। कुछ छोटी–छोटी तब्दीलियों और जल्दी–जल्दी पैदा होने वाले तनाव किसी न किसी रुप में जारी रहे।

3. तीसरे चरण में (1684-87) औरंगज़ेब ने दक्कन के प्रदेशों को खुल्लमखुला अपने राज्य में शामिल करने की नीति अपनाई। औरंगज़ेब ने बीजापुर की घेराबंदी की खुद निगरानी की। 1687 से 1707 तक मराठों के साथ लड़ाई जारी रही। औरंगज़ेब ज़्यादातर वक्त तक दक्कन में रहा और उसने इस क्षेत्र को मुगल नियंत्रण के अधीन कायम रखा। परन्तु 1707 में उसकी म त्यु के बाद (दक्कन में औरंगाबाद में) उन्होंने फिर से स्वतंत्रता पाने के लिए प्रयास किया और बहुत कम समय में ही इसमें सफल हो गए। दक्कन के अतिरिक्त औरंगज़ेब उत्तर पूर्व क्षेत्र में असम तक मुगल शक्ति का विस्तार करने मे कामयाब रहा। इस क्षेत्र में मुगलों की सबसे बड़ी सफलता थी, अहोम साम्राज्य (असम) के मीर जुमला को बंगाल के सूबेदार के अधीन लाकर अपने साथ जोड़ना। एक अन्य महत्वपूर्ण उत्तर पूर्व की विजय थी, बंगाल के नए गवर्नर शाइस्ता ख़ान के अधीन 1664 में चटगांव की जीत। अहोम साम्राज्य पर बहुत लंबे समय तक सीधा नियंत्रण नहीं रखा जा सका। वहां तैनात मुगल फौजदार को विरोध सहना पड़ा और वहां नियमित रुप से लड़ाइयाँ होती रहती थीं। 1680 तक अहोम के शासकों ने कामरुप पर जीत हासिल कर ली और वहाँ मुगल नियंत्रण समाप्त हो गया।

पाठगत प्रश्न 10.4

1. दक्कन से कौन से शासक ने जहाँगीर के समय में मुगल सेनाओं को हराया?

2. मुगलों ने 1636 में दक्कन के किन दो प्रदेशों के साथ संधि पत्र पर हस्ताक्षर किए?

3. कौन सा मुगल सेनापति अहोम साम्राज्य को मुगल साम्राज्य के अधीन लाया?

4. दक्कन की किस शक्ति के साथ औरंगज़ेब को लंबे समय तक उलझे रहना पड़ा?

10.5 मुगल शासन के लिए चुनौतियाँ: लड़ाइयाँ और संधि की बातचीत

औरंगज़ेब के अधीन मुगल साम्राज्य ने अधिकतम प्रादेशिक सीमाओं तक अपनी पहुँच बना ली थी और लगभग आधुनिक भारत कहे जाने वाले संपूर्ण क्षेत्र को जीत लिया था। परन्तु उसका शासन जाटों, सतनामियाँ, अफ़गानियों, सिखों और मराठों की आम बगावतों से परेशान था। अकबर के अधीन राजपूत मुगलों की सहायता के एक महत्त्वपूर्ण आधार की तरह उभरे और बाद में जहाँगीर और शाहजहाँ के अधीन भी। परन्तु औरंगज़ेब के अधीन उन्होंने खुद को पराया अनुभव करना शुरु कर दिया और धीरे–धीरे प्रशासनिक ढांचे में उन्होंने अपना स्थान भी खो दिया। औरंगजेब के अधीन मराठों ने मुगलों की सत्ता को बहुत बड़ी चुनौती दी थी। दक्कन के प्रदेशों ने मुगलों की विस्तार योजनाओं का कड़ा विरोध किया। उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रदेश में भी कुछ समस्या वाले स्थान थे और मुगलों को इन बाधाओं को दबाना पड़ा। इस प्रकार हम देखते हैं कि मुगल साम्राज्य की स्थापना और इसके विस्तार की प्रक्रिया के दौरान मुगलों को विरोध का सामना करना पड़ा और विविध उपायों और युद्ध नीतियों को अपनाकर अपने तरीके से समझौते करने पड़े। यहाँ हम उन सभी मामलों का संक्षिप्त विवरण देंगे।

राजपूत

राजपुताना में मेवाड़ एकमात्र ऐसा क्षेत्र था जो अकबर के शासन काल के दौरान मुगलों के अधीन नहीं आ सका। जहाँगीर ने इसे जीतने के लिए लगातार दबाव बनाए रखा। लड़ाइयों के एक लंबे सिलसिले के बाद राणा अमर सिंह ने अंत में मुगलों के आधिपत्य को मंजूर कर लिया। मेवाड़ से जीते गए सभी प्रदेश चितौड़ के किले सहित राणा अमर सिंह को लौटा दिये गए और इसके साथ ही उसके पुत्र कर्ण सिंह को एक बड़ी जागीर भी दी गई। जहाँगीद और शाहजहाँ के शासन के दौरान, राजपूतों ने आम तौर पर मुगलों के साथ मित्रता का व्यवहार किया और बहुत ऊँचे मनसबों तक काबिज़ रहे। शाहजहाँ को दक्कन और उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों की लड़ाइयों के लिए राजपूत सैनिकों पर अत्यधिक विश्वास था। औरंगजेब के शासन के दौरान, राजपूतों के साथ मुगलों के रिश्तों में दरार आ गई, खास तौर पर मारवाड़ के राजसिंहासन के उत्तराधिकारी के मामले में।

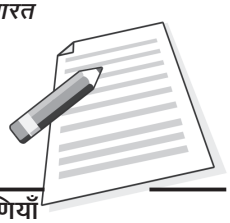

उत्तराधिकार को समर्थन देने के कारण राजपूत नाराज़ हो गए। जोधपुर पर उसका कब्जा भी मुगल राजपूत संबंधों के लिए एक और झटका साबित हुआ और धीरे–धीरे राजपूत मुगल शासन से अलग हो गए। असल में, आभिजात्य में शक्तिशाली राजपूत क्षेत्र के अभाव में मुगलों के लिए चारों तरफ के क्षेत्रों पर नियंत्रण रखने के काम में अंत में काफी नुकसान झेलना पड़ा, खास तौर पर तब, जबकि उन्हें मराठों से समझौता वार्ता करनी पड़ी।

दक्कन

अकबर के अंतिम दिनों में और जहाँगीर के प्रारंभिक दिनों में मलिक अम्बर के अधीन अहमदनगर ने मुगल ताकत को चुनौती देना शुरु कर दिया था। मलिक अम्बर बीजापुर का समर्थन पाने में भी कामयाब हो गया था। शाहजहाँ के शासन काल में अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा के दक्कन साम्राज्यों में फिर से मुगलों के साथ लड़ाई शुरु हो गई थी। सबसे पहले अहमदनगर को हराया गया और इसके अधिकांश प्रदेशों को मुगल साम्राज्य के साथ जोड़ दिया गया था। 1636 तक आते–आते बीजापुर और गोलकुंडा को भी हरा दिया गया था, परन्तु इन साम्राज्यों को मुगल साम्राज्य के साथ नहीं जोड़ा गया था। एक संधि पत्र बनाने के बाद यह निर्णय हुआ कि हराए गए शासक वार्षिक नज़राना देंगे और मुगलों की सत्ता को स्वीकार करेंगे। लगभग दस वर्ष के लिए शाहजहाँ ने अपने पुत्र औरंगज़ेब को इस क्षेत्र में नियुक्त किया। औरंगजेब के शासन काल में दक्कन प्रदेशों और मराठों के साथ संघर्ष और भी गंभीर हो गया। असल में औरंगज़ेब ने अपने शासन के अंतिम 20 वर्ष दक्कन में लगातार युद्ध करते हुए व्यतीत किए। 1687 तक बीजापुर और गोलकुंडा के दक्कनी साम्राज्यों को मुगल साम्राज्य के साथ जोड़ दिया गया था। परन्तु दक्कन में औरंगजेब द्वारा खर्च किया गया समय और धन, मुगल साम्राज्य के लिए एक बहुत बड़ा अपव्यय साबित हुआ।

मराठा

17वीं सदी के मध्य में शिवाजी के नेत त्व के अधीन मराठे, दक्कन में बहुत शक्तिशाली बल के रुप में उभरे और उन्होंने मुगलों के अधिकार को चुनौती देना शुरु कर दिया। शिवाजी ने 1656 में अपनी आक्रामक कार्रवाइयाँ शुरु कर दी और जावली का राज्य अपने आधिपत्य में कर लिया। कुछ समय के बाद शिवाजी ने बीजापुर प्रदेश पर आक्रमण कर दिया, और 1659 में, बीजापुर के सुल्तान ने अपने जनरल अफजल खान को शिवाजी पर विजय प्राप्त करने के लिए भेजा। परन्तु शिवाजी उसकी (अफजल खाँ) तुलना में बहुत चतुर निकले और उन्होंने उसकी हत्या कर दी। अन्त में, 1662 में बीजापुर के सुल्तान ने शिवाजी के साथ एक समझौता किया जिसके तहत उन्हें जीते गए प्रदेशों का स्वतंत्र शासक मान लिया गया। अब शिवाजी ने मुगल प्रदेशों को नुकसान पहुँचाना शुरु कर दिया। औरंगज़ेब ने दक्कन के सूबेदार शाइस्ता खान को एक बहुत बड़ी सेना देकर शिवाजी के पास भेजा और उन दोनों के बीच पुरंदर के (1665 में) संधि पत्र पर हस्ताक्षर किए गए, जिसके तहत शिवाजी द्वारा जीते गए 35 किलो में से 23 किले मुगलों को वापस करने के लिए वह तैयार हो गया। शेष बचे 12 किले (जिनकी वार्षिक आय एक लाख थी) शिवाजी के पास छोड़ दिए गए। शिवाजी को आगरा के मुगल दरबार में आने का आग्रह किया गया। परन्तु जब शिवाजी वहाँ पहुँचे तो उनसे दुर्व्यवहार किया गया और उन्हें बन्दी बना लिया गया। वे 1666

में बच कर निकल भागे और रायगढ़ पहुँच गए। तब से लेकर उन्होंने मुगलों के विरुद्ध लगातार युद्ध जारी रखा। बहुत शीघ्र ही उन्होंने उन सभी किलों को वापस जीत लिया जो उन्होंने मुगलों को वापस किए थे। 1670 में उन्होंने सूरत को दूसरी बार लूटा।

1674 में शिवाजी ने रायगढ़ को अपनी राजधानी बना लिया और राज्याभिषेक करवाने के बाद छत्रपति की उपाधि ग्रहण की। इसके कुछ ही समय बाद उन्होनें दक्षिण भारत में एक बड़ा अभियान चलाया और वेल्लौर में झिंजी और कर्नाटक में कई जिले जीत लिए। छह वर्ष तक शासन करने के बाद 1680 में उसकी म त्यु हो गई। इस छोटी सी अवधि में उसने मराठा साम्राज्य की नींव रखी जिसने लगभग डेढ़ शताब्दी तक पश्चिमी भारत में शासन किया। शिवाजी के उत्तराधिकारी थे उनके पुत्र सम्भाजी। बहुत से मराठा प्रमुखों ने सम्भाजी का समर्थन नहीं किया और शिवाजी के दूसरे पुत्र राजाराम की सहायता की। आंतरिक लड़ाई ने मराठा शक्ति को कमज़ोर कर दिया। अंत में औरंगज़ेब द्वारा सम्भाजी को पकड़ कर 1689 में मौत के घाट उतार दिया गया। सम्भाजी के उत्तराधिकारी बने राजाराम क्योंकि सम्भाजी के पुत्र बहुत छोटे थे। 1700 में राजाराम की म त्यु हो गई। उनके उत्तराधिकारी बने, उनकी माता तारा बाई के सिंहासन के अधीन, उनके छोटे पुत्र शिवाजी त तीय। मराठों के खिलाफ औरंग़ज़ेब की असफलता का मुख्य कारण था ताराबाई की उर्जा और उनकी प्रशासनिक प्रतिभा। परन्तु मुगल, मराठों को दो विरोधी गुटों में बाँटने में कामयाब हो गए एक तारा बाई के अधीन और दूसरा सम्भाजी के पुत्र, साहू के अधीन। साहू, जो बहुत लंबे समय तक मुगल दरबार में रहे थे, को छोड़ दिया गया। एक चितपावन ब्राह्मण, बालाजी विश्वनाथ की सहायता से उसने तारा बाई को शासन से हटाने में कामयाबी हासिल की।

उत्तर-पश्चिम

काबुल–गज़नी–कंधार को अकबर ने बहुत बिखरे हुए सीमांत प्रदेशों के रुप में समझा और इसीलिए 1595 में कंधार पर अपना कब्ज़ा कर लिया।

17वीं शताब्दी में उत्तर पश्चिमी सीमांत मुगलों की गतिविधियों का मुख्य क्षेत्र था। यहां 1625-26 तक रौशनाइयों को तो पूरी तरह हरा दिया गया था, परन्तु कंधार पारसियों और मुगलों के बीच आपसी लड़ाई का कारण बन गया। अकबर की म त्यु के बाद पारसियों ने सफावी शासक शाह अब्बास प्रथम के अधीन कंधार को जीतने की कोशिश की, परन्तु विफल रहे। इसके पश्चात 1620 में शाह अब्बास प्रथम ने जहांगीर को कंधार वापस उसे देने का अनुरोध किया, परन्तु उसने ऐसा करने से मना कर दिया। 1622 में, एक और आक्रमण करने के बाद, पारसियों ने कंधार को जीत लिया। शाहजहाँ के अधीन कंधार एक बार फिर मुगलों के हाथों में आ गया, परन्तु 1649 में पारसियों ने दोबारा इसे जीत लिया। कंधार को जीतने की जंग औरंगज़ेब के शासनकाल तक चलती रही परन्तु मुगलों को इसमें बहुत कम कामयाबी मिली। उज़्बेकों को अपने नियंत्रण में रखने के लिए शाहजहाँ को बलख की लड़ाई में बुरी तरह हार देखनी पड़ी और मुगलों को इस लड़ाई में धन और मानव–बल का भारी नुकसान उठाना पड़ा। औरंगज़ेब के शासन के अधीन कंधार के मामले को छोड़ दिया गया और पर्शिया के साथ राजनयिक संबंधों को दोबारा स्थापित किया गया।

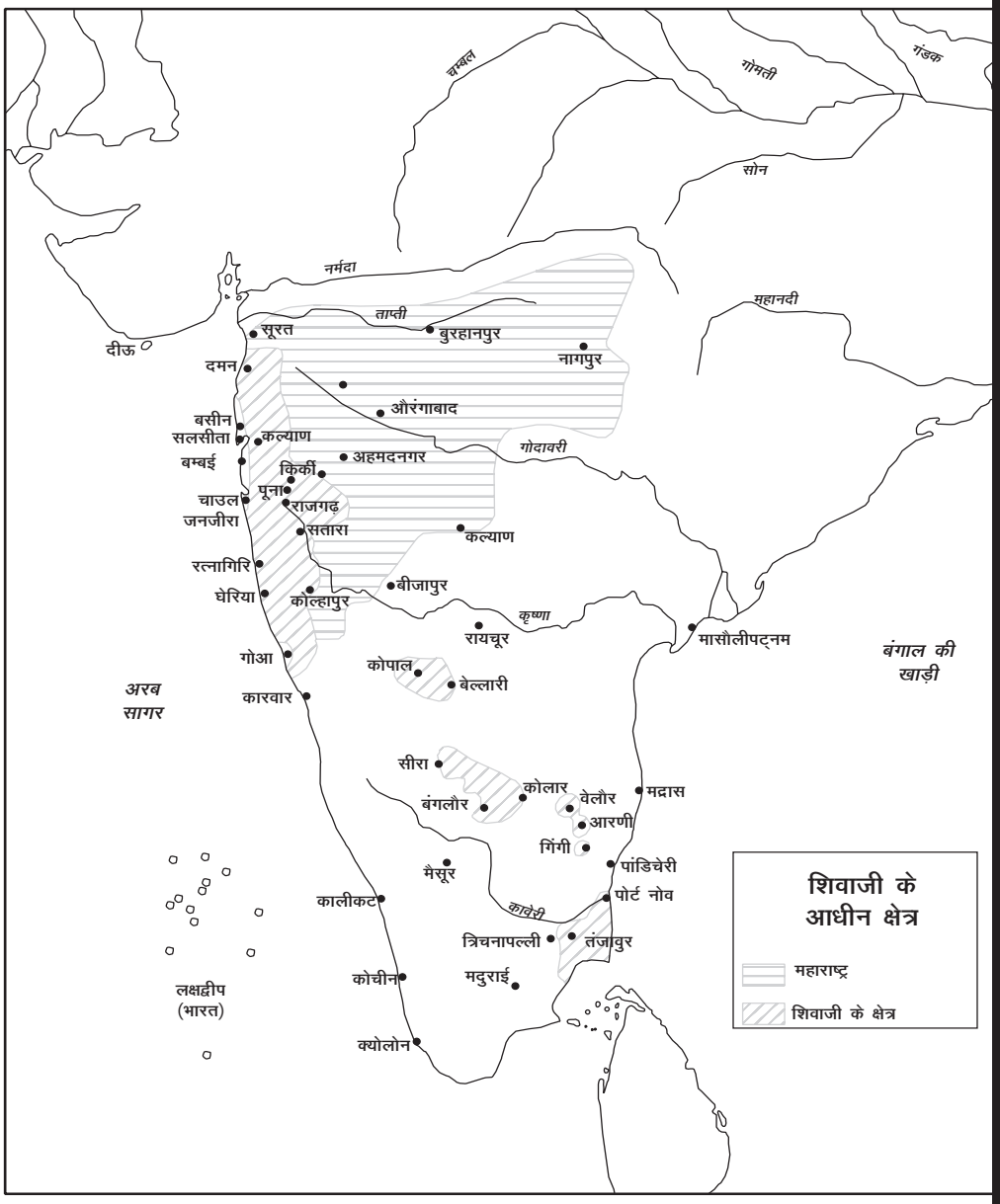

मानचित्र 10.4 शिवाजी के अधीन मराठा साम्राज्य

स्पष्ट है कि अकबर के शासन के अधीन मुगल साम्राज्य के प्रादेशिक विस्तार की नीति साम्राज्य की प्रमुख नीति बनी रही। औरंगज़ेब के अधीन दक्कन में और उत्तर पूर्वी क्षेत्र में छोटे से पैमाने पर इसका और अधिक विस्तार किया गया। उसके शासनकाल के दौरान मुगल साम्राज्य के पास बहुत बड़ा क्षेत्र था। परन्तु मुगल शासन के पतन के चिह्न भी औरंगज़ेब के शासन में ही दिखाई देने लगे थे। राजपूतों जैसी संभावित प्रादेशिक ताकतों के साथ संबंध टूटने और दक्कनी प्रदेशों और मराठों के साथ संबंधों में आई खटास ने मुगल साम्राज्य की एकता और स्थिरता को हिलाकर रख दिया। उसके उत्तराधिकारियों के अधीन साम्राज्य में विघटन होता रहा था।

पाठगत प्रश्न 10.5

1. शाहजहाँ ने किन शर्तों पर बीजापुर और गोलकुंडा में शांति स्थापित की?

2. दक्कन के लिए औरंगज़ेब की नीति क्या थी?

3. शिवाजी का राज्याभिषेक किस स्थान पर हुआ था? उन्होंने कौन सी उपाधि ली?

4. किस मुगल शासक को उत्तर पश्चिमी सीमांत की लड़ाइयों में भारी मात्रा में धन की हानि हुई?

आपने क्या सीखा

दिल्ली सल्तनत के विघटन के बाद 1526 में बाबर भारत में मुगल साम्राज्य स्थापित कर सका। मध्य एशिया और भारत की परिस्थितियाँ, दोनों ने ही मुगल साम्राज्य की नींव रखने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई। इससे पहले कि बाबर भारत में मुगल साम्राज्य की नींव रख पाता, उसे यहाँ के स्थानीय साम्राज्यों के शासकों से अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। उसने 1526 में पानीपत में इब्राहिम लोदी को हराया। इसके पश्चात 1527 में उसने उत्तर भारत की सबसे बड़ी शक्ति, राणा सांगा को हराया। 1530 में बाबर की म त्यु के बाद उसका पुत्र हुमायूँ उसका उत्तराधिकारी बना। जब हुमायूँ गुजरात में व्यस्त था तो शेरशाह ने बिहार और बंगाल में खुद को संगठित करना शुरु कर दिया और आगरा की तरफ बढ़ने लगा। 1540 में कन्नौज की लड़ाई में हुमायूँ हार गया और शेरशाह के लिए दूसरा अफ़गानी शासन स्थापित करना संभव हो सका। उसका राज 1540 से 1555 तक चलता रहा। परन्तु, 1555 में हुमायूँ दोबारा आगरा और दिल्ली और कुछ अन्य प्रदेश अफगानियों के हाथों से जीतने में कामयाब हुआ और वहाँ दोबारा मुगल शासन स्थापित किया। हुमायूँ की अचानक म त्यु होने के बाद अकबर 13 वर्ष की छोटी उम्र में शासक बना और बैरम ख़ान को उसका सहायक शासक नियुक्त किया गया। राज्य पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के बाद अकबर ने विस्तार की नीति अपनाई। उसने विवाह संबंधों द्वारा अथवा उनके प्रदेशों पर आक्रमण करके राजपूत साम्राज्यों को अपने पक्ष में किया। उसने गुजरात, बिहार, बंगाल, पंजाब और संपूर्ण उत्तर पश्चिम को अपने नियंत्रण के अधीन किया। उसने दक्कन में अहमदनगर, बरार, बुरहानपुर, असीसगढ़ इत्यादि को भी अपने साम्राज्य में जोड़ा। जहाँगीर ने भी दक्कन में विस्तार की नीति को अपनाया। परन्तु उसे बहुत अधिक कामयाबी नहीं मिली और उसने अपने कुछ प्रदेश यहाँ खो दिए। 1636 में शाहजहाँ बीजापुर और गोलकुंडा पर अपना नियंत्रण स्थापित कर सका, औरंगज़ेब ने

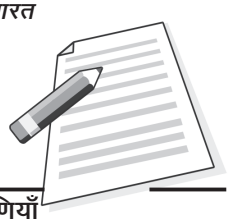

भी दक्कन में आक्रामक नीति को अपनाया और अपने शासन की अधिकांश अवधि के दौरान मराठों के साथ लड़ाइयों में उलझा रहा। औरंगज़ेब के अधीन मुगल साम्राज्य की सीमाएँ अधिकतम प्रदेशों तक फैली। विडंबना यह है कि औरंगज़ेब के शासनकाल में ही मुगल साम्राज्य का पतन होना शुरु हो गया था। राजपूतों और मराठों जैसी प्रादेशिक शक्तियों के साथ उसके संबंध टूटने लगे थे।

पाठांत प्रश्न

1. बाबर के अधीन, भारत में मुगल शासन की स्थापना की प्रारंभिक स्थिति का उल्लेख करें।
2. अकबर का सहायक शासक कौन था? अकबर के शासन के प्रारंभिक काल में भारत में कौन–कौन सी प्रमुख राजनीतिक शक्तियां थीं?
3. अकबर ने दक्कन में मुगलों की सर्वोच्चता कैसे स्थापित की?
4. राजपूतों के साथ औरंगज़ेब की नीति कैसे भिन्न थी?
5. औरंगजेब ने मराठों का मुकाबला कैसे किया?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

10.1

1. बाबर ने भारत पर इसलिए आक्रमण किया, क्योंकि मध्य एशिया में उसे कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा था। भारत की अस्थिर राजनीतिक परिस्थितियों ने भी इसमें एक भूमिका निभाई।
2. बाबर ने बड़े प्रभावी तरीके से रुमी (ओटोमैन) युद्ध–नीति लागू की।
3. बाबर ने इन समस्याओं का सामना किया:

   क) उसके आभिजात्य और कमांडर मध्य एशिया में वापस जाना चाहते थे।

   ख) सभी राजपूत राणा सांगा के नेत त्व में संगठित हो रहे थे।
4. राणा सांगा और मेदिनी राय

10.2

1. हुमायूँ शेरशाह को हराने में असफल रहा क्योंकि उसके भाई हिंदल मिर्ज़ा, जिसने उसकी सेना के लिए सामान की आपूर्ति करनी थी, ने खुद को स्वतंत्र घोषित कर दिया था।
2. शेरशाह एक महान रण कौशल युक्त योद्धा और योग्य सैनिक कमांडर था। हुमायूं को हराने के बाद वह अफगानियों का नायक बनकर सामने आया।
3. क) मालवा

ख) राजपुताना

ग) सिंध

घ) पंजाब

ड) बंगाल

4. (क) उसने सरकार और परगना स्तर पर स्थानीय प्रशासन को व्यवस्थित किया।

(ख) उसने ग्रांड ट्रंक मार्ग बनवाया।

10.3

1. अकबर ने बैरम ख़ान को इसलिए बर्खास्त किया क्योंकि उसने पूरा नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया था और स्वतंत्र शासक के रुप में व्यवहार करने लगा था।
2. राजपूत, अफगानी, अहमदनगर, काबुल और कंधार
3. मेवाड़ के महाराणा प्रताप
4. चांद बीबी; अहमदनगर

10.4

1. मलिक अम्बर
2. बीजापुर ओर गोलकुंडा
3. मीर जुमला
4. मराठा

10.5

1. बीजापुर और गोलकुंडा ने मुगलों की अधीनता स्वीकार की और वार्षिक नज़राना देने की सहमति दी।
2. औरंगज़ेब ने आक्रामक नीति का अनुसरण किया और लगातार लड़ाइयों में ही उलझा रहा।
3. रायगढ़; छत्रपति
4. शाहजहाँ

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें अनुच्छेद 10.1 का पैरा 4 और 5
2. बैरम खान;

   देखें अनुच्छेद 10.4 अकबर के नीचे
3. देखें अनुच्छेद 10.4 (दक्कन)
4. देखें अनुच्छेद 10.5 (राजपूत)
5. देखें अनुच्छेद 10.5 (मराठा)

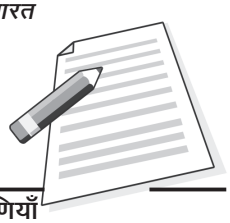

11

भारत में प्रादेशिक राज्यों का उदय

वर्तमान में भारत में अट्ठाइस प्रदेश हैं। इनमें से प्रत्येक प्रदेश की अपनी विशिष्ट भाषा, भूगोल, खान–पान और संस्क ति है, जो भारत की संस्क ति को सम द्ध और विविधतापूर्ण बनाते हैं। आपको आश्चर्य होगा कि इन विभिन्न प्रदेशों में यह प्रादेशिक संस्क ति कैसे विकसित हुई? क्या यह अनंत काल से इसी रूप में थी? जब हम इतिहास के पन्ने पलटते हैं तो हमें अनुभव होता है कि विभिन्न रूपों में ये प्रदेश मौजूद थे और इनमें विभिन्न कालावधियों में लगातार परिवर्तन की यह प्रक्रिया चलती रही।

इस पाठ में आप विभिन्न प्रादेशिक राज्यों के संबंध में बारहवीं से अठारहवीं सदी के बीच की ऐतिहासिक प ष्ठभूमि का अध्ययन करेंगे। इस अवधि के कुछ प्रादेशिक राज्य आजकल एक राज्य का हिस्सा हैं। उदाहरण के तौर पर, जयपुर, जोधपुर और उदयपुर, मध्यकाल में स्वतंत्र प्रादेशिक राज्य थे जो आज राजस्थान राज्य के जिले हैं। कुछ प्रादेशिक राज्य अब एक से अधिक राज्य के हिस्से हैं। उदाहरण के लिए विजयनगर साम्राज्य (1336–1565 ईस्वी) आजकल के आधुनिक राज्यों कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु का हिस्सा है। कुछ प्रादेशिक राज्य ऐसे हैं, जिनके वही प्राचीन नाम थे, जो आधुनिक काल के राज्य के हैं, परन्तु उनमें शामिल क्षेत्र उनसे भिन्न हैं। उदाहरण के लिए, गुजरात, बंगाल, कश्मीर और उड़ीसा के आधुनिक राज्यों का अस्तित्व बारहवीं से अठारहवीं सदी में इन्हीं नामों से था, परन्तु आज उनकी भौगोलिक स्थिति उससे अलग है, जो 12वीं से 18वीं सदी के मध्य में थी।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- बारहवीं से अठारहवीं सदी की अवधि के दौरान विभिन्न प्रादेशिक राज्यों के संबंध में संक्षिप्त विवरण दे सकेंगे;
- 'प्रादेशिक राज्य' शब्द का अर्थ समझा सकेंगे;
- प्रादेशिक राज्यों और दिल्ली सल्तनत तथा मुगल साम्राज्य के परस्पर संबंधों की प्रक ति समझा सकेंगे;
- विभिन्न प्रादेशिक राज्यों में परस्पर संबंध समझा सकेंगे;

- इन प्रादेशिक राज्यों की राजनीतिक विचारधाराओं और संगठनों को परिभाषित कर सकेंगे;
- प्रादेशिक राज्यों की आर्थिक और सांस्क तिक परिस्थितियों का वर्णन कर सकेंगे, और
- इन प्रादेशिक राज्यों के संबंध में सूचना देने वाले उस काल के मूल स्रोतों और दस्तावेज़ों की सूची बना सकेंगे।

11.1 'प्रादेशिक राज्य' और 'प्रादेशिकता' शब्दों को समझना

एक छोटे से पाठ में उन सभी प्रादेशिक राज्यों के संबंध में विवरण देना अत्यंत कठिन काम है। उनमें से सिर्फ कुछ को ही अध्ययन के लिए यहाँ चुना गया है। ये इस प्रकार हैं –

1. उत्तर भारत से हम दो प्रादेशिक राज्यों के इतिहास के संबंध में पढ़ेंगे, एक है 'जौनपुर', जो आज उत्तर प्रदेश में है और दूसरा है 'कश्मीर'।
2. दक्षिण भारत से हम विजय नगर और बहमनी साम्राज्य के इतिहास के बारे में पढ़ेंगे। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि विजय नगर साम्राज्य को वर्तमान कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु प्रदेशों में और बहमनी साम्राज्य को कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र में देखा जा सकता है।
3. पश्चिम भारत से हम गुजरात और मराठों का अध्ययन करेंगे। गुजरात को आज भी इसी नाम से जाना जाता है और मराठों का आजकल के महाराष्ट्र, तमिलनाडु और भारत के कुछ अन्य भागों पर नियंत्रण था।
4. और अंत में पूर्वी भारत में हम बंगाल के इतिहास का अध्ययन करेंगे।

भारत के इतिहास में प्रादेशिकता और प्रादेशिक राज्यों का लगातार उद्‌भव और विकास होता रहा है। प्रादेशिक राज्यों के उदय की व्याख्या कैसे की जाएगी? सातवीं सदी ईस्वी से लेकर, जिसे प्रारंभिक मध्यकाल माना जाता है, 17वीं और 18वीं सदी तक क षि और क षि संबंधी गतिविधियों ने प्रादेशिक राज्यों के विकास में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जहां भी अच्छी क षि संबंधी गतिविधियां मौजूद रही हैं, इसने न सिर्फ लोगों की भूख को शांत किया है, बल्कि इससे अधिक पैदावार भी हुई, जिसे बेचकर धन कमाया जा सका था। भू–मार्ग और जलमार्ग से होने वाले व्यापार और व्यापारिक गति–विधियों ने भी राजस्व कमाने के बहुत महत्त्वपूर्ण स्रोत प्रदान किए। उस समय के दौरान समाज में हम ऐसे शक्तिशाली वर्गों के उद्‌भव को रेखांकित कर सकते हैं, जो बढ़ती क षि उत्पादों की बढ़ोतरी को नियंत्रित करते थे। कई बार इस शक्तिशाली वर्ग के कुछ सदस्यों ने अपना अधिकार भी जताया और राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर राजा बन गए और साम्राज्यों की स्थापना की। इसी ने ही राज्यों की स्थापना की नींव रखी। कई बार बाहर से भी कुछ समूहों ने प्रवेश किया और यहां पर कई इलाकों को जीता और वहां का प्रशासनिक नियंत्रण अपने हाथ में लेकर बहुत शक्तिशाली स्थान ग्रहण किया।

यह सच है कि बड़ी संख्या में तेरहवीं सदी के पश्चात् प्रादेशिक राज्यों का उदय दिल्ली सल्तनत की अंदरूनी कमजोरी की वजह से हुआ। इसी प्रकार मुगल शासन के पतन के पश्चात्, अठारहवीं सदी में महत्त्वपूर्ण प्रदेशों का उदय हुआ। परन्तु इन सभी प्रदेशों का

अपना निजी इतिहास था, जो दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य, दोनों से पहले भी मौजूद था। उदाहरण के लिए बंगाल, आठवीं और नवीं सदी में पालों के अधीन और उसके बाद बारहवीं सदी में सेनों के अधीन एक महत्त्वपूर्ण प्रादेशिक साम्राज्य था। यह तेरहवीं और पन्द्रहवीं सदी के दौरान स्वतंत्र प्रदेश था और अठारहवीं सदी में भी यह बहुत शक्तिशाली प्रादेशिक साम्राज्य रहा। जैसा कि हम सभी जानते हैं, दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य ने अनेक विभिन्न सांस्क तिक क्षेत्रों पर शासन किया। इसीलिए यह याद रखना चाहिए कि प्रादेशिक राजवंश शक्ति ग्रहण करते रहे या कभी हारते रहे या उन्होंने अपनी भौगोलिक सीमाओं को भी बदला, परन्तु प्रादेशिकता का अस्तित्व हमेशा मौजूद रहा।

प्रादेशिकता क्या है? राजनीतिक विशेषताओं, जैसे प्रादेशिक शासकीय राजवंशों के अतिरिक्त प्रादेशिकता की कुछ अन्य विशेषताएं भी हैं, जो इन प्रादेशिक राज्यों में विकसित और पल्लवित हुईं और समय के साथ बदलती गईं। प्रादेशिकता की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है 'भाषा'। उदाहरण के तौर पर उड़िया, गुजराती, बँगला, तमिल, तेलुगू, कन्नड और मराठी आदि कई भाषाएं भारत के विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाती हैं, जिन्हें प्रादेशिक भाषाएं कहते हैं। ये भाषाएं प्रारंभिक मध्य और मध्य युग में विकसित हुईं और विशिष्ट क्षेत्रों से सबंधित रहीं। यद्यपि ये भाषाएं किसी–न–किसी रूप में इससे पहले भी अस्तित्व में थीं, परन्तु ग्यारहवीं और बारहवीं सदियों में ही मूलतः इन प्रादेशिक भाषाओं को सरकारी दस्तावेजों में प्रयोग में लाया गया। साहित्यिक रचनाएं और स्थानीय साहित्य की रचनाएँ इन भाषाओं में लिखी जाने लगीं। मध्य युग में प्रादेशिक भाषाओं के प्रयोग के साथ–साथ, दार्शनिक ग्रन्थों में संस्क त का प्रयोग भी होता रहा। तथापि दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य के अधिकांश सरकारी दस्तावेज़ और कुछ प्रादेशिक राज्यों के दस्तावेज फारसी में लिखे जाते थे।

2. एक अन्य विशिष्टता है, स्थानीय प्रादेशिक उपासना पद्धति और धार्मिक जुड़ाव। उदाहरण के लिए उड़ीसा में जगन्नाथ की उपासना केवल उड़ीसा प्रदेश में ही सीमित थी। यह राज्य का पंथ या संप्रदाय बन गया और शासकों ने भी इसे अपना लिया, उनके लिए एक भव्य मंदिर बनवाया और हर वर्ष इसके साथ जुड़े उत्सव मनाए जाने लगे। इतिहासकारों का कहना है कि जगन्नाथ एक जनजातीय देवता थे, जिनकी लोकप्रियता ने शासकों को इसे राज्य के पंथ या संप्रदाय के रूप में अपनाने के लिए प्रेरित किया। अगले भाग में हम राज्य और धर्म के परस्पर संबंधों पर प्रकाश डालेंगे। प्रादेशिक क्षेत्रों में बहुत बड़ी संख्या में धार्मिक सम्प्रदाय और 'भक्ति' धर्म विकसित हो गए। उदाहरण के लिए नामदेव, रैदास, तुकाराम, गुरूनानक प्रादेशिक राज्यों में मौजूद थे। धर्मों की भी अपनी पौराणिक कथाएं, दंतकथाएं और परिभाषाएं तथा धार्मिक कर्मकांड होते हैं। क्या आप जानते हैं कि उत्तर भारत में शिव–पार्वती के पुत्र कार्तिकेय, अविवाहित माने जाते हैं और तमिल क्षेत्र में उनकी दो पत्नियां हैं देवयानी और वल्ली। प्रत्येक क्षेत्र के अपने स्थानीय देवी–देवता और विभिन्न मंदिर और मस्जिदों का वास्तुशिल्प था। दिलचस्प बात यह है कि इन प्रादेशिक भिन्नताओं के बावजूद जहाँ हर क्षेत्र की अपनी विशिष्ट परम्पराएं थीं, वहीं प्रादेशिक परम्पराओं में समानताएं भी थीं। संत और पुजारी एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में

स्थानांतरित हुए। उदाहरण के लिए सूफी संत, गेसू दराज़ (1321–1422), जो दिल्ली में स्थापित चिश्ती सिलसिले से संबंध रखते थे, दिल्ली से दक्कन क्षेत्र के दौलताबाद में 1328 में तब स्थानांतरित हुए थे, जब वे बच्चे थे। सात साल के बाद, 1335 ईस्वी में वे दिल्ली वापिस आ गए और 63 वर्ष तक यहां रहे। चौदहवीं सदी के अंत में, 1398 में, जब तुर्की आक्रमणकारी तैमूर ने मध्य एशिया से दिल्ली पर आक्रमण किया तो गेसू दराज़ ने स्वयं को दोबारा दक्कन में स्थानांतरित कर लिया।

3. प्रादेशिक राज्य एक–दूसरे से कटे हुए बिलकुल अलग–थलग क्षेत्र नहीं थे। राज्यों में परस्पर धार्मिक क्रिया–कलापों के अतिरिक्त व्यापार और वाणिज्य तथा कारीगरों के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में स्थानांतरण के जरिये भी परस्पर लेन–देन का जाल बिछा हुआ था। उदाहरण के लिए, पन्द्रहवीं शताब्दी में रेशम के बुनकर, पट्टनुलकरों ने गुजरात क्षेत्र से विजय नगर राज्य में स्थानांतरण किया। विजय नगर और बहमनी साम्राज्यों में अफ्रीकियों और ईरानियों का स्थानांतरण भी देखने में आया।

4. एक अन्य विशेषता बिहार, बंगाल, असम, मध्य भारत, राजस्थान व अन्य स्थानों पर प्रादेशिक कला शैलियों का स्थानीय और प्रादेशिक स्तर पर विकास होना है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप प्रादेशिक विशिष्ट पहचान बनीं और इनमें बदलाव आते गए, जो प्राचीन काल में अस्तित्व में नहीं थे। विविध प्रादेशिक राजवंशों ने कला, संस्क ति, साहित्य और वास्तुशिल्प को संरक्षण प्रदान किया। इस प्रकार अनेक प्रादेशिक राज्यों के अस्तित्व से किसी प्रकार की अव्यवस्था और भ्रम पैदा नहीं हुआ। इन राज्यों की आपस में लड़ाइयाँ भी हुईं, परन्तु उन्होंने अपने–अपने प्रदेशों को स्थिरता भी प्रदान की। जैसा कि ऊपर बताया गया है, उनकी अपनी एक निजी जीवन्त संस्क ति थी। प्रादेशिक राज्यों ने वास्तुशिल्प और राजनीतिक संस्क ति में एक दूसरे को बहुत प्रभावित किया। उदाहरण के लिए विजय नगर के प्राचीन शासक खुद को 'हिन्दू सुरतराणा' कहते थे, जिसका अर्थ है हिन्दू सुल्तान, यहां 'सुल्तान' शब्द दिल्ली सल्तनत से लिया गया है। इसी प्रकार दिल्ली सल्तनत की 'इकतादारी प्रणाली' का प्रभाव विजय नगर और बहमनी साम्राज्यों की प्रशासनिक पद्धति पर पड़ा।

प्रादेशिक राज्यों और दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य जैसे साम्राज्य में क्या अंतर है? ऊपर उल्लिखित की गई किसी विशेष क्षेत्र की विशिष्ट भाषा और संस्क ति के अतिरिक्त, इन राज्यों की राजनीतिक और सैनिक क्षमताओं को भी प्रादेशिक सीमाओं द्वारा सीमित किया गया था।

पाठगत प्रश्न 11.1

1. भारत में प्रादेशिकता की चार विशेषताओं की सूची बनाएं।

2. मध्य काल के दौरान भारत में विकसित प्रादेशिक कला शैलियों के नाम लिखें।

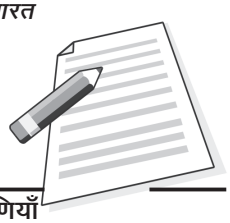

3. मध्य काल के दौरान भारत के विभिन्न क्षेत्रों में कौन–से भक्ति धर्मों का उदय हुआ ।

11.2 प्रादेशिक राज्यों का उद्भव : सामान्य इतिहास

पिछले अध्यायों में आपने सातवीं से तेरहवीं सदी तक की अवधि के प्रादेशिक राज्यों के संबंध में पढ़ा। इन राज्यों का क्या हुआ? क्या ये राज्य मध्यकालीन भारतीय राजनीतिक परिद श्य से पूरी तरह समाप्त हो गए? इनमें से बहुत बड़ी संख्या में ये प्रादेशिक राज्य तेरहवीं सदी के बाद भी अस्तित्व में बने रहे, परन्तु इन राज्यों पर शासन करने वाले राजवंशों और भूगोल में परिवर्तन आते रहे। इस खंड में आप तेरहवीं से अठारहवीं सदी की अवधि के दौरान प्रादेशिक राज्यों के संबंध में सामान्य जानकारी प्राप्त करेंगे।

दिल्ली सल्तनत का कई राज्यों जैसे–बंगाल, बिहार, गुजरात, मालवा, राजस्थान के अनेक राजपूत राज्य जैसे रणथम्भौर, जालौर, नागौर, अजमेर, दक्कन प्रदेश के वारंगल व तेलंगाना राज्य, देवगीर के यादव और दक्षिणी राज्यों में द्वारसमुद्र के हॉयसल, मदुरई के पाण्ड्य और इसी प्रकार के अनेक राज्यों के साथ जुड़ने के कारण विस्तार हुआ। अलाउद्दीन खिलजी की अनेक लड़ाइयों और मोहम्मद–बिन–तुगलक के काल में राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद, दक्कन में स्थानांतरित होने के संबंध में हम पहले ही पढ़ चुके हैं। जिन प्रदेशों को सल्तनत के साथ जोड़ा गया था। वे विभिन्न प्रांत बने और उन्हें प्रांतीय सूबेदार के प्रशासन के अधीन रखा गया। तेरहवीं सदी में दिल्ली सल्तनत की स्थापना से लेकर पन्द्रहवीं सदी में इसके पतन की अवधि तक, प्रांतों, जो कि पहले स्वतंत्र राज्य थे, केन्द्र दिल्ली के साथ परस्पर अन्तःक्रिया होती रही। परन्तु इन क्षेत्रों से सिर उठाने वाले विद्रोहियों को कभी पकड़ा नहीं जा सका। हम सभी जानते हैं कि राजकुमार के रूप में मोहम्मद बिन तुगलक ने अपना संपूर्ण जीवन काल दक्कन, उड़ीसा और बंगाल के बागियों को दबाने में बिताया। यद्यपि अब यह क्षेत्र दिल्ली सल्तनत का भाग था, परन्तु भाषा, कला, साहित्य और धर्म जैसी प्रादेशिक विशेषताएं अभी भी इसमें मौजूद थीं। असल में जब इस्लाम यहां पहुंचा तो इसने यहां कि प्रादेशिक विशेषताओं को ग्रहण किया। इन प्रदेशों में पहले से ही मुस्लिम व्यापारियों और सेना में नियुक्त मुस्लिमों की संख्या मौजूद थीं। फिर भी सल्तनत के प्रांतीय सूबेदारों ने स्थानीय 'राजाओं' और 'ज़मींदारों' के साथ मित्रता की और उनकी स्वतंत्रता को स्वीकार किया। चौदहवीं सदी के पश्चात् जब दिल्ली सल्तनत का पतन हो रहा था, तो अधिकांशतः प्रादेशिक राज्य सूबेदारों की बगावत का परिणाम थे। विजय नगर और बहमनी की स्थापना क्रमशः हरिहर व बुक्का और अलाउद्दीन हसन बहमन शाह जैसे प्रांतीय अधिकारियों द्वारा अपना अधिकार जमाने के परिणामस्वरूप हुई थी। इसी अवधि के दौरान पूर्व में बंगाल और पश्चिम में मुल्तान और सिंध स्वतंत्र हो गए। फिरोज शाह तुगलक ने अपने खोये हुए प्रदेशों को फिर से हासिल करने की कोशिश की मगर कामयाब नहीं हुआ। उसने बंगाल को जीतने का भी एक असफल प्रयास किया। उसने जाजनगर (उड़ीसा) पर भी आक्रमण किया और वहाँ लूटपाट की मगर, उसे भी अपने राज्य में नहीं मिला सका। उसने कांगड़ा को लूटा और गुजरात और थाट्टा में विद्रोह को दबाया।

1338 में फिरोजशाह तुगलक की म त्यु के साथ ही सल्तनत का पतन शुरू हो गया था। जैसा कि हमने अभी उल्लेख किया है, बहुत बड़ी संख्या में स्थानीय सूबेदार शक्तिशाली बन गए थे और प्रदेशों में उन्होंने स्वतंत्र अधिकार की घोषणा कर दी। सुल्तान और कुलीनों के परस्पर संबंध बिगड़ने लगे। स्थानीय शासकों और जमींदारों के आपसी झगड़ों के साथ–साथ प्रादेशिक और भौगोलिक तनावों ने सल्तनत को और कमजोर बना दिया। पतन की ओर बढ़ती सल्तनत को एक बड़ा झटका 1398 ई. में तैमूर के आक्रमण से लगा। तैमूर एक तुर्की था और मध्य एशिया से भारत में यहाँ की सम्पदा लूटने के लिए आया था। तैमूर ने दिल्ली में प्रवेश किया और उसने बड़ी बेरहमी से हिन्दुओं, मुसलमानों, औरतों और बच्चों का कत्ल किया।

दिल्ली पर तैमूर के हमले के पन्द्रह वर्ष बाद दिल्ली सल्तनत का पतन हो गया। गुजरात, मालवा और वाराणसी के पास जौनपुर की सल्तनतें शक्तिशाली प्रादेशिक साम्राज्यों के रूप मे उभरीं। गुजरात और जौनपुर लगातार दिल्ली सल्तनत के लोधियों के साथ (1451 से 1526 ई. तक) तनाव में उलझे रहे। दिल्ली सल्तनत से स्वतंत्र, नए प्रादेशिक राज्य मध्य और दक्षिण भारत में भी उभर कर आए, जिनमें से प्रमुख थे उड़ीसा का गजपति, बहमनी और विजय नगर साम्राज्य। बहलोल लोधी (1451–1485) और सिकंदर लोधी (1489–1526) जैसे लोधी सुल्तानों ने इन प्रादेशिक राज्यों को अपने नियंत्रण में करने का प्रयास किया। अन्त में, इब्राहिम लोधी के शासन के दौरान (1517–1526) बिहार ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। पंजाब के सूबेदार दौलत खान ने बगावत कर दी और 1526 में बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया।

1526 ई. में मुगल साम्राज्य की स्थापना और बाद की अवधि में इसके विस्तार के बाद प्रादेशिक राज्यों में राज करने वाले राजवंशों की शक्ति धीरे–धीरे क्षीण होने लगी और कालान्तर में ये राज्य मुगल साम्राज्य का हिस्सा बन गए। परन्तु भाषा, कला, साहित्य और धर्म इत्यादि जैसी विशेषताएं कुछ परिवर्तनों के साथ मौजूद रहीं। अठारहवीं सदी में मुगलों के पतन के बाद प्रांतीय सूबेदारों ने बगावत भी की और कुछ राज्य जो मुगल साम्राज्य के साथ जोड़े गए थे, उन्होंने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। इसके परिणामस्वरूप नए प्रादेशिक साम्राज्यों का उदय हुआ, जैसे पंजाब, बंगाल, अवध, हैदराबाद, मैसूर और मराठा।

पाठगत प्रश्न 11.2

1. सल्तनत का पतन कब शुरू हुआ?

2. इब्राहिम लोधी के शासन–काल में किन दो प्रदेशों ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की?

प्रादेशिक राज्यों का इतिहास : कुछ विशेष अध्ययन

11.3 जौनपुर

वर्तमान में जौनपुर पूर्वी उत्तर प्रदेश में वाराणसी में, गोमती नदी के किनारे स्थित है। दिल्ली सल्तनत के पूर्वी भाग में यह एक सम द्ध प्रांत था। जौनपुर का सूबेदार मलिक

सरवर था, जो फिरोजशाह तुगलक के काल में महत्त्वपूर्ण कुलीन था। 1394 में, सुल्तान नसीरूद्दीन मोहम्मद शाह तुगलक ने उसे मंत्री बना कर उसे सुल्तानु–शर्क की उपाधि दी, जिसका अर्थ है पूर्व का स्वामी। इसके बाद उसे मलिक सरवर सुल्तानुस शर्क के नाम से जाना गया। तैमूर के आक्रमण और दिल्ली सल्तनत के शक्तिहीन होने पर मालिक सरवर ने कमज़ोर राजनीतिक परिस्थितियों का लाभ उठाकर खुद को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। मलिक सरवर का उत्तराधिकारी बना उसका पुत्र मुबारक शाह शरकी। सुल्तान ने अपने नाम के सिक्के भी चलाए। उसके शासन काल में दिल्ली सल्तनत का शासक महमूद शाह तुगलक था, जिसने जौनपुर को जीतना चाहा, परंतु असफल रहा। इसके बाद जौनपुर के शासकों और दिल्ली सल्तनत के बीच लगातार तनावपूर्ण स्थिति रही। शरकी सुल्तानों ने दिल्ली को जीतने की कई बार कोशिशें की, परन्तु वे कभी सफल नहीं हो सके। 1402 में, मुबारक शाह का भाई, इब्राहिम शाह शरकी सुल्तान बना और उसने चौंतीस वर्ष तक जौनपुर पर शासन किया। इब्राहिम विद्वान था और इस्लाम धर्म, दर्शन और कानून, संगीत और ललित कलाओं का भी अच्छा ज्ञाता था। वह वास्तुशिल्प का महान संरक्षक था। उसने 'शरकी शैली' के नाम से जानी जाने वाली वास्तुशिल्प की विशिष्ट शैली का विकास किया, जिस पर हिन्दुओं का भी कुछ प्रभाव था। अपने शीर्ष पर शरकी सल्तनत का विस्तार पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अलीगढ़ से, पूर्व में उत्तरी बिहार के दरभंगा तक और उत्तर में नेपाल से दक्षिण में बुंदेलखंड तक फैला हुआ था। हुसैन शाह शरकी के शासन काल के दौरान (1458–1505) बहलोल लोधी के साथ एक बहुत लंबी लड़ाई शुरू हुई। बहलोल लोधी ने 1484 में जौनपुर पर आक्रमण किया और हुसैन शाह को भागना पड़ा। अन्त में, बहलोल लोधी के उत्तराधिकारी सिकंदर लोधी ने जौनपुर को अपने राज्य के साथ जोड़ा। हुसैन शाह की म त्यु होने पर शरकी राजवंश का अन्त हो गया।

11.4 कश्मीर

कश्मीर भारत के उत्तरी भाग में स्थित है। ग्यारहवीं सदी में कश्मीर के शासक शैव धर्म के अनुमायी थे, इसलिए शैव धर्म कश्मीर का प्रमुख धर्म बन गया था। यह चारों तरफ से घिरा बंद साम्राज्य था। एक अरब यात्री अलबरूनी जिसने इस अवधि में भारत में यात्रा की, ने अपनी पुस्तक, अल–हिन्द में उल्लेख किया है कि यहाँ तक कि किसी बाहरी हिन्दू को भी कश्मीर में प्रवेश की इजाज़त नहीं थी। 1320 में, कश्मीर के शासक राजवंश मंगोलों के आक्रमण के विनाशक प्रभाव पर नियंत्रण नहीं रख पाए। इसीलिए उन्होंने पूरा जनसमर्थन खो दिया। 1339 में शम्सुद्दीन शाह ने शैव शासकों को राजसिंहासन से हटाया और खुद कश्मीर का शासक बन बैठा। इस अवधि के बाद से कश्मीरी समाज पर इस्लाम का प्रभाव पड़ने लगा। सूफी संतों का एक समूह, जिन्हें ऋषि कहते थे, ने एक ऐसे धर्म का प्रचार शुरू किया, जिसमें हिन्दू धर्म और इस्लाम दोनों की विशेषताएं थीं। सूफी संत और शरणार्थी, मध्य एशिया से आकर कश्मीर में स्थानांतरित हो गए और उन्होंने भी आगे जाकर समाज और धर्म को प्रभावित किया। धीरे–धीरे जनता के गरीब वर्ग ने इस्लाम धर्म को अपनाना शुरू कर दिया। राज्य की ओर से इस्लाम को प्रोत्साहन तब मिला जब कश्मीरी सुल्तान, सिकंदर शाह (1389-1413) ने एक हुकुमनामा जारी किया कि सभी हिन्दू, खास तौर पर ब्राह्मण, जो इस प्रदेश में निवास कर रहे हैं वे या तो इस्लाम धर्म को अपना लें अथवा साम्राज्य को छोड़कर चले जाएं। ऐसा कहा जाता

है कि यह हुकुमनामा राजा के मंत्री, सूहा भट्ट के कहने पर जारी किया गया था, जो एक हिन्दू था और जिसने हाल ही में इस्लाम धर्म कबूल किया था।

शायद जैनुल आबिदीन (1420-1470) कश्मीर का सबसे बड़ा शासक था। वह बहुत बुद्धिमान शासक था और उसने उन सभी हिन्दुओं को वापस बुला लिया, जो सिकंदर शाह के उत्पीड़न की वजह से राज्य को छोड़कर चले गए थे। उसने जज़िया और गौवध बंद करवा दिया और हिन्दुओं को राज्य के महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया। बड़ी संख्या में मंदिरों की मरम्मत कराई गई और नए मंदिर भी बनवाए गए। मुगल बादशाह अकबर के दरबारी इतिहासकार, अबुल फज़ल ने लिखा है कि कश्मीर में एक सौ पचास बड़े मंदिर हैं। सुलतान ज़ैनुल आबिदीन ने जम्मू के हिन्दू राजा की पुत्री से विवाह किया था। कुछ विद्वान जैनुल आबिदीन को कश्मीर का अकबर भी कहते थे। उसके शासन काल में कश्मीर बहुत सम द्ध हुआ और उसे बुड शाह या कश्मीरियों का महान राजा कहा गया।

सुल्तान ने बांध और नहरें बनाकर कश्मीर के क षि संबंधी विकास में बहुत योगदान किया। क षि संबंधी पैदावार का अभिलेख रखा जाता था। सूखा और अन्य प्राक तिक आपदाओं के दौरान, किसानों को ऋण और अनाज और चारे के रूप में सहायता दी जाती थी।

सुल्तान ने मुद्रा में भी सुधार शुरू किए। उसने बाज़ार पर नियंत्रण और उपभोक्ता वस्तुओं के निश्चित मूल्यों की भी शुरूआत की। जिन उपभोक्ता वस्तुओं की राज्य में कमी थी, सुल्तान ने उन चीजों के आयात पर भी मूल्यों में सहायता प्रदान की। नमक की कमी को पूरा करने के लिए, उसने लद्दाख से नमक मंगवाया और व्यापारियों की हरसंभव तरीके से मदद की। सुल्तान ने हस्तशिल्पों के विकास पर भी बहुत ध्यान दिया। उसने कागज़ बनाने और पुस्तकों की जिल्द बांधने के काम का प्रशिक्षण लेने के लिए कुछ लोगों को समर–कंद भेजा। सुल्तान ने पत्थरों को तराशने और उन्हें पॉलिश करने और कई अन्य दस्तकारियों को भी प्रोत्साहित किया। उसने कालीन और शॉल बनाने की कला की शुरूआत कराई, जिसके लिए कश्मीर आज भी प्रसिद्ध है। सुल्तान ने ज़ैनगीर, ज़ैनखेत और ज़ैनपुर शहरों की नींव रखी और उस झील पर एक टापू बसाया जिसे आज भी देखा जा सकता है। उसकी सबसे प्रमुख यांत्रिक सफलता वूलर झील पर 'जायना लंका', नाम से एक क त्रिम टापू बनाना था जिस पर उसने अपना महल और एक मस्जिद बनाई।

वह फारसी, संस्क त, तिब्बती और अरबी भाषाओं का बहुत बड़ा विद्वान था और उसने संस्क त और फारसी विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया। उसके संरक्षण में महाभारत और कल्हण की राजतरंगिणी का फारसी में अनुवाद हुआ और बहुत सी फारसी और अरबी रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद हुआ। वह खुद भी एक कवि था और उसने 'कुतुब' के नाम से अनेक कविताएं लिखीं।

उसके बाद कश्मीर के सिंहासन पर शक्तिहीन शासकों का राज हुआ, जिससे भ्रम पैदा हुआ। इस स्थिति का फायदा उठाकर बाबर के रिश्तेदार ने कश्मीर पर कब्जा कर लिया। 1586 में अकबर ने कश्मीर पर जीत हासिल की और इसे मुगल साम्राज्य का हिस्सा बनाया।

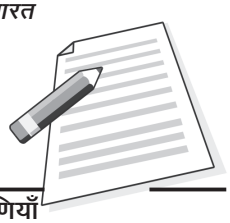

11.5 बंगाल

बंगाल आठवीं सदी में पालों के और बारहवीं सदी में सेनों के अधीन एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रादेशिक साम्राज्य था। बंगाल दिल्ली सल्तनत का सुदूर पूर्वी प्रांत था। अत्यधिक दूरी, असहनीय वातावरण और परिवहन और संचार के कम साधनों की वजह से दिल्ली सल्तनत का इस प्रदेश पर नियंत्रण रख पाना बहुत कठिन था। इसलिए, बंगाल के लिए अपना स्वतंत्र अधिकार जताना बहुत आसान था। गयासुद्दीन तुगलक ने बंगाल को लखनौटी, सतगांव और सोनारगांव के तीन स्वतंत्र प्रशासकीय क्षेत्रों में बांटकर इस समस्या का समाधान करना चाहा। परन्तु इन समस्याओं का समाधान नहीं हो सका और अंत में बंगाल चौदहवीं सदी में, एक स्वतंत्र प्रादेशिक राज्य बनकर उभरा।

1342 में एक कुलीन हाजी इलियास खान ने बंगाल को संगठित किया और शम्सुद्दीन इलियास शाह की उपाधि हासिल करके वहाँ का शासक बन गया और उसने इलियास शाह राजवंश की नींव रखी। उसने बंगाल को अपने साथ जोड़ने की कोशिश की और उड़ीसा और तिरहुट पर धावा बोला और उन्हें नजराना देने के लिए मजबूर किया। इस प्रकार के विस्तारों ने दिल्ली सल्तनत के शासकों को सतर्क कर दिया, जिन्होंने बंगाल को जीतने के लिए अनेक बार कोशिशें कीं, परन्तु सफल नहीं हो सके। इलियास शाह राजवंश के महत्त्वपूर्ण शासकों में से एक था, गयासुद्दीन आज़म। वह विद्वान व्यक्ति था और उसने फारसी साहित्य को प्रोत्साहित किया। वह लोगों को स्वतंत्र और सही न्याय देने के लिए प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि एक बार उसने दुर्घटनावश एक विधवा के पुत्र की हत्या कर दी। विधवा ने काज़ी के पास इसकी शिकायत दर्ज करा दी, जिसने शासक को न्यायालय में बुलाया। जब इस मामले का निर्णय हुआ, आज़म ने काज़ी से कहा कि अगर उसने अपने कर्त्तव्य का ईमानदारी से पालन नहीं किया होता, तो उसने उसे मार दिया होता। आज़म के चीन के साथ बहुत मधुर संबंध थे। बंगाल और चीन के बीच बहुत सम द्ध व्यापारिक संबंध थे। चटगांव का बंदरगाह वस्तु–विनिमय का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण केंद्र था। चीन के बादशाह की मांग पर आज़म ने बंगाल से बौद्ध भिक्षु भी वहां भेजे थे। पांडुआ और गौड़, बंगाल की राजधानियां थीं।

1538 में शेरशाह सूरी ने बंगाल को अपने राज्य में मिला लिया। 1586 में अकबर ने बंगाल को जीत लिया और इसे एक 'सूबा' बना दिया। फारसी प्रशासन की भाषा थी, परन्तु बँगला प्रादेशिक भाषा के रूप में विकसित हुई। बंगाल पर मुगलों का नियंत्रण स्थापित होने के साथ–साथ बंगाल के दक्षिण–पूर्वी इलाके के वन–क्षेत्र में भारी संख्या में मछुआरों और किसानों के स्थानीय समुदायों की भारी संख्या में आबादी बढ़ी। मुगलों ने ढाका में, पूर्वी डेल्टा के बीचोंबीच अपनी राजधानी स्थापित की। सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों को अनुदान में भूमि दी गई और वे यहीं बस गए। अलाउद्दीन हुसैन शाह (1439 से 1519 तक), बंगाल का एक अन्य महत्त्वपूर्ण शासक था। वह बहुत ही कुशल शासक था और उसने हिन्दुओं को ऊंचे प्रशासकीय पदों पर नियुक्त किया और कहा जाता है कि उसने वैष्णव सम्प्रदाय के चैतन्य को बहुत सम्मान दिया। सिकंदर लोधी के साथ उसकी लड़ाई हो गई और इसके बाद उसे उसके साथ शांति समझौता करना पड़ा।

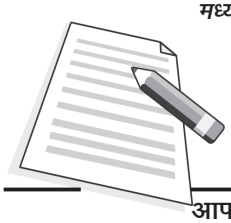

आपकी टिप्पणियाँ

11.6 गुजरात

यह एक बहुत ही उपजाऊ और सम द्ध प्रांत था। यहां पर बहुत ही विकसित बंदरगाह थे और यह अपने हस्तशिल्पों के लिए भी बहुत प्रसिद्ध था। अलाउद्दीन खिलजी पहला ऐसा सुल्तान था, जिसने इसे दिल्ली सल्तनत के साथ जोड़ा और तब से यह सल्तनत के तुर्की सूबेदारों के अधीन रहा। 1407 में तैमूर के आक्रमण के बाद ज़फ़र ख़ान जो कि उस समय वहां का सूबेदार था, स्वतंत्र शासक बन गया और कुछ समय के बाद उसने मुजफ़्फर शाह की उपाधि स्वीकार कर ली। ज़फ़र खान के पिता राजपूत थे, जिसने अपनी बहन का विवाह फिरोज़ शाह तुगलक से कराया था।

अहमद शाह (1411-1441) गुजरात के प्रमुख शासकों में से एक था। इसने अहमदाबाद शहर की नींव रखी और 1413 में इसे राजधानी बनाया। इसने जामा मस्जिद और तीन दरवाज़ा जैसे खूबसूरत भवन बनवाए और उद्यानों, महलों और बाज़ारों का सौंदर्यीकरण करवाया। अहमद शाह गुजरात के जैन वास्तुशिल्प से बहुत प्रभावित था। वह एक बहुत कुशल प्रशासक था और उसने गुजरात के प्रादेशिक राज्य को संगठित किया। उसने झालावाड़, बूंदी और दुर्गापुर के राजपूत प्रदेशों को पराजित किया। उसे एक कट्टर मुस्लिम माना जाता था, जिसने हिन्दुओं पर जज़िया लगाया और अनेक मंदिरों का विनाश किया। इसके साथ ही उसने हिन्दुओं को महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किया। अहमद शाह ने हिन्दुओं और मुसलमान दोनों शासकों के साथ घमासान युद्ध किया। उसका सबसे बड़ा शत्रु था, मालवा का मुस्लिम शासक। गुजरात और मालवा के बीच घोर दुश्मनी थी, जिसने इन दोनों प्रादेशिक राज्यों को उत्तर भारतीय राजनीति के बड़े राजनीतिक फायदों पर ध्यान केंद्रित नहीं करने दिया। वह अपनी न्यायप्रियता के लिए प्रसिद्ध था। उसने खुलेआम अपने दामाद का कत्ल कर दिया, जिसने एक मासूम की हत्या की थी। मीरात–ए–अहमदी के इस रचनाकार ने सही कहा था कि उसके न्याय का असर उसके संपूर्ण शासन के दौरान मौजूद रहा।

शायद गुजरात का सबसे महत्त्वपूर्ण शासक महमूद (बेगढ़) था। उसे महमूद बेगढ़ शायद इसीलिए कहा जाता था कि उसने दो शक्तिशाली किलों या गढ़ सौराष्ट्र में गिरनार (जूनागढ़) और दक्षिण गुजरात में राजपूतों से चांपानेर किलों को जीता था। इन दोनों किलों की युद्ध नीति की द ष्टि से बहुत महत्ता थी। गिरनार का किला सौराष्ट्र के बहुत सम द्ध क्षेत्र में स्थित था और इसने सिंध के खिलाफ अभियानों के लिए आधार स्थल उपलब्ध कराया। सुल्तान ने पहाड़ी ढलान पर मुस्तफाबाद नामक नया शहर बसाया। बहुत से खूबसूरत भवनों वाला यह शहर गुजरात की दूसरी राजधानी बना। इसी प्रकार चंपानेर का किला भी मालवा और खानदेश के नियंत्रण में बहुत महत्त्वपूर्ण था। महमूद ने चंपानेर के पास मोहम्मदाबाद के नाम से एक नया शहर बसाया।

कुछ लोगों का विचार था कि उसे बेगढ़ इस लिए कहते थे, क्योंकि उसकी मूछें गाय (बेगरहा) के सींगों से मिलती थीं। कहते हैं कि महमूद खुली दाढ़ी रखता था, जिसकी लंबाई उसकी कमर तक थी। उसकी मूछें इतनी लंबी थी कि वह इन्हें अपने सिर के ऊपर बांधता था। एक विदेशी यात्री, डॅयूआरटो बारबोसा के मुताबिक, महमूद को बचपन से ही भोजन में ज़हर खिलाया जाता था जिसने उसे इतना ज़हरीला बना दिया था कि अगर कोई मक्खी भी उसके सिर पर बैठ जाती तो तुरंत मर जाती थी। महमूद अपनी बेइंतहा भूख के

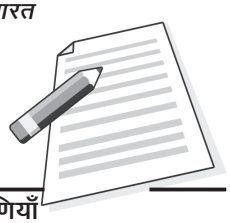

लिए भी प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि वह अपने नाश्ते में एक प्याला शहद, एक प्याला मक्खन और एक सौ से डेढ़ सौ तक केले खाता था। कुल मिलाकर वह एक दिन में दस से पन्द्रह किलो खाना खाता था।

महमूद बेगढ़ ने 52 वर्ष तक शासन किया। वह कला और साहित्य का भी बहुत बड़ा संरक्षक था। उसके दरबार में बहुत–सी फारसी और अरबी रचनाओं का अनुवाद किया गया। उसके दरबारी कवि थे 'उदयराज', जिन्होनें संस्क त में काव्य रचनाएं कीं।

1507 में महमूद ने उन पुर्तगालियों के खिलाफ अभियान की अगुवाई की, जो पश्चिमी समुद्र–तट पर बस गए थे और जिन्होंने वहां के व्यापार पर एकाधिकार हासिल कर लिया था और जिनकी वजह से मुस्लिम व्यापारियों को बहुत नुकसान पहुंच रहा था। पुर्तगालियों के व्यापारिक एकाधिकार को खत्म करने के लिए उसने तुर्की के सुल्तान की सहायता माँगी, परन्तु उसे बहुत ज़्यादा कामयाबी नहीं मिली और अंत में उसे पुर्तगालियों को कारखाना बनाने के लिए दीव में जगह देनी पड़ी। 1511 में उसकी म त्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल के दौरान अकबर ने 1572 ई. में गुजरात को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया।

पाठगत प्रश्न 11.3

1. शरक़ी सल्तनत का विस्तार किन क्षेत्रों में हुआ?

2. कश्मीर का अकबर किसे कहते थे?

3. इलियास शाह राजवंश की नींव किसने रखी?

4. अहमद शाह ने किस शहर की नींव रखी?

11.7 बहमनी सल्तनत

चौदहवीं सदी में दक्षिण भारत में दो बहुत शक्तिशाली साम्राज्यों का उद्भव हुआ। एक था बहमनी सल्तनत और दूसरा था विजयनगर साम्राज्य जिसने 300 वर्षों तक शासन किया। इस भाग में हम बहमनी सल्तनत के इतिहास और उसकी प्रशासनिक विशेषताओं पर चर्चा करेंगे।

दक्कन क्षेत्र दिल्ली सल्तनत के प्रांतीय प्रशासन का भाग था। दक्कन में स्थिर प्रशासन स्थापित करने के लिए, मोहम्मद बिन तुगलक ने अमीरन–ए–सद़ा/सद़ा अमीर, नियुक्त किए, जो एक सौ गांवों के मुखिया होते थे। 1337 के बाद से दक्कन के अधिकारियों और दक्कन की सल्तनत में संघर्ष बहुत बढ़ गए थे। इसके परिणामस्वरूप 1347 में दक्कन में, आंध्र प्रदेश की राजधानी गुलबर्गा के साथ एक स्वतंत्र राज्य स्थापित हुआ।

इसके संस्थापक हरन कांगु ने अलाउद्दीन हसन बहमन शाह की उपाधि ग्रहण की, क्योंकि वे अपने पूर्वज ईरान के पौराणिक नायक बहमन शाह को मानते थे और उसी के नाम पर अपने साम्राज्य का नाम उन्होंने बहमनी सल्तनत रखा। मोहम्मद बिन तुगलक के बाद दक्कन क्षेत्र को नियंत्रित करने के लिए दिल्ली सल्तनत द्वारा कोई भी कोशिश नहीं की गई, इसलिए बहमनी सुल्तानों ने बिना किसी की दखलअंदाजी के अपने साम्राज्य में नए क्षेत्र जोड़े। एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अधिग्रहण था दभोल पर नियंत्रण पाना, जो पश्चिमी समुद्र तट पर एक महत्त्वपूर्ण बंदरगाह है।

बहमन शाह और उसके पुत्र मोहम्मद शाह के अधीन प्रशासनिक पद्धति बहुत ही व्यवस्थित थी। साम्राज्य को चार प्रशासकीय इकाई में बांटा गया था, जिन्हें 'तरफ' या 'प्रांत कहते थे। ये प्रांत थे – दौलताबाद, बीदर, बरार और गुलबर्गा। मोहम्मद प्रथम ने विजयनगर साम्राज्य को हराया और उसके परिणामस्वरूप गोलकुंडा को बहमनी साम्राज्य में शामिल किया गया। हर प्रान्त एक 'तरफदार' के अधीन था, जिसे 'सूबेदार' कहते थे। तरफ़दारों के अधिकार में से ज़मीन के कुछ हिस्से को 'ख़ालिस जमीन' के रूप में तब्दील किया गया था। ख़ालिस ज़मीन, ज़मीन का वह टुकड़ा होता था, जिसका इस्तेमाल राजा या उसके शाही घर–बार के खर्चों को पूरा करने के लिए किया जाता था। इसके अतिरिक्त हर कुलीन के काम और वेतन निश्चित थे। जिन कुलीनों के पास 500 घोड़े होते थे, उन्हें 1,000,000 हूण वार्षिक दिए जाते थे। यदि निर्धारित टुकड़ियों से कम टुकड़ियां होती थीं, तो तरफ़दारों को केंद्रीय सरकार को इस धन की पूर्ति करनी पड़ती थी। कुलीनों को अपना वेतन 'नगद' या भूमि या 'जागीर' के रूप में मिलता था। बहमनी शासक सैनिक सहायता के लिए अपने 'अमीरों' पर निर्भर थे। 'अमीरों' की श्रेणियों में दो समूह होते थे। एक समूह था दक्कनी लोगों का जो अप्रवासी मुस्लिम थे और बहुत लम्बे समय से दक्कन प्रदेश में निवास कर रहे थे। दूसरा समूह 'अफक़ियों' या 'परदेसियों' का था, जो हाल ही में मध्य एशिया, ईरान और ईराक से आए थे और कुछ समय पहले ही दक्कन क्षेत्र में बसे थे। इन दोनों समूहों में हमेशा बेहतर प्रशासनिक स्थिति हासिल करने के लिए आपस में तनाव बना रहता था। इनके आपसी कलह का असर बहमनी सल्तनत की स्थिरता पर भी पड़ा। भारत में पहली बार इन दोनों साम्राज्यों ने युद्ध में बारूद का इस्तेमाल किया। बहमनी पहले से भी आग्नेय–अस्त्रों से वाकिफ़ थे। उन्होंनें सिपाहियों को आधुनिक अस्त्रों और युद्ध कौशल के प्रशिक्षण के लिए तुर्की और पुर्तगाली विशेषज्ञों को नियुक्त किया।

बहमनी साम्राज्य में एक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व था महमूद गवां। महमूद गवां के प्रारंभिक जीवन के बारे में कुछ भी जानकारी उपलब्ध नहीं है। वह जन्म से ईरानी था और दक्कन में पहले एक व्यापारी के रूप में आया। बहमनी शासक हुमायूं शाह ने उसे 'सौदागरों के मुखिया' या 'मालिक–उत–तुज्जर' की उपाधि प्रदान की। हुमायूं की अचानक म त्यु की वज़ह से उसके छोटे पुत्र अहमद त तीय का राज्याभिषेक हुआ। प्रशासन के कार्यों के लिए एक दरबारी परिषद् गठित की गई और महमूद गवां उस परिषद का महत्त्वपूर्ण सदस्य था। उसे वजीर या प्रधानमंत्री बनाया गया और 'ख्वाजु–ए–जहान' की उपाधि दी गई। इस अवधि के बाद का बहमनी साम्राज्य का इतिहास असल में महमूद गवां की उपलब्धियों का दस्तावेज़ है। खुद एक अफाकी होने के बावजूद, वह बहुत उदार था और अफ़ाकियों और दक्कनियों में समझौता करवाना

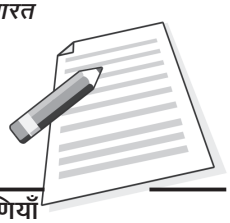

चाहता था। उसने बहुत ही कुशलता से साम्राज्य को नियंत्रित किया और इसे स्थिरता प्रदान की। गवां ने कांची तक विजयनगर के सभी प्रदेशों को जीत लिया। पश्चिमी समुद्री तट पर गोआ और दभोल को भी जीत लिया। इन प्रमुख बंदरगाहों को खोना विजयनगर के लिए भारी नुकसानदेह साबित हुआ। गोआ और दभोल पर नियंत्रण पाने के बाद बहमनी ने ईरान और ईराक के साथ अपने व्यापारिक संबंध मजबूत बनाए।

गवां ने अनेक आंतरिक सुधार किए और कुलीनों में परस्पर हो रही लड़ाइयों को खत्म करने का प्रयास किया। गवां ने आदेश जारी किया कि प्रांतीय तरफ़दार के सीधे नियंत्रण के अधीन प्रत्येक प्रांत में केवल एक ही किला तरफ़दार के अधीन रहेगा ताकि उनकी सैनिक शक्ति को कम किया जा सके। प्रांत के बाकी किलों को किलों के 'किलादार' या कमांडर के अधीन रखा गया। 'किलादार' की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की गई थी। परन्तु उसकी म त्यु के तुरंत बाद, सूबेदारों ने अपनी–अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी और बहमनी साम्राज्य बिखर गया। पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदी में कुछ 'अमीरों' ने बीदर, अहमदनगर, गोलकुंडा और बीजापुर व बरार में अपनी निजी स्वतंत्र सल्तनत स्थापित कर ली और इस प्रकार नए प्रदेशों का उदय हुआ। यह सल्तनत थी अहमदनगर की निज़ाम शाही, बीजापुर की आदिल शाही, गोलकुंडा की कुतुबशाही, बरार की इमदशाही, और बीदर की बरीद शाही। इन सबने मिलकर प्रदेशों का संगठन बना लिया और वैवाहिक संबंधों के द्वारा इसे और मज़बूत बनाया। इन्होंने विजयनगर के साथ अपनी पुरानी दुश्मनी कायम रखी। गोलकुंडा और बीजापुर ने आपस में वैवाहिक संबंध बनाए और उन्होंने विजयनगर के खिलाफ़ तालीकोट की लड़ाई की अगुआई की। अन्त में इन्होंने मुगल सेनाओं के समक्ष हार मान ली।

पाठगत प्रश्न 11.4

1. सदा अमीर को किसने और किस क्षेत्र के लिए नियुक्त किया?

2. महमूद गवां कौन था?

11.8 विजयनगर साम्राज्य

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना 1336 हरिहर और बुक्का द्वारा की गई। ये दोनों भाई थे और इन्होंने मुहम्मद–बिन–तुगलक की सेना में नौकरी की थी। उन्होंने दिल्ली सल्तनत से संबंध तोड़कर कर्नाटक में एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की और 1336 में तुंगभद्रा नदी के किनारे राजधानी के रूप में विजयनगर नामक शहर की स्थापना की। इनके राजवंश को संगम राजवंश कहते थे। इस राजवंश के उद्‌भव के संबंध में अनेक विचारधाराएँ प्रचलित हैं। कुछ विद्वानों के मत में ये वारंगल के काकतिया के जागीरदार सामन्त थे और इनके पतन के बाद इन्होंने काम्पिलि प्रदेश में सेवा की। कुछ अन्य विद्वानों के मत में ये लोग होयसल के सामन्त थे और कर्नाटक से संबद्ध थे। हरिहर और बुक्का

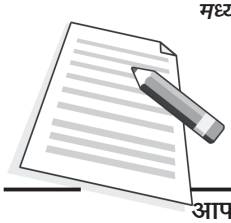

आपकी टिप्पणियाँ

द्वारा उनका साम्राज्य स्थापित करने के लिए, उन्हें उनके समकालीन विद्वान संत विद्यारण्य से सहायता और प्रेरणा मिली। विश्वास किया जाता है कि अपने गुरू की स्म ति बनाए रखने के लिए दोनों भाईयों ने तुंगभद्रा नदी के किनारे विद्यानगर या विजयनगर की स्थापना की। इनके साम्राज्य में विभिन्न सांस्क तिक क्षेत्रों के लोग थे जैसे तमिल, तेलुगू और कर्नाटक क्षेत्र, जो विभिन्न भाषाएँ बोलते थे और भिन्न–भिन्न संस्क तियों से संबंध रखते थे।

1336 से 1565 तक विजयनगर पर तीन भिन्न राजवंशों ने राज किया संगम, जो 1485 तक सत्ता में रहे; शल्व, जो कि 1503 तक सत्ता में रहे और तुलुवा राजवंश। अंतिम राजवंश अराविदु था, जिसने सत्रहवीं सदी तक शासन किया। विदेशी यात्रियों निकोलों कोंटी, फरनाओं न्यूनिज़, दोमिंगो पेस, डुआर्टो बरबोसा और अब्दुर रज्ज़ाक ने विजयनगर की भव्यता के बारे में लिखा है।

विजयनगर राज्यों के शासकों में से सबसे महत्त्वपूर्ण शासक क ष्णदेवराय थे, जो कि तुलुव राजवंश के संस्थापक थे। वे एक महान सेनापति और बहुत की कुशल प्रशासक थे। उन्होंने बहमनी साम्राज्य के विनाश पर खड़े किए गए स्वतंत्र साम्राज्यों के साथ सिलसिलेवार लंबी लड़ाइयां लड़ीं, कानून और व्यवस्था को व्यवस्थित किया और दक्कन में पुर्तगालियों के प्रभाव से भी निपटे। पहले उन्होंने बीजापुर की आदिलशाही फौजों को पूरी तरह तहस–नहस किया और गुलबर्गा पर आक्रमण करके वहां कैद में बंदी बना कर रखे गए तीन बहमनी राजकुमारों को आजाद कराया। उन्होंने गुलबर्गा के राज्य सिंहासन को दोबारा प्रतिस्थापित करने में उनकी मदद की और स्वयं 'यवनराज्य स्थापनाचार्य' की उपाधि अपनाई।

क ष्णदेवराय ने पत्थरों से कुछ मंदिर बनवाए और उन पर प्रभावशाली गोपुरम अथवा अनेक दक्षिण भारतीय मंदिरों के भव्य द्वार बनवाए। उन्होंने विजयनगर के पास अपनी मां के नाम पर नागलपुरम नाम का एक उपनगर बसाया। विजयनगर के संबंध में कुछ बहुत ही विस्त त विवरण उसी की शासनावधि के दौरान के मिलते हैं। तिरूपति का भव्य मंदिर उन्हीं की कालावधि में क्योंकि वहां की देवी उनकी आराध्य देवी थीं। क ष्णदेवराय के बाद उनके भाई अच्युत देवराय 1530 ई. में राजगद्दी पर बैठे, और वे भी बहुत महत्त्वपूर्ण शासक थे। उनके शासन काल में उनके विरोधी गुट सिर उठाने लगे थे। शक्ति हासिल करने के लिए संघर्ष मुख्यतया सलुवा वीर नरसिंह और अरविदु राम राय के बीच था, जिसमें अरविदु राम राय की जीत हुई। यद्यपि राम राय राजगद्दी पर नहीं बैठे, परन्तु फिर भी उन्होंने सदाशिव राम को सिंहासन पर बिठाया और वास्तव में शासन स्वयं किया। उसने पुराने आभिजात्यों को हटाकर उनके स्थान पर अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों को रखा। राम राय ने दक्कन की शक्तियों को एक–दूसरे के खिलाफ लड़ाकर उनमें संतुलन पैदा करने की कोशिश की, परन्तु यह नीति बहुत लम्बे समय तक नहीं चल सकी। दक्कन राज्यों ने राज्यों का एक संघ बना लिया और तालीकोट के युद्ध में विजयनगर की सेनाओं को बहुत गहरा आघात पहुंचाया। राम राय इसमें मारा गया। दक्कनी सेनाओं ने विजय नगर में प्रवेश किया और इसे बिलकुल तबाह कर दिया। अब इसका लक्ष्य पूर्व की तरफ केंद्रित हुआ, जहां पर पेनुकोन्डा से और बाद में चन्द्रगिरि से (तिरूपति के पास) अरविदु राजवंश ने शासन किया।

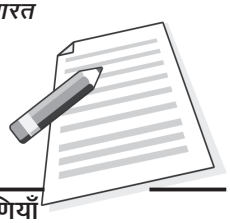

विजयनगर साम्राज्य की सेना और सैन्य संगठन

लगातार युद्धों को जारी रखने के लिए एक विशाल सेना की जरूरत थी। तोपखाना का बहुत महत्त्व था और बहुत हृष्ट–पुष्ट घोड़े रखे गए थे। विजयनगर के शासकों ने अरब सागर के पार से अरब और अन्य खाड़ी देशों से उच्च गुणवत्ता वाले घोड़े आयात किए। मालाबार बंदरगाह इस व्यापार और अन्य विलास संबंधी वस्तुओं के व्यापार का केंद्र था। विजयनगर के शासकों ने हमेशा मालाबार बंदरगाह पर अपना नियंत्रण रखने का प्रयास किया।

बहमनियों की तरह, विजयनगर राज्य भी आग्नेय–अस्त्रों के प्रयोग से परिचित था और युद्ध कौशल में आधुनिक अस्त्रों का प्रशिक्षण सिपाहियों को दिलाने के लिए उन्होंने तुर्की और पुर्तगाली विशेषज्ञों को नियुक्त किया था। रायों में से एक, देव राय द्वितीय ने अपनी सशस्त्र सेनाओं में मुसलमानों को भर्ती किया और उन्हें जागीरें प्रदान कीं और उनके उपयोग के लिए शहर में एक मस्जिद का निर्माण कराया। युद्ध कौशल की इन नई तकनीकों ने रणकौशल में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया था। आग्नेय अस्त्रों का मुकाबला करने के लिए अब किलों की दीवारों की मोटाई बढ़ाई गई और सामने की किलेबंदी करके मज़बूत दीवारों के साथ विशिष्ट प्रकार के दरवाजों का निर्माण कराया गया। किलों की दीवारों के अंदर, तोपों को रखने के लिए विशेष प्रकार के बड़े–बड़े झरोखे बनाए गए। किलों पर विशेष प्रकार की प्राचीरों का निर्माण कराया गया जिन पर तोपें रखी जा सकें। कुछ आग्नेय–अस्त्र छोटे थे और उनमें राइफल और पिस्तौलें शामिल थीं। कुछ तोपों की तरह भारी–भरकम थे और उन्हें बैलगाड़ियों या हाथियों पर रखा जाता था और युद्ध के मैदान में ढकेला जाता था।

विजयनगर प्रशासन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता वहां की अमरनायक प्रणाली थी। इस प्रणाली में, विजयनगर की सेना के सेनापति को नायक कहा जाता था। प्रत्येक नायक को एक–एक अलग प्रशासनिक क्षेत्र आबंटित किया जाता था। नायक की अपने अधिकार के प्रशासकीय क्षेत्र में खेती की गतिविधियों के विस्तार करने की ज़िम्मेदारी थी। वह अपने क्षेत्र से कर उगाही करता था और अपनी इस आय से सेना, घोड़े, हाथियों और युद्धों के लिए हथियारों का रख–रखाव करता था जिनकी आपूर्ति उसे अपने राय या विजय नगर के शासक को करनी पड़ती थी। नायक किलों का भी सेनापति होता था। लगान की कुछ राशि, मंदिरों के रखरखाव और सिंचाई के कामों के लिए भी खर्च की जाती थी। अमर–नायक वार्षिक रूप से राजा को नज़राना भेजता था और अपनी वफ़ादारी को प्रमाणित करने के लिए उपहार लेकर राजदरबार में खुद उपस्थित होता था। सत्रहवीं सदी में, इन नायकों में से अनेक नायकों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी और प थक राज्यों की स्थापना की। सामंती नायकर अपने निजी सिपाही, सैनिक बल और हाथी रखते थे। यह एक बहुत ही शक्तिशाली वर्ग था, जिसने विजयनगर के प्राधिकार को चुनौती दी, इसकी आंतरिक संरचनाओं को कमज़ोर किया और तालीकोट की लड़ाई में विजयनगर की पराजय में अपना योगदान दिया।

विजय नगर और बहमनियों में संघर्ष

विजयनगर और बहमनी साम्राज्यों में रायचुर दोआब, जो कि क ष्णा और तुंगभद्रा नदियों के बीच की भूमि थी, पर नियंत्रण पाने के लिए परस्पर लगातार युद्ध होते रहते थे। यह

क्षेत्र बहुत ही उपजाऊ और खनिज संसाधनों से भरपूर था। गोलकुंडा की प्रसिद्ध हीरे की खदानें इसी दोआब क्षेत्र के पूर्वी भाग में स्थित थीं। दोनों साम्राज्यों की भौगोलिक स्थिति इस प्रकार की थी कि इनका विस्तार दक्कन में तुंगभद्रा के पार के क्षेत्र में ही संभव था। ऐसा लगता है कि लड़ाई का कोई परिणाम नहीं निकला और यथास्थिति को ही बनाए रखा गया। कभी बहमनियों का हाथ ऊपर हो जाता, तो कभी विजयनगर वालों की सरपरस्ती। उदाहरण के लिए, 1504 में बहमनियों ने रायचूर दोआब पर जीत हासिल कर ली परन्तु क ष्णदेवराय के सिंहासन पर बैठने के बाद बहमनी रायचूर, मुदकल, नालगोण्डा और कुछ अन्य अंदरूनी शहरों को हार गये। इन युद्धों का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि दोनों शक्तियां आपस में युद्ध करने में इतनी डूबी हुई थीं कि उन्होंने भारत के दक्षिणी समुद्री तट पर पुर्तगालियों की बढ़ती ताकत को महसूस ही नहीं किया। इसके अतिरिक्त, लगातार युद्धों ने दोनों राज्यों के संसाधनों का पूरी तरह दोहन कर दिया और वे दोनों बहुत कमज़ोर हो गये।

युद्ध के अन्य क्षेत्र थे, मराठवाड़ा क्षेत्र और क ष्णा–गोदावरी का डेल्टा क्षेत्र। दोनों क्षेत्रों की ज़मीन बहुत उपजाऊ थी और इनमें बहुत महत्त्वपूर्ण बंदरगाह थे जहां से विदेशों से व्यापार को नियंत्रित किया जाता था। उदाहरण के लिए, मराठवाड़ा क्षेत्र के उपजाऊ क्षेत्र की कोंकण पट्टी जिसमें गोवा बंदरगाह स्थित था, जो व्यापार और निर्यात, खास तौर पर ईरान और इराक से घोड़े आयात करने के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण क्षेत्र था।

आम तौर पर विजयनगर और बहमनी प्रदेशों में होने वाले युद्धों को हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष माना जाता था। ऊपर उल्लिखित कारणों से पता चलता है कि ये लड़ाइयां किसी धार्मिक भेदभाव की वजह से नहीं थी। युद्धों का मुख्य कारण प्रादेशिक जगहों को जीतना और आर्थिक उद्देश्य था। दोनों राज्यों में आपसी दुश्मनी के बावजूद, ऐसे वक्त भी आए जब दोनों ने एक–दूसरे की सहायता भी की। उदाहरण के लिए, क ष्णदेवराय ने सल्तनत में सत्ता के कुछ दावेदारों का समर्थन किया और यवन साम्राज्य के संस्थापक की उपाधि देते हुए गर्व अनुभव किया। इसी प्रकार क ष्णदेवराय की म त्यु के पश्चात् बीजापुर के सुल्तान ने विजयनगर के उत्तराधिकार की लड़ाइयों को सुलझाने में समझौता कराया। परस्पर विचारों के आदान–प्रदान, खास तौर से कला, साहित्य और वास्तुशिल्प के क्षेत्रों में भी दोनों ने भागीदारी दी।

पाठगत प्रश्न 11.5

1. किन्हीं चार विदेशी यात्रियों के नाम लिखें, जिन्होंने विजयनगर साम्राज्य की भव्यता के संबंध में लिखा है?

2. किस राजा के शासनकाल में तिरूपति मंदिर का निर्माण हुआ?

3. अमीर नायक प्रणाली का अस्तित्व कहां पर था?

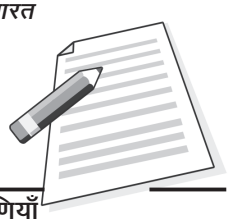

4. विजयनगर और बहमनी साम्राज्यों का किन क्षेत्रों में संघर्ष था?

11.8 अठारहवीं सदी में प्रादेशिक राज्य

आपने पहले अवश्य पढ़ा है कि अठारहवीं सदी में मुगल साम्राज्य पर क्या संकट था और अंत में किस प्रकार मुगल साम्राज्य का पतन हुआ। जैसे ही मुगल साम्राज्य के अधिकारों के कमी आई, प्रांतों के सूबेदार और बड़े जमींदार शक्तिशाली बने और उन्होंने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी।

इस कालावधि के प्रादेशिक राज्यों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता हैः

1. कुछ ऐसे राज्य थे जिनके संस्थापक महत्त्वपूर्ण मुगल कुलीन वर्ग के लोग थे और उन्होंने ऊंचे मनसब हासिल किए। यद्यपि वे सभी स्वतंत्र हो गए थे, परन्तु उन्होंने मुगल प्रदेशों के साथ अपने औपचारिक संबंध कभी भी नहीं तोड़े। इस वर्ग के कुछ प्रमुख राज्य हैं, अवध, बंगाल और हैदराबाद। अवध राज्य का संस्थापक था, सआदत ख़ान। बंगाल का संस्थापक था, मुशीद कुली ख़ान, और हैदराबाद का संस्थापक था, निज़ाम–उल–मुल्क आसफ जाह। तीनों ही मुगल अभिजात्य वर्ग के शक्तिशाली सदस्य थे और इन प्रांतों के सूबेदार थे। जैसे ही मुगल साम्राज्य शक्तिहीन हुआ, दिल्ली से बहुत बड़ी संख्या में सिपाहियों और सैनिकों ने इन नए राज्यों में अनेक भावी संभावनाओं को देखते हुए प्रवास किया।

   इन प्रदेशों के पुराने ज़मींदारों की स्थिति में बदलाव आ गया। उदाहरण के लिए सआदत ख़ान ने राजपूतों की अनेक ज़मींदारियां और रोहिलखंड के अफ़गानियों से उपजाऊ क षि भूमि छीन ली। इसी प्रकार बंगाल में मुगलों के प्रभाव को कम करने के लिए मुशीद कुली ख़ान ने सभी मुगल जागीरदारों को उड़ीसा में स्थानांतरित कर दिया और बंगाल में लगान के मुख्य स्रोतों का दोबारा से आकलन करने का हुक्म जारी कर दिया। सभी ज़मींदारों से बड़ी सख्ती से लगान इकट्ठा किया गया। इसके परिणामस्वरूप अनेक ज़मी़दारों को साहूकारों और ऋणदाताओं से कर्ज़ लेना पड़ा। जो लगान का भुगतान करने में असमर्थ थे, उन्हें अपनी ज़मीने बड़े ज़मींदारों को बेचनी पड़ीं।

   इन राज्यों में एक और परिवर्तन आया कि साहूकारों और ऋणदाताओं या महाजनों की संख्या में व द्धि हुई। राज्य और किसान ऋण के लिए इन पर निर्भर थे। इसके बदले में ये धनी लोग बहुत शक्तिशाली बन गए और इन्होंने प्रशासन को भी प्रभावित किया। राज्य ने कर संग्रह करने का अधिकार उन लोगों के पक्ष में नीलाम कर दिया, जिन्होंने सबसे ऊंची बोली लगाई और वे लोग प्रायः साहूकार और महाजन थे। इसके बदले में साहूकारों ने राज्यों को एक निर्धारित राशि देने का वचन दिया। इस प्रकार राज्य को एक निश्चित आय होने का आश्वासन मिला। इस प्रणाली को 'इजरदारी व्यवस्था' कहा जाता था और जिन लोगों ने कर संग्रह करने का अधिकार खरीदा, उन्हें 'इजरदार' कहते थे। मुगल साम्राज्य ने इस व्यवस्था को हमेशा से ही निरूत्साहित किया। हमेशा ऐसी संभावना बनी रहती थी कि जो लोग कर वसूल करते थे, वे निर्धारित कर से कहीं ज्यादा कर संग्रह करते और किसानों को पीड़ित

करते और राज्य को कम कर देते, जिससे राज्य को आम लगान में भारी नुकसान उठाना पड़ता।

2. अठारहवीं सदी में प्रादेशिक राज्यों का दूसरा वर्ग उन राज्यों का था, जो मुगल शासन के दौरान वतन जागीरों के रूप में पहले ही स्वतंत्र राज्य होने की स्थिति में थे। राजपूत राज्य इस वर्ग में आते थे।

3. प्रादेशिक राज्यों का तीसरा वर्ग वह था, जो मुगल साम्राज्य के विरूद्ध बगावत करने के बाद अस्तित्व में आया। सिख, मराठा और जाट इस वर्ग से संबद्ध थे। उदाहरण के लिए, मुगलों के विरूद्ध सिखों के विद्रोह के परिणामस्वरूप पंजाब में राज्यों की स्थापना हुई।

पाठगत प्रश्न 11.6

1. अठारहवीं सदी में प्रादेशिक राज्यों को किन वर्गों में बांटा गया है?

आपने क्या सीखा

तेरहवीं से अठारहवीं सदी के दौरान प्रादेशिक राज्यों का उद्भव, दिल्ली सल्तनत की कमजोरी और मुगल साम्राज्य के पतन के बाद हुआ। इन प्रादेशिक शक्तियों की प्रक ति की समझ आपको दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य को स्पष्ट प ष्ठभूमि में देखने के लिए सही द ष्टिकोण प्रदान करेगी। यदि इस कालावधि के प्रादेशिक राज्यों को छठी से बारहवीं सदी से चले आ रहे प्रादेशिक राज्यों के साथ जोड़कर भी देखा जाएगा तो अधिक उपयोगी होगा। प्रादेशिक राज्यों को समझने के लिए पहले प्रादेशिकता की संकल्पना को समझना होगा, जैसे समय के साथ धीरे–धीरे विकसित होने वाली राजनीतिक विशेषताएं, भाषा, धार्मिक सरोकार, कला और संस्क ति, जिनके संबंध में इस पाठ में विचार किया गया है। ऐसे अनेक प्रदेश हैं, परन्तु यहां हमने केवल कुछ ही प्रदेशों के संबंध में विशेष अध्ययन किया है, जैसे–जौनपुर, कश्मीर, गुजरात, बंगाल, विजयनगर और बहमनी राज्यों पर विचार–विमर्श किया गया। याद रहे कि यद्यपि ये राज्य आपस में लड़ते रहे, लेकिन इन्होंने कला, वास्तुशिल्प और धर्म संबंधी क्षेत्रों में विचारों का परस्पर आदान–प्रदान भी किया। केंद्रीय अधिकारों और इनके आपसी संबंधों में, समय–समय पर बदलाव आते रहे।

पाठांत प्रश्न

1. भारत में 13वीं से 18वीं सदी के बीच प्रादेशिक राज्यों के विकास का उल्लेख करें।
2. प्रादेशिक राज्य केंद्रीय साम्राज्य से किस प्रकार भिन्न थे?

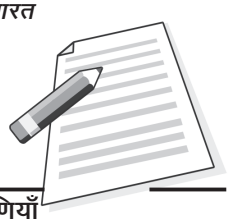

3. बंगाल इतनी आसानी से अपना स्वतंत्र अधिकार जताने में कैसे सफल हुआ?
4. महमूद बेगढ़ में क्या विशिष्टता थी और उसे गुजरात का महत्त्वपूर्ण शासक क्यों माना जाता है?
5. प्रशासन की 'अमर–नायक' पद्धति का विवरण दीजिए।
6. पड़ोसी होने के बावजूद विजयनगर और बहमनियों में परस्पर शांति नहीं थी, ऐसा क्यों था, चर्चा कीजिए?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

11.1

1. भाषा, धार्मिक सरोकार, व्यापार और वाणिज्य के ज़रिये परस्पर अंतःक्रिया, प्रादेशिक कला शैलियां।
2. बिहार, बंगाल, असम, मध्य भारत और राजस्थान।
3. नामदेव, रैदास, तुकाराम, गुरूनानक

11.2

1. 1338 में फ़िरोज शाह तुगलक की म त्यु के पश्चात्
2. बिहार और पंजाब

11.3

1. पश्चिम में अलीगढ़, पूर्व में दरभंगा, उत्तर में नेपाल और दक्षिण में बुंदेलखंड
2. ज़ैमिल आबिदीन
3. हाजी इलियास ख़ान
4. अहमदाबाद

11.4

1. मोहम्मद बिन तुगलक, दक्कन
2. दक्कन में एक व्यापारी के रूप में पहुंचा और उसे 'मालिक–उत–तुज्जर' की उपाधि दी गई और बाद में वजीर बनाया गया।

11.5

1. निकोलो कोन्टी, फरनाओ न्यूनिज़, डोमिंगो पेस, डुआरटो बरबोसा और अब्दुर रज्ज़ाक।
2. क ष्णदेवराय

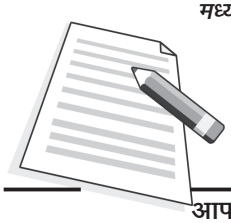

आपकी टिप्पणियाँ

3. विजय नगर का प्रशासन
4. रायचूर दोआब; मराठवाड़ा क्षेत्र और क ष्णा–गोदावरी के डेल्टा क्षेत्र पर नियंत्रण

11.6

1. मुगल कुलीनों द्वारा स्थापित, वतन जागीरें, मुगल अधिकारियों से बगावत

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें अनुच्छेद 11.2
2. देखें अनुच्छेद 11.1 के अंतिम दो
3. देखें अनुच्छेद 11.5
4. देखें अनुच्छेद 11.6
5. देखें अनुच्छेद 11.8
6. देखें अनुच्छेद 11.8

शब्दावली

सिलसिला	-	सूफियों के प थक संघ।
ज़मींदार	-	निजी भूमि के स्वामी, जिस पर उनका वंशगत अधिकार हो।
सुल्तानु-शरक	-	पूर्व के मालिक।
जजिया	-	भूमि–कर के अतिरिक्त एक प्रकार का कर, जो उन गैर–मुस्लिमों पर लगाया जाता था, जो सैनिक सेवा में नहीं थे।
खलीसा	-	वह भूमि, जिस पर सीधे राजा का नियंत्रण होता था और उसे जमींदार या किसी अधिकारी के नियंत्रण में नहीं दिया जाता था।
तरफदार	-	किसी प्रांत का प्रमुख।
जागीर	-	भूमि का टुकड़ा, जो राज्य द्वारा किसी सरकारी अधिकारी को प्रदान किया जाता था।
अमीर	-	सेनापति, दिल्ली सल्तनत में अधिकारी वर्ग की श्रेणी में तीसरा उच्चतम पद।

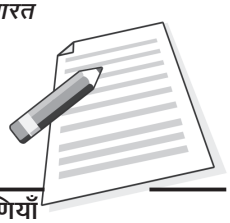

12

प्रशासनिक प्रणाली और संस्थाएं

भारत में दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ ही एक नए शासक वर्ग का उदय हुआ। इस नए शासक वर्ग ने नई प्रशासनिक प्रणाली प्रारंभ की। कुछ नई संस्थाओं की स्थापना हुई। मुगलों के आगमन के बाद इन प्रणालियों में कुछ परिवर्तन हुए और कुछ नई प्रणालियां प्रारंभ की गई। कुछ प्रशासनिक संस्थाओं की जड़ें अरब और मध्य एशिया तक फैली थीं, जहाँ से यह नया शासक वर्ग आया था। जबकि अन्यों की उत्पत्ति भारत में ही हुई थी। भारत के परिवेश में इनका विकसित होना इनकी मुख्य विशेषता थी।

नई प्रशासनिक प्रणाली और संरचनाओं ने सल्तनत तथा मुगल साम्राज्य को सुद ढ़ बनाने में योगदान दिया। इस पाठ में 500 वर्षों से अधिक की अवधि के प्रशासन के सभी पहलुओं की चर्चा करना असंभव होगा। तथापि हम प्रशासनिक ढाँचे और कुछ महत्त्वपूर्ण संस्थाओं की मूल विशेषताओं, और परिवर्तनों का उल्लेख करने का प्रयास करेंगे।

इस काल के दौरान शासक वर्ग बदलता रहा। विभिन्न शासकों ने इन संस्थाओं का प्रयोग अन्य प्रयोजनों के लिए भी किया। शासकों ने समाज में सामंजस्य बनाए रखने के लिए समय–समय पर समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों को इन प्रशासनिक तंत्रों में सम्मिलित किया। शासन प्रणाली में समाज के इन वर्गों का दावा करना स्वाभाविक था और विभिन्न शासक भी इनको शीघ्र ही इस प्रणाली में सम्मिलित कर लेते थे। इस अर्थ में ये संस्थाएँ समाज में व्याप्त किसी भी सामाजिक संघर्ष के साधन के रूप में भी उभरीं। यद्यपि इस उद्देश्य के लिए शासकों द्वारा अन्य विभिन्न उपाय भी उपयोग में लाए गए थे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- सल्तनत और मुगल शासक वर्ग के स्वरूप और संरचना के बारे में बता सकेंगे;
- दिल्ली सल्तनत के प्रशासनिक ढांचे को समझा सकेंगे;
- सल्तनत काल के मुख्य प्रशासनिक विभागों का उल्लेख कर सकेंगे;
- सुल्तानों के अधीन प्रांतीय और स्थानीय प्रशासन का उल्लेख कर सकेंगे;

- इक्ता प्रणाली की मुख्य विशेषताओं की चर्चा कर सकेंगे;
- अलाउद्दीन खिलजी की बाजार नियंत्रण नीति का विश्लेषण कर सकेंगे;
- मुगलों के केंद्रीय और प्रांतीय प्रशासन के बारे में जान सकेंगे;
- जागीर प्रणाली की मुख्य विशेषताओं पर विचार कर सकेंगे;
- मनसबदारी प्रणाली के विकास की रूप–रेखा प्रस्तुत कर सकेंगे; और
- मराठों के अधीन प्रशासनिक ढाँचे को समझ सकेंगे।

12.1 दिल्ली सल्तनत के अंतर्गत प्रशासनिक ढांचे का विकास

जब कुतुबुद्दीन ऐबक ने स्वयं को लाहौर में स्वतंत्र सुल्तान के रूप में स्थापित किया तो उस समय मौजूद प्रशासनिक तंत्र प्रारंभिक अवस्था से गुजर रहा था। जब तक स्थानीय शासकों ने दिल्ली के सुल्तान की सर्वोच्चता को स्वीकार किया, तब तक मौजूदा ढांचे में न तो कोई परिवर्तन किया गया न ही उसे छेड़ा गया, उन्हें सिर्फ कर वसूल कर उसे खिराज के रूप में केंद्रीय खजाने में भेजने की अनुमति थी। इन क्षेत्रों में केंद्रीय कर्मचारियों का मुख्य कार्य स्थानीय शासकों का उनके प्रशासनिक कार्यों में सहायता देना था। दिल्ली सल्तनत के विस्तार और सुद ढ़ीकरण से नई प्रशासनिक संस्थाओं का भी उदय होने लगा। प्रशासनिक ढांचों और नए शासकों द्वारा भारत में प्रतिपादित संस्थाओं पर मंगोलों, सेल्जुकिड्स आदि का प्रभाव पड़ा। देश के विभिन्न भागों में मौजूद संस्थाओं ने भी नई प्रणाली का निर्माण करने में भी योगदान दिया।

सुल्तानों को इस बात की जानकारी थी कि उन्हें जिस प्रजा पर शासन करना था, उसमें गैर इस्लामिक लोगों की संख्या अधिक थी। इसलिए दिल्ली के सुल्तानों को सल्तनत की मौजूदा परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के लिए खास उपाय करने पड़ते थे। प्रशासनिक द ष्टि से ऐसा महसूस होता है कि स्थानीय प्रशासन मुख्यतः गांव के प्रधानों आदि के हाथों में आ गया था। सल्तनत की सीमा को बढ़ाने के लिए केंद्र और प्रांतों के लिए प्रशासनिक ढांचे का अलग से विकास करना आवश्यक था। इस प्रकार सल्तनत काल के दौरान केंद्रीय, प्रांतीय और स्थानीय स्तरों पर प्रशासनिक संस्थाओं का विकास हुआ।

आइए, अब हम प्रशासनिक प्रणाली के विभिन्न घटकों को विस्तार से समझें।

12.2 प्रशासनिक प्रणाली

सल्तनत काल के दौरान प्रशासनिक तंत्रों का प्रमुख सुल्तान होता था। उच्च अधिकारी राज–काज में सुल्तान की सहायता करते थे। सुल्तान के कार्यालय के साथ अन्य कार्यालय भी थे। सैद्धांतिक रूप से सुल्तान की सहायता करने के लिए मंत्रिपरिषद मजलिस–ए–खलवात थी।

1. सुल्तान

सुल्तान प्रशासनिक व्यवस्था में केन्द्रीय स्थान पर होता था। वह नागरिक प्रशासन का प्रमुख और सेना का सर्वोच्च कमांडर था। सुल्तान सभी दरबारियों की नियुक्तियां करता और उनकी तरक्की करता था तथा वह किसी को भी अपने दरबार से निकाल सकता था। वह सर्वशक्तिमान था। इसलिए सभी शक्तियां उसके हाथों में थीं तथा वह न्यायिक

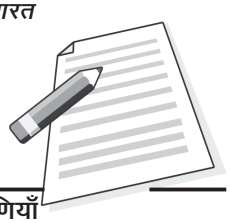

शक्ति का भी सर्वोच्च स्वामी था। सुल्तान लोगों को उपाधियां और सम्मान प्रदान करता था। सिद्धान्ततः सुल्तान का पद उच्च होता था, परन्तु व्यावहारिक रूप में उसकी शक्तियां घटती–बढ़ती रहती थीं। सुल्तान पर हमेशा अभिजात वर्ग और उलेमाओं का दबाव बना रहता था। दिल्ली के शक्तिशाली सुल्तानों ने इन वर्गों पर नियंत्रण रखने के लिए अलग–अलग रणनीतियां अपनाईं। बलबन ने अभिजात वर्ग को कड़े नियंत्रण में रखा। इस प्रकार सल्तनत के प्रशासनिक ढांचे में सुल्तान महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता था। योग्य और शक्तिशाली सुल्तानों के नेत त्व में प्रशासन और प्रशासनिक ढांचा बेहतर ढंग से कार्य करता था, लेकिन अयोग्य और कमजोर शासक अभिजात वर्गों के दबाव में कार्य करते थे।

2. अभिजात वर्ग

अभिजात वर्ग राज्य के सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकारी थे तथा समाज में इनको उच्च स्थान प्राप्त था। प्रारंभ में ये सेना के ऐसे कमांडर थे, जिन्होंने युद्ध में विजय हासिल की थी। कुछ वर्षों से उनके उत्तराधिकारियों ने मुख्य शक्ति हासिल कर ली थी तथा कुछ भारतीय समूह भी इनमें विकसित हुए। अभिजात वर्ग की स्थिति और शक्तियों में समय–समय पर उतार–चढ़ाव होता रहा, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। वे अभिजात वर्ग जो मूलतः दिल्ली में स्थापित थे, अत्यधिक शक्तिशाली समूह के रूप में उभरे तथा वे समय–समय पर सुल्तान का चयन करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे।

अभिजात वर्ग में समरूप श्रेणी नहीं थी। इसमें कई समूह सम्मिलित थे और उनमें अकसर लड़ाइयों के कारण आपस में दुश्मनी बनी रहती थी। इल्तुतमिश के समय में तुर्की और ताजिक कुलीनों के बीच लड़ाई प्रारंभ हुई और इसकी म त्यु के पश्चात् इन लड़ाइयों ने और अधिक जोर पकड़ लिया। चहलगान समूह (40 अभिजातों का समूह) शक्तिशाली समूह के रूप में उभरा था, जिसे इल्तुतमिश ने बनाया था।

बलबन पहला सुल्तान था, जिसने अभिजात वर्ग पर कड़ाई से नियंत्रण रखा। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि स्वयं बलबन भी चहलगान का ही एक हिस्सा था। कुतुबुद्दीन ऐबक तथा इल्तुतमिश अभिजात वर्ग को अपने बराबर का समझते थे। बलबन ने अभिजात वर्ग से दूरी बनाए रखी तथा स्वयं के लिए अभिजात वर्ग के लिए कड़ी आचरण संहिता लागू की थी। दरबार में कोई दुर्व्यवहार नहीं कर सकता था और न हीं हँस सकता था। उसने उत्क ष्टता पर बल दिया था और उच्च पद और उच्च कार्यालयों को प्राप्त करने वालों के लिए मानदंड निर्धारित कर दिया था।

दिल्ली सल्तनत का विस्तार होते ही समाज के विभिन्न समुदायों ने अभिजात वर्ग में सम्मिलित होने के प्रयास किए थे। प्रारंभ में इस वर्ग में तुर्कों को सम्मिलित किया गया। खिलजी और तुगलकों के शासन काल के दौरान विभिन्न प ष्ठभूमि के लोगों के लिए अभिजात वर्ग के दरवाजे खुले थे। विशेषतः मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में हिन्दू और मुस्लिम दोनों के निम्न जाति के लोग अभिजात वर्ग में शामिल हो गए और उन्होंने बड़े–बड़े पद हासिल किए। लोधी काल में समानता की अफगान अवधारणा उस समय महत्त्वपूर्ण हो गई, जब सुलतान को 'समान शक्तिवालों में प्रमुख' माना गया। इस प्रकार अभिजात वर्ग सुल्तान के बराबर की हैसियत रखते थे। कुछेक लोदी सुलतानों, जैसे– शिक्दार लोदी और इब्राहिम लोदी को यह पसंद नहीं था। उन्होंने अभिजात वर्ग को अपने

नियंत्रण में रखने की कोशिश की। अभिजात वर्ग ने इसका विरोध किया। जिसके परिणामस्वरूप दोनों सुल्तान परेशानी में पड़ गए।

3. उलेमा

मुसलमानों के धार्मिक बुद्धिजीवियों के समूह को उलेमा कहते थे। इस समूह के लोगों का कार्य धार्मिक मामलों की व्यवस्था करना और सुल्तान के लिए धार्मिक नियमों की व्याख्या करना था। वे न्यायिक मामलों के प्रभारी भी होते थे। यह अत्यधिक प्रभावी समूह था और सुल्तान और अभिजात वर्ग की प्रशंसा करता था। उनका मुस्लिम जनता में भी प्रभाव था। यह समूह इस्लाम के धार्मिक नियमों के अनुसार सल्तनत को चलाने के लिए सुल्तान पर दबाव डालता था। सुल्तान और अभिजात वर्ग अकसर प्रशासनिक कार्य धार्मिक नियमों की बजाय राज्य की आवश्यकताओं के अनुसार करने की कोशिश करते थे। अलाउद्दीन खिलजी जैसे प्रभावशाली सुलतान ही उलेमाओं की सलाह के कई मुद्दों पर अनदेखी कर सकते थे, लेकिन कुछ सुल्तान उनकी सलाह को मानते थे।

पाठगत प्रश्न 12.1

1. चहलगान क्या था और इसको किसने स्थापित किया?

   _____

2. वह प्रथम सुलतान कौन था, जिसने अभिजात वर्ग पर पहली बार सख्ती से नियंत्रण रखने की कोशिश की थी?

   _____

3. प्रभुत्व सम्पन्नता की अफगान अवधारणा के अनुसार सुल्तान तथा अभिजात वर्ग का क्या स्थान था?

   _____

4. उलेमा कौन थे?

   _____

12.3 केंद्रीय प्रशासन

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि प्रशासनिक प्रणाली का प्रधान सुल्तान होता था। अनेक विभाग थे, जिन्हें अलग–अलग दायित्व सौंपे गए थे। इन विभागों का प्रबंध प्रभावशाली अभिजात वर्गों द्वारा किया जाता था। हम कुछ विभागों का लेखा–जोखा संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करेंगे।

1. वज़ारत

सुल्तान के बाद, सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यालय दीवान–ए–वज़ारत था। जिसका प्रधान वजीर होता था। शाही दरबार में यह मुख्य पद होता था और इसकी भूमिका सभी विभागों के लिए प्रधान पर्यवेक्षक की होती थी, लेकिन यह चार महत्त्वपूर्ण भागों का प्रधान था। यह

सुल्तान का मुख्य सलाहकार था। वजीर का मुख्य कार्य राज्य के वित्तीय संगठन की देख–रेख करना, सुल्तान को सलाह देना और कभी–कभी सुल्तान के आदेश पर सैन्य अभियानों का नेत त्व करना था। सेना को किया जाने वाला भुगतान इसी की देख–रेख में होता था। वज़ारत या वज़ीर का कार्यालय भूमि के राजस्व वसूली पर निगरानी रखता था, राज्य के सभी आय और व्यय का लेखा–जोखा रखता था तथा इस प्रकार सभी शाही नौकरों की तनख्वाह पर नियंत्रण रखता था अथवा उनका लेखा–जोखा रखता था, तथा धर्मार्थ चंदों जैसे वक्फों और इनामों आदि पर नियंत्रण रखता था। इसके अतिरिक्त वज़ारत द्वारा टकसालों, खुफिया विभागों, शाही इमारतों और शाही दरबार से संबंधित निकायों का देख–रेख किया जाता था। वजीर की सुल्तान तक सीधी पहुंच थी और यह उसकी बुद्धिमत्ता, ईमानदारी और वफादारी का परिणाम था कि सुल्तान वजीर पर अत्यधिक निर्भर रहने लगता था।

वज़ारत के अंतर्गत कार्य करने वाले अन्य अनेक विभाग थे। उन्हें विशिष्ट कार्य सौंपे गए थे। इनमें मुस्तौफी–ए–मुमालिक (महालेखा परीक्षक), मुशरिफ–ए–मुमालिक (प्रधान लेखाकार), मजूमदार (खजाने से ऋणों और शेषों का लेखा–जोखा रखने वाला) सम्मिलित थे। कुछ समय बाद दीवान–ए–वकूफ (व्यय का हिसाब रखना), दीवान–ए–मुस्त खाराज (राजस्व भुगतानों में शेष रह गई राशि की जांच करना), दीवान–ए–अमीर कोही (राज्य की सहायता से खेती न की जा सकने वाली भूमि को खेती करने योग्य बनाना) जैसे कुछ अन्य कार्यालयों को वज़ारत की देख–रेख में लाया गया था।

2. दीवान-ए-अर्ज

साम्राज्य के सैनिक संगठन की देखरेख करने के लिए इस विभाग की स्थापना की गई थी। इसका प्रधान अरिज–ए–मुमालिक होता था। यह सैन्य कार्यों की व्यवस्था के लिए उत्तरदायी था। यह शाही सेना की देख–रेख करता था, सैनिकों की भर्ती करता था, सेना में अनुशासन बनाए रखता था और उनके उपयुक्त रहने की क्षमता का ध्यान रखता था। इक्ताधारियों द्वारा रखी जा रही सेना का निरीक्षण करता था, घोड़ों की जांच करता और उनकी पीठ पर शाही निशान लगाता था। युद्ध के दौरान आरिज सेना को खाद्य सामग्री और परिवहन व्यवस्था तथा युद्ध में सेना की व्यवस्था करता था और आपूर्ति जारी रखता था तथा लूट के माल को अपनी निगरानी में रखता था। अलाउद्दीन खिलजी ने दाग (दाग लगाना) और हुलिया (चित्रण) प्रणाली तथा सेना पद अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए सैनिकों को नगद भुगतान करना प्रारंभ किया था। दिल्ली में रहने वाला सैन्य दल '*हशम–ए–काल्ब*' कहलाता था। प्रांतों में रहने वाले सैन्य दल को '*हशम–ए–एतराफ*' कहते थे।

3. दीवान-ए-ईंशा

यह विभाग राज्य के पत्राचार की देखरेख करता था। इसका प्रधान दाबिर–ए–खास होता था। यह शाही फरमानों के मजमून तैयार करता और उन्हें भेजता था तथा विभिन्न अधिकारियों से रिपोर्ट प्राप्त करता था। दाबिर साम्राज्य के केंद्र और अन्य प्रदेश के बीच सरकारी पत्र व्यवहार करने का एक माध्यम था। यह एक किस्म से सुल्तान का निजी सचिव था और फरमान लिखता था।

बारीद–ए–मुमालिक राज्य के समाचार एकत्रित करने वाला और गुप्तचर कार्यों का प्रधान था। उसे सल्तनत में घटने वाली घटनाओं की जानकारी रखनी पड़ती थी। स्थानीय स्तर पर बारिद होते थे, जो राज्य के केंद्रीय कार्यालय से संबंधित नियमित

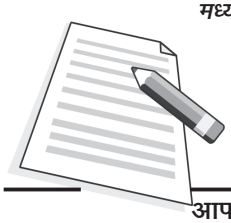

आपकी टिप्पणियाँ

समाचार भेजते थे। बारिद के अतिरिक्त मुनिहियान के नाम से जाने वाले रिपोर्टरों का एक अन्य समूह मौजूद था।

4. दीवान-ए-रिसालत

यह विभाग न्याय की व्यवस्था करता था। इसका प्रधान *'सद्र–उस–सद्र'* होता था, जो *'काजी–ए–मुमालिक'* भी था। यह सर्वोच्च धार्मिक अधिकारी था और वह पुरोहितों का कार्य भी देखता था। वह काजियों (जजों) की भी नियुक्ति करता था और विभिन्न धर्मार्थ अनुदानों, जैसे वक्फ, वजीफा, इदरार आदि को अनुमोदन प्रदान करता था।

दीवानी और फौजदारी दोनों मामलों में अपील की सर्वोच्च अदालत सुल्तान था। इससे अगला *'काजी–ए–मुमालिक'* था *'मुहतासिब्स'* (सार्वजनिक सेंसर) न्यायिक विभाग को सहायता प्रदान करते थे। इनका मुख्य कार्य यह देखना था कि कोई इस्लाम के सिद्धांतों का उल्लंघन तो नहीं कर रहा। वह नैतिक सिद्धांतों और आचरण की देख–रेख करता था और उसे लागू करता था।

5. अन्य विभाग

इसके अतिरिक्त केंद्र में अनेक छोटे–छोटे ऐसे विभाग थे, जो साम्राज्य के रोजमर्रा के प्रशासनिक कार्यों में सहायता देते थे। *'वकील–ए–दार'* शाही परिवार की देख–रेख करता और सुल्तान के निजी कार्य करता था। *'अमीर–ए–हाजिब'* शाही समारोह का काम देखता था। यह सुल्तान और सहायक कर्मचारियों तथा सुल्तान और जनता के बीच मध्यस्थ के रूप में कार्य करता। *'सर–ए–जानदार'* शाही अंगरक्षकों की देखरेख करता था। *'अमीर–ए–अखुर'* अस्तबल का रख–रखाव करता और *'शाहनाह–ए–फिल'* हाथियों की देखरेख करता था। *'अमीर–ए–मजलिस'* बैठकों और विशेष समारोह के आयोजनों की व्यवस्था करता था। सल्तनत की प्रशानिक प्रणाली में कारखाने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। शाही परिवार की आवश्यकताएँ कारखानों से पूरी की जाती थीं। ये कारखाने दो किस्म के होते थे; 1. उत्पादन करने वाले और 2. भंडार घर। फिरोज तुगलक के शासन काल में लगभग 36 कारखाने थे। प्रत्येक कारखाने की देख–रेख मलिक अथवा खान की श्रेणी के अभिजात वर्ग द्वारा की जाती थी। *'मुतासारिफ'* को लेखा–जोखा रखने की जिम्मेदारी सौंपी गई और वह विभिन्न विभागों के प्रत्यक्ष पर्यवेक्षक के रूप में कार्य करता था।



पाठगत प्रश्न 12.2

1. वज़ारत के अंतर्गत कार्य करने वाले दो विभागों का उल्लेख कीजिए?

2. अलाउद्दीन खिलजी ने सेना में कौन–कौन सी कार्य प्रणाली प्रारंभ की थी?

3. कौन–सा विभाग न्याय प्रशासन का कार्य करता था? इसका प्रमुख कौन था?

केन्द्रीय राजनीतिक क्षेत्र से बाहर के क्षेत्र में प्रशासन को अनेक प्रकार से चलाया जाता था। यह उस क्षेत्र पर राजनीति नियंत्रण के स्तर पर निर्भर करता था। सल्तनत की सीमा को बढ़ाने और उसे सुद ढ़ करने की प्रक्रिया 13वीं और 14वीं शती तक जारी रही थी। लड़ाई में जीते गए कुछ नए क्षेत्र सीधे सल्तनत के नियंत्रण में आ जाते थे, जबकि अन्य क्षेत्रों पर आंशिक नियंत्रण था। इस प्रकार इन क्षेत्रों पर नियंत्रण रखने के लिए सुल्तान ने अलग–अलग कार्य प्रणालियां अपनाईं। सल्तनत से स्वतंत्र रूप से सम्बद्ध क्षेत्रों के प्रतीक के रूप में केंद्र द्वारा कुछ अधिकारी नियुक्त किए जाते थे। परन्तु रोजमर्रा का प्रशासन स्थानीय हाथों में था। इन क्षेत्रों में केंद्र की रुचि ज्यादातर आर्थिक मामलों में अर्थात राजस्व एकत्रित करने में थी।

इन प्रांतों की देखरेख करने की जिम्मेदारी गवर्नरों (सूबेदार) पर थी और गवर्नर इस क्षेत्र के संपूर्ण प्रशासन के लिए जिम्मेदार थे। उनकी जिम्मेदारी में एकत्रित राजस्व को सुनिश्चित करना, कानून और व्यवस्था बनाए रखना और विद्रोहियों को नियंत्रण में रखना सम्मिलित था। वह अपने क्षेत्र में सुल्तान का प्रतिनिधि था। चूंकि अधिकारियों का अकसर हस्तांतरण होता रहता था और वे उन क्षेत्रों से परिचित नहीं थे, इसीलिए प्रायः उन्हें अपने कार्यों को करने के लिए स्थानीय अधिकारियों पर निर्भर रहना पड़ता था। स्थानीय अधिकारियों की सहायता के बिना राजस्व वसूल करना संभव नहीं था। इसीलिए गवर्नर और स्थानीय शक्तियाँ आपसी सहयोग से कार्य करते थे। कभी–कभी यह संगठन सुल्तान के लिए परेशानियां पैदा कर देता था। क्योंकि गवर्नर स्थानीय शासकों की सहायता से शक्तिशाली बन जाते थे और सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह कर देते थे। 14वीं सदी के दौरान प्रशासनिक सुविधा के लिए इन प्रांतों को *'शिक्स'* में विभाजित कर दिया था। इन *'शिक्स'* का प्रशासन *'शिक्दार'* द्वारा चलाया जाता था। तदुपरान्त अफगान काल के दौरान ये शिक्स सरकार में परिवर्तित हो गए। प्रांतीय स्तर पर शिक्दार के साथ–साथ फौजदार एक अन्य अधिकारी भी होता था। इनके कार्यों को स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं किया गया था और इन दोनों के कार्य मिले–जुले थे। शिक्दार कानून और व्यवस्था बनाए रखने में सुल्तान की सहायता करते थे और उसे सैन्य सहायता भी उपलब्ध कराते थे। वह छोटी–छोटी प्रशासनिक इकाइयों के कार्यों की भी निगरानी करता था। फौजदार और शिक्दार के कार्य समान थे। कोतवाल फौजदार के अधीन होते थे। प्रांतीय स्तर पर अन्य महत्त्वपूर्ण अधिकारी बारिद (खुफिया अधिकारी तथा रिपोर्टर) तथा साहिब–ए–दीवान (यह प्रांतीय आय और व्यय का वित्तीय लेखा–जोखा रखता था) थे।

12.5 इक्ता प्रणाली

इक्ता प्रणाली प्रारंभिक इस्लामिक देशों में लागू की गई थी। यह राज्य की सेवाओं के लिए पारिश्रमिक के रूप में दिया जाता था। खलीफ़ा के प्रशासन में यह नागरिक और सैन्य अधिकारियों को दिया जाता था। सल्तनत की स्थापना के बाद सुल्तानों द्वारा इक्ता प्रणाली प्रारंभ की गई थी। प्रारंभ में सैन्य कमांडरों तथा अभिजात वर्गों को प्रशासन चलाने तथा राजस्व की उगाही करने के लिए नए क्षेत्र सौंप दिए जाते थे। इस प्रकार सौंपे गए इन क्षेत्रों को इक्ता कहते थे और जिन्हें ये इक्ता सौंपे जाते थे, वे *'इक्तादार'* अथवा *'मुक्ती'* कहलाते थे।

संक्षेप में, यह अधिकारियों को भुगतान करने की एक प्रणाली थी जिससे वे सेना की देख–रेख करते थे। धीरे–धीरे सम्पूर्ण प्रणाली को संगठित करने के लिए नियम और

विनियम निर्धारित किए गए। वर्षों से यह सल्तनत का प्रशासन चलाने का मुख्य साधन बन गए। इसके अतिरिक्त इस प्रणाली के माध्यम से विशाल क्षेत्रों के विभिन्न भागों से सुल्तानों को अधिक उत्पादन का बड़ा भाग मिलने लगा।

14वीं शती से हम *'वालिस'* या *'मुक्तीस'* के बारे में सुनते आ रहे हैं। ये सेना और प्रशासनिक क्षेत्रों के कमांडर होते थे। इन्हें इक्ता कहते थे। इनकी यथार्थ शक्तियों में परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होता रहता था। समय के अनुसार *'मुक्ती'* को इक्ता के प्रशासन का पूरा दायित्व सौंप दिया जाता था जिसमें सेना की देखरेख का कार्य सम्मिलित होता था। आवश्यकता पड़ने पर *'मुक्ती'* को अपनी सेना सहित सुल्तान की सहायता करनी पड़ती थी। उससे आशा की जाती थी कि वह वसूल किए गए राजस्व से सेना की देखरेख करे और अपना खर्च स्वयं करें।

बलबन के शासनकाल से ही *'मुक़्ती'* से यह आशा की जाती थी कि वह अपने और सेना के खर्चों को पूरा करने के बाद शेष आय *(फवाज़िल)* केन्द्र को भेजे। इसका अर्थ है कि केन्द्रीय राजस्व विभाग इक्ता की संभावित आय, सेना के रखरखाव पर आने वाली लागत तथा मुक़्ती के अपने खर्चों का मूल्यांकन किया करता था। अलाऊद्दीन खिलजी के शासनकाल के दौरान इस प्रक्रिया के संबंध में और सख्ती बढ़ती गई। जैसे–जैसे केन्द्रीय नियंत्रण बढ़ता गया, *'मुक़्ती'* के प्रशासन पर भी नियंत्रण बढ़ता गया। *'ख्वाजा'* (संभवतः यह *'साहिब–ए–दीवान'* के बराबर था) को इक्ताओं की आय का लेखा–जोखा रखने के लिए नियुक्त किया गया था। बारिद या गुप्तचर अधिकारी की भी नियुक्ति की जाती थी ताकि वह सुल्तान को सूचना देता रहे। मुहम्मद–बिन–तुगलक के शासनकाल के दौरान राजस्व में भागीदारी शर्तों पर अनेक सूबेदारों की नियुक्ति की गई थी। इन्हें राज्य को निश्चित राशि देनी होती थी। फिरोजशाह के शासनकाल के दौरान इक्ताओं पर राज्य का नियंत्रण समाप्त हो गया था और ये इक्ता वंशानुगत हो गए थे।

12.6 स्थानीय प्रशासन

गाँव प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। गाँव की कार्यशैली और प्रशासन कमोबेश वैसा ही था जैसा तुर्की काल के पहले मौजूद था। गाँव के मुख्य अधिकारियों में खुत, मुकद्दम और पटवारी थे। वे राजस्व की उगाही करने और कानून और व्यवस्था बनाए रखने में मुक्ती के साथ समन्वय से कार्य करते थे। एक परगना में अनेक गाँव होते थे। परगना के महत्त्वपूर्ण अधिकारियों में चौधरी, आमिल (राजस्व एकत्र करने वाला) और कारकून (लेखाकार) होते थे। गांव और परगना प्रशासन की स्वतंत्र इकाइयाँ होती थीं और तब भी कुछ क्षेत्र आपस में जुड़े हुए होते थे। कई मामलों में इन प्रांतों के स्थानीय शासक राय, राणा, रावत, राजा होते थे जो गवर्नर को उसके कार्यों में सहायता देते थे। ऐसे मामलों में स्थानीय शासकों को सुल्तान के सहायकों के रूप में मान्यता मिली हुई थी।

पाठगत प्रश्न 12.3

1. परगना के स्तर के तीन अधिकारियों के नाम लिखें?

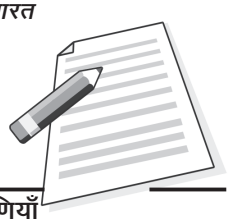

2. सल्तनत काल की कुछ प्रशासनिक इकाइयों का उल्लेख कीजिए?

3. गाँव के कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यकर्ताओं के नामों का उल्लेख कीजिए?

4. *'फवाज़िल'* क्या था?

12.7 अलाऊद्दीन खिलजी के बाजार सुधार

अलाऊद्दीन खिलजी के बाजार सुधार प्रशासनिक और सैन्य आवश्यकताओं के अनुकूल थे। मध्यकालीन शासकों का मानना था कि जीवन की आवश्यकताओं, विशेष रूप से खाद्यान्न सभी देशवासियों को उचित कीमतों पर मुहैया कराए जाने चाहिए। परन्तु कुछ शासक कुछ समय तक ही कीमतों पर नियंत्रण रख सके। अलाऊद्दीन खिलजी कमोबेश ऐसा पहला शासक था जिसने कीमत नियंत्रण की समस्या पर सुव्यवस्थित ढंग से ध्यान दिया तथा लंबी अवधि तक कीमतों को स्थिर रखने में कामयाब रहा। यह बताया गया कि अलाऊद्दीन खिलजी ने बाजार नियंत्रण की परिपाटी चलाई थी क्योंकि दिल्ली पर मंगोलों की जीत के बाद वह विशाल सेना भर्ती करना चाहता था। यदि सेना पर बड़ी राशि खर्च करनी पड़ती तो उसका सारा खजाना जल्दी समाप्त हो जाता। सुल्तान कम खर्च पर विशाल सेना की भर्ती कर सका। बाजार सुधारों के चलते कम कीमतों के जो भी कारण रहे हों, विस्त त प्रशासनिक व्यवस्थाएँ यह सुनिश्चित करने के लिए की गई थी कि बाजार नियंत्रण का अनुपालन सख्ती से किया जा सके।

अलाऊद्दीन ने अनाजों से लेकर कपड़ा, दासों, मवेशियों आदि तक सभी वस्तुओं की कीमतें निर्धारित की थी। उसने दिल्ली में तीन बाजार स्थापित किए, पहला बाजार खाद्यान्नों के लिए था, दूसरा बाजार सभी प्रकार के कपड़ों तथा महँगी वस्तुओं, जैसे चीनी, घी, तेल, मेवे आदि के लिए था तथा तीसरा बाजार घोड़ों, दासों और मवेशियों के लिए था। खाने की वस्तुओं की कीमतों पर नियंत्रण रखने के लिए अलाउद्दीन ने न सिर्फ गांवों से अनाजों की आपूर्ति करने और अनाज व्यापारियों द्वारा शहरों तक इसको ले जाने बल्कि नागरिकों को इसके उचित वितरण करने पर भी नियंत्रण रखने की कोशिश की। सुल्तान द्वारा निर्धारित की गई कीमतों का सख्ती से पालन किया जाए, इसके लिए अनेक उपाय किए गए थे। एक अधिकारी *('शेहना')* बाजार का प्रभारी था, जिसका कार्य यह देखना था कि कोई शाही फरमानों का उल्लंघन तो नहीं कर रहा था। बारिदों (गुप्तचर अधिकारियों) और *'मुनहियान'* (जासूसों) की नियुक्ति भी की जाती थी; अलाउद्दीन ने यह सुनिश्चित करने की भी कोशिश की कि सरकार के पास खाद्यान्नों का उचित भंडार रहे ताकि व्यापारी बनावटी कमी बताकर कीमतों में व द्धि न कर दें अथवा लाभ कमा लें। दिल्ली और छैन (राजस्थान) मे अन्न भंडारों की स्थापना की गई। गांव से शहरों में खाद्यानों को लाने वाले *'बंजारों'* अथवा *'कारवानियों'* से अपना एक निकाय बनाने के लिए कहा गया था उन्हें अपने परिवारों के साथ यमुना नदी के तटों पर बसाना था। उनकी निगरानी करने के लिए एक अधिकारी ('शेहना') की नियुक्ति की गई थी। बंजारों को

नियमित रूप से खाद्यानों की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए कुछ नियम बनाए गए थे। सभी खाद्यानों को बाजार (मंडियों) में लाया जाता था और उन्हें सरकारी कीमतों पर ही बेचा जाता था।

कपड़े, मेवे, घी आदि वाले दूसरे बाजार को *'सराय–ए–अदल'* कहते थे। देश के कोने–कोने से और विदेश से लाए गए सभी कपड़े यहां लाए जाते थे। उन्हें एकत्रित किया जाता और इस बाजार में सरकारी दरों पर ही बेचा जाता था। सभी वस्तुओं की पर्याप्त आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए सभी व्यापारियों का पंजीकरण किया जाता था और उनसे इस बारे में दस्तावेज लिया जाता था कि वे वस्तुओं की निर्धारित मात्रा प्रत्येक वर्ष *'सराय–ए–अदल'* के रूप में लाया करेंगे। विदेशों सहित दूर–दूर से वस्तुओं को लाने वाले व्यापारियों को इस शर्त पर अग्रिम राशि दी गई कि वे मध्यस्थों को अपना माल नहीं बेचेंगे। महँगी वस्तुओं के लिए अधिकारी, अमीरों, मालिकों आदि को इनकी आय के अनुसार इन महँगी वस्तुओं को खरीदने के लिए परमिट (अनुमति) जारी करता था। यह इसलिए किया जाता था ताकि इन महंगे उत्पादों की काले बाज़ारी को रोका जा सके।

तीसरे बाजार में घोड़ों, मवेशियों और दासों की खरीद–फरोख्त होती थी। उचित कीमतों पर अच्छी किस्म के घोड़ों की आपूर्ति सेना के लिए महत्त्वपूर्ण थी। अलाउद्दीन ने शक्तिशाली मध्यस्थों अथवा दलालों को हटा दिया था। यह निर्णय लिया गया था कि सरकार घोड़ों की किस्में और कीमतें निर्धारित करेगी। इसी प्रकार दास लड़कों और लड़कियों तथा मवेशियों की कीमतें भी निर्धारित की गई थीं। लेकिन ये सुधार ज्यादा दिनों तक नहीं चल पाए और अलाउद्दीन की म त्यु के बाद समाप्त हो गए थे।

पाठगत प्रश्न 12.4

1. बाज़ार नियंत्रण के नियमों की देख–रेख करने वाले कौन–कौन से अधिकारी थे?

   _____

2. उन स्थानों के नाम लिखें, जहाँ पर अलाउद्दीन खिलजी द्वारा अन्न भंडार स्थापित किए गए थे?

   _____

3. बंजारे कौन थे?

   _____

12.8 मुगलकालीन प्रशासनिक ढाँचा

मुगलों ने सल्तनत और शेरशाह की प्रशासनिक प्रणाली की कई विशेषताएँ बनाए रखीं। शेरशाह के शासनकाल में परगना (गांवों का समूह), सरकार (परगनों का समूह) और सरकारों के समूह (कुछ–कुछ सूबे अथवा प्रांतों जैसे) की प्रशासनिक इकाइयों को विशिष्ट अधिकारियों के नियंत्रण में रखा गया था। मुगलों ने एक नई क्षेत्रीय इकाई बनाई, जिसे सूबा कहा जाता था। जागीर और मनसब प्रणाली के संस्थानों को भी मुगलों द्वारा ही प्रारंभ

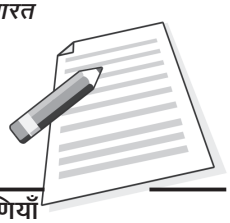

किया गया था। इस प्रकार परिवर्तन और निरंतरता दोनों मुगल प्रशासनिक ढांचे को चिह्नित करते थे, जिससे इस प्रणाली में उच्च दर्जे का केंद्रीयकरण किया गया था।

केंद्रीय प्रशासन

1. सम्राट

सम्राट प्रशासन का सर्वोच्च प्रधान था और उसके नियंत्रण में सभी सैन्य और न्यायिक शक्तियां थीं। मुगल प्रशासन में सभी अधिकारी अपनी शक्ति और स्थिति के लिए सम्राट के प्रति उत्तरदायी थे। सम्राट को यह अधिकार था कि वह अपनी इच्छाशक्ति से अधिकारियों की नियुक्ति करता था, उनकी पदोन्नति करता था और उन्हें हटा सकता था। सम्राट पर संस्थागत या अन्यथा कोई दबाव नहीं था। सम्राट अपने कार्य सुगमता से कर सके, इसके लिए कुछ विभाग बनाए गए थे।

2. वकील और वजीर

'वज़ारत' अथवा 'वकीलत' (दोनों शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता था) का स्थान दिल्ली सल्तनत के दौरान भी कुछ रूपों में मौजूद था। वजीर का पद दिल्ली सल्तनत में अफगान शासकों के काल में अपनी उत्क ष्ट स्थिति खो चुका था। वजीर के पद को मुगलों ने फिर चालू किया। बाबर और हुमायूं के वजीर अत्यधिक शक्तिशाली थे। अकबर के मंत्री बैरम खां (1556-60) के काल में वकील–वजीर को असीमित शक्तियां प्राप्त थीं। अकबर ने वजीर की शक्तियों को कम करने के लिए बाद में उससे वित्तीय शक्तियां छीन ली थी। इससे वजीर की शक्तियों को बड़ा झटका लगा था।

3. दीवान-ए-कुल

दीवान–ए–कुल मुख्य दीवान था। यह राजस्व और वित्त के लिए उत्तरदायी था। अकबर ने दीवान को राजस्व शक्तियां सौंप कर दीवान के कार्यालय को मजबूती प्रदान की। दीवान सभी विभागों के सभी लेन–देन तथा भुगतानों की जांच व निरीक्षण करता था और प्रांतीय दीवानों की देख–रेख करता था।

4. मीर बक्शी

'मीर बक्शी' सेना के प्रशासन से संबंधी सभी मामले देखता था। मनसबदारों की नियुक्ति के आदेश तथा उनके वेतन के कागजातों को समर्थन प्रदान करता और उन्हें स्वीक त करता था। वह इस बात पर सख्ती से निगरानी रखता था कि मनसबदारों द्वारा शस्त्रों का और युद्ध सामग्री का उचित रख–रखाव किया जा रहा है। सेवा मांगने वाले नए सदस्यों को सम्राट के सामने *'मीर बक्शी'* द्वारा प्रस्तुत किया जाता था।

5. सद्र-उस-सद्र

सद्र–उस–सद्र पुरोहित संबंधी विभाग का मुखिया था। उसका मुख्य कार्य शरियत के कानूनों की रक्षा करना था। सद्र का कार्यालय योग्य व्यक्तियों और धार्मिक संस्थाओं को भत्ते और वजीफे बांटा करता था। अकबर के शासन काल के पहले पच्चीस वर्षों के दौरान इसने इस कार्यालय को अत्यधिक आकर्षक बना लिया था। 1580 में महजर की घोषणा ने इसके अधिकार सीमित कर दिए थे। महजर के अुनसार धार्मिक विद्वानों के

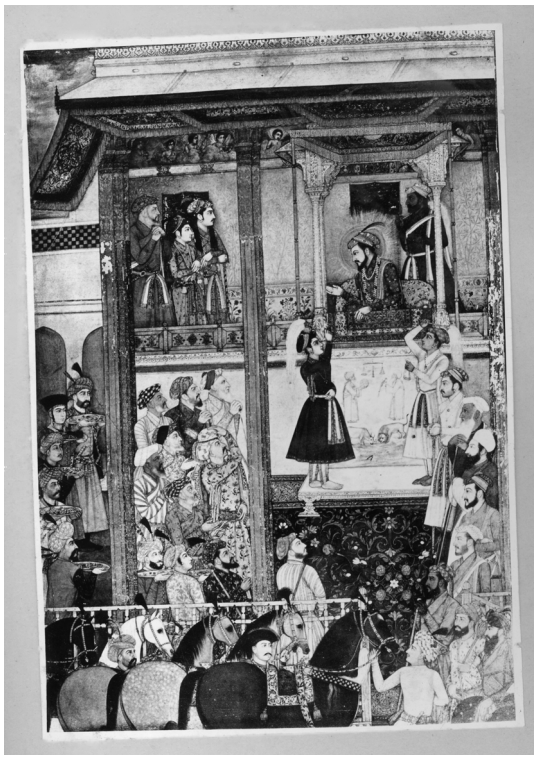

चित्र 12.1 शाही अदालत

विचारों में मतभेद होने पर अकबर का विचार मान्य होता था। यह अधिकारी धार्मिक और धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए दी जाने वाली राजस्व मुक्त अनुदानों के मामलों का भी निर्धारण करता था। बाद में राजस्व मुक्त अनुदान प्रदान करने के लिए भी सदर के अधिकारों पर अनेक प्रतिबंध लगा दिए गए थे।

'मुहतसिब' (लोक आचरण नियंत्रक) की नियुक्ति आचार संहिता नियमावली के सामान्य अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए की जाती थी। यह वजन और माप की जांच करता था और उचित कीमतें आदि लागू करता था।

6. मीर सामाँ

मीर सामाँ शाही कारखानों का प्रभारी अधिकारी था। उसकी शाही परिवार के लिए सभी प्रकार की खरीदारी करना और उनके भंडारण की जिम्मेवारी थी। वह शाही परिवार के उपयोग हेतु विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन पर भी निगरानी रखता था।

प्रांतीय प्रशासन

अकबर ने मुगल साम्राज्य को 12 प्रांतों अथवा सूबों में विभाजित किया था। ये प्रांत थे – इलाहाबाद, आगरा, अवध, अजमेर, अहमदाबाद, बिहार, बंगाल, दिल्ली, काबुल, लाहौर, मालवा और मुल्तान। बाद में अहमदनगर, बरार और खानदेश को सम्मिलित कर लिया था। मुगल साम्राज्य के विस्तार के साथ ही प्रांतों की संख्या बढ़कर बीस हो गई थी।

प्रत्येक सूबा सूबेदार अथवा प्रांतीय गवर्नर के अधीन था। ये सम्राट द्वारा सीधे नियुक्त किए जाते थे। सूबेदार प्रांत का प्रधान होता था तथा वह सामान्य कानून और व्यवस्था

बनाए रखने के लिए जिम्मेदार था। वह क षि, व्यापार और वाणिज्य को बढ़ावा देता था तथा राज्य का राजस्व बढ़ाता था। वह विद्रोहियों का दमन करता और अभियानों के लिए सेना मुहैया कराता था।

सूबे में राजस्व विभाग का प्रमुख दीवान होता था। उसकी नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थीं और वह स्वतंत्र अधिकारी था। उसे सूबे में राजस्व संग्रहण का कार्य देखना पड़ता था और वह सभी व्यय का लेखा–जोखा रखता था। उससे आशा की जाती थी कि वह खेती योग्य भूमि को बढ़ाएगा। कई बार उसके कार्यालय से किसानों को अग्रिम ऋण (तकवी) भी दिया जाता था।

प्रांत के बक्शी द्वारा भी वही कार्य किए जाते थे, जो केंद्र में मीर बक्शी द्वारा किए जाते थे। इसकी नियुक्ति मीर बक्शी की सिफारिशों पर शाही दरबार द्वारा की जाती थी। वह सूबे के मनसबदारों द्वारा देख–रेख किए जा रहे घोड़ों और सिपाहियों की जांच और निरीक्षण के लिए जिम्मेदार था। वह मनसबदारों तथा सिपाहियों दोनों के वेतन बिल जारी करता था। अकसर इसका कार्यालय *'वाक्यनिकार'* से जुड़ा होता था। इस हैसियत से उसका कार्य था कि वह अपने प्रांत की घटनाओं के बारे में सूचना दे।

प्रांतीय स्तर पर केंद्रीय सद्र (सद्र–अस–सुद्दर) के प्रतिनिधि को सद्र कहते थे। यह उन लोगों के कल्याण के लिए जिम्मेदार था, जो धार्मिक गतिविधियों और शिक्षा के कार्यालय में लगे हुए थे और वे न्याय विभाग का कार्य भी देखते थे। इस हैसियत से वे काज़ियों के कार्य की भी देख–रेख करते थे।

कुछ अन्य अधिकारी भी थे, जिनकी नियुक्ति प्रांतीय स्तर पर की जाती थी। *'दरोगाई–ए–डाक'* संचार माध्यम के रख–रखाव के लिए जिम्मेदार था। वह डाक वाहकों *('मेरवाड़')* के माध्यम से दरबार में पत्र पहुंचाता था। वाकयानवीस और वाकयानिगार की नियुक्ति सम्राट को सीधे रिपोर्टें भेजने के लिए की गई थी।

स्थानीय प्रशासन

प्रांत अथवा सूबे सरकारों में विभाजित थे। सरकारों को परगनों में बांटा गया था। गांव प्रशासन की लघुतम इकाई थे। सरकार स्तर पर दो महत्त्वपूर्ण अधिकारी थे *'फ़ौजदार'* और *'अमलगुजार'*। *'फ़ौजदार'* की नियुक्ति शाही आदेश द्वारा होती थी। कभी–कभी एक सरकार में कई फौजदार होते थे। कभी–कभी इनके क्षेत्राधिकार दो सरकारों में होते थे, जबकि ये दोनों अलग–अलग सूबों के होते थे। फौजदारी एक प्रशासनिक प्रभाग होता था, जहां सरकार का क्षेत्रीय और राजस्व प्रभाग होता था। फौजदार का मुख्य कार्य अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले क्षेत्रों के निवासियों के जीवन और सम्पत्ति की रक्षा करना था। वह अपने क्षेत्रों में कानून और व्यवस्था संबंधी समस्याओं का निवारण करता और आवश्यकता पड़ने पर सेना की तथा समय पर राजस्व एकत्र करने में सहायता देता था। अमलगुजार अथवा आमील राजस्व संग्राहक होता था। उसका कार्य राजस्व का मूल्यांकन करना और राजस्व संग्रहण की देखरेख करना था। उससे आशा की जाती थी कि वह खेती योग्य भूमि को बढ़ाएगा और किसानों को स्वेच्छा से राजस्व का भुगतान करने के लिए प्रेरित करेगा। वह सभी लेखा–जोखा रखता था और प्रांतीय दीवान को प्रतिदिन प्राप्ति और व्यय की रिपोर्ट भेजता था।

परगना स्तर पर शिक्दार कार्यपालक अधिकारी होता था। वह राजस्व संग्रहण के कार्य में *'अमिलों'* की सहायता करता था, *'आमिल'* परगना स्तर पर राजस्व संग्रह का कार्य देखते थे। कानूनगो परगना में भूमि संबंधी सभी रिकॉर्ड रखता था। मुख्यतः शहरों में कोतवालों की नियुक्ति शाही सरकार द्वारा की जाती थी तथा वह कानून और व्यवस्था का प्रभारी होता था। वह शहर में आने और शहर से बाहर जाने वाले लोगों का रिकॉर्ड रखने के लिए एक रजिस्टर रखता था। *'मुकद्दम'* गांव का मुखिया होता था और पटवारी गांव के राजस्व रिकॉर्ड रखता था। वे अपने क्षेत्रों में कानून और व्यवस्था बनाए रखने तथा राजस्व संग्रहण में जमींदारों की सेवाएं लेते थे। किलों की रखवाली *'किलेदार'* नामक अधिकारी करता था। वह किले के सामान्य प्रशासन तथा उसको जागीर में दिए गए क्षेत्रों का प्रभारी होता था।

पतन प्रशासन प्रांतीय अधिकारी से मुक्त था। पतन के गवर्नर को *'मुतासद्दी'* कहते थे, जिसकी नियुक्ति सीधे सम्राट द्वारा की जाती थी। मुतासद्दी माल पर कर एकत्र करता था और वह सीमा शुल्क कार्यालय की देखरेख करता था। वह पतन की टकसाल की देखरेख भी करता था।

पाठगत प्रश्न 12.5

1. अकबर ने वजीर की शक्ति क्यों कम की?

2. *'मीर सामाँ'* कौन था? उसके क्या कार्य थे?

3. *'मुतासद्दी'* कौन था? उसके क्या कार्य थे?

4. कौन से दो महत्त्वपूर्ण अधिकारी सरकार के स्तर पर थे?

12.9 मुगल प्रशासनिक संस्थान

(1) मनसब प्रणाली

भारत में मुगलों के शासनकाल में मनसब और जागीर प्रणाली प्रारंभ से अंत तक प्रचलित थी। भारत में मुगलों द्वारा तैयार की गई मनसबदारी अद्वितीय प्रणाली थी। कुछ हेरफेर से अकबर द्वारा चलाई गई मनसबदारी प्रणाली सैन्य व नागरिक प्रशासनों का आधार थी। मनसब शब्द का अर्थ हैसियत या पद से है। जिस व्यक्ति को मनसब प्रदान किया जाता था, उससे शाही तंत्र में उसकी हैसियत और वेतन दोनों का निर्धारण होता था। मनसबदार द्वारा रखे जाने वाले सैनिकों की संख्या का भी इससे निर्धारण होता था। यह प्रणाली अभिजात वर्गों के पद को कारगर और सरल बनाने, उनके वेतन का निर्धारण करने तथा उनके द्वारा रखे जाने वाले घुड़सवारों की संख्या का निर्धारण करने के लिए तैयार की गई थी।

मनसब प्रणाली में पदों को संख्याओं में व्यक्त किया जाता था। अबुल फजल बताता है कि अकबर ने मनसबदारों की 66 श्रेणियां स्थापित की थीं जिनकी सीमा 10 घुड़सवार कमांडरों से 10,000 घुड़सवारों तक थी, यद्यपि उसने 33 श्रेणियों का ही उल्लेख किया। प्रारंभ में, एक संख्या पद, वैयक्तिक वेतन और मनसबदार के सैन्य दल की संख्या का निरूपण करती थी। बाद में, मनसबदार का पद दो संख्याओं, जात और सवार को सूचित करने वाली बन गई। जात कर्मचारी के व्यक्तिगत पद को दर्शाता था। और सवार मनसबदारों द्वारा रखी जाने वाली सेना के आकार को दर्शाता था। सैन्य दल की संख्या के आधार पर मनसबदारों को तीन श्रेणियों मे रखा गया था। आइए एक मनसबदार का उदाहरण लें जिसके पास 7000 जात और 7000 सवार (7000/7000) के पद थे। प्रथम श्रेणी में जात और सवार के पद बराबर (7000/7000) थे। दूसरी श्रेणी में सवार के पद जात से कम थे लेकिन जात पद के आधे अथवा पचास प्रतिशत थे (7000/4000) तीसरी श्रेणी में सवार पद जात पद के पचास प्रतिशत (7000/3000) से कम थे। इस प्रकार सवार पद या तो जात के बराबर थे या उससे कम थे। सवार पद ज्यादा होने पर भी शाही तंत्र में मनसबदार की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। यह जात के पद से ही निर्धारित होती थी। उदाहरणार्थ, 4000 जात और 2000 सवार रखने वाले मनसबदार का पद 3000 जात और 3000 सवार रखने वाले मनसबदार के पद से ऊंचा होता था।

लेकिन इस नियम में कुछ अपवाद भी थे विशेष रूप से जब कोई मनसबदार विद्रोहियों के बीच समस्याओं वाले क्षेत्र में कार्य करता था। ऐसे मामलों में राज्य अकसर जात पद में परिवर्तन किए बिना सवार पद में व द्धि करता था। कभी–कभी आपातकालीन स्थितियों से निपटने के लिए अस्थायी अवधि के लिए सवार पद में व द्धि भी कर दी जाती थी।

जहाँगीर ने सवार पद में नई व्यवस्था प्रारम्भ की। इस प्रावधान के अनुसार चुने हुए मनसबदारों के मामले में सवार पद को दु–अस्पाह और सिह–अस्पाह कहा गया। इस भाग के लिए प्रतिसवार उसी दर पर 8000 दाम प्रति सवार के अतिरिक्त भुगतान की स्वीक ति प्रदान की गई थी। यदि सवार पद 4000 है जिसमें से 1000 दु–अस्पाह और सिह–अस्पाह होते थे। इस सवार का वेतन $3000 \times 8000 + (1000 \times 8000 \times 2)$ 40,000,000 दाम परिकलित किया जाता था। दु–अस्पाह और सिह–अस्पाह के बिना 4000 सवार का वेतन ($4000 \times 8000 = 32,000,000$) होता था। इस प्रकार मनसबदार को दु–अस्पाह सिह–अस्पाह श्रेणी के दुगुने सवार रखने पड़ते थे और इसके लिए भुगतान किया जाता था। जहांगीर ने शायद यह व्यवस्था अपने विश्वास पात्र अभिजात वर्ग को बढ़ावा देने और उनका सैन्य रूप से शक्तिशाली बनाने के लिए की थी। इस व्यवस्था से वह अपने जात पद में कोई परिवर्तन किए बिना अपने अभिजात वर्गों की सेना में बढ़ोतरी कर सका। अपने जात पद में कोई व द्धि करने से न सिर्फ अन्य अभिजात वर्गों को ईर्ष्या होगी, बल्कि राजकोष पर इसका भार भी बढ़ेगा।

शाहजहां ने *'जमा'* (अनुमानित आय) और *'हासिल'* (वास्तविक प्राप्ति) के बीच के अंतर को पूरा करने के लिए मनसबदारी प्रणाली में मासिक वेतनमान प्रारंभ किया। अकसर मनसबदारों को सौंपी गई राजस्व उगाने वाली जागीरों के रूप में भुगतान किया जाता था। इसमें सबसे बड़ी समस्या यह थी कि एक वर्ष के दौरान जागीर से होने वाली संभावित आय (जमा) के आधार पर परिकलन किया जाता था। यह देखा गया था कि वास्तविक राजस्व

संग्रहण (हासिल) अनुमानित आय से हमेशा कम होता था। ऐसी स्थिति में मनसबदारों के वेतन का निर्धारण मासिक वेतनमान विधि से किया जाता था। यदि किसी जागीर से सिर्फ आधा राजस्व हासिल होता था तो यह 'शशमाह' (छमाही) कहलाता था। यदि इससे केवल एक चौथाई प्राप्त होता है तो इसे सीमाहा तिमाही कहते थे। मासिक वेतनमान नकद वेतनों पर भी लागू होता था। स्वीक त वेतन में से भी कटौती की जाती थी। शाहजहां के शासनकाल के दौरान मनसबदारों को बिना उनके दावे की राशि में कमी किए, सवार पद की स्वीक त संख्या के $^{1}/_{5}$ से $^{1}/_{3}$ रखने की मंजूरी दे दी गई।

औरंगजेब ने इन सभी परिवर्तनों को जारी रखा तथा 'मशरूत' (शर्तबंद) नामक नया पद सजित किया। यह मनसबदार के सवार पद में अस्थायी रूप से वद्धि करने का प्रयास था। औरंगजेब ने शाही अस्तबलों में पशुओं के चारे पर आने वाली लागत को पूरा करने के लिए 'खुराक–ए–दवाब' नामक एक और कटौती की।

(2) जागीर प्रणाली

मुगलों के शासनकाल में राज्य को अपनी सेवाएं देने वाले अभिजात वर्गों को किसी विशेष क्षेत्र का राजस्व सौंपने की प्रणाली को जारी रखा गया। मुगलकाल में जो क्षेत्र सौंपा जाता था वह 'जागीर' और जिस व्यक्ति को यह क्षेत्र सौंपा जाता था वह 'जागीरदार' कहलाता था। अकबर के शासनकाल में विकसित मनसबदारी प्रणाली में जागीर अभिन्न हिस्सा थी और अकबर के उत्तराधिकारियों ने अपने–अपने शासनकाल के दौरान इस प्रणाली में अनेक परिवर्तन किए। अकबर के शासनकाल में समग्र क्षेत्र को दो भागों में बांटा गयाः 'खालिस' और 'जागीर'। इस पहले भाग से प्राप्त होने वाला राजस्व शाही खजाने में जमा होता था और जागीरदारों को नकद वेतन के बदले उन्हें जागीरें सौंपी गई थी। मनसबदारों के वेतन की हकदारी उनके जात और सवार के पदों के आधार पर आँकी जाती थी। वेतन का भुगतान नकद अथवा जागीर के रूप में किया जाता था। जागीर के रूप में किए जाने वाले भुगतान को प्राथमिकता दी जाती थी। यदि भुगतान जागीर देकर किया जाता, तो केन्द्रीय दीवान का कार्यालय उन परगनों का पता लगाता था जिनकी 'जमा' का कुल जोड़ मनसबदारों के वेतन के दावे के बराबर था। यदि रिकॉर्ड की गई 'जमा' जागीरदार के वेतन दावे से अधिक होती, तो जागीरदार को शेष राशि केन्द्रीय खजाने में जमा करानी पड़ती थी। दूसरी ओर, यह वेतन दावे से कम होता तो कम होने वाली राशि खजाने से पूरी की जाती थी।

हालांकि, कोई भी सौंपी जाने वाली जागीर स्थायी अथवा वंशानुगत नहीं थी। सम्राट किसी भी समय जागीर के एक भाग अथवा संपूर्ण जागीर को अपने क्षेत्राधिकार के एक भाग से दूसरे भाग में स्थानांतरित कर सकता था। मुगल शासनकाल के दौरान जागीर और खालिस के बीच का अनुपात घटता–बढ़ता रहता था। अकबर के शासनकाल के दौरान 'खालिस' कुल राजस्व का मात्र 5 प्रतिशत था। जहांगीर के शासनकाल में यह 10 प्रतिशत और शाहजहां के शासन में यह 9 से 15 प्रतिशत के बीच घटता–बढ़ता रहा। औरंगजेब के शासनकाल के अंतिम समय में 'खालिस' पर बहुत दबाव बढ़ गया था। क्योंकि मनसबदारों की संख्या में व द्धि होने से जागीर के दावेदारों की संख्या में भी वद्धि हुई। जागीरदारों का स्थानांतरण एक जागीर से दूसरी जागीर पर किया जाता था (परन्तु कुछ मामलों में उन्हें अपनी जागीर लंबी अवधि के लिए एक स्थान पर रखने की अनुमति दे दी जाती थी)। स्थानांतरण प्रणाली जागीरदारों पर अंकुश लगााने का काम करती थी

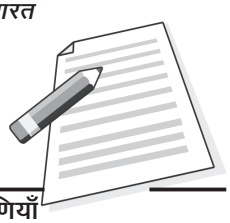

ताकि वे स्थानीय जड़ें न बना लें। इसका नुकसान यह रहा कि इससे जागीरदार अपने क्षेत्रों के विकास हेतु लंबी अवधि के उपाय करने के लिए निरुत्साहित होते थे।

यहां अनेक प्रकार की 'जागीरें' थीं। 'तनख्वाह जागीरें' वेतन के बदले दी जाती थीं। मशरूत जागीरें निश्चित शर्तों पर दी जाती थीं। 'वेतन जागीरे' जमींदार और राजाओं को उनकी स्थानीय रियासतों के लिए सौंपी जाती थीं। 'अल्तमघा जागीरें' मुस्लिम कुलीन (अभिजात) को उनके पारिवारिक नगर अथवा जन्म स्थान में दी जाती थीं। 'तनख्वाह जागीरें' प्रत्येक तीसरे से चौथे वर्ष हस्तांतरित कर दी जाती थीं। 'वतन जागीरें' वंशानुगत थी और अहंस्तारणीय थीं। जब किसी जमींदार को मनसबदार बनाया जाता था, तो उसे उसकी तनख्वाह ज़ागीर के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान की वतन ज़ागीर भी दी जाती थी, यदि उसके पद का वेतन उसकी 'वतन जागीर' की आय से अधिक होता था।

जागीरदार को शाही नियमों के अनुसार ही राजस्व एकत्रित करने की अनुमति थी। जागीरदार अपने स्वयं के कर्मचारी जैसे आमील आदि नियुक्त करते थे। शाही कार्यालय जागीरदारों पर निगरानी रखता था। सूबे के दीवान से आशा की जाती थी कि वह जागीरदार द्वारा किसानों पर हो रहे अत्याचारों को रोके। प्रत्येक सूबे में 'आमीन' की नियुक्ति यह देखने के लिए की जाती थी कि जागीरदार शाही नियमों का पालन करे। यदि जागीरदारों को राजस्व एकत्रित करने में कोई कठिनाई आती, तो 'फौजदार' जागीरदारों की मदद करते थे।

पाठगत प्रश्न 12.6

1. मनसबदारी प्रणाली किसने प्रारंभ की थी? यह प्रणाली क्यों बनाई गई थी?

   _____

2. 'जात' और 'सवार' क्या थे?

   _____

3. औरगंजेब ने मनसब प्रणाली में क्या परिवर्तन किए थे?

   _____

4. 'जागीर' प्रणाली क्या थी?

   _____

12.10 मराठों का प्रशासनिक ढांचा

दक्कन के इतिहास में मराठा शक्ति का उदय एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। मराठों की प्रशासनिक व्यवस्था मुगलों और दक्कनी राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था से बहुत अधिक प्रभावित थी।

(1) केन्द्रीय प्रशासन

राजा सभी कार्यों का कर्णधार था। प्रशासन को आठ विभागों में विभाजित किया गया, जिनके मुखिया मंत्री होते थे। कभी–कभी इन्हें अष्ट–प्रधान कहा जाता था। ये आठ मंत्री

थे–(1) पेशवा (वित्तीय और सामान्य प्रशासन की देखभाल करते थे) (2) सरी–ए–नौबत (सेनापति था) (3) मजूमदार लेखा–जोखा रखता था (4) बकायानवीस गुप्तचर और घरेलू मामलों की देखभाल करता था। (5) सुरुनवीस या चिट्निस शाही पत्राचार का कार्य करता था। (6) दाबिर विदेशी मामले देखता था। (7) न्यायाधीश न्यायिक और (8) पंडित राव धार्मिक अनुदान संबंधी मामले देखते थे।

अष्ट प्रधान की रचना शिवाजी द्वारा नहीं की गई। इनमें बहुत से अधिकारी जैसे पेशवा, मजूमदार, बकायानवीस, दाबिर और सुरुनवीस दक्कनी शासकों के समय भी विद्यमान थे। पंडितराव और नयायाधीश को छोड़कर अष्टप्रधान के सभी सदस्यों को सैन्य नेत त्व करने के लिए कहा जाता था। ये कार्यालय शिवाजी के शासनकाल के दौरान न तो वंशानुगत और न ही स्थायी थे। वे राजा की इच्छा पर ही पद पर रह सकते थे। अक्सर उनका स्थानांतरण भी होता रहता था। प्रत्येक अष्ट–प्रधान की सहायता आठ सहायकों, दीवान, मजमूदार फडनीश, सबनीश, कारखानीस, छिटनिश, जमादार, और पोटनीश द्वारा की जाती थी। छिटनिश सभी राजनयिक पत्र व्यवहार करते थे और सभी शाही–पत्र लिखते थे। फडनीश किलों के कमांडरों के पत्रों के उत्तर देते थे। पोटनीश शाही खजाने की आय का लेखा–जोखा रखते थे।

(2) प्रांतीय और स्थानीय प्रशासन

प्रांतीय प्रशासन दक्कनी और मुगल प्रणाली के आधार पर संगठित किया गया था। सभी प्रांतीय इकाइयाँ दक्कनी शासकों के अधीन पहले से ही मौजूद थी। शिवाजी ने इन्हें मान्यता प्रदान की और कुछ का दोबारा नामकरण किया गया। प्रांतों को प्रांत के रूप में जाना जाता था। प्रांत सूबेदार के अधीन होते थे। एक से अधिक सूबेदारों को सरसूबेदार नियंत्रित करता था तथा यह सूबेदारों के कार्यों का निरीक्षण भी करता था। प्रांतों से छोटे 'तार्फस' थे, जिनका मुखिया हवलदार होता था। उसके बाद मौजास अथवा गांव थे जो प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थे। गांव के स्तर पर कुलकरणी खाते लिखता और व्यवस्थित रखता था जबकि पाटिल के पास न्यायिक और पुलिस शक्ति थी। परगना के स्तर पर देशपांडे खातों को लिखता और उन्हें व्यवस्थित करता था। जबकि देशमुख के पास न्यायिक और पुलिस शक्ति थी। पुलिस अधिकारी को ग्रामीण इलाकों में फौजदार कहा जाता था और शहरी इलाकों में कोतवाल कहा जाता था। मराठा राजनीति में नागरिक और सैन्य पदों का एकीकरण नहीं था। मराठों के शासनकाल में संभ्रात ब्राह्मण वर्ग केन्द्रीय नौकरशाही व स्थानीय प्रशासन में कार्यरत थे। इस हैसियत से उन्हें कामवीसदार कहा जाता था, जिनके पास कर लगाने और उसे एकत्रित करने की व्यापक शक्तियां थीं। वे मुकदमों का निर्णय करते थे और स्थानीय परिस्थितियों के बारे में जानकारी उपलब्ध कराते थे और उनका रिकॉर्ड रखते थे। बाद में ब्रिटिश जिला कलेक्टर का पद इस मराठा अधिकारी के नमूने के अनुसार बनाया गया।

पाठगत प्रश्न 12.7

1. अष्टप्रधान के पदों को सूचीबद्ध कीजिए?

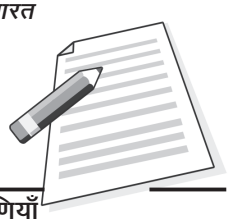

2. मराठों की प्रशासनिक प्रणाली को किसने प्रभावित किया?

_____

3. मराठा प्रशासन के अंतर्गत प्रशासन की सबसे छोटी इकाई कौन–सी थी?

_____

आपने क्या सीखा

आपने देखा कि दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ ही नए शासक वर्ग और कुछ नई प्रशासनिक संस्थाओं का उदय हुआ। प्रशासनिक संस्थाएँ मूल रूप से मिश्रित थीं जिनकी जड़ें अरब और मध्य एशिया और भारतीय मूल से थीं। मुगल काल के दौरान सल्तनत–काल की कुछ संस्थाओं में कुछ बदलाव किया गया और कुछ नई बनाई गईं। प्रशासनिक प्रणाली और संस्थाओं ने सल्तनत और मुगल साम्राज्य को सुद ढ़ करने में योगदान किया। प्रशासनिक प्रणाली को शासकों द्वारा समाज में सद्भाव बनाए रखने के लिए भी प्रयुक्त किया जाता था। इसे प्रशासनिक उपकरण के रूप में समाज के ज्यादा से ज्यादा समुदायों को शामिल करके प्रयुक्त किया जाता था। विस्त त क्षेत्र में फैले मुगल साम्राज्य के कारण प्रशासन को सुव्यवस्थित ढंग से संचालन करने के लिए इसे तीन स्तरों में बांटा गया; केन्द्रीय, प्रान्तीय और स्थानीय। स्थानीय स्तर के प्रशासन को गांव के मुखिया के हाथों में सौंपा गया। प्रान्तीय स्तर पर सल्तनत काल के दौरान इक्ता की संस्थाओं तथा मुगल काल में मनसब व जागीर संस्थाओं के माध्यम से प्रशासन चलाया जाता था और केन्द्रीय स्तर पर सुल्तान या सम्राट की अपनी प्रशासन प्रणाली होती थी जिसमें उसकी सहायता के लिए बहुत सारे अधिकारी होते थे। अन्य कार्यों की देखरेख के लिए भी कई अन्य विभाग थे। कभी–कभी शासक को अभिजांत चुनौती देते थे तथा उलेम दबाव डालते थे। शक्तिशाली और योग्य शासक के अधीन प्रशासनिक प्रणाली और संस्थाएँ बेहतर ढंग से कार्य करती थी परन्तु कमजोर शासक इनके दबाव में रहते थे। मराठा प्रशासनिक प्रणाली का विकास मुगल और दक्कनी राज्यों का अनुसरण करते हुआ।

पाठान्त प्रश्न

1. दिल्ली सल्तनत काल के दौरान प्रशासनिक ढांचे का विकास किस प्रकार हुआ?
2. दिल्ली सल्तनत काल के दौरान अभिजातों की संरचना पर चर्चा कीजिए?
3. दिल्ली सल्तनत काल के दौरान वज़ारत के कार्यों का उल्लेख करें?
4. सल्तनत के अधीन इक्ता प्रणाली के उद्भव का उल्लेख करें।
5. सल्तनत के अधीन स्थानीय प्रशासन के कार्यों की चर्चा करें।
6. अलाऊद्दीन खिलजी के बाजार सुधारों की चर्चा करें। किन उपायों को अपनाकर उसने इन्हें लागू किया?

7. मुगल काल के दौरान 'दीवाने–ए–कुल' और 'मीर–बक्शी' के कार्यों की चर्चा कीजिए।
8. मुगलों के अधीन स्थानीय प्रशासन के कार्यों की चर्चा करें।
9. अकबर से औरंगजेब तक मनसबदारी प्रणाली के विकास का उल्लेख करें।
10. जागीरदारी प्रणाली की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें?
11. मराठा प्रशासन की मुख्य विशेषताओं की चर्चा करें?

पाठगत प्रश्नों के उतर

12.1

1. चहलगान 40 अभिजातों का समूह था। इसे इल्तुतमिश द्वारा बनाया गया।
2. बलबन।
3. सुल्तान का स्थान समान शक्तिवालों में प्रमुख था।
4. उलेमा धार्मिक विद्वानों का समूह था जो धार्मिक मामलों और धार्मिक विवादों को नियंत्रित करते थे।

12.2

1. मुशतौफ़ी–ए–मुमालिक, मुशरीफ़–ए–मुमालिक।
2. दाग और हुलिया।
3. दीवान–ए–रिसालत, सदर–उस सद्र।

12.3

1. शिक्दार, फौज़दार, कोतवाल इत्यादि।
2. परगना, शिक, सरकार इत्यादि।
3. खुत मुकद्दम, पटवारी।
4. फवाज़ित राजस्व की वह शेष राशि होती थी जिसे मुक्तीं अपने तथा सेना का खर्च पूरा करने के बाद सुलतान को भेजता था।

12.4

1. सिहना, बदरीस, मुनीहीयान इत्यादि।
2. दिल्ली और छैन (राजस्थान)।
3. बंजारे खाद्य अनाजों को देहातों से ढोकर शहर ले जाया करते थे। अलाऊद्दीन खिलजी के समय के दौरान उन्होंने अपने आपको संगठित किया और यमुना के किनारे बस गए।,

12.5

1. अकबर वज़ीर की शक्ति को नियंत्रित करना चाहता था, क्योंकि उसका वज़ीर बैरम खाँ शक्तिशाली बन चुका था। अकबर ने वजीर से सभी वित्तीय शक्तियां छीन ली।
2. मीर सामाँ शाही कारखाने का पदाधिकारी था। उस पर शाही घर की सभी प्रकार की खरीदारी और उनके गोदाम की जिम्मेदारी थी तथा साथ ही विभिन्न निर्मित वस्तुओं का निरीक्षण भी करता था।
3. मुतासद्दी बंदरगाहों (पतन) का गवर्नर था। वह माल का कर इकट्ठा करता और सीमा शुल्क कार्यालय की देखरेख करता था।
4. फौजदार और अमलगुजार

12.6

1. अकबर ने मनसबदारी प्रणाली स्थापित की थी। यह अभिजातों को पदानुसार सुव्यवस्थित करने और उनकी तनख्वाह निश्चित करने तथा घुड़सवारों की कितनी संख्या का रखरखाव उन्हें करना है, के लिए निर्मित की गई थी।
2. जात किसी अधिकारी की व्यक्तिगत श्रेणी की ओर संकेत करता तथा सवार किसी मनसबदार के द्वारा किए गए सैन्य दल के आकार को दर्शाता था।
3. औरंगजेब ने मनसब प्रणाली में एक अन्य पद जोड़ा जिसे मशरूत कहा गया (सर्शत)। उसने एक अन्य कटौती की जिसे खुराक–ए–दव्वाब कहा गया, जो साम्राज्य के अस्तबल के पशुओं के चारे के लिए थी।
4. देखिए भाग 12.9 (2)

12.7

1. देखिए मराठों के अधीन केन्द्रीय प्रशासन
2. मराठों की प्रशासनिक प्रणाली मुगल और दक्कनी राज्यों से प्रभावित थी।
3. मराठा प्रशासन के अधीन मौजा या गांव सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई थी।

पाठान्त प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें अनुच्छेद 12.1- 1 और 2 का
2. देखें अनुच्छेद, 12.2 (2)
3. देखें अनुच्छेद 12.3 (1)
4. देखें अनुच्छेद 12.5
5. देखें अनुच्छेद 12.6
6. देखें अनुच्छेद 12.7
7. देखें अनुच्छेद 12.8 (3) और (4)

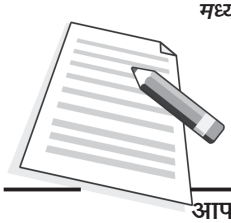

आपकी टिप्पणियाँ

8. देखें अनुच्छेद 12.8.3
9. देखें अनुच्छेद 12.9 (1)
10. देखें अनुच्छेद 12.9 (2)
11. देखें अनुच्छेद 12.10

शब्दावली

उलेमा	–	धार्मिक शिक्षाओं के विशेषज्ञ मुस्लिम विद्वान, आलिम शब्द का बहुवचन
चहलगान	–	इल्तूतमिश द्वारा बनाया गया 40 अभिजातों (कुलीनों) वर्ग समूह।
दीवान-ए-वज़ारत	–	सल्तनत काल का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यालय, जिसका मुखिया वज़ीर होता था।
दीवान-ए-अर्ज़	–	सैन्य संगठन की देखरेख करने वाला विभाग जिसका मुखिया अरिज़–ए–मुमालिक था।
दाग	–	पशुओं और घोड़ों पर चिह्न लगाने की प्रणाली।
हुलिया	–	सैनिकों की पहचान का वर्णन।
दीवान-ए-इंशा	–	राज्य के पत्राचार की देखभाल करने वाला विभाग, जिसका मुखिया दबीर–ए–खास था।
दीवान-ए-रिसालत	–	न्याय प्रशासन से संबंधित विभाग, जिसका मुखिया सद्र–उस–सद्र था।
मुहतासिब्स	–	नियमों को बनाए रखने के लिए नियुक्त किया गया अधिकारी।
कारखाने	–	राज्य के लिए आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए शाही कारखाने तथा उपक्रम।
इक्ता	–	गांव अथवा क्षेत्र के राजस्व का अनुदान।
मुकद्दम	–	गांव का मुखिया मुख्यतयः प्रथम अथवा वरिष्ठ व्यक्ति।
राय	–	हिन्दू मूखिया जिसके पास प्रायः भूमि और सेनाएं थी।
मनसब	–	मुगल शासक द्वारा दिया गया सैन्य पद, जो व्यक्तिगत स्थिति और वेतन निर्धारित करता था।
जागीर	–	राज्य द्वारा सरकारी अधिकारियों को दिया गया भूमि का टुकड़ा।
बंजारा	–	अनाज और मवेशियों के व्यापारी; एक जनजाति का नाम।
दलाल	–	बिचौलिया, दलाल।
आमील, अमालगुजर	–	राजस्व एकत्रित करने वाला।
खालिसा भूमि	–	वह भूमि जिसका नियंत्रण व प्रबंध सीधा राज्य द्वारा किया जाता था।
महजर	–	धार्मिक विद्वानों के चलते मतभेदों में उलेमाओं द्वारा जारी आदेश, जिसमें अकबर के विचारों को प्राथमिकता दी जाती।

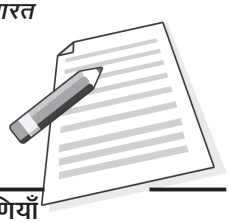

फवाजिल – अधिशेष राशि
इदरार – राजस्व मुक्त भूमि अनुदान
मुक्ती अथवा वली – इक्तादार या गवर्नर
मुशरिफ – राजस्व अधिकारी
मुताशर्रीफ – लेखा परीक्षक
वक्फ – धार्मिक संस्थाओं के लिए दिया जाने वाला अनुदान
वजीफा – वजीफा या व त्ति



13

अर्थव्यवस्था

मध्यकालीन भारत में अपने बुनियादी जीविकोपार्जन के लिए लोग अनेक प्रकार के आर्थिक क्रियाकलाप करते थे। उनके कामों का दायरा खेती–बाड़ी से लेकर कारीगरी के उत्पादनों, व्यापार और वाणिज्य और इनसे संबंधित वित्तीय सेवाओं तक विस्त त था। इस अवधि के दौरान इन कार्यकलापों में लगातार परिवर्तन होते रहे। राज्य अपने अस्तित्व और विस्तार के लिए संसाधनों की पूर्ति विभिन्न प्रकार के करों के संग्रहण से करता था।

इस पाठ में, आप राज्य द्वारा संसाधनों के उत्पादन और उनके संचालन के विविध उपायों और व्यापार तथा वाणिज्य संबंधी गतिविधियों के बारे में पढ़ेंगे। क षि उत्पादन के खंड में हम खेतों की जुताई की सीमा, फसल के पैटर्न (नमूने) और सिंचाई के साधनों और तरीकों के संबंध में चर्चा करेंगे। कराधान पद्धति के अधीन भूमि लगान तथा प्रशासन में मध्यस्थ जागीरदारों और किसानों पर बोझ के संबंध में विश्लेषण करेंगे। गैर–क षि उत्पादों के खंड में आप विविध प्रकार के मध्यकालीन भारतीय शिल्पों, और उनके निर्माण से जुड़ी तकनीक और उत्पादन की व्यवस्था इत्यादि के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे। इसमें आप मध्यकालीन भारतीय व्यापार और वाणिज्य के विविध पहलुओं के बारे में भी जानेंगे, जैसे व्यापारिक वर्ग – सर्राफ़, व्यापारी, दलाल इत्यादि और व्यापारिक कार्य–व्यवहार, लेन–देन के बिल (हुंडी), दलाली और बीमा इत्यादि।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- भारत में खेतीबाड़ी की सीमा, उगाई जाने वाली मुख्य फ़सलों; और सिंचाई के साधनों और तरीकों के बारे में बता सकेंगे;
- मध्यकालीन भारत की लगान पद्धति का विश्लेषण कर सकेंगे;
- लगान इकट्ठा करने में जागीरदार मध्यस्थों की भूमिका की जानकारी दे सकेंगे;
- शिल्पकारी की विविध वस्तुओं के निर्माण के संबंध में चर्चा कर सकेंगे ;
- गैर–क षि उत्पादनों की व्यवस्था और महत्त्व के बारे में बता सकेंगे;
- अन्तर्देशीय और विदेश व्यापार का वर्णन कर सकेंगे;

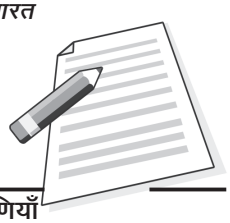

- मुख्य वाणिज्य संबंधी कार्य व्यापार और व्यापार से जुड़े कार्मिकों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे और;
- इस अवधि की मुद्रा प्रणाली के बारे में विस्त त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

13.1 क षि संबंधी उत्पादन

मध्यकाल के दौरान उत्पादित कुल मात्रा में क षि उत्पादन का हिस्सा सर्वाधिक था। क षि से होने वाली आय राज्य की आय का मुख्य स्रोत थी।

1. खेती-बाड़ी की सीमा

खेती–बाड़ी की सीमा को इस संदर्भ में समझा जा सकता है कि इस संबंध में जाना जा सके कि कुल खेती योग्य उपलब्ध भूमि में से कितनी भूमि पर वास्तव में जुताई हो रही थी। गौर करने की बात यह है कि व्यक्ति के पास पर्याप्त भूमि थी, यानी जितनी भूमि पर किसान असल में जुताई कर रहे थे उससे कहीं ज़्यादा भूमि उपलब्ध थी। ऐसी स्थिति में खेती के विस्तार से उत्पादन को बढ़ाया जा सकता था, यानी नए–नए क्षेत्रों को क षि भूमि के अधीन लाया जा सकता था।

उदाहरण के लिए, समकालीन संसाधनों से हमें सूचना मिली है कि मुगल सल्तनत की अवधि के दौरान गंगा–यमुना दोआब की उपजाऊ भूमि के विशाल भूमि–क्षेत्र, वनों और घास के मैदानों से ढके हुए थे। मुग़ल काल में भी पर्याप्त भूमि लोगों के पास उपलब्ध थी।

इसलिए इस कालावधि के शासक इस नीति पर डटे रहे कि अब तक जिन क्षेत्रों को खेती की भूमि के अधीन नहीं लाया गया है, उन क्षेत्रों तक क षि भूमि का विस्तार किए जाए। जनजातीय, पिछड़े और दूर–दराज के क्षेत्रों में भी खेती–बाड़ी शुरू की गई। वनों की कटाई की गई और क षि योग्य व्यर्थ पड़ी (परती) भूमि को खेती योग्य भूमि में परिवर्तित किए गया। सल्तनत से मुग़लकाल की अवधि के दौरान बहुत अधिक मात्रा में क षि की सीमा का विस्तार हुआ। मुग़ल काल तक आते–आते उनके साम्राज्य के लगभग सम्पूर्ण भाग में खेती–बाड़ी होने लगी थी, यद्यपि मुग़लों के क षि कार्यों से जुड़ी आबादी (किसानों) की वास्तविक जरूरतों से अभी भी काफी ज़्यादा भूमि उपलब्ध थी। अकबर की तुलना में औरंगज़ेब के शासनकाल में क षि उत्पादनों में अत्यधिक व द्धि हुई। बिहार, अवध और बंगाल के कुछ क्षेत्रों में क षि विस्तार का श्रेय वनों की कटाई को जाता है जबकि पंजाब और सिंध में इसका कारण था नहरों का जाल बिछाना।

2. फसलों का स्वरूप

मध्यकालीन भारतीय किसान कई प्रकार की खाद्य फ़सलें, नकदी फ़सलें/(तुरंत बिकने वाली फ़सलें), सब्ज़ियों और मसालों की फ़सलें उगाते थे। वे अपने समय की फ़सल उगाने की प्रचलित उच्च स्तरीय तकनीकों से परिचित थे, जैसे – दोहरी फ़सल लेना, वर्ष में तीन फसलों की कटाई, फसल चक्र, खाद का उपयोग और सिंचाई के लिए विभिन्न प्रकार की प्रणालियाँ।

(क) **खाद्य फ़सलें:** मुख्य खाद्य फ़सलें, जिनका उत्पादन किए जाता था, थीं – चावल, गेहूं, जौ (जई), ज्वार, बाजरा और अनेक प्रकार की दालें, जैसे – चना, अरहर, मूंग, मोठ, उड़द और खिसारी इत्यादि।

(ख) **नकदी फ़सलें:** गन्ना, कपास, नील (रंगाई का नीला रंग निकालने के लिए प्रयुक्त) अफ़ीम, रेशम इत्यादि फ़सलें मध्यकालीन भारत की कुछ प्रमुख नकदी फ़सलें थीं। गन्ने से शराब बनाना, चौदहवीं सदी तक बहुत फैल चुका था। मुग़ल काल में, गन्ना सर्वाधिक उगाई जाने वाली नकदी फ़सलों में शामिल था और बंगाल में सर्वोत्तम गुणवत्ता के गन्ने की फसल उगाई जाती थी।

मुग़ल काल के दौरान, बयाना (आगरा के पास) और सरखेज (अहमदाबाद के पास) में सर्वश्रेष्ठ गुणवत्ता के नील का उत्पादन होता था। सेरीकल्चर (शहतूत के पत्तों पर रेशम के कीड़े पालना), जो सल्तनत काल में छोटे स्तर पर था, मुगल काल तक आते–आते बहुत बड़े पैमाने पर फैल चुका था। बंगाल, रेशम उत्पादन के लिए एक मुख्य क्षेत्र बनकर उभरा। बिहार और मालवा के मुगल प्रान्तों में सर्वोत्तम गुणवत्ता की अफ़ीम पैदा की जाती थी। तम्बाकू का उत्पादन भारत में, सोलहवीं सदी के दौरान पुर्तगालियों द्वारा प्रारंभ किए गया था और इसके बाद की अवधि में इसका बहुत व्यापक पैमाने पर उत्पादन होने लगा। सूरत और बिहार मुख्य तम्बाकू उत्पादक केन्द्रों के रूप में उभरे। इसी प्रकार, सत्रहवीं सदी से, बहुत बड़े पैमाने पर कॉफ़ी का उत्पादन होने लगा था।

(ग) **फल और सब्ज़ियाँ:** मध्यकाल में फलों की फ़सलें उगाने के खेती के कामों में बहुत तेजी से विकास हुआ। दिल्ली के कुछ सुल्तानों ने फलों को उगाने के काम को बहुत सक्रियता से बढ़ावा दिया। उदाहरण के लिए, फिरोज़शाह तुग़लक ने दिल्ली के आस–पास फलों के 1200 बाग़ लगाए। मुग़ल बादशाहों और उनके कुलीनों ने भी फलों के बहुत बड़े–बड़े वैभवशाली बाग़ बनवाए।

सोलहवीं और सत्रहवीं सदियों के दौरान, बाहरी एजेंसियों के माध्यम से, भारत का बहुत से नए फलों से परिचय हुआ। उदाहरण के तौर पर, पुर्तगालियों ने अनानास, पपीता और काजू के सूखे मेवे इत्यादि से परिचित कराया, तो चेरी का आयात काबुल से हुआ। लीची और अमरूद की शुरूआत भी इसी अवधि में भारत में हुई। मध्यकालीन भारतीय किसान अनेक प्रकार की सब्ज़ियों की फ़सलें उगाते थे। अबुल फ़ज़ल ने, अपने आईना–ए–अकबरी में उन सब्ज़ियों की सूची दी है जो उस समय उपयोग में लाई जाती थीं। आलू, मिर्च और टमाटर से परिचय उत्तर मध्यकाल के दौरान हुआ।

(घ) **मसाले:** काली मिर्च, लौंग, इलायची, केसर, पान का पत्ता इत्यादि कुछ मुख्य मसालों की खेती मध्यकालीन भारतीय किसान करते थे। मुग़ल काल के आने तक भारत के दक्षिणी समुद्री तट से भारी मात्रा में विविध प्रकार के मसालों का निर्यात, एशिया और यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में किए जाने लगा था।

3. सिंचाई के साधन और उपाय

भारतीय क षि, अपनी सिंचाई संबंधी आवश्यकताओं के लिए हमेशा से ही प्राक तिक और क त्रिम, दोनों प्रकार के विविध संसाधनों पर निर्भर रही है। जैसे वर्षा, कुएँ, नदियाँ, तालाब, नहरें, झीलें इत्यादि। बाँध, झीलें और जल भंडारक, सिंचाई के कुछ प्रमुख साधन थे। दक्षिण भारत में, राज्य स्तर पर, स्थानीय शासकों (चीफ़ों) में और मंदिर के प्रबंधकों ने इस उद्देश्य के लिए नदियों पर अनेक बांधों का निर्माण करवाया। उदाहरण के लिए,

विजयनगर के शासकों द्वारा वहाँ के आसपास के क्षेत्रों की सिंचाई संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तुंगभद्रा नदी पर मडग झील का निर्माण कराया था। ढेबर, उदयसागर, राजसमंद और जयसमंद (सभी मेवाड़ में); बालसन (मारवाड़) और मानसागर (अम्बर) इत्यादि झीलें और जल भंडारक मध्यकालीन राजस्थान में सिंचाई के प्रमुख स्रोतों के रूप में काम में आते थे।

सिंचाई के सामान्य साधन के रूप में कुओं का जाल, देश के विभिन्न भागों में एक समान रूप में फैला हुआ था। कुओं से पानी बाहर निकालने के लिए कई प्रकार के क त्रिम यंत्रों (युक्तियों) का उपयोग किए जाता था। इस प्रयोजन के लिए कुओं पर पुलियां (चरखियाँ) लगाई जाती थीं जो एक अन्य यंत्र लीवर के सिद्धान्त पर काम करती थी। इस तरीके में एक खड़े बीम के काँटे को झूलती हुई स्थिति में रखा जाता था जिसके एक सिरे को एक रस्सी से बांधा जाता था और दूसरे सिरे पर भरी हुई बाल्टी के वज़न से ज्यादा वज़न बंधा रहता था। तथापि, सल्तनत शासन काल की अवधि के दौरान भारत में 'पर्शियन व्हील' (रहट) के उपयोग की शुरूआत, इस अवधि के दौरान उपयोग में लाई जाने वाली जल उठाने की सभी युक्तियों (यंत्रों) में से, सबसे उच्च स्तरीय थी। इस पद्धति में एक पहिए के रिम के चारों ओर छोटे–छोटे डिब्बों की शक्ल के बर्तनों की लड़ी जुड़ी होती थी, गियर की एक यांत्रिकी भी इसके साथ जुड़ी होती थी और पशु शक्ति के बल पर इस पहिये को घुमाया जाता था।

दिल्ली की सल्तनतों ने नहरों से सिंचाई को, विशेष रूप में प्रोत्साहित किए। गयासुद्दीन तुग़लक (1320–1325 ईस्वी) ने इस प्रयोजन के लिए अनेक नहरों का निर्माण करवाया। परन्तु, फ़िरोज़शाह तुग़लक ने नहरों का सबसे बड़ा जाल बिछाया। चार ऐसी नहरों का उल्लेख समसामयिक संसाधनों में आम तौर पर मिलता है। ये थीं—(i) सतलुज से घग्गर, (ii) नांदवी और सिमूर पहाड़ियों से प्रारंभ होकर अरासानी तक (iii) घग्गर से, गाँव की पहुँच से हिरान्सी खेड़ा तक, और (iv) यमुना से खुदाई शुरू करके, फ़िरोज़ाबाद तक बढ़ाई गई। दिल्ली सल्तनत की नहरों के निर्माण की परंपरा को मुग़ल शासकों ने भी जारी रखा। उदाहरण के लिए, शाहजहाँ के राज्य के दौरान निर्मित कराई गई 'नहर फ़ैज', यमुना से जल पूर्ति करके एक बहुत बड़े क्षेत्र की सिंचाई करती थी।

पाठगत प्रश्न 13.1

1. क षि के लिए भूमि की क्या उपलब्धता थी?

2. मध्यकालीन भारत की चार खाद्य फ़सलों और चार नकदी फ़सलों की सूची बनाए।

3. मध्यकाल के दौरान भारत में जिन फसलों का आगमन हुआ, उनमें से चार के नाम लिखें।

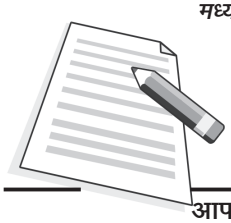

आपकी टिप्पणियाँ

4. पर्शियन व्हील (रहट) क्या था?

13.2 भू-राजस्व का मूल्यांकन और भू–राजस्व की मांग का परिमाण

मध्यकालीन राज्य अपनी आय का अधिकतम भाग भू–राजस्व से प्राप्त करते थे। अलाउद्दीन ख़िलजी, शेरशाह सूरी और अकबर जैसे मध्यकालीन शासकों के प्रयासों से धीरे–धीरे भू–राजस्व प्रशासन की एक व्यापक कार्य व्यवस्था का विकास हुआ। अपने पूर्ण विकसित रूप में भू–राजस्व प्रशासन में बेहतर नीतियाँ शामिल थीं। वे थीं : (i) भू–राजस्व के मूल्यांकन के प्रयोजन से क षि योग्य भूमि का वास्तविक परिमापन (ii) मिट्टी की उपजाऊ शक्ति के आधार पर भूमि का वर्गीकरण (iii) भू–राजस्व मांग के अनुरूप भूमि की राजस्व की दर निर्धारित करना (iv) इसके संग्रहण के लिए व्यापक कार्य प्रणाली स्थापित करना, और (v) नकद रूप में भू–राजस्व के मूल्यांकन और संग्रहण के लिए रूपरेखा तैयार करना।

मध्यकाल में लगान के मूल्यांकन और संग्रह करने के लिए अनेक प्रकार के तरीकों का उपयोग किए जाता था। सबसे सरल और मौलिक तरीका था, फ़सलों में भागीदारी या बँटाई। कुल उत्पादन का कुछ भाग राज्य के भाग के रूप में निर्धारित किए जाता था। इस तरीके में कुल उत्पादन में से राज्य का हिस्सा निर्धारित कार्मिकों द्वारा एकत्रित किए जाता था। इस तरीके में लगान संग्रह करने में भूमि के माप की कोई भूमिका नहीं थी। ध्यान का मुख्य केन्द्र था वास्तविक उत्पादन।

फसल में भागीदारी – तीन प्रकार की फसल में भागीदारी प्रचलित थी –पहली, अनाज प्राप्त होने के बाद छँटाई की जगह पर ही फसल का विभाजन; दूसरी, 'खेत बटाई' यानी खड़ी फसल पर खेत का विभाजन; और तीसरी, लंगबटाई जिसमें फसल काटने के बाद इसे अनाज अलग किए बगैर ढेरों में बांटा जाता था। राज्य के हिस्से को इसी तरीके से निर्धारित किया जाता था।

दूसरे तरीके में, जिसे 'कानकुट' कहते थे, भूमि का माप महत्त्वपूर्ण था। इस तरीके में भूमि को पहले नापा जाता था – मापने के बाद भूमि की उत्पादकता का आकलन किए जाता था, नापे गए भू–क्षेत्र की प्रति इकाई के अनुसार लगान की माँग निर्धारित करने के लिए शेरशाह सूरी ने आकलन के तरीके को सुधारा। उत्पादकता का आकलन करने के लिए तीन प्रकार की भूमि, यानी अच्छी, मध्यम और खराब भूमि से, नमूने के रूप में कटाई की जाती थी और एक औसत फसल हासिल की जाती थी। राज्य की मांग, औसत फसल का एक तिहाई ($^1/_3$) हिस्सा निर्धारित किए गया था।

प्रत्येक फसल के लिए प्रति बीघा के अनुसार लगान की मांग घोषित की गई थी जिसे शेरशाह की 'राई' कहते थे। अकबर के प्रारंभिक वर्षों में सम्पूर्ण साम्राज्य के लिए यही दरें अपनाई गई थीं। यहाँ राज्य की मांग को एक प्रकार से नकार दिया गया था, परन्तु

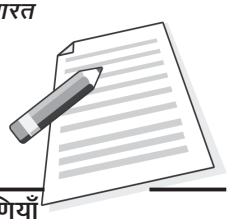

उस वक्त उन पर लागू मूल्यों के हिसाब से इसे नकद रूप में भी एकत्रित/भुगतान किए जा सकता था।

इस तीसरे तरीके को ज़ब्त कहते थे, क्योंकि इसमें मूल्यांकन माप के आधार पर किए जाता था। प्राप्त फसल के आधार पर राज्य का हिस्सा निर्धारित किए गया था। अकबर के अधीन इस तरीके में और सुधार किए गया था। सभी प्रदेशों को लगान मंडलों (सर्किल्स) या 'दस्तूरों' में बांटा गया था। प्रत्येक 'दस्तूर' (सर्कल) के लिए, विभिन्न फ़सलों के उत्पादन के आधार पर प्रति बीघा के अनुसार, उनकी नकद दरें और मूल्य आकलित किए गए थे।

भूमि का वर्गीकरण

क षि योग्य भूमि को नापने के बाद, भूमि की उपजाऊ शक्ति के आधार पर इसे तीन वर्गों में बांटा गया था–अच्छी, मध्यम और खराब भूमि। खेती करते रहने के आधार पर भूमि को आगे और चार वर्गों में बांटा गया था जैसे–पोलाज, परती, चच्चर और बंजर। पोलाज भूमि वह थी जिससे हर वर्ष दो फ़सलें ली जाती थीं, परती भूमि को दो फ़सलों के बाद उसकी उपजाऊ शक्ति की पुनः पूर्ति करने के लिए, कुछ समय के लिए खाली (बग़ैर खेती किए हुए) छोड़ना पड़ता था। चच्चर भूमि वह अनुउपजाऊ भूमि का टुकड़ा होता था, जिस पर हर तीसरे या चौथे वर्ष के अंतराल पर फ़सल उगाई जाती थी, और बंजर भूमि खेती के लिए उपयुक्त नहीं थी और इस पर शायद ही कभी खेती की जाती थी।

विभिन्न स्थानों के लिए हर वर्ष नई दरें समन्वित करने की समस्या का हल आईना–ए–दहसाला या दस वर्ष के लिए उगाने की दरें अपनाने के जरिए किया गया था। इसके अनुसार किसी विशिष्ट फ़सल के लिए पिछले दस वर्ष की दरों के औसत को, किसी खास फसल के लिए लगान दर के रूप में माना जाता था। फिर भी, इन दरों को कुछ अनियमित वर्षों के अन्तराल पर बदल दिया जाता था और हर वर्ष अद्यतन नहीं किए जाता था। प्रारम्भ में इसे आगरा, इलाहाबाद, अवध, दिल्ली, लाहौर और मालवा प्रान्तों में लागू किए गया था। तथापि किसी भी एक वक्त पर किसी विशिष्ट क्षेत्र की सारी भूमि को नापा नहीं गया था। इससे यही संकेत मिलता है कि जिन क्षेत्रों में भूमि का माप लिया गया था वहाँ भी कुछ क्षेत्र ऐसे बच गए थे, जिसकी भूमि का नाप नहीं लिया गया था। ऐसी स्थिति में, यहाँ तक कि ज़ब्ती क्षेत्रों में भी, पूरे देश के लगभग सभी हिस्सों में लगान के मूल्यांकन और एकत्र करने के अन्य तरीके भी अपनाए जाते थे।

राज्य की आय का अधिकांश भाग भू–राजस्व से ही आता था। इसलिए, राज्य लगातार इस कोशिश में लगा रहता था कि ज़्यादा से ज़्यादा भू–क्षेत्र को क षि भूमि के रूप में इस्तेमाल किए जाए, ताकि लगान की आय में व द्धि की जा सके। राज्य के सभी प्रयास इस बात पर भी केन्द्रित होते थे कि किसानों से अधिक से अधिक लगान की वसूली की जा सके।

मुगलकालीन भू–राजस्व प्रशासन की व्यवस्था परगना स्तर पर की जाती थी। भूमि के सर्वेक्षण और लगान एकत्रित करने का काम विभिन्न कर्मचारियों को सौंपा जाता था।

'अमीन' सर्वेक्षण समूह का मुखिया होता था तो 'आमिल' लगान संग्रह का प्रभारी होता था। 'अमीन' के कामों में सहायता करता था 'कानूनगो' जो लगान संबंधी सभी अभिलेख रखने का जिम्मेदार था। लगान एकत्र करने के काम में 'आमिल' की सहायता करता था, 'चौधरी'। गांव के स्तर पर, अभिलेख रखने का काम 'पटवारी' करता था और संग्रहण का काम करता था, 'मुक्कदम' अथवा ग्राम का मुखिया। कुछ अन्य अधिकारी भी थे, जैसे 'पोतदार' या 'खजाँची' और 'कारकुन' या 'क्लर्क'। अभिलेखन का कार्य फ़ारसी और संबद्ध क्षेत्र की भाषा सहित, दोनों भाषाओं में होता था।

पट्टा और कबूलियत

प्रत्येक किसान को राज्य द्वारा एक दस्तावेज दिया जाता था, जिसे पट्टा (स्वामित्व/अधिकार–पत्र) कहते थे जिसमें किसान के कब्ज़े में दी गई भूमि के विभिन्न वर्गों और विभिन्न फ़सलों पर उसके द्वारा देय भू–राजस्व की दर का विवरण लिखा होता था। किसान से एक सहमति–पत्र लिया जाता था जिसे 'कबूलियत' कहते थे, जिसके अनुसार किसान, राज्य को भू–राजस्व की एक विशिष्ट राशि देने का वचन देता था। भूमि के लगान के अतिरिक्त किसानों को राजस्व के मूल्यांकन और इसे एकत्र करने पर आने वाले खर्च को पूरा करने के लिए कुछ अतिरिक्त कर भी देने पड़ते थे।

पाठगत प्रश्न 13.2

1. 'खेत बटाई' और 'लेंग बटाई' में क्या अन्तर था?

2. मध्यकालीन भारत के तीन शासकों के नाम लिखें, जिनकी भू–राजस्व नीतियों ने भू–राजस्व प्रशासन की व्यापक व्यवस्था के विकास में योगदान किया था।

3. पोलाज, परती और चच्चर भूमि क्या थीं?

4. 'पट्टा' और 'कबूलियत' क्या हैं?

13.3 लगान संग्रहण में जमींदार मध्यस्थों की भूमिका

सरकारी कर्मचारियों के अतिरिक्त किसानों और राज्य के बीच में विभिन्न वर्गों के मध्यस्थ भी होते थे। भूमि का लगान वसूल करने में इन मध्यस्थों ने बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये अपनी सेवाओं के बदले में अपनी भूमि पर लगान में छूट अथवा भू–राजस्व में से अपना हिस्सा मांगते थे।

दिल्ली की सल्तनत की स्थापना से पहले, हमारे अनेक स्रोतों से ये संकेत मिले हैं कि राजा, राजपुत्र, राणका, महासामन्त इत्यादि शब्द उपयोग में थे। ये सभी भूमि के वंशानुगत

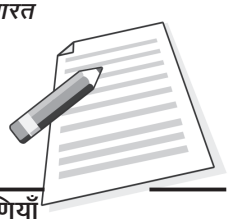

अधिकार प्राप्त करने वाले उत्तराधिकारियों से संबंधित थे। वे अपने–अपने क्षेत्रों के किसानों से भूमि का लगान एकत्र करते थे, इसका एक भाग राज्य को भेजते थे और एक भाग जीवनयापन के लिए अपने पास रखते थे। इसके अतिरिक्त, जैसा कि हमने देखा है, राज्य ब्राहमणों और मंदिरों को कर–मुक्त भूमि प्रदान करता था। इन प्रदाताओं के द्वारा ऐसे क्षेत्रों से भूमि का लगान एकत्र किए जाता था।

सल्तनत के शासनकाल में, जमींदार मध्यस्थ लगान एकत्र करने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे थे। खुत्स (छोटे जमींदार), मुक़्कदम (ग्राम के मुखिया) और मध्यस्थों के समूह जैसे राय, राणा, रावत इत्यादि को औसत साधारण किसान से अधिक श्रेष्ठ होने के अधिकार प्राप्त थे। अलाउद्दीन ख़िलजी ने इन समूहों की शक्तियों और भागीदारी को कम करने के प्रयास किए थे। बाद में गयासुद्दीन और फ़िरोज़शाह तुग़लक जैसे दिल्ली के सुलतानों ने इनको कुछ रियायतें दी थीं।

मुग़लकाल के दौरान रायों, राणाओं, रावतों और अन्य मध्यस्थों को जमींदार कहा जाता था। ये वे लोग थे, जिन्हें भूमि पर पैदा होने वाली फ़सल पर वंशानुगत उत्तराधिकार होता था।

जमींदार, किसानों की फ़सल पर सीधे ही अपनी हिस्सेदारी का दावा करते थे। देश के विभिन्न भागों में इनकी भागीदारी 10 प्रतिशत से 25 प्रतिशत तक होती थी। ये दावे राज्य की मांग के साथ गौण रूप में उसके साथ–साथ ही चलते थे। ज़मींदार, राज्य और जागीरदार को लगान एकत्र करने के काम में भी उनकी सहायता करते थे। सल्तनत काल का 'इक़ता', मुग़ल काल तक आते–आते संशोधित रूप में जागीर का रूप ले चुका था। इसके धारकों (जागीरदारों) को लगान से जुड़े कार्यों के जरिये भुगतान किए जाता था। इस संबंध में हम पहले ही पाठ 12 में चर्चा कर चुके हैं। मुक़्क़दम (उत्तर भारत में) और पटेल (दक्कन में), ग्राम प्रमुख के रूप में कार्य करते थे और यह गांव में लगान एकत्र करने और वहां कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए ज़िम्मेदार होते थे। इनकी सेवाओं के बदले में इन्हें राजस्व–मुक्त गांव की भूमि प्रदान की जाती थी। पटवारी (उत्तर भारत में) और कुलकर्णी (दक्कन में), जो गांव के लेखाकारों के रूप में काम करते थे, को भी इसी प्रकार भुगतान किए जाता था।

13.4 किसानों पर बोझ

मध्यकालीन भारत में सर्वाधिक जनसंख्या किसानों की थी। परन्तु सभी सजातीय समूह के नहीं थे। एक तरफ का प्रतिनिधित्व बहुत धनी किसान ('खुत' और 'मुक़्क़दम' दिल्ली सलतनत के दौरान और 'खुदकाश्त'–मुग़ल काल के दौरान), थे जिनके पास बहुत अधिक ज़मीनें थीं और वे किराए के मजदूरों की सहायता से ज़मीनों की खेती करवाते थे। दूसरी ओर का प्रतिनिधित्व करने वाले थे, छोटे किसान या गांव के निचले स्तर के लोग (भारत के विभिन्न भागों में जिन्हें बलहार, रेज़ा रियाया, पाल्टी, कुनबी, पाही काश्त, उपारी इत्यादि कहते थे)। किसानों के अधिकांश लोगों के लिए एक सामान्य शब्द 'रैयत' का उपयोग किए जाता था। कुल मिलाकर किसानों को अपनी फ़सल का एक बहुत बड़ा भाग भूमि के लगान के रूप में भुगतान करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त बहुत बड़ी संख्या में ज़मींदार मध्यस्थ बढ़ती फ़सल के उत्पादन में से अपना हिस्सा समायोजित कर लेते थे। इसके अतिरिक्त मध्यकालीन भारतीय किसानों को बाढ़, अकाल, महामारी जैसी प्राक तिक आपदाओं का भी सामना करना पड़ता था। एक आम किसान को करों के दबाव,

लिए गए ऋणों के लेन–देन, बार–बार पड़ने वाले अकाल और महामारी के कारण, बची–खुची बहुत कम आमदनी में जीवनयापन करना पड़ता था।

किसानों की कठिनाइयाँ और गुस्सा कई बार विरोध और विद्रोह बनकर फूटता था। सल्तनत काल के दौरान, मोहम्मद बिन तुग़लक़ द्वारा दोआब क्षेत्र में लगान बढ़ाए जाने के प्रयासों की वजह से किसान वर्ग में बहुत गंभीर विद्रोह पैदा हो गया था। सम्राट औरंगज़ेब के शासनकाल के दौरान जाटों, सिखों, मराठों और सतनामियों में बहुत बड़े स्तर पर विद्रोह पैदा हो गया था। इन बगावत की घटनाओं के पीछे क षकों की असंतुष्टि भी एक बहुत बड़ा कारण था।

पाठगत प्रश्न 13.3

1. राजपुत्र, राणका और महासामन्त कौन थे?

2. मुक़्क़दम और पटेल कौन थे?

3. मुग़ल काल के दौरान हुए कुछ महत्त्वपूर्ण किसान विद्रोहों की सूची बनाएं।

13.5 दस्तकारी से संबद्ध (ग़ैर-क षि) उत्पादन

यद्यपि अधिकांश लोगों का व्यवसाय क षि था, परन्तु देश के ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में काफ़ी बड़े स्तर पर अनेक प्रकार के शिल्प कार्य भी अस्तित्व में थे। इन शिल्प कार्यों में शामिल थे, कपड़ा बुनना, मिट्टी के बर्तन बनाना, रंगाई, खांडसारी (चीनी बनाना), धातु कार्य, काग़ज़ बनाना, लकड़ी का काम, शस्त्र और कवच का निर्माण, पोत–निर्माण, रसायनों से जुड़े कार्य इत्यादि।

प्रमुख शिल्प कार्य

बुने हुए कपड़ों का उत्पादन, मध्यकालीन भारत में बहुत व्यापक रूप से किए जाने वाला कारीगरी का काम था। भारतीय बुनकर चार प्रकार के कपड़ों का निर्माण करते थे – सूती, रेशमी, ऊनी और मिश्रित मोटा सूती कपड़ा। बंगाल, लाहौर, आगरा, अवध, पटना, फतेहपुर सीकरी और गुजरात इत्यादि सूती कपड़ा उत्पादन के प्रमुख केन्द्र थे। कपड़ों के निर्माण के अतिरिक्त बंगाल और गुजरात बुने गए कपड़ों की वस्तुओं के बहुत प्रसिद्ध निर्यातक थे।

इस अवधि के दौरान रंगाई और ब्लीचिंग (विरंजन) की कला, प थक रूप में एक विशिष्ट कारीगरी के रूप में उभर कर आई। भड़ूच, अहमदाबाद, सूरत, पटना, सोनारगांव, ढाका, मसोलीपट्टम इत्यादि प्रमुख रंगाई और ब्लीचिंग (विरंजन) के केन्द्र थे।

चीनी का उत्पादन पूरे देश में होता था। खांडसारी के विविध रूपों में जैसे गुड़, बूरा, शक्कर इत्यादि का उत्पादन बंगाल, उड़ीसा, अहमदाबाद, लाहौर, मुल्तान और अन्य अनेक स्थानों पर होता था।

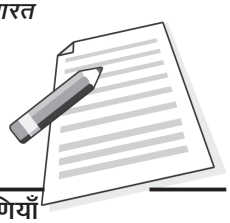

धातु निष्कर्षण एक अन्य मुख्य उद्योग था। नमक, कलमी शोरा, फ़िटकरी, अबरक इत्यादि का बहुत बड़े स्तर पर उत्पादन होता था। राजस्थान की साम्भर झील, पंजाब की रॉक साल्ट की खानें और समुद्र का पानी नमक उत्पादन के कुछ प्रमुख स्रोत थे। समुद्री नमक का उत्पादन मुख्यतया बंगाल, सिंध, मालाबार, मैसूर और कच्छ के रण में होता था। कमली शोर, जिसका उपयोग बुनियादी रूप से बारूदी चूर्ण (पाउडर) बनाने में एक मुख्य घटक के रूप में होता था, बहुत ही महत्त्वपूर्ण खनिज उत्पाद था। प्रारंभ में यह अहमदाबाद, बड़ौदा और पटना इत्यादि में निकाला जाता था। तथापि सत्रहवीं सदी के द्वितीय अर्ध काल के दौरान, पटना इस खनिज के संसाधन का एक बहुत महत्तवपूर्ण केन्द्र बन गया था।

धातुओं में, भारत में सोना और चांदी की खानों की कमी थी। इसलिए, इन धातुओं को प्रायः आयात किए जाता था। हीरों का खनन मुख्यतया गोलकुंडा में देखने में आया था। हीरों के उत्पादन के कुछ अन्य केन्द्र थे बीरगढ़ (बरार), पन्ना (मध्य प्रदेश), और खोखरा (छोटा नागपुर) इत्यादि। खेतड़ी (राजस्थान) तांबा उत्पादन का मुख्य केन्द्र था। लोहा बहुतायत में पाई जाने वाली आम धातु थी। मध्यकाल में बंगाल, इलाहाबाद, आगरा, बिहार, गुजरात, दिल्ली, कश्मीर, छोटा नागपुर और उड़ीसा के आसपास के क्षेत्र लोहा उत्पादन के प्रमुख केन्द्र थे।

काग़ज़ बनाने की कारीगरी का प्रारंभ, भारत में सल्तनत काल के दौरान हुआ। पहली बार इसका उत्पादन, प्रथम शताब्दी ई. के आसपास चीन में हुआ था। इसके पश्चात इस शिल्प में बहुत तेज़ी से विकास हुआ। काग़ज़ निर्माता, मुग़ल काल में लगभग प्रत्येक क्षेत्र में (उपलब्ध) थे। मध्यकाल के दौरान अनेक नई तकनीकों और विविध क्षेत्रों में उनके उपयोग का उद्‌भव देखने को मिला। कपड़ा बुनाई (टेक्सटाइल) के क्षेत्र में, तेरहवीं–चौदहवीं सदियों के दौरान, चरखे (स्पिनिंग व्हील) की शुरूआत बहुत ही महत्त्वपूर्ण खोज थी। तकली से धागा निर्माण करने की तुलना में चरखे से धागे के उत्पादन में छह गुना व द्धि हुई। इसी प्रकार पन्द्रहवीं शताब्दी में भारत में खड्‌डी (पिट–लूम) की शुरूआत हुई, जिससे कपड़े की बुनाई के काम को बहुत गति मिली। ड्रॉलूम बुनाई की एक और महत्त्वपूर्ण युक्ति (डिवाइस) थी, जिसका उपयोग विविध रंगों के धागों की बुनाई के पैटर्न बनाने के लिए साथ–साथ किए जाता था। इसी प्रकार कुछ विद्वान, ठप्पों (सांचों) से छपाई (ब्लॉक प्रिंटिंग) के काम का श्रेय भी भारत के मध्यकालीन काल को ही देते हैं।

धातु विज्ञान और धातु–कार्य के क्षेत्र में इनके निर्माण की प्रक्रिया में अनेक प्रकार की नई प्रौद्योगिकी का प्रारंभ हुआ। जिनमें कुछ प्रमुख थीं – सीधी खड़ी खुदाई के खड्‌डे खोदना (वर्टिकल बोर पिट्‌स), अंडाकार नाल (ओवल शॉफ्ट) से गहरी खानों की खुदाई, पुली इत्यादि का उपयोग। उच्च गुणवत्ता के स्टील और तांबा और जस्ता (जिंक) की मिश्रधातु बिदरी का उत्पादन इस काल के नए धातु–कर्म थे।

शस्त्रों और कवच निर्माण के क्षेत्र में, बारूद, तोप, आग्नेय–अस्त्र इत्यादि मध्यकालीन काल की नवीन महत्त्वपूर्ण खोजें थीं। भारत में आधुनिक तोपखाना एक ओर तो बाबर लेकर आया (जिसने इसे फ़ारस से प्राप्त किए था) और दूसरी ओर इसे पुर्तगालियों द्वारा भी लाया गया। इसके अतिरिक्त, फ़तुल्लाह शिराज़ी ने, जो अकबर के शासन काल में अत्यन्त मेधावी और दक्ष इंजीनियर था, इस क्षेत्र में अमूल्य नई खोजें कीं।

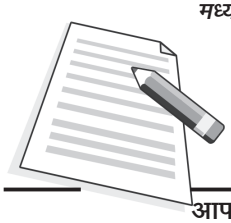

आपकी टिप्पणियाँ

कागज़ बनाने की कला, जैसा कि उल्लेख किए गया हैं, भारत में इसी अवधि के दौरान आई। इसके साथ ही किताबों पर जिल्द बांधने की कला का विकास भी इसके साथ–साथ हुआ।

यद्यपि काँच बनाने की कला से भारतीय प्राचीन काल के दौरान ही परिचित थे परन्तु इसका उपयोग मोती और चूड़ियाँ बनाने तक ही सीमित था। मध्यकाल में काँच की विभिन्न वस्तुएँ, जैसे–औषधीय शीशियाँ (फार्मास्यूटिकल फॉयल्स), बर्तनों आदि का निर्माण भी होने लगा था। तुर्कों के भारत में आने के साथ ही रांगा की परत (कलई करने) चढ़ाने (टिन–कोटिंग) का काम भी यहाँ शुरू हो गया था। इस तकनीक में तेजाब के ज़हरीले प्रभाव से बचने के लिए तांबे और पीतल के बर्तनों के अन्दर टिन की एक परत चढ़ाई जाती थी (कलई की जाती थी)।

उत्पादन की व्यवस्था

गाँव और क़स्बे दोनों स्थानों पर शिल्पों के उत्पादन की व्यवस्था होती थी। वहाँ शाही कारखाने भी होते थे। ग्रामीण क्षेत्रों में कारीगर दैनिक उपयोग की वस्तुएँ बनाते थे। ये कारीगर गाँव के सामाजिक तंत्र का हिस्सा होते थे, जिसे 'जजमानी' प्रथा कहते थे। दक्कन और महाराष्ट्र में यह प्रथा ज़्यादा व्यवस्थित थी। गाँव के दस्तकारों और सेवकों को इस क्षेत्र में 'बलूतेदार' कहा जाता था।

शहरों में रहने वाले कारीगर ऐसी उपयोगी वस्तुओं के केन्द्र में होते थे, जिनका उत्पादन बाजारों के लिए किए जाता था। लगभग प्रत्येक शिल्प के लिए एक विशिष्ट कारीगर होता था, जो बाज़ार के लिए चीज़ें निर्मित करता था। शिल्पकारी उत्पादन की व्यवस्था के इस स्तर पर, कारीगर व्यक्तिगत रूप में आवश्यक कच्चे माल और औज़ारों की व्यवस्था करता था, माल तैयार करता था और इसे बाज़ार में बेचता था। परन्तु इस प्रकार कारीगरों की वस्तुएँ निर्मित करने में एक बहुत बड़ी कमी थी। क्योंकि उत्पादन की व्यवस्था खुद व्यक्ति अपने आप करता था इसलिए उत्पादन प्रक्रिया में बड़ी पूंजी लगाने में कारीगर असमर्थ रहता था। इस समस्या के समाधान के लिए धीरे–धीरे उत्पादन की एक संशोधित प्रथा का विकास हुआ जिसे 'दादनी प्रथा' कहते थे। इस प्रथा में जो व्यापारी उस कारीगर द्वारा बनाई गई वस्तुओं का व्यापार करता था वही उसे कच्चा माल और अग्रिम धनराशि प्रदान करता था। निर्धारित अवधि बीतने के बाद वह व्यापारी तैयार वस्तुओं को इकट्ठा करके बाज़ार में बेचता था।

शाही कार्यशाला (कारखाना) शिल्पकारी उत्पादन का एक अन्य हिस्सा होता था। ये कारखाने शाही स्थापना के अंग थे। ये शाही घराने और दरबार के उपयोग के लिए वस्तुओं का निर्माण करते थे, प्रायः यहाँ पर बहुत महँगी और विलासिता की वस्तुओं का निर्माण होता था। कारखानों में बहुत ही कुशल कारीगरों को नियुक्त किए जाता था और जो एक ही छत के नीचे काम करते थे और राज्य के अधिकारियों द्वारा इन पर निगरानी रखी जाती थीं। स्पष्ट है कि दो बिल्कुल भिन्न प्रकार के कारखाने होते थे। पहले–पारंपरिक किस्म के कारखाने, जिनमें बहुत कम मात्रा में विलासितापूर्ण वस्तु का निर्माण होता था परन्तु वे बहुत उच्च गुणवत्ता की शिल्पकारी वस्तुएँ होती थीं और दूसरी टकसालें या शस्त्र निर्माण के एकक, जहाँ पर मानकों की द ष्टि से तकनीकी उच्चता की वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन होता था।

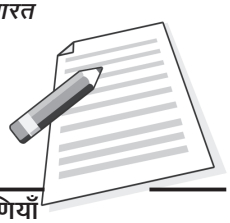

पाठगत प्रश्न 13.4

1. भारत के पाँच मध्यकालीन मुख्य शिल्पों के नाम लिखें?

2. कलमी शोरा उत्पादन के तीन मुख्य केन्द्रों के नाम लिखें?

3. हीरा उत्पादन के चार मुख्य केन्द्रों के नाम लिखें?

4. कपड़ों की बुनाई में प्रयुक्त होने वाली तीन महत्त्वपूर्ण तकनीकी युक्तियों के नाम लिखें?

13.6 व्यापार और वाणिज्य

मध्यकालीन काल में भारत में बहुत विकसित बाह्य और आंतरिक व्यापार था। आन्तरिक व्यापार का विकास स्थानीय, प्रादेशिक और अन्तर–प्रादेशिक स्तर पर हुआ। सड़क मार्गों से चीन, अरब, मिस्र, मध्य एशिया और अफ़गानिस्तान जैसे क्षेत्रों के साथ व्यापारिक संबंध रखे जाते थे। समुद्र के उस पार व्यापार फ़ारस की खाड़ी, दक्षिण चीन सागर, भूमध्य सागर और लाल सागर से होता था। यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों के आने से भारतीय उप–महाद्वीप में पुर्तगालियों, ब्रिटिश, डच और फ्रांसिसियों के साथ व्यापारिक गतिविधियों में तेज़ी आई। एशियन नौवहन (मैरिटाइम) व्यापार में भी इस दौरान काफी व द्धि हुई। इस कालावधि में अनेक नई व्यापारिक गतिविधियों, जैसे – ऋण देना, दलाली, बीमा इत्यादि में भी काफी व द्धि देखने में आई थी। बहुत बड़ी संख्या में व्यापारियों, सर्राफा दलालों इत्यादि को भी व्यापारिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाते देखा गया।

1. आंतरिक व्यापार

मुग़ल काल तक आन्तरिक व्यापार बहुत विकसित हो चुका था। हरेक स्थानीय आबादी में नज़दीक के कस्बों में नियमित बाज़ार थे जहाँ पर आसपास के इलाकों के लोग, सामान बेच और ख़रीद सकते थे। स्थानीय स्तर पर व्यापार के अतिरिक्त आवधिक बाज़ारों के ज़रिए भी व्यापार होता था, जिन्हें 'हाट' या 'पैंठ' कहते थे और ये सप्ताह के निश्चित दिन पर किसी स्थान पर लगते थे। इन स्थानीय बाज़ारों में, खाद्य–अनाज, नमक, लकड़ी और लोहे के उपकरण, खादी इत्यादि दैनिक उपभोग की वस्तुएँ उपलब्ध होती थीं।

यह स्थानीय बाज़ार, उस विशिष्ट प्रदेश के बड़े व्यापारिक केन्द्रों से जुड़े होते थे। ये केन्द्र उस विशिष्ट क्षेत्र के उत्पादों के बाज़ार के रूप में कार्य नहीं करते थे बल्कि अन्य क्षेत्रों से भी सेवा सामान उपलब्ध कराते थे। दिल्ली, आगरा, लाहौर, मुल्तान, बीजापुर, हैदराबाद, कालीकट, कोचीन, पटना इत्यादि मुग़लकाल के दौरान कुछ ऐसे व्यापारिक क्षेत्र थे।

विलासितापूर्ण उपभोक्ता वस्तुओं के संबंध में भी बहुत सक्रिय व्यापार होता था। ज़ियाऊद्दीन बरानी ने अपनी किताब तारीख़–ए–फिरोज़शाही में उल्लेख किए है कि सल्तनत काल के दौरान दिल्ली, कोल (अलीगढ़) से अर्क से निकाली गई शराब, देवगिरी से मलमल, लखनौटी से धारीदार कपड़ा और अवध से साधारण कपड़ा प्राप्त करते थे। बंगाल के, अपने मुख्य व्यापारिक केन्द्रों जैसे – हुगली, ढाका, मुर्शिदाबाद, सतगाँव और पटना इत्यादि के माध्यम से, भारत के सभी भागों के साथ बहुत विकसित अन्तर–प्रादेशिक व्यापारिक संबंध थे। इसी प्रकार, पश्चिम भारत में सूरत और अहमदाबाद और उत्तर–भारत में आगरा ऐसे प्रमुख केन्द्र थे, जिनके बहुत विकसित अन्तर–प्रदेशीय व्यापारिक संबंध थे।

2. विदेश व्यापार

भारत में हमेशा से अन्य देशों के साथ व्यापारिक संबंध रखने की परंपरा रही है। प्रारंभिक मध्य काल के दौरान (अर्थात दसवीं शताब्दी के बाद से), भारत में, समकालीन चीन, अरब और मिस्र के साथ व्यापार होता था। भारत की, फ़ारस की खाड़ी और दक्षिण चीन सागर के बीच भी, समुद्र मार्ग से व्यापार की काफी अच्छी हिस्सेदारी थी। भारत, चीन और दक्षिण एशिया से रेशम, चीनी मिट्टी के बर्तन, कपूर, लौंग, मोम और चंदन की लकड़ी और बहरीन, मस्कट, अदन और फ़ारस इत्यादि स्थानों से घोड़े आयात करता था। भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुएँ थीं, सुगंधियाँ (इतर) और मसाले, सूती कपड़ा, हाथी दांत की वस्तुएँ और बहुमूल्य रत्नों और कीमती पत्थर की मणियाँ इत्यादि। सल्तनत काल के दौरान भारत के मध्य एशिया, अफ़गानिस्तान, फ़ारस की खाड़ी और लाल सागर के साथ व्यापारिक संबंध थे। भारत मुख्य रूप से खाद्यान्न, बुना हुआ कपड़ा, नील, बहुमूल्य रत्न इत्यादि निर्यात करता था और सोना और चांदी जैसी बहुमूल्य धातुए, घोड़े, जरी (ब्रोकेड) और रेशम का सामान इत्यादि आयात करता था।

मुग़ल काल के दौरान, यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों के भारत में आने और उनके यूरो–एशियन और अन्तर–एशिया व्यापार में प्रत्यक्ष भागीदारी के कारण, विदेश व्यापार में और अधिक तेज़ी आई। मध्य एशिया, फ़ारस (पर्शिया) और यूरोप से भारत के व्यापारिक संबंध थे। इसके निर्यात में प्रमुख चीज़ें थीं, कपड़े, कलमी शोरा, चीनी (खांड), अफ़ीम और मसाले। अपनी निर्यात की गई वस्तुओं की तुलना में भारत में आयात की जाने वाली उपभोक्ता वस्तुएँ बहुत चुनिंदा थीं, जैसे चांदी, रेशम, चीनी मिट्टी के बर्तन, अच्छी गुणवता की शराब, कालीन (गलीचे), इत्र, कांच, घड़ियाँ, चांदी के बर्तन और घोड़े इत्यादि।

3. व्यापारिक समुदाय

मध्यकालीन भारत की संपूर्ण कालावधि के दौरान भारत में, व्यापारिक समुदाय ने समकालीन अर्थव्यवस्था और समाज में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सल्तनत काल के दौरान, 'कारवांनी' या 'नायक' व्यापारी होते थे, जो ग्रामीण क्षेत्रों से अनाज ढोने के विशेषज्ञ थे। फ़ारसी में 'कारवांनी' शब्द का अर्थ है वे लोग जो बहुत बड़ी संख्या में समूह में चलते हैं। बाद की सदियों में इन लोगों को 'बंजारे' कहा जाता था। हमें भी ऐसे मुल्तानी व्यापारियों के उल्लेख मिले हैं, जो दूर–दराज के स्थानों में व्यापार करने के काम में दक्ष थे। ये अधिकतर हिन्दू व्यापारी थे।

मुग़ल काल में भी हमें अनेक व्यापारिक वर्गों के संबंध में सूचनाएँ मिली हैं। समकालीन साहित्य में बंजारों के संबंध में अनेक उल्लेख मिले हैं जिनमें उन्हें ऐसे व्यापारिक वर्ग के रूप में दर्शाया गया है जो गांवों और शहरों के बीच व्यापार करते थे। वे अपने परिवारों और घरेलू–सामान साथ लेकर समूहों में चलते थे। ये मुल्तानी व्यापारी इस काल के दौरान, दिल्ली, 'पंजाब' और 'सिंध' के कुछ भागों में बहुत फलते–फूलते रहे। उत्तर भारत और दक्कन में 'बनिया' एक और प्रमुख व्यापारिक समुदाय था। इन्हीं के समकक्ष थे पंजाब में 'खतरी' और गोलकुंडा में 'कोमाती'। व्यापारिक गतिविधियों में लिप्त होने के साथ–साथ ये लोग ऋण देने का काम भी करते थे। मुग़ल काल के दौरान 'बोहरा' एक अन्य कौम थी जो प्रमुखतः व्यापार से जुड़ी थी। गुजरात, उज्जैन और बुरहानपुर में इनकी काफ़ी ज़्यादा संख्या देखने को मिली। कुछ अन्य प्रमुख व्यापारिक समूह थे 'चैती' (दक्षिण भारत), 'कलिंग' (कोरोमंडल के समुद्र तट से लेकर उड़ीसा तक), 'कोमाती' (तेलुगू बोलने वाला व्यापारिक समूह) इत्यादि।

(क) सर्राफ़: यह एक अन्य समुदाय था जो पैसे के लेन–देन के काम में लगा था। इस समुदाय के उल्लेख, सल्तनत काल से मिलने शुरू हो गए थे। तथापि, मुग़ल काल तक आते–आते इन्होंने तीन भिन्न–भिन्न कार्य विकसित किए।

1. धन (सिक्के) बदलने वाले – इस भूमिका में, सर्राफ़ को सिक्के की धातु संबंधी शुद्धता और उसके वज़न की जाँच के काम में विशेषज्ञ समझा जाता था। वे विशिष्ट सिक्कों की चालू विनिमय दर भी निर्धारित करते थे।
2. साहूकार/(महाजन), इस रूप में वे धनराशि अपने पास जमा करते थे और ब्याज पर ऋण भी देते थे।
3. व्यापारियों के रूप में ये लोग सोना, चांदी और गहनों का व्यापार करते थे। इसके अतिरिक्त वे 'हुंडियाँ' या 'विनिमय–पत्र' भी जारी करते थे।

(ख) दलाल: 'दलालों के रूप में पुकारे जाने वाला यह एक प्रमुख व्यापारिक वर्ग था। इसका उद्भव सल्तनत काल के दौरान हुआ। तथापि मुग़ल काल के दौरान 'दलाली' एक बहुत ही व्यापक व्यापारिक गतिविधि बन गई थी। ये लोग दो व्यापारिक गतिविधियों या लेन–देन में मध्यस्थ की तरह काम करते थे। विदेशी व्यापारी, जो उत्पादन केन्द्रों से अनभिज्ञ थे बाजार के तौर – तरीकों और भाषा से अपरिचित होते थे, वे अपने व्यापार के लिए मुख्य रूप से इन दलालों पर ही निर्भर होते थे। ये दलाल अलग–अलग हैसियतों में काम करते थे। कुछ को व्यापारियों या कंपनियों द्वारा नियुक्त किए जाता था। कुछ स्वतंत्र दलाल के रूप में काम करते थे, जो एक ही समय में कई ग्राहकों के लिए काम करते थे। इनमें से कुछ व्यापारिक केन्द्रों पर राज्य द्वारा नियुक्त दलाल के रूप में काम करते थे तथा जो वस्तुओं के क्रय–विक्रय का लेखा–जोखा रखते थे। दलालों का कोई निर्धारित शुल्क नहीं होता था। यह शुल्क उपभोक्ता वस्तु और दलाल द्वारा उस सौदे को पूरा करवाने में निभाए गए प्रयास पर निर्भर होता था।

4. व्यापारिक गतिविधियाँ

व्यापार और व्यापारिक वर्ग के विकसित होने के साथ–साथ, मध्य युग की अवधि के दौरान कुछ नई व्यापारिक गतिविधियाँ भी विकसित हो गई थीं।

(क) हुंडी: 'हुंडी' या 'विनिमय–पत्र' एक मध्यकालीन व्यापारिक गतिविधि थी। 'हुंडी' काग़ज़ पर बना एक दस्तावेज़ होता था जिसके अनुसार एक निश्चित समय की अवधि के बाद किसी विशिष्ट स्थान पर उसमें लिखी धनराशि के भुगतान का वचन देना होता था। इस प्रथा की शुरूआत की वजह थी, भारी मात्रा में नकद धनराशि को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की समस्या। सर्राफ़, जो 'हुंडी' के लेन–देन में मुख्य भूमिका निभाते थे, की विभिन्न कस्बों और शहरों में अनेक स्थापनाएँ होती थीं। ये लोग स्थानांतरित की जाने वाली नकद राशि स्वीकार करने के बाद, व्यापारियों को हुंडियाँ जारी करते थे। हुंडियों में धनराशि, और उसके नकदीकरण के स्थान के बारे में उल्लेख किए जाता था। इन हुंडियों को इनके निर्धारित गंतव्य स्थान तक ले जाने वाले व्यक्ति इन हुंडियों को जारी करने वाले सर्राफ़ों के एजेंटों के समक्ष प्रस्तुत करते थे और इनमें लिखी राशि के मुताबिक नकद राशि उससे प्राप्त कर लेते थे। व्यापारियों के अतिरिक्त राज्य के अधिकारी और अन्य अभिजात्य लोग भी धनराशि स्थानान्तरण के लिए इनका उपयोग करते थे।'हुंडी' प्रथा, धन स्थानांतरित करने की बहुत सुरक्षित और सुविधाजनक पद्धति के रूप में स्थापित हो गई थी। सर्राफ़ जो भी हुंडी जारी करते थे, उसके लिए दलाली वसूल करते थे।

(ख) बीमा: यह प्रथा बहुत व्यापक रूप में व्याप्त हो गई थी, विशेष रूप से मुग़ल काल में। कुछ बीमा फर्में विकसित हो गई थीं (अधिकांश सर्राफ़ों के स्वामित्व में), जो व्यापारिक माल के सुरक्षित वहन और वितरण की खुद जिम्मेदारी लेती थीं। यदि किसी मामले में पारगमन में माल को कोई नुकसान पहुंचता था, तो इन फर्मों को उस माल की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती थी। ऐसे माल के लिए बीमे के रूप में कुछ दलाली की राशि भी ली जाती थी। विभिन्न क्षेत्रों और माल के अनुसार दलाली की राशि की दर अलग–अलग होती थी। समुद्र पार माल भेजे जाने की दर, स्वदेश में भेजे जाने वाले माल से ऊँची होती थी।

13.7 मुद्रा प्रणाली

नकद लेन–देन के लिए मुख्य तौर पर चांदी और तांबे के सिक्के चलन में थे। सल्तनत काल में चांदी के अलग–अलग अनुपातों वाले चांदी के सिक्के मुख्य मुद्रा थे, जिसे 'टंका' कहते थे। 'जितल' और 'डाँग' तांबे के सिक्के थे। धातुओं के मूल्य में परिवर्तन के साथ ही सिक्कों के मूल्य में भी अन्तर आ जाता था। शेरशाह के शासनकाल में पहली बार सोने, चांदी और तांबे के सिक्कों में धातुओं की शुद्धता स्थापित की गई थी। चांदी का 'रूपया' लेन–देन कारोबार के लिए उपयोग किए जाने वाला आधारभूत सिक्का था। इसका वज़न 178 दानों के बराबर था। अकबर के शासन काल में भी यही जारी रहा परन्तु उसके उत्तराधिकारियों के आने पर उसमें उतार–चढ़ाव होते रहे। मुग़लों के तांबे के 'दाम' का वजन 323 दानों के बराबर था। चांदी के 'रूपए' और तांबे के 'दाम' के मूल्य में चांदी की उपलब्धता और अभाव के अनुसार उतार–चढ़ाव होता रहता था। अकबर के काल में 1 चांदी के रूपये का मूल्य 40 तांबे के दामों के बराबर था। सोना या अशर्फ़ी का वज़न 169 दानों के बराबर होता था।

सिक्कों की ढलाई, साम्राज्य के सभी भागों में फैली शाही टकसालों में होती थी। अकबर के शासन काल में सोने के सिक्के 4 टकसालों से, चांदी के सिक्के 14 और तांबे के सिक्के 42 टकसालों से जारी किए जाते थे। औरंगज़ेब के काल तक रूपयों की टकसालों की संख्या बढ़कर 40 हो गई थी।



चित्र 13.1 सिक्के

पाठगत प्रश्न 13.5

1. ऐसे पाँच देशों के नाम लिखें, जिनके साथ मध्यकाल के दौरान भारत में सड़क मार्ग से व्यापारिक संबंध थे।

2. 'हाट' क्या थी?

3. मध्यकालीन बंगाल के कुछ प्रमुख व्यापार केन्द्रों के नाम लिखें?

4. निम्नलिखित शब्दों की संक्षिप्त व्याख्या करें :
   कारवांनी, खत्री, कोमाती, बोहरा, चैत्ती

आपने क्या सीखा

आइए इस पाठ के कुछ मुख्य मुद्दों को संक्षेप में दोहराते हैं। अधिकांश लोगों का व्यवसाय क षि से जुड़ा था। नये – नये क्षेत्रों में क षि के विस्तार के द्वारा क षि उत्पादन में व द्धि करना, राज्य की नीतियों का भाग था। किसान लोग अनेक प्रकार की खाद्य फ़सलें, नकद फ़सलें, फल, सब्जियाँ और मसाले उगाते थे। वे उच्च क षि तकनीकों को उपयोग में लाते थे, जैसे फसलों को बदल–बदल कर बोना (फसल–चक्र), दो फ़सलें बोना, एक वर्ष में तीन फसलों की बुआई, फलों की कलम लगाना इत्यादि। इस प्रयोजन के लिए जल को ऊँचाई तक उठाने के लिए जल उठाने की क त्रिम यांत्रिकी (आर्टिफिशियल वाटर लिफ्टिंग डिवाइस) का उपयोग करते थे। राज्य की आय का सर्वाधिक भाग भू–राजस्व से आता था। अलाउद्दीन ख़िलजी, शेरशाह सूरी और अकबर जैसे शासकों द्वारा इस क्षेत्र में किए गए कुछ अग्रणी प्रयासों के परिणामस्वरूप भू–राजस्व प्रशासन को बहुत व्यवस्थित और व्यापक रूप से विकसित किए गया था।

राज्य और किसानों के मध्य लगान से संबद्ध मध्यस्थों का एक बहुत ही शक्तिशाली समूह मौजूद था। इनको निर्धारित क्षेत्रों से भूमि का लगान हासिल करने के कुछ वंशानुगत या राज्य द्वारा प्रदत्त अधिकार, (धर्म के आधार पर दान में प्राप्त अथवा उनकी सेवाओं के बदले में प्राप्त अधिकार) प्राप्त थे। ये मध्यस्थ भू–लगान एकत्र करने भी प्रक्रिया में राज्य की सहायता करते थे। मध्यकालीन भारतीय किसानों को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। भूमि कर की शोषक प्रक ति, मध्यस्थों द्वारा लगान में हिस्सा मांगना और बार–बार आने वाली प्राक तिक आपदाओं ने साधारण किसान के जीवन को बहुत ही निराशाजनक और कष्टकारी बना दिया था। इसीलिए, किसानों के विद्रोह भी इस अवधि के दौरान होते रहते थे। कपड़ों की बुनाई (टेक्सटाइल), खनन और धातु–कर्म, पोत–निर्माण, निर्माण कार्य, शस्त्रों और कवच का निर्माण इस कालावधि के दौरान कार्यशालाओं (शाही कारखानों) में, शासक अभिजात्यों के उपयोग के लिए उपभोक्ता वस्तुओं का निर्माण होता था।

वाणिज्य के क्षेत्र में भारत के संबंध समकालीन मध्य एशिया, चीन, दक्षिण–पूर्व एशिया और यूरोप इत्यादि से थे। यूरोपीय व्यापारिक कंपनियाँ, जैसे पुर्तगाली, अंग्रेज़, डच और फ्रांसीसी थी। अन्तर–एशिया और यूरो–एशियन व्यापार में उनकी भागीदारी ने भारतीय वाणिज्य को अत्यन्त प्रभावित किए।

पाठान्त प्रश्न

1. मध्यकालीन भारत में खेती–बाड़ी की सीमा क्या थी?
2. 'पर्शियन व्हील' (रहट) से आप क्या समझते हैं? यह कैसे काम करता था?
3. फिरोज़शाह तुग़लक द्वारा सिंचाई के लिए बनवाई गई कुछ नहरों के नाम लिखें?
4. भू–राजस्व मूल्यांकन के विविध चरणों की व्याख्या करें।

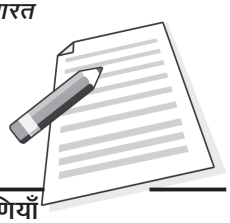

5. 'आइना–ए–दहसाला' क्या था? यह कैसे कार्य करता था?
6. कुछ प्रमुख भूमि–राजस्व कार्मिकों के नामों और परगना और ग्रामीण स्तर पर उनके विशिष्ट कार्यों का उल्लेख करें।
7. 'कारखाना' क्या था? यह कैसे कार्य करता था?
8. मध्यकालीन भारत के पांच प्रमुख व्यापारिक समुदायों के नाम लिखें।
9. 'सर्राफ' कौन था? उसकी क्या भूमिका थी?
10. 'हुंडी' शब्द से आप क्या समझते हैं? व्यापार और वाणिज्य को इसने कैसे सरल बनाया?
11. लगान एकत्र करने में जमींदार मध्यस्थों की भूमिका पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
12. मध्यकालीन भारत के दौरान सिंचाई के साधनों पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
13. मध्यकाल के दौरान कारीगरों के उत्पादन की व्यवस्था पद्धति पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
14. मध्यकालीन भारत के स्थानीय प्रादेशिक और अन्तर प्रदेशीय व्यापार के संबंध में संक्षिप्त विवेचन करें।
15. मध्यकालीन भारत की मुद्रा प्रणाली पर टिप्पणी लिखें।

पाठगत प्रश्नों के उतर

13.1

1. मध्यकालीन भारतीय इतिहास के सम्पूर्ण काल के दौरान किसानों द्वारा खेती की जाने वाली वास्तविक ज़मीन से बहुत अधिक फालतू ज़मीन मौजूद थी। नए–नए क्षेत्रों को खेती के अधीन लाकर क षि उत्पादों में व द्धि के प्रयास किए जाते थे।
2. खाद्य फ़सलें – चावल, गेहूँ, जौ और ज्वार, चना, मूंग;

   नकदी फ़सलें – गन्ना, अफ़ीम, नील, रेशम
3. तम्बाकू, अनानास, चैरी, पपीता
4. पर्शियन व्हील (रहट) इस युग की सबसे उच्च वाटर लिफ्टिंग डिवाइस (जल उठाने की युक्ति) थी। एक गियर की यांत्रिकी सहित, एक पहिये के रिम पर, हार की तरह चारों ओर बर्तनों की एक लड़ी जोड़ दी जाती है। पशु–शक्ति के बल से इस पहिये को घुमाया जाता था, जिससे एक के पीछे एक बँधे डिब्बों से पानी ऊपर चढ़ता रहता था।

13.2

1. फ़सल बांटने के तरीके के रूप में, 'खेत बटाई' – किसानों और राज्य के बीच खेत में खड़ी फ़सल के बंटवारे को कहते हैं; 'लेंग बटाई' यानी फ़सल की कटाई के बाद फ़सल की छंटाई किए बग़ैर उसके ढेर बनाना।

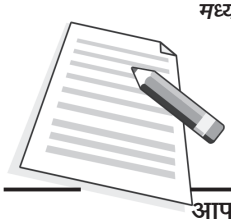

आपकी टिप्पणियाँ

2. अलाउद्दीन ख़िलजी, शेरशाह सूरी और अकबर।

3. ये भूमि–राजस्व से जुड़े दो दस्तावेज़ थे। 'पट्टा' किसी व्यक्तिगत किसान को दिया जाने वाला वह दस्तावेज़ था, जिसमें उसकी भूमि की श्रेणी और विभिन्न फ़सलों पर लगने वाले भूमि के लगान का पूरा विवरण उल्लिखित होता था। 'क़बूलियत' एक सहमति पत्र था, जिसके द्वारा किसान अपनी भूमि पर देय भूमि लगान, राज्य को भुगतान करने का वचन देता था।

13.3

1. यह शब्द, दिल्ली सलतनत की स्थापना से पहले, वंशानुगत भूमि पर अधिकार प्राप्त करने वाले वर्ग पर लागू होता था। ये लोग भू–राजस्व एकत्र करने की प्रक्रिया में, राजस्व प्राप्त करने में राज्य की सहायता करते थे।

2. 'मुक़्क़दम' और 'पटेल' क्रमशः उत्तर और दक्षिण भारत में गांव के मुखिया होते थे, जो अपने संबंधित गांव में भूमि का लगान एकत्र करने और गांव में क़ानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए ज़िम्मेदार थे।

3. यह विद्रोह जाटों, सिक्खों, मराठों और सतनामियों में था।

13.4

1. मध्यकालीन भारत के पाँच प्रमुख शिल्प थे – कपड़ा बुनाई (टेक्सटाइल), रंगाई और ब्लीचिंग, चीनी का निर्माण, खनिज निकालना और धातुविज्ञान (धातु कर्म)

2. अहमदाबाद, बड़ौदा और पटना

3. गोलकुंडा, बैरागढ़, पन्ना और खोखरा

4. स्पिनिंग व्हील (चरखा), पिट लूम और ड्रॉलूम

13.5

1. भारत ने सड़क मार्ग से, चीन, अरब, मिस्र, फ़ारस और अफ़गानिस्तान से व्यापार किए।

2. **'हाट'** आवधिक स्थानीय बाज़ार था, जो कि सप्ताह के निर्धारित दिनों को लगता था। इन बाज़ारों से स्थानीय लोग अपनी दैनिक इस्तेमाल की चीज़ें खरीदते थे।

3. बंगाल के कुछ प्रमुख व्यापार केन्द्र थे, हुगली, ढाका, मुर्शिदाबाद, सतगांव और पटना।

4. **'कारवांनीस'** एक फ़ारसी (पर्शियन) शब्द है, जिसे उन व्यापारियों के लिए उपयोग किए जाता था, जो समूहों में चलते थे और एक से दूसरे स्थान पर अनाज वहन करते थे।

खत्री - खत्री, पंजाब में अनाज के व्यापारियों (आढ़तियों) का एक प्रमुख व्यापारिक समुदाय था।

कोमाती - कोमाती, गोलकुंडा का एक प्रमुख व्यापारी समूह था (तेलुगू बोलने वाला)

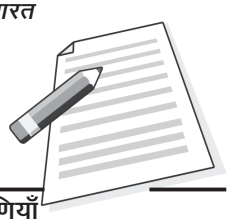

बोहरा - बोहरा, प्रमुख व्यापारिक समुदाय था, जिनकी गुजरात, उज्जैन और बुरहानपुर में काफ़ी संख्या में उपस्थिति थी।

चैत्ती - दक्षिण भारत का प्रमुख व्यापारिक समूह।

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. देखें खंड 13.1,(1)
2. देखें खंड 13.1, (3) अनुच्छेद 3
3. देखें खंड 13.1, (3) अनुच्छेद 4
4. देखें खंड 13.2, अनुच्छेद 1 से 4
5. देखें खंड 13.2, अनुच्छेद 5
6. देखें 13.3
7. देखें 13.5, उत्पादन की व्यवस्था के नीचे
8. देखें 13.6, बिन्दु 3
9. देखें खंड 13.6, बिन्दु (3) (क)
10. देखें 13.6, बिन्दु 4 (क)
11. देखें 13.3
12. देखें खंड 13.1, बिन्दु (3)
13. देखें 13.5, उत्पादन की व्यवस्था के नीचे
14. देखें खंड 13.6, बिन्दु (3)
15. देखें खंड 13.7

शब्दावली

आमिल - लगान कार्मिक, परगना स्तर पर लगान एकत्र करने वाला प्रभारी अधिकारी।

अमीन - भूमि का पर्यवेक्षक, लगान मूल्यांकन के प्रयोजन से भूमि का पर्यवेक्षण करता था।

बंजर - अनुपजाऊ भूमि, खेती के लिए अयोग्य

चच्चर - काम उपजाऊ भूमि, इस पर तीन से चार वर्षों में एक बार खेती की जाती है।

चैत्ती - दक्षिण भारत का एक प्रमुख व्यापारी समूह।

दादनी - शिल्पकारी वस्तुओं के निर्माण का एक रूप, जिसमें कारीगर को उस व्यापारी द्वारा कच्चा माल और अग्रिम

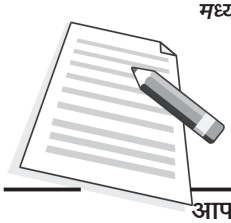

आपकी टिप्पणियाँ

धन दिया जाता है, जो इन चीज़ों का व्यापार करता था। एक निर्धारित समय के बाद, व्यापारी तैयार वस्तुओं को ले जाते थे और इन्हें बाजार में बेचते थे।

दाम - मुग़लकाल के दौरान चलने वाले तांबे के सिक्के।

दस्तूर - लगान मंडल; भू–राजस्व मूल्यांकन के प्रयोजन से क्षेत्र का विभाजन, राजस्व मंडलों में करना, हरेक मंडल को दस्तूर कहते थे।

जागीरदार - मुगल राज्य के लिए की गई अपनी सेवाओं के बदले में लगान एकत्र करने का कार्य हासिल वाले लोग (जागीर)

जीतल - दिल्ली सल्तनत की तांबे की मुद्रा (सिक्के) 148 जीतल एक टंका के बराबर थे।

हुंडियाँ - विनिमय पत्र।

कानकुट - लगान मूल्यांकन की एक पद्धति। पहले भूमि को मापा जाता था, इसके बाद उसकी उत्पादकता निर्धारित की जाती थी और मापे गए क्षेत्र के प्रति एकक के अनुसार लगान की मांग निर्धारित की जाती थी।

कारकून - गांव का लिपिक (क्लर्क)

कारख़ाना - शाही कार्यशाला, शाही परिवारों के लिए उपभोक्ता वस्तुओं का निर्माण होता था, और जहाँ पर भाड़े पर लिए गए मज़दूरों की सहायता से इसका काम चलाया जाता था।

खुदकाश्त - धनी/सम द्ध किसान, जो एक बहुत बड़े भूभाग के और क षि संबंधी औज़ारों के स्वामी होते थे।

कुलकर्णी - दक्कन में गांव का लेखाकार।

ख़ुत - सल्तनत काल के धनी किसान।

कारवानीस् - ऐसे व्यापारी जो समूहों में चलते थे और ग्रामीण क्षेत्र से अनाज को ढोने में विशेषज्ञ थे।

खेत बटाई - फ़सल में हिस्सेदारी का एक तरीका जिसमें खेतों की खड़ी फ़सल को, किसान और राज्य के राजस्व एजेंटों के बीच विभाजित किए जाता था।

लंग बटाई - फ़सल में भागीदारी का एक अन्य तरीका; फ़सल की कटाई के बाद इसको छँटाई किए बग़ैर ही इसके ढेर बनाए जाते थे और इनमें राज्य के हिस्से को निर्धारित किए जाता था।

मुक़्क़दम - गांव का मुखिया।

पोलाज - एक श्रेणी की भूमि, जो इस प्रकार की खेती के लिए उपयुक्त थी, जहाँ से वर्ष में दो फ़सलों का उत्पादन लिया जाता था।

परती - एक अन्य वर्ग की भूमि, जिसकी उपजाऊ शक्ति की पूर्ति के लिए, दो फ़सलों के बाद इसे खाली छोड़ना पड़ता था।

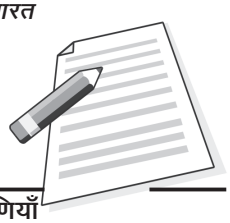

पट्टा - स्वामित्व–पत्र (टाइटल डीड), राज्य द्वारा प्रत्येक किसान को दिया जाने वाला एक दस्तावेज़ जिसमें किसान क कब्ज़े में दी गई भूमि और उस पर लागू होने वाले लगान की दरें उल्लिखित होती थीं।

पटवारी - उत्तर भारत में गांव का लेखाकार।

काबुलियत - किसानों से लिया जाने वाला एक सहमति–पत्र, जिसके अनुसार पट्टे की विशिष्टताओं के अनुसार उसे भू–राजस्व देने का वचन देना होता था।

क़ानूनगा - परगना स्तर पर लगान एकत्र करने के लिए अधिक त उप–अधिकारी।

रैयत - साधारण किसान।

राय - फसल के मूल्यों की केंद्रीय सूची।

सर्राफ़ - मूल रूप से धन के लेन–देन से जुड़ा एक समुदाय; जो धन के विनिमय, बैंकर और हुंडियाँ जारी करने का काम करता था।

टंका - दिल्ली सल्तनत का चांदी का मानक सिक्का।

जमींदार - जमींदार मध्यस्थों का एक वर्ग, जिन्हें मुग़ल काल में वंशानुगत भूमि स्वामित्व का अधिकार मिलता था।



14

मध्यकालीन भारत में सांस्क तिक विकास

भारत में मध्यकाल को महान सांस्क तिक के युग के रूप में जाना जाता है। इस काल में सांस्क तिक विकासों के एक नए चरण की शुरुआत हुई। तुर्क और मुगलों ने नए विचारों को पेश किया तथा धर्म, दर्शन और विचार, भाषा और साहित्य, स्थापत्य कला की शैलियां और इमारत निर्माण सामग्री का प्रयोग, चित्रकला और ललित कला के क्षेत्र में नई विशेषताओं का जन्म हुआ।

भारत हर क्षेत्र में पहले ही सांस्क तिक रूप से काफी सम द्ध था। विभिन्न संस्क तियों के संश्लेषण ने नई दार्शनिक तथा धार्मिक परम्पराओं, विचारों और संस्क ति के नए रूपों और शैलियों को जन्म दिया। इस अध्याय में आप कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में हुए विभिन्न सांस्क तिक विकासों का अध्ययन करेंगे।

हम मुख्यतः अध्ययन करेंगेः

- नए धार्मिक आंदोलन जैसे सूफी तथा भक्ति
- सिक्ख धर्म का नए धर्म के रूप में उदय
- विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यिक कार्यों का विकास
- उर्दू तथा फारसी भाषाओं तथा साहित्यिक कार्यों का विकास
- क्षेत्रीय विभिन्नताओं के साथ सल्तनत तथा मुगल काल कीस्थापत्य कला
- संगीत के नए प्रकार
- मुगल कला तथा भारत में जन्मीं अन्य नई शैलियाँ

हम उम्मीद करते हैं कि इस पाठ को पढ़ने के उपरांत इस काल के दौरान संस्क ति के आप के ज्ञान में व द्धि होगी।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- भारत में सूफियों की विभिन्न कार्यप्रणाली तथा दर्शन बता सकेंगे;
- भारत में भक्ति संतों के विभिन्न वर्गों की कार्यप्रणाली तथा दर्शन की चर्चा कर सकेंगे;

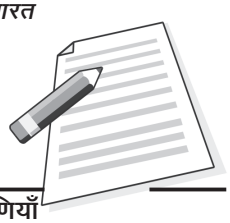

- सिक्ख धर्म के उदय, इसकी कार्य प्रणाली, खालसा पंथ तथा गुरु की संस्था के विषय में बता सकेंगे;
- मध्यकालीन भारत में चित्रकला की विभिन्न शैलियों का वर्णन कर सकेंगे;
- मध्यकालीन भारत में नई भाषाओं और साहित्य के उदय पर चर्चा कर सकेंगे;
- मध्यकालीन भारत में संगीत और न त्य की नई शैलियों का वर्णन कर सकेंगे; और
- मध्यकालीन स्थापत्य कला की प्रमुख शैलियों के निर्माण संबंधी नई तकनीकों और प्रयुक्त सामग्री की विस्तार से चर्चा कर सकेंगे।

14.1 सूफीवाद

'सूफी' शब्द इस्लाम के रहस्यमय धार्मिक विचारों को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होता है। यह 11वीं शताब्दी तक एक पूर्ण विकसित आंदोलन का रूप ले चुका था। सूफी संत, सूफियों द्वारा कठिन मार्ग को अपनाकर ईश्वर के साथ प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित करने पर जोर देते थे। सूफीवाद अथवा रहस्यवाद 8वीं शताब्दी में उदय हुआ तथा शुरुआती सूफियों में राबिया–अल–अदवई, अलजुनैद तथा बयाजिद बस्तमी का नाम उभर कर आता है। सूफीवाद का मूल आधार ईश्वर, मनुष्य तथा उन दोनों के मध्य जो संबंध, है, वह है प्रेम। उनका मानना है कि इंसान का उदय रुह (आत्मा) कुरबत (दैवी निकटता) तथा हलूल (दैवी रूप में मिलाप) के सिद्धांतों से हुआ है और इंसान और खुदा के रिश्तों से ही प्रेम (पवित्र प्रेम) तथा फना (खुद का समर्पण) अस्तित्व में आए। ऐसे लोगों को सूफी कहा जाता था जिनका ह्रदय पवित्र होता था; तथा जो अपनी तपस्या तथा खुदा को पाने के लिए प्रेम के सिद्धान्तों के द्वारा खुदा से वार्तालाप करते थे। मुरीद (शिष्य) को ईश्वर के साथ यह वार्तालाप करने के लिए प्रक्रिया के लिए मकामात (विभिन्न चरणों) से होकर गुजरना पड़ता था।

खानकाह (धर्मशाला) सूफियों के विभिन्न वर्गों की गतिविधियों का केन्द्र होती थीं। खानकाह शेख, पीर, या मुरशिद (शिक्षक) द्वारा संचालित होती थी जो अपने मुरीदों के साथ रहा करते थे। समय के साथ खानकाह शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्रों में तब्दील होती चली गई। बारहवीं शताब्दी तक सूफी विभिन्न रूपों में संगठित हो गए। इन रूपों (सिलसिला) का मतलब कड़ी था तथा यह पीर तथा मुरीद की निरंतर कड़ियों को बतलाता था। पीर की म त्यु के पश्चात गुम्बद या मकबरा, दरगाह उसके मुरीदों तथा अनुयायियों के लिए केन्द्र बन जाता था।

10वीं शताब्दी में इस्लामी साम्राज्य के सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में सूफी पंथ का विस्तार हुआ। ईरान, खुरासान, ट्रांसोक्सियाना, मिस्र, सीरिया तथा बगदाद प्रमुख सूफी केन्द्र थे। अल–गज़ली (1059-1111 ई.) सर्वाधिक सम्मानित सूफी संतों में से एक माने जाते हैं। उन्होंने सूफी रहस्यवाद को इस्लाम में उचित जगह दिलाने के लिए सूफी रहस्यवाद को इस्लामी परम्परा के अनुकूल बनाया। उन्होंने शिष्यों के लिए आध्यात्मिक गुरु के मार्ग दर्शन को अपनाने पर ज़ोर दिया। साथ ही सर्वोच्च सत्ता पैगम्बर साहब के महत्त्व और उनके नियमों के पालन पर बल दिया।

भारत में सूफी पंथ की शुरुआत 11वीं शताब्दी में हुई। अल हुजवीरी, जिन्होंने उत्तरी भारत में स्वयं को स्थापित किया उन्हें लाहौर में दफनाया गया तथा उन्हें उपमहाद्वीप का सबसे पुराना सूफी संत होने का गौरव प्राप्त हुआ। भारतीय मध्यकालीन इतिहास में प्रमुख सूफी सिलसिले हैं – चिश्ती, सोहरावर्दिया, कादरिया तथा नक्शबंदिया।

सल्तनत काल में चिश्ती तथा सोहरावर्दी सिलसिले लोकप्रिय थे। पंजाब तथा सिंध में जहां सोहरावर्दी सक्रिय थे, वहीं चिश्ती दिल्ली, राजस्थान तथा गंगा के पश्चिमी क्षेत्रों में प्रेम का संदेश फैला रहे थे। सल्तनत काल के अंत तक वे गंगा क्षेत्र के पूर्वी क्षेत्रों (बिहार तथा बंगाल) और दक्कन तक फैल चुके थे। मध्यकाल में सूफियों ने इस्लामी धर्मतत्व विषयक सिद्धान्तों, जैसे वहादुत–उल–वजूद (जीवन की एकता) का प्रचार–प्रसार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की तथा ज़ियारत (दरगाहों पर जाने की क्रिया) जैसी आदतों को विकसित करने को भी प्रोत्साहन दिया।

भारत में शुरू हुए सूफी मत की निम्न विशेषताएँ थीं:

- सूफी विभिन्न सिलसिलों (क्रमों) में व्यवस्थित थे।
- इनमें से अधिकतर सिलसिलों की शुरुआत प्रसिद्ध सूफी संतों या पीरों ने की थी। उनके नाम पर ये चलते थे तथा शिष्य उनका अनुसरण किया करते थे।
- सूफियों का मानना था कि खुदा की प्राप्ति के लिए आध्यात्मिक गुरु या पीर की आवश्यकता होती है।
- पीर अपने शिष्यों के साथ खानकाह में रहते थे।
- खानकाह (धर्मशाला) सूफी गतिविधियों का केन्द्र हुआ करती थी।
- खानकाह ज्ञान का एक प्रमुख केन्द्र बनकर उभरे, जो कि मदरसों से सर्वथा भिन्न थे।
- बहुत से सूफी संतों ने संगीतमय धार्मिक सभा अर्थात 'सम' का अपनी खानकाह में आनंद उठाया। इस काल के दौरान संगीत की नई विधा कव्वाली का विकास हुआ।
- जियारत या सूफी संतों की दरगाहों की तीर्थयात्रा भी एक महत्त्वपूर्ण रस्म बनकर उभरी।
- सभी सूफी संत चमत्कार में विश्वास करते थे। लगभग सभी पीर खुद के द्वारा किए गए चमत्कारों से जुड़े हुए थे।
- राजतंत्र तथा शासन के बारे में हर सूफी सिलसिले के मत अलग–अलग थे।

चिश्ती सिलसिला

भारत में चिश्ती विचारधारा की स्थापना मुईनुद्दीन चिश्ती ने की थी। प्रतीत होता है कि भारत में वह मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय आए तथा इसके बाद 1206 में अजमेर चले गए। ख्वाजा मुईनुद्दीन की प्रसिद्धि में व द्धि सन 1235 में उनकी म त्यु के पश्चात् हुई। मुहम्मद तुगलक ने उनकी कब्र की यात्रा की तथा उसके पश्चात 15वीं शताब्दी में मालवा के महमूद खिलजी द्वारा मस्जिद तथा गुम्बद का निर्माण करवाया गया। मुगल बादशाह अकबर के शासन के पश्चात् इस दरगाह का संरक्षण अपनी ऊंचाई पर पहुंचा।

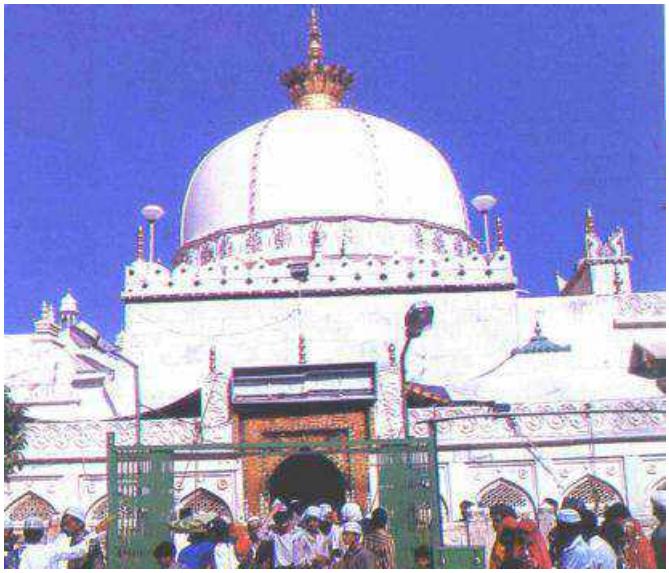

चित्र 14.1 अजमेर दरगाह

चिश्तियों का मानना थाः

- प्रेम इंसान तथा खुदा के बीच में एक बंधन है।
- विभिन्न पंथों को मानने वालों के बीच सहनशीलता हो।
- विभिन्न धार्मिक विश्वासों के अनुसरण के बावजूद शिष्यों की स्वीकार्यता हो।
- सबकी भलाई का रवैया हो।
- हिन्दू तथा जैन योगियों के संपर्क में रहना। तथा
- सामान्य भाषा का प्रयोग करना।

दिल्ली में चिश्तियों की उपस्थिति कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के द्वारा जानी जाती है जो अपने ग हक्षेत्र ट्रांसोक्सियाना से 1221 ई. में दिल्ली में बस गए थे। यह मंगोल आक्रमण का वह काल था जब मंगोलों से बचकर मध्य एशिया के लोग भाग रहे थे। दिल्ली में उनकी मौजूदगी सोहरावर्दियों के लिए चुनौती बन गई थी तथा उन्होंने उन पर विभिन्न प्रकार के आरोप लगाकर दिल्ली छोड़ने को विवश कर दिया। दिल्ली के सुल्तान इल्तुतमिश ने हाँलाकि इन आरोपों को खारिज कर दिया, जिससे सोहरावर्दियों के विरोध को हल्का कर दिया गया। चिश्ती पीरों ने ज़िंदगी की सादगी, गरीबी, विनम्रता तथा खुदा के प्रति निस्वार्थ समर्पण पर बल दिया। भौतिक वस्तुओं के परित्याग को उन्होंने इन्द्रियों पर नियंत्रण के लिए आवश्यक बताया, जो एक आध्यात्मिक जीवन जीने के लिए जरूरी है। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने ज़ोर दिया कि खुदा को पाने का सर्वोच्च तरीका मुसीबत में पड़े व्यक्ति की मदद करना, असहाय लोगों की जरूरतों को पूरा करना तथा भूखे को भोजन देना है। वे सुल्तानों से किसी भी प्रकार की मदद से इंकार करते थे।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण चिश्ती बाबा फरीदुद्दीन गंज–ए–शकर ने मुल्तान तथा लाहौर के बीच रास्ते में हांसी (हरियाणा) में पड़ाव डाला। सल्तनत काल के सबसे विख्यात सूफी

संत निज़ामुद्दीन औलिया थे। उनका समय 14वीं शताब्दी माना जाता है जो राजनीतिक परिवर्तनों तथा उथल–पुथल का काल था। अपने जीवन काल में उन्होंने बलबन की म त्यु के पश्चात् खिलजी तथा खिलजी के पश्चात् तुगलकों का शासन देखा। निज़ामुद्दीन औलिया के जीवन के विषय में कई कहानियां प्रचलित हैं। कहा जाता है कि ख्वाजा ने सुल्तान के दरबार में विभिन्न संघों तथा पक्षों में से किसी से भी मतलब न रखने की कड़ी नीति अपनाई थी, जिससे वे लोगों की नजरों में आदर के पात्र थे। नसीरुद्दीन चिराग, दिल्ली के अन्य लोकप्रिय संत थे। उन्होंने तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाई थी।

इन सब खूबियों ने सूफ़िओं को एक वफादार तथा समर्पित शिष्य समुदाय बनाने के योग्य किया।

दक्कन में 13वीं शताब्दी में चिश्ती सिलसिला शेख बुरहानुद्दीन गरीब द्वारा स्थापित हुआ। 14 से 16वीं शताब्दी के बीच कई सूफी संत गुलबर्ग प्रस्थान कर गए। यहाँ एक परिवर्तन दिखाई देता है कि इस समय तक कुछ चिश्ती संत शासन से दान तथा संरक्षण प्राप्त करने लगे थे। मुहम्मद बंदा नवाज उस क्षेत्र के लोकप्रिय संतों में से एक थे। दक्कन क्षेत्र में बीजापुर शहर सूफी गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बनकर उभरा।

सोहरावर्दी सिलसिला

इस सिलसिले (पंथ) की स्थापना बगदाद में शियाबुद्दीन सोहरावर्दी ने की थी। यह भारत में बहाउद्दीन जकरिया द्वारा स्थापित हुआ। उसने मुल्तान में आधार बनाकर सोहरावर्दी वर्ग की नींव डाली, जो उस समय कुबाचा के अधीन था। वह कुबाचा के खिलाफ था तथा खुलेआम उसके विरोधी इल्तुतमिश की अच्छाइयों के गुण गाता था। उसके तरीके चिश्तियों से सर्वथा भिन्न थे। चिश्तियों के उलट सोहरावर्दी सुलतान शासकों से दान लेने में परहेज़ नहीं करते थे। उनका मानना था कि सूफियों को संपत्ति तथा ज्ञान, रहस्यात्मक ज्ञान को हासिल करना चाहिए। सोहरावर्दी संत मानते थे कि गरीबों की सेवा बेहतर ढंग से करने के लिए यह आवश्यक है। उन्होंने धार्मिक विश्वासों के बाहरी प्रकार के अनुसरण करने पर ज़ोर दिया और इल्म (बुद्धि) तथा रहस्यवाद के समन्वय की वकालत की। शेखों के सामने सिर झुकाना, आगन्तुकों को पानी पेश करना तथा पंथ में दीक्षा के समय सिर का मुंडन करवाना जैसी प्रथाएं नकार दी गईं जिनका अनुसरण चिश्ती किया करते थे, उनकी म त्यु के पश्चात भी इन सिलसिलों ने पंजाब तथा सिंध में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाना जारी रखा।

नक़्शबंदी सिलसिला

भारत में इस वर्ग की शुरुआत ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबंदी ने की। इस सिलसिले के रहस्यवादियों ने प्रारम्भ में शरीयत के पालन पर ज़ोर दिया तथा हर नवपरिवर्तन अर्थात बिद्दत दर्शन के सार की सार्वजनिक निंदा की। ख्वाजा बहाऊद्दीन नक्शबंदी का उत्तराधिकारी शेख बरकी बिल्लाह दिल्ली के नज़दीक ही रहे तथा उनके उत्तराधिकारी शेख अहमद सिरहिन्दी ने इस्लाम को सभी उदार तथा उनके अनुसार गैर इस्लामी पद्धतियों से परिष्क त करने का प्रयत्न किया। उसने सम (धार्मिक संगीत) सुनने का तथा संतों की दरगाहों पर जाने का भी पुरज़ोर विरोध किया। उसने हिन्दुओं तथा शियाओं के साथ संबंधों का भी जमकर विरोध किया। उसने अकबर द्वारा कई गैर मुस्लिमों को नया

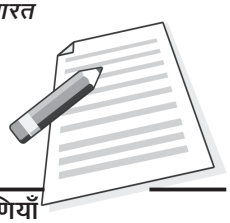

दर्जा देने की तथा जज़िया हटाने और गौवध पर प्रतिबंध की जमकर निंदा की। उसके अनुसार वह इस्लाम के स्वर्ण युग का मुजादि्द है। उसने इस सिद्धांत को बनाए रखा कि खुदा और इंसान के बीच मालिक तथा गुलाम का संबंध है न कि प्रेमी और प्रेमिका का। उसने ज़ोर दिया कि इंसान का खुदा के प्रति एकमात्र रिश्ता विश्वास तथा खुदा को स जन–कर्ता मानने की ज़िम्मेदारी का है। उसने रहस्यवादी सिद्धांत तथा रुढ़िवादी इस्लाम की शिक्षाओं में समन्वय लाने का प्रयत्न किया।

कादिरी सिलसिला

कादरिया सिलसिला पंजाब में लोकप्रिय था। शेख अब्दुल कादिर तथा उनके पुत्र अकबर के समय में मुगलों के समर्थक थे। इस वर्ग के पीरों ने वहादत–अल–वजूद की संकल्पना का समर्थन किया। इस वर्ग के प्रसिद्ध सूफी संत मियां मीर थे जिनके शिष्य राजकुमारी जहांआरा तथा उसका भाई दारा थे। शेख की शिक्षाओं का प्रभाव राजकुमार के कामों में मिलता। शाह बदक्शनी इस सिलसिले के एक और प्रसिद्ध संत है जिन्होंने कट्टरवादी तत्वों को नकारते हुए घोषणा की थी कि एक नास्तिक जिसने सच्चाई को समझ लिया है तथा सत्य का ज्ञान पा लिया है वह एक आस्तिक है, तथा एक आस्तिक जिसे सच्चाई का भाव नहीं है वह नास्तिक है।

मध्यकाल में इस्लाम के कट्टर पंथी विचार तथा उदारवादी विचारों में लगातार संघर्ष देखने को मिलता है। सूफियों में दोनों ही प्रकार की विशेषता मिलती है। एक ओर जहाँ चिश्ती हैं जो उदार द ष्टिकोण वाले हैं तथा स्थानीय परम्पराओं के समावेश की बात करते हैं, और दूसरी ओर कादिरी पंथ के शेख अब्दुल हक जैसे भी लोग थे जो मानते थे कि इस्लाम की शुद्धता कमजोर हो रही है। इस्लाम के कट्टरपंथी विचार उलेमाओं द्वारा व्यक्त किए गए थे जिन्होंने शरीयत के अनुसार ही जीवन जीने पर ज़ोर दिया। सूफिओं की उदारवादी विचारधारा ने कई समर्थक बनाए, जिन्होंने उलेमाओं द्वारा इस्लाम के नियमों की संकीर्ण व्याख्या के विरुद्ध कई तर्क दिए।

पाठगत प्रश्न 14.1

1. पीर कौन थे?

2. अल–गज़ली कौन थे?

3. 'सम' शब्द से आप क्या समझते हैं?

4. खिलजी और तुगलकों के समय में कौन से प्रसिद्ध चिश्ती सूफी संत थे?

5. शेख अब्दुल कादिर कौन थे?

14.2 भक्ति आंदोलन

भारतीय इतिहास में भक्ति आंदोलन का अर्थ ऐसे आंदोलन से है जिसमें व्यक्तिगत कल्पना वाले सर्वशक्तिमान ईश्वर के प्रति समर्पण का भाव लोकप्रिय हुआ। इसका उद्‌गम हमें प्राचीन भारत के ब्राह्मण तथा बौद्ध परम्पराओं में मिलता है। यह दक्षिण भारत में एक धार्मिक प्रथा से प्रारंभ हुआ तथा धार्मिक समानता और व्यापक स्तर पर सामाजिक प्रतिभागिता से यह एक लोकप्रिय आंदोलन के रूप में परिवर्तित हो गया। प्रख्यात संतों के नेत त्व में यह आंदोलन 10वीं शताब्दी ई. में अपने सर्वोच्च शिखर पर पहुंच गया। भक्ति के सिद्धांत के प्रचार–प्रसार के लिए यह आंदोलन विभिन्न परम्पराओं से बना तथा उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में इसने विभिन्न रूप धारण किए।

भक्ति आंदोलन ने रूढ़िवादी ब्राह्मणवादी परम्पराओं पर प्रहार करने का प्रयत्न किया। आरंभिक मध्यकाल में इस आंदोलन में कमी आई। इतिहासकार भक्ति आंदोलन के उदय के लिए इस्लाम के आगमन तथा सूफियों के प्रचार को उत्तरदायी मानते हैं। उनका तर्क है कि तुर्कों की विजय ने परम्परावादी राजपूत–ब्राह्मण वर्चस्व के विरुद्ध प्रतिक्रिया के लिए राह बनाई। कुछ इतिहासकारों के अनुसार भक्ति आंदोलन का उदय सामन्ती अत्याचार के खिलाफ एक प्रतिक्रिया थी। इस तथ्य के पक्ष में हमें भक्ति आंदोलन के संतों की सामन्तवाद विरोधी कविताएं मिलती हैं जैसे, कबीर, नानक, चैतन्य और तुलसीदास की। भक्ति आंदोलन के उद्‌भव संबंधी एक भी विचार ऐसा नहीं है जो कि कायम रह सके। यह तत्कालीन संतों की विचारधारा तथा कविताओं से स्पष्ट है कि वे रुढ़िवादी ब्राह्मण का विद्रोह कर रहे थे। वे धार्मिक समानता में विश्वास करते थे तथा स्वयं को सामान्य जनता की दुख–तकलीफों में शामिल करते थे।

कुछ विद्वानों का मानना है कि आरंभिक मध्यकाल में हुए सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों ने भक्ति आंदोलन के उद्‌भव के लिए आवश्यक माहौल बनाया। 13वीं तथा 14वीं शताब्दी में निर्मित वस्तुओं, विलासिता संबंधी तथा अन्य कलात्मक वस्तुओं की मांग ने शहरों में शिल्पियों का प्रवेश कराया। ये शिल्पी समानता के विचारों से प्रभावित होकर भक्ति आंदोलन के प्रति आकर्षित हुए। इन समूहों ने उन्हें ब्राहमणों द्वारा दिए निम्न स्तर को मानने से इंकार कर दिया। इस आंदोलन को समाज के इस वर्ग से पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ। पंजाब में कई ऐसे स्थान थे जहां मात्र स्त्री ही नहीं, बल्कि जाट किसान भी इस आंदोलन में सम्मिलित हुए।

मध्यकाल के आरम्भिक वर्षो में भक्ति आंदोलन सुधार व परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण आंदोलन बन गया। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में असनातनी आंदोलनों के उदय के बाद भारतीय इतिहास में भक्ति आंदोलन नए विचारों व प्रथाओं के उद्‌गम को प्रस्तुत करता है, जिसने सम्पूर्ण देश को प्रभावित किया तथा सुधार आंदोलनों को प्रारम्भ किया।

उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन

उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन में सामाजिक–आर्थिक आंदोलन सम्मिलित थे जो दक्षिण के किसी आचार्य से संबंधित थे तथा दक्षिण में प्रारंभ हुए आंदोलन की ही निरन्तरता लगभग इस आंदोलन में दिखाई देती है। हालाँकि इन दोनों क्षेत्रों की परम्पराओं में समानता मिलती है किंतु प्रत्येक संत की शिक्षाओं में भक्ति की धारणा भिन्न ही दिखती है। कबीर जैसे निर्गुण संतों ने वर्णाश्रम की पूरी व्यवस्था तथा इस पर

आधारित जाति व्यवस्था को नकार कर नए मूल्यों की स्थापना की जिसने एक नए तथा उदार वर्ग के उदय में मदद की। सगुण भक्ति धारा वाले सतों, जैसे–तुलसीदास ने वर्ण व्यवस्था को कायम रखते हुए ब्राह्मणों की सर्वोच्चता को बनाए रखा। उन्होंने भगवान में समर्पण तथा विश्वास पर बल दिया तथा वे मूर्ति पूजा के प्रति विशेष रूप से कटिबद्ध थे।

एकेश्वरवादी भक्ति

उत्तर भारत में कबीर (1440-1578 ई.) सबसे पुराने तथा सर्वाधिक प्रभावशाली सन्त थे। वे एक जुलाहे थे। उन्होंने अपनी जिन्दगी का एक लम्बा समय बनारस में गुज़ारा था। उनकी कविताएँ सिक्खों के पवित्र ग्रंथ गुरु ग्रन्थ साहिब में भी सम्मिलित की गई है। कबीर से प्रेरित होने वाले मुख्य सन्त रैदास थे। गुरुनानक पंजाब में खत्री वर्ग से थे तथा धन्ना राजस्थान के जाट किसान थे। उत्तर भारत के एकेश्वरवादी सन्तों की शिक्षाओं में निम्न समानताएँ हमें देखने को मिलती हैं–

- अधिकतर एकेश्वरवादी सन्त निम्न जातियों से सम्बन्धित थे, तथा इस बात के प्रति जागरूक थे कि उनके विचारों में समानता है। वे एक दूसरे की शिक्षाओं तथा प्रभाव के प्रति भी सजग थे। अपनी–अपनी रचनाओं में उन्होंने अपने पूर्ववर्तियों का तथा एक दूसरे का वर्णन विचारधाराओं में एकता को दर्शाते हुए किया है।
- सभी वैष्णव भक्ति के सिद्धान्त से तथा नाथपंथी आन्दोलन और सूफी से भी प्रभावित थे। उनके विचार इन तीनों परम्पराओं का संयोजन प्रतीत होते हैं।
- खुदा के प्रति व्यक्तिगत अनुभव को दी गई महत्ता भी निर्गुण भक्ति सन्तों की एक अन्य विशेषता है। वे निर्गुण भक्ति में विश्वास करते थे न कि सगुण भक्ति में। उन्होंने भक्ति का सिद्धान्त तो वैष्णववाद से लिया था, किन्तु उसे निर्गुण रूप दिया था। हालाँकि उन्होंने खुदा को कई नामों से पुकारा किन्तु उनके खुदा अरूपी, अनवतरित, सर्वव्यापी तथा अवर्णनीय हैं।
- भक्ति सन्तों ने तत्कालीन वर्चस्व वाले धर्मों (हिन्दू तथा इस्लाम) दोनों को नकार दिया तथा इन धर्मों के नकारात्मक पहलुओं की निन्दा की। उन्होंने ब्राहमणों की सर्वोच्चता को चुनौती दी तथा जाति व्यवस्था और मूर्तिपूजा पर प्रहार किया।
- उन्होंने पूरे उत्तर भारत में प्रचलित तथा लोकप्रिय भाषा में कविताओं का स जन किया। इससे उन्हें सर्वसामान्य में अपने विचारों का प्रचार करने में मदद मिली। इससे विभिन्न निम्न वर्गों के बीच उनके विचार द्रुत गति से फैले।

वैष्णव भक्ति

14वीं शताब्दी तथा 15वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उत्तर भारत में रामानन्द लोकप्रिय वैष्णव भक्ति सन्त बनकर उभरे। हालाँकि वे दक्षिण भारत मूल के थे, किन्तु बनारस में निवास करते थे। क्योंकि उनके अनुसार यह दक्षिण भारत के भक्ति आन्दोलन तथा उत्तर भारत के वैष्णव भक्ति आन्दोलन के बीच का सूत्र था। उन्होंने अपनी भक्ति का विषय विष्णु के बजाय राम को बना लिया। उन्होंने राम तथा सीता की उपासना की

और उत्तर भारत में राम की उपासना के जनक कहलाए। एकेश्वरवादी सन्तों की ही भाँति उन्होंने जाति व्यवस्था का विरोध किया तथा उपासना पद्धति को लोकप्रिय बनाने के लिए सामान्य भाषा में शिक्षाओं का प्रचार किया। उनके अनुयायियों को रामानन्दी कहा गया। भक्ति आन्दोलन के महत्त्वपूर्ण सन्त तुलसीदास भी हैं। 16वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रख्यात भक्ति संत वल्लभाचार्य ने क ष्ण भक्ति को लोकप्रिय बनाया। उनका अनुसरण करने वालों में मुख्य सन्त सूरदास (1483-1563) तथा मीरांबाई (1503-1573) थे।

बंगाल के भक्ति आन्दोलन का स्वरूप उत्तर और दक्षिण भारत में चल रहे भक्ति आंदोलन से सर्वथा भिन्न था। यह भागवत पुराण की वैष्णव भक्ति परम्परा, सहज बौद्ध तथा नाथपंथी परम्परा से प्रभावित था। ये परम्पराएँ समर्पण के गूढ़ तथा भावना पर आधारित थीं। 12वीं शताब्दी में जयदेव इस परम्परा के मुख्य कवि थे। उन्होंने क ष्ण और राधा के संदर्भों द्वारा प्रेम के रहस्यात्मक पहलुओं को दर्शाया। इस क्षेत्र के लोकप्रिय भक्ति सन्त चैतन्य हुए। उन्हें क ष्ण के ही एक अवतार के रूप में देखा गया। उन्होने ब्राहमण व धर्म ग्रंथों के वर्चस्व पर कोई प्रश्न चिह्न तो नहीं लगाए। उन्होंने संकीर्तन (पवित्र न त्य के साथ समूह गान) को भी लोकप्रिय बनाया। उनके समय में बंगाल में भक्ति आन्दोलन एक सुधार आन्दोलन में बदल गया, क्योंकि इसने जाति–व्यवस्था को कटघरे में खड़ा कर दिया।

महाराष्ट्र में भक्ति आन्दोलन भागवत पुराण तथा शिव नाथपंथी से प्रेरित हुआ। महाराष्ट्र का सबसे उल्लेखनीय भक्ति सन्त ज्ञानेश्वर थे। भागवत गीता पर उनकी टीका ज्ञानेश्वरी ने महाराष्ट्र में भक्ति दर्शन की नींव डाली। जाति व्यवस्था का पुरजोर विरोध करते हुए उन्होंने भक्ति के द्वारा प्रभु को पाने पर बल दिया। उस क्षेत्र के देव विठोबा थे तथा उनके अनुयायी उनके मन्दिर में वर्ष में दो बार तीर्थ यात्रा किया करते थे। महाराष्ट्र के अन्य महत्त्वपूर्ण भक्ति धारा के संत, सन्त नामदेव (1270-1350) थे। एक ओर उत्तर भारत में उन्हें एकेश्वरवादी तथा निर्गुण धारा का संत मानते हैं वहीं महाराष्ट्र में वह वरकरी (वैष्णव भक्ति परम्परा) परम्परा के ही अंग माने जाते है। महाराष्ट्र के अन्य भक्ति संतों में मुख्य थे चोका, सोनार, तुकाराम तथा एकनाथ। तुकाराम की शिक्षाएं दोहों के रूप में संग्रहीत हैं जो गाथा का निर्माण करती हैं जबकि मराठी में एकनाथ की शिक्षा मराठी भाषा में आध्यात्मिक रचनाएं हैं।

पाठगत प्रश्न 14.2

1. भक्ति आंदोलन ने ––––– से प थक हाने का प्रयास किया?

2. किन्ही तीन महत्त्वपूर्ण भक्ति संतों के नाम लिखें।

3. चैतन्य कौन थे?

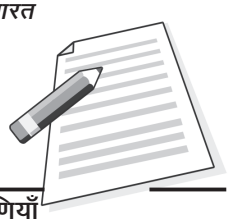

सिक्ख धर्म

गुरुनानक की शिक्षाएँ तथा दर्शन भारत के दर्शनवादी विचारों के एक महत्त्वपूर्ण अंग का निर्माण करते है। उनके दर्शन में तीन मुख्य तत्त्व थे – चमत्कारी नेत त्व (गुरु), विचारधारा (सबद,) तथा संगठन (संगत)। नानक ने तत्कालीन धार्मिक विश्वासों का मूल्यांकन किया तथा एक नए धर्म की नींव डाली जो मुक्ति को ओर ले जा सके। उन्होंने मूर्तिपूजा का पुरजोर खंडन किया, तीर्थयात्राओं का समर्थन नहीं किया तथा अवतारों के सिद्धात को भी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कर्मकांडों की कड़ी निंदा की। मोक्ष की प्राप्ति के लिए उन्होंने सच्चे गुरु को पाने पर बल दिया। उन्होंने लोगों को इन सिद्धातों का अनुसरण करने तथा उपासना करने को कहा–सच, हलाल (ईमानदारी की कमाई), खैर (दूसरों की सलामती की दुआ), नियत (अच्छे भाव) तथा खुदा की सेवा। उन्होंने जाति तथा उसके द्वारा होनी वाली असमानता को पूर्णतः नकारा। उन्होंने कहा कि व्यक्ति की



चित्र 14.2 गुरूनानक

जाति तथा इज्जत उसके द्वारा किए गए कार्यों के द्वारा निर्धारित होनी चाहिए। उनके गीतों में दो मुख्य सिद्धांत हैं – सच तथा नाम। खुदा के प्रति आदर भाव उन्होंने गुरु तथा हुकुम द्वारा दर्शाया गया है। उन्होंने लंगर (सामूहिक रसोई घर) के सिद्धान्त की शुरुआत की। गुरु नानक ने खुद को जनता के साथ ही जोड़ा। हालांकि गुरु नानक ने समानता पर बल दिया, किन्तु शिष्यों के बीच असमानताएं व्याप्त रहीं। गुरु गोबिंन्द सिंह ने 17वीं शताब्दी में समानता के विचार को पुनः स्थापित किया। सन् 1699 में गुरु गोबिंद सिंह ने विभिन्न सिक्ख समूहों के मध्य व्याप्त मतभेदों को दूर किया तथा खालसा पंथ की स्थापना की। इस संस्था ने मसंदों को मध्यस्थ की भूमिका से हटा दिया। इसके पश्चात् हर सिख गुरु के साथ प्रत्यक्ष संबंध रख सकता था। सिक्खों के बीच एकता बनाए रखने के लिए गुरु ने कुछ नई परम्पराओं का पालन अनिवार्य किया। ये थे, धर्म में प्रवेश

के लिए खंडे (दोधारी तलवार) द्वारा अम त छकना, केश रखना और उन्हें न कटवाना, शस्त्र धारण करना तथा अपने नाम में 'सिंह' उपनाम रखना।

इस काल के दौरान उदय होने वाला एक अन्य संस्थागत विचार गुरु पंथ था। इसने खालसा पंथ के सामूहिक अधिकार को पवित्रता प्रदान की, जिसने पंथ को गुरु के साथ संयुक्त किया। गुरु नानक ने अपने अंतिम दिनों में अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और उसे श्रद्धा व आदर प्रदान किया, जिसने यह संदेश दिया कि गुरु तथा सिख एक दूसरे का स्थान ले सकते हैं। इसने संगत (सिखों की सामूहिक संस्था) के लिए समस्याएं उत्पन्न कर दी, जिसमें कहा गया था कि संगत में खुद खुदा उपस्थित होते हैं। जब गुरु गोबिंद सिंह ने खालसा बनाया, तब उन्होंने पंज प्यारों का चयन किया तथा उनसे खुद के लिए पहुल (अम त छकाने) का प्रबंध करने को कहा। इस व्यवस्था ने गुरु तथा खालसा के बीच के अंतर को सांकेतिक रूप से समाप्त कर दिया। कहा जाता है कि गुरु गोबिंद सिंह ने कहा कि खालसा उन्हीं का रूप है।

गुरु नानक व्यापारी खत्री जाति से थे, जबकि उनके अनुयायी अधिकतर देहाती जाट थे। ये गुरु गोबिंद सिंह थे, जिसने सिखों के बीच खालसा पंथ चलाया। गुरु अर्जुन सिंह ने गुरु ग्रंथ साहब का संकलन किया था। गुरु गोबिंद सिंह की म त्यु के पश्चात गुरु परम्परा समाप्त हो गई। यह माना गया कि गुरु की आत्मा किसी उत्तराधिकारी के पास नहीं गई बल्कि वह गुरु ग्रंथ साहिब में समा गई।

पाठागत प्रश्न 14.3

1. 'खालसा' शब्द से आप क्या समझते है?

2. खत्री कौन थे?

14.4 साहित्य और भाषाएं

मध्यकालीन भारत में सम द्ध साहित्य तथा नई भाषाओं का विकास को देखने को मिलता है। इतिहासकारों के बीच रुढ़िगत विचार यह है कि दिल्ली सल्तनत द्वारा फारसी को संरक्षण प्रदान करने की वजह से संस्क त के शाही संरक्षण में गिरावट आई। किन्तु इस काल में संस्क त साहित्य में भी काफी रचना हुई। इस काल में काव्यात्मक रचनाओं 'काव्य' (काव्यात्मक विवरण) की रचना उल्लेखनीय रही तथा ऐसे ग्रंथों की रचना हुई जिनमें कानून का वर्णन था, जो धर्मशास्त्र कहलाए।

मध्यकालीन युग के पूर्वार्द्ध में उत्तर और दक्षिण भारत में कई छोटे शासकों द्वारा संस्क त को संरक्षण प्राप्त था। पश्चिम भारत में एक प्रमुख जैन विद्वान हेमचन्द्र सूरी था, जिसने संस्क त में रचनाओं का स जन किया तथा चैतन्य ने भी संस्क त भाषा में स जन किया। इस काल में लिखे गए काफी नाटक हमें प्राप्त होते हैं। लेखन की एक नई शैली 'चम्पू' का उदय भी हम इस काल में पाते हैं। यह एक विधा थी जिसमें पद्य तथा गद्य का मिश्रण था। संस्क त की तत्कालीन रचनाओं में जो राजपूतों के शाही संरक्षण में लिखी गई थी,

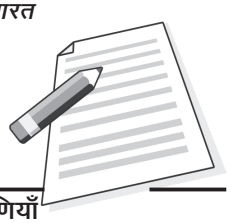

राजपूतों के पारिवारिक इतिहास के वर्णन थे जैसे प थ्वीराज विजय तथा हम्मीर महाकाव्य। इस काल की ऐतिहासिक काव्य रचनाओं में गुजरात के सुल्तान महमूद बेग्रा के दरबारी कवि उदयराज द्वारा लिखी गई जीवनी राजविनोद है। अन्य महत्त्वपूर्ण रचना कल्हण की राजतरंगिणी है, जिसमे कश्मीर के इतिहास का वर्णन है। यह 12वीं सदी में लिखी गई थी। राजतरंगिणी द्वितीय जोनाराजा द्वारा लिखी गई जिसमें जयसिम्हा से सुल्तान जैनुल अबिदिन तक के कश्मीर के शासकों का विवरण है। त तीय भाग श्रीवर द्वारा लिखा गया जिसने 1486 तक क्षेत्र के इतिहास को समेटा। इनके अतिरिक्त अर्द्ध ऐतिहासिक गद्य 'प्रबन्ध' का भी उल्लेख उस काल में मिलता है।

15वीं शताब्दी के पश्चात संस्क त को दक्षिण में विजयनगर शासकों के, तंजौर के नायक तथा त्रावणकोर और कोचीन के शासकों के दरबारों में संरक्षण प्राप्त होता रहा। संस्क त साहित्य की प्रमुख विद्याएं, जैसे – महाकाव्य, श्लेष काव्य, चम्पू काव्य, नाटक तथा ऐतिहासिक काव्यों का स जन चलता रहा। उस काल के प्रमुख लेखकों में गोविन्द दीक्षित (साहित्य सुधा और संगीतसुधानिधि–महत्त्वपूर्ण रचनाएं), अप्पय दीक्षित (वेलौर के नायक वंश के दरबारी कवि), नीलनाथ दीक्षित (मदुरई के नायक साम्राज्य में मंत्री), चक्रकवि (कोजिकोड के शासकों का संरक्षण प्राप्त था) थे।

ऐतिहासिक काव्य न सिर्फ शासकों द्वारा किए गए शोषण पर प्रकाश डालते हैं, बल्कि लेखकों की सामाजिक स्थिति को भी दर्शाते हैं। कुछ मुगल जैसे दारा शिकोह इत्यादि का भी इन काव्यों में वर्णन है। मुगल राजकुमार को बनारस के न सिंह सरस्वती के सम्मान में प्रशास्ति की रचना करने का श्रेय जाता है। बीजापुर तथा गोलकुंडा के शासकों के दरबार में हम कुछ रचनाएं पाते हैं, परन्तु इस काल में संस्क त साहित्य पतन की ओर बढ़ रहा था।

फारसी साहित्य

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के पश्चात उपमहाद्वीप में नई भाषा तथा साहित्यिक शैली का जन्म हुआ। उपमहाद्वीप में फारसी साहित्य के विकास ने अमीर खुसरो के साथ नए युग में कदम रखा। उनका जन्म तुर्क विस्थापितों के परिवार में हुआ था तथा बलबन के काल में उन्होंने कवि के रूप में रचनाओं का स जन प्रारम्भ किया। वे निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे तथा उन्हें जलालुद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी तथा गयासुद्दीन तुगलक के दरबार में संरक्षण प्राप्त था। कहा जाता है कि उन्होंने विभिन्न शैलियों में 99 रचनाओं की रचना की जिनमें विविध विषयवस्तु थी। उनकी कविताएं गीत, वीरगाथा, महाकाव्य तथा शोकगीत हर विधा में लिखी गई थी। उनकी लेखन शैली में भारतीय संदर्भ में फारसी शैली का प्रतिनिधित्व पहली बार हम पाते हैं। इसे सबक–ए–हिन्दी भारतीय शैली के रूप में जाना गया। उनकी प्रमुख रचनाओं में मुल्ला–उल–अनवर, शिरिन खुसरो, लैला मजनूँ तथा आइना–ए–सिकन्दरी है। ये सभी रचनाएं अलाउद्दीन खिलजी को समर्पित थीं। उनके पांच मुख्य दीवान गज़ल हैं – तुफ्त–उस–सिगार, बकिया–नकिया तथा निहायत–उल–कमाल। उन्होंने मसनवी (व्याख्यात्मक कविताएं) भी लिखीं जिनका कि ऐतिहासिक तथा साहित्यिक मूल्य हैं। इनमें मुख्य है – किरान–उस–सदैन, मिफ्ता–उल–फतेह (जलालुद्दीन खिलज़ी की सैन्य सफलताओं पर आधारित), तुगलक–नामा (गयासुद्दीन तुगलक का सत्ता तक पहुँचना) तथा

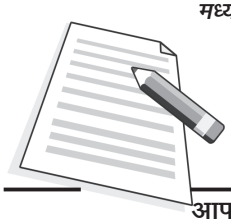

आपकी टिप्पणियाँ

खजाएन–उल–फतेह (अलाउद्दीन खिलजी की दक्षिण विजय)। अन्य फारसी कवियों में शेख नजमुद्दीन हसन थे, जो अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में थे। उनकी गज़लों ने उन्हें हिन्दुस्तान के सैद की उपाधि दिलवाई।

सल्तनत काल के साहित्य की मुख्य विशेषता दरबार का ऐतिहासिक लिखित वर्णन है। इनमें से मुख्य हैं– मिनाज–उस–सिराज द्वारा तबाकत–ए–नसिरी, ईसामी द्वारा फतेह–उस–सलातीन, तथा फिरोजशाह तुगलक द्वारा फतेहत–ए–फिरोज़शाही। इस काल में ज़ियाउद्दीन बरानी ने फारसी साहित्य में उल्लेखनीय योगदान दिया। उसकी महत्त्वपूर्ण रचनाओं में तारीख–ए–फिरोजशाही तथा फतवा–ए–जहांदिरी मुख्य हैं। इस काल में सूफी साहित्य के नए रूप 'मलफुज़त' का भी उदय हुआ जिसमें सूफी संतों तथा खुदा के बीच वार्तालाप है। इन रचनाओं में प्रमुख हैं शेख निज़ामुद्दीन औलिया के किस्सों से भरपूर अमीर हसन सिज़ी द्वारा लिखित फवैद उल फुआद तथा शेख नसीरुद्दीन महमूद के किस्सों सहित खैर–उल–मज़लिस। इस काल में कई रचनाओं का फारसी भाषा में अनुवाद किया गया था। महाभारत तथा राजतरंगिणी का भी इसी दौरान फारसी भाषा में अनुवाद हुआ। संस्क त से फारसी भाषा में अनुवाद फिरोज तुगलक तथा सिकन्दर लोदी के शासन काल में काफी किए गए थे।

सल्तनत काल की ही भाँति मुगल काल में भी दरबार की भाषा फारसी ही रही। मुगल शासकों और राजकुमारों ने भी लेखन की परम्परा को जीवित रखा। प्रथम मुगल बादशाह बाबर ने, जो एक विद्वान था, अपनी यादों को तुर्की में लिखा जिसे बाद में अब्दुल रहीम खान खानखाना ने फारसी में अनुवाद किया। हुमायूँ ने फारसी दीवान की रचना की। राजकुमार दारा शुकोह ने सूफी सन्त मिया मीर तथा उनके शिष्यों का जीवन परिचय सकी नतुल औलिया में दिया। उसने मज़मौल बहरैन (दो महासागरों का मिलन) की भी रचना की। इस काल में हम फारसी शैली के नए प्रारूप सबक–ए–हिन्दी (भारतीय शैली) को पाते है जिसे इस युग में यहाँ घूमने आए तथा यहीं बस गए फारसी कवियों ने लिखा। फैज़ी, उर्फी, घनी तालिब कश्मीरी तथा बेदिल ऐसे रचनाकार थे, जिन्हें मुगलों से सरंक्षण प्राप्त हुआ।

फैज़ी की मुख्य रचनाओं में तबाशिर अल सबह थी। उसने हिन्दू धर्म की कई पुस्तकों का भी अनुवाद किया। अब्दुर रहीम खान खाना अकबर तथा जहाँगीर के समय का प्रख्यात रचनाकार था। अकबर ने महान विद्वान इतिहासकार अबुल फज़ल को सरंक्षण प्रदान किया था। कहा जाता है कि उसके पुस्तकालय में 4000 से अधिक पुस्तकें थी। अपने शासनकाल के दौरान अकबर ने कई लेखकों को सरंक्षण प्रदान किया था। अली–कुली सलेम तथा अबू तालिब कलीम शाहजहाँ के समय के मुख्य कवि थे। अबू तालिब कलीम ने बादशाहनामा की रचना की थी। दक्षिण में फारसी साहित्य को बीजापुर के शासक आदिल शाही से संरक्षण प्राप्त हुआ, जिनके दरबार में मलिक कौमी तथा मुल्ला जुहुरी मुख्य फारसी कवि थे। गोलकंडा के कुतुबशाही ने मुहम्मद हुसैन तबरेज़ी जैसे कवियों को संरक्षण प्रदान किया। मुगल काल में फारसी साहित्य ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा क्षेत्रीय भाषाओं के विकास और प्रगति को प्रभावित किया। पंजाबी, पश्तो सिंधी तथा कश्मीरी भाषाएँ फारसी भाषा से प्रभावित हुईं।

क्षेत्रीय भाषाओं की प्रगति तथा विकास

मुगल काल के दौरान हिन्दी, बंगाली, असमिया, उड़िया, मराठी तथा गुजराती भाषाओं की प्रगति इस काल का महत्त्वपूर्ण चरण था। इन भाषाओं का अस्तित्व 7वीं तथा 8वीं शताब्दी से मिलना प्रारम्भ होता है, जब प्राक त भाषा से दूरी प्रारम्भ हुई। दक्षिण में 14वीं शताब्दी में मलयालम एक स्वतंत्र भाषा के रूप में उभरी। क्षेत्रीय भाषाओं की प्रगति को क्षेत्रीय भावनाओं तथा प्रान्तीय राजनीति के उदय के संदर्भ में देखा जा सकता है। इन सबने संस्क त के पतन का मार्ग प्रशस्त कर दिया जिसके कारण फारसी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में प्रशासनिक कार्यों होने लगा। भक्ति आंदोलन तथा उसके प्रचार में इन भाषाओं के प्रयोग ने इन भाषाओं के विकास और प्रगति में योगदान किया।

हिन्दी और उर्दू

क्षेत्रीय बोलियों, जैसे–ब्रजभाषा, हरियाणवी तथा दिल्ली और पंजाब के आस–पास बोली जाने वाली क्षेत्रीय भाषाओं ने उर्दू को विकासकालीन अवस्था में प्रभावित किया। इस भाषा का मूल ढांचा खड़ी बोली (सभी क्षेत्रीय भाषाओं का मिश्रण) बना है। इस भाषा ने फारसी भाषा की लिपि तथा साहित्यक शैली को अपनाया। उर्दू शब्द मूल रूप से तुर्की भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है सेना अथवा शिविर। ऐसा प्रतीत होता है कि उर्दू भाषा का विस्तार तुर्की शिविरों में अधिकारियों तथा सैनिकों के बीच बोली जाने वाली भाषा के रूप में हुआ। हिन्दवी भाषा से क्रमशः उर्दू तथा हिन्दी भाषाओं ने आकार ग्रहण किया। अमीर खुसरो की रचनाओं ने इस भाषा की नींव डाली। दक्कन में 14वीं शताब्दी से इस भाषा के प्रयोग ने नई बोली को जन्म दिया जिसे दक्किनी कहा गया। इस भाषा के मुख्य केन्द्र थे, गुजरात, बीजापुर, गोलकुंडा, बीदर तथा औरंगाबाद। इस परम्परा के सबसे पुराने लेखक सैयद् बंदा नवाज़ गेसुदराज़ थे जो कि बहमनी साम्राज्य के प्रमुख सूफी संत थे। बीजापुर का सुल्तान, इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय स्वयं कला का महान संरक्षक तथा दक्किनी भाषा में संगीत पर लिखी किताब का लेखक था।

7वीं तथा 8वी शताब्दियों के मध्य तथा 14वीं शताब्दी में हिन्दी अपभ्रंश अवस्था से विकसित हुई। इसे वीरगाथा काल या आदिकाल के नाम से जाना जाता हैं। विभिन्न राजपूत शासकों ने हिन्दी की राजपूतानी भाषा में लिखी गई रचनाओं को संरक्षित किया तथा वे उनकी वीरता तथा बहादुरी के गुणों का बखान करती थी। प्रमुख रचनाओं में चंद बरदाई द्वारा रचित प थ्वीराज रासो तथा अन्य रचनाएं जैसे बीसलदेव रासो और हम्मीर रासो थीं। इन कई रचनाओं की प्रामाणिकता में संदेह है, क्योंकि मूल रचना में विभिन्न तथ्य बीच में डाले गए हैं। जैन तथा बौद्ध साहित्य के भी अन्य स जन कार्य भी मिलते हैं, जिनसे इस काल की जानकारी प्राप्त होती है।

हिन्दी भाषा का विकास अन्य परिवर्तन के दौर से गुजरा जब 14वीं और 15वीं शताब्दी में भक्ति आंदोलन में भक्ति परंपराओं और विचारों से परिपूर्ण भाषा का अत्यधिक प्रयोग हुआ। कबीर ने एक नई शैली 'उलटबांसी' का उपयोग किया, जिसमें विरोधाभास तथा गूढ़ार्थ का वर्चस्व था। भक्तिकालीन संत तुलसीदास ने हिन्दी की अवधी शैली का प्रयोग किया, मीरांबाई ने जहां राजस्थान की मारवाड़ी बोली में रचनाओं का स जन किया, वहीं सूरदास ने ब्रज भाषा में। सूफी सन्तों ने भी बड़ी मात्रा में जनता तक अपने विचार पहुंचाने के लिए इन भाषाओं को माध्यम बनाया। वहीं चिश्ती संतों ने अपने आध्यात्मिक संगीत के संपादन तथा गायन के लिए हिन्दी का प्रयोग किया।

बंगला

10वीं तथा 12वीं शताब्दी में लिखे गए लोकगीत चार्यपद बंगाली साहित्य के सबसे पुराने उदाहरण मिलते हैं। कवीन्द्र तथा श्रीकरनन्दी की रचनाएं बंगाली साहित्य की आरंभिक रचनाओं में प्रमुख मानी गई हैं। भक्ति आंदोलन के विकास तथा चैतन्य द्वारा लिखे भजनों ने इस भाषा की प्रगति में सार्थक भूमिका निभाई। ब न्दाबनदास द्वारा रचित चैतन्य भागवत या चैतन्य मंगल बंगाली भाषा की महान रचना मानी जाती है, जिसने संत की म त्यु के दस वर्ष पश्चात् न सिर्फ उनके महत्व को दर्शाया, बल्कि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का भी यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया। क ष्णदास कविराज द्वारा रचित चैतन्य–चरिताम त अन्य महत्त्वपूर्ण रचना है। लोचनदास को लोकगीत की नई शैली धमाली के उद्भव के लिए जाना जाता है। इस युग के दौरान लिखी गई वर्णनात्मक कविताएं मंगलकाव्य भी लोकप्रिय रहे। इन्होंने स्थानीय देवी चंडी का महिमामण्डन किया तथा शिव और विष्णु जैसे पौराणिक देवों को घर–घर के मंदिर में पहुंचाया। मंगल काव्यों ने अपना वर्णनात्मक स्वरूप पुराणों से लिया।

असमिया और उड़िया

13वीं शताब्दी में हेमाशसरस्वती, प्रह्लादचरित तथा हर गौरी साम्यद की रचनाएं असम भाषा की प्रथम रचनाएं मानी जाती हैं। असम में साहित्य का विकास भक्ति आंदोलन का ही परिणाम था। असम में वैष्णववाद को प्रोत्साहित करने वाले शंकराचार्य ने असमिया कविताओं के विकास में भी सार्थक योगदान किया। उनके शिष्य माधव ने भक्ति के आयामों का वर्णन करते हुए भक्ति रत्नावली तथा व ंदावन में क ष्ण के जीवन का विवरण करती बारागीता की रचना की थी। पुराणों के भी असमिया भाषा में अनुवाद मिलते हैं। उड़ीसा में सरलदास की रचनाएं उड़िया भाषा की प्रथम रचना मानी जाती है। मधुसूदन, भीम तथा सशिव द्वारा पुराणों पर आधारित कई काव्यों की रचना हुई। राधा और क ष्ण के संबंधों पर आधारित रस–कलोल भी उस युग की उल्लेखनीय रचना थी। अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाओं में शिशु शंकर दास द्वारा रचित उषाभिलाषा तथा कार्तिक दास द्वारा रचित रुक्मणी विवाह मुख्य है। उपेन्द्र भांजा (1672-1720) की रचनाएं महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है, क्योंकि आने वाले समय में इन्होंने उड़िया साहित्य में एक नए युग का सूत्रपात किया।

दक्षिण भारत में साहित्य

दक्षिण में महत्त्वपूर्ण साहित्यिक व्यक्तित्वों में विल्लीपुतुरर महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे। संस्क त शब्दों के प्रयोग की परंपरा तथा साहित्यिक अभिव्यक्ति का श्रेय उन्हीं को जाता है। तमिल में अन्य महत्त्वपूर्ण साहित्यिक रचनाओं में हम वैष्णव विद्वानों द्वारा लिखे गए भाष्य पाते हैं तथा संगम युग पर लिखे गए भाष्य जैसे तोलकपियम तथा कुराल भी हमें मिलते हैं। तमिल साहित्य की अधिकतर रचनाएं शैववाद तथा वैष्णववाद से संबंधित हैं। मध्यकालीन युग की मुख्य रचनाएं हैं – हरिदास द्वारा इरुसाम्यविलक्कम, मरेन्नरबंदर क त शिवदरुमोतरम तथा शैव समयनेरी। दर्शन के क्षेत्र में उल्लेखनीय रचनाएं थी – पुराण तिरुमलेन्थम क त चिदम्बरपुराणन (1508) तथा बालसुब्रह्मण्य कविरयर क त पालनिट्टलपुराणम।

इस युग में सर्वाधिक प्रसिद्ध तेलुगू कवि एराप्रगद थे, जिन्होंने साहित्य लेखन की चम्पू शैली को लोकप्रिय बनाया (गद्य तथा पद्य का मिश्रण)। उन्होंने भागवतपुराण का भी तेलुगू में अनुवाद किया। विजयनगर के शासक क ष्णदेव राय ने अमुकतमलयद की रचना तेलुगू में की। उनके दरबार के प्रख्यात कवि अल्लारानी पेद्दना तथा नन्दी तिम्माहा थे, जिन्होंने

परिजटपहरण का स जन किया। भट्टुमूर्ति अर्थात् राम राज भूषण वासुचरित्र तथा हरिश्चन्द्र नालोपरव्यणम (नल तथा राजा हरिश्चन्द्र की कहानी का वर्णन) के लिए प्रसिद्ध हैं। कन्नड भाषी क्षेत्रों में जैन साहित्यकारों ने साहित्यिक रचनाओं में वर्चस्व बनाया। वीरसैव आंदोलन को लोकप्रिय बनाने वाले बसव तथा उनके अनुयायियों ने कन्नड साहित्य के महत्त्वपूर्ण पहलू का निर्माण किया। होयसल शासकों के संरक्षण ने इस भाषा के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। जैरोप्पा का 'वादी–विद्यानन्द' कन्नड कवियों का एक साहित्य संग्रह है। जैन विद्वान 'साल्व' ने त्रिलोकरार (ब्रह्मांड विज्ञान पर), अपराजियस्तक (दर्शन शास्त्र पर) तथा भारतेश्वरचरित (प्रसिद्ध राजा भरत का जीवन) की रचना की। इस काल में मलयालम एक स्वतंत्र भाषा के रूप में उभरी। प्रारंभ रचना में भाषा मौखिक रूप में ही थी तथा 14वीं शताब्दी में हम 'रामचरितम्' नाम की प्रथम रचना पाते हैं। रामपणिक्कर जिन्होंने भारत गाथा, सावित्री माहात्म्य तथा भगवतम् लिखी, वे मलयालम भाषा की प्रमुख रचनाएँ मानी जाती हैं।

पाठगत प्रश्न 14.4

1. संस्क त में लिखे गए 2 प्रमुख ग्रंथों के नाम लिखें?

2. काव्य क्या है?

3. अमीर खुसरो कौन थे?

4. जियाउद्दीन वरानी द्वारा रचित दो प्रमुख रचनाओं का नाम लिखें।

5. सबक–ए–हिन्दी से आप क्या समझते हैं?

6. मध्यकालीन युग में विकसित हुई चार क्षेत्रीय भाषाओं का नाम लिखें।

14.5 संगीत

सलतनत काल के दौरान संगीत की जानकारी बहुत सीमित है। संगीत के विकास का सबसे महत्त्वपूर्ण चरण हमें खुसरो के समय पर मिलता है। कहा जाता है कि इसी युग में कव्वाली विधा का उदय विकास हुआ। कई आधुनिक राग जैसे ऐमान, गोरा तथा सनम के विकास का श्रेय भी उन्हें जाता है। उन्होंने संगीत में नए वाद्ययंत्रों का भी आविष्कार किया जैसे सितार, जो भारतीय वीणा तथा फारसी तम्बूरा का मिश्रित रूप है। दक्षिण एशिया में नए वाद्ययंत्र रबाब तथा सारंगी तुर्कों के साथ मध्य एशिया में आए। व ंदावन में स्वामी हरिदास ने संगीत को प्रोत्साहन दिया तथा मुगल बादशाह के दरबार के रत्नों में से एक तानसेन को दीक्षित किया था। तानसेन भारतीय शास्त्रीय संगीत के मुख्य रत्न माने जाते हैं तथा उन्हें नए राग जैसे मियां की मल्हार, मियां की टोड़ी तथा दरबारी के स जन का श्रेय भी दिया जाता है। उत्तर भारतीय संगीत शैली की द्रुपद शैली की

प्रवीणता में राजा मान सिंह ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। दक्षिण में जनक तथा जन्य रागों की नई शैली इस युग में मिलती है। कोंडाविदु के रामामात्य द्वारा (1550 में) रचित स्वर्ण मेला कलानिधि में 20 जनन तथा 64 जन्य रागों का विवरण प्राप्त होता है। 18वीं शताब्दी तक संगीत की नई विधाओं तराणा, दादर तथा गज़ल का अस्तित्व भी हम देखते हैं।

14.6 चित्रकला

सीमित प्रतिरूपों की वजह से सल्तनत युग में चित्रकला के विकास का अध्ययन हो नहीं सका है। सबसे नज़दीकी दष्टिकोण सल्तनत काल के साहित्यिक प्रसंगों से प्राप्त भित्ति चित्र में मिलता है। भित्ति चित्र का आरम्भिक संदर्भ इल्तुतमिश की प्रशंसा में क़सीदा से प्राप्त होता है जो खलीफा के राजदूत का स्वागत करने के लिए बनाए गए मुख्य मेहराब के दीवार पर वर्णित आकतियों का वर्णन करता है। अन्य संदर्भों में तारीख–ए–फिरोज़शाही में भी मिलता है, जिसमें दिल्ली के महलों की दीवारों पर उभरी चित्रकारों पर प्रतिबंध लगाने की अनुशंसा की गई है। इस काल में दक्षिण एशिया में कुरानी सुलेखन बहुत ही लोकप्रिय हो चला था। कुरान की प्रथम प्रतिलिपि (1399 में) ग्वालियर में लिखी गई थी। पांडुलिपि विविध आलंकारिक नमूनों द्वारा सुसज्जित थी। 15वीं शताब्दी तक गुजरात, मालवा तथा जौनपुर के राज्य कला के प्रमुख केन्द्र बनकर उभरे।

मुगलों के काल में भारत में चित्रकला ने नए युग में प्रवेश किया। उन्होंने पूरे उत्तर भारत में चित्रकला के चरित्रों को पूरी तरह बदल दिया। मुगल चित्रकला शाही दरबार में प्रचलित विषयों तथा शैलियों द्वारा परिभाषित होती है। मुगल चित्रकला की आरंभिक शैली



चित्र 14.3 मुगल चित्रकला

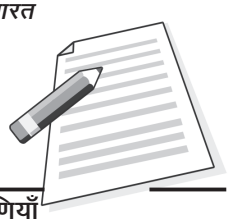

हमें काबुल में मिलती है। हुमायूं के शासनकाल में दो प्रमुख फारसी चित्रकारों मीर सैय्यद अली और अब्दुस समद को राजसी संरक्षण प्राप्त था।

अकबर ने उन्हें हमज़नामा की पांडुलिपि की व्याख्या करने के लिए नियुक्त किया था। 1400 प ष्ठ वाली पांडुलिपि ग्वालियर, गुजरात, लाहौर, तथा कश्मीर के कलाकारों द्वारा रचित है। इसी काल के दौरान मुगल कला की नए विशेषताएं विकसित हुईं। इस युग में एक ही चित्र पर दो या यहां तक कि चार चित्रकारों द्वारा बनाए गए कई चित्र सामूहिक कार्य हैं। इस चित्रकला की प्रमुख विशेषताओं में से मुख्य हैं — आक तियों की सीमित गतिविधियां, चित्रकारी की रेखाओं की परिष्क तता तथा वास्तुशिल्पी स्तम्भों का समतल चित्रांकन। मुगल चित्रकला अपनी स्वाभाविकता तथा लय, भारतीय वस्त्रों में पात्रों का चित्रण तथा प ष्ठभूमि में पूरक द श्यों के प्रयोग के लिए भी विख्यात है। मुगल चित्रकला की दो प्रमुख विषयवस्तु दरबार की मुख्य घटनाओं का चित्रण तथा विख्यात व्यक्तियों के रूपचित्र थे।

जहांगीर के शासनकाल में मुगल चित्रकला में और परिवर्तन परिलक्षित होते है। जहांगीर कालीन चित्रकला रूपवादी शैली पर ज़ोर देती है तथा व हद हाशिये वाले चित्र मिलते हैं जो वनस्पतियों तथा मानवाक तियों के चेहरों के चित्रण द्वारा सुसज्जित हैं। यह स्वाभाविक



चित्र 14.4 राजपूत चित्रकला

चित्रण जहांगीर के शासन काल में फला–फूला। चित्रों की प ष्ठभूमि में व क्षों, नदियों, पक्षियों तथा नहरों का प्रयोग बहुत ही लोकप्रिय हुआ।

शाहजहां के शासनकाल में बने चित्रों में शाही दरबार से सम्बधित स्त्रियों का चित्रण तथा प्रेम के रोचक द श्य परिलक्षित होते हैं जबकि औरंगज़ेब के शासनकाल में बने चित्र मुगल शासक के सैन्य अभियानों की झलक दिखलाते हैं। स्थापत्य कला में भी मुगल चित्रकारी ने क्षेत्रीय शैलियों के विकास तथा प्रगति के लिए मार्ग प्रशस्त किया, जिसने समान विशेषताओं वाली अलंक ति को दोहराने का प्रयत्न किया।

इसी काल की राजपूत चित्रकारी में विभिन्न राजपूत शासकों के विविध राजदरबारों का चित्रण था। 16वीं तथा 17वीं शताब्दी में राजपूत चित्रकला में कई प्रणालियों तथा दरबार के द श्यों का चित्रण हमें मिलता है। राजपूत काल की चित्रकला बहुत ही विस्त त भूभाग पर फैली थी, हर क्षेत्र में कलात्मक विषय में भिन्न उप विषय का निर्माण हुआ। अन्य लोकप्रिय क्षेत्रीय शैलियों में दक्किनी शैली मुख्य थी तथा बंगाल, गुजरात और उड़ीसा में भी कला की क्षेत्रीय शैली का विस्तार देखने को मिलता है। राजपूत चित्रकला पुनः 18वीं शताब्दी में फली–फूली जब कई कलाकार अपने नए संरक्षकों की शरण में आए। इसी समय कला की कई क्षेत्रीय शैलियों का उदय भी देखने को मिलता है। ये चित्र अपने रंगों की चटखता के लिए विख्यात हैं तथा आखेट के द श्य, व्यक्ति का रेखाचित्र तथा संगीत सत्र का वर्णन इनमें मिलता है। इस चित्रकला की मुख्य शैलियां मेवाड़, बूंदी तथा किशनगढ़ शैलियां है।

पाठगत प्रश्न 14.5

1. अमीर खुसरो द्वारा स जित संगीत वाद्य यंत्रों के नाम लिखें?

2. ध्रुपद शैली के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका किसने निभाई?

3. जहांगीर के काल में चित्रकला में क्या शैलीगत परिवर्तन आए?

4. मुगल चित्रकला की मुख्य विषय वस्तु का उल्लेख करें।

14.7 वास्तुशिल्प

दिल्ली सल्तनत का वास्तुशिल्प

मध्यकाल में वास्तुशिल्प की नई शैलियों तथा रूपों ने जन्म लिया। इस काल में मेहराब तथा गुम्बद नए स्थापत्य संयोजन बने। चूने–सीमेंट, पानी और रेत के मिश्रण के भवन तथा मकान निर्माण में प्रयोग ने भवन तकनीक को एकदम बदल दिया। मेहराबों का विकास इस युग की स्थापत्य कला की मुख्य विशेषता थी। मेहराबों के निर्माण के लिए

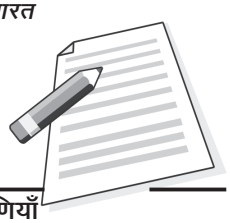

पत्थर तथा ईंटे टेढ़ी रेखा के आकार में रखे जाते थे तथा बांधने वाली उत्क ष्ट सामग्री द्वारा परस्पर गुंथे होते थे। मेहराबों का निर्माण विभिन्न रूपों में हुआ किंतु सबसे विशिष्ट नुकीले प्रकार के थे। 14वीं शताब्दी में एक भिन्न प्रकार के मेहराब चतुर्केन्द्री मेहराब, तुगलकों द्वारा निर्मित भवनों में प्रयुक्त हुए।

उपमहाद्वीप में तुर्क कालीन आरंभिक कुछ ही भवनों में भवन निर्माण की नई सामग्री का उपयोग दिखता है। इस युग की अधिकतर इमारतों में उत्क ष्ट तराशी हुई भवन सामग्री, स्तंभ तथा पुराने भवनों के कूपक का ही पुनः प्रयोग हुआ है। इस काल में राजगीरी के कार्य में पत्थरों का प्रयोग व हद रूप से मिला है। भवन में प्लास्टर करने के लिए सर्व प्रचलित सामग्री खड़िया मिट्टी अत्यन्त लोकप्रिय थी। साथ ही ऐसे स्थानों पर जहां पानी के रिसाव की संभावना थी, जैसे छत, सुरंग तथा नाले, वहां पर चूने–प्लास्टर का प्रयोग किया गया। इस काल के उत्तरार्ध में खड़िया मसाले का प्रयोग सर्वत्र लोकप्रिय हो चला था।

यहां हम स्थापत्य कला की सल्तनत, मुगल तथा राजपूत शैली में भारत में हुई प्रगति का अध्ययन करेंगे।

सल्तनत काल

कुत्वातुल इस्लाम मस्जिद (1198), कुतुब मीनार (1199-1235), अढाई दिन का झोपड़ा (1200) तथा इल्तुतमिश का मकबरा जैसे स्मारक भारतीय–इस्लामिक शैली के आरम्भिक रूप को दर्शाते हैं। आरम्भिक इमारतों जैसे स्मारक की शैली जहां एक ओर स्थानीय कलाकारों के काम को प्रदर्शित करती हैं, वहीं बाद की इमारतें में भारतीय–इस्लामिक शैली का विकास दिखाई देता है। इन स्मारकों में गुम्बदों तथा मेहराबों का क्रमबद्ध विकास द ष्टिगोचर होता है। इस शैली के उत्क ष्ट नमूने इल्तुतमिश (1233-34) तथा बलबन का मकबरा (1287-88) हैं। कुतुब परिसर में अलाई दरवाजा (1305) तथा निजामुद्दीन में जगत खाना मस्जिद (1325) खिलजी काल के उत्क ष्ट उदाहरण हैं। यहां पर सेलजक स्थापत्य परम्परा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। घोड़े

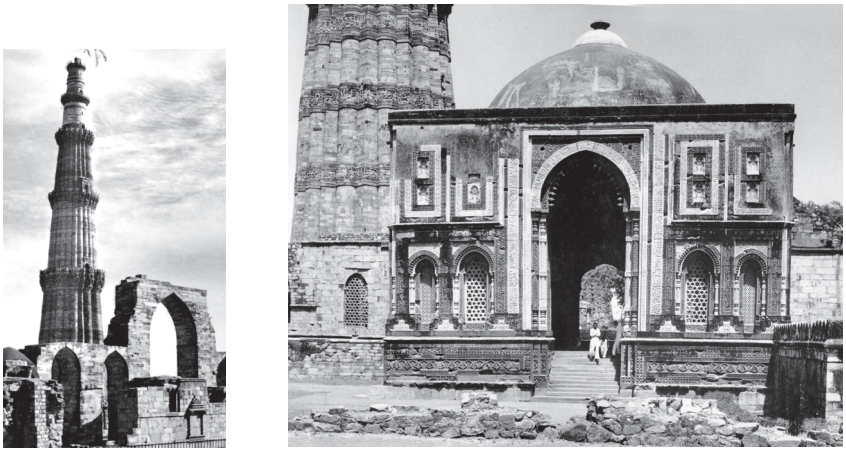

चित्र 14.5 कुतुबमीनार और अलाई दरवाजा

के नुकीले जूतों के आकार के मेहराबों का निर्माण गुम्बदों का प्रस्फुटन, अलंक त संगमरमर नक्काशी तथा लाल पत्थरों का उपयोग, मेहराबों के भीतरी भिन्न पर कमल पंखुडी जैसी किनारियों का आविर्भाव तथा नई राजगीरी इस शैली की प्रमुख विशेषताएं थीं। तुगलक काल की नई शैली में मुख्य भवन निर्माण सामग्री के रूप में छोटे–बड़े अनगढ़े पत्थरों का प्रयोग, दीवारों तथा छावनियों का चतुर्कोणीय मेहराबों का निर्माण, नोकदार गुम्बदों का निर्माण तथा अष्टकोणीय गुम्बद योजना का प्रारंभ हम मुख्य विशेषताओं के रूप में पाते हैं। तुगलक वास्तुशिल्प की अन्य मुख्य विशेषता टूटी हुई अथवा ढलाव वाली दीवारें थीं। इसने भवनों को मजबूती प्रदान की। आगे चलकर कई गुम्बद अष्टकोणीय योजना के अंतर्गत बने वहीं कई गुम्बदों ने समकोणीय योजना के अंतर्गत अपना आकार ग्रहण किया। सूरी के स्थापत्य स्मारकों को हम दो काल खंडों में विभाजित कर सकते हैं – पहला शेरशाह सूरी के पिता तथा खुद शेरशाह के मकबरे जैसी सासाराम (1530-40) के स्मारक। दूसरा चरण (1590-1545) हमें दिल्ली में पुराना किला तथा किले के भीतर किलाई कुन्हा मस्जिद के स्मारकों के रूप में मिलता है। मुगल काल में चतुर्कोणीय मेहराबों के विकास से पूर्व ताज के वक्रों में हल्की समतलता अंत्तिम अवस्था की ओर संकेत करती है।

क्षेत्रीय विविधताएँ

इस काल के दौरान हमें क्षेत्रीय स्तर पर स्थापत्य कला की विभिन्न शैलियों का विकास भी देखने को मिलता है। पूर्वी भारत में बंगाल तथा जौनपुर में दो विशिष्ट शैलियों का उदय पाते हैं। बंगाल शैली के मुख्य भवन मालदा तथा गौर और पंडुआ नगरों में देखने को मिलते है। इसमें दो मुख्य विशेषताओं की शुरुआत भी हुई। पहली विशेषता है – लटकी हुई मेहराब जिसकी चौड़ाई तथा केन्द्र अपने मुख्य समतल केन्द्र से अधिक है। दूसरी विशेषता मेहराब के कक्षों की छत को इस तरह से ऊंचा करना जहां छोटे गुंबद व्यवस्थित तिरछी ईंटों की सहायता से निर्मित हों कि वह चौकोर से व त्तीय नींव के निर्माण में मदद दे। इस काल की अन्य उपलब्धि बांस के भवनों के स्थान पर ईंटों से निर्मित भवन थे, जिसके दौरान व त्तीय छतों का रूप विकसित हुआ। जौनपुर शैली की व्याख्या वहां की बनी मस्जिदें कर देती हैं। जौनपुर की शैली तुगलक शैली के जैसी ही है। मेहराब तथा तराजू के डंडे का प्रयोग इस शैली की उल्लेखनीय विशेषताएं थीं।

पश्चिमी भारत में स्थापत्य कला में उल्लेखनीय कार्य 14वीं शताब्दी में गुजरात में देखने को मिलता है। 14वीं और 15वीं शताब्दी में कला के क्षेत्र में परिवर्तन भी दिखाई देता है। 14वीं शताब्दी में विध्वंस किए मन्दिरों के अवशेषों से मस्जिद का निर्माण मिलता है तथा 15वीं शताब्दी में नई शैली विकसित हुई जिसमें मस्ज़िदों के खाके मंदिर के स्थापत्य छापों की तर्ज पर बनाए गए। मध्य भारत में गालवा क्षेत्र में स्थापत्य कला का विकास उल्लेखनीय रहा। धार तथा मांडु के शहर इस शैली के प्रमुख उदाहरण हैं।

एक अन्य क्षेत्र जिसने स्थापत्य कला में अपनी विशिष्ट शैली विकसित की, वह दक्कन क्षेत्र था, जहाँ उत्तर भारत की स्थापत्य कला की तुलना में बहमनी राज्य एकदम भिन्न रूप से विकसित हुआ। दक्कन शैली में उत्तर भारत की तुगलक शैली तथा फारसी शैली का मिश्रण मिलता है। यहाँ के वास्तुशिल्प की शैली की राजधानी गुलबर्ग (1347) से बिदर (1425) और अंत में गोलकुंडा (1512) में स्थानांतरित होने के दौरान की कालावधि से मेल खाती है। क्रमशः प्रथम चरण में गुलबर्ग की स्थापत्य शैली इस्लामिक

वास्तुशिल्प तथा तुगलक शैली का प्रतिनिधित्व करती है। दूसरे चरण में फारसी वास्तुशिल्प की शैलियों की नकल मिलती है, जो रंगबिरंगी टाइलो और गुम्बदों के स्वरूप में परिवर्तन से भी स्पष्ट होता है।

विजयनगर कला दक्किन क्षेत्र की अन्य विशेष उपलब्धि थी। इस विशिष्ट कला का अनुपम उदाहरण हम्पी शहर की इमारतों से मिलता है। महलों तथा मन्दिरों के अतिरिक्त शहर में जल सम्बन्धित कार्यों का जाल तथा जन भवनों का निर्माण भी बहुतायत से दिखाई पड़ता है जैसे हाथी अश्वशाला तथा कमल महल। इस शैली की अनुपम विशेषता वास्तुशिल्पी तथा अलंक त उद्देश्यों के लिए स्तंभों का प्रयोग है। मन्दिर स्थापत्य की यह शैली तुलुव शासकों के समय में सर्वोच्च शिखर पर पहुँची। स्थापत्य कला की इस परम्परा की आकर्षक मूर्तिकला की परम्परा का साथ मिला जिसने कई पौराणिक आक तियों तथा घटनाओं की व्याख्या की। हेमाकुट पहाड़ी पर स्थित मन्दिर, विरूपक्ष मन्दिर तथा हजारा राम मन्दिर विजयनगर मंदिर की वास्तुशिल्प के उत्क ष्ट उदाहरण हैं।

मुगलकालीन स्थापत्य कला

इस काल में व्यापक स्तर पर स्थापत्य कला में कार्य हुए जिससे कला भारत में अपने चरम पर पहुँची। यह विचारों तथा शैलियों के परस्पर आदान–प्रदान का भी युग था, जिसने सल्तनत काल से सर्वथा भिन्न स्थापत्य कला को जन्म दिया तथा जिसमें स्थानीय



चित्र 14.6 हुमायूँ का मकबरा

तथा क्षेत्रीय विशेषताओं का भी समन्वय था। मुगल बादशाह अकबर ने शानदार परियोजनाओं की शुरुआत की जो इस युग का प्रतीक है।

इस युग की आरम्भिक इमारतों में बाबर द्वारा 1526 में पानीपत तथा सम्भल में निर्मित 2 मस्जिदें हैं। बाबर को ही ढोलपुर, रामबाग तथा आगरा में ज़हराबाग का खाका तैयार करने का श्रेय जाता है। आगरा तथा हिसार में स्थित 2 मस्जिदें, द्वितीय मुगल बादशाह हुमायूँ के समय की हैं। मुगल वास्तुशिल्प की भव्यता का युग हुमायूँ के मकबरे के निर्माण

से प्रारम्भ होता है जिसका खाका ईरान के मिराक मिर्जा ग्यास ने बनाया था। वह मकबरे पर कार्य करने के लिए अपने साथ ईरान से मजदूर लाया था। यह मकबरा बागों से घिरा हुआ तथा बलुआ पत्थर के आच्छादित आधार पर बने स्मारकों का सबसे पहला उदाहरण है। यह मकबरा अष्टकोणीय है तथा ऊपर ऊँचा गुम्बज है। यह गुम्बद दोहरा गुंबद है जो दो परतों में बना है। एक परत इमारत के अन्दर की भीतरी छत प्रस्तुत करती है तथा बाहरी परत जो शिखर पर है, वह मुख्य इमारत को प्रस्तुत करती है।

अकबर के काल में बहुत सी देशी शैलियों का विस्तार हुआ, जिसने बलुआ पत्थर का सामान्य प्रयोग, मेहराबों का प्रयोग (मुख्यतः अलंक त रूपों में) तथा सजावट को जन्म दिया जिसमें मुख्यतः मजबूत नक्काशी या जटित प्रतिरूप है तथा अन्दर की दीवारों पर चटकीले रंगों का प्रयोग हुआ है। महत्त्वपूर्ण स्मारक परियोजनाओं में आगरा के किले का निर्माण था, किले के अन्दर कई ढाँचों के निर्माण में गुजराती तथा बंगाली शैली का प्रयोग हुआ जो शाहजहाँ द्वारा किले को नया रूप देने के लिए नष्ट कर दी गई थी। जहाँगीर महल, लाल पत्थरों की सुद ढ़ इमारत हिन्दू तथा इस्लामिक शैली के प्रयोग के लिए जानी जाती है। कोष्ठ तथा डंड के समायोजन ने मुख्य स्थापत्य पद्धति का निर्माण किया। इसकी झलक लाहौर तथा इलाहाबाद के दुर्गों के महलों में मिलती है। फतेहपुर सीकरी के निर्माण के साथ ही अकबर कालीन स्थापत्य कला ने नए युग में कदम रखा। 1571-1585 के दौरान बने इस महल में लाल पत्थरों

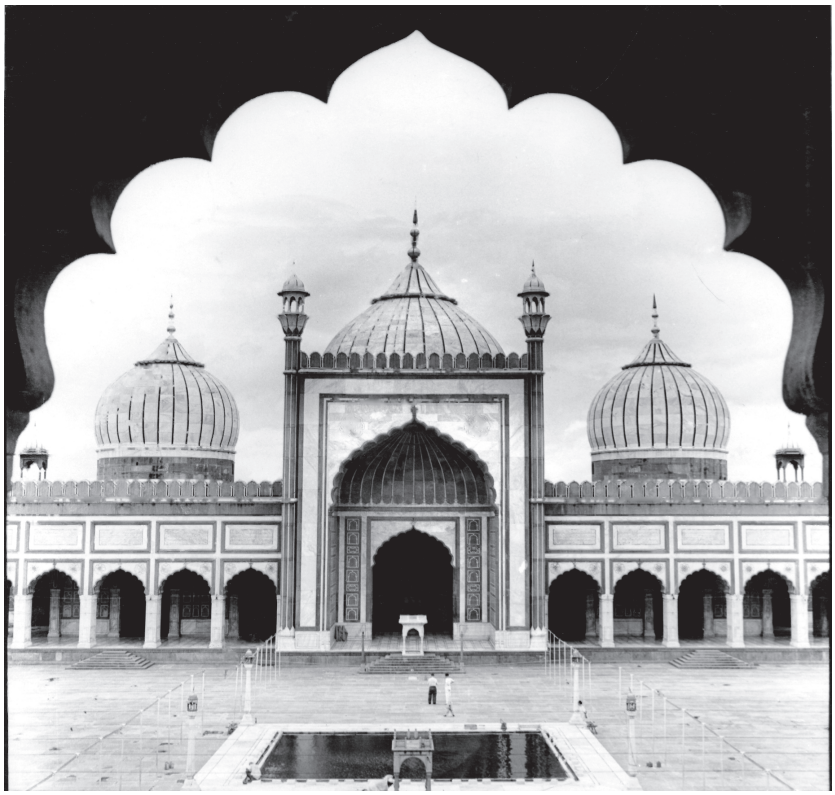

चित्र 14.7 जामा मस्जिद दिल्ली

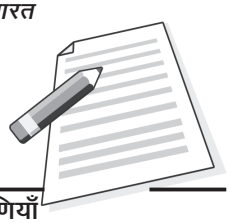

का उपयोग किया गया है। इस इमारत को दो भागों में अध्ययन किया जा सकता है, धार्मिक तथा धर्मनिरपेक्ष। धार्मिक इमारतों में मुख्य है – जामा मस्जिद, बुलन्द दरवाजा तथा शेख सलीम चिश्ती का मकबरा। धर्मनिरपेक्ष इमारतों में महल, प्रशासनिक इमारतें तथा अन्य इमारतें हैं। जामा मस्जिद में मस्जिद की आदर्श योजना है, जिसमें केंद्रीय आंगन है जो तीन तरफ से आच्छादित है तथा गुम्बदाकार छत है। इसके आंगन में सलीम चिश्ती का मकबरा है। इसकी अन्य प्रमुख इमारतों में जोधाबाई महल, पंचमहल, (पांच मंज़िला भवन जिसकी हर बढ़ती मंजिल आकार में घटती जाती है), दीवान–ए–खास (आयताकार रूप में तथा बाहर से दो मंज़िला) तथा दीवान–ए–आम है। अन्य इमारतों में हाथी पोल तथा कारखाना इमारतें हैं।

जहांगीर के काल की मुख्य स्मारकों में सिकंदरा स्थित अकबर का मकबरा तथा इत्माद–उद–दौला मकबरा है। सिकन्दरा स्थित मकबरा बाग से घिरा हुआ है। मकबरा तीन मंजिलों में बना है। पहली मंजिल एक आच्छादित मंच का आधार है तथा तीन मंज़िलों में बीच की मंजिल लाल पत्थरों से तथा सबसे ऊपर वाली मंजिल सफेद संगमरमर से बनी है, जो ऊपर से खुली है और पर्दे से घिरी है। 1622-28 में बना इत्माद–उद–दौला का मकबरा अकबर की शैली से एकदम अलग है। गुम्बदाकार छत से घिरा हुआ यह मकबरा संगमरमर की खूबसूरत नक्काशी से बना हुआ है। जहांगीर ही कश्मीर में प्रसिद्ध मुगल गार्डन की नींव डालने वाला माना जाता है।

शाहजहां के काल के महत्त्वपूर्ण स्मारकों में दिल्ली का लाल किला, आगरा की मोती मस्जिद, दिल्ली की जामा मस्जिद तथा आगरा का लाल किला है। लाल किला यमुना नदी के किनारे आयत के रूप में बना हुआ है। इसमें दो द्वार हैं दिल्ली तथा लाहौर दरवाजा। नदी के किनारे को छोड़कर किले के आसपास खाई है, जो पूरे किले को घेरती है। किले के अंदर की मुख्य इमारत दीवान–ए–आम, दीवान–ए–खास तथा रंग महल

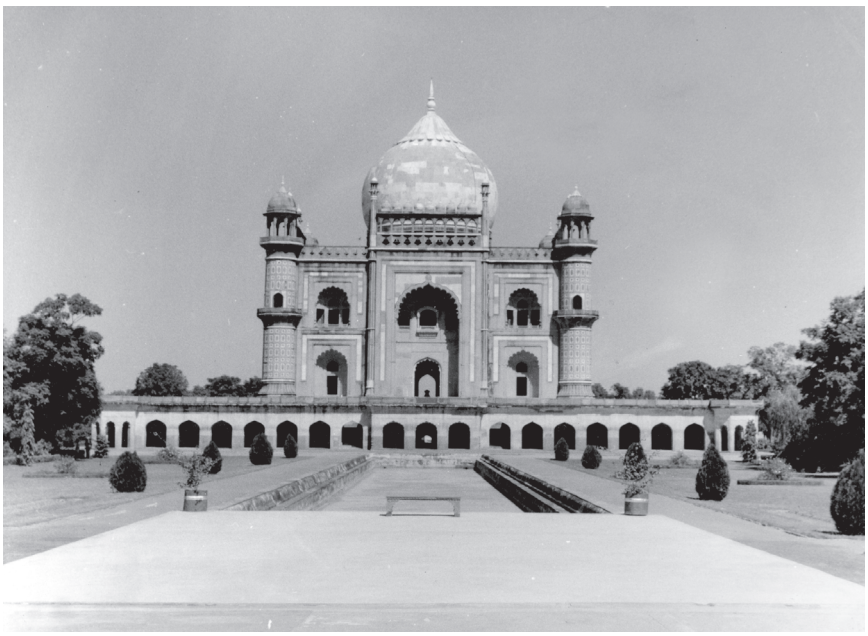

चित्र 14.8 सफदरजंग का मकबरा

है। आगरा में बनी मोती मस्जिद एक वैकल्पिक योजना के साथ किया गया प्रयोग है, जिसमें खुला प्रार्थनास्थल है तथा मीनारों के स्थान पर प्रार्थना स्थल के चारों ओर छतरियों का निर्माण किया गया है। दिल्ली की जामा मस्जिद, फतेहपुर सीकरी की जामा मस्जिद का ही व हद रूप है। यह एक बड़े मंच पर बनी है। मस्जिद के अंदर तीन ओर स्तंभवालियां हैं तथा चौथी ओर शरणस्थल है। शरणस्थल पर संगमरमर से बने तीन गुंबद हैं। ताजमहल शाहजहां की भव्य परियोजना है। ताजमहल का निर्माण 1632 में प्रारंभ हुआ तथा यह 1643 में बनकर पूरा हुआ। भवन में ऊंची अंतःक्षेत्रीय दीवारों के साथ मध्य में भव्य द्वार मार्ग आयताकार है। ताज की मुख्य इमारत संगमरमर के एक बड़े चबूतरे पर, परिसर के उत्तरी किनारे पर स्थित है। इस इमारत में एक बहुत विशाल गुम्बद है, जो ढांचे को ढँकता है तथा भवन की अलंक त विशेषताओं में मुख्यतः बाहरी हिस्से पर सुलेखन तथा जड़ाऊ कार्य है तथा अंदर पैट्रा डयूरा है।

दिल्ली के लाल किले की मोती मस्जिद, लाहौर की बादशाही मस्जिद तथा अपनी पत्नी रबिया उद दौरान की याद में औरंगाबाद में बनाया स्मारक औरंगजेब के समय की मुख्य इमारतें हैं। औरंगाबाद का स्मारक ताजमहल से प्रेरणा लेकर बनाया था। औरंगजेब के पश्चात् के स्मारकों में दिल्ली में सफदरजंग का मकबरा क्षेत्रीय शासकों द्वारा मुगलों की परम्परा को आगे बढ़ाता प्रतीत होता है।

अलंक त शैली

इस युग की कला की एक अन्य विशेषता इस्लामी इमारतों में अलंक त कला थी, जो उपमहाद्वीप में पहली बार प्रयुक्त हुई थी। अलंक त शैलियों में सुलेखन, रेखाचित्र तथा पत्तियों का चित्रण था। कुरानी सुलेखन शिक्षाएं इमारतों में कोणीय, सादे तथा ब हत लिपि कुफी द्वारा वर्णित थी। सुलेखन इमारत के विभिन्न भागों जैसे छत, दरवाजों की चौखट, दीवारों इत्यादि पर मिली है। दूसरी ओर रेखाचित्रों का उपयोग विभिन्न प्रकार के संयोजन में मिलता है। इन डिज़ाइनों के मुख्य स्रोत व त्त थे, जो कालान्तर में वर्ग, आयत, त्रिकोण तथा बहुकोणी हो गए। फिर इन्हें विविध रूपों तथा उप प्रभागों द्वारा घूर्णन पद्धति से अलंक त किया गया। पीछे देखें, तो सल्तनत कालीन इमारतों में अरब शैली की सजावट मिलती है। इसमें एक निरंतर तना चित्रित था जो लगातार टूट कर पत्तियों की श्रंखला तथा दूसरे तने का निर्माण कर रहा था और वह तना पुनः मुख्य तना होकर वही चक्र पुनः संचालित करता था।

पाठगत प्रश्न 14.7

1. वास्तुशिल्प में मध्यकालीन युग में हुए दो मुख्य परिवर्तनों को लिखें।

2. सही मेहराब क्या हैं?

3. भारतीय इस्लामिक स्थापत्य कला के आरम्भिक प्रकार के कुछ स्मारकों के नाम लिखें।

4. फतेहपुर सीकरी में किस प्रकार के पत्थरों का प्रयोग हुआ है?

5. मध्यकालीन युग में प्रयुक्त कुछ अलक ंत शैलियों के नाम लिखें।

आपने क्या सीखा

मध्यकालीन भारतीय सभ्यता भारतीय तथा फारसी दर्शन, साहित्य, कला तथा स्थापत्य कला को प्रस्तुत करती है। धार्मिक क्षेत्र में सूफी वाद तथा भक्ति परंपरा ने एक दूसरे को प्रभावित किया इसने हिन्दू तथा मुसलमानों को एक दूसरे की परम्पराओं को समझने का अवसर दिया।

उर्दू का उदय व्यवहार तथा संश्लेषण का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। संगीत तथा चित्रकला के क्षेत्र में भी यह दिखाई देता है। वास्तुशिल्प के क्षेत्र में प्रकार, रूप, शैली तथा सजावट ने भी एक दूसरे से बहुत कुछ लिया।

इस प्रकार मध्यकालीन युग में दक्षिण एशिया ने धर्म तथा कला के क्षेत्र में कई प्रभावशाली रिवर्तन देखे। सूफी वाद की बढ़ती लोकप्रियता ने इस्लाम की लोकप्रिय स्वीकार्यता को स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई वहीं इस्लामी परम्पराओं को उपमहाद्वीप में लोकप्रिय करने में भी आगे रहे। हिन्दू धर्म के विकास के लिए भक्ति आंदोलन ने भी समान भूमिका निभाई। एक तरफ जहां इन्होंने स्थापित धार्मिक कर्मकांडों तथा आडम्बरों को चुनौती दी, वहीं हिंदू धर्म की मुख्यधारा में एकेश्वरवाद जैसे सिद्धांतों को भी मान्यता दिलाई। सूफी तथा भक्ति दोनों ही आंदोलनों ने स्थापित धार्मिक गुरुओं की वैधता पर प्रश्न उठाए तथा स्थापित धार्मिक परम्पराओं को भी चुनौती दी। सबसे मुख्य बात तो यह है कि दोनों ही पंथ स्थापित आडम्बरों के विरोध में बने, किंतु कालान्तर में इन्हें इन्हीं ध ार्मिक पद्धति का अभिन्न अंग बना दिया गया।

मध्यकालीन युग की एक और अन्य विशेषता क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य की उन्नति रही। बढ़ती क्षेत्रीय पहचान ने कला तथा साहित्य में नए रूपों का निर्माण किया। बंगाली, गुजराती, मराठी और तेलुगू जैसी क्षेत्रीय भाषाओं का विस्तार एक मुख्य चरण है। अनुवाद की लोकप्रियता ने पाठकों की संख्या में व द्धि की तथा विचारों के आदान–प्रदान में भी काफी उन्नति देखी गई। विचारों के आदान–प्रदान ने संगीत में नए विचारों को जन्म लिया। सितार के प्रयोग तथा संगीत की नई शैलियों ने इस युग में संगीत को और सम द्ध किया।

कला के क्षेत्र में मुगल तथा राजपूतों से संरक्षण प्राप्त चित्रकला में नए–नए विकास हुए। शैली, चरित्र तथा अच्छे ढंग से प्रस्तुति की वजह से भारत में अपने पूववर्ती काल में थोड़ा परिवर्तन भी हुआ। मध्यकालीन सामंजस्य की झलक मुगल वास्तुशिल्प में मिलती है। बड़ी संख्या में किले, महल, मंदिर तथा मस्जिदों का निर्माण इस शैली के प्रमुख उदाहरण हैं। भव्य अलंकरण तथा गुम्बदों का निर्माण इस युग की वास्तुशिल्प के मुख्य उदाहरण हैं।

पाठान्त प्रश्न

1. सूफी शिक्षाओं के मुख्य पहलुओं पर चर्चा करें।
2. ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबंदी ने कौन से सूफी सिलसिले की स्थापना की? उनके सिलसिले की मुख्य शिक्षाएँ क्या थीं?
3. विभिन्न भक्ति संतों की शिक्षाओं में क्या समानताएं थीं?
4. भक्ति आंदोलन ने बंगाल तथा महाराष्ट्र में क्या मुख्य विकास किए।
5. गुरुनानक की शिक्षाओं के महत्त्वपूर्ण पहलू पर प्रकाश डालें।
6. मध्यकाल में संस्क त भाषा के साहित्य में हुए नए प्रयोगों के विकास का उल्लेख करें।
7. अमीर खुसरो कौन था? फारसी साहित्य में उनकी देन का उल्लेख करें।
8. मुगलकाल में प्रस्फुटित चित्रकला शैली की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?
9. सल्तनत कालीन स्थापत्य कला की मुख्य विशेषताओं तथा शैली का मूल्यांकन करें।
10. अकबर तथा जहांगीर के काल की स्थापत्य कला में नई शैलियों के उद्भव का वर्णन करें।

पाठगत प्रश्नों के उतर

14.1

1. पीर सूफी शिक्षक को कहते हैं।
2. एक महत्त्वपूर्ण सूफी, जिन्होंने इस्लामी रहस्यवाद को इस्लामी परम्परा से जोड़ा।
3. भक्ति संगीत के लिए प्रयुक्त शब्द।
4. निजामुद्दीन औलिया।
5. वह पंजाब में कादरिया सिलसिला के नेता तथा अकबर के समर्थक थे।

14.2

1. रुढ़िवादी ब्राहमण विचारधारा
2. कबीर, तुकाराम, चैतन्य
3. बंगाल के प्रमुख भक्ति संत

14.3

1. गुरु के साथ प्रत्यक्ष संपर्क रखने वाला सिक्ख
2. पंजाब की प्रमुख व्यावसायिक जाति

14.4

1. राजतरंगिणी, प थ्वीराजविजय
2. यह एक काव्यात्मक विवरण है।
3. वे एक फारसी के कवि थे तथा निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य थे और उन्हें सल्तनत काल में संरक्षण प्राप्त था।
4. फतवा–ए–जहांगीरी/तारीख–ए–फिरोज़शाही
5. भारत में फारसी साहित्य का नया प्रकार
6. मराठी, बंगाली, गुजराती, उड़िया।

14.5

1. सितार
2. राजा मानसिंह
3. रूपवादी शैली का उदय और प्राक तिक चित्रण का उपयोग
4. दरबार की कुछ घटनाओं तथा प्रमुख व्यक्तियों का चित्रण

14.6

1. मेहराब तथा गुम्बद
2. मेहराब निर्माण की नई शैली जो मध्यकाल में पनपी। केन्द्र का पत्थर इसके लिए आवश्यक था।
3. कुव्वत–उल–इस्लाम मस्जिद, कुतुब मीनार, अढ़ाई दिन का झोपड़ा
4. लाल बलुआ पत्थर
5. सुलेखन/भौगोलिक आकार

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. देखे खंड 14.1 अनुच्छेद 1, 3, 6
2. देखें 14.1 नक्शबंदी सिलसिला
3. देखें 14.2 अनुच्छेद 1 से 4
4. देखें 14.2, वैष्णव भक्ति
5. देखें खंड 14.3 अनुच्छेद 1 और 2
6. देखें खंड 14.4 संस्क त साहित्य में आया अनुच्छेद
7. देखे 14.4 फारसी साहित्य
8. देखें 14.6

9. देखें 14.7 दिल्ली सल्तनत

10. देखें 14.7 मुगल साम्राज्य

शब्दावली

खानकाह	–	सूफी फिरके का गतिविधि केन्द्र
सिलसिला	–	सूफीओ के फिरके
एकेश्वरवादी	–	एक ईश्वर में विश्वास करने वाले
पेट्रा डयूरा	–	फारसी सजावट का ढंग जिसमें सफेद संगमरमर/पत्थरों पर रंगीन पत्थर इस प्रकार रखे जाते है मानो एक ही टुकड़ा हो।
रूह	–	आत्मा
हुलूल	–	पवित्र आत्मा से मिलन
जियारत	–	मकबरों की यात्रा करना, एक प्रकार की तीर्थयात्रा
सम	–	सूफियों का समूह में गाना, बजाना

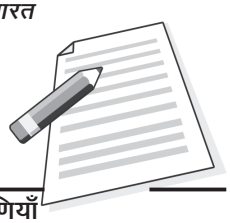

15

18वीं शताब्दी में भारत की स्थिति

18वीं शताब्दी में भारत में दो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जिन्होंने सता के ढांचे को पूरी तरह बदल दिया तथा बहुत से महत्त्वपूर्ण सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों की शुरूआत की। पहला शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगल साम्राज्य से क्षेत्रीय शक्तियों में सत्ता हस्तांतरण तथा दूसरा राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्र में आए परिवर्तन। 18वीं शताब्दी में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा के लिए मौके की तलाश में थी। मुगल सत्ता के पतन ने कई क्षेत्रीय शक्तियों को जन्म दिया। इस अध्याय में हम देश में इन्हीं क्षेत्रीय शक्तियों के उदय का अध्ययन करेंगे। आक्रामक ब्रिटिश नीतियों ने आर्थिक स्थिति को प्रभावित किया। क षि तथा गैर क षि उत्पादन में भी बदलाव आया। वाणिज्यिक गतिविधियां भी अछूती न रह सकीं। 18वीं शताब्दी की सामाजिक तथा आर्थिक स्थितियों की चर्चा भी की जाएगी।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- मुगल साम्राज्य के पतन के कारण तथा क्षेत्रीय शक्तियों को उदय की व्याख्या कर सकेंगे;
- इस अवधि के दौरान उदय हुई मुख्य राजनीतिक शक्तियां का ब्यौरा दे सकेंगे;
- इस अवधि के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था में क्षेत्रीय भिन्नताओं का अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे;
- समाज और संस्क ति की मुख्य विशेषताओं को पहचान सकेंगे; और
- 18वीं शताब्दी के भारत के मुख्य मुद्दों का आकलन कर सकेंगे।

15.1 मुगल साम्राज्य का पतन

भूमिका

मुगल साम्राज्य की एकता तथा सुदढ़ता औरंगजेब के लंबे तथा मजबूत शासन के दौरान ही विखंडित होने लगी थी। हालांकि कुछ झटकों तथा विकट स्थितियों के

बावजूद मुगल प्रशासन काफी सक्षम था तथा उसकी मत्यु के समय 1707 ई० तक मुगल सेना भी काफी मजबूत स्थिति में थी। इस वर्ष को आम तौर पर महान मुगल तथा लघु मुगलों के काल में अंतर स्पष्ट करने के लिए किया जाता है। औरंगजेब की मत्यु के पश्चात मुगल सत्ता कमजोर हो गई तथा अपने विशाल साम्राज्य के हर हिस्से पर नियंत्रण स्थापित करने की शक्ति अब उसमें न रही। फलतः कई क्षेत्रीय सूबेदारों ने अपनी सत्ता का दावा करना प्रारंभ कर दिया। नतीजतन कई मुगल सुबेदारों ने खुद को स्वतंत्र घोषित कर दिया। कुछ नए क्षेत्रीय समूह भी उभरे तथा संगठित हुए तथा इन्हीं घटनाओं के बीच राजनीतिक शक्ति बनकर उभरे। 1707 से लेकर पानीपत के ततीय युद्ध 1761 ई. (जिसमें अहमद शाह अब्दाली ने मराठा शासकों को पराजित किया) तक की अवधि क्षेत्रीय शक्तियों के पुनः उदय की साक्षी बनी, जिसने राजनीतिक तथा आर्थिक विकेन्द्रीकरण व्यवस्था को जन्म दिया। इसी समय तमाम राजनीतिक तथा सैन्य उठापठक के बावजूद स्थानीय कच्चा माल, हस्तशिल्प तथा अनाजों के क्षेत्रीय तथा अंतर्क्षेत्रीय व्यापार ने राजनीतिक व सैन्य संबंधों पर गौर किए बिना आर्थिक परस्पर निर्भरता के प्रगाढ़ रिश्तों का निर्माण किया।

मुगल साम्राज्य का समापन

सन 1707 ई. में जब औरंगजेब की म त्यु हुई, तब क्षेत्रीय शक्तियों से गंभीर चुनौतियां मिलना प्रारंभ हो गया था, जिसने समस्याओं को साम्राज्य के ठीक केन्द्र में बलपूर्वक प्रकट करना शुरू किया। नए शासक बहादुर शाह प्रथम (उर्फ शाह आलम, 1707–12) ने समझौते की नीति अपनाई, उसने उन सभी दरबारियों को माफ कर दिया, जिन्होंने उसके विद्रोहियों का साथ दिया था। उसने उन्हें समुचित क्षेत्र तथा पद प्रदान किए। उसने ज़जिया हालाँकि नहीं हटाया परंतु एकत्र करने का अधिक प्रयत्न भी नहीं किया। आरंभ मे उसने राजस्व राजपूत क्षेत्र के आमेर (वर्तमान जयपुर) तथा जोधपुर के राजा पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया था। जब उसके प्रयासों का विरोध होने लगा तो उसने उनके साथ समझौते की आवश्यकता का अनुभव किया। हालांकि यह समझौता भी उन्हें मुगलों के प्रति कटिबद्ध योद्धा न बना सका। मुगल बादशाह की मराठों के प्रति नीति भी आधी–अधूरी समझौतावादी ही थी। मराठा आपस में तथा मुगलों से संघर्ष करने में ही उलझे रहे। बहादुरशाह हालांकि दक्कन में बुंदेला प्रमुख छत्रसाल तथा जाट सरदार चूड़ामन के साथ समझौता करने में सफल रहा, जिसमें जाट प्रमुख ने सिक्खों के विरुद्ध अभियान में उसकी सहायता की थी।

जहाँदार शाह (1712-1713) बेहद ही कमजोर तथा अयोग्य शासक था। उसके वजीर जुल्फकार खान ने साम्राज्य चलाने की शक्तियां हथिया लीं। जुल्फकार ने महसूस किया कि शासन संचालन के लिए राजपूतों तथा मराठों के साथ मित्रतापूर्ण संबंध बनाए रखने में ही भलाई है शासन की सलामती के लिए हिन्दू प्रमुखों के साथ समझौता अनिवार्य है। उसने औरंगजेब की नीतियों को उलट दिया। घ णास्पद ज़जिया कर हटा दिया गया, उसने सिक्खों के खिलाफ दबाव वाली नीति का ही अनुसरण किया। उसका लक्ष्य उन सभी शक्तियों के साथ सुलह करना था, जो मुगल संस्थागत ढांचे में सत्ता बांटना चाहती थी। जुल्फिकार ने आर्थिक व्यवस्था में सुधार के भी कई प्रयास किए।

वह राज्य में राजस्व संचरण में व द्धि करने के प्रयास में असफल रहा। जब कत्ल किए गए राजकुमार अजीमुशशान के पुत्र फारुख/सियार ने जहांदार शाह तथा जुल्फिकार

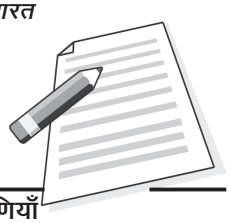

खान को बंगाल तथा बिहार से लाए अपार धन तथा विशाल सेना के साथ ललकारा तो मुगल शासकों ने अपनी तिज़ोरी को एकदम खाली पाया। निराशा में उन्होंने अपने ही महल की लूटपाट की, यहां तक कि छत दीवारों से सोने चांदी को नोच लिया जिससे विशाल सेना का खर्च वहन कर सकें। फारुख/सियार (1713-19) ने विजय हासिल की तथा सैय्यद बंधुओं अब्दुल्लाखान हुसैन अली खान बरहा को उच्च पद प्रदान किए। सैय्यद बंधुओं ने वजीर तथा मुख्य बक्शी की उपाधि धारण की तथा शासन के कामकाज पर नियंत्रण स्थापित किया। उन्होंने जुल्फकार की नीतियों को ही आगे बढ़ाया। ज़जिया तथा अन्य अलोकप्रिय कर तत्काल हटा दिए गए। सैय्यद बंधुओं ने सिक्ख विद्रोह को निर्णायक रूप से दबा दिया वही राजपूत, मराठों तथा जाटों के साथ सुलह समझौते का प्रयत्न किया गया। हालांकि सम्राट एवं वजीर के बीच मतभेदों की वजह से यह नीति लागू नहीं हो पाई क्योंकि गुटबाजी प्रारंभ हो गई थी। जाट एक बार फिर आगरा दिल्ली मार्ग पर छापामारी के कामों में संलग्न हो गए। फारुक/सियार ने राजा जय सिंह को आक्रामक अभियान चलाने को कहा, किंतु वजीर ने राजा की जान का ही सौदा करने का समझौता किया। इसका परिणाम यह हुआ कि संपूर्ण उत्तर भारत में या तो जमींदारों ने विद्रोह कर दिया या फिर जमा किए राजस्व को राजकोष में देने से इंकार कर दिया। इधर फरुखसियर ने मराठी सरदारों को दक्कन के सूबेदार की सेनाओं का विरोध करने का गुजारिशी पत्र लिख दक्कन की समस्याओं को और जटिल बना दिया, क्योंकि दक्कन का सूबेदार सैय्यद हुसैन अली खान का प्रतिनिधि तथा सहयोगी था। अंततः 1719 में सैय्यद बंधु जोधपुर से अजीत सिंह तथा मराठा सेनाओं को बादशाह को पदच्युत करने के लिए ले आए।

फखरुर्सियार के कत्ल ने सैय्यद बंधुओं के खिलाफ संभ्रात कुलों में विद्रोह की आग जला दी। ये वर्ग सैय्यद बंधुओं की बढ़ती शक्ति से भी ईर्ष्या रखते थे। इनमें से कई अमीरों, मुख्यतः औरंगजेब के समय के पुराने अमीरों ने राजस्व क षि को वजीर के प्रोत्साहन के प्रति गुस्सा किया, जो उनके अनुसार मुगल शासन कला की धारणा का खुलेआम उल्लंघन था। फखरुर्सियर के स्थान पर सैय्यद बंधुओं ने 8 माह में तीन युवा राजकुमारों को एक के बाद एक गद्दी सौंपी। दो राजकुमार तो रफी–उर–दरजात तथा रफी–उद–दवताह क्षयरोग की वजह से म त्यु को प्राप्त हुए, किंतु तीसरे राजकुमार ने जिसने मुहम्मदशाह की उपाधि धारण की थी, सैय्यद बंधुओं के नियंत्रण से बाहर निकलने के लिए समुचित शक्ति का उपयोग किया।

निजाम–उल–मुल्क, चिनकिलच खान तथा उसके पिता के चचेरे भाई मुहम्मद अमीन खान के नेत त्व में एक शक्तिशाली समूह का संगठन हुआ तथा इन प्रभावशाली अमीरों ने अंततः सैय्यद बंधुओं को सत्ता से बाहर का रास्ता दिखाया (1720)। जिस समय मुहम्मद शाह (1719–1748) गद्दी पर बैठा, तब राजा तथा अमीरों के आपसी रिश्ते एकदम बदल चुके थे। अमीरों के व्यक्तिगत स्वार्थ की छाया राजनीति तथा शासन की गतिविधियों पर पड़नी प्रारंभ हो गई थी। सन 1720 में सैय्यद अब्दुल्ला खान के स्थान पर मुहम्मद अमीन खान वजीर बना। सन 1720 में अमीन खान की म त्यु के पश्चात थोड़े समय के लिए यह पद निजाम–उल–मुल्क की झोली में गया क्योंकि जुलाई 1724 ई. में अमीन खान के पुत्र कमर–उद–दीन ने वंशानुगत अधिकार का दावा कर वजीर पद पर कब्जा जमा लिया। अमीर खुद ही इन नियुक्तियों का निर्देश देते थे। इस समय तक

अमीरों के पास बहुत ज्यादा शक्तियां आ चुकी थीं। वे अपने स्वार्थ हेतु बादशाह के नाम का फरमान जारी करवाया करते थे। बादशाह की स्थिति मात्र कठपुतली की हो गई थी, जिसके पास शक्ति नहीं थी। असली शक्ति अमीरों के संघों के हाथों में थी। अमीर पूरे साम्राज्य की गतिविधियों को केन्द्र से नियंत्रित करते थे, यहां तक कि उन्हें उन राज्यों की स्थिरता की भी काफी फिक्र थी, जहां उनकी जागीरें थीं। बादशाह के नाम पर शासकों तथा फौजदारों तथा अन्य स्थानीय कार्यालयों को फरमान (कुछ अधिकार प्रदान करने का जनादेश या विशेषाधिकार) भेजे जाते थे। औरंगजेब के उत्तराधिकारियों की व्यक्तिगत असफलताओं ने शाही सत्ता/प्रतिष्ठा का भी क्षय किया। जहांदार शाह में बड़प्पन तथा शालीनता का अभाव था, फरुखसियार अस्थिर बुद्धि का था, मुहम्मदशाह छिछोरा था तथा आराम और विलासिता का शौकीन था। बादशाह से निकटता क्षेत्रीय स्तर पर भी नियुक्ति, पदोन्नति तथा निलंबन का कारण बनती थी।

15.2 क्षेत्रीय राजनीति तथा राज्यों का उदय

मुगल साम्राज्य के पतन के क्रम में तथा उसके बाद की शताब्दी (अनुमानतः 1700 से 1850 ई.) में भारत में उदय हुए राज्य, संसाधन, दीर्घकालिता तथा प्रधान लक्षणों के आधार पर भिन्न–भिन्न थे। इनमें से कुछ राज्य जैसे कि दक्षिण में हैदराबाद ऐसे क्षेत्र में स्थित था जिसने आरंभिक मुगल काल में स्वतत्रंता हासिल कर ली थी तथा राज्य निर्माण की एक स्थानीय तथा क्षेत्रीय परम्परा को चलाने वाला बना था। अन्य राज्य वे थे, जिनकी अपनी स्वाभाविक विशेषताएं थीं तथा जो सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में घटित बहुत ही विशिष्ट पद्धति से पैदा हुए थे। विशेष रूप से उत्तर मुगलकाल में ये राज्य जातीय तथा साम्प्रदायिक आधार पर आधारित थे, जैसे–मराठा, जाट और सिक्ख। फलस्वरूप इन क्षेत्रीय शक्तियों की सम्पन्नता ने स्थानीय भूमि तथा शक्तिधारियों को बाह्य अधिकारियों के विरुद्ध शस्त्र उठाने का साहस दिया। हालांकि परस्पर शत्रुता तथा सघर्षों ने इन विद्रोहों को अपने हितों को संगठित कर शासन के विरुद्ध प्रभावी चुनौती देने में बाधा उत्पन्न की। वे रिश्तेदारों, किसान, तथा अपनी जाति के छोटे जमींदारों के समर्थन पर ही निर्भर थे। हर स्थानीय समूह अपनी सम द्धि दूसरे की लागत पर बढ़ाना चाहता था। तत्कालीन राजनीति में शाही प्रतीकों को महत्त्व देने की आवश्यकता आनुवांशिक थी। हर मुकाबला करने वाला शक्ति के क्षेत्र में अपनी शक्ति आंकता था तथा अपने पड़ोसी राज्यों पर अपना वर्चस्व स्थापित करने के नए मौके तलाश करता था। इन राज्यों को एक प्रकार की वैधता की आवश्यकता थी, जो मुगल बादशाह की सर्वस्वीक त सत्ता में आसानी से उपलब्ध हुई। उन्हें मुगलों के प्रतीकात्मक आधिपत्य को स्वीकार करने में किसी भी प्रकार का भय नहीं था, जो उनकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा को कम न कर सका। केन्द्रीय सत्ता के धीमे–धीमे पतन ने नए प्रकार की क्षेत्रीय शक्तियों को जन्म किया। सक्षम तथा सम द्ध अमीरों ने अपने लिए राजनीतिक आधार बनाए। वजीर चिन क्लिच खां ने खुद यह मार्ग खोला। प्रशासन में सुधार करने में असफल रहने पर उसने 1723 में कार्यालय त्याग दिया तथा अक्तूबर 1724 में हैदराबाद की स्थापना हेतु दक्षिण की ओर रुख किया। मुगल दक्कन दरबारियों ने इस संबंध में चिंता जताते हुए क्षेत्रों से निश्चित राजस्व की प्राप्ति सुनिश्चित करने का प्रयत्न किया, जिससे शाही एकता का रूप कायम रह सके। साम्राज्य के विघटन को देखते हुए मराठों ने विस्तारवादी महत्त्वाकांक्षाओं को अमल में

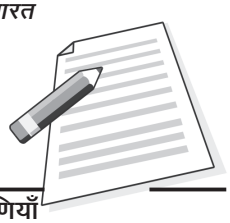

लाते हुए उत्तर की ओर बढ़ना प्रारंभ किया तथा मालवा, गुजरात और बुंदेलखंड को जीत लिया। तब, 1738–39 में ईरान के शासक नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया।

पाठगत प्रश्न 15.1

1. 1707 ई. में औरंगजेब का उत्तराधिकारी कौन बना? उसने किस नीति का अनुसरण किया?

2. सैय्यद बंधु कौन थे? उनकी कुछ उपलब्धियों का उल्लेख करें।

3. हैदराबाद राज्य की स्थापना किसने की? मुगल दरबार में उसका क्या पद था?

4. औरंगजेब की म त्यु के पश्चात अमीरों की शक्ति में व द्धि के दो कारणों का उल्लेख करें?

5. 1738 में किस देश के शासक ने भारत पर आक्रमण किया?

15.3 मराठा शक्ति

इसमें कोई शक नहीं कि मुगल वंश को लंबी अंतिम अवधि में जो एकल महत्त्वपूर्ण शक्ति उदित हुई, वह थी मराठा शक्ति। मराठा योद्धाओं में सर्वाधिक प्रमुख कुल था भोंसले। शिवाजी भोंसले दक्षिण राजनीति में महत्त्वपूर्ण शक्ति बनकर उभरे।

हालांकि शिवाजी जैसा सौभाग्य उनके पुत्र तथा भाइयों को प्राप्त न हो सका (क्रमशः संभा जी तथा उनके छोटे भाई राजाराम)। एक समय तो ऐसा प्रतीत होने लगा था कि मराठा शक्ति अपने पतन पर थी। किन्तु आरम्भिक 18वीं शताब्दी में कुछ परिवर्तन हुए तथा मराठा शक्ति में सुधार की स्थिति बनी। इस संदर्भ में सबसे मुख्य चरण साहू का शासन था, जो 1708 में राजाराम का उत्तराधिकारी बना। साहू ने 1749 ई० तक चार दशकों तक शासन किया। यह अवधि चित्पावन गोत्र के ब्राहमण मंत्रियों के वर्चस्व के लिए जानी जाती है, जो क्रमशः महाराष्ट्र की राजनीति पर छा गए। भोंसले शक्तिहीन हो गए। पेशवा की उपाधि धारण कर बाला जी विश्वनाथ पहली प्रमुख शख्सियत के रूप में मिलते हैं, जिन्होंने शक्ति के उदय में साहू की सहायता की। विश्वनाथ तथा उनके उत्तराधिकारी बाजीराव प्रथम (1720–1740 के मध्य पेशवा) ने आधिकारिक तौर से मराठा राज्य को अपने पूर्ववर्ती भोसलों से कही अच्छा प्रबंधन देने में सक्षम रहे। उन्होंने मुगल क्षेत्रों से शुल्क ग्रहण करने की प्रथा को व्यवस्थित किया तथा सरदेशमुखी और चौथ (दोनों शब्द शुल्क संग्रहण के अनुपात को बतलाते हैं) नाम दिया गया। प्रतीत होता है कि उन्होंने भू–राजस्व के मूल्यांकन तथा संग्रहण करने के उपायों को ज्यादा मजबूत किया जैसा

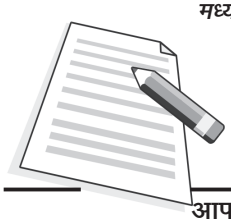

आपकी टिप्पणियाँ

कि अन्य मुगल किया करते थे। पेशवाओं तथा उनके अधीनस्थों की राजस्व संबंधी शब्दावली तथा अन्य कागजातों की भाषा फारसी भाषा से ली गई है। यह मुगल तथा मराठी राजस्व परम्परा की व्यापक निरंतरता को प्रदर्शित करती है।

मराठा राज्यसंघ

साहू के शासन के अन्त तक कुछ शक्तिशाली मराठा क्षेत्र उसके पूर्ण नियंत्रण में थे। इस काल में उनके नियंत्रण वाले क्षेत्रों में व्यापार, बैंक तथा वित्त के परिष्क त क्षेत्रों में विकास दिखाई दिया। पुणे आधारित बैंक घरानों की कई शाखाएं गुजरात, गंगा घाटी तथा दक्षिण में भी थीं। तटवर्ती कार्यों पर ध्यान दिया किया गया। बालाजी विश्वनाथ ने अंग्रिया कुल को परिष्क त करने में कुछ सावधानी बरती, जो कोलाबा तथा अन्य पश्चिमी तटों पर जहाजों को नियंत्रित करती थी। ये पोत न सिर्फ बम्बई में नवस्थापित अंग्रेजी व्यवस्था के लिए बल्कि गोवा, दमन तथा बेसन में पुर्तगालियों के लिए भी खतरा बन गए। दूसरी ओर मूल मराठा केंद्र से काफी दूर कई गतिविधियों का संचालन हुआ। इन सरदारों में सबसे महत्त्वपूर्ण थे गायकवाड़, सिंधिया तथा होल्कर। भोंसले परिवार की कुछ शाखाएं थी कोल्हापुर तथा नागपुर में फिर से स्थापित हुई जबकि मुख्य धारा दक्कन केंद्रस्थल, सतारा में ही रहीं। अब इनके प्रभावों का अध्ययन करते हैं।

नागपुर के भोंसले

कोल्हापुर के भोंसले तथा थंजावुर के व्यामकोजी के वंशजों, जो सतारा राजा के समान हैसियत का दावा कर रहे थे, के विपरीत नागपुर की वंशावली सतारा शासकों के स्पष्ट रूप से अधीनस्थ थी। इस वंशावली का सबसे प्रतापी शासक रघुजी भोंसले (1727–55 ई0) था, जो कि बंगाल तथा बिहार में मराठा साम्राज्य विस्तार का उत्तरदायी माना जाता है। उसके उत्तराधिकारियों जानोजी, साबाजी तथा मुधोजी के संबंध पेशवा तथा सतारा वंशावली के साथ घटते–बढ़ते रहे तथा इनके साथ गरमजोशी वाले रिश्तों के स्थान पर ढीली–ढाली संधि रही। अन्य अधीनस्थ शासक, जो सतारा शासकों की छत्रछाया में फले–फूले तथा पल्लवित हुए वे सतारा शासको तथा उनके पेशवाओं के प्रति अपनी राजनीति के उपयोग में कुछ हद तक अवसरवादी ही साबित हुए।

बड़ौदा के गायकवाड़

गायकवाड़ों ने अपनी उपस्थिति 1720 में दर्ज कराई। प्रारम्भ में वे न सिर्फ शक्तिशाली भोंसले परिवार के बल्कि दबाधे परिवार के भी अधीनस्थ थे। यह साहू की म त्यु थी, जिसने पेशवाओं की शक्ति को और बढ़ाया तथा गायकवाड़ों की स्थिति और भी बेहतर हुई। 1750 के पूर्वार्द्ध में गुजरात के राजस्व के बड़े हिस्से पर उनके अधिकार को पेशवा ने मान्यता दी। 1752 में गुजरात क्षेत्र से मुगल शासक के अहमदाबाद से निकाले जाने से इस प्रणाली पर अपनी मोहर लगा दी। गायकवाड़ों ने अपनी राजधानी बड़ौदा में बनाई जिससे उस क्षेत्र में व्यापार तथा उत्पादन के तंत्र का पुनःएकीकरण हुआ। बड़ौदा में दामाजी के शासनकाल (म त्यु 1768 ई0) के बाद कुछ हलचलों का युग आया। गायकवाड़ यद्यपि पुणे तथा पेशवाओं पर अर्द्धआश्रित थे, विशेषकर उत्तराधिकार संकट के मामले में। दामाजी के अंतिम उत्तराधिकारी फतेहसिंह (1771–89) अधिक समय तक पेशवाओं का सहयोगी नहीं बना तथा 1770 के उत्तरार्द्ध 1780 के पूर्वार्द्ध में उसने अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी से समझौता किया जिसने धीर – धीर सरकारी कामकाज में

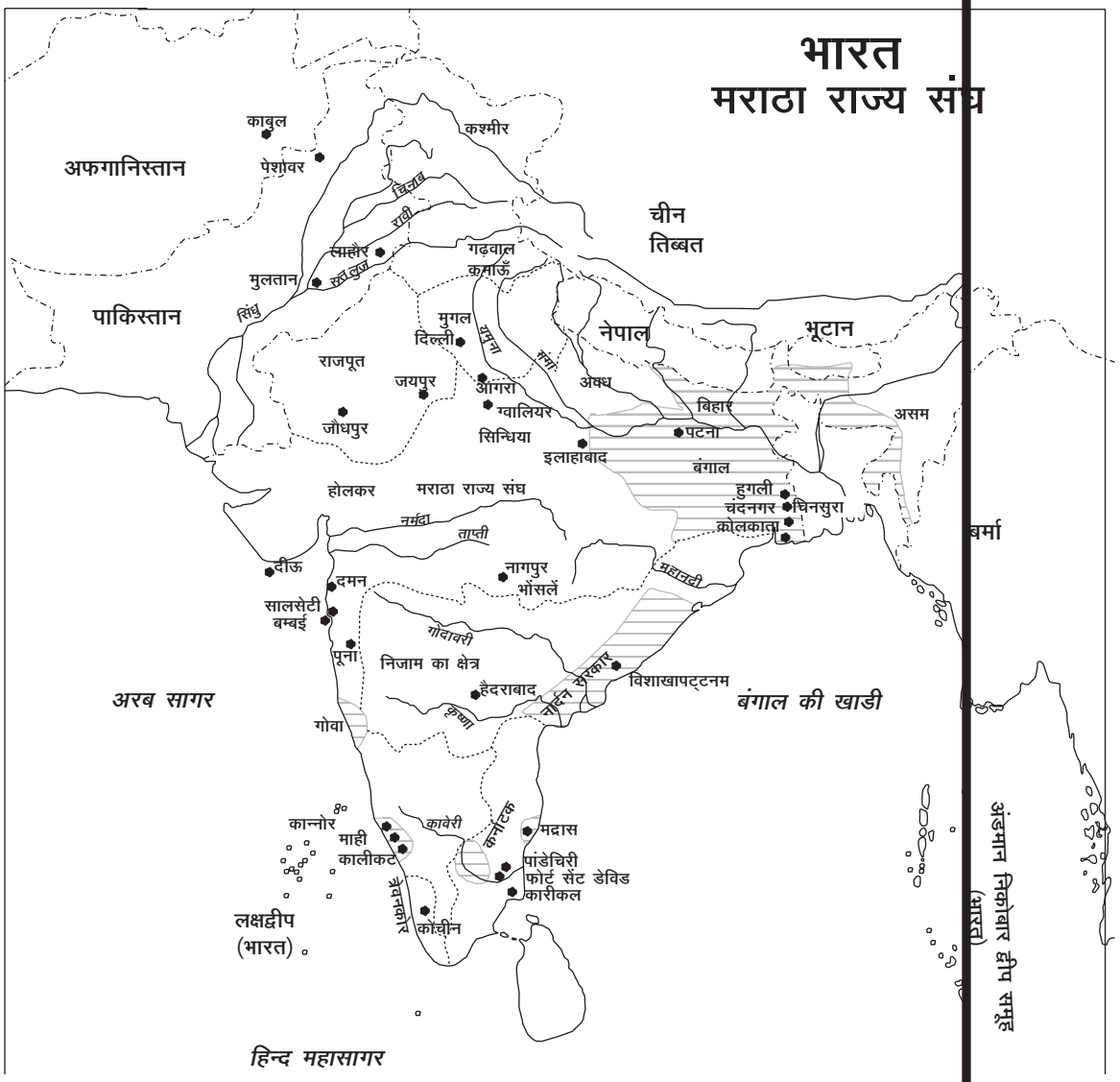

मानचित्र 15.1 मराठा राज्य संघ

ब्रिटिश हस्तक्षेप में व द्धि की। सन 1800 तक पेशवाओं के बदले अंग्रेज ही उत्तराधिकार के मसले पर निर्णायक होते थे, जो 19वीं शताब्दी में उनके अधीनस्थ शासक बन गए थे।

इन्दौर के होल्कर

होल्करों की बात करें, तो उनका पद तथा सम द्धि उल्लेखनीय रही। आरम्भ में उनके पास बहुत ही कम राजनीतिक शक्ति थी। हालाँकि 1730 तक उनके सरदार मल्हार राव होल्कर ने अपनी स्थिति काफी सुद ढ़ कर ली थी। उन्हें चौथ संग्रहण का काफी बड़ा हिस्सा मालवा, पूर्वी गुजरात तथा खानदेश से प्रदान किया जाता था। मल्हार राव ने इन्दौर में स्वयं की सत्ता स्थापित की जहां उसके उत्तराधिकारी ने मुख्य व्यापारिक मार्गों तथा बुरहानपुर का प्रमुख व्यापारिक केंद्र पर नियंत्रण स्थापित किया था। उसके पश्चात

उसके साम्राज्य का नियंत्रण उसके पुत्र की विधवा के हाथों में चला गया। अहिल्याबाई जिनका शासन 1765 से 1794 तक चला तथा होल्कर को गौरव के शिखर तक पहुंचाया तथापि उसके उत्तराधिकारी अगले प्रधान सिंधिया–परिवार के उत्तराधिकारी के बराबर नहीं हो सके।

ग्वालियर के सिंधिया

सिंधिया वंश ने उत्तर भारत की राजनीति में अपना स्थान पानीपत के त तीय युद्ध (1761) के बाद के दशक में बनाया। होल्कर की ही भांति सिंधिया भी मुख्य रूप से मध्य भारत में ही केंद्रित थे। पहले उज्जैन तथा 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के बाद ग्वालियर में महादजी सिंधिया के लंबे शासन काल (1761–1794) के दौरान यह वंश संगठित हुआ।

महादजी कुशल तथा नवपरिवर्तनकारी सैन्य प्रशासक सिद्ध हुए। उन्होंने अपनी सेवा में कई यूरोपीय सैनिकों को नियुक्त किया। 1770 के पश्चात उनकी शक्ति में अचानक व द्धि हुई। इस अवधि के दौरान वह उत्तर भारत में अपना साम्राज्य विस्तार करने में सफल रहे, जो अफगान हमलों के उपरान्त कमजोर हो गया था। शाह आलम द्वितीय के शासन काल में दरबार में उसने अपने हस्तक्षेप द्वारा प्रभाव स्थापित किया था। 1780 के मध्य में मुगल बादशाह ने उसे अपने कामकाज का 'उप–शासक' नियुक्त किया था। उसका प्रभाव हमें न सिर्फ दिल्ली और आगरा क्षेत्र में मिलता है, बल्कि वह राजस्थान तथा गुजरात तक विस्त त था, जो उसे उस युग का सबसे प्रभावी मराठा शासक सिद्ध करता है। ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी उससे बात करते समय काफी सजग रहते थे।

उसके संबंध पेशवा नाना फडनवीस (पुणे) के साथ तनावों से पूर्ण थे। दुर्भाग्य से उसके उत्तराधिकारी उसके जितने सक्षम नहीं हो पाए तथा दौलत राव सिंधिया (1794–1827) अंग्रेजों द्वारा पराजित हुआ तथा 1803 में उत्तर तथा दक्षिण के अपने क्षेत्र समर्पण करने को बाध्य हुआ।

इन प्रभावी नेताओं की अवधि, विशेषकर महादजी सिंधिया की, मुगल पतन के बावजूद मुगल प्रतीकों के प्रभाव को दर्शाती है। उदाहरण के लिए, ग्वालियर को अंग्रेजों से मुक्त कराने के पश्चात महादजी ने मुगल बादशाह द्वारा प्रदत्त क्षेत्रों पर नियंत्रण का पूर्ण ध्यान रखा। साथ ही उसने मुगलों द्वारा दिए विशेषाधिकार और अवधियां यथा 'अमीर–उर–अमारा' (अमीर–प्रमुख) तथा नायब वाकी–ए–मुत्लक (उपप्रतिशासक) धारण की। ऐसा करने वाला वह एकमात्र नहीं था। 18वीं शताब्दी में मुगल प्रभुत्व को पूर्णतः कराने वाले उदाहरण विरले ही है। मुगल पतन के बावजूद भी मुगल सम्मान तथा उपाधियां प्रदान करने का सिलसिला तथा मुगल प्रशासित शब्दावली तथा वित्तीय प्रणालियों का प्रचलन निरंतर होता रहा।

पाठगत प्रश्न 15.2

1. मुगल वंश के पतन के दौरान उभरी सबसे महत्त्वपूर्ण एकमात्र शक्ति के बारे में लिखें?

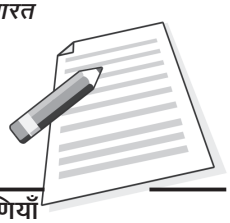

2. मराठा शासन के दौरान पेशवा कौन कहलाए? 1720–1740 के दौरान सत्तारुढ़ पेशवा का नाम लिखें?

3. मराठा संदर्भ में चौथ तथा सरदेशमुखी से आप क्या समझते हैं?

4. भारत के पश्चिमी तट पर प्रमुख पुर्तगाली व्यापार केंद्रों का नाम लिखें?

5. मराठा राज्यसंघ में हुई विभिन्न राजवंशों के विषय में लिखें? किस क्षेत्र में उन्होंने शासन किया?

6. अहिल्याबाई कौन थी? उसकी मुख्य उपलब्धियां क्या थीं?

15.4 बंगाल के नबाव

औरंगजेब के शासनकाल में दीवान के पद पर आसानी मुर्शीद कुली खान ने केंद्रीय सत्ता की कमजोरी का फायदा उठाकर खुद को स्वतंत्र घोषित कर दिया था। हालांकि वह मुगल दरबार में नियमित रूप से शुल्क भेजता रहा। अली वरदी खान ने मुर्शीद कुली खान के परिवार को सत्ताच्युत कर 1739 में खुद को नवाब घोषित कर दिया। इन नवाबों ने शांति तथा स्थिरता कायम की और क षि को प्रोत्साहित किया। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों को ही समान अवसर प्रदान किए गए। किन्तु नवाब अंग्रेजी व्यापार कंपनियों की उपस्थिति के दीर्घकालीन प्रभावों को भांप न सके तथा सैन्य तैयारियों में ढिलाई बरत दी। सन 1756–1757 में अली वरदी खां के उत्तराधिकारी सिराज–उद–दौला ने व्यापारिक अधिकारों हेतु अंग्रेजों से युद्ध किया था। जून 1757 में पलासी के मैदान में हुई उसकी पराजय ने बंगाल तथा पूरे भारत में अंग्रेजों का मार्ग प्रशस्त किया।

15.5 अवध के नबाव

अवध के मुगल सूबे ने कमजोर केंद्रीय नियंत्रण के रहते क्षेत्रीय शासक सादत–खान–बुरहान–उल–मुल्क की महत्त्वाकांक्षा को जाग त कर दिया। सादत खान ने स्थानीय जमींदारों को अनुशासित किया तथा उच्च चेतन, उच्च शस्त्र सज्जित तथा उच्च प्रशिक्षित सेना को आकार दिया। 1739 में अपनी म त्यु से पूर्व सादत खान ने क्षेत्रीय प्रमुख के पद को वंशानुगत बना दिया। उसके उत्तराधिकारियों सफदर जंग तथा असफ उद दौला ने न सिर्फ उत्तर भारत की राजनीति में अहम भूमिका निभाई, बल्कि अवध की नवाबी को भी प्रशासनिक स्थिरता प्रदान की। नवाबों के नेत त्व में पहले फैजाबाद तथा बाद में लखनऊ कला, साहित्य तथा शिल्प के क्षेत्र में दिल्ली का प्रति–स्पर्धी बना। इमामवाड़ा तथा अन्य भवनों से क्षेत्रीय स्थापत्य कला की झलक भी प्राप्त होती है। सांस्क तिक सामंजस्य के परिणामस्वरूप कत्थक न त्य शैली का उद्‌भव भी हमें देखने को मिलता है।

15.6 पंजाब के सिक्ख

मुगलों ने बंदा बहादुर के नेत त्व में सिक्खों का दमन किया था। किन्तु इससे मुगलों के प्रति सिक्ख विद्रोह समाप्त नहीं हुए थे। 1720 ई. से 1730 ई. के मध्य अम तसर सिक्ख गतिविधियों का एक मुख्य केंद्र बनकर उभरा, शायद तीर्थों का स्थान होने की वजह से अपनी महत्ता की वजह से। तत्कालीन सर्वाधिक प्रमुख सिक्ख शासक कपूर सिंह ने उसके आस–पास के क्षेत्र से संचालन किया। उसने राजस्व सैन्य प्रणाली की स्थापना की। कुछ सिक्ख शासकों ने स्वयं को राजनीतिक शक्ति के रूप में संगठित करना प्रारंभ कर दिया था। इन गतिविधियों ने लाहौर सूबे के मुगल शासकों को इस क्षेत्र को स्वतंत्र सत्ता का केंद्र बना देने के मंसूबों पर पानी फेर दिया। पहले अब्दुससमद खान तथा बाद में उसके पुत्र जकारिया खान ने नियंत्रण स्थापित करने के प्रयत्न किए। 1745 में ज़करिया खान की म त्यु के पश्चात सिक्ख योद्धा शासकों जैसे जस्सा सिंह अहलूवालिया सत्ता में आए। उन्होंने बाद में कपूरथाला राज्य की नींव डाली। सिक्ख सैन्य नेताओं के नेत त्व में सैन्य क्षेत्रों का विस्तार, पंजाब पर अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण के परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण विशिष्टता थी। पूर्वी पंजाब तथा बारी दोआब में यह प्रक्रिया परिलक्षित होती है। हालांकि अब्दाली के अभियानों को विरोध का सामना पंजाब में 1750 तथा 1760 में सिक्खों ने ही किया तथा मराठाओं ने भी इस संघर्ष में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अंततः 1760 के मध्य तक लाहौर में सिक्खों की सत्ता की स्थापना हो गई तथा अफगान अपनी शुरूआती विजयों को संगठित नहीं रख सके। अहमद शाह के उत्तराधिकारी तैमूर शाह (1772–93) ने सिक्खों द्वारा जीते गए कुछ क्षेत्रों (जैसे मुल्तान) को पुनः जीता तथा अहमद शाह के वंशज शताब्दी के अंत तक इस लक्ष्य के प्रति प्रयत्नशील रहे। किन्तु 1770 तक उन्होंने लगभग 60 सिक्ख सरदारों के साथ संधि कर ली थी, जिनमें से कुछ राज्य जैसे नाभा और पटियाला ब्रिटिश अधीनस्थ बन कर उभरे।

सिक्ख प्रशासकों ने मुगल बादशाहों द्वारा प्रयुक्त प्रशासनिक व त्तियों को ही जारी रखा। सरदारों के अधीनस्थों को जागीर दी जाती थी। मुगल नौकरशाही के ईरानी ढंग ने मुख्य रूप से अपनी पकड़ बनाए रखी। ऐसे ही सिक्ख शासक चढ़त सिंह सुकेरचकिया के पौत्र राजा रंजीत सिंह, जिन्होंने इन छोटे राज्यों को बड़े साम्राज्य में अल्प समय के लिए संगठित कर लिया। रंजीत सिंह का प्रभावी शासन 1799 से 1839 तक चला। इस काल में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी की शक्ति भारत के हर प्रांत में बढ़ रही थी। रंजीत सिंह की म त्यु के 10 वर्ष उपरान्त ही अंग्रेजों ने पंजाब पर आधिपत्य स्थापित कर दिया। महाराजा रंजीत सिंह के सत्ता के प्रभाव का मुख्य कारण उत्क ष्ट सैन्य बल, किराए के यूरोपीय सैनिक तथा उन क्षेत्रों के सामरिक ठिकाने थे, जो उन्हें अपने पिता से विरासत में मिले थे। महाराजा रंजीत सिंह का शासन, सिक्खों द्वारा मुगलों के संग किए संघर्षों की पराकाष्ठा थी। यह एक राजतंत्र/शासनतंत्र के सिद्धांतों पर आधारित शासन था। उसने महान व्यावसायिक नगर लाहौर को अपनी राजधानी बनाया, जिसे उसने 1799 में जीता था। व्यापारिक मार्गों पर नियंत्रण स्थापित करने के उपरांत उसने राजस्व में व द्धि के लिए नमक, अनाज तथा कश्मीर से वस्त्रों के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित किया। इन आय स्रोतों का प्रयोग करके उसने 40,000 अश्वारोही तथा घुड़सवार सेना के बनाने में किया। सन 1809 तक वह अधिकतर पंजाब का निर्विवाद मालिक था।

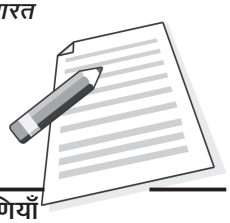

15.7 जयपुर एवं अन्य राजपूताना राज्य

पूर्वी राजस्थान में जयपुर (पूर्व में आम्बेर), कछवाहा कुल द्वारा नियंत्रित राजपूत राज्य था। 18वीं शताब्दी के आरंभ में शासक जय सिंह सवाई ने अपनी शक्ति के चहुं ओर विस्तार के लिए कुछ कदम उठाए। ये थे– 1. अपने ग ह क्षेत्र के आसपास के क्षेत्र में अपनी जागीरों की व्यवस्था करना तथा 2. क षि के माध्यम से भू–राजस्व एकत्रित करना (भूमि कर के संग्रहण के लिए भूमि के वे खंड प्रयुक्त होते थे, जो राज्य द्वारा व्यक्ति को किराए पर मिलती थी), जो कि धीरे– धीरे स्थाई हो गया। सन 1743 में उसकी म त्यु के पश्चात राजा जय सिंह (जिसके ऊपर जयपुर नाम पड़ा) क्षेत्र का एकमात्र सर्व–शक्तिमान शासक बनकर उभरा। अधिकतर राजपूत राज्य छोटे झगड़ों तथा संघर्षों में आपस में ही उलझे रहते थे। मारवाड़ का अजीत सिंह अपने पुत्र द्वारा ही मारा गया था।

सन 1750 में भरतपुर के जाट शासक सूरजमल ने राजा जयसिंह की ही भांति मुगल राजस्व प्रशासन की परिवर्तित पद्धति अपने क्षेत्र में लागू की। हालांकि इस समय तक जयपुर राज्य के भविष्य पर प्रश्न चिह्न लग चुके थे। मराठों से बढ़ती चुनौतियों के चलते छोटी अवधि के राजस्व पाने के लिए साधन अपनाए गए। इसी समय 1750 तथा 60 के मध्य फसलों की नाकामी ने पहले से ही दुर्बल क षि को और भी बुरी तरह प्रभावित किया। 18वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध इस प्रकार आर्थिक मंदी तथा जयपुर की राजनीतिक शक्ति के पतन के लिए जाना जाता है। इस अवधि के दौरान जयपुर मराठों विशेषकर महादजी सिंधिया के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण लक्ष्य बन गया था।

ऊपर वर्णित सभी राज्य, सिवाय मराठों के, भूमि से जुडे हुए थे। इसका अर्थ यह नहीं कि इनके व्यवहार में व्यापार का कोई स्थान नहीं था, रंजीत सिंह का शासन मुख्यतः व्यापार पर ही निर्भर था। हालांकि समुद्र तक पहुंच के साधनों के अभाव ने राज्यों की पहुँचने की गति नहीं होने में व द्धि ही की। विशेषकर उस युग में जब ईस्ट इंडिया कंपनी, जो कि मुख्य शक्ति थी, खुद प्रारंभ में एक समुद्री व्यापारी थे।

15.8 दक्षिण भारत में राजनीति

जिन क्षेत्रों की अभी तक चर्चा की गई हैं, उनसे हट कर दक्षिण भारत के, विभिन्न राज्यों ने इस दौरान अपनी स्थिति को सुद ढ़ बनाने के लिए सागर तथा बंदरगाहों का उपयोग किया। इनमें से मुख्य थे त्रावणकोर (केरल) के मार्तण्ड वर्मा तथा राम वर्मा मैसूर के हैदर अली तथा टीपू सुल्तान।

इन राज्यों की उपस्थिति उत्क ष्ट रूप से हम 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में या लगभग 1740 के करीब पाते हैं। इससे पूर्व दक्षिण भारत पर मुस्लिम राजाओं का वर्चस्व था, 1680 तथा 1690 के दौरान या 1700 के पश्चात दूसरी लहर के फलस्वरूप क्षेत्र में कुछ राजा साथ आए। इनमें से बहुत से व्यक्तियों ने खुद को मुगल शासन के अधीन शुल्क अदा करने वाले सरदारों के रूप में स्थापित किया। इनमें से कुछ अपेक्षाक त नवाब थे, जैसे बालाघाट के नवाब या उत्तर कर्नाटक (जैसे सीरा का अब्दुल रसूल खान)। इनमें से कुछ तो राजनीतिक रूप से प्रभावशाली थे जैसे निजाम–उल–मुल्क तथा अर्कोट में सदुल्लाह खान। 1740 तक निजाम उल मुल्क ने हैदराबाद में अपनी स्थिति को संगठित कर लिया था, वही अर्कोट तीन दशक पहले उभर चुका था।

वंशानुगत उत्तराधिकार को स्थापित करते हुए भी इनमें से किसी भी शासक ने पूर्ण स्वायत्तता का दावा प्रस्तुत नहीं किया था। इस प्रकार वे स्वयं को मुगलों का प्रतिनिधि बताकर ही शासन करते रहे। 1720 में दक्षिण भारत की राजनीति तीन शक्तियों के बीच मोहरा बनकर उभरी, ये थे मराठा (तंजौर तथा अन्य क्षेत्रों के) निजाम तथा अर्कोट (कर्नाटक) के नवाब।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इन तीनों शक्तियों की सत्ता का क्षय होने लगा था। 1740 तथा 1750 के प्रारंभ में अर्कोट के उत्तराधिकार विवाद ने इसके शासकों को निजी अंग्रेज व्यापारियों के साथ वित्तीय जोड़–तोड़ करने को बाध्य कर दिया, क्योंकि युद्ध के खर्चों के लिए उन्हें धन की आवश्यकता थी। 1750 में अपने संस्थापक निजाम–उल–मुल्क की म त्यु के पश्चात हैदराबाद भी पतन की राह पर चल पड़ा था। तटीय जिलों से शीघ्र ही नियंत्रण समाप्त हो गया तथा राज्य की जनसंख्या बहुत कम हो गई तथा भूमि से जुड़ी रह गई। इस संदर्भ में राज्य के पास एकमात्र विकल्प एक विस्त त तथा सुनियोजित सैन्य मशीनरी तथा खुला बाह्य समर्थन था। इस काल के राजतंत्र में व्यापार का नियंत्रण भी अत्यंत संवेदनशील हो चला था।

त्रावणकोर राज्य

मराठा शासक मार्तंड वर्मा (1729–58) ने वेनाद (त्रावणकोर) केरल राज्य के संचालन में तीन सैद्धांतिक पद्धतियों का उपयोग किया। राजा ने अपनी वैधता सुद ढ़ करने के लिए कुछ उपायों की शुरूआत की। ये थे– 1. उसके द्वारा 50,000 की शक्ति वाली वास्तविक सेना का गठन 2. नैय्यर अभिजात वर्ग की शक्ति को कम करना, जिस पर क्षेत्र सैन्य रूप से निर्भर था तथा 3. तथाकथित त्रावणकोर रेखा पर अपने राज्य की उत्तरी सीमा की किलेबंदी करना। इस शासक की एक नीति सीरियाई ईसाइयों को संरक्षण देने की भी थी, जो कि उस क्षेत्र की प्रभावी व्यापारिक शक्ति थी, जिससे कि व्यापार में यूरोपीय वर्चस्व कम हो सके। मुख्य वस्तु जो हालांकि काली मिर्च थी, किन्तु शाही एकाधिकार के अंतर्गत अन्य कई वस्तुएं आती थीं, जिनका व्यापार करने के लिए आज्ञापत्र की आवश्यकता होती थी। मार्तंड के उत्तराधिकारी राम वर्मा के शासनकाल (शासनकाल 1758–98) में भी ये नीतियां व्यापक स्तर पर चलती रहीं, जो कि अपने राज्य की नए उभरते प्रतिद्वंद्वी से रक्षा करने में सक्षम रहा तथा वह खतरनाक प्रतिद्वंद्वी था मैसूर राज्य।

मैसूर का उदय

वादियार वंश के शासकों यथा कांथीरवा नरसाराजा तथा चिक्का देवा राजा, के अंतर्गत मैसूर एक महत्त्वपूर्ण राज्य बनकर उभरा। हालांकि मैसूर एक भूमि से जुड़ा राज्य था इसलिए व्यापार पर भी निर्भर था क्योंकि उसकी सैन्य आपूर्ति भारत की पूर्वी बंदरगाहों के तट से आती थी। चूंकि ये सभी बंदरगाह अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन थे। अतः मैसूर की संवेदनशीलता बढ़ती गई। 1760 ई. से स्थिति में परिवर्तन के प्रयास किए गए। विस्थापित मूल के एक जुझारु योद्धा हैदर अली ने एक शक्तिशाली ताकत प्राप्त कर वदियार को शक्तिहीन कर तथा शक्तिशाली कलाले मंत्री परिवार को हटा कर सत्ता हासिल की। पहले हैदर तथा उसके बाद उसके पुत्र टीपू सुल्तान ने 1782 के बाद मैसूर को संगठित कर तथा भारतीय प्रायद्वीप के दोनों तटों तक पहुंच वाला राज्य बनाया।

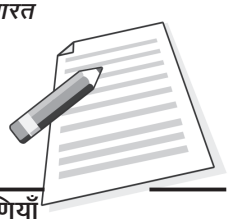

कोडवों, उच्चभूमि कुर्ग राज्य के निवासी, की तुलना में वे अपेक्षाक त सफल थे। तटीय कर्नाटक तथा उत्तरी केरल उसकी तलवार के अधीन हो गए, इसने टीपू सुल्तान को अपनी शर्तों पर मध्य पूर्व के साथ कूटनीतिक तथा व्यावसायिक रिश्ते स्थापित करने में मदद की। अपने पिता की तुलना में टीपू की महत्त्वाकांक्षाएं ऊंची थी तथा उसने पहले से फैली मुगल सर्वोच्चता की छाया से बाहर निकलने का सफल प्रयत्न किया, जैसा कि पहले चर्चा कर चुके हैं। किन्तु हैदर अली व टीपू की समस्या आंतरिक सम्मति बनाने में असमर्थता रही। सैन्य तथा राजस्व संबंधी दक्षता के लिए विस्थापितों तथा किराए के सैनिकों पर उनकी निर्भरता बहुत अधिक थी तथा वे पोलीगार, स्थानीय चोरों से हमेशा टक्कर लेते रहे। 1770 तक मैसूर के सामने ईस्ट इंडिया कंपनी जैसे विकट सैन्य विरोध को सहना पड़ा। जिन्होंने उसे चैन नहीं लेने दिया। ये अंग्रेज ही थे, जिन्होंने मैसूर को उपजाऊ क्षेत्रों में नहीं पहुंचने दिया तथा भारत के पूर्वी बंदरगाह कोरोमंडल के मैदान से पहले रोक दिया। अंततः 1799 में अंग्रेजी सेना द्वारा टीपू का अंत हो गया।

पाठगत प्रश्न 15.3

1. किसके संरक्षण तथा किस क्षेत्र में न त्य की कत्थक शैली का विकास हुआ?

2. 1757 में हुआ प्लासी का युद्ध क्यों महत्त्वपूर्ण है?

3. मैसूर के उस सुल्तान का नाम लिखें जिसने अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी से लोहा लिया? अपने शासन के दौरान उसके समक्ष क्या कठिनाइयां आईं?

15.9 18वीं शताब्दी भारत में अर्थव्यवस्था

18वीं शताब्दी अतीत तथा भविष्य की अच्छी आर्थिक निरन्तरता की तुलना में कोई अच्छा प्रदर्शन नहीं कर सकी। यह काल भारत में अत्यधिक राजनीतिक खलबली का दौर था, जिसमें पहले तो राज्य का निर्माण होता था तथा अगले ही पल वह विघटित भी हो जाती थी। व्यवस्थता में अस्थिरता अपने चरम पर थी। यह भी निर्विवाद है कि सैन्य अभियानों से विस्थापन को बढ़ावा मिला। सिंचाई के जलाशयों का विध्वंस, पशुधन का जबरन सम्पत्ति हरण, जनता का बलात निष्कासन तथा उसके बाद के युद्धों में किसी से भी छिपा नहीं था। इन सबने आर्थिक स्थिरता पर हानिकारक प्रभाव डाला तथा प्रगति की राह में अनगिनत रोड़े अटकाए।

दिल्ली के नजरिए से देखें तो निश्चय ही 18वीं शताब्दी एक अंधेरा युग था। नादिर शाह, फिर अहमद शाह तथा अंततः रोहिल्ला 1761–1771 तक दिल्ली पर नियंत्रण स्थापित करने वाले के आक्रमणों ने दिल्ली को एक निरन्तर विध्वंस की ओर ढकेला। भारत के अन्य क्षेत्रों को शायद ही इस दौर से कभी गुजरना पड़ा हो, चाहे वह त्रिवेन्दरम, पुणे, पटना अथवा जयपुर हो। इस युग में राजनीतिक विकेन्द्रीकरण होने के कारण आर्थिक परिवर्तन का भी दौर चला, जिसके कारण दिल्ली तथा आगरा के अनुभव को इस संबंध में व्यापक रूप नहीं

दे सकते। हालांकि विभिन्न क्षेत्रों की परिस्थितियां एक–सी नहीं थी। कुछ क्षेत्रों में 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध ने विस्तार देखा, जैसे बंगाल, जयपुर और हैदराबाद। जबकि कुछ में यह देर से प्रस्फुटित हुआ जैसे त्रावणकोर, मैसूर और पंजाब। आर्थिक सम द्धि तथा पतन का कोई भी अकेला कालानुक्रम उस युग के भारत के हर क्षेत्र के लिए उचित नहीं हो सकता। हालांकि कुछ कमजोरियों तथा अंर्त–विरोधों के बावजूद 18वीं शताब्दी ने क षि के क्षेत्र में अच्छा प्रदर्शन किया। साथ ही अन्तर्देशीय व्यापार तथा शहरीकरण भी फले–फूले। हालांकि उत्तर भारत पंजाब के कुछ हिस्सों में अंतर्राज्यीय संघर्षों की वजह से क षि में पतन की स्थिति आई। भूमि तथा श्रम के अनुभव तथा प्रबंधन ने क षि तरीकों तथा तकनीकों की कमी को पूरा करने में कुछ हद तक सफलता पाई।

'तकसीम' के आंकड़ों का उपयोग कर आइन–ए–अकबरी से तुलना कर देखे तो यह सिद्ध होता है कि यह सिंचाई योग्य भूमि का अभाव नहीं, बल्कि शांति तथा श्रम का अभाव था, जिसके परिणामस्वरूप क षि के क्षेत्र में पतन हुआ तथा क षि मूल्यों में उतार–चढ़ाव के कारण अनिश्चितता आई। इसी समय मूल्य व द्धि ने किसानों को लाभ पहुंचाया, परन्तु यह लाभ समान रूप से नहीं हुआ क्योंकि क षक समाज बंटा हुआ था राज्यों ने क षि के उत्पादों से शुल्क लिए, जबकि गांव खर्चीले विनिमय के व्यापक तंत्र से जुड़े हुए थे।

यह भी उल्लेखनीय है कि 1702 से 1704 के मध्य दक्षिण भारत में संकट के बादल के बावजूद 18वीं शताब्दी के प्रथम सात दशकों में भारत भुखमरी जैसी आपदा से बचा रहा। सन 1770 के बंगाल का भयंकर अकाल, जिसमें लगभग आधी जनसंख्या को अपने प्राण गंवाने पड़े, औपनिवेशिक विजय के तुरंत बाद पड़ा था। इसके तुरंत बाद 1783 में उत्तर भारत ने अकाल की त्रासदी झेली। कुल मिलाकर एक अनुकूल भूमि–श्रम अनुपात ने किसानों को गतिशील बनाया तथा भूमि के नियंत्रकों के साथ जातीय श्रम को समुचित शर्तों पर कार्य दिलाया। किन्तु उत्तर भारत में राजस्व की बढ़ती मांग ने किसानों के पलायन को एक नियंत्रित प्रक्रिया बना दिया। एक तरफ कुछ गांवों के प्रधानों ने राजस्व क षि को अनुवांशिक संपदा बना दिया, वहीं अन्य शक्तिशाली क्षेत्रीय शासकों जैसे कि टीपू सुल्तान (मैसूर) ने अधिक से अधिक राजस्व इक्ट्ठा किया। 18वीं शताब्दी में जनसंख्या, उत्पादन, मूल्य तथा नियत मजदूरी, साधारण रूप से उन्नति पर थी। खंडित राजनीति ने अनाज, वस्त्र तथा पशुओं के सम द्ध अन्तर्देशीय व्यापार के विकास को हानि नहीं पहुंचाई। व्यावसायिक व्यापारिक संस्थाएं वस्तुओं के परिवहन तथा ऋण और बीमा सेवाओं के प्रावधानों के निरीक्षण में राजनीतिक मोर्चेबंदी से आगे निकल गई। पूर्व–औपनिवेशिक युग में कलाकार, मुख्यतः जुलाहों के पास मध्यस्थ सामाजिक समूहों तथा राज्य की ओर से अप्रभावित बढ़ती मांग के द्वारा अपना जीवनयापन करने के लिए अत्यधिक मौके थे। यहां तक कि घुसपैठ करने वाले राज्य जैसे कि 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मैसूर ने भी मध्यस्थों पर ही आक्रमण किए थे, श्रमिकों पर नहीं। बंगाल तथा मद्रास से प्राप्त सबूत इस ओर इशारा करते हैं, कि शहरी श्रमिकों की हालत आरंभिक औपनिवेशिक काल में पूर्व औपनिवेशिक की तुलना में बहुत खराब थे। जबकि अन्तर्देशीय व्यापार प्रगति पर था, वहीं यूरोपीयों के बढ़ते प्रभाव के चलते अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करने वाले भारतीयों तथा पोतवाहकों को नुकसान हो रहा था। 1720 में महान गुजराती बन्दरगाह सूरत शहर ने अपनी महत्ता खो दी थी। 18वीं शताब्दी के अंत में पश्चिमी तथा दक्षिण पूर्वी एशिया दोनों

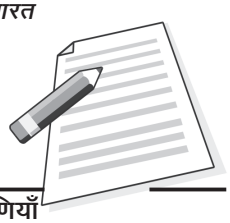

में ही भारतीय उत्पादों की भारी मांग उत्पन्न हुई, किन्तु इस समय तक अंग्रेज व्यापारी तथा पोतवाहक अपना वर्चस्व कायम कर चुके थे। अतः भारतीयों को व्यापारिक हानि के साथ अंग्रेजों को अत्यधिक लाभ पहुंचने लगा था।

एक तरफ पुराने व्यावसायिक केंद्रों, जैसे सूरत, मसूलीपट्टनम तथा ढाका नीचे की ओर अग्रसर हुए तो वही बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ते जैसे औपनिवेशक बंदरगाह वाले शहर चमक बिखेरने लगे। किन्तु उभरती हुई क्षेत्रीय राजधानियों, जैसे लखनऊ, हैदराबाद तथा विभिन्न मराठा शक्तियों के शहर और सेरिंगपट्टनम ने दिल्ली और आगरा के पतन के असर को समाप्त कर दिया था। 1800 में शहरीकरण का अनुपात पिछले एक सौ वर्षों में स्पष्ट रूप से बढ़ चला था। शहरी केंद्रों में शासन तथा व्यापारियों के मध्य संबंधित सत्ता का संतुलन बदल गया था। कुछ उदाहरणों में तो व्यावसायिक तथा वाणिज्यिक प्रभावशाली शक्तियां राज्य सत्ता का झूठा दावा कर रही थीं।

बहुत से कारणों से भी यह प्रतीत होता है कि 18वीं शताब्दी के मध्य में आर्थिक क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। उदाहरण के लिए, जब अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल सूबे के राजस्व पर अधिकार स्थापित किया तो धन का प्रवाह बहुत बुरी तरह प्रभावित हुआ। पहले बंगाल अपने निर्यात के बदले सोना तथा चांदी पाता था, किन्तु यह तरीका ज्यादा न चल सका। 18वीं शताब्दी के अंतिम हिस्से में किसान नकदी फसलों जैसे कि नील तथा अफीम की खेती करने को बाध्य हुए। इसने अन्न की फसल के उत्पादन का बुरा प्रभाव डाला, किन्तु 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध को 1750 से पूर्व के काल से भिन्न बनाने वाला एक और कारण है, वह है युद्ध का बदलता स्वरूप। 1750 के बाद की अवधि में युद्ध में नागरिक जानमाल, क्षति तथा आर्थिक उत्पादन की क्षति पहले की तुलना में अधिक होने लगी थी तथा इसी समय युद्ध में नई तकनीकियों के उपयोग ने इसे और अधिक खर्चीला कार्य बना दिया था। व्यापक स्तर पर आग्नेय अस्त्रों का उपयोग, किराए के सैनिकों का उपयोग तथा स्थापित सेना का रख–रखाव, इन सभी के बहुत हानिकारक प्रभाव हुए।

15.10 सामाजिक संदर्भ

अठारहवीं शताब्दी में सामाजिक जीवन अपनी पुरानी परिपाटी की ही तरह कायम थी। सामाजिक सांस्क तिक एकता की कुछ विशेषताओं के अतिरिक्त पूरे भारत वर्ष में सामाजिक ढांचे में समानता नहीं थी। समाज, धर्म, क्षेत्र, जाति, भाषा, वर्ग तथा जनजातियों के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में बंटा हुआ था। हिन्दू हजारों जातियों के आधार पर विभाजित थे। किसी भी व्यक्ति की जाति जन्म से उसके वंश के अनुसार निर्धारित होती थी। अन्तर्जातीय खान–पान तथा अर्न्तजातीय विवाह प्रतिबंधित थे। परंपरा के अनुसार जाति कर्म से निर्धारित होती थी, किन्तु 18वीं शताब्दी तक आते–आते कुछ हद तक सामाजिक तथा व्यावसायिक गतिशीलता का अनुसरण किया जाने लगा था। उदाहरण के लिए, ब्राह्मणों ने विभिन्न नए क्षेत्रों में पांव पसारना प्रारंभ कर दिया था तथा विभिन्न व्यवसायिक गतिविधियां भी प्रारंभ कर दीं थी।

मुस्लिम भी नस्ल, जाति, जनजाति तथा सामाजिक स्तर के मुद्दों से अछूते न रहे सके। शिया तथा सुन्नी में गंभीर धार्मिक मतभेद थे, जबकि ईरानी, अफगानी तथा

भारत में धर्मान्तरित मुस्लिमों में भी मतभेद थे, जो उन्हें एक–दूसरे से पथक खड़ा करते थे। इस्लाम में धर्मान्तरित हुए व्यक्ति इस्लाम में अपनी जाति के संग आए। समाज की आधार धुरी परिवार था, जो पितसत्तात्मक था सिवाय केरल के जहां मातसत्तात्मक प्रधान समाज था। महिलाओं से आदर्श पुत्री, पत्नी तथा मां बनने की अपेक्षा रखी जाती थी। उत्तर भारत में उच्च कुल की महिलाओं में पर्दे का चलन था। बाल विवाह प्रचलित थे तथा विवाह दो परिवारों के बीच सामाजिक बंधन माना जाता था। उच्च कुलों में बहुपत्नी प्रथा तथा दहेज का प्रचलन था, किन्तु अठारहवीं शताब्दी की सबसे घिनौनी रीति सती प्रथा तथा हिंदुओं के बीच विधवाओं की स्थिति थी।

समय के अनुसार शिक्षा पद्धति में अनुकूल परिवर्तन नहीं हो पाया था। पाठ्यक्रम में साहित्य, भाषा, विधि, धर्म, दर्शन तथा तर्क के विषय तो सम्मिलित थे, किन्तु भौतिकी तथा प्राक तिक विज्ञान, तकनीकी तथा भूगोल का अध्ययन शामिल नहीं था। अध्ययन के सैद्धांतिक तरीकों के वर्चस्व की वजह से प्रगतिशील विचारों का अभाव था। प्रारंभिक शिक्षा का विस्तार व्यापक था। उच्चतर शिक्षा का माध्यम संस्क त तथा फारसी भाषा थी। तथापि महिलाएं तथा जाति के कुलीन व्यक्तियों के लिए शिक्षा का प्रबंध नहीं था।

15.11 सांस्क तिक वातावरण

सामान्य तौर पर यह माना गया कि अठारहवीं शताब्दी में भौतिक जीवन में समान्य पतन हुआ तथा इस समय का सांस्क तिक जीवन भी छिन्न–भिन्न हो गया। हालांकि 18वीं शताब्दी के इस चित्रण के कुछ ही औचित्य हैं। दिल्ली, जिसकी आर्थिक अवस्था डांवाडोल हुई, में भी उस समय महान कवि, दार्शनिक तथा विचारक हुए, शाह वलीउल्लाह से लेकर मीर तकी मीर तक। ज्यों–ज्यों क्षेत्रीय राज दरबारों का महत्त्व बढ़ा, उन्होंने सम द्ध संस्क ति, चाहे वह संगीत, कला या साहित्य हो, को संरक्षण देने के प्रति अपनी रुचि जताई। यह हमें विभिन्न केंद्रों पर अलग–अलग शैली में प्राप्त होती है। अवध से बीकानेर तक तथा लाहौर से तंजौर तक कोई भी व्यक्ति संस्क ति के अस्तित्व को दरबारी परम्परा में देख सकता है। सांस्क तिक परंपराओं के संगम का सर्वाधिक उत्क ष्ट उदाहरण मराठा शासित तंजौर था, जहां तमिल, तेलुगू, संस्क त तथा मराठी भाषा में साहित्यिक रचनाएं हुई, जबकि कुछ मराठा शासकों ने प्रत्यक्ष भूमिका निभाई। इसी प्रकार 18वीं शताब्दी में ही तन्जौर में संगीत का विकास हुआ, जिसे आज भारतीय शास्त्रीय संगीत की कर्नाटक परंपरा बोलते हैं, जिसे त्यागराज, मुत्तूस्वामी दीक्षितर तथा श्याम शास्त्री जैसे महान व्यक्तियों ने क्वर लिपि लिखकर की थी। अंत में इस युग में तंजौर ने चित्रकला की भी कुछ विशिष्ट शैलियों का विकास किया, इनमें उत्तर के कपड़े रंगने की पुराने परंपरा के साथ मिश्रित किया।

यह सौंदर्य केवल शुद्ध रूप से श्रेष्ठ संस्क ति तक ही सीमीत नहीं रहा। यदि शुरूआत करे तो संगीत तथा रंगमंच की परंपराएं तथा इस काल के साहित्य की विभिन्न रूप विधाओं को लोक प्रभाव के साथ समन्वित किया गया। इसी समय लोकप्रिय हिन्दू तथा मुस्लिमों ने तीर्थयात्रा तथा त्यौहार से संबंधित कई सांस्क तिक कड़ियों की शुरूआत की। पहले की शताब्दियों में लंबी दूरी की तीर्थयात्राएं वाराणसी के मुख्य केंद्रों से रामेश्वरम तक बढ़ी। उत्तर मुगल काल में किराए के सैनिक ले जाना तथा लिपिक तथा अधिकारियों को दूसरे स्थान से लाना एक आम बात हो चली थी। उदाहरण के लिए, अठारहवीं शताब्दी में

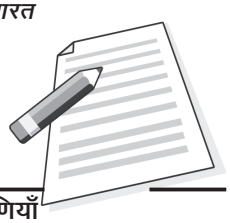

हैदराबाद में उत्तर भारत से बड़ी संख्या में कायस्थ राजतंत्र में नियुक्त किए गए। मैसूर में 1720 में वित्तीय कार्यालय महाराष्ट्र के ब्राह्मणों को सौंपे गए। प्रतीत होता है कि संगीतज्ञों, लेखकों तथा कलाकारों की गतिशीलता भी प्रचलित थी। जब भी कोई नई राजनीतिक शक्ति उभरती थी, वह प्रतिभाओं को आकर्षित करती थीं। उदाहरण के लिए लाहौर के महाराजा रंजीत सिंह। उच्च श्रेणी का ईरानी साहित्य विकसित हुआ, किन्तु पंजाबी भाषा की कीमत पर नहीं। इसी समय स्थापत्य तथा चित्रकला में भी नए विकास दिखाई देते हैं। सुदूर उत्तर में कांगड़ा में चित्रकला की एक नई शैली का जन्म हुआ, जो मुख्यतः वैष्णव विषय वस्तु से जुड़ी थी। सांस्क तिक माहौल प्रभावों तथा आदर का ही परिणाम था। मुख्य धर्मों में मराठों ने अजमेर में शेख मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह को सँभाले रखा, वहीं तंजौर के राजा ने नागुर के शेख शाहुल हमीद की दरगाह को आर्थिक सहायता दी। मैसूर में टीपू सुल्तान ने श्रीगंरी मंदिर को वित्तीय मदद की तथा मुस्लिम बड़े प्रसन्नतापूर्वक हिन्दुओं के त्यौहार में भाग लेते थे। उसी प्रकार जिस प्रकार हिन्दू उत्साहपूर्वक मुहर्रम का हिस्सा बनते थे। वास्तव में आश्चर्य है कि आज जिसे भारत की परम्परावादी सभ्यता कहा जाता है, वह उसी काल की तथा उत्तरवर्ती शताब्दी की ही देन है।

15.12 अठारहवीं शताब्दी के भारत के इतिहास को समझने में मतभेद

अठारहवीं शताब्दी की प्रक ति के बारे में विभिन्न इतिहासकारों में मनभेद है चाहे वह मुगल इतिहासकार हो या औपनिवेशक अध्ययन में रुचि रखनेवाले हों। आरंभिक मुगल अध्ययन मुगल साम्राज्य के पतन के द ष्टिकोण से सभी परिवर्तनों को देखता है तथा इस युग को अंधायुग करार देता है। इस प्रकार मुगल राजनीतिक संकट को आर्थिक तथा सामाजिक विफलताओं के साथ देखा जाता है। हालांकि बाद के अध्ययनों ने अठारहवीं शताब्दी की अर्थव्यवस्था तथा समाज को क्षेत्रीय आधार पर अलग कर औपनिवेशिक काल की शुरूआत दिखलाई जिसे अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध कहा गया। इस प्रकार दो स्थितियां 'निरन्तरता बनाम परिवर्तन' के इर्द – गिर्द बहस करती हैं। सामान्यतः भारतीय इतिहासकार औपनिवेशिक विजय को भारतीय इतिहास का प्रस्थान बिन्दु मानते हैं, जो अठारहवीं शताब्दी के मध्य में प्रारंभ हुआ था। अतः अठारहवीं शताब्दी के परिप्रेक्ष्य में दो मुद्दे उभरकर आते हैं, प्रथम कि क्या मुगल साम्राज्य के पतन ने सामाजिक–आर्थिक ढांचे के टूटने की शुरूआत कर दी थी और दूसरा उपनिवेशवाद का आगमन परिस्थिति जन्य था या नहीं?

क्या अठारहवीं शताब्दी को काला युग माना जाए या यह आर्थिक उन्नति का समय था? क्या यह बड़ा अंतराल था या यह निरन्तरता तथा परिवर्तन का युग था? अंग्रेजी सत्ता भारत में किस प्रकार अठारहवीं शताब्दी में फैली? राजनीति, समाज, अर्थव्यवस्था, धर्म तथा संस्क ति की मूल प्रव त्ति से संबंधित ये प्रश्न अठारहवीं शताब्दी के इतिहास के अध्ययन में बहस पैदा करते हैं। पारम्परिक तौर पर इतिहासकार भारत की अठारहवीं शताब्दी को काला युग बतलाते हैं, क्योंकि यह युद्ध, राजनीतिक कोलाहल तथा आर्थिक पतन, स्थिर व सम द्ध मुगलों तथा अधिपत्य शासकों के मध्य फंस गया था। इस द ष्टिकोण को हालांकि नई पीढ़ी के भारतीय इतिहासकारों ने चुनौती दी, जिन्होंने आरंभिक मुगल शासकों तथा उत्तरवर्ती अंग्रेज राज्यों की निरन्तरता पर बल दिया तथा उन छोटे राज्यों

पर चिंता जतलाई, जो मुगल शक्ति के क्षीण होते ही उदय हो गए थे। पूरे भारत को प्रभावित करने वाली राजनीतिक उठापठक किसी को भी यह पूछने को बाध्य कर सकती है कि क्या मुगल साम्राज्य के पतन ने केंद्रीय राजनीतिक शक्ति में एक अंतराल उत्पन्न कर अस्थिरता के चरण को जन्म दिया, जिसमें पहले तो क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ तथा बाद में इसने अंग्रेजी औपनिवेशवाद के लिए मार्ग प्रशस्त किया। यहां यह महत्त्वपूर्ण है कि मुगल साम्राज्य के पतन को ही भारतीय समाज के पतन के लिए तथा शताब्दी के पूर्वार्द्ध में केंद्रीय सत्ता के पतन के फलस्वरूप रिक्त स्थान को भरने के लिए अवध तथा बंगाल के नबाव तथा हैदराबाद के निजाम जैसी क्षेत्रीय शक्तियों के उदय के लिए जिम्मेदार माना जाना चाहिए तथापि क्या अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी का आविर्भाव भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था तथा राजतंत्र के लिए धक्का था? या अंग्रेजी औपनिवेशवाद के दो सौ वर्षों की भारत में यह शुरूआत थी?

पाठगत प्रश्न 15.4

1. सन 1770 के पश्चात आर्थिक अस्थिरता के कोई दो मुख्य कारण लिखें?

2. यूरोपवासियों की प्रगति के चलते भारतीय निर्यात व्यवसाय पतन को किस प्रकार अग्रसर हुआ?

3. ऐसे औपनिवेशिक शहरों के नाम बताइए, जिन्होंने परम्परागत व्यापारिक केन्द्रों का स्थान लिया?

4. 18वीं शताब्दी की सामाजिक व्यवस्था की कोई दो विशेषताएं लिखें?

5. अठारहवीं शताब्दी की मुख्य सामाजिक कुरीतियों का उल्लेख करें?

6. अठारहवीं शताब्दी तक उच्च शिक्षा के माध्यम की भाषा कौन–सी थी?

7. भारतीय शास्त्रीय संगीत के कर्नाटक परम्परा के उदय के मुख्य केंद्र कौन से थे? इस परंपरा के मुख्य कर्ताधर्ता कौन थे?

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में अठारहवीं शताब्दी का चित्रण हैं। यह हमें बाद के मुगल शासकों के बारे में जानकारी देता है, उनकी दुर्बलताओं तथा कठिनाइयों को बतलाता है। यह मुगल सरदारों के उदय तथा अंततः मुगल सत्ता से उनके विद्रोह को भी दर्शाता है।

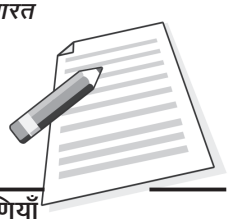

यह पाठ केंद्रीय सत्ता के विघटन के फलस्वरूप अवध तथा बंगाल के नबाव हैदराबाद के निजाम जैसी क्षेत्रीय शक्तियों के उदय को भी दर्शाता है। क्षेत्रीय शासकों का योगदान एवं उनके आपसी संघर्षों का ब्यौरा भी यह देता है।

मराठा राज्य संघ का आविर्भाव तथा अंततः मराठाओं का पांच वंशों में विघटन भोंसले, गायकवाड़, सिंधिया, होल्कर तथा सतारा में हो जाना इस युग का महत्त्वपूर्ण चरण है। पेशवा की शक्ति तथा अन्य महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक विशेषताएं भी दर्शाई गई हैं।

महाराजा रणजीत सिंह के नेतत्व में सिक्खों का संघटन, राजपूत राज्यों का उदय तथा इन राज्यों की भारतीय प्रशासन में राजनीति तथा संस्कति में इनकी देन की संक्षिप्त व्याख्या की गई है।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में महत्त्वपूर्ण विकास दिखलाई पड़ते हैं। मैसूर में हैदर अली तथा टीपू सुल्तान का उदय उल्लेखनीय है। ईस्ट इंडिया कंपनी का आगमन तथा मैसूर एवं कंपनी के बीच संघर्ष भारतीय राजनीति में एक नए युग की शुरूआत है।

राजनीतिक विकास के अतिरिक्त इस अध्याय में भारतीय अर्थव्यवस्था की नई विशेषताएं, भारतीय क षि व निर्यात व्यापार के पतन के कारणों पर चर्चा की गई है जिसने औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का रास्ता साफ कर दिया।

कई मामलों में जहां समाज पुरातनवादी रहा, वहीं 18वीं शताब्दी में भारत ने आर्थिक तथा सांस्क तिक क्षेत्र में नई प्रव त्तियों को जन्म दिया।

18वीं शताब्दी में भारत की राजनीति तथा अर्थव्यवस्था की जटिल प्रव त्ति के चलते इतिहासकारों में इन विकासों को लेकर विभिन्न मत हैं।

पाठान्त प्रश्न

1. औरंगजेब की म त्यु के उपरान्त मुगल वंश का पतन इतनी तेजी से क्यों हुआ?
2. क्षेत्रीय राजनीति तथा राज्यों के उदय की प्रक्रिया का परीक्षण कीजिए? इन शक्तियों की वैधता के लिए शाही प्रतीकों की आवश्यकता क्यों महसूस हुई?
3. मराठों ने 18वीं शताब्दी में किस प्रकार अपनी खोई हुए महत्ता को अर्जित किया?
4. महादजी सिंधिया कौन थे? उनकी मुख्य उपलब्धियों का वर्णन कीजिए?
5. बंगाल के नबावों द्वारा अपनी स्थिति सुद ढ़ करने के लिए किए गए प्रयत्नों का परीक्षण करें?
6. लाहौर में किसने और कब सिक्ख सत्ता की स्थापना की? इस संदर्भ में महाराजा रणजीत सिंह की भूमिका की व्याख्या कीजिए?
7. सवाई राजा जय सिंह द्वारा राजपूताना में शक्ति विस्तार के लिए उठाए गए कदमों की व्याख्या कीजिए?
8. 'दिल्ली के द ष्टिकोण से, 18वीं शताब्दी का युग अंधायुग था'। तर्क देकर इस वक्तव्य के औचित्य को सिद्ध कीजिए?

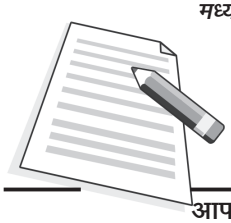

आपकी टिप्पणियाँ

9. 19वीं शताब्दी में क षि के पतन के कारणों का परीक्षण कीजिए?
10. 18वीं शताब्दी के भारत में आर्थिक क्षेत्र में हुए मुख्य परिवर्तन क्या थे? वर्णन करें?
11. 18वीं शताब्दी की प्रक ति को लेकर विवाद क्यों हैं?
12. किस आधार पर इतिहासकार 18वीं शताब्दी को अंधेरा युग कहते हैं?
13. 18वीं शताब्दी के इतिहास को समझने में मुख्य समस्याएं क्या हैं?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

15.1

1. बहादुर शाह प्रथम उर्फ शाह आलम। उसने समझौतों की नीति का अनुसरण किया।
2. अब्दुल्ला खान तथा हुसैन अली खान को सैय्यद बंधु के नाम से जाना जाता था। उपलब्धियां–

   क. उन्होंने क्रमशः वजीर और बक्शी की उपाधि धारण की।

   ख. उन्होंने सिक्खों के विद्रोह को दबाया तथा राजपूतों के साथ संधि की।

   ग. उन्होंने जजिया जैसे पक्षपाती कर को हटाया।
3. हैदराबाद राज्य की नींव चिन कीलिच खान उर्फ निजाम–उल–मुल्क ने रखी थी। यह मुगलों के अधीन वजीर था।
4. क. उत्तरवर्ती मुगल शासक दुर्बल तथा अकुशल थे।

   ख. उनमें से अधिकतर अस्थिर बुद्धि के थे तथा विलासिता एवं अपव्यय में संलग्न थे।
5. सन 1738–39 में ईरान के शासक नादिर शाह ने भारत पर आक्रमण किया था।

15.2

1. मराठे
2. मराठा शासक साहू के शासनकाल में मुख्यमंत्री को पेशवा कहा जाता था। बाजी राव प्रथम एक शक्तिशाली पेशवा था, जिसने 1720–1740 तक शासन किया।
3. चौथ तथा सरदेशमुखी से तात्पर्य मराठों द्वारा संगहीत शुल्कों से है। ये शुल्क के अनुपात के अनुसार थे। चौथ जहां 1/4 मुगल कर का था वहीं सरदेशमुखी 1/10 हिस्सा था।
4. गोवा, बसीन, दमन
5. नागपुर के भोसलें, बड़ौदा के गायकवाड़, इन्दौर के हेल्कर, ग्वालियर के सिंधिया तथा सतारा में शिवाजी के उत्तराधिकारी ने सतारा पर शासन किया।
6. अहिल्या बाई इन्दौर के होल्कर शासक मल्हार राव की विधवा बहू थी। उसने 1765 से 1794 तक शासन किया। उसकी मुख्य उपलब्धि थी कि उसने शक्ति को संगठित कर होल्कर वंश की गरिमा में चार चांद लगाएं।

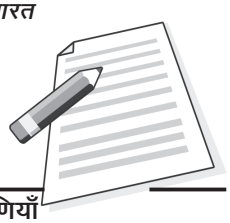

15.3

1. अवध के लखनऊ क्षेत्र में नवाबों के संरक्षण के अधीन न त्य की नई शैली कत्थक का उदय हुआ।
2. इस युद्ध में बंगाल का स्वतंत्र शासक सिराज–उद–दौला अंग्रेजों के हाथों पराजित होने के बाद मारा गया। इस विजय ने अंग्रेजों के लिए बंगाल तथा पूरे भारत में विदेशी शक्ति द्वारा सत्ता स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त हुआ।
3. टीपू सुल्तान अंग्रेजों की शत्रुता के साथ–साथ टीपू को हमेशा ही स्थानीय चोरों का भी सामना करना पड़ा।

15.4

1. राजनीतिक खलबली तथा सेनाओं की छापामारी आर्थिक अस्थिरता के दो मुख्य कारण थे।
2. भारतीय उत्पादों की अधिक मांग होने के बावजूद गुजरात के तटीय शहर सूरत ने अपनी महत्ता खो दी। अंग्रेजी व्यापारियों एवं पोतवाहकों ने भारतीयों को हटाकर निर्यात पर अपना अधिकार कर लिया था।
3. बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता जैसे औपनिवेशिक शहरों ने पूर्ववर्ती व्यापार केंद्रों का स्थान ले लिया था।
4. बहुत से क्षेत्रों में 18वीं शताब्दी का सामाजिक जीवन पुरानी परम्परा की ही निरन्तरता थी, जिसमें नाम मात्र के ही परिवर्तन थे। समाज जाति, जनजाति धर्म, भाषा, वर्ग आदि के आधार पर बंटा हुआ था।
5. उच्च वर्ग की महिलाओं के लिए परदा अनिवार्य था। बाल विवाह, बहुपत्नी प्रथा तथा दहेज प्रथा हालांकि समाज में प्रचलित थे, किन्तु सबसे क्रूर व भयंकर सामाजिक बुराई सती प्रथा थी।
6. 18वीं शताब्दी में उच्च शिक्षा का माध्यम संस्क त तथा फारसी था।
7. भारतीय शास्त्रीय संगीत की कर्नाटक शैली का तन्जौर के क्षेत्र में प्रादुर्भाव हुआ। इस परंपरा के मुख्य व्याख्याता थे–त्यागराज, मुत्तूस्वामी दिक्सितार एवं श्याम शास्त्री।

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. देखें खंड 15.1
2. देखें खंड 15.2
3. देखें 15.3 खंड
4. देखें खंड 15.2, ग्वालियर के सिंधिया
5. देखें खंड 15.4
6. देखें खंड 15.6
7. देखें खंड 15.7

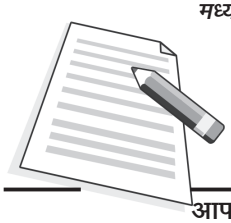

आपकी टिप्पणियाँ

8. देखें खंड 15.9
9. देखें खंड 15.9
10. देखें खंड 15.9
11. देखें खंड 15.12
12. देखें खंड 15.12
13. देखें खंड 15.12



5

जनपद से साम्राज्य की ओर

पिछले अध्याय में हमने पढ़ा कि उत्तर वैदिक काल के लोगों ने गंगा की घाटी में खेती करना शुरू किया और स्थायी रूप से गाँवों में बस गए। इस पाठ में हम सीखेंगे कि बढ़ते हुए कषि कार्यकलापों और स्थायी जीवन के परिणामस्वरूप छठी सदी ई.पू. काल में भारत के उत्तर में सोलह महाजनपदों (विशाल प्रादेशिक राज्य) का विकास हुआ। हम उन तत्वों पर भी विचार करेंगे, जिनके कारण इन प्रदेशों में से एक राज्य मगध बाद में मौर्यों के शासन के अधीन एक विशाल साम्राज्य के स्तर तक पहुंचा। मौर्य काल को आर्थिक और सांस्कतिक प्रगति के क्षेत्र में महान उन्नति का काल माना जाता है। परन्तु अशोक की मत्यु के पचास वर्षों के भीतर ही समाप्त (इसका पतन) हो गया था। हम इस पतन के कारणों का भी विश्लेषण करेंगे। इस काल में (छठी शताब्दी ई.पू.) कई नए धर्मों, जैसे बौद्ध धर्म और जैन धर्म का उद्भव भी हुआ। कई नए धर्मों के जन्म लेने के विभिन्न कारणों और उनके मुख्य सिद्धांतों के बारे में भी बताया जाएगा।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- छठीशताब्दी ई.पू. काल में, उन भौतिक और सामाजिक कारणों (जैसे कषि और नए सामाजिक वर्गों का विकास) की व्याख्या कर सकेंगे, जो महाजनपदों और नए धर्मों के उद्भव का आधार बने थे;
- बौद्ध धर्म और जैन धर्म के सिद्धांतों, संरक्षण, विस्तार और प्रभाव का विश्लेषण कर सकेंगे;
- भारतीय राज्यशाही में छोटे प्रदेशों से बड़े साम्राज्यों के विकास की जड़ें खोज सकेंगे और सोलह महाजनपदों की सूची बना सकेंगे;
- धम्म की नीति के ज़रिये साम्राज्यों को संगठित करने के लिए अशोक की भूमिका की परख कर सकेंगे;
- मौर्यशासन काल में प्रशासन, अर्थव्यवस्था, समाज की मुख्य विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे, और
- मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणों को जान सकेगें।



5.1 नए धर्मों का उद्‌भव

इस काल में आर्थिक और राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश से पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में स्थानांतरित हो गया था, जहाँ पर ज्यादा वर्षा होती थी और अधिक उपजाऊ भूमि थी। क्योंकि इस समय तक बिहार में उपलब्ध लौह अयस्क के संसाधनों से लाभ उठाना आसान हो गया था और लोगों ने घने जंगलों की कटाई और इस क्षेत्र की कठोर मिट्‌टी को खोदने के लिए औज़ार और हल की फाल इत्यादि का प्रयोग शुरू कर दिया था।

इस काल के पुरातात्त्विक साक्ष्यों और साहित्यिक स्रोतों से ये प्रमाण मिले हैं कि कषि की पैदावार में वद्धि हुई थी। वास्तव में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के एटा जिले में जखेड़ा नामक स्थान पर, 500 ई. पू. के आसपास एक हल की फाल मिली है। इस काम में लोहे का प्रयोग किए जाने के अनेक साक्ष्य राजघाट, कौशाम्बी, वैशाली और सोनपुर से भी मिले हैं। बौद्ध धर्म के ग्रंथों से हमें पता चलता है कि धान, गन्ना और सरसों की खेती के लिए कितनी सावधानी की जरूरत होती है और इसमें अनेक बार जुताई करनी पड़ती है। खेती–बाड़ी के विस्तार के फलस्वरूप खाद्यों की आपूर्ति में सुधार हुआ और शिल्पकारी के उत्पादों, व्यापार और शहरी केन्द्रों के विकास में भी सहायता मिली।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व काल को भारतीय उप–महाद्वीप में 'द्वितीयृशहरीकरण' के चरण के रूप में जाना जाता है। हड़प्पाकालीन नागरिक केंद्रों के पतन के बाद एक हज़ार वर्षों के अन्तराल के बाद अब पुनः शहरों का विकास हुआ था। परन्तु इस बार शहरों का विकास मध्य गंगा की घाटी के क्षेत्र में हुआ, न कि सिंधु नदी के मैदानों में। कहा जाता है कि 600 और 300 ईसा पूर्व काल में पाटलिपुत्र, राजगढ़िया, श्रावस्ती, वाराणसी, वैशाली, चम्पा, कौशाम्बी और उज्जयिनी जैसे साठ शहरों का विकास हुआ था।

ये नगर शिल्पकला उत्पादों और व्यापार के केंद्र बन गए और यहाँ बहुत बड़ी संख्या में कारीगरों और व्यापारियों का निवास होने लगा था। कारीगरों द्वारा बनाई गई वस्तुएँ, जैसे कपड़े, रेशम, गहने, मिट्‌टी के बर्तन इत्यादि को यहाँ के व्यापारी अन्य शहरों में ले जाते थे। श्रावस्ती और कौशाम्बी से जुड़ा शहर वाराणसी व्यापार का मुख्य केंद्र था। श्रावस्ती भी कपिलवस्तु और कुशीनारा के ज़रिये आपस में जुड़े थे। जातक कथाओं से पता चलता है कि व्यापारी मथुरा और तक्षशिला के रास्ते मगध और कौशल से व्यापार के लिए जाते थे। उज्जैन और गुजरात के समुद्रतटीय क्षेत्रों की यात्रा के लिए मथुरा पारगमन का मुख्य केंद्र था।

साँचों में ढलाई करके बनाए गए हजारों मुद्रांकित सिक्कों (पंच मार्क्ड) सिक्के (पी.एम.सी) की खोज से विकसित व्यापार की झलक मिलती है। विभिन्न प्रकार के चिह्न, जैसे अर्धचन्द्राकार, मछली, पेड़, पहाड़ी इत्यादि के चिह्न इन सिक्कों पर पाए गए हैं, इसीलिए इन सिक्कों को पंच मार्क्ड सिक्के (सांचे की ढलाई में बने सिक्के कहते है।) मुद्राशास्त्रियों ने ऐसे लगभग 500 सिक्कों की पहचान की है, जो कि मुख्यतः चांदी और कहीं–कहीं तांबे से बने हैं। कषि में सुधार और व्यापारिक, आर्थिक और शहरीकरण के विकास का प्रभाव समाज पर भी पड़ा। बेशक, इन परिवर्तनों के कारण पारम्परिक समानता और भाईचारे में असमानता और सामाजिक संघर्ष होने लगे। हिंसा, अत्याचार, चोरी, नफरत और झूठ जैसी सामाजिक बुराइयों से लोग किसी प्रकार छुटकारा चाहते थे। इसलिए बौद्ध और जैन धर्मों ने जब शांति और सामाजिक समानता का प्रचार किया तो लोगों ने

इसका स्वागत किया। इन धर्मों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि वास्तविक प्रसन्नता (सुख) किसी भौतिक समद्धि अथवा धार्मिक अनुष्ठान में नहीं है, बल्कि दान, मितव्ययिता, अहिंसा और अच्छे सामाजिक व्यवहार में है। उसके अतिरिक्त सामान्य आर्थिक प्रगति के कारण वैश्यों और अन्य व्यापारिक समूहों का उदय हो गया था, जो अब अपने लिए उस सामाजिक स्तर से बेहतर स्थान पाने की इच्छा रखते थे, जो ब्राह्मणों ने उनके लिए निध ार्रित किया था। इसलिए उन्होंने बौद्ध और जैन धर्म जैसे गैर–वैदिक धर्मों को संरक्षण दिया और उन्हें अत्यधिक दान दिया। केवल बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने ही ब्राह्मणों के वर्चस्व को चुनौती नहीं दी थी। बौद्ध धर्म के विविध स्रोतों से पता चलता है कि इस काल में 62 पंथों और दार्शनिक विचारधाराओं से भी अधिक विचारधाराएँ प्रचलित थीं। इनमें से एक का नाम था 'आजीविका', जिसकी नींव मक्खाली घोषाल ने रखी थी। तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व काल में आजीविकाएँ मगध में बहुत प्रचलित थीं और मौर्य शासकों ने 'आजीविका' के भिक्षुओं को अनेक गुफाएँ दान में दी थीं।

पाठगत प्रश्न 5.1

1. छठी शताब्दी ई.पू. के दौरान जिन स्थानों पर लोहे के औज़ारों के साक्ष्य मिले थे, उनके नाम लिखें।

   _____

2. इस काल के कुछ महत्त्वपूर्ण व्यापारिक मार्गों और व्यापार केंद्रों का विवरण दें।

   _____

3. प्राचीन सिक्कों को पंच मार्क्ड सिक्के (सांचे में ढले चिह्नित सिक्के) क्यों कहते थे?

   _____

4. आजीविका पंथ की नींव किसने रखी?

   _____

5.2 जैन धर्म और बौद्ध धर्म के सिद्धांत

जैन धर्म

वर्द्धमान महावीर को जैन धर्म का संस्थापक माना जाता है। उनका जन्म 599 ईसा पूर्व बिहार में वैशाली के निकट हुआ था। वे जैन धर्म के चौबीसवें और अंतिम 'तीर्थंकर' थे। जैन धर्म की आस्था थी कि मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य है आत्मा की शुद्धि और निर्वाण प्राप्त करना, जिसका अर्थ है जन्म–मरण के आवागमन से मुक्ति। उनका कहना था कि इसे धार्मिक अनुष्ठानों और पशु–बलियों से प्राप्त नहीं किया जा सकता, बल्कि इसकी प्राप्ति 'त्रिरत्न' और 'पंचमहाव्रत' से होगी। 'त्रिरत्न' अथवा तीन स्वर्ण सिद्धांत हैं– उचित विश्वास, उचित ज्ञान और उचित व्यवहार जिन पर चलकर ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। उचित व्यवहार का अभिप्राय है पांच नियमों पर चलने की शपथ लेना; 'अहिंसा' (किसी प्रकार की हिंसा न करें), 'सत्य वचन' (झूठ मत बोले), 'आस्तेय' (चोरी न करें), 'ब्रह्मचर्य' (भोग–विलास में लिप्त न हों), और 'अपरिग्रह' (संपत्ति का अधिग्रहण



न करें)। जैन मुनियों की तुलना में गहस्थ लोगों से इन 'अणुव्रत' (छोटे संकल्प) कहे जाने वाले सदगुणों के कठोर अनुपालन की आशा नहीं की जाती थी। अतः हम यह देख सकते हैं कि ब्राह्मण–धर्म धार्मिक–कर्मकांड पर बल देता था तो यह नया धर्म व्यवहार–आधारित था। जैन धर्म की सबसे प्रमुख विशेषता थी 'अनेकनतवदा' या कहें 'स्यादवदा'। इसका अर्थ है कि सत्य को अनेक अथवा विविध कोणों से परखा जा सकता है। जैन धर्म की एक और प्रमुख विशेषता थी कठोर प्रायश्चित, आडम्बरहीनता और कठोर अहिंसा धर्म का पालन। शायद कठोर अनुशासन के सिद्धांतों पर बल देने के कारण ही बहुत बड़ी संख्या में अनुयायी इस धर्म की ओर आकर्षित नहीं हो पाए। महावीर ने अपने सिद्धांतों (संदेशों) के प्रचार के लिए प्राकत भाषा का प्रयोग किया। तथापि अन्य धर्मों की तरह, जैन धर्म भी बहुत लंबी अवधि तक संगठित नहीं रह सका और 'दिगम्बर' (जो निर्वस्त्र रहते थे) और 'श्वेताम्बर' (जो सफेद वस्त्र पहनते थे) नामक दो वर्गों में बँट गया।

बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म के संस्थापक थे गौतम बुद्ध, जिनका जन्म कि 566 ईसा पूर्व नेपाल की पहाड़ी तराई में स्थित लुम्बिनी में हुआ। एक रात उन्होंने सत्य की खोज में अपने महल का त्याग कर दिया और अन्त में बोधगया में सत्य का ज्ञान प्राप्त किया। उसके बाद उन्हें 'बुद्ध' या 'प्रबुद्ध' कहा जाने लगा। उन्होंने अपना पहला प्रवचन वाराणसी के पास सारनाथ में दिया। इस घटना को धर्म–चक्र–प्रवर्तन (विधि के चक्र का परिवर्तन) का नाम दिया गया। यहाँ पे उन्होंने अपने 'संघ' की भी स्थापना की। उनकी मत्यु 80 वर्ष की आयु में पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर के पास कुशीनारा या कुशीनगर में 486 ईसा पूर्व में हुई थी।

बुद्ध ने अपने अनुयायियों को दो अतियों से बचने के लिए कहा– न तो सांसारिक सुखों में लिप्त हों और न ही कठोर ब्रह्मचर्य और सन्यासी बनो। 'मध्यम मार्ग' या 'मध्यम रास्ता' अपनाने के इस दर्शन की झलक बौद्ध धर्म से संबद्ध सभी विषयों में मिलती थी। बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों की संरचना का मूल आधार था। चार महान सत्य या 'आर्य सत्य' और 'अष्टांग मार्ग' या 'अष्टांगिका मार्ग'। प्रथम महान सत्य जिसकी शिक्षा बुद्ध ने दी वह था, यह संसार कष्टों (दुख) से भरा है और पीड़ाओं का महासागर है। दूसरा महान सत्य है 'दुख समुदय' अर्थात् प्रत्येक कष्ट का कोई न कोई कारण होता है। तीसरा महान सत्य है 'दुख निरोध' अर्थात दुख का निवारण किया जा सकता है और चौथा सत्य है 'दुख विरोध गामिनी प्रतिपदा' यानी दुख के निवारण का रास्ता है। यदि व्यक्ति दुखों से छुटकारा पाना चाहता है तो उसे अपनी इच्छाओं पर विजय प्राप्त करनी होगी। इच्छाओं से बचने के लिए उन्होंने अष्टांग मार्ग पर चलने की शिक्षा दी, ये मार्ग थे : उचित विश्वास, उचित विचार, उचित भाषा, उचित काम, उचित आजीविका, उचित प्रयास, उचित सोच, और उचित ध्यान।

बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं के प्रचार के लिए सामान्य जनमानस द्वारा बोली जाने वाली भाषा 'पालि' का प्रयोग किया। बुद्ध ने निम्न वर्ण के लोगों और महिलाओं को भी 'संघ' में प्रवेश की अनुमति दी। विविध कालावधियों में आयोजित किए गए चार बौद्ध सम्मेलनों ने बौद्ध धर्म के प्रसार में बहुत बड़ी भूमिका निभाई। कनिष्क साम्राज्य के दौरान आयोजित चौथे सम्मेलन में बौद्ध धर्म दो बड़ीशाखाओं में बंट गया– जिन्हें हीनयान और महायान कहते थे। महायान ने संस्कत भाषा को अपनाया और बुद्ध की मूर्तिपूजा करनी शुरू कर दी, जबकि हीनयान अभी भी पालि भाषा में प्रचार करते है और बुद्ध को अपना मार्गदर्शक मानते है।

सातवींशताब्दी ईसा पश्चात बौद्ध धर्म कमज़ोर पड़ता गया परन्तु भारतीय इतिहास में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बौद्ध धर्म के प्रभाव को देखा जा सकता है। बौद्ध विद्वानों ने अनेक साहित्यिक ग्रन्थों की रचना की जैसे –'त्रिपिटिका,' 'मिलिन्दपानहो,' 'बुद्धचरित' इत्यादि। स्तूपों, चट्टानों को काटकर बनाई गई गुफाओं और चित्रकारी के रूप में बौद्ध धर्म, कला और वास्तुशिल्प की प्रगति के लिए प्रेरणा बना। सांची, भड़ौत, अमरावती, अजन्ता इत्यादि स्थानों पर इसे देखा जा सकता है। गंधार और मथुरा की कलात्मक धाराओं (स्कूल) को भी बौद्ध धर्म ने प्रेरित किया। सभी वर्ग के लोगों के लिए अपने धर्म के दरवाज़े खोलकर बौद्ध धर्म ने ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को चुनौती दी और निचले वर्ग के लोगों को समाज में ऊँचा स्थान दिया।

पाठगत प्रश्न 5.2

1. जैन धर्म के सिद्धान्त में 'त्रिरत्न' नाम के कौन से तीन तत्त्व हैं?

2. जैन धर्म की कौन सी दो शाखाएँ हैं?

3. बुद्ध ने अपना पहला प्रवचन किस स्थान पर दिया था?

4. बौद्ध धर्म में कौन से चार महान सत्य और अष्टांग मार्ग हैं?

5. 'दुख' के संबंध में बुद्ध ने क्या शिक्षा दी?

6. बुद्ध ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए किस भाषा का प्रयोग किया?

7. महायान और हीनयान में क्या अन्तर है?

8. साहित्य और कला के क्षेत्र में बौद्ध धर्म ने क्या योगदान किया?

5.3 सोलह महाजन पद

छठी शताब्दी ईसा पूर्व का काल न सिर्फ सामाजिक–आर्थिक और धार्मिक विकास का काल था बल्कि इसमें नए राजनीतिक विकास भी देखने में आए। उत्तर वैदिक काल में, जैसा कि हमने पहले देखा है, लोगों ने खेती–बाड़ी करनी शुरू कर दी थी, जिसकी वजह से उन्हें एक स्थान पर बसना पड़ा। इस स्थायी आवास के फलस्वरूप एक शासक के नियंत्रण के अधीन जनपदों या प्रादेशिक राज्यों की नींव पड़ी। छठीशताब्दी ईसा पूर्व में राजनीतिक गतिविधियों का मुख्य केन्द्र धीरे–धीरे पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में स्थानांतरित हो गया था। अत्यधिक वर्षा के कारण और नदी प्रणालियों की वजह से यह क्षेत्र न सिर्फ उपजाऊ था बल्कि लोहा उत्पाद केन्द्रों के भी



नजदीक था। लोहे से बने बेहतर औज़ारों और शस्त्रों के प्रयोग से कुछ क्षेत्रीय राज्य बहुत विशाल प्रदेश बन गए जिन्हें 'महाजन पद' कहा जाता था। इनमें से ज़्यादातर महाजनपद विंध्य पर्वत श्रंखला के दक्षिण उत्तर में, पूर्व में उप–महाद्वीप के सुदूर उत्तर–पश्चिमी सीमांत से लेकर बिहार तक स्थित थे। इन सोलह महाजनपदों की सूची नीचे दी गई है।

तालिका 5.1 महाजनपद

क्रमसंख्या	महाजनपद	राजधानी	आधुनिक स्थान
1	अंग	चम्पा	मुंगेर और भागलपुर
2	मगध	गिरिव्रज/राजगीर	गया और पटना
3	काशी	काशी	बनारस
4	वत्स	कौशाम्बी	इलाहाबाद
5	कौशल	श्रावस्ती	पूर्वी उत्तर प्रदेश
6	शौरसेना	मथुरा	मथुरा
7	पांचाल	अहिछत्र और काम्पिल्य	पश्चिमी उत्तर प्रदेश
8	कुरू	इन्द्रप्रस्थ	मेरठ और दक्षिण पूर्व हरियाणा
9	मत्स्य	विराटनगर	जयपुर
10.	छेदी	सोठीवाटी/बांदा	बुंदेलखंड
11	अवन्ती	उज्जैन/महिष्मती	मध्य प्रदेश और मालवा
12	गंधार	तक्षशिला	रावलपिंडी
13	कम्बोज	पुंछ	राजौरी और हाजरा (कश्मीर)
14	अस्माका	प्रतिष्ठान/पैठान	गोदावरी के किनारे
15	वज्जी	वैशाली	वैशाली
16	मल्ल	कुशीनारा	देवरिया और उत्तर प्रदेश

इनमें से ज़्यादातर प्रदेश 'राज्यशाही' प्रकति के थे परन्तु कुछ प्रदेश 'गणसंघ' कहलाते थे जहां पर गणतंत्रात्मकृशासन था। इस शासन प्रणाली में राजश्शाही साम्राज्यों, जहाँ वंशगत राजा शासन करता था, से भिन्न तरीके से प्रशासकीय राज चलता था जिसमें एक चुना गया राजा, एक विशाल परिषद या सभाओं की सहायता से राज करता था जिसमें सभी महत्त्वपूर्ण कुलों और परिवारों के मुखिया शामिल होते थे। यह पद्धति राज्य तंत्र से अधिक जनतांत्रिक

आपकी टिप्पणियाँ

थी, यद्यपि आम आदमी की प्रशासन में कोई भूमिका नहीं होती थी। इन सभी प्रदेशों में से सबसे प्रसिद्ध राज्य था 'वज्जी' जिसकी राजधानी थी 'वैशाली' और यहाँ पर लिच्छवियों का शासन था। यह कुलीनतंत्र ज़्यादातर हिमालय पर्वत की तराई के क्षेत्रों में थे। कालांतर में मगध साम्राज्य द्वारा इन्हें हटाकर इन पर विजय प्राप्त कर ली थी।



मानचित्र 5.1 महाजनपद

पाठगत प्रश्न 5.3

1. छठीशताब्दी ईसा पूर्व काल के किन्ही चार 'महाजन पदों' का नाम लिखें।



2. 'गणसंघ' और राज्यश्तंत्र में क्या अंतर था?

3. छठीशताब्दी ई. पू. काल में सबसे महत्त्वपूर्ण गणसंघ कौन सा था?

5.4 मगध का उद्भव

इन महाजनपदों में आपस में संघर्ष के परिणामस्वरूप मगध एक अत्यंत शक्तिशाली राज्य के रूप में उभरा और एक विशाल साम्राज्य का केन्द्र बन गया। मगध का पहला महत्त्वपूर्णशासक था बिंबिसार जिसने 544 ई. पू. से 492 ई. पू. काल के दौरान 52 वर्षों तकशासन किया। इसने साम्राज्य के विस्तार के लिए तीन पक्षीय नीति अपनाई अर्थात् वैवाहिक संबंध बनाना, शक्तिशाली शासकों से मित्रता करना और कमज़ोर पड़ोसी राज्यों पर विजय प्राप्त करना। वैवाहिक संबंधों की नीति के अधीन बिंबिसार ने कौशल राज्य के राजा प्रसेनजीत की बहन से विवाह किया। वह दहेज में अपने साथ काशी प्रदेश को भी लाई जहां से 1,00,000 सिक्कों का लगान मिलता था। काशी पर नियंत्रण और प्रसेनजीत के साथ मित्रता से मगध को अन्य क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करने का मौका मिला। उसकी अन्य पत्नियाँ क्रमशः लिच्छवियों और मद्र (मध्य पंजाब) के प्रमुखों की बेटियां थीं। इसने अंगदेश के राजा ब्रह्मदत्त को हराकर इस पर विजय प्राप्त की। अंग, विशेष रूप से इसकी राजधानी चम्पा दोनों स्थान स्वदेशी और जलमार्ग से व्यापार करने के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण थे। इस प्रकार काशी और अंग पर विजय पाना मगध साम्राज्य के विस्तार के प्रारंभिक स्थल बने। वे बुद्ध और महावीर, दोनों के समकालीन थे और दोनों को बराबर सम्मान देते थे। विश्वास किया जाता है कि या तो उनकी हत्या की गई थी अथवा उनके पुत्र अजातशत्रु द्वारा उन्हें आत्महत्या करने के लिए मजबूर किया गया होगा क्योंकि वह स्वयं राजगद्दी हथियाने के लिए बहुत उत्सुक था।

अजातशत्रु बहुत ही आक्रामक व्यक्ति था और सबसे पहले उसकी लड़ाई उसके मामा प्रसेनजीत से हुई, जो बिंबिसार के साथ दुर्व्यवहार की वजह से नाराज था। उसने अजातशत्रु से उसकी माँ के दहेज में मिले काशी प्रदेश को वापस लौटाने का आग्रह किया। अजातशत्रु ने इनकार कर दिया और एक घमासान लड़ाई के बाद ही प्रसेनजीत मगध सहित काशी को छोड़ने के लिए सहमत हुआ। इसी प्रकार अजातशत्रु ने वैशाली के शासक अपने नाना चेतक के साथ भी युद्ध किया और 16 वर्ष तक चली लंबी लड़ाई लड़ने के बाद वह वैशाली की ताकत को तोड़ने में कामयाब हो सका और इसके साथ ही उसने काशी को तो अपने पास रखा ही वैशाली को भी मगध में शामिल कर लिया।

अजातशत्रु के उत्तराधिकारी थे उदयन और उसका सबसे बड़ा योगदान था कि उसने गंगा नदी और सोन नदी के संगम स्थल पाटलिपुत्र या पटना में एक किले का निर्माण कराया। युद्ध नीति की दष्टि से एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कदम था क्योंकि यह स्थान न सिर्फ केन्द्र में स्थित था बल्कि यहाँ पर व्यापारियों और सैनिकों का आना–जाना बहुत आसान था।

उदयन के बाद शिशुनाग राजवंश के उत्तराधिकारी बने। शिशुनाग की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी अवन्ती (मालका) को हराकर उसे मगध साम्राज्य का हिस्सा बनाना। शिशुनाग का उत्तराधिकारी बना उसका पुत्र कालअशोक। इसी के शासनकाल में दूसरा बौद्ध धर्म

सम्मेलन आयोजित हुआ था। शिशुनाग राजवंशियों के बाद नंद वंश के राजा उत्तराधिकारी बने। महापद्मनंद इसके प्रमुख शासक थे। ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार यह निम्न जाति से या कहें गैर–क्षत्रिय जाति से संबंध रखते थे। इनके पास बहुत बड़ा सैन्यबल था और इन्होंने कलिंग को अपने साम्राज्य में शामिल किया। नंदवंश का अंतिम शासक था घनानंद। ऐसा माना जाता है कि वह बहुत ही लड़ाकू और दमनकारी राजा था और उसने साधारण जनता पर करों का भारी बोझ लाद दिया था। इस वजह से आम जनता में उसकी लोकप्रियता खत्म हो गई और अंत में चन्द्रगुप्त ने जनसाधारण की इस नाराज़गी का फायदा उठाया और उसने नंदवंश के साम्राज्य को उखाड़ फेंका और मौर्य साम्राज्य की नींव रखी।

अब प्रश्न यह है कि मगध उस काल के अन्य सभी प्रदेशों पर धीरे–धीरे अपना वर्चस्व स्थापित कर सकता था। बेशक मगध ने अनेक योग्य और महत्त्वाकांक्षी राजाओं का फायदा उठाया, लेकिन इनकी ताकत मूल रूप से वहाँ की कुछ भौगोलिक विशेषताओं पर आधारित थी। इनकी पुरानी राजधानी गिरिव्रज या राजगीर चारों ओर से पाँच पहाड़ियों से घिरी थी जिन्होंने प्राकतिक किले के रूप में इसकी रक्षा की। दूसरे, इस स्थान की नदी घाटी की उपजाऊ ज़मीन की वज़ह से यहाँ पर अतिरिक्त कषि उत्पाद पैदा होने के कारण ऐसी परिस्थितियाँ बनीं जिनके फलस्वरूप एक बड़ा सैन्य बल खड़ा किया जा सकता था। दक्षिणी क्षेत्रों से इमारती लकड़ी और हाथी मिले। इसके साथ ही मगध को इस स्थान का एक और लाभ मिला कि दक्षिण बिहार के पास मिली लोहे की खानों पर इसका नियंत्रण हो गया। मगध के साम्राज्य की लोहे तक पहुंच ने यहां के अस्त्र–शस्त्र को बहुत ही बेहतर और खेती–बाड़ी के औज़ार की वजह से अधिक उत्पादन के योग्य बना दिया। इसी भौतिक विकास की पष्ठभूमि ने मगध को अन्य महाजनपदों से अधिक शक्तिशाली बनाने में सहायता की।

पाठगत प्रश्न 5.4

1. बिंबिसार ने अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए किन नीतियों को अपनाया?

2. मगध के उत्थान में भौगोलिक तत्त्वों ने कैसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई?

3. मगध की राजधानी का क्या नाम था?

4. दो शासकों के नाम बताएँ जिनके साथ अजातशत्रु ने युद्ध लड़े?

5. नंद राजवंश का सबसे प्रमुख शासक कौन था?

6. किसृशासक के काल में द्वितीय बौद्ध धर्म सम्मेलन का आयोजन हुआ?

5.5 मौर्य साम्राज्य का उदय

मौर्यकालीन स्रोत

321 ई. पू. में चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा मौर्य राजवंश की स्थापना को प्राचीन भारत के इतिहास में एक संक्रांतिकाल समझा जाता है। इस समय के दौरान पहली बार अनेक ऐसे स्रोत उपलब्ध हुए जिनसे अब इस काल के इतिहास पर बेहतर ढंग से प्रकाश डाला जा सकता है। अशोक द्वारा जारी किए गए अभिलेख सूचना के बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं और कम से कम 44 ऐसे अभिलेख मिले हैं जो चट्टानों और स्तम्भों पर उत्कीर्ण हैं। ये अभिलेख ज़्यादातर पालि भाषा में हैं और अधिकतर क्षेत्रों में ब्राह्मी लिपि में लिखे गए हैं। ये शिलालेख प्राचीन भारत में लेखन के प्रथम साक्ष्य भी हैं। जहाँ तक पुरातात्विक स्रोतों का संबंध है, पंच–मार्क्ड (ढलाई करके बनाए गए मुद्रित) सिक्के, कुम्हरार में स्थित अशोक महल के अवशेष और मूर्तियों के कुछ टुकड़े बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

सबसे महत्त्वपूर्ण साहित्यिक स्रोत हैं 'कौटिल्य का अर्थशास्त्र' और 'इंडिका ऑफ मैगास्थनीज'। 'अर्थशास्त्र' शासनकला पर लिखा गया ग्रन्थ है, जो राजाओं को यह परामर्श देता है कि अपने राज्य में शासन कैसे किया जाता है और अपने कर्त्तव्यों का पालन किस प्रकार किया जाता है। इंडिका, सैल्यूकस द्वारा भेजे गए यूनानी, मैगास्थनीज का यात्रा वत्तांत है जिसे चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में राजदूत के रूप में भेजा गया था। 'दीपवंश' और 'महावंश' दो श्रीलंकाई बौद्ध ग्रंथ हैं और विशाखादत्त द्वारा रचित नाटक 'मुद्राराक्षस' भी एक अन्य अमूल्य ग्रंथ हैं।

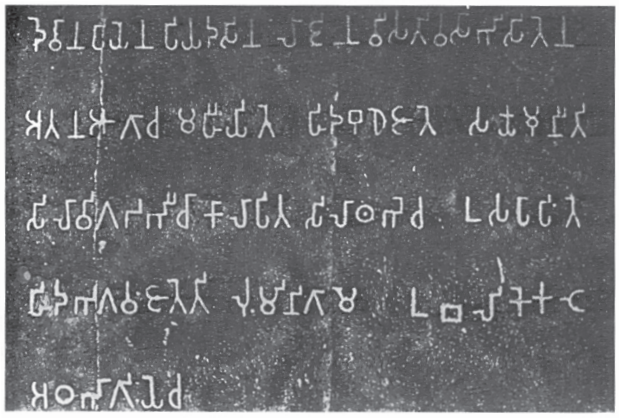

चित्र 5.1 रूम्मनदेई के शिलालेख

मौर्यकालीन राजवंश

मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य (321-297 ई. पू.) को नंद की बहुत विशाल सेना विरासत में मिली, जिसका उपयोग उसने लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत, उत्तर पश्चिम और भारत के काफी बड़े भाग को जीतने के लिए किया। उसका पुत्र बिन्दुसार (297-269 ई. पू. में) उसका उत्तराधिकारी बना। इसने यूनान के लोगों के साथ परस्पर व्यापार और सांस्कतिक आदान–प्रदान को बढ़ावा दिया, परन्तु इस संबंध में बहुत ज्यादा जानकारी उपलब्ध नहीं है। अशोक 269-232 ई. पू. में अपने पिता बिन्दुसार का

उत्तराधिकारी बना। बौद्ध परम्पराओं के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि अशोक ने अपने 99 भाइयों की हत्या करके सिंहासन हासिल किया था परन्तु किसी अन्य स्रोत से इस तथ्य की पुष्टि न हो पाने के कारण इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। अशोक ने 261 ई. पू. के आसपास कलिंग के साथ एक बहुत बड़ा घमासान युद्ध किया जिसमें बहुत बड़ी संख्या में लोग मारे गये थे अथवा उन्हें बंदी बना लिया गया था। शायद इस रक्तपात ने उसके हृदय को करुणा से भर दिया और उसने सैनिक बल के आधार पर राज्य विस्तार की नीति को छोड़ने का निर्णय किया और घोषित किया कि भविष्य में वह 'भरीघोष' (युद्ध का नगाड़ा) से 'धम्मघोष' (धम्म के नगाड़े) को बेहतर समझेगा। अपना संपूर्ण शेष जीवन उसने 'धम्म' के सिद्धान्तों के प्रचार और प्रसार में व्यतीत किया। परन्तु उसका उत्तराधिकारी उसके साम्राज्य को संगठित रखने में असफल रहा और 187 ई. पू. के आसपास इनके अंतिम शासक राजा बहदरथ की उसके सेनापति पुष्यमित्र सुंग ने हत्या कर दी और फिर यह साम्राज्य पूरी तरह समाप्त हो गया।

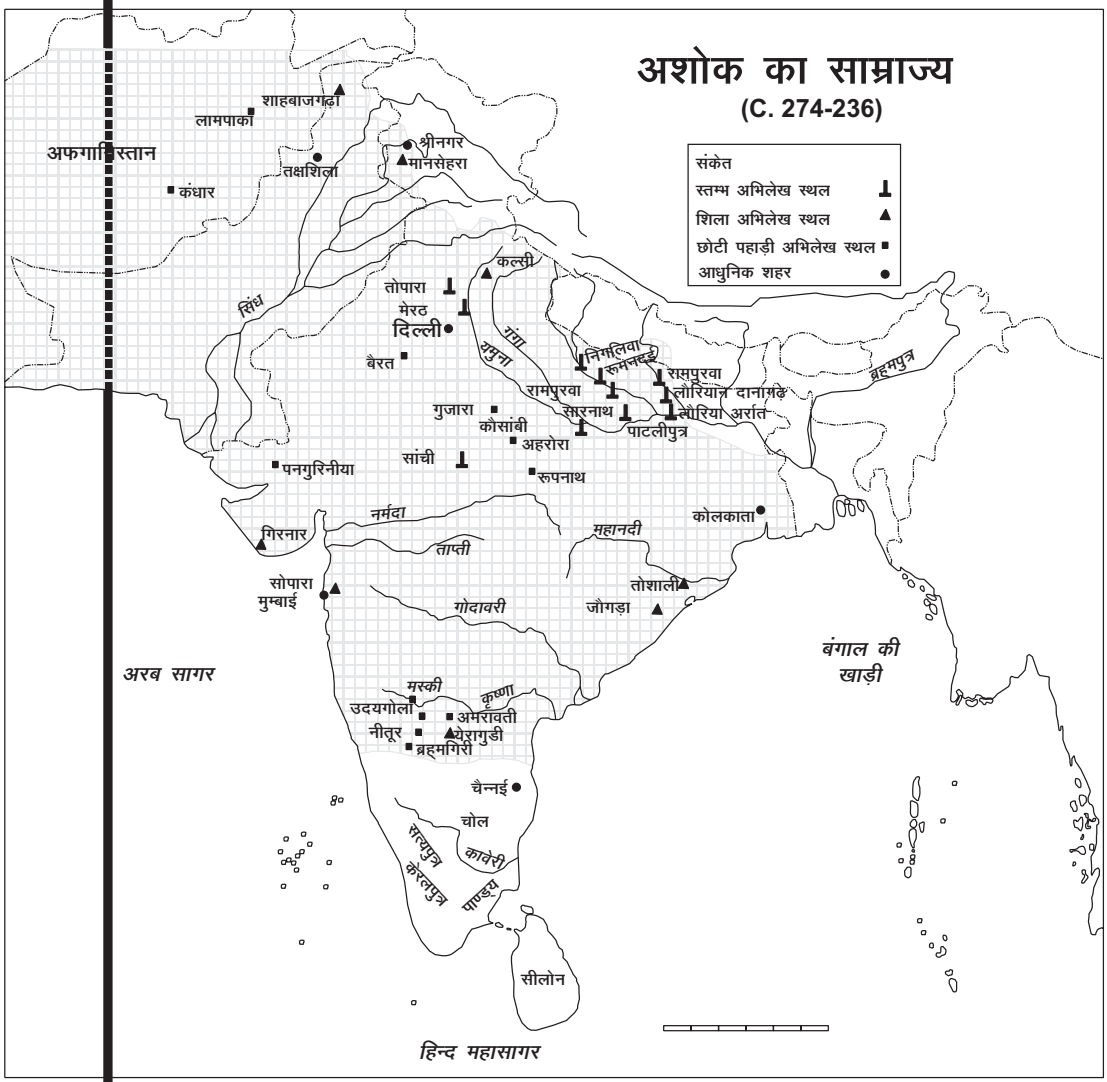

मानचित्र 5.2 अशोक का साम्राज्य

पाठगत प्रश्न 5.5

1. मौर्यकालीन इतिहास लिखने के लिए कौन–कौन से मुख्य स्त्रोत हैं?

2. अशोक के अधिकांश शिलालेख किस भाषा और लिपि में लिखे गए हैं?

3. इंडिका का लेखक कौन है?

4. अंतिम मौर्य शासक कौन था?

5.6 अशोक और उसका धम्म

अशोक को भारतीय इतिहास में एक महानतम शासक माना जाता है। उसकी प्रशंसा उसकी सैनिक गतिविधियों की तुलना में उसकी 'धम्म' से संबंधित नीतियों के लिए की जाती है। कुछ विद्वानों के मतानुसार अशोक बौद्ध धर्म का अनुयायी था और उसने धम्म के ज़रिये बौद्ध धर्म के सिद्धांतों के प्रचार का प्रयास किया। परन्तु इसमें कोई सच्चाई दिखाई नहीं देती, क्योंकि धम्म का बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार से कुछ लेना–देना नहीं था। यह तो एक आचार–संहिता या आदर्श सामाजिक व्यवहार था, जो विश्व के सभी धर्मों में सामान्य रूप से मिलता है, और जिसको अपनाने के लिए उसने अपनी प्रजा से अनुरोध किया। यद्यपि स्वयं अशोक बौद्ध धर्म का अनुयायी था, परन्तु उसने कभी भी किन्हीं अन्य मतों या धर्मों के विरुद्ध कोई भेदभाव नहीं किया।

अशोक कालीन शिलालेखों के गहन अध्ययन से पता चलता है कि धम्म की मूल विशेषताओं में शामिल थी करूणा (दया), दान–दक्षिणा (दान), सच्चाई, पवित्रता और अच्छा व्यवहार। स्तम्भों के शिलालेख–3 में लोगों से हिंसा पर नियंत्रण, अत्याचार, क्रोध और ईर्ष्या पर नियंत्रण पाने का अनुरोध किया गया है। चट्टानों पर खुदे शिलालेख–1 में लोगों को पशु वध पर पाबंदी और 'समाज' की तरह के सामाजिक सम्मेलनों पर रोक लगाई गई है। चट्टानों के शिलालेख–2 पर यह घोषित किया गया है कि अस्पताल, सड़कें, सरायों और कुओं के निर्माण और छायादार पेड़ लगाने के उपाय किए जाएं। चट्टानों पर खुदे तीसरे, चौथे और बारहवें अभिलेखों में लोगों से कहा गया है कि वे माता–पिता, संबंधियों, ब्राह्मणों और श्रमणों (भिक्षुओं) का सम्मान करें। उसने अपने राज्य में 'धम्म महाभाग' नामक विशिष्ट प्रकार के काम करने वालों को भी नियुक्त किया। उनका मुख्य काम था इसका निरीक्षण धम्म के सिद्धांतों का शांतिपूर्ण रूप से पालन हो रहा हैं। 12वें शिलालेख का अभिलेख विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें कहा गया है कि 'राजा प्रियदर्शी, ईश्वर का प्रिय है, सभी सम्प्रदायों का सम्मान करता है। चाहे वे सन्यासी हैं या गहस्थ और उन्हें विविध प्रकार के उपहार और सम्मान देकर उनका आदर करता हैं और

चाहे वह किसी अन्य धर्म का अनुयायी हो, हर अवसर पर उसका भी सम्मान होना चाहिए। अशोक लोगों को बौद्ध धर्म का अनुयायी बनाने का प्रयास कर रहा था, परन्तु सोचने की बात है कि उसने इस नीति पर अत्यधिक बल क्यों दिया?

इतिहासकार यह मानते हैं कि अशोक के शासन का आधा समय बीतते–बीतते, साम्राज्य का विस्तार लगभग पूरा हो चुका था। यह ऐसा साम्राज्य था, जिसमें भिन्न–भिन्न सांस्कतिक, सामाजिक और धार्मिक समूह थे। इन मतभेदों (फूट) से पैदा हुए राजनीतिक तनाव से साम्राज्य को बचाने के लिए उसके हित में दो रास्ते हो सकते थे। एक तो यह कि वह इन संघर्षों के समाधान के लिए अपने सैनिक बल में वद्धि करता, जिसके लिए

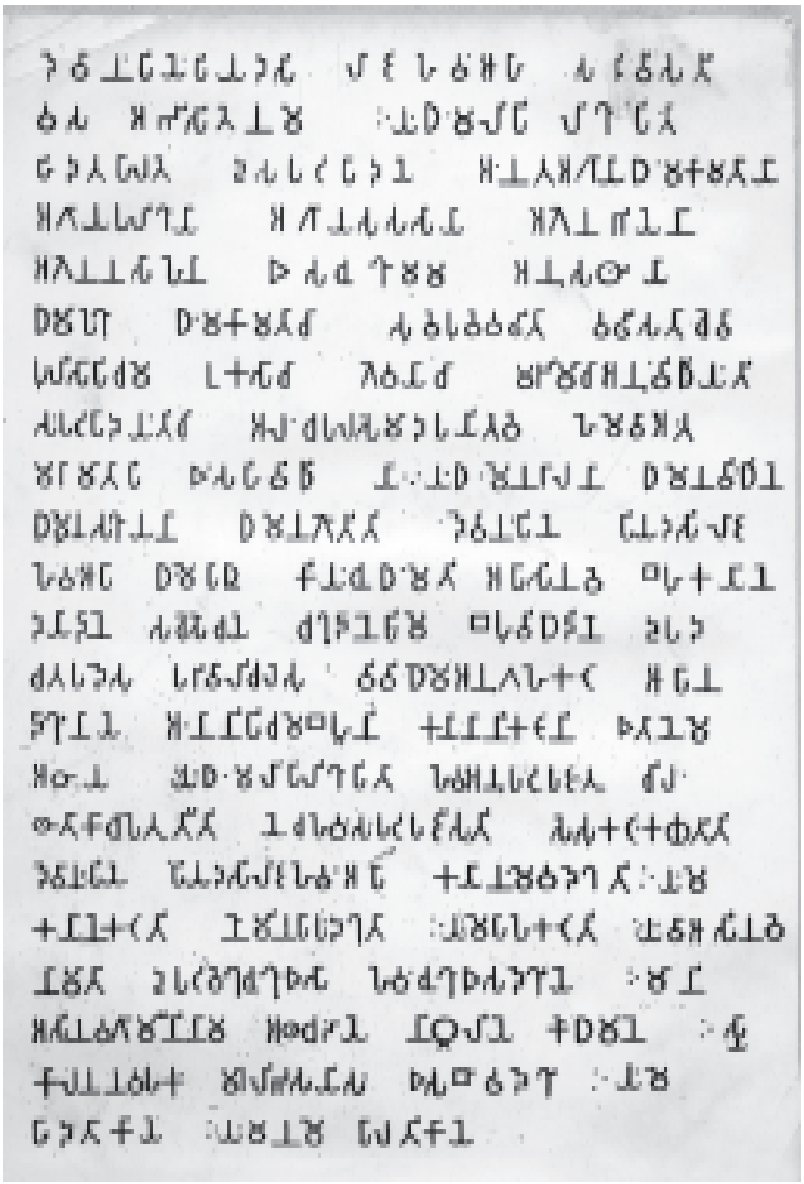

चित्र 5.2 अशोक स्तम्भ का अभिलेख



संभवतः उसे करों में और वद्धि करनी पड़ती और इससे उसे और अधिक लोगों के विरोध का सामना करना पड़ता। दूसरा विकल्प था कि विभिन्न मतभेदों वाले समूहों में परस्पर सद्भाव और सहृदयता उत्पन्न करके एकता पैदा की जाए, जिससे उनकी आपसी लड़ाई खत्म करने का शांतिपूर्ण समाधान खोजा जाए। अशोक ने अपने साम्राज्य में सामंजस्य और शांति स्थापना के लिए दूसरे विकल्प का चुनाव किया। अतः भारतीय इतिहास में अशोक का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि वह पहला ऐसा शासक था, जिसने युद्ध और आक्रमण के स्थान पर शांति की नीतियों की शुरुआत की।

पाठगत प्रश्न 5.6

1. 'धम्म' के संबंध में अशोककालीन शिलालेख हमें क्या बताते हैं?

2. अन्य धर्मों के साथ अशोक का कैसा व्यवहार था?

3. धम्ममहामात्रों के क्या कार्य थे?

5.7 मौर्यों का पतन

मौर्यों के पास एक विशाल सेना और एक बड़ा शासन तंत्र था और उन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप के एक बहुत बड़े भू–भाग पर शासन किया। परन्तु अशोक की मत्यु के पश्चात शीघ्र ही साम्राज्य दो भागों मे विभाजित हो गया। पूर्वी भाग के साम्राज्य का नियंत्रण राजा दशरथ के हाथों में और पश्चिमी भाग सम्प्रति के अधीन था। इतने बड़े साम्राज्य का पतन इतनी जल्दी कैसे हुआ?

कुछ इतिहासकार यह मानते हैं कि बौद्ध धर्म के प्रभाव में आने के बाद अशोक शांतिप्रिय बन गया था और उसने अपनी सेना को दुर्बल बना दिया था। यह भी कहा जाता है कि अशोक की धार्मिक नीति ने ब्राह्मणों को उसका विरोधी बना दिया था, क्योंकि अशोक ने पशु–बलि पर रोक लगा दी थी, जिसके परिणामस्वरूप ब्राह्मणों की आर्थिक स्थिति और धार्मिक कार्यकलापों पर बुरा प्रभाव पड़ा था। इसीलिए, पुष्यमित्र जो ब्राह्मण सेनापति था, ने अंतिम मौर्य शासक की हत्या कर दी थी। परन्तु इसको सही नहीं माना जा सकता, क्योंकि अशोक कालीन शिलालेखों से पता चलता है कि अशोक ब्राह्मणों को पूरा सम्मान देता था। इसके अतिरिक्त यह सच है कि अशोक ने शांति और सामंजस्य की नीति को अपनाया, परन्तु अपने सैन्य बल को समाप्त नहीं किया था और किसी भी आक्रमण के मुकाबले के लिए हमेशा तत्पर रहा।

पतन का एक मुख्य कारण शायद यह हो सकता है कि मौर्य वंश का शासन दुर्बल उत्तराधिकारी राजाओं को मिल गया था। ये शासक दूर–दराज क्षेत्रों के उन अधिकारियों पर अपना नियंत्रण नहीं रख पाए जो अत्याचारी बन चुके थे और केंद्र के हितों के विरुद्ध काम कर रहे थे। यह भी संभव है कि मौर्य साम्राज्य को किसी प्रकार

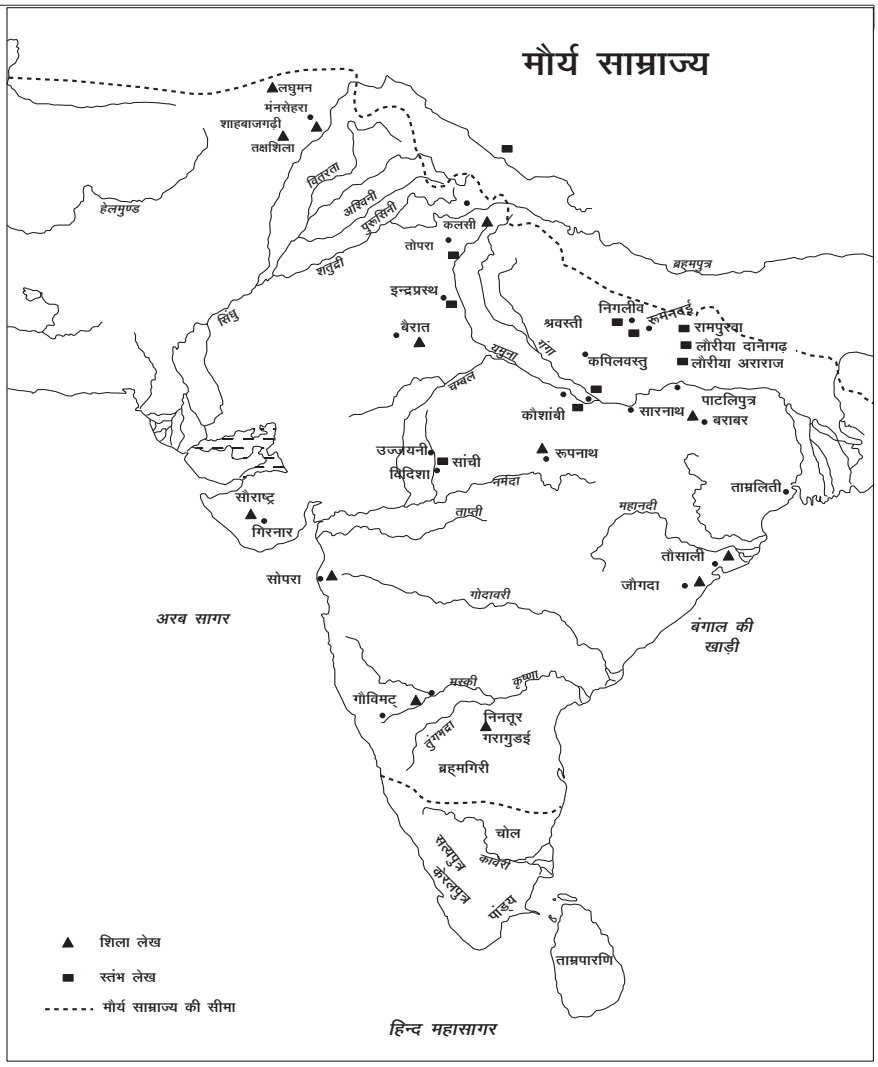

मानचित्र 5.3 मौर्य साम्राज्य

के आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा होगा। उस काल के कुछ सिक्कों के मूल्य कम होने से इस बात का पता चलता है। यह संकट शायद अत्यधिक दान–दक्षिणा अथवा साम्राज्यिक प्रशासनिक प्रणाली पर अत्यधिक खर्च किए जाने से भी आने की संभावना हो सकती है। असल में, पतन का कारण था इतने विस्तत साम्राज्य के केंद्रीय ढांचे का वंश के आधार पर चला आने वाला रूप। अशोक के उत्तराधिकारी साम्राज्य के केंद्रीय और विभिन्न प्रदेश के राज्यों, सूबेदारों के बीच परस्पर संतुलन बनाए रखने में असफल रहे और पहला संभावित मौका मिलते ही उन्होंने खुद को केंद्र से पथक करने का प्रयास किया। फिर भी हम कह सकते हैं कि यद्यपि मौर्य साम्राज्य का पतन हो गया, परन्तु इस उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में कषि और लौह तकनीकी के प्रसार में इसका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। इसके परिणामस्वरूप मौर्य साम्राज्य के उपरान्त, अनेक क्षेत्रीय राज्यों को पनपने का अवसर मिला।



पाठगत प्रश्न 5.7

1. मौर्य साम्राज्य के पतन के मुख्य कारणों पर प्रकाश डालें?

2. अशोक की मत्यु के उपरांत किन दो शासकों ने दो भागों पर राज किया?

3. मौर्यकालीन शासन का, आगे चलकर भारतीय इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा?

5.8 मौर्य शासन के अधीन भारत

मौर्यों ने प्रशासन की बहुत ही बेहतर पद्धति स्थापित की, जिसमें राजा की मुख्य भूमिका थी। एक मंत्री परिषद उसकी सहायता करती थी, परन्तु प्रशासन से संबंधित सभी मामले जैसे लगान, कानून और व्यवस्था, युद्ध अथवा किसी भी संबंधित विषय में अंतिम निर्णय स्वयं राजा लेता था। उससे आशा की जाती थी कि वह बहुत कुशल हो और हर समय उसके प्रशासन अधिकारियों की पहुंच उस तक बनी रहे। अपने शिलालेखों के एक अभिलेख में उनके द्वारा यह घोषणा की गई है कि सामान्य जनता का कोई भी व्यक्ति किसी भी समय उससे मिल सकता है। उसने यह भी घोषित किया था कि उसकी संपूर्ण प्रजा उसकी संतान के समान है और वह उन सभी की सुख–समद्धि की कामना रखता है न सिर्फ इस संसार में बल्कि मत्यु के उपरान्त दूसरे लोक में भी।

राजा ने मंत्रियों की एक परिषद बनाई थी, जिसे मंत्री परिषद कहते थे और अन्य अनेक अधिकारी थे, जो उसे अपने कर्त्तव्य को निभाने में उसकी सहायता करते थे। इन अधिकारियों को अमात्य, महामात्र और अध्यक्ष कहकर बुलाते थे। अर्थशास्त्र में 27 ऐसे अध्यक्षों अथवा अधीक्षकों की सूची दी गई है, जिनका दायित्व था विभिन्न आर्थिक विभागों जैसे कषि, खनन (खानें), बुनकर और व्यापारिक विभागों के संचालन की देख–रेख करें। इन सभी कार्यकारी कर्मचारियों में से समाहर्त्ता का पद सबसे महत्वपूर्ण था। इसकी ज़िम्मेदारी थी, सभी प्रकार के स्रोतों से किए जाने वाले कर संग्रह की निगरानी करना। ऊपर उल्लिखित अधिकांश अधीक्षक उसके आदेशों पर कार्य करते थे। मौर्यों ने बहुत बड़ी संख्या मे सैनिकों को भी नियुक्त किया था।

मौर्यों के पास एक बहुत विशाल सेना थी और यूनानी लेखक जस्टिन के अनुसार चंद्रगुप्त की सेना में 6,00,000 पैदल सैनिक, 30,000 घुड़सवार, 9,000 हाथी और 8,000 रथ थे। यद्यपि ऐसा लगता है कि यह संख्या बहुत बढ़ा–चढ़ाकर लिखी गई है, परन्तु मौर्यों के पास एक विशाल सेना थी, इसमें कोई संदेह नहीं हैं। मैगास्थनीज ने लिखा है कि सेना की विभिन्न शाखाओं की प्रशासनिक कार्यों की पूर्ति प्रत्येक में पाँच सदस्यों की सदस्यता से गठित पाँच समितियों द्वारा की जाती थी। किलों की सीमाओं की सुरक्षा का दायित्व जिसे दिया गया था, उसे 'अन्तःपाल' कहते थे।

जहाँ तक न्यायिक प्रशासन का संबंध है, राजा सर्वोच्च प्राधिकारी था, परन्तु गाँवों और प्रदेशों के स्तर पर अनेक दीवानी और आपराधिक अदालतें काम करती थीं। ऐसा लगता है कि शायद अधिकांश मामलों का निपटारा गाँव के बुजुर्गों के स्तर पर ही हो जाता था।



आपकी टिप्पणियाँ

मगध की राजधानी पाटलीपुत्र के अतिरिक्त संपूर्ण मौर्य साम्राज्य को चार अन्य प्रदेशों में बांटा गया था, जिनकी राजधानियां थीं तक्षशिला (उत्तर–पश्चिमी भारत), सुवर्णगिरी (दक्षिण भारत), तोसाली (पूर्वी भारत) और उज्जैन (पश्चिमी भारत)। इनका नियंत्रण शाही राजकुमारों के नियंत्रण में रखा गया था, जिन्हें 'कुमार' कहते थे। मेगास्थनीज के अनुसार, पाटलीपुत्र नगर के प्रशासन का संचालन पाँच–पाँच सदस्यों की छह समितियां करती थीं। प्रत्येक समिति को अलग–अलग विषयों का काम सौंपा गया था। जैसे उद्योग, विदेशी, जन्म और मत्यु पंजीकरण, व्यापार और बाज़ार की संचालन व्यवस्था और कर संग्रहण। फिर भी यह स्पष्ट संकेत नहीं मिलता कि संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में इसी प्रकार का नगर प्रशासन चलता था या नहीं। ऐसा लगता है कि केंद्रीय प्रांत मगध का प्रशासन सीधे राजा की कड़ी निगरानी के अधीन संचालित होता था और अन्य दूर–दराज के क्षेत्रों पर अलग–अलग स्तर का प्रशासनिक नियंत्रण होता था।

अर्थव्यवस्था, समाज और कला

जैसा कि ऊपर बताया गया हैं, मौर्यों के पास बड़ी स्थायी सेना थी और बहुत बड़ी संख्या में सरकारी अधिकारियों की व्यवस्था की गई थी। इन सैनिकों और कर्मचारियों को नकद भुगतान किया जाता था, क्योंकि राज्य की सभी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सामान्य करों को पर्याप्त नहीं समझा जाता था, इसलिए ज्यादा से ज्यादा संसाधन पैदा करने के लिए अनेक प्रकार की आर्थिक गतिविधियाँ चलाई जाती थीं।

इस काल में अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार था कषि। मौर्य शासकों ने परती (खाली) भूमि को खेती–बाड़ी के उपयोग में लाने के लिए नए कषि आधारित स्थलों का निर्माण कराया। खेतों में काम करने के लिए अत्यधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों से लोगों और युद्ध बंदियों को यहाँ लाकर बसाया गया। इन गाँवों का स्वामित्व राजा के पास था और जो भी कर्मचारी इनकी देखभाल करते थे उन्हें 'सीताध्यक्ष' अथवा 'कषि अधीक्षक' कहते थे। शासकीय कषि–क्षेत्रों (धर्मों) के अतिरिक्त निजी भू–स्वामी भी थे, जो राज्य को अनेक प्रकार के कर देते थे। सिंचाई के महत्व को सभी भली–भाँति जानते थे और सिंचित भूमि के लिए किसानों को अधिक कर देना पड़ता था। 'बलि' या 'भूमि–कर' लगान का मुख्य अंग था, जो कुल उत्पादन के छठे भाग के बराबर मात्रा की दर से देना होता था। किसानों को और भी अनेक करों का भुगतान करना पड़ता था जैसे 'पिंडकर' हिरण्य, भाग और भोग इत्यादि। इनकी सही प्रकति के संबंध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। प्रमुख फ़सलों में विविध प्रकार की चीजें थीं, जैसे अनेक किस्म के चावल, जौ, जई, बाजरा, गेहूं, गन्ना और अनेक प्रकार की दालें, मटर, तिलहन (तेल देने वाली फ़सलें) जिन्हें हम आज इन्हीं रूपों में पहचानते हैं।

मौर्य शासन काल में व्यापार और अर्थव्यवस्था को बहुत बढ़ावा मिला और इसने साम्राज्य के लगभग सभी भागों पर अपना प्रभाव छोड़ा। वस्त्र उत्पादन के मुख्य केन्द्र थे वाराणसी, मथुरा, बंगाल, गंधार और उज्जैन। खनन और धातु–कर्म एक अन्य महत्त्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि थी। व्यापार का संचालन भू–मार्गों और जलमार्ग दो तरह से होता था। पाटलीपुत्र, अनेक व्यापारिक मार्गों के जरिये इस उपमहाद्वीप के सभी भागों से जुड़ा हुआ था। उत्तर पश्चिम में सबसे बड़ा व्यापारिक केन्द्र था तक्षशिला, जो आगे मध्य एशिया के बाज़ारों से जुड़ा हुआ था। पूर्व में ताम्रलिप्ति (पश्चिम बंगाल में तामलुक) और पश्चिम में भड़ौच बहुत महत्त्वपूर्ण बंदरगाह थे।



शिल्प कार्य भी शासन की आय के बहुत बड़े स्रोत थे। शहरों में रहने वाले कारीगरों को नगद राशि या अन्य किसी चीज़ से या राजा के लिए निःशुल्क कार्य करके कर चुकाना पड़ता था। व्यापारियों और कारीगरों को संगठनों के रूप में व्यवस्थित किया जाता था जिन्हें 'श्रेणियां', या 'गिल्ड' कहा जाता था। इस उपमहाद्वीप में बड़े पैमाने पर लोहे का प्रयोग शुरू करने का श्रेय मौर्यों को जाता है। लोहे के उत्पादन पर मौर्यों का एकछत्र अधिकार था



चित्र 5.3 सारनाथ स्तम्भ



चित्र 5.4 बारबरा की पहाड़ियों में बनी गुफा



चित्र 5.5 दीदारगंज यक्षिणी



आपकी टिप्पणियाँ

क्योंकि सेना, व्यापार और खेती–बाड़ी के क्षेत्रों में लोहे की अत्यधिक मांग रहती थी। यह सारा कारोबार लौह अध्यक्ष नामक शाही कर्मचारी की निगरानी में होता था।

जहाँ तक समाज का संबंध है, बौद्ध धर्म और जैन धर्म द्वारा चुनौती दिए जाने के बावजूद वर्ण व्यवस्था अभी भी मौजूद थी और सामाजिक श्रेणी क्रम में ब्राह्मण और क्षत्रिय अभी भी सर्वोच्च स्थान पर थे। परन्तु अधिकाधिक व्यापार और वाणिज्य के परिणामस्वरूप वैश्यों या व्यापार करने वाली जातियों और शूद्रों के सामाजिक स्तर में भी सुधार हुआ था। शूद्रों को अब कषि और शिल्पकलाओं के कामों में शामिल किया जा सकता था। इस काल में अछूतों की संख्या में भी काफी वद्धि देखने में आई।

मौर्यकाल ने प्राचीन भारतीय कला और वास्तुशिल्प के प्राचीनतम नमूने भारत को उपलब्ध कराए हैं। मैगस्थनीज़ ने पाटलीपुत्र में बने महल की भव्यता का विस्तत विवरण किया है। पटना के पास कुम्हरार में इस महल के कुछ अवशेष मिले हैं। इस काल में विकसित हुई पत्थर की मूर्तियां बनाने की कला के बहुत ही श्रेष्ठ नमूने रामपुरवा, लौरीया, नंदनगढ़ और सारनाथ के अशोक स्तम्भों के रूप में प्राप्त हुए हैं। हमारा राष्ट्रीय चिह्न भी बनारस के पास स्थित सारनाथ के अशोक स्तम्भ से लिया गया है। ये सभी स्तम्भ गोलाकार और एक ही पत्थर को तराश कर बनाए गए हैं और रेतीले पत्थर से बने हैं और उत्तर प्रदेश में मिरज़ापुर के नज़दीक चुनार नामक स्थान पर मिले हैं। मौर्यकाल से संबद्ध कुछ चट्टानों में कटाई करके बनाए गए वास्तु शिल्प के नमूने, जैसे गया के पास बारबरा पहाड़ियों में बनी लोमस ऋषि गुफा, भी हमें मिले हैं। इस काल से संबंधित अनेक पत्थर और मिट्टी के बने मूर्ति शिल्प के नमूने, पॉलिश किए गए। पत्थरों की बनी दीदारगंज यक्षिणी के रूप में जानी जाने वाली एक पत्थर की नारी–मूर्ति, जो हाथ में चौरी रखे हुए है, बहुत ही प्रसिद्ध नमूना है।

पाठगत प्रश्न 5.8

1. करों के मूल्यांकन और संग्रहण के लिए मौर्य काल का कौन–सा अधिकारी ज़िम्मेदार था?

   _____

2. शाही मालिकाना की भूमि पर होने वाली खेती किस अधिकारी की निगरानी में होती थी?

   _____

3. गया के पास बारबरा पहाड़ियों में चट्टान काट कर बनाई गई गुफा का क्या नाम है?

   _____

आपने क्या सीखा

लोहे के औज़ारों और मध्य गंगा के मैदानों में पशु धन के उपयोग के परिणामस्वरूप छठी शताब्दी ईसा पूर्व काल में कषि उत्पादों और खाद्य आपूर्ति में बहुत वद्धि हुई। कषि के इस विकास से शहरों, व्यापार और धन संबंधी अर्थिक नीति में बहुत विकास हुआ। इसीलिए छठी शताब्दी ईसा पूर्व अवधि को 'द्वितीय नगरीकरण' का काल कहा जाता है। इस काल में गैर–वैदिक धर्म जैसे बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने नवीन सामाजिक वास्तविकताओं का प्रत्युत्तर



दिया और यह तर्क दिया कि पशुबलि, महाजनी (धन उधार देना) और शहरी जीवन पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए। उन्होंने व्यापारिक सम्प्रदायों को उच्च सामाजिक स्तर दिए जाने का पक्ष लिया और इसके बदले में उन लोगों ने इन नए धर्मों को संरक्षण दिया। जैन धर्म की प्रमुख शिक्षाएँ हैं 'त्रिरत्न' और 'पंचमहाव्रत', जबकि गौतम बुद्ध ने लोगों को 'चार महान सत्यों' को अपनाने और अष्टमार्ग पर चलने की शिक्षा दी। पूर्व काल के जनपदों को संगठित किया गया, जिसके परिणामस्वरूप सोलह महाजनपदों का उद्‌भव हुआ। कुछ जनपदों में राजतंत्रीय शासकीय व्यवस्था लागू थी। अन्त में मगध के महत्त्वाकांक्षी शासकों द्वारा अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियों का उपयोग करने के कारण एक विशाल साम्राज्य का उद्‌भव हुआ। बाद में मौर्यों ने नंद राजवंश को उखाड़ फेंका और अपना साम्राज्य स्थापित किया। उनके पास एक उच्च कोटि का व्यवस्थित अधिकारी–तंत्र (नौकरशाही) था जिसमें एक विशाल सैनिक बल शामिल था और उन्होंने इस उपमहाद्वीप के बहुत बड़े भू–भाग पर शासन किया। भारत के महानतम शासकों में से शासक अशोक ने 'धम्म' के सिद्धांतों को अपनाया, जिसका उद्‌देश्य था साम्राज्य का संगठन और आंतरिक मतभेदों को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाया जाए। अशोक की मत्यु के उपरान्त मौर्य साम्राज्य का पतन हो गया, जिसका कारण था उसके बाद के शासकों की अयोग्यता और साम्राज्य के केंद्र और सीमांत के प्रदेशों में संबंधों में अस्थिरता का पनपना।

पाठांत प्रश्न

1. वैश्यों ने बौद्ध धर्म और जैन धर्म का संरक्षण क्यों किया?
2. जैन और बौद्ध धर्म की प्रमुख शिक्षाएँ क्या हैं?
3. अशोक की धम्म–नीति की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?
4. अशोक ने धम्म की नीति का अनुपालन क्यों किया?
5. अत्यधिक कर एकत्रित करने के लिए मौर्यों ने कौन–कौन से प्रयास किए?
6. कला के क्षेत्र में मौर्यों के योगदान का विस्तत विवरण दें?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

5.1

1. जखेड़ा, राजघाट, कौशाम्बी, वैशाली और सोनपुर
2. देखें अनुच्छेद 5.1 – 3
3. देखें अनुच्छेद 5.1 – 4
4. मखाली घोषाल

5.2

1. उचित विश्वास, उचित ज्ञान और उचित व्यवहार



आपकी टिप्पणियाँ

2. दिगम्बर और श्वेताम्बर
3. सारनाथ
4. देखें अनुच्छेद 5.2 – 4
5. देखें अनुच्छेद 5.2 – 4
6. पालि
7. देखें अनुच्छेद 5.2 – 7
8. देखें अनुच्छेद 5.2 – 8

5.3

1. देखें अनुच्छेद 5.3 (तालिका 5.1)
2. देखें 5.3, अनुच्छेद 2
3. वैशाली

5.4

1. देखें अनुच्छेद 5.4 – 1
2. देखें अनुच्छेद 5.2 – 6
3. गिरिव्रज या राजगीर
4. प्रसेनजित और चेतक
5. महापद्मानंद
6. कालाशोक

5.5

1. देखें अनुच्छेद 5.5 – 1
2. प्राकत और ब्राह्मी
3. मैगस्थनीज़
4. बहद्रथ

5.6

1. देखें अनुच्छेद 1
2. देखें अनुच्छेद 2
3. ब्राहमणों और अन्य सभी प्रकार के भिक्षुओं की देखभाल

5.7

1. देखें अनुच्छेद 5.7



2. दशरथ और सम्प्रति
3. इससे लौह–तकनीकी और कषि का विस्तार हुआ, जिससे भारत में अनेक क्षेत्रीय राज्यों का उद्‌भव हुआ।

5.8

1. समाहर्त्ता
2. सीताध्यक्ष
3. गया के पास लोमासा ऋषि गुफा

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. देखें अनुच्छेद 5.1 – 5
2. देखें अनुच्छेद 5.2 – 1 और 4
3. देखें अनुच्छेद 5.6 – 1
4. शिलालेख। देखें अनुच्छेद 5.6 – 2
5. देखें अनुच्छेद 5.8 – 2 और 3 (अर्थव्यवस्था, समाज और कला)
6. देखें अनुच्छेद 5.8

शब्दावली

जातक - बुद्ध के पिछले जन्मों से संबद्ध बौद्ध कहानियों का संग्रह
तीर्थंकर - जैन धर्म में तीर्थकर की परंपरा; शाब्दिक अर्थ 'मोक्षदाता'
निर्वाण - मानव इच्छाओं से मुक्ति।
दिगम्बर - 'निर्वस्त्र', जैन धर्म की एक शाखा (सम्प्रदाय) जिसमें नग्न रहते हैं।
श्वेतांबर - जैन धर्म की एक शाखा (सम्प्रदाय) जिसके अनुयायी सफेद वस्त्र पहनते हैं।
महायान - बौद्ध धर्म की एक शाखा जिसमें बुद्ध की प्रतिमा की पूजा की जाती है।
हीनयान - बौद्ध धर्म की एक शाखा जिसमें बुद्ध की मूल शिक्षाओं को अपनाने पर बल दिया।
समाज - धार्मिक और आनंदित लोगो की सभा
धम्म महाआमात्य - अशोक द्वारा नियुक्त अधिकारी जिसका काम था समाज में धम्म के सिद्धांतों के अनुपालन पर निगरानी रखना।
चौरी - बालों से बना एक पंखा (चंवर) जिसे किसी राजा या धार्मिक वस्तु के ऊपर आगे–पीछे डुलाया जाता है।

विषय-सूची

मॉडयूल 3	आधुनिक भारत	
पाठ 16	भारत में ब्रिटिश शासन का संस्थापन 1857 तक	1
पाठ 17	ब्रिटिश उपनिवेशवाद का आर्थिक प्रभाव	19
पाठ 18	आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन	31
पाठ 19	कंपनी शासन का जन विरोध	48
मॉडयूल 4	भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन तथा तत्कालीन भारत	
पाठ 20	राष्ट्रवाद	59
पाठ 21	राष्ट्रीय आंदोलन तथा भारतीय प्रजातंत्र	72
मॉडयूल 5	20वीं शताब्दी का विश्व	
पाठ 22	19वीं शताब्दी का महत्त्व	98
पाठ 23	प्रथम विश्व युद्ध तथा रूसी क्रांति	112
पाठ 24	दोनों विश्व युद्धों के अंतराल का समय व द्वितीय विश्व युद्ध	125
पाठ 25	शीत युद्ध व उसके प्रभाव	148
पाठ 26	राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन	166
पाठ 27	20वीं शताब्दी में सामाजिक रूपांतरण	182
पाठ 28	20वीं शताब्दी में परिवर्तन	193

■ प्रतिक्रिया पत्र



16

भारत में ब्रिटिश शासन का संस्थापन 1857 तक

भारत में अंग्रेजों के औपचारिक शासन से पूर्व भारतीय–यूरोपीय आर्थिक संबंध भी पृष्ठ–भूमि में थे। अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी, जिसे कभी–कभी जॉन कंपनी भी कहा जाता था। सन् 1600 में स्थापित संयुक्त शेयर कम्पनी थी जिसे लंदन के उन व्यापारियों ने स्थापित किया था जो ईस्ट इण्डीज में व्यापार करते थे। इस दौरान अन्य व्यवसायिक कंपनियाँ जैसे पुर्तगाली, डच, फ्राँस, डेनमार्क भी, भारत में अपने प्रभुत्व का विस्तार कर रही थीं। भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अपने पाँव पसारने का मौका सन् 1612 में प्राप्त हुआ जब तत्कालीन मुगल बादशाह जहाँगीर ने ब्रिटेन की महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम के राजदूत, सर टॉमसरो को सूरत में एक व्यापारिक केन्द्र स्थापित करने का अधिकार दिया। भारत में अंग्रेजीं राज की औपचारिक शुरुआत सन् 1757 में प्लासी के युद्ध के पश्चात् मानी जाती है जब बंगाल के नबाव ने अपने क्षेत्र को अंग्रेजों को समर्पित कर दिया था। इसके पश्चात् एक व्यापारिक कम्पनी धीरे–धीरे राजनीतिक शक्ति में बदलती गई जिसने बाद में भारत में शासन किया। अब उसके पास सहायक सरकार तथा सैन्य शक्तिया थी, जो सन् 1858 में इसके विघटन तक रही, जब अंग्रेजी सरकार ने भारत सरकार अधिनियम 1858 के तहत भारत को अंग्रेजीं सरकार के अधीन कर दिया।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप:

- भारत में राजनीतिक एवं व्यावसायिक क्षेत्र में यूरोपीय साझेदारियों को जान सकेंगे।
- 18वीं शताब्दी में अंग्रेजों एवं फ्रांसीसियों के मध्य संघर्ष के कारणों को पहचान सकेंगे।
- बंगाल में अंग्रेजीं शक्ति के उदय को जान सकेंगे।
- भारत में अंग्रेजीं शक्ति के विस्तार को जान सकेंगे।
- लार्ड वैलेसले द्वारा की गई सहायक संधियों को जान सकेंगे।
- लार्ड डलहौज़ी द्वारा आरम्भ की गई विलय नीति का अध्ययन करके, भारत में अंग्रेजीं शासन के विस्तार के कारणों को जान सकेंगे।



आपकी टिप्पणियाँ

16.1 एशिया के साथ यूरोपीय पूर्वी व्यापार का नया चरण

सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में व्यापारिक मार्गों पर अधिकार स्थापित करने के बावजूद यूरोपीय उस मूल भूत ढाँचे को सुलझा न सके जो बरसों से भारत तथा पश्चिम के साथ व्यापार में चलता चला आ रहा था। यूरोप में भारतीय वस्तुओं की मांग, भारत में यूरोपीय वस्तुओं की माँग की तुलना में कहीं ज़्यादा थी। व्यापारी यूरोप में भारतीय वस्तुओं को बेचकर भारी मुनाफ़ा कमा रहे थे, क्योंकि यूरोपीय वस्तुओं की तुलना में भारतीय वस्तुएं उत्कृष्ट गुणवत्ता तथा कम मूल्य की थीं। इसके फलस्वरूप भारत में यूरोप का धन आने लगा तथा इसने उन यूरोपीय व्यापारियों के समक्ष कड़ी प्रतिद्वन्दिता प्रस्तुत की जो न तो मूल्यों के साथ समता कर सकते थे और न ही भारतीय वस्तुओं की गुणवत्ता का मुकाबला कर सकते थे।

वास्तव में अपनी स्थापना के पहले 50 वर्षों तक अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रुचि उपनिवेश के विकास में न होकर व्यापार में ही लगे रहने की थी जैसा कि पुर्तगालियों ने अपना ढाँचा स्थापित किया था। इस ढाँचे में 1650 ई. में बदलाव आया जब पुराने राजभक्त अंग्रेजी वफादार व्यापारियों की शक्ति छिन्न–भिन्न हो गई तथा व्यापारियों के एक नए वर्ग ने कम्पनी पर अधिकार जमा लिया। उन्होंने अमेरिका तथा वेस्ट इण्डीज़ में उपनिवेशवादी व्यापारियों द्वारा स्थापित ढाँचे का अनुसरण किया तथा इंग्लैण्ड, अफ्रीका तथा भारत को आपस में जोड़ दिया तथा उपनिवेशिक बस्तियों का जालतंत्र बिछा कर परस्पर संबंधों का जटिल जालतंत्र विकसित किया।

18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगल वंश पतन होने लगा। हालांकि इस राजनैतिक निर्वात को बंगाल, हैदराबाद, अवध, पंजाब तथा मराठा वंश जैसी क्षेत्रीय शक्तियों ने भर दिया। किन्तु ये शक्तियाँ भारत में राजनीतिक स्थिरता का माहौल नहीं बना पाई तथा इसने सत्तालोलुप अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत में अपने पैर पसारने के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान किया। अब भारत में शासन करने के लिए औपनिवेशिक मशीनरी के माध्यम से संस्थानों तथा नियमों की आवश्यकता थी। उन्होंने अंग्रेजी साम्राज्य विस्तार के लिए 3 तरीकों को अपनाया। वे थे (i) युद्ध एवं विजय (ii) सहायक सन्धि प्रणाली तथा (iii) विलेय की नीति को अपना कर क्षेत्रों का अधिग्रहण। आरम्भिक तरीके पूर्णतया सैन्य अभियान अथवा राज्यों का प्रत्यक्ष अधिग्रहण था, ये वे क्षेत्र थे जिन्हें पूर्ण रूप से अंग्रेजों का भारत कहा जाता था। कालांतर में कूटनीतिक तौर से अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए स्थानीय शासकों से समझौते तथा संधियाँ भी की गई।

पाठगत प्रश्न 16.1

1. भारत में अपना शासन स्थापित करने के लिए अंग्रेजों ने कौन से तरीके अपनाए?

2. 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत की प्रमुख क्षेत्रीय राज्यों का नाम लिखें?

16.2 दक्षिण भारत में आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष

अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सिर्फ दो ही यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियाँ भारत में थी। वे अंग्रेजी एवं फ्रांसीसी कम्पनियाँ थीं जो भारतीय संसाधनों का दोहन कर रही थीं। आंग्ल–फ्रांसीसी शत्रुता ने तीन कर्नाटक युद्धों का रूप लेकर अठारहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत में अंग्रेजों की विजय के रूप में एक युगांतकारी घटना को जन्म दिया। अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वे फ्रांसीसियों को इस क्षेत्र से समाप्त कर दें। यूरोप में सात वर्षीय युद्ध (1756 1763) के परिणाम स्वरूप भारत में भी अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी संस्थान आम प्रतिद्वन्दिता में शामिल हो गए। वांडीवाश के मैदान में तीसरे कर्नाटक युद्ध में फ्रांसीसियों को पराजित कर अंग्रेजों ने एक शताब्दी पुराने संघर्ष पर विराम लगा दिया। इस विजय ने अंग्रेजी व्यापारिक कम्पनी को अन्य यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के मुकाबले कहीं ऊँची स्थिति प्रदान की। सर आईर कूट द्वारा वांडी वॉश के युद्ध में 1760 में फ्रांसिसियों का दमन किया गया तथा पांडिचेरी को अगले वर्ष अंग्रेजी राज्य का हिस्सा बनाया गया। दक्षिण में डुप्लीकस तथा बसी के द्वारा किए गए कार्य 1760–61 में नष्ट हो गए : भारत में फ्रांसीसी सम्पत्ति पेरिस की संधि–(1763) द्वारा पुनः लौटा दी गई। इस झगड़े को लंदन मे सुलझाकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पक्ष में निर्णय दिया गया क्योंकि भारत में उनके पास थीं शक्तिशाली नौसेना, प्रगतिशील सैन्य शक्ति, तथा उत्कृष्ट नेतृत्व, इंग्लैंड की सरकार द्वारा मिलने वाला सहयोग तथा बंगाल में नियंत्रण के फलस्वरूप मिले संसाधन। कर्नाटक के संघर्षों की घटनाओं का नतीजा यह हुआ कि भारतीय क्षेत्रीय शक्तियों की दुर्बलताएँ (विशेषकर विशाल सेना के बावजूद छोटी यूरोपीय शक्तियों से निपटने में अक्षमता तथा नौ सैनिक अभियान चलाने में असमर्थता) स्पष्ट हो गई तथा 18वीं शताब्दी के शेष इतिहास पर उसने गंभीर प्रभाव डाला।

पाठगत प्रश्न 16.2

1. तीसरे कर्नाटक संघर्ष के दौरान कौन से युद्ध ने एक शताब्दी पूर्व के अंग्रेज तथा फ्रांसीसी वर्चस्व के विवाद पर विराम लगाया?

   _____

2. कर्नाटक संघर्षो के परिणामों पर विचार कीजिए?

   _____

3. कर्नाटक युद्ध के संघर्ष में अंग्रेजों की सफलता के क्या कारण थे?

   _____

16.3 बंगाल पर अंग्रेजों का अधिकारः प्लासी से बक्सर तक (1757-1765)

किसी प्रमुख भारतीय शक्ति के साथ अंग्रेजों का प्रथम संघर्ष बंगाल का संघर्ष था। 1757 से 1763 के बीच का इतिहास नबावों द्वारा अंग्रेजों को धीरे–धीरे सत्ता के हस्तांतरण का इतिहास है। आठ वर्षो की इस छोटी सी अवधि में, तीन सुल्तानों, सिराज–उद–दौला,



आपकी टिप्पणियाँ

मीर–जाफ़र तथा मीर कासिम नें बंगाल पर शासन किया किन्तु वे नवाबों की प्रभूसत्ता बनाए रखने में असफल रहे। अंततः नबावों के हाथों से फिसलकर सत्ता अंग्रेजों के हाथों में चली गई। व्यापार में एशियाई व्यापारियों के साथ मुकाबला करने में अक्षम रहे अंग्रेजी व्यापारियों ने शक्ति पर ज़ोर दिया तथा प्लासी विद्रोह के जरिए 1757 में बंगाल पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया। नतीजा यह हुआ कि बंगाल में विजय तो प्राप्त की जिसे वह अपनी सेना के प्रयोग के लिए इस्तेमाल करना चाहते थे परन्तु जिस व्यापार के लिए वह सब कुछ करने को लालायित थे उसी व्यापार का पतन हो गया। जब सिराजुद–दौला 1756 में अली वर्दी खान के उत्तराधिकारी के रूप में बंगाल की गद्दी पर बैठा तो व्यापारिक विशेषाधिकार तथा कम्पनी द्वारा उसका दुरुप्रयोग पहले ही संघर्ष का मुद्दा बन चुका था। कम्पनी को मुगल बादशाह फ़रुखसियार द्वारा उनके आयात एवं निर्यात के लिए कुछ विशेषाधिकार मिले हुए थे। इस शाही फ़रमान के मुताबिक कम्पनी को मात्र 3,000 रु. चुकाने थे तथा इसके बदले में वे बंगाल में कर मुक्त व्यापार कर सकते थे। कम्पनी के कर्मचारियों ने इस विशेषाधिकार का प्रयोग तटवर्तीय व्यापार के लिए करना प्रारम्भ कर दिया था, अंतः एशियाई तथा आखिर में अंतर्देशीय व्यापार में भी इस फरमान का स्पष्ट उल्लंघन था। नवाब की अनुमति के बगैर कलकत्ते के आसपास दुर्ग का निर्माण, नवाब के अधिकारों को चुनौती देना तथा उनके शत्रुओं को प्रश्रय देने की घटनाओं ने नवाब को कम्पनी के प्रति उकसाने का कार्य किया। कम्पनी के अधिकारियों को यह भी संदेह था कि नबाव बंगाल में फ्रांसीसियों के साथ संधि की तैयारी में है। कलकत्ता पर सिराजुद्दौला के आक्रमण को एक प्रारंभिक विराध संघर्ष के रूप में देखा गया। अंग्रेजी प्रतिक्रिया प्रारंभ हुई नबाव के खिलाफ षड्यंत्र रचने से जिसमें नवाब के करीबी राय दुर्लभ, अमीर चन्द, मीर–जाफ़र तथा जगत सेठ शामिल थे। अतः 1757 में अंग्रेजों की प्लासी युद्ध (23 जून 1757) में विजय पूर्व निर्धारित थी। यह सैन्य शक्तियों की श्रेष्ठता नहीं थी बल्कि वह षड्यन्त्र था जिसने अंग्रेजों को युद्ध जीतने में मदद की। अंग्रेजों की मदद करने के एवज में नबाव के सेनापति मीर--ज़ाफर को क्लाइव नवाब का पद दिया गया। मीर–ज़ाफर ने कंपनी को उपहार स्वरूप एक करोड़ सत्तर लाख रू.(1,77,00,000) की धनराशि उपहार में दी तथा कम्पनी अधिकारियों को रिश्वत के रूप में काफी धन दिया। किंतु मीरज़ाफर कम्पनी के अधिकारियों की बढ़ती मांगों को पूरा करने में असफल रहा तथा अंग्रेजों को भी डच कम्पनी के प्रति बढ़ती उसकी नज़दीकियों के प्रति संशय था। प्लासी के युद्ध के बाद नबाव बना सिराजुद्दौला को 1760 में गद्दी से उतार दिया गया तथा अंग्रेजों द्वारा मीर कासिम को इस उम्मीद में गद्दी सौंपी गई कि वह उनकी आर्थिक जरूरतों की पूर्ति करेगा। नए नवाब ने उनकी सहायता के बदले कम्पनी को उनके सैन्य खर्चों के लिए वर्द्धमान, मिदनापुर तथा चित्तागोंग का अधिकार दे दिया। इस सन्धि ने अंग्रेजी सेना की फ्रांसीसी सेना के विरूद्ध अभियान में सहायता की (1760–61), मीर कासिम द्वारा दी गई राशि से कलकत्ता परिषद को दक्षिणी युद्ध में वित्तीय सहायता मिली। नवाब को एक बेहतर प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित करने में सफलता प्राप्त हुई किन्तु विशेषाधिकारों के मसले पर जैसे कि कम्पनी द्वारा कर मुक्त निजी व्यापार के मुद्दे पर टकराव होने लगा। प्रत्युत्तर में मीर कासिम ने दो वर्षों के लिए भारतीय तथा अंग्रेजी व्यापार को कर मुक्त कर दिया। इस कदम ने अंग्रेजों के विशेषाधिकार पर चोट की जो उन्होंने खुद के लिए संरक्षित कर रखे थे। वे बराबर शर्तों पर भारतीय उत्पाद का मुकाबला नहीं कर सके। नवाब द्वारा सेना को संगठित करने का प्रयत्न तथा मुर्शिदाबाद से मुंगेर राजधानी स्थानान्तरण को भी कम्पनी के प्रति अपराध के रूप में देखा गया।

जून 1763 में मेजर ऐडमस के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना ने बंगाल के नवाब मीर कासिम को पराजित कर दिया। मीरकासिम पटना भाग गया तथा बादशाह शाह आलम द्वितीय एवं शुजा–उद–दौला (जो अवध का नवाब तथा मुगल सल्तनत का वज़ीर था) से सहायता तक ली। झगड़ा एक शिखर तक पहुँच गया जब पटना में कम्पनी के अधिकारियों ने पटना पर आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास किया। यह युद्ध का कारण बना। मीरकासिम एक कुशल प्रशासक तो था परन्तु एक योग्य एवं कुशल सेनापति नहीं

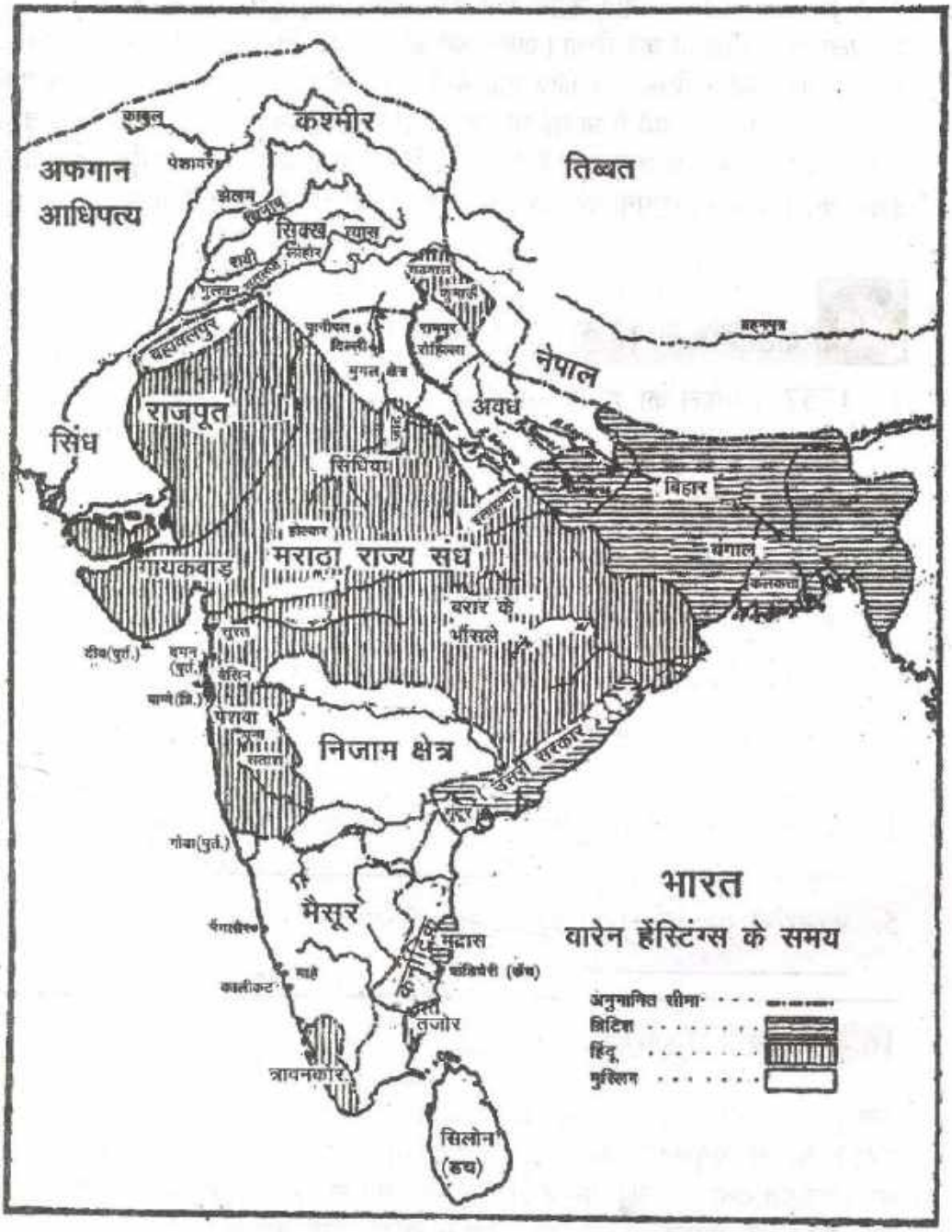

मानचित्र 16.1 भारत 1783 में



आपकी टिप्पणियाँ

था। अतः उसकी सेना पराजित हुई। जब वह अवध की ओर पलायन करने को बाध्य हुआ तो शाहआलम द्वितीय तथा नवाब वज़ीर अपनी रियासत के पूर्वी सूबों के बचाव में आए। यह संघर्ष पटना तक बढ़ा तथा 22 अक्टूबर 1764 में बक्सर का युद्ध लड़ा गया। बक्सर में भारी विजय के पश्चात् अंग्रेजी सेना अवध की ओर बढ़ी। नवाब वज़ीर रोहिला क्षेत्र की ओर भाग गया किन्तु शाह आलम द्वितीय ने अंग्रेजों से संधि कर लीं। बंगाल के तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर लार्ड क्लाइव ने इलाहाबाद की संधि अवध के नवाब वज़ीर शुजा–उद्–दौला से की जिसके तहत उसे युद्ध के खर्चों के रूप में 50 लाख रुपए का भुगतान कम्पनी को करना था, जिसके पश्चात् उसके क्षेत्र उसे वापस मिल जाते। उसने कम्पनी के साथ यह रक्षात्मक समझौता कर लिया। अवध अब अंग्रेजों के लिए मध्यवर्ती राज्य बन गया। शाह आलम द्वितीय दिल्ली के लिए एक भगौड़ा था तथा दिल्ली अब रोहिल्ला शासक नजीब–उद–दौला के हाथों में आ गई थी। अंग्रेजों ने शाह आलम द्वितीय को **कड़ा** किया तथा इलाहाबाद का क्षेत्र दिया तथा कम्पनी ने बंगाल, बिहार, तथा उड़ीसा की दीवानी प्रदान की। इसके बदले में उसने कम्पनी को 26 लाख रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया।

पाठगत प्रश्न 16.3

1. 1757 में बंगाल का शासक था :

   (क) शुजा–उद–दौला (ख) सिराज़–उद–दौला

   (ग) मीर कासिम (घ) मीर ज़ाफर

2. प्लासी का युद्ध कब लड़ा गया–

   (क) सन् 1757 में (ख) सन् 1764 में

   (ग) सन् 1765 में (घ) सन् 1771 में

3. प्लासी के युद्ध के क्या कारण थे?

   _____

4. मीर ज़ाफर को हटाने के पश्चात् 1760 में बंगाल का नवाब कौन बना?

   _____

5. बक्सर के युद्ध के कारणों का उल्लेख कीजिए।

   _____

16.4 बंगाल में दोहरी शासन प्रणाली

बंगाल में कम्पनी शासन स्थापना की आरंभिक अवस्था में मुगल साम्राज्य की प्रशासन पद्धति का ही अनुसरण किया। मुगल प्रशासन मुख्यतः दो विभागों में कार्य करता था–निज़ामत तथा दीवानी। व्यापक अर्थों में निज़ामत से अर्थ कानून व्यवस्था एवं प्रशासन तथा फौजदारी मामलों से था तथा दीवानी राजस्व प्रशासन तथा नागरिक कानून से संबंधित थी।



आपकी टिप्पणियाँ

प्रान्तीय सूबेदार निज़ामत का प्रभारी हुआ करता था (उसे नज़ीम भी कहा जाता था) तथा दीवान राजस्व प्रशासन का प्रभारी हुआ करता था। इलाहाबाद की संधि–के उपरांत अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कंपनी को बंगाल का दीवान बनाया गया किन्तु लार्ड क्लाइव ने बंगाल शासन पर प्रत्यक्ष नियंत्रण न लेना ही पसन्द किया। यह जिम्मेदारी नवाब के नायब दीवान तथा नायब नज़ीम मुहम्मद रज़ां खान को सौंपी गई। नायब नज़ीम के तौर पर वह नवाब का प्रतिनिधि था वहीं नायब दीवान के नाते वह कम्पनी का प्रतिनिधित्व भी करता था। इस प्रकार नवाब को ही दीवानी तथा फौज़दारी दोनों ही कानूनों को देखना पड़ता था। हाँलाकि उसे अपना कार्य मुहम्मद रज़ा खान के माध्यम से करना था जो अंग्रेजी कम्पनी के नियंत्रण, निर्देशन तथा निरीक्षण में था। दीवान के तौर पर कम्पनी राजस्व की वसूली प्रत्यक्ष किया करती थी जबकि उप–निज़ाम की नियुक्ति के अधिकार द्वारा वह निज़ामत अर्थात पुलिस/न्यायिक शक्तियों पर नियंत्रण रखती थी। इस व्यवस्था को शासन की दोहरी प्रणाली के रूप से जाना गया। इस प्रणाली के तहत अंग्रेजों के पास बिना किसी ज़िम्मेदारी के शक्ति और संसाधन थे वहीं नवाब के पास बिना शक्ति के शासन चलाने की ज़िम्मेदारी थी। इस प्रकार कुशासन का पूर्ण उत्तरदायित्व नवाब का ही होता था। मुगल बादशाह को अदा की जाने वाली मामूली राशि के बदले में एकत्र राजस्व कम्पनी की आय का एक अनन्य साधन रहा।

पाठगत प्रश्न 16.4

1. निज़ामत तथा दीवानी को स्पष्ट कीजिए।

2. दोहरी शासन प्रणाली से क्या तात्पर्य है?

3. लॉर्ड क्लाइव ने दोहरी या द्वैद्यात्मक शासन पद्धति की शुरुआत क्यों की?

16.5 विस्तार की विचारधारा-साधन और तरीके

एक व्यापारिक कम्पनी की भूमिका से बदल कर अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी धीरे–धीरे भारत में सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति बन गई। कई अन्य क्षेत्रीय शक्तियाँ भी अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधीन हो गई थी। अठारवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मैसूर (आधुनिक कर्नाटक) के महान् शासक हैदर अली तथा उसके पुत्र टीपू सुल्तान ने अंग्रेजी फौज की नाक में दम किए रखा। हैदर अली सन् 1749 से मैसूर की सेना का सेनापति था। 1761 ई0 में वह मैसूर का शासक बना। सन् 1781 में सर आयर कूटी के हाथों पराजित होने तक हैदर ने कम्पनी के खिलाफ अपना संघर्ष जारी रखा। अंततः सन् 1799 में टीपू सुल्तान की वीरगति के पश्चात् मैसूर पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया। सन् 1772 से 1818 के दौरान हुए अंग्रेज–मराठा युद्ध के चलते मराठा साम्राज्य की शक्ति भी धीरे–धीरे क्षीण होती गई तथा अंत में कुछ मराठा क्षेत्र भी अंग्रेजों के कब्ज़े



आपकी टिप्पणियाँ

में चले गए। मराठा तथा मैसूर के अभियानों के दौरान आर्थर वेलेज़ली के नेतृत्व में अंग्रेजों ने पूरे दक्षिण भारत (कुछ फ्रांसीसी तथा स्थानीय शासकों की बस्तियों के अतिरिक्त), पश्चिमी भारत तथा पूर्वी भारत के भूभाग पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था।

दूसरा तरीका अंग्रेजों तथा स्थानीय शासकों के बीच हुई सहायक संधियों (सनद) का था। इस योजना के चलते आने वाले समय में देशी रियासतों का निर्माण किया गया। सन् 1798 तथा उसके बाद लॉर्ड वेलेज़ली द्वारा सहायक संधि का प्रस्ताव लाया गया। इस संधि के अंतर्गत, अंग्रेजों ने भारतीय रियासतों की बाहरी खतरों तथा आंतरिक विवादों से रक्षा करना स्वीकार किया। जिसके बदले में इस संधि को अपनाने वाले भारतीय शासकों को अंग्रेजी सैन्य दलों की छावनी बनानी थी तथा उसकी देखभाल के लिए उन्हें अंग्रेजों को आर्थिक सहायता प्रदान करनी थी। इस संधि पर हस्ताक्षर करने वाला शासक अंग्रेजों की पूर्वानुमति के बगैर न तो कोई और संधि कर सकता था न ही किसी युद्ध में भाग ले सकता था। इन राज्यों में एक अंग्रेज पदाधिकारी (रेज़ीडेण्ट) की नियुक्ति होती थी जो राज्य के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकता था। यह व्यवस्था अंग्रेजी विस्तार के लिए वरदान सिद्ध हुई क्योंकि बिना एक भी पैसा खर्च किए अंग्रेजों के पास विशाल सेना उपलब्ध हो गई थी। यहाँ तक कि इस व्यवस्था ने भारतीय दरबार से विदेशी प्रभाव को भी बाहर निकाल दिया। इस संधि में शामिल होने वाला पहला राज्य हैदराबाद था जिसके निज़ाम ने सन् 1798 में इस संधि पर हस्ताक्षर किए। वह अपने दरबार से फ्रांसीसी अधिकारियों को निकालने तथा उनके स्थान पर अंग्रेजी अधिकारियों की नियुक्ति करने को बाध्य हुआ। उसने अंग्रेजी सेना के रखरखाव के लिए बेल्लारी तथा कुडप्पा क्षेत्र अंग्रेजों को प्रदान कर दिये। इस संधि ने महाराजाओं एवं नवाबों की देशी रियासतों का निर्माण किया। इनमें मुख्य थे–कोचीन (1791 जयपुर (1794), त्रावणकोर (1795), हैदराबाद (1798) तथा मैसूर (1799)। जीतें हुए राज्यों में शामिल था उत्तर– पश्चिमी भूभाग (रोहिलखण्ड, गोरखपुर तथा दोआब) 1801, दिल्ली (1803) तथा सिंध (1843)। सन् 1849 में आंग्ल–सिख युद्ध के उपरान्त पंजाब, उत्तर–पश्चिमी सीमा क्षेत्र तथा कश्मीर जीत लिए गए। अमृतसर की संधि (1850) के तहत् कश्मीर–जम्मू डोगरा वंश को बेच दिया गया तथा इस प्रकार वह भी राजसी रियासत हो गया। सन् 1854 में बेरार तथा 2 वर्ष उपरान्त अवध का राज्य भी अंग्रेजी राज्य का हिस्सा बन गया था। सहायक संधि व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य नए राज्यों को अपने नियन्त्रण में लाना तथा फ्रांसीसी शक्ति को घटाना था जिससे अंग्रेज भारत की प्रमुख राजनीतिक शक्ति बन सके।

अंग्रेजों के अधीन होने वाला अन्तिम राज्य पंजाब था जो 1849 में अंग्रेजी राज का हिस्सा बना। यहाँ महाराजा रणजीत सिंह का शासन था जिन्होंने विभिन्न सिक्ख मिसलों को एक राज्य में संगठित कर लिया तथा उन्होंने प्रशासन की आधुनिक पद्धति की स्थापना की थी। उसकी सेना अंग्रेजी सेना के बाद एशिया की दूसरी सबसे बड़ी संगठित सेना थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने महाराजा रणजीत सिंह के साथ दोस्ताना संबंध कायम किये। किन्तु 1839 में उनकी मृत्यु के एक दशक के भीतर ही 2 अंग्रेज–सिख युद्ध हुए तथा अंततः 1849 में पंजाब भी अंग्रेजी राज्य का हिस्सा बन गया।

राज्य विलेय नीति लॉर्ड डलहौजी (जो कि भारत में 1848 से 1856 तक कम्पनी का गवर्नर था) द्वारा लाई गई अधिग्रहण नीति थी। उन दिनों भारतीय राजाओं में प्राकृतिक उत्तराधिकारी, अर्थात् पुत्र के न होने की स्थिति में अपने राज्य की सुरक्षा के लिए बच्चा

गोद लेने का चलन था। (दत्तक पुत्र गोद लेने का चलन था।) किन्तु राज्य विलेय नीति के तहत् कोई भी भारतीय राज्य जो या तो अंग्रेजी राज्य के अधीन था या उसके द्वारा ब्रिटिश अधिनिस्थ प्रणाली के सहायक राज्य के रूप में निर्मित थे, वे शासक के अक्षम होने की स्थिति या उसके पुत्र न होने की स्थिति में ब्रिटिश राज्य के अधीन हो जाएंगे। इस प्रकार भारतीयों द्वारा उत्तराधिकारी न होने की स्थिति में उत्तराधिकारी चयन करने की सर्वोच्चता को ही समाप्त नहीं किया बल्कि अंग्रेजों ने भारतीय शासकों की क्षमताओं को आँकने का भी अधिकार हासिल कर लिया।



मानचित्र 16.2 भारत 1797–1805

HINDI BOOK 2

चूंकि की इस नीति के लागू करने के साथ ही अंग्रेजों ने इस उपमहाद्वीप पर पूर्ण तथा प्रभावी प्रशासनिक नियंत्रण स्थापित कर लिया। इस सिद्धान्त के उपयोग द्वारा सतारा, जयपुर, संभलपुर, नागपुर तथा झाँसी जैसी रियासतों को अंग्रेजों ने विलेय कर लिया था। अक्सर अंग्रेजों द्वारा किये गये रियासतों के अधिग्रहण को न्यायसंगत ठहराया जाता था कि शासक अयोग्य है तथा प्रजा के कल्याण के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी को निभा नहीं पा रहा है जैसा कि अवध के नवाब के साथ 1850 में किया गया।

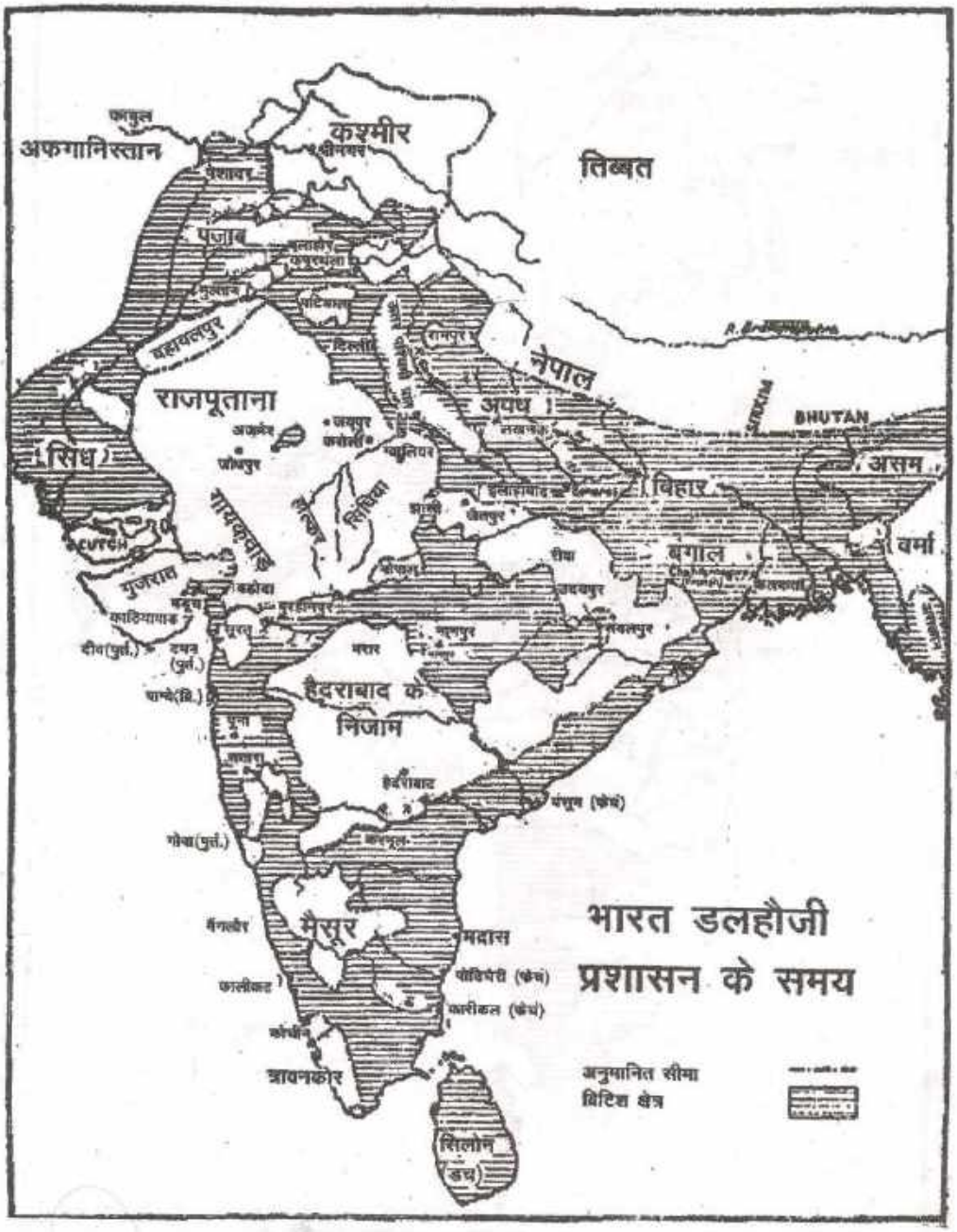

मानचित्र 16.3 भारत–1857



आपकी टिप्पणियाँ

पाठगत प्रश्न 16.5

1. भारत में अंग्रेजी राज्य के विस्तार के लिए लॉर्ड वेलेज़ली द्वारा कौन से उपाय किये गये।

2. सहायक संधि से आप क्या समझते है?

3. लॉर्ड डलहौजी की राज्य विलेय नीति को स्पष्ट कीजिए।

16.6 औपनिवेशिक प्रशासनिक प्रणाली का विकास

सन् 1757 में कम्पनी के एक बड़ी राजनीतिक शक्ति के रूप में स्थापित होने के पश्चात् संवैधानिक परिवर्तनों की आवश्यकता महसूस हुई। कम्पनी के मामलों को अनियंत्रित छोड़ने में अब अंग्रेजी सरकार इच्छुक नहीं थी। व्यापारियों तथा उत्पादकों की तरफ से कम्पनी का एकाधिकार समाप्त करने का दबाव बढ़ता ही जा रहा था। सरकार द्वारा बंगाल में फैलाए भ्रष्टाचार को लेकर जनता आक्रोश में थी। मुक्त व्यापार मुख्य माँग थी। अंग्रेजी संसद ने कई अधिनियम लागू किए जिनमें सबसे पहले 1773 का रेग्युलेटिंग एक्ट आता है, जो कम्पनी के व्यापारियों की उन्मुक्त गतिविधियों पर लगाम लगाने पर कम्पनी के अधिनस्थ क्षेत्रों में कुछ कानून लागू करने से संबंधित था। कम्पनी के शासन की अवधि को 20 वर्ष तक सीमित कर तथा उसके बाद समीक्षा करने का निर्णय लेकर इस अधिनियम ने बंगाल, मुम्बई तथा मद्रास क्षेत्रों पर सर्वोच्च अधिकार अंग्रेजी सरकार को दे दिया। इस अधिनियम ने इन तीनों क्षेत्रों को बंगाल के गवर्नर के अधीन संयुक्त कर भारत में एकीकृत प्रशासन व्यवस्था की शुरुआत की। बंगाल का गर्वनर अब गवर्नर जनरल कहलाता था। वारेन हेस्टिंग्स पहला गवर्नर जनरल था (1773.1785)। पिट्स इंडिया एक्ट (1774) को आधी–अधूरी व्यवस्था कहा जाता है। क्योंकि इसने संसद तथा कम्पनी के बोर्ड अधिकारियों की मध्यस्थता का प्रयास किया, बोर्ड ऑफ कंट्रोल (नियंत्रण बोर्ड) की स्थापना कर संसद के प्रभाव में वृद्धि की जिसके सभी सदस्य ब्रिटिश मत्रिमंड़ल से चुने जाते थे। एक गवर्नर जनरल के रूप में लॉर्ड कार्नवालिस ने कंपनी के प्रशासन को व्यावसायिक, अफ़सरशाही तथा यूरोपीय रुप प्रदान किया (1786.1793)। उसने कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा व्यापार को गैरकानूनी घोषित किया, व्यापारिक तथा प्रशासनिक कार्यों को पृथक किया तथा कंपनी के कर्मचारियों के वेतन में सुधार किया। राजस्व संग्रह कम्पनी का मुख्य प्रशासनिक कार्य बन गया था। अतः लॉर्ड कार्नवालिस ने बंगाल में जमीन का कानूनी स्वामित्व जमींदारों को प्रदान किया। बदले में जमींदार सरकार को एक निश्चित राजस्व एक निर्धारित तारीख पर चुकाते थे। यह व्यवस्था हमेशा के लिए चलनी थी अतः इसे 'स्थाई बंदोबस्त' का नाम दिया गया। इस व्यवस्था को जमींदारी व्यवस्था के नाम से जाना गया। इस व्यवस्था का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि अब जमींदार भूमि के मालिक हो गए, किसान अपनी ही जमीन पर किराएदार हो गया। और तो और जमीन अब क्रय विक्रय की सम्पत्ति हो गई तथा शासन को कृषि संबंधी विस्तार तथा



आपकी टिप्पणियाँ

विकास से प्रतिबंधित कर दिया गया। हालाँकि मुम्बई तथा मद्रास में रैयतवाड़ी बंदोबस्त अमल में लाया गया जिसमें किसान एक मुश्त रकम सीधे सरकार को देते थे।

1813 ई. के चार्टर एक्ट ने भारत के साथ व्यापार पर कम्पनी का एकाधिकार समाप्त किया। राजस्व, प्रशासन तथा नियुक्ति के क्षेत्र हालाँकि कम्पनी के नियंत्रण में ही रहे। 1833 के चार्टर एक्ट ने चीन के साथ कम्पनी के व्यापार के एकाधिकार पर विराम लगाया। इस एक्ट ने गर्वनर जनरल तथा उसकी सलाहकार परिषद् से कानून बनाने की शक्ति, तथा विधायी से संबंधी शक्तियाँ छीन लीं।

अंग्रेजी क्षेत्र के विस्तार तथा बढ़ती प्रशासनिक आवश्यकताओं को देखते हुए नौकरशाही की आवश्यकता थी जो अंग्रेजी आधिपत्य क्षेत्रों को नियंत्रित कर सके। सन् 1785 में लॉर्ड कार्नवालिस ने कम्पनी के अधिकारियों को एक पेशेवर संगठन में ढाला जिन्हें अच्छा वेतन मिलता था, भारत में जो न तो निजी व्यवसाय करते थे तथा न उत्पादन में उनके कोई स्वार्थ थे। वे नियमित पदोन्नति तथा पेंशन के भी हकदार हुआ करते थे। सभी उच्च पद अंग्रेजों के ही लिए आरक्षित होते थे तथा भारतीय उनसे बहिष्कृत थे। कॉर्नवालिस ने बंगाल के हर ज़िले के लिए अंग्रेजी न्यायाधीशों की तथा राजस्व संग्रह के लिए अंग्रेजी राजस्व क्लेक्टरो को नियुक्त किया। सन् 1806 से कम्पनी ने अपने युवा अभ्यर्थियों को लंदन के निकट हेलीबॅरी कॉलेज में प्रशिक्षण प्रदान करना प्रारंभ किया। नियुँक्तियाँ हालाँकि संरक्षणात्मक व्यवस्था के अंतर्गत ही होती थी। सन् 1829 में पूरे ब्रिटिश भारत में छोटे छोटे जिलों की स्थापना कर इस प्रणाली को सुदृढ़ किया गया क्योंकि एक ही व्यक्ति जो कि राजस्व संग्रहक, न्यायाधीश तथा पुलिस प्रमुख का दायित्व संभाले था, वे पूर्ण निरंकुश ढंग से कार्य करते थे। 1833 के उपरांत कम्पनी अपने मनोनीत अभ्यर्थी प्रतियोगिओं में से परीक्षाओं द्वारा चुनती थी। सन् 1853 के पश्चात् इनका चयन परीक्षा के द्वारा योग्यता के आधार पर किया जाने लगा जिसमें कोई भी ब्रिटिश उम्मीदवार भाग ले सकता था। भारतीय नागरिक सेवाएं (i) अत्याकर्षक वेतन प्रदान करने वाली, (ii) इनके पास इतने राजनीतिक अधिकार थे जिसकी इंग्लैण्ड में कोई भी अफसर कल्पना नहीं कर सकता था।

पाठगत प्रश्न 16.6

1. ईस्ट इण्डिया कम्पनी की गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए ब्रिटिश संसद ने सर्वप्रथम कौन सा अधिनियम लागू किया था?

2. बंगाल का प्रथम गवर्नर जनरल कौन था?

3. चार्टर एक्ट 1833 की मुख्य विशेषताएं क्या थी?

4. लंदन के निकट कौन से कॉलेज में कंपनी के अधिकारियों को प्रशिक्षण प्राप्त होता था?



आपकी टिप्पणियाँ

16.7 न्यायिक संगठन

अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक अंग्रेज बंगाल, कलकत्ता तथा बम्बई जैसे प्रमुख क्षेत्रों में अपनी पैठ बना चुके थे। साथ ही साथ यहीं पर अंग्रेजी न्यायिक व्यवस्था का भी उदय हुआ। बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास में सन् 1727 में दीवानी मुकदमों के लिए महापौर न्यायालयों की स्थापना हुई। सन् 1772 में एक व्यापक न्यायिक व्यवस्था, जिसे अदालत कहा गया, की स्थापना दीवानी तथा फ़ौजदारी न्याय क्षेत्रों के लिए हुई। अपने–अपने रूढ़िगत कानूनों की जानकारी उपलब्ध कराने के लिए हिन्दू पंडित तथा मुस्लिम काज़ियों (शरीय कानून–न्यायाधीश) की नियुक्ति की गई, किन्तु व्यापक स्तर पर अंग्रेजी सामान्य तथा वैधिक कानून ही लागू हुआ करते थे। भारत में पूरी अंग्रेजी न्याय प्रणाली में दो मूल सैद्धान्तिक नियम निरुपित हुए थे–कानून का शासन (Rule of Law) तथा कानून के समक्ष समानता (Equality before Law)। अतः सिद्धांत के अनुसार कानून सर्वोपरि था (कुछ नियम जो अधिकारों, विशेषाधिकारों तथा कर्तव्यों की व्याख्या करते थे, तथा सभी नागरिक चाहे वो किसी भी धर्म, जाति या वर्ग के हों, कानून के समक्ष समान थे। बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका के सिद्धांत ने यह स्पष्ट किया कि स्थानीय अधिकारी अथवा न्यायिक प्राधिकरण के लिखित आदेश के बगैर किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार कर जेल में नहीं डाला जा सकता था। यहां तक कि सरकारी कर्मचारियों को भी उनके कृत्यों के आधार पर कानून की परिधि में चुनौती दी जा सकती थी। कानून के शासन (Rule Of Law) की स्वाभाविक परिणिति कानून के समक्ष समानता थी जो कानून का शासन (Rule Of Law) का अनुसरण करती थी। कानून के समक्ष समानता, जातियों में बंटे भारतीय समाज के लिए आदर्श कानून बनकर आया।

रेग्युलेटिंग एक्ट (1773) के तहत् कांउसिल में सम्राट द्वारा कलकत्ता के प्रेसीडेंसी शहर में एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई। इस अधिनियम के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय के पास बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में सभी प्रकार के न्याय क्षेत्रों को देखने का अधिकार था, सिर्फ एक अपवाद के अतिरिक्त, उन परिस्थितियों में विवादित राशि रू. 4,000. से अधिक होती थी, तो उनके न्याय के लिए लंदन की प्रीवीकाउन्सिल में अपील की जा सकती थी। मद्रास तथा बम्बई में अतंत क्रमशः 1801 तथा 1823 में सर्वोच्च न्यायालयों की स्थापना हुई।

लॉर्ड कॉर्नवालिस ने जिला स्तर पर कार्यकारी तथा न्यायिक कर्तव्यों को अलग–अलग किया, सदर दीवानी अदालत दीवानी मामलों में अपील करने वाली सर्वोच्च संस्था थी, जिसके अधीन दीवानी अपील के चार प्रान्तीय न्यायालय कलकत्ता, ढाका, मुर्शिदाबाद तथा पटना थे। तत्पश्चात् स्थानीय स्तर पर जिला न्यायालय, रजिस्ट्रार न्यायालय तथा कई अधिनस्थ न्यायालय थे जो पदानुक्रमानुसार थे। कई फौजदारी आपराधिक मामलों को सुलझाने में सक्रिय थे, जो कि सर्कट न्यायालय कलकत्ता, ढाका, मुर्शिदाबाद तथा पटना के अधिकार क्षेत्र में आते थे, जो कलकत्ता की सदर निज़ामत अदालत द्वारा नियंत्रित होते थे। सन् 1831 में विलियम बेन्टिंक ने इन चारों प्रान्तीय न्यायालयों को समाप्त कर उनके कार्य को जिलाधिकारियों तथा आयुक्तों में वितरित कर दिया।



आपकी टिप्पणियाँ

पाठगत प्रश्न 16.7

1. कानून का शासन (Rule Of Law) तथा कानून के समक्ष समानता (Equality before Law) को स्पष्ट कीजिए?

2. सन् 1773 में रेग्युलेटिंग एक्ट के तहत् किस जिले में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना हुई?

अतः निष्कर्ष स्वरूप भारत पर अंग्रेजी शासन ने भारतीय इतिहास के रुख को बदल दिया। अंग्रेज भारत में सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में आए। अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना एशिया में व्यापार पर एकाधिकार को लेकर हुई। भारत में व्यापारिक अधिकारों को प्राप्त करने के लिए, अंग्रजों ने कई भारतीय रियासतों का अधिग्रहण किया तथा अपने नियमों तथा नीतियों की स्थापना की। शीघ्र ही सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप अंग्रेजी शासन के अधीन हो गया। हालाँकि उसकी नीतियाँ भारतीयों द्वारा पसन्द नहीं की गई तथा उन्होनें मिलकर कम्पनी के खिलाफ 1857 में विद्रोह किया। इसने कम्पनी के शासन को समाप्त किया तथा भारतीय शासन ब्रिटेन की महारानी के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में चला गया। 1858 के इण्डियन गवर्नमेंट एक्ट भारत सरकार अधिनियम के अनुसार कम्पनी के शासन के स्थान पर ब्रिट्रेन के राजवंश का शासन भारत में कायम हुआ।

आपने क्या सीखा

आपने भारतीय उपमहाद्वीप पर अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन की स्थापना के विषय में पढ़ा। आपने पढ़ा कि किस प्रकार 1757 में प्लासी के युद्ध के पश्चात्, बंगाल के नबाब ने अंग्रेजी सेना के समक्ष अपने अधिकार क्षेत्रों का समर्पण कर दिया, तथा सन् 1765 में जब कम्पनी को बंगाल तथा बिहार की दीवानी अर्थात राजस्व संग्रह के अधिकार की प्राप्ति, अथवा सन् 1772 में जब कम्पनी ने कलकत्ता में अपनी राजधानी की स्थापना कर प्रथम गवर्नर जनरल वॉटेन हेस्टिंस की नियुक्ति कर शासन में प्रत्यक्ष रुप से लिप्त हो कर किस प्रकार अंग्रेजी शासन का विस्तार हुआ। यह प्रक्रिया भारत के अन्य हिस्सों में भी चलती रही। अंग्रेजी सरकार के विस्तार एवं संस्थापना ने सहायक संधि व्यवस्था, तथा डलहौजी की राज्य विलेय नीति के तहत् अधिग्रहण नीति का सहारा लिया। इस अध्याय में भारत में 1858 से पूर्व ब्रिटिश प्रशासनिक तथा न्यायिक संस्थाओं की संस्थापना को भी बतलाया है। अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन 1858 तक चला जब गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट 1858 के परिणाम स्वरूप ब्रिटिश सरकार ने भारत का प्रत्यक्ष नियन्त्रण अपने हाथ में ले लिया।

पाठांत प्रश्न

1. भारत में अंग्रेजों ने सर्वोच्चता कैसे प्राप्त की?
2. लॉर्ड वेलेज़ली ने ब्रिटिश शक्ति का विस्तार किस प्रकार किया? सहायक संधि के गुण–दोषों की व्याख्या कीजिए।
3. भारत में अंग्रेजी राज्य के विस्तार के लिए डलहौज़ी द्वारा अपनाई गई नीति की विस्तृत जानकारी दीजिए।
4. भारत में ब्रिटिश न्यायिक संगठन का वर्णन कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

16.1

1. अंग्रेजों ने, i. युद्ध तथा विजय, ii. सहायक संधि व्यवस्था तथा, iii. राज्य विलेय नीति के तहत राज्यों का अधिग्रहण कर ब्रिटिश शासन का विस्तार किया।
2. बंगाल, मैसूर, हैदराबाद, अवध, पंजाब तथा मराठा साम्राज्य।

16.2

1. जनवरी 1760 में वांडी वाश का युद्ध
2. अंग्रेजी सर्वोच्चता स्थापित हुई तथा भारतीय क्षेत्रीय शक्तियों का नौसैनिक हस्तक्षेप में असमर्थता, बड़ी सेनाओं के होते हुए छोटी यूरोपीय शक्तियों को रोकने में अप्रभावी रहना इत्यादि दुर्बलताएँ और अधिक स्पष्ट हुईं।
3. भारत में हुए कर्नाटक युद्धों में अंग्रेजी सफलता के मुख्य कारण थे–भारत में उनकी सुदृढ़ नौ–शक्ति, अच्छा नेतृत्व तथा प्रगतिशील सैन्य शक्ति, इंग्लैण्ड की सरकार से मिला कम्पनी को सहयोग तथा बंगाल के संसाधनों पर अधिकार।

16.3

1. सिराज–उद–दौला
2. (क) 1757
3. जून 1756 में सिराजुद्दौला का कलकत्ते के कोर्ट विलियम पर आरम्भिक आक्रमण तथा कब्ज़ा, भारत में मुगल शाही निर्यात व्यापार दस्तकों जो 1717 में ब्रिटिश को दिए गए आंतरिक व्यापार के लिए, का गैरकानूनी प्रयोग, नवाब के दरबार में अंग्रेजी हस्तक्षेप, तथा नवाब की अनुमति के बगैर कोर्ट विलियम किले की किलेबन्दी एवं शस्त्रीकरण।
4. मीर कासिम



आपकी टिप्पणियाँ

5. अंग्रेजी तथा भारतीय व्यापारियों के लिए समान व्यापार कर तथा नवाब द्वारा मुर्शिदाबाद से मुंगेर राजधानी स्थानान्तरण एवं सेना पुर्नसंगठन मीर कासिम को पदच्युत करने के मुख्य कारण थे जिसकी परिणिती अन्ततः बक्सर के युद्ध में हुई।

16.4

1. निज़ामत से अभिप्राय है: कानून व व्यवस्था का प्रशासन तथा फौज़दारी मामलों का निपटारा; दीवानी का अर्थ राजस्व प्रशासन तथा नागरिक न्याय।
2. कम्पनी का दीवान होने के नाते वह राजस्व इकट्ठा करता था, नवाब का डिपटी नवाब होने के नाते वह निज़ामत या पुलिस अथवा न्यायिक शक्तियों का नियंत्रण करता था।
3. कम्पनी बंगाल के प्रशासन् की जिम्मेदारी को प्रत्यक्ष रुप से नहीं लेना चाहती थी। वह तो राजस्व इक्ट्ठा करने की ही इच्छुक थी।

16.5

1. सैन्य अभियान तथा सहायक संधि व्यवस्था।
2. इस व्यवस्था के तहत्, अंग्रजों के अधीन भारतीय शासकों को अपने राज्य में अंग्रेजी सेना का रख रखाव करना पड़ता था। तथा इन सेनाओं के लिए भुगतान करना पड़ता था। उन्होंने अपने बाह्य मामलों का नियंत्रण ब्रिटिश को सौंप दिया। जिसके बदले में ईस्ट इण्डिया कम्पनी उनके प्रतिद्वन्दियों से उनकी रक्षा करती थी।
3. राज्य विलेय नीति, लॉर्ड डलहौजी द्वारा लागू की गई अधिग्रहण नीति थी। कोई भी भारतीय राज्य, जो अंग्रेजी अधीनस्थ व्यवस्था के तहत् दास राज्य के रूप में अंग्रेजों के प्रत्यक्ष नियंत्रण में हो या अंग्रेजों द्वारा निर्मित हो, शासक का पुत्र न होने की स्थिति तथा उसके अक्षम होने की स्थिति में अपने आप ही ब्रिटिश राज्य के अधीन हो जाएगा।

16.6

1. 1773 का रेग्युलेटिंग एक्ट
2. वारेन हेस्टिंग्स
3. 1833 के चार्टर अधिनियम में चीनी व्यापार पर कम्पनी के एकाधिकार को समाप्त किया।
4. हेलीबरी कॉलेज।

16.7

1. कानून का शासन (Rule of law) तथा कानून के समक्ष समानता (Equality before law) का अर्थ था कि कानून से बढ़कर कोई नही है (कुछ नियम जिनमें अधिकार, विशेषाधिकार तथा कर्तव्यों की व्याख्या की गई थी) तथा सभी नागरिक वे किसी भी धर्म, जाति, या हैसियत के हों कानून के समक्ष बराबर हैं।
2. कलकत्ता का प्रेसीडेंसी शहर



आपकी टिप्पणियाँ

पाठगत प्रश्नों के संकेत

1. देखें उपखंड 1.2
2. देखें उपखंड 1.5, अनुच्छेद 1–2
3. देखें उपखंड 1.5, अनुच्छेद 4
4. देखें उपखंड 1.7

शब्दावली

1. **ईस्ट इंडिया कंपनी**
   सन् 1600 में स्थापित संयुक्त–शेयर कम्पनी थी क्योंकि कम्पनी के व्यापारी लंदन से भारत में व्यापार करने आए थे। आरम्भ में व्यापार में संलग्न यह कम्पनी भारत में 1858 तक शासन करती रही।
2. **द्वैद्यात्मक अथवा दोहरा प्रशासन**
   बक्सर के युद्ध के पश्चात् यह व्यवस्था बंगाल में लागू हुई। बंगाल के दीवान के रूप में कम्पनी राजस्व की प्रत्यक्ष वसूली करती थी जबकि निज़ामत या पुलिस तथा न्यायिक शक्तियाँ नवाब के पास ही रही।
3. **सहायक सन्धि व्यवस्था**
   भारतीय रियासतों को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित करने के उद्देश्य से लॉर्ड वैलेस्ले ने सहायक संधि व्यवस्था लागू की। इस सिद्धान्त के तहत् अंग्रेजी शासन के अधीन देशी राज्यों को अपनी सेना के बजाय अंग्रेजी सेना की अपने राज्य में देखभाल/रखरखाव करना पड़ता था। अपने बाह्य मामलों के लिए उन्हें अंग्रेजी सरकार पर निर्भर रहना पड़ता था जिसके बदले में ईस्ट इण्डिया कम्पनी प्रतिद्वन्दियों से उनकी रक्षा करती थी।
4. **राज्य विलेय नीति**
   भारत के गर्वनर जनरल लॉर्ड डलहौजी द्वारा प्रस्तावित यह नीति अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा लाई गई अधिग्रहण नीति थी। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत अंग्रेजी राज्य के अधीन सभी भारतीय रियासतें स्वतः ही अंग्रेजी राज्य का हिस्सा बन जाएंगी यदि या तो शासक अक्षम हो, अयोग्य हो या बिना उत्तराधिकारी के मृत्यु को प्राप्त हो गया हो।
5. **चार्टर एक्ट**
   ईस्ट इंडिया कम्पनी की गतिविधियों को नियन्त्रित करने के लिए अंग्रेजी संसद में चार्टर एक्ट पास किया गया जिसमें कम्पनी को कई व्यापारिक विशेषाधिकार तथा 1858 तक भारत पर शासन करने का अधिकार प्रदान किया गया। 1793 में पारित चार्टर एक्ट के अनुसार कम्पनी को भारत में शासन करने के लिए 20 वर्ष के लिए अधिकार दिया गया। तत्पश्चात् क्रमशः 1813, 1833 तथा 1853 में यह अधिनियम संशोधित हुआ।
6. **कानून का शासन**
   इसका अर्थ था कि कानून सबसे ऊपर है। कोई भी कानून से बढ़कर नहीं है एवं यह सब पर लागू होता हैं। चाहे शासक हो या प्रजा, सरकार या नागरिक, कोई भी



आपकी टिप्पणियाँ

कानून से ऊपर नहीं है तथा कानून से मुक्त कोई नहीं है तथा कानून की परिधि में कोई भी छूट का हकदार नहीं है।

7. **कानून के समक्ष समानता**

कानून के समक्ष समानता के सिद्धान्त के अनुसार कानून के सामने हर कोई बराबर था, किसी को कोई कानूनी विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था। कानूनी समकक्षता ने जाति, धर्म तथा वर्ग से परे कानूनी कार्यवाई को जन्म दिया।



17

ब्रिटिश उपनिवेशवाद का आर्थिक प्रभाव

अपने भारतीय उपनिवेश के साथ ब्रिटेन का संबंध राजनीतिक सहयोगी के समान था किन्तु इस रिश्ते का केन्द्र बिन्दु आर्थिक शोषण बन गया था। उपनिवेशवाद की प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य था अपने राष्ट्र को लाभ पँहुचाना, भले ही वह उपनिवेश की कीमत पर हो। इस अध्याय में हम उपनिवेशवाद की प्रक्रिया के अन्तर्गत होने वाले आर्थिक शोषण के विविध पहलुओं के बारे में चर्चा करेंगे।



उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की प्रक्रिया के तीन चरणों को जान सकेंगे;
- भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में उपनिवेशीय राजस्व समझौते के द्वारा आए परिवर्तनों को समझ सकेंगे;
- उपनिवेशों में किए जा रहे उपनिवेशी–पूंजीवादी–परिवर्तनों के मिश्रित प्रभावों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- पूर्ववर्ती राष्ट्रवादियों द्वारा बतलाए गए 'संपत्ति के प्रवाह' सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेंगेः
- उपनिवेश में उपनिवेशवादी आधुनिकता की भिन्न प्रकृति को समझ सकेंगे तथा यह भी समझ सकेंगे कि प्रगति आवश्यक रुप से इसका परिणाम नहीं थी।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद के चरण

औपनिवेशिक शोषण मुख्यतः तीन चरणों में विकसित हुआ। 'वाणिज्यवाद' का **प्रथम चरण** (1757-1813) एक तरह की प्रत्यक्ष लूटपाट थी, जिसमें कि अतिरिक्त भारतीय राजस्व का प्रयोग इंग्लैण्ड निर्यात किये जाने के लिए, भारतीय तैयार उत्पादों को खरीदने के लिए किया जाता था। **द्वितीय चरण** (1813-1858) 'मुक्त व्यापार' था जिसमें भारत कच्चे माल के स्रोत के रूप में परिवर्तित हो गया तथा ब्रिटेन के उत्पादों का एक बाज़ार बन गया। **तीसरा चरण** (1858 से आगे) 'आर्थिक साम्राज्यवाद' का था जिसमें ब्रिटिश पूँजी ने भारत के बैंकों, विदेशी व्यापारिक संस्थाओं तथा प्रबंध संस्थानों को नियंत्रित



आपकी टिप्पणियाँ

किया। इस चरण में मुख्यतया उपनिवेशवादी अर्थव्यवस्था के औद्योगिक तथा कृषि क्षेत्रों की अनेक आर्थिक नीतियों द्वारा शोषण किया गया।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद का प्रथम चरण

प्रथम चरण सामान्यतया 1757 से प्रारंभ हुआ जब ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उपमहाद्वीप के पूर्वी तथा दक्षिणी हिस्सों में राजस्व एकत्र करने के अधिकार प्राप्त कर लिए। यह सिलसिला 1813 तक चला, जब भारतीय व्यापार पर कम्पनी का एकाधिकार समाप्त हो गया।

ब्रिटिश भारत में इंग्लैण्ड की महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम द्वारा समर्थित विशिष्ट शाही अधिकार पत्र के साथ एक विशुद्ध व्यापारिक कम्पनी की हैसियत से सत्रहवीं शताब्दी में भारत में व्यापार करने आए थे। उन्होंने अपना पहला कारखाना बंगाल में हुगली नदी के तट पर स्थापित किया। कम्पनी मुग़ल बादशाह से यह अनुमति या दस्तक पाने में सफल रही कि उसे अपने व्यापार पर करों में छूट प्राप्त होगी। इससे कम्पनी के कर्मचारियों में बड़े स्तर पर भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला क्योंकि उन्होंने व्यापक स्तर पर इस फ़रमान का गलत उपयोग अपने व्यक्तिगत व्यापार के लिए किया। इसका अर्थ यह भी था कि इससे बंगाल के सूबेदारों (जो बाद में नवाब कहलाए) को सीमा शुल्क के रूप में राजस्व में भारी नुकसान उठाना पड़ा। यह एक ज्वलन्त, विवादास्पद मुद्दा था जो 1751 में हुए पलासी के युद्ध के प्रमुख कारणों में से एक बन गया।

इस काल में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का मुख्य कार्य भारत से मसाले, कपास तथा रेशम खरीदकर उन्हें ब्रिटेन के ऐसे बड़े बाजार में भारी फायदे में बेचना होता था जिनकी वहाँ भारी माँग थी। इसका अर्थ यह हुआ कि ब्रिटेन से भारी मात्रा में सोना–चांदी इन वस्तुओं के भुगतान के लिए भारत आ जाता था। भरसक प्रयत्नों के बाद भी ब्रिटेन की वस्तुओं की खपत भारत में नहीं हो पाती थी जिससे इस बहिर्प्रवाह की पूर्ति हो सके। वस्तुओं की खरीद फरोख्त के अतिरिक्त कंपनी को एक बड़ी राशि यूरोप की अन्य शक्तियों के साथ होने वाले युद्धों पर भी खर्च करनी पड़ती थी जो अधिकतर व्यापार के लिए एक जैसी ही वस्तुओं की खोज के लिए होते थे। इनमें शामिल थे पुर्तगाली, डच तथा फ्रांसीसी। बक्सर की लड़ाई और उसके बाद पलासी की लड़ाई हुई तत्पश्चात् बंगाल में दीवानी (अर्थात राजस्व एकत्रित करने का अधिकार) प्राप्त होने से कम्पनी के लिए भारत में होने वाले ख़र्चे के लिए पर्याप्त धन प्राप्त होने लगा।

भू - राजस्व नीतियाँ

1765 में ईस्ट इंडिया कम्पनी को बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा से दीवानी की प्राप्ति के पश्चात् ब्रिटिश प्रशासन का मुख्य कार्य उपनिवेश से राजस्व की अधिक से अधिक वसूली करना रह गया। कृषि लगान कम्पनी की आय का मुख्य स्रोत हो गया था, जिससे वह ब्रिटेन में अपने निवेशकों को लाभांश का भुगतान करती थी। अतः इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ब्रिटिश प्रशासन ने भू– राजस्व की प्राप्ति के कई तरीके अपनाए। इन से कुछ हद तक उन रिश्तों पर भी प्रभाव पड़ा जो उपनिवेश तथा शासक के बीच थे।

सन् 1772 में बंगाल के गर्वनर वारेन हेस्टिंग्स ने बंगाल क्षेत्र में राजस्व खेती की व्यवस्था प्रारम्भ की। इस व्यवस्था के तहत् यूरोपीय जिला कलक्टर अधिक बोली लगाने वाले को राजस्व एकत्र करने का अधिकार दे देते थे। यह प्रणाली पूर्णतया असफल रही तथा इसने निरंकुश राजस्व मांगों की वजह से किसानों को बर्बाद कर दिया।

इस भयंकर गलती को सुधारने के लिए सन् 1793 में लॉर्ड कार्नवालिस ने स्थाई बंदोबस्त की शुरुआत की। इस व्यवस्था के तहत् जमींदार, जिन्हें पहले राजस्व एकत्र करने का ही अधिकार था, अब वे भूमि के स्वामी भी हो गए। कम्पनी की राजस्व माँग पूर्णतया निर्धारित थी किन्तु यदि जमींदार पूरे करों को चुकाने में असफल रहता था तो उसकी भूमि से उसे बेदखल कर दिया जाता था और राज्य द्वारा भूमि नीलाम कर दी जाती थी। इस व्यवस्था के जरिए राज्य ने जमींदारों का एक व्यापारी वर्ग तैयार कराया जो लाभ कमाने के लिए अपनी भूमि पर अधिक से अधिक अन्न उगा सकें। इसके अतिरिक्त कम्पनी के लिए भी प्रत्येक किसान की जगह कुछ जमींदारों से बातचीत करने में सुविधा हुई तथा समाज का एक शक्तिशाली वर्ग ब्रिटिश प्रशासन का वफ़ादार बन गया।

किन्तु इस व्यवस्था की वजह से बढ़ते राजस्व के बोझ ने किसानों को गरीबी के दलदल में घसीट दिया। कई जमींदारों को भी यह शर्त मानने में समस्या हुई जो समय पर धन का भुगतान न कर सके तथा भूमि से हाथ धो बैठे। इस व्यवस्था ने उप सामन्तवाद को भी बढ़ावा दिया अर्थात जमींदार तथा किसानों के मध्य कई दलाल पैदा हो गए थे जिन्होंने किसानों की मुश्किलें बढ़ा दीं।

दलालों को राजस्व संग्रह से बाहर रखने के लिए, ताकि राज्य भूमि से होने वाली आय का बड़ा हिस्सा ले सकें, सन् 1792 में अलैक्ज़ेन्डर रीड ने मद्रास क्षेत्र के लिए रैयतवाड़ी व्यवस्था आरम्भ की। बाद में इसे बम्बई में भी लागू किया गया। इस व्यवस्था के तहत् आरम्भ में हर गाँव से पृथक् रूप से राजस्व एकत्रित किया जाता था किंतु बाद में प्रत्येक किसान का मूल्यांकन अलग से होता था। इस प्रकार ज़मींदार के बदले किसान भूमि के मालिक हो गए। हालाँकि इस व्यवस्था ने राजस्व संग्रह में वृद्धि की किन्तु मूल्यांकन त्रुटिपूर्ण था तथा किसान करों के भारी बोझ से दब गए। भूमि के दलाल हालाँकि फलते– फूलते रहे।

भारत के उत्तरी तथा उत्तर–पश्चिम में 1822 के उपरांत महलवाड़ी व्यवस्था लागू की गई, जिसमें ग्राम समाज तथा अधिकतर मामलों में तालुकदारों से समझौते किए गए। ऐसी हर वित्तीय इकाई 'महल' कहलाती थी। इस व्यवस्था के तहत् कुछ महत्ता सामूहिक सम्पत्ति अधिकार को भी प्राप्त हुई।

अंग्रेजों की राजस्व नीतियों के परिणामस्वरूप कृषि विकास की गति अवरुद्ध हो गई तथा किसान अपनी ही भूमि पर किराएदार बन गए। इसकी वज़ह से भूमि के दलालों की संख्या में वृद्धि हुई तथा ग्रामीण इलाकों में सूदखोरों की संख्या को भी पनपने का मौका मिला। भू–मालिक तथा ज़मींदार ब्रिटिश उपनिवेशवाद के मुख्य वर्ग तथा सहयोगी बन गए।

दीवानी अधिकार की प्राप्ति का अर्थ था कि अब बंगाल के समृद्ध क्षेत्र में कम्पनी स्थानीय शासकों, ज़मींदारों तथा व्यापारियों की दौलत को नियन्त्रित कर सकती थी तथा उन्हें ब्रिटेन में बिकने के लिए भेजे जा रहे माल को खरीदने के लिए उनका उपयोग कर सकती



आपकी टिप्पणियाँ

थी। बड़ी मात्रा में पैसे ने, जिसमें कम्पनी अधिकारियों की अवैध सम्पत्ति भी शामिल थी, बंगाल से ब्रिटेन की राह पकड़ ली। घर लौटने से पहले कम्पनी अधिकारियों ने बहुत माल कमाया तथा अपनी विलासी जीवनशैली की वज़ह से उन्हें ब्रिटेन में 'नाबोब' कहा जाता था। इस पैसे का बड़ा भाग कंपनी को ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति में जान डालने के काम आया। भूमि राजस्व से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के लालच ने भारत के क्षेत्रीय विस्तार में अधिक उग्र तथा आक्रामक नीतियाँ अपनाने को बाध्य किया।

पाठगत प्रश्न 17.1

1. भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के तीन चरण कौन–कौन से थे?

2. पलासी के युद्ध के लिए ज़िम्मेदार मुख्य घटक कौन–कौन से थे?

3. किसके साथ कम्पनी ने बंगाल में स्थाई राजस्व समझौता किया?

4. किस क्षेत्र में सर्वप्रथम रैय्यतवाड़ी प्रथा का आरंभ हुआ?

17.2 ब्रिटिश उपनिवेशवाद का द्वितीय चरण (मुक्त व्यापार)

द्वितीय चरण 1813 में चार्टर एक्ट के अमल के साथ प्रारंभ होता दिखलाई पड़ता है जब कम्पनी ने भारत में अपने व्यापार पर एकाधिकार खोया तथा 1858 में वह समाप्त हो गया, जब भारत में ब्रिटिश क्षेत्रों पर ब्रिटिश राजसत्ता ने प्रत्यक्ष नियंत्रण तथा प्रशासन स्थापित कर लिया।

ज्यों–ज्यों कम्पनी का मुनाफ़ा बढ़ता गया, ब्रिटिश सरकार से मिलने वाला समर्थन कम होता गया। पहले संसद के कई सदस्यों को 'ईस्ट इण्डियन' का लाभ मिलता था जो सरकार में अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए कम्पनी के संसाधनों का प्रयोग करते थे। किन्तु जैसे ही ब्रिटेन में औद्योगिकीरण की विभिन्न स्तरों पर प्रगति हुई संसद के संविधान में धीरे–धीरे परिवर्तन होने लगा। एडम स्मिथ द्वारा लिखी गई पुस्तक "एन इन्क्वारी इन टू द नेचर एंड कॉलेज ऑफ द वेल्थ ऑफ नेशन्स" तथा "कौसाज ऑफ द पैल्थ ऑफ नेशन" आर्थिक विचारों की एक शैली पर प्रकाश डालती है जो कम्पनियों द्वारा उठाई जा रही मुक्त व्यापार की नीति के फ़ायदे को बतलाती है। कम्पनी की आय पर अधिकार जमाने के लिए संसद ने कम्पनी के अधिकारियों को व्यक्तिगत रूप से निशाना बनाना प्रारम्भ कर दिया तथा उन पर दुराचार के आरोप लगाए गए। संसद में मुक्त व्यापार की माँग करने वाले, 19वीं शताब्दी में भारत में सीधे आने की बात करने वालों में तब्दील हो गए जिससे 1813 में चार्टर एक्ट पारित किया गया। इस प्रकार भारत में कम्पनी के एकाधिकार



आपकी टिप्पणियाँ

की समाप्ति हुई तथा कम्पनी के अधीन भारत के क्षेत्रों का पूर्ण नियंत्रण ब्रिटेन की महारानी के हाथों में चला गया।

'मुक्त व्यापार' ने एक दोहरी नीति के द्वारा भारतीय उपनिवेश की प्रकृति को बदल कर रख दिया। पहले तो इसने भारतीय बाज़ारों को सस्ते, अधिक मात्रा में उत्पादित तथा मशीन आधारित ब्रिटिश सामानों के लिए खोल दिये, जिनके ऊपर नाम मात्र के या काई भी व्यापार कर नहीं थे। महँगे तथा हाथ से निर्मित भारतीय वस्त्रों, जो कि ब्रिटेन में बहुत लोकप्रिय थे, उनपर प्रतिबन्धित सीमा शुल्क दर की वजह से रोक लग गई। तथा दूसरे

ब्रिटिशों –भारतीय क्षेत्र खाद्य पदार्थों तथा कच्चे माल के स्रोत के रूप में ब्रिटेन के लिए विकसित हुआ, जिसमें निर्माण क्षेत्र में तीव्र प्रगति ने जान फूँक डाली, जो पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के उदय के लिए अत्यावश्यक थी। इन परिवर्तनों ने भारत के अनुकूल व्यापारिक हितों को एक दम पलट कर रख दिया। इस चरण ने भारत में कृषि के व्यावसायीकरण की जटिल प्रकिया तथा औद्योगीकीकरण की प्रक्रिया द्वारा विशुद्ध औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की नींव डाली, जो नीचे दर्शाए गए हैं।

कृषि का व्यावसायीकरण

ऐसा अक्सर माना जाता है कि औपनिवेशवादी प्रशासन ने कृषि के व्यावसायीकरण को जन्म दिया जिसने भारतीय उपनिवेश में कई स्थानों पर किसानों की स्थिति में सुधार किया। सन् 1860 के उपरान्त कृषि उत्पादन की प्रवृत्ति समुद्रपार के बाज़ार में प्राथमिक भारतीय वस्तुओं की माँग द्वारा संचालित होने लगी। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में निर्यात होने वाली वस्तुओं में मुख्य थे–अफ़ीम, कपास तथा रेशम। धीरे–धीरे कच्चे जूट, अनाज, तेल, बीज तथा चाय ने अफ़ीम का स्थान ले लिया। कच्चा कपास सर्वाधिक माँग वाला उत्पाद बना। पैसा उगाहने वाली इन फसलों के विस्तार ने 1850 ई. में रेल नेटवर्क को जन्म दिया, जिससे व्यापार तन्त्र सें सुधार आ सके।

किन्तु यह व्यावसायीकरण एक कृत्रिम प्रणाली के रूप में सामने आया जिसकी वज़ह से कृषि क्षेत्र में विकास की गति सीमित हो गई। इसने कृषि क्षेत्र में विषमताओं को तो पैदा किया किंतु ब्रिटेन की तरह पूँजीवादी भू–मालिक का ढाँचा खड़ा नहीं कर पाया। बड़े स्तर पर एक साथ हुए औद्योगिक विकास के अभाव का अर्थ था–संचित कृषि आय के निवेश के लिए कोई उचित तरीका नहीं था, जिसके वह औद्योगिक पूँजी में तब्दील हो सके। उत्पादक क्षमता में विस्तार तथा कृषि का संगठन भी एक जोखिमपूर्ण कार्य ही थे क्योंकि इस क्षेत्र में दूरस्थ विदेशी बाज़ार था जहाँ दाम ऊपर–नीचे होते रहते थे। जबकि उपनिवेशवादी राज्यों ने कृषि विशेषज्ञों को कोई सुरक्षा भी प्रदान नहीं कर रखी थी। इस प्रकार व्यावसायीकरण ने उप–ज़ागीरदारी के स्तर को पूरे देश में बढ़ावा दिया तथा यह धन व्यापार तथा सूद खोरी के माध्यम से संयोजित हुआ।

निर्यात व्यापार के माध्यम से उगाहा हुआ धन ब्रिटेन के व्यावसायी घरानों में पहुँचा जिसने नौपरिवहन तथा बीमा उद्योग को नियन्त्रित किया। साथ ही कमीशन एजेंट, व्यापारियों तथा बैंकरों पर भी लगाम लगाई गई। उपनिवेश में जो लोग भाग्यशाली रहे उनमें मुख्य थे बड़े कृषक, कुछ बड़े भारतीय व्यापारी तथा पैसा उधार देने वाले। व्यावसायीकरण ने ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि स्वामी तथा पैसा उधार देने वालों के सामंती ढांचे को सुदृढ़ किया।



आपकी टिप्पणियाँ

व्यावसायीकरण की इस तथाकथित व्यवस्था, अक्सर शोषण वाली तथा गुलाम की तरह काम करनेवाले श्रमिकों द्वारा काम करवाया जाता था जिससे पूँजीवादी कृषि की अपेक्षा थी। असम के बागानों में चाय का उत्पादन होता था, जिनके मालिक गोरे हुआ करते थे तथा वे इकरारनामे के तहत बंधे श्रमिकों का प्रयोग करते थे जो दास के समान होते थे। गोरे किसानों के पास नील की खेती के लिए किसान नहीं थे क्योंकि इससे लाभ कम होता था तथा यह कृषि चक्र को भी प्रभावित करता था। अतः वे किसानों को नील की खेती के लिए बाध्य करते थे। इसमें अमानवीय जोर जबरदस्ती होती थी जिसने 1859-60 में नील विद्रोह को जन्म दिया। व्यावसायीकरण ने 1860 में भारत के पश्चिम क्षेत्र में कपास उत्पादक क्षेत्र में तथा पूर्वी भारत में जूट उत्पादन में सीमित सफलता पाई किन्तु यह बढ़ी हुई माँग का नतीजा था, न कि उत्पादन या संगठन से पूँजीवादी सुधार का।

किसानों को पैसा उगाहने वाले फ़सलों की भी खेती करनी पड़ी क्योंकि उन्हें कर, राजस्व तथा कर्ज एवं किराये का भुगतान नकद में करना पड़ता था। एक ओर खाद्य पदार्थों की खेती से दूरी तथा दूसरी और ज्वार, बाजरा तथा दलहन ने अकालग्रस्त समय में तबाही का कार्य किया। भारतीय सूत की विश्व में कम होती माँग ने 1870 में दक्किन कपास क्षेत्र में कर्ज, अकाल तथा कृषि संबंधी दंगों को जन्म दिया। सन् 1930 में जूट उद्योग ढह गया, तत्पश्चात् बंगाल में 1943 में भीषण अकाल पड़ा। हालाँकि इन अकालों के लिए उत्तरदायी घटकों को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है किन्तु इस बात से सभी सहमत हैं कि बढ़ती जनसंख्या के मुकाबले खाद्य –उत्पादन कम रहा तथा लाखों लोग भूखमरी तथा महामारियों से मारे गए।

कृषि उत्पादन को सुधारने के लिए उठाए गए सीमित कदमों में मुख्य था–उत्तरी, उत्तर–पूर्वी तथा दक्षिण–पश्चिमी भागों में जुताई के लिए नहरों का निर्माण करना। "स्थाई रूप से व्यवस्थित" पूर्वी भारत को सरकार के इस अभियान से दूर रखा गया क्योंकि वहाँ पर राजस्व वृद्धि की कोई संभावना नहीं थी। इसी प्रकार राजस्व को ऊँचे स्तर तक ले जाना तथा विषम स्थितियों में सीमित सहायता ऐसे घटक थे जो इस धन–निवेश का कारण बने। इसने सीमित क्षेत्रों, विशेषकर पंजाब के नहर उपनिवेशों में समृद्धता की नींव डाली किन्तु यह उन्हीं अमीर किसानों तक सीमित रह गया जो उच्च जल दरों का भुगतान कर सकते हों। इसने नकदी फ़सलों, जैसे चीनी, कपास तथा गेहूँ के अधिक उत्पादन को प्रोत्साहित किया जबकि मोटे अनाज तथा दाल के उत्पादन को कम किया। कुछ मामलों में, जैसे संयुक्त क्षेत्रों में, यह तरीका स्थानीय स्थितियों के अनुकूल नहीं रहा तथा यह दलदल तथा अत्यधिक खारेपन का कारण बना।

सन् 1853 में लॉर्ड डलहौजी ने भारत में रेल मार्ग निर्माण का निश्चय किया। अक्सर रेलवे को ही ब्रिटिश शासन में हुए भारत के विकास के मुख्य चिह्न के रूप में देखा जाता है। किन्तु भारत में रेलवे के निर्माण ने भारत के आर्थिक विकास के औपनिवेशवादी ढाँचे को मजबूत किया। रेलवे के तन्त्र ने आन्तरिक बाज़ारों को चिह्नित करने में मदद की तथा उपनिवेश में कच्चे माल का स्रोत ढूँढने में सहायता की। साथ ही आंतरिक बाज़ारों को एक दूसरे से जोड़ने के स्थान पर तटीय शहरों से उन्हें जोड़ा। रेलवे तन्त्र ने इस प्रकार विदेशी व्यापार के मुनाफे में वृद्धि की। सीमा क्षेत्र में बनी रेलवे लाइन सैन्य अभियानों को प्रारम्भ कर सकती थीं तथा कुछ 'आपदा लाइनें'' एकान्त क्षेत्र में बनवाई गई। इस प्रकार यह पूरी परियोजना ब्रिटिश पूँजी से तैयार हुई तथा ब्रिटेन में निवेशकों को पाँच प्रतिशत



आपकी टिप्पणियाँ

ब्याज की गारन्टी दी गई, जिसका भारतीय राजस्व से भुगतान किया गया। उच्चस्तरीय कुशलता तथा रेलवे उपकरण जैसे मशीनरी, रेलवे लाइन तथा कुछ हद तक कोयला भी ब्रिटेन से आयात किया गया। इसने सुनिश्चित किया कि रेलवे निर्माण के विविध प्रभाव भारत से दूर ही रहें।

अन्य घटकों के साथ–साथ भारत के आंतरिक क्षेत्रों में दखल ने भारतीय हस्तशिल्प उद्योग को नष्ट कर दिया जिसे स्थानीय शासन तथा समुद्र पार से संरक्षण समर्थन प्राप्त था। ब्रिटेन के बढ़ते प्रभावों की वज़ह से देशी न्यायालय समाप्त हो गए। ब्रिटिशों ने असमान सीमा शुल्क भी लगाए, जहाँ एक ओर भारत के बने उत्पादों को ब्रिटिश बाज़ार में प्रवेश करने के लिए भारी चुंगी चुकानी होती थी वहीं यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप निर्मित सस्ते उत्पादों से भारत का बाज़ार भर गया। इसका मुकाबला करने में असमर्थ भारतीय वस्तुओं ने समुद्र पार तथा घरेलू दोनों ही बाज़ार खो दिए। इस घातक प्रणाली ने अनौद्योगीकरण को जन्म दिया जिससे भूमि पर दबाव बढ़ गया।

पाठगत प्रश्न 17.2

1. 18वी शताब्दी में किस अर्थशास्त्री ने मुक्त व्यापार के सिद्धान्त की स्थापना की?

2. कृषि के व्यावसायीकरण ने किस प्रकार अकाल को जन्म दिया?

3. अंग्रेजों द्वारा बन गई सिंचाई नहरों से कौन सा क्षेत्र सर्वाधिक लाभान्वित हुआ?

4. ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति ने किस प्रकार ब्रिटिश भारत में 'अनौद्योगीकरण' को जन्म दिया?

17.3 ब्रिटिश उपनिवेशवाद का तीसरा चरण

ब्रिटिश भारत में तीसरे चरण की शुरुआत 1860 ई. से प्रारम्भ होती है, भारत जब निरंतर विस्तारित ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा बन गया तथा ब्रिटिश राज सिंहासन के नियन्त्रण तथा संप्रभुता के अधीन हो गया। यह काल एक प्रकार का आर्थिक–साम्राज्यवाद का था जब ब्रिटिश पूँजी उपनिवेश में निवेश हुई थी। यह पूँजी ब्रिटिश बैंकों, आयात–निर्यात संस्थाओं तथा प्रबन्धन सेवाओं के बड़े तन्त्र द्वारा जुटाई गई थी।

हालाँकि उपनिवेशवाद की प्रक्रिया को चरणों में विभाजित किया गया है तब भी यह ध्यान में रखना चाहिए कि काल निर्धारण की प्रक्रिया मनमाने ढंग से की गई है। तीसरा चरण मात्र उन प्रवृत्तियों का सम्मिलित रूप था जो पहले के दो चरणों में स्पष्टतः दिखाई दे रही थी। इन चरण का पढ़ना अधिक लाभकारी हो सकता है क्योंकि इस चरण में शोषण के पुराने तथा क्रूर तरीकों के साथ नए एवं कठोर तरीके भी अपनाए थे। हालाँकि तीसरे चरण की महत्त्वपूर्ण गतिविधि थी–विकसित तथा औद्योगिक देशों तथा एशिया, अफ्रीका



आपकी टिप्पणियाँ

तथा लैटिन अमेरिका के उपनिवेशों के बीच प्रबल प्रतिद्वन्द्विता। 19वीं शताब्दी में फ्रांस, जर्मनी, बेल्जियम तथा अमेरिका एवं यहाँ तक कि जापान ने भी औद्योगिकीकरण का स्वाद चखा। विश्व बाज़ार में प्रतिद्वन्द्विता के कारण ब्रिटेन की पकड़ धीरे–धीरे कम होने लगी। नए बाज़ारों की तलाश तथा कच्चे माल की खोज में इन देशों ने उपनिवेशों की तलाश प्रारम्भ कर दी तथा वर्तमान औपनिवेशिक बस्तियों पर अपनी पकड़ मजबूत कर दी। आर्थिक विकास ने पूँजी संग्रह की व्यवस्था का भी श्री गणेश किया जो कि कम संख्या में बैंकों तथा व्यवसायों में केन्द्रित थी। इस पूँजी को औद्योगिक उत्पादन की गति को और तीव्र बनाने के लिए एवं कच्चे माल के तीव्र प्रवाह को बनाए रखने के लिए उपनिवेश मेंनिवेशित किया गया।

अन्य विकासशील पूँजीवादी देशों में ऊँचे शुल्क के प्रतिबंध ने ब्रिटेन में निर्मित उत्पादों के बाज़ार के संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया को जन्म दिया। तथा ब्रिटेन में कृषि उत्पादों के भारी आयात की आवश्यकता ने इसकी स्थिति को अन्य देशों के साथ व्यापार में दुर्बल बना दिया। ब्रिटेन के घाटे की समस्या को सुलझाने में भारत की भूमिका महत्त्वपूर्ण साबित हुई। भारत के ऊपर ब्रिटेन के नियन्त्रण ने यह सुनिश्चित किया कि उसके कपड़ों के लिए एक बंदी बाज़ार मौजूद है। हालाँकि भारत के कच्चे माल के अतिरिक्त निर्यात (ब्रिटेन के अतिरिक्त अन्य देशों के साथ) ने उसके घाटे को कहीं और से पाटने में मदद की।

जहाँ एक ओर देशी हथकरघा उद्योग दम तोड़ रहा था वहीं उपनिवेश में नए उद्योग प्रारम्भ करने के भी कुछ प्रयास हुए। हालाँकि उपनिवेशी सरकार ने हमेशा "मुक्त व्यापार" की बात की किन्तु राज्य की भेदभाव पूर्ण नीति के परिप्रेक्ष्य में स्वदेशी व्यावसायियों को कई बाधाओं का सामना करना पड़ता था। ब्रिटिश पूँजी आरम्भ में रेलवे, जूट उद्योग, चाय बागान तथा खनन् में निवेश की गई थी। भारतीय पूँजी बाज़ार यूरोपीय बैंकिग संस्थाओं द्वारा संचलित होता था। जहाँ एक ओर इन बैंकों के तन्त्र से ब्रिटिशों को पूँजी आसानी से प्राप्त होती थी वहीं भारतीय व्यापारी अभी भी परिवार या जातिगत संगठनों पर ही आश्रित थे। ब्रिटिश बैंकिग कम्पनी तथा ब्रिटिश ट्रेडिंग लाभ बहुत ही सुनियोजित रूप से चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स तथा प्रबन्धक संस्थाओं द्वारा संचालित होता था। प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व ब्रिटिश प्रबन्धन संस्थाओं द्वारा औद्योगिक पूँजी के 75 प्रतिशत हिस्से को नियन्त्रित किया जाता था तथा इस सीमित औद्योगिकीकरण से प्राप्त अधिकतम लाभ ब्रिटेन वापस भेज दिया जाता था।

किन्तु भारी कठिनाइयों के बावजूद भारतीय व्यापारियों ने आगे बढ़ने के अपने अवसर तलाशे। जब भी ब्रिटेन आर्थिक संकट के दौर से गुजरा, प्रथम विश्व युद्ध के दौरान, कलकत्ता के मारवाड़ी व्यवसायी, जैसे जी-डी- बिड़ला तथा स्वरूप चन्द हकीम चन्द ने जूट उद्योग में निवेश किया। शीघ्र ही उन्होंने अपना प्रभाव क्षेत्र अन्य क्षेत्रों, जैसे–कोयला की खदानों, चीनी मिलों तथा कागज़ उद्योग तक विस्तृत किया तथा उन्होंने कुछ यूरोपीय कम्पनियां भी खरीदीं। भारतीय पूँजी की जबरदस्त सफलता पश्चिम में कपड़ा उद्योग में देखी जा सकती है, जिसने अपनी सफलता को संगठित करने के लिए विश्व युद्ध (1914-18) के दौरान बढ़ी माँगों का लाभ उठाया तथा वह लगभग लंकाशायर से बराबरी की स्थिति में आ गया। कुछ निश्चित व्यवसायी समाज, जैसे गुजराती, बनिया, पारसी, बोहरा तथा भाटिया इस क्षेत्र में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गए थे। टाटा लौह एवं इस्पात कम्पनी को सरकारी संरक्षण मिला जिससे भारत की इस अनुभवहीन लौह एवं इस्पात कम्पनी को नेतृत्व करने का मौका प्राप्त हुआ था।



आपकी टिप्पणियाँ

प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त विदेशी व्यापार के सूत्र पुनः जुड़ने प्रारम्भ हुए किन्तु पुनः निराशावादी दौर (1929-33) में घरेलू बाज़ार तुलनात्मक रूप से देशी उद्योगों द्वारा दोहन के लिए मुक्त हो गया क्योंकि विदेशी व्यापार घटा था। उपनिवेशवादी सरकार ने चीनी तथा कपास उद्योग को कुछ सुरक्षा प्रदान की थी, कृषि क्षेत्र में गिरते मूल्यों को देखते हुए यह कदम उठाया गया था। कम कीमतों ने पूँजी का रुख औद्योगिक क्षेत्र की ओर मोड़ दिया था। भारतीय भी बीमा तथा बैंकिग क्षेत्र में कूद पड़े थे। पुनः द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान (1939-45) जैसे ही विदेशी आर्थिक प्रभाव कम होना प्रारम्भ हुआ, भारतीय उद्योगपतियों ने भारी लाभ कमाया। अपनी सीमित सफलताओं से उत्साहित होकर भारतीय पूंजीवादी वर्ग ने अपने संबंध भारतीय राष्ट्रवादियों से जोड़े। शीघ्र ही उन्होंने राज्य के अधीन भारी उद्योगों की स्थापना की माँग प्रारम्भ कर दी तथा विदेशी पूँजी के प्रवेश को लेकर उन्होंने स्वयं को संगठित करना प्रारम्भ कर दिया था।

किन्तु व्यापक स्तर पर इन सफलताओं को सही परिप्रेक्ष्य में देखें तो ये विकास घरेलू बाज़ार तक ही सीमित थे तथा आगे स्वदेशी पूँजी को उपंनिवेशवादी अर्थव्यवस्था की ढाँचागत दुर्बलताओं के खिलाफ एक लम्बी लड़ाई लड़नी थी। भारतीयों की गरीबी को देखते हुए प्रगति की संभावनाएँ निराशा ही उत्पन्न करती रहीं।

आरम्भिक भारतीय राष्ट्रवादी, जैसे–दादा भाई नौरोजी, एम. जी. रानाडे तथा आर. सी. दत्त ने ब्रिटेन से भारतीय पूँजीवादी औद्योगिकीकरण की अपेक्षा रखी थी। किन्तु उपनिवेशवादी आर्थिक नीतियों से वे असंतुष्ट नज़र आए। परिणामतः उन्होंने 19वीं शताब्दी के अन्त में उपनिवेशवाद की भयंकर आर्थिक आलोचना की। दादा भाई नौरोजी ने "समृद्धि का पलायन" अवधारणा को आगे बढ़ाया। उनके अनुसार भारत में गरीबी, भारतीय संपदा का धीरे–धीरे ब्रिटेन में पलायन का परिणाम थी। यह पलायन उस ब्याज की वज़ह से हुआ जो भारत ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को विदेशी कर्ज चुकाने, सैन्य खर्चों, रेलवे तथा अन्य ढाँचागत सेवाओं में विदेशी निवेश पर निश्चित ब्याज, इंग्लैंड से हर लेखन सामग्री का आयात तथा ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत पर शासन करने के लिए सैन्य तथा नागरिक अधिकारियों की नियुक्ति, राज सचिव के वेतन, अधिकारियों की पेंशन वगैरह के लिए भारतीय धन का प्रयोग किया। हालाँकि यह पलायन भारत के कुल निर्यात का छोटा सा ही अंश था, यदि इसका निवेश देश में हो गया होता तो पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के निर्माण में यह मदद कर सकता था।

उपनिवेशवादी आर्थिक नीतियों को लेकर एक मुख्य प्रश्न उठता था कि क्या भारत में कुछ विकास हुआ? इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है। हम 19वीं शताब्दी के मुगल साम्राज्य से देखना प्रारंभ करते हैं जब तक कि ब्रिटिशों ने खुद को मुख्य शक्ति के रूप में स्थापित नहीं किया था। यह मत कि 18वीं शताब्दी का मुगल काल पतन की ओर जा रहा था तथा गंभीर आर्थिक समस्याओं के तले आ गया था, इस पर इतिहासकार एक मत नहीं हैं। हमें मुग़ल साम्राज्य के पतन को लेकर एक बड़ा नजरिया अपनाने की आवश्यकता है। क्योंकि बाद में कुछ इतिहासकारों ने इस सिद्धांत को पलट दिया तथा उन्होंने नए विद्रोह समूहों के उदय को मुग़ल साम्राज्य के पतन का कारण बताया। उन्होंने तर्क दिया कि संपूर्ण मुग़ल काल संपन्नता तथा आर्थिक विकास का युग था, न कि संकट का। राजनीतिक ढाँचे में स्थानीय प्रमुख के हाथों में व्यापक शक्ति तथा स्वायत्तता थी ताकि अतिरिक्त सम्पत्ति का संग्रह कर सकें। मुरादाबाद, बरेली, अवध, बनारस तथा



आपकी टिप्पणियाँ

बंगाल इन्हीं अतिरिक्त क्षेत्रों में मुख्य थे। सिंचाई को बढ़ावा देने के लिए बड़ी मात्रा में वन क्षेत्र खाली कर दिया गया। कृषि क्षेत्र में लगातार वृद्धि तथा जटिल संबंधों की स्थापना ने जमींदार तथा भूमि मालिकों को अतिरिक्त संग्रह के योग्य बनाया जिन्होंने नई क्षेत्रीय शक्तियों के रूप में मुग़ल वर्चस्व को चुनौती दी।

पाठगत प्रश्न 17.3

1. किस प्रथम वैश्विक घटना ने भारत के उद्योगों को पनपने का अवसर दिया?

2. सम्पत्ति के पलायन का सिद्धांत किसने बतलाया?

3. क्या बाद के इतिहासकार 18वीं शताब्दी को आर्थिक रूप से पिछड़ा बतलाते हैं?

इस प्रकार भारत की जो छवि हमें मिलती है वह ऐसे आर्थिक माहौल की थी जिसमें प्रगति की अपार संभावनाएं थीं। फिर हम उस गरीबी की व्याख्या किस प्रकार कर पाएंगे जिसका परिचय हमें 200 वर्षों के ब्रिटिश उपनिवेशवाद के अंत में मिलता है? कुछ लेखकों का मत है कि ब्रिटिशों ने भारत को आंशिक रूप से आधुनिक बनाने का प्रयत्न किया किन्तु मजबूत परम्परागत ढाँचों की वजह से असफल हो गए। किन्तु हमने यह महसूस किया कि ये आधे–अधूरे विकास मात्र उनकी मातृभूमि को फायदा पहुँचाने के लिए किए गए थे। निम्न वर्ग में पिछड़ेपन को भी औद्योगिक क्रान्ति के दूसरे पहलू के रूप में देख सकते हैं जबकि इस क्रान्ति का मुख्य बिन्दु पश्चिम था। इसी प्रक्रिया ने ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया, जिसने भारतीय समाज में पिछड़ापन कायम रखा क्योंकि ब्रिटिश अर्थव्यवस्था, भारतीय अर्थव्यवस्था पर परजीवी के रूप में आश्रित थी। 'मुक्त व्यापार' रूपी विश्व की अर्थव्यवस्था की अभिन्न प्रणाली के रूप में।

सन् 1947 में भारत पूर्व औद्योगीकरण की स्थिति में नहीं था। अतः स्वतन्त्रता के बाद की आर्थिक प्रगति के ढंग को हम पश्चिम की औद्योगीकरण की प्रणाली से तुलना नहीं कर सकते। 1947 में भारत पहले ही पश्चिम के पूँजीवादी विकास का अंग बन चुका था, किन्तु उपनिवेश की हैसियत से। अतः 1947 में स्वतन्त्र भारत ने उपनिवेशवादी तरीके से आधुनिकीकरण में कदम रखा जो कि परम्परागत, ढाँचागत रूप से पिछड़ा तथा अविकसित था।

आपने क्या सीखा

भारत में अपना शासन स्थापित करने के लिए चरणबद्ध तरीके से आर्थिक दोहन ही ब्रिटिशों का मुख्य उद्देश्य था। शोषण की इस प्रवृत्ति ने शासन का रूप ही बदल दिया जिसने ब्रिटेन में भी परिवर्तन को जन्म दिया। इससे भी उपनिवेश में आर्थिक, सामाजिक



तथा राजनीतिक परिणाम हुए। उपनिवेशी राज्य के अंतर्गत होने वाले विकास को आधुनिकीकरण की संज्ञा दी गई किन्तु उपनिवेश पर इसके भिन्न प्रभाव पड़े जो प्रगति के बदले पिछड़ेपन का कारण बना। और अन्ततः संसाधनों के दोहन ने देश को यूरोप में औद्योगीकरण के योग्य बनाया।

पाठांत प्रश्न

1. ब्रिटिश द्वारा लागू की गई राजस्व नीतियाँ क्या थी तथा उपनिवेश के ग्रामीण क्षेत्रों में उसके क्या प्रभाव पड़े?
2. उपनिवेश में कृषि का व्यावसायीकरण एक 'जबरदस्ती/जबरन' प्रणाली किस प्रकार थी?
3. 'आर्थिक साम्राज्य' की व्याख्या कीजिए?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

17.1

1. पहला चरण व्यापारवाद का था (1757-1813), प्रत्यक्ष लूट पाट, द्वितीय चरण (1813-1858) मुक्त व्यापार तथा तीसरा चरण 1850 से आगे आर्थिक साम्राज्यवाद का था।
2. कम्पनी के अधिकारियों द्वारा अपने व्यक्तिगत व्यापार के लिए दस्तक के दुरुपयोग ने बंगाल के नवाब को क्रोधित कर दिया?
3. जमींदार
4. मद्रास तथा बम्बई क्षेत्र

17.2

1. एडम स्मिथ
2. नगदी फ़सलों के उत्पादन को खाद्य फ़सलों की कीमत पर प्रोत्साहन दिया गया।
3. पंजाब
4. ब्रिटेन के मशीन से बने उत्पादों से भारतीय बाज़ार पट गया जबकि भारतीय हस्तशिल्प उनसे मुकाबला नहीं कर पाया।

17.3

1. प्रथम विश्व युद्ध
2. दादा भाई नौरोजी



आपकी टिप्पणियाँ

3. नहीं, बाद मे इतिहासकारों से 18वीं शताब्दी को आर्थिक विकास तथा सम्पन्नता का युग बताया?

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. देखें प्रभाग 17.1 'भूमि राजस्व नीतियाँ'
2. देखें प्रभाग 17.2 'कृषि का व्यावसायीकरण'
3. देखें प्रभाग 17.3 'ब्रिटिश उपनिवेशवाद का तृतीय चरण'

शब्दावली

1. **व्यापारवाद** - 16वीं तथा 18वीं शताब्दी में यूरोप में प्रचलित एक आर्थिक सिद्धांत जिसमें राज्य उपनिवेश के माध्यम से सोने चांदी का प्रवाह सुनिश्चित करता था तथा व्यापार एवं संसाधनों पर नियंत्रण रखता था।
2. **बुलियन** - बहुमूल्य धातु के रूप में सम्पत्ति जैसे सोना और चाँदी
3. **दीवानी** - राजस्व एकत्र करने का अधिकार
4. **तालुकदार** - ब्रिटिश शासन से पूर्व, ग्रामीण क्षेत्र में राजस्व अधिकारी
5. **एकाधिकार** - व्यापार विशेष के लिए विशेष अधिकार
6. **सीमा शुल्क** - निर्यात के लिए दिया जाने वाला शुल्क
7. **व्यवसायीकरण** - व्यापारिक उद्देश्य के लिए किसी नियम को बदलना
8. **मुक्त व्यापार-** अंतराष्ट्रीय व्यापार जो सरकार के किसी भी प्रतिबन्ध से मुक्त हो
9. **श्रमिकों का बंधन युक्त प्रकार** - न सिर्फ पैसों के रूप में बल्कि अन्य शक्तियों के **युक्त प्रकार** परिणाम स्वरूप बाध्यकारी श्रम जैसे–मानसिक, शारीरिक, रूढ़िगत,राजनीतिक इत्यादि।
10. **विविध प्रभाव** - अर्थशास्त्र में एक सिद्धात जहाँ अन्य आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करने के लिए अतिरिक्त खर्च करना। जैसे रेलवे के निर्माण में डब्बों तथा ट्रैक का निर्माण होने की स्थिति में लौह, इस्पात तथा कोयले की माँग में वृद्धि होना। इसकी वज़ह से बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार भी प्राप्त हुआ।
11. **घाटा** - जब व्यापार में आय से अधिक खर्च हो।



18

आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन

18 से 19वीं शताब्दी के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप में कई महत्त्वपूर्ण सामाजिक बदलाव आए। ब्रिटिश शासन की शुरुआत, सामाजिक तथा धार्मिक सुधार की बढ़ती इच्छा, मध्य वर्ग का उदय, ब्रिटिश तथा भारतीय भाषाओं में समाचार पत्रों की प्रगति, देश के भौतिक ढांचे तथा अर्द्ध–राजनीतिक एकीकरण इस परिवर्तन के लिए उत्तरदायी थे। मुगल शासन की समाप्ति के पश्चात् 18वीं शताब्दी में कई क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ। इन कमियों के फलस्वरूप ब्रिटिश शासन का क्रमशः विस्तार हुआ, जिसने पूर्णतः असामान्य शासन व्यवस्था को जन्म दिया तथा जिसके परिणाम दीर्घकालिक रहे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- भारत में ब्रिटिश शासकों की सांस्कृतिक नीतियों की विस्तृत रुपरेखा से परिचित हो सकेंगे;
- ओरियंटांलिस्ट और एंगली राज्य में संघर्ष की प्रकृति की समीक्ष कर सकेंगे;
- भारत में शिक्षित वर्ग पर ब्रिटिश शासन का प्रभाव बता सकेंगे;
- सामाजिक और धार्मिक जीवन की बुराइयों का उल्लेख कर सकेंगे;
- आधुनिक भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग के उदय की पृष्ठभूमि का वर्णन कर सकेंगे;
- उनके द्वारा किए गए सुधार आंदोलनों तथा उठाए गए मुद्दों पर चर्चा कर सकेंगे;
- भारत में पश्चिमी शिक्षा की प्रगति के चरणों की पहचान कर सकेंगे और
- भारत में पत्रकारिता के विकास के विभिन्न चरणों के बारे में जान सकेंगे।

18.1 भारत में ब्रिटिश सांस्कृतिक नीतियाँ

ब्रिटिश शासन के आरंभिक काल में भारत में कई उपनिवेशवादी विचारधाराएँ सामानान्तर रूप से विद्यमान थीं। वहीं इग्लैंड में शासन का सफल संचालन करने के सर्वाधिक उपयुक्त तरीकों के बारे में भिन्न–भिन्न विचार धाराएँ थी। नीतीयाँ सामान्यतः यूरोप और



आपकी टिप्पणियाँ

विशेषतः इंग्लैंड की विशेष विचार धाराओं की लेकप्रयता पर आधारित थीं। साथ ही वे भारत–यूरोप में उच्च पदस्थ ब्रिटिश पदाधिकारियों के पूर्वाग्रहों या विचारों पर भी आधारित थीं। पलासी (1757) तथा बक्सर (1764) के युद्धों के पश्चात् जीते हुए राज्यों पर शासन करने के लिए ब्रिटिश शासकों को खासी मशक्कत करनी पड़ी। यहाँ यह देखना बहुत रोचक होगा कि किस प्रकार भिन्न विचारधाराएँ भिन्न – भिन्न समय में केंद्र में एक शक्ति बन गईं।

18.1.1 प्राच्यविद्

भारत में ब्रिटिश प्रशासकों की पहली पीढ़ी, जैसे वारेन हेस्टिंग्स, विलियम जोन्स, जोनाथन डंकन ने इस विचार को लोकप्रिय बनाया कि भारत का एक स्वर्णिम अतीत था, जो धीरे–धीरे मंद होता गया। वे विद्वान तथा प्रशासक प्राच्यविद् कहलाए। वे भारतीय भाषाओं एवं परम्पराओं को जानने तथा फैलाने के इच्छुक थे। उनके अनुसार भारत को समझने से उनके लिए यहाँ पर शासन करना बेहतर हो सकता था। उस तर्क को आगे बढ़ाते हुए हम कह सकते हैं कि प्राच्यविदों ने भारत के अतीत की इस प्रकार व्याख्या की कि भारत में औपनिवेशिक शासन जरूरी था। उनके प्रयासों से कई संस्थान भी अस्तित्व में आए, जैसे वारेन हेस्टिंग्स द्वारा स्थापित कलकत्ता मदरसा (1781) विलियम जोन्स द्वारा स्थापित एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल (1784) तथा (1794) जौनाथन डंकन द्वारा स्थापित बनारस का संस्कृत महाविद्यालय ।

विलियम जोन्स ने भारतीय प्राचीन भाषाएँ सीखीं तथा संस्कृत एंव प्राचीन पश्चिमी भाषाओं के बीच कई महत्त्वपूर्ण भाषिक समानताएँ पाईं जैसे ग्रीक एवं लैटिन। तकरीबन 50 सालों के लिए एशियाटिक सोयायटी ज्ञान का तथा संस्कृत के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के अनुवाद का एक दुर्लभ केंद्र बना रहा। 'एशियाटिक रिसर्चेज' के नाम से एक महत्त्वपूर्ण पत्रिका भी प्रकाशित होती थी। वारेन हेस्टिंग्स का विचार था कि हिंदुओं के नियम–कानून सदियों से अपरिवर्तनीय रहे हैं। इसलिए यदि उन्हें देश में अपनी सत्ता स्थापित करनी है तो उन्हें संस्कृत तथा इन नियमों को समझना ही होगा। हिन्दुओं के रीति–रिवाजों को दर्शाते हुए एन. बी. हैलहेड ने 1776 में 'ए कोड ऑफ जेन टू लॉज' लिखी थी।

ब्रिटिश प्रशासकों को भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति से परिचित कराने की मांग दिनों दिन जोर पकड़ रही थी। वेलेस्ली द्वारा 1801 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना उन युवा ब्रिटिशों के लिए की गई जिनकी भारत में प्रशासनिक सेवा में नियुक्ति होती थी। यह कॉलेज भारत के विषय में ज्ञान देने वाला प्रमुख केन्द्र बन गया था। इसके कई विभाग भारतीय भाषाओं और साहित्य पर अनुसंधान के लिए समर्पित थे।

आर्थिक तथा प्रशासकीय नीतियों पर विचारों का प्रभाव

विचारों का प्रभाव आर्थिक तथा प्रशासकीय नीतियों पर स्पष्टतः दिखाई देता है। 1786 में गवर्नर जनरल का पद संभालने वाला लॉर्ड कॉर्नवालिस 18वीं शताब्दी की विग राजनीतिक विचारधारा से काफी प्रभावित था। विग दर्शन में सरकार के सभी अंग अर्थात् कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका पृथक होने चाहिएँ। यह सभी अंगों पर नियंत्रण रखेगा ताकि कोई भी अंग मनमाना व्यवहार न कर सके। 18वीं शताब्दी में इंग्लैंड के दो प्रमुख राजनीतिक विचारक, फिलिप फ्रांसिस तथा एडमुंड बर्क थे। बर्क ने

जोर देकर कहा था कि स्थानीय नागरिकों की समृद्धि सुनिश्चित कर देनी चाहिए, इससे पहले कि उनसे फायदा उठाया जाए। उसके मित्र तथा कलकत्ता की सर्वोच्च परिषद के एक सदस्य फिलिप फ्रांसिस ने बंगाल की प्रशासनिक संपत्ति के सिलसिले में एक व्यापक योजना बनाई थी। इस योजना का प्रभाव 1793 में लार्ड कार्नवालिस की स्थाई बंदोबस्त की नीति पर देखा जा सकता है, जो बंगाल बिहार तथा उड़ीसा में लागू की गई थी। कॉर्नवालिस बंगाल प्रशासन में विग नीति की जबरदस्त नींव डालने में सफल रहा। स्थाई बंदोबस्त के विषय में बहुत कुछ आप ब्रिटिश काल की आर्थिक व्यवस्था के अध्ययन के दौरान पढ़ेंगे।

इंग्लैंड पहला ऐसा देश था जिसने औद्योगिक क्रांति का अनुभव किया तथा जिसके परिणामस्वरूप वहाँ पर बने बनाए उत्पादों का ढेर लग गया था। अंग्रेज पूंजीपति अब ब्रिटिश उपनिवेशों में मुक्त व्यापार के लिए जोर डालने लगे थे। उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर भारत में कंपनी के एकाधिकार को समाप्त करने की मांग की। मुक्त व्यापार की पैरवी करने वालों ने भारत के नीति निर्धारकों को भी काफी हद तक प्रभावित किया था। अंततः सन् 1813 में भारत पर कंपनी की पकड़ कम करने के लिए चार्टर एक्ट लाया गया। साथ ही, लिबरल तथा यूटिलिटेरियनों ने भारत के परिप्रेक्ष्य में नीति बनाकर अपनी स्थिति सुदृढ़ की।

पाठगत प्रश्न 18.1

1. प्राच्यविदों द्वारा स्थापित प्रमुख संस्थानों के नाम लिखिए।

2. भारत में शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए एशियाटिक सोसायटी की भूमिका का महत्त्व बताइए।

3. फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना किसने की?

4. औद्योगिक क्रांति सबसे पहले किस देश में हुई?

5. भारत के साथ व्यापार पर कंपनी के एकाधिकार को किस कानून (Act) ने समाप्त किया?

18.2 सामाजिक-धार्मिक सुधार

19वीं शताब्दी की सबसे प्रमुख विशेषता सामाजिक तथा धार्मिक सुधारों की इचछा रही, ताकि जाति तथा सम्प्रदायों के बंधन को समाप्त किया जा सके। भारत में सामाजिक तथा धार्मिक सुधारों की लंबी परंपरा रही है। प्राचीन काल में सुधार की यह प्रवृत्ति उपनिषदों, बौद्ध, जैन, वज्रयान तथा तंत्रवाद में दिखलाई पड़ती है। मध्यकाल में भक्ति संतों तथा



आपकी टिप्पणियाँ

सूफी संतों की लोकप्रियता प्रसिद्ध है। ब्रिटिश प्रशासकों की प्रथम पीढ़ी द्वारा भारत के अतीत के विषय में जानकारी प्राप्त करने के प्रयासो ने शिक्षित वर्ग को अपने अस्तित्व को जानने की चेतना जगाने में मदद की। आरंभिक सुधार उपयुक्त जवाबों की तलाश में किए गए। किंतु आधुनिकीकरण का स्वरूप पश्चिम प्रभाव में तय नहीं किया गया था क्योंकि सुधार के कारण भारत के अतीत से ही खोजे जाने थे।

बंगाल में पुनर्जागरण

बंगाल से प्रारंभ हुए सुधार अंदोलनों को अक्सर बंगाल पुनर्जागरण कह कर संबोधित किया जाता है। बंकिम चंद्र चटर्जी तथा बिपिन चंद्र पाल ने 19वीं शताब्दी में बंगाल में हुए सुधारों को पुनर्जागरण काल की संज्ञा दी है। यूरोप में हुए जागरण से बंगाल की विकासात्मक गतिविधियों की हालांकि तुलना नहीं की जा सकती क्योंकि दोनों के सेदर्भ तथा ढंग सर्वथा पृथक थे। हालांकि जब हम बंगाल के पुनर्जागरण की बात करते हैं तो इस विकास को तीन चरणों में बाँट सकते हैं–

ऐतिहासिक पुर्नखोज, भाषाई तथा साहित्यिक आधुनिकीकरण तथा सामाजिक–धार्मिक सुधार।

ब्रह्म समाज

बंगाल के राजा राम मोहन राय आधुनिक युग के सर्वाधिक विख्यात सुधारक थे। जन साधारण के बीच राजनीतिक मुद्दों पर बहस की शुरुआत का श्रेय उन्हीं को जाता है।



चित्र 18.1 राजा राम मोहन राय

उनके द्वारा स्थापित आत्मीय सभा (1814) ने अपने समय के महत्त्वपूर्ण सामाजिक तथा राजनीतिक मुद्दों पर बहस आरंभ की। सन् 1828 में इसका वृहद् संस्करण ब्रहम समाज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जल्द ही उन्होंने समाज के ज्वलंत मुद्दों पर काम करना प्रारंभ कर दिया जिनमे समाज में उन दिनों प्रचलित अमानवीय सती प्रथा थी। उन्होंने तत्कालीन गवर्नर जनरल विलियम बेंटिंक का सहयोग हासिल किया तथा इस प्रथा के विरुद्ध लिखा। सन् 1829 में सती प्रथा को कानूनी तौर पर प्रतिबंधित कर दिया। उन्होंने महिलाओं के साथ होने वाले हर प्रकार के अन्याय का विरोध किया। रॉय आधुनिक शिक्षा के भी हिमायती थे। उन्होंने वेदांत कॉलेज (1825) के साथ–साथ ब्रिटिश स्कूल भी खोले। वे एकेश्वरवादी थे। उन्होंने मूर्तिपूजा का विरोध किया तथा उपनिषदों को सच्चे हिन्दूवाद का आधार माना। उन्होंने हिन्दू धर्म को सभी बुराइयों से मुक्त कर शुद्ध करना चाहा। वं ब्रिटिश शिक्षा तथा पश्चिमी ज्ञान के विरोधी नहीं थे।

1833 ई. में राय की मृत्यु के पश्चात् ब्रह्म समाज विघटित होने लगा। 1842 ई. में उसका संगठन तथा कलकत्ता से बाहर विस्तार श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर के नेतृत्व में हुआ। श्री टैगोर ने 'ब्रहमो–प्रण' की रचना की जिसमें सदस्यों के कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया गया।

केशब चन्द्र सेन (1838–1884) 'समाज' में 1858 में शामिल हुए तथा वे एक वाक चतुर तथा किसी भी बात को मनवाने में समर्थ थे । उन्होंने समाज की गतिविधियों को बंगाल के बाहर उत्तर प्रदेश, पंजाब मद्रास तथा बम्बई तक फैलाया। उन्होंने जाति व्यवस्था पर हमला कर, महिला अधिकारों की बात की। विधवा पुर्नर्विवाह को प्रोत्साहित कर तथा ब्रहम धर्म सुधारकों के मध्य जाति व्यवस्था (जो पहले केवल ब्राहमणों के लिए ही था) के मुद्दे को उठाकर ब्रह्म समाज को और सुधारवादी रूप दिया। उन्होंने धर्म के सार्वभौमिकीकरण पर जोर दिया। उनके सुधारवाद ने उन्हें देवेन्द्रनाथ के विरोध में खड़ा कर दिया। सन् 1866 में समाज आधिकारिक तौर पर 'आदि ब्रह्म समाज' (देवेन्द्रनाथ के नेतृत्व में) तथा 'ब्रह्म समाज ऑफ इंडिया' (केशव चन्द्र के नेतृत्व में) में विभाजित हो गया।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

एक अन्य बंगाली सुधारक जिन्होंने महिलाओं के मुद्दों पर अपनी आवाज उठाई वे थे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर। उन्होंने कन्याओं की शिक्षा के विस्तार पर भी कार्य किया क्योंकि



चित्र 18.2 ईश्वरचन्द्र विद्यासागर



आपकी टिप्पणियाँ

उनके अनुसार सभी समस्याओं की जड़ अशिक्षा थी। एक अंग्रेज व्यक्ति बेथम की सहायता से उन्होंने कई स्कूलों का निर्माण किया जो बालिकाओं की शिक्षा को ही समर्पित थे। उन्होंने बहुपत्नी प्रथा तथा वाल विवाह का पुरजोर विरोध किया। यह उनकी ही सक्रियता का परिणाम था कि विधवा पुनर्विवाह कानून 1856 में पारित हो गया जिसने सभी विधवा विवाहों को वैध करार दिया। उन्होंने ऐसे कई विवाह करवाए। उन्होंने इसका एक व्यक्तिगत उदाहरण भी प्रस्तुत किया जब उनके पुत्र ने एक विधवा से विवाह किया।

रामकृष्ण मिशन

19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बंगाल में एक और प्रसिद्ध सुधार आंदोलन हुआ जो कि बहुत जल्द देश के अन्य हिस्सों में फैल गया, वह था रामकृष्ण मिशन। यह आंदोलन एक आस्तिक तथा पुजारी गदाधर चटर्जी उर्फ स्वामी रामकृष्ण परमहंस के नेतृत्व में प्रारंभ हुआ (1836–86), जिन्होंने आंतरिक शांति सन् 1871–72 में प्राप्त की थी। उन्होंने सभी धर्मों की एकता तथा हिन्दू धर्म के विश्वासों और रीति रिवाजों के पालन पर जोर दिया। उसके मुख्य शिष्यों में थे नरेन्द्रनाथ उर्फ स्वामी विवेकानंद जिन्होंने रामकृष्ण को अपने गुरू के रूप में स्वीकार किया था। उन्होंने सन् 1893–97 के अपने अमेरिका तथा यूरोपीय दौरों के दौरान आध्यात्मिक हिंदूवाद का संदेश प्रसारित किया। उन्होंने सन् 1897 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की तथा बेलूर मठ का निर्माण किया। वे 1902 में चालीस वर्ष की अल्पायु में ही स्वर्ग सिधार गए। विवेकानंद धर्म की अवगति के, विविध वर्गों के, जाति व्यवस्था के, अस्पृश्यता के तथा अंधविश्वास इत्यादि के घोर विरोधी थे। उन्होंने जोर देकर कहा कि हिन्दुओं की यह हालत उनके द्वारा अपने इतिहास के प्रति अज्ञानता के कारण है। उन्होंने हिन्दुओं की आध्यात्मिक सर्वोच्चता को पश्चिम के स्वार्थी समाज से श्रेष्ठ सिद्ध किया। हालांकि उनका मानना था कि भारतीयों को पश्चिम से कार्य नीतियाँ, संगठन के स्वरुप तथा तकनीकी विस्तार सीखना चाहिए।

पश्चिमी भारत में सुधार आंदोलन

19 वी शदी में ही भारत के पश्चिमी हिस्सों में भी कई सुधारवादी आंदोलन प्रारंभ हुए। सुधारवादी जैसे के.टी.तेलंग, वी.एन.मांडलिक, तथा आर.जी.भंडारकर ने भारत के अतीत को गौरवान्वित किया। उनमें से कईयों ने सामाजिक बुराइयों, जैसे जाति व्यवस्था पर प्रहार कर विधवा विवाह को प्रोत्साहित किया जैसे कि करसोनदास मुलजी तथा दबोदा पडुरंग। उन्होंने सन् 1844 में **मानव धर्म सभा** तथा 1849 में **परमहंस मंडली** की स्थापना की। मंडली ने गुप्त रूप से गतिविधियों का संचालन किया। उनके सदस्यों ने शपथ ली कि वे जातिगत भेदभाव का पुरजोर विरोध करेंगे। मंडली का पतन 1860 के उपरांत हो गया जब इसके सदस्यों ने अपनी गोपनीयता खो दी। केशब चन्द्र सेन की बम्बई की दो यात्राओं 1864 तथा 1867 ने इस हिस्से में सामाजिक सुधारों पर प्रभाव डाला। उनकी यात्राओं के प्रत्यक्ष प्रभाव के परिणाम स्वरूप आत्माराम पांडुरंग द्वारा 1867 में प्रार्थना समाज का गठन हुआ। दक्कन शिक्षा समाज का संचालन करने वाले महादेव गोविन्द रानाडे इस संस्थान के पीछे मुख्य शक्ति थे। प्रार्थना समाज के सदस्य पहले परमहंस मंडली के कार्यकर्ता रह चुके थे। समाज ने मूर्तिपूजा, पुजारी के वर्चस्व, जाति भेदभाव का विरोध किया तथा एकेश्वरवाद का समर्थन किया। हिन्दुओं के



आपकी टिप्पणियाँ

अतिरिक्त इन्होंने ईसाइयत तथा बौद्ध धर्म की ओर भी देखा। उन्होंने सभी धर्मों में सत्य को ढूँढा। मध्यकालीन मराठा भक्ति सतों से प्रेरणा लेकर रानाडे ने एक ईश्वर– के सिद्धांत को स्थापित करने का प्रयत्न किया।

आर्य समाज

19वीं शताब्दी के अंत में सबसे प्रसिद्ध सुधार आंदोलन आर्य समाज रहा। यह पश्चिम भारत से प्रारंभ हुआ तथा पंजाब तथा अन्य हिन्दी भाषी क्षेत्रों में बहुत जल्दी फैल गया। इसकी स्थापना दयानंद सरस्वती (1824–83) ने की। सन् 1875 में उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना की तथा इसी वर्ष बम्बई आर्य समाज का गठन किया। लाहौर आर्य समाज 1877 में स्थापित हुआ। परिणामस्वरूप लाहौर आर्य समाज की गतिविधियों का मुख्य केन्द्र बन गया। दयानंद ने हिन्दू धर्म के आडंबरों का विरोध किया था वेदों पर अपनी शिक्षाएँ आधारित कीं। उनके अनुसार सही विश्लेषण के साथ वेद ही आखिरी सत्य हैं। उन्होंने पुराणों, बहु–ईश्वरवाद, मूर्तिपूजा तथा ब्राहमणों के वर्चस्व का विरोध किया। उन्होंने जनसाधारण तक पहुंचने के लिए हिन्दी भाषा को अपनाया। उन्होंने बाल विवाह का भी विरोध किया। वे जातिगत भेदभाव के घोर विरोधी थे क्योंकि उनके अनुसार निम्न जाति के लोगों द्वारा ईसाई तथा मुस्लिम धर्मान्तरण की सबसे बड़ी वजह यही थी।

दयानंद सरस्वती की मृत्यु (1883) के पश्चात् आर्य समाज बिखर गया। समाज को संघठित रखने तथा इसकी गतिविधियों को संघटित रखने के प्रयास के चलते दयानंद एंग्लो वैदिक ट्रस्ट तथा मैनेजमेंट सोसायटी की स्थापना लाहौर में 1886 में की गई। इसी वर्ष इस समिति ने स्कूल खोला, जिसमें लाला हंसराज प्रधानाध्यापक बने। हालांकि समाज के कुछ सदस्यों ने एंग्लो वैदिक शिक्षा का विरोध किया था। वे थे मुंशी राम (स्वामी श्रद्धानंद), गुरूदत्त, लेखराम तथा अन्य। उन्होंने तर्क दिया कि आर्य समाज की शैक्षणिक गतिविधियाँ संस्कृत आर्य विचारधारा तथा वैदिक शिक्षाओं पर आधारित होनी चाहिए तथा ब्रिटिश भाषा को कम से कम स्थान देना चाहिए। विरोध करने वालों का मानना था कि दयानंद के कथन ही पवित्र हैं तथा सत्यार्थ प्रकाश में दिए उनके संदेशों पर प्रश्न नहीं किया जा सकता। जबकि लाला हंसराज तथा लाजपत राय ने इस बात पर जोर दिया कि दयानंद एक सुधारक थे न कि कोई ऋषि या साधु। डी ए. वी. प्रबंध समिति के नियंत्रण पर भी विवाद उठे। इन मतभेदों के चलते सन् 1893 में आर्य समाज का औपचारिक विभाजन हो गया जहाँ मुंशीराम ने अपने समर्थकों के साथ गुरूकुल आधारित शिक्षा की शुरुआत की। तत्पश्चात् 1893 के बाद आर्य समाज के दो हिस्से हो गए–डी. ए. वी. समूह तथा गुरुकुल समूह।

मुंशी राम तथा लेख राम ने स्वयं को वेद शिक्षा के प्रचार– प्रसार के लिए समर्पित कर दिया। तथा मिशनरियों के प्रभाव से शिक्षा को बचाने के लिए जालंधर में आर्यकन्या पाठशाला का निर्माण किया। सन् 1902 में मुंशीराम ने हरिद्वार में कांगड़ी में एक गुरूकुल की नींव रखी। यह संस्थान भारत में आर्य समाज की शिक्षा शाखा का केन्द्र बन गया। यहीं पर मुंशीराम ने संन्यास लिया तथा स्वामी श्रद्धानंद बन गए। आर्य समाज की दोनों शाखाएँ अर्थात् डी. ए. वी. तथा गुरूकुल शिक्षा के मुद्दे पर तो अलग–अलग मतों वाली थीं किंतु महत्त्वपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक तथा सामाजिक मुद्दों पर एक थीं। पूर्ण रूप से आर्य समाज ने हिन्दुओं के ईसाई तथा इस्लाम में धर्मान्तरण को पूर्ण रूप से गलत



आपकी टिप्पणियाँ

ठहराया तथा धर्मान्तरित हुए हिन्दुओं की पुनः स्वधर्म में वापसी करवाई। इस प्रक्रिया को शुद्धि कहा गया। उन्होंने देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी भाषा के प्रयोग पर बल दिया। सन् 1980 में आर्य समाज ने गौ वध के मुद्दे को उठाया तथा गौरक्षिणी सभा की नींव डाली। आर्य समाज ने छूआछूत के खिलाफ आंदोलन किया तथा जाति भेद की समाप्ति पर जोर दिया।

मुस्लिमों में सुधार आंदोलन

मुस्लिमों के शिक्षित एवं संभ्रांत वर्ग में सत्ता खोने की पीड़ा थी। इसके पीछे मुख्य वजहें थीं–मुगलों से अंग्रेजों को सत्ता का हस्तांतरण तथा फारसी की बजाय अंग्रेजी का रोजगार एवं दफ्तर की भाषा बन जाना। 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में बंगाल में किसानों द्वारा प्रारंभ किए सुधारवादी आंदोलन फराजिस में विशुद्ध इस्लाम पर लौटने पर बल दिया। उन्होंने दिल्ली के शाह बलियतुल्लाह (1703–63) की शिक्षाओं का अनुसरण किया जिन्होंने लगभग एक शताब्दी पूर्व इस्लाम की शुद्धता को पुनः पाने पर बल दिया था तथा मुस्लिमों के बीच बढ़ रही गैर मुस्लिम परम्पराओं का विरोध किया था। फराजिस के संस्थापक शरीयत उल्ला (1781–1839) ने शुद्धिकरण की शिक्षाएँ दी तथा फैरज की ओर लौटने को कहा जैसे–कलीम अर्थात इस्लाम के आवश्यक कर्तव्य, सलत (नमाज), सॉन (रोज़ा), जकात (गरीबों को मदद) तथा हज। उन्होंने एक ही खुदा अर्थात् तौहीद के विचार को बढ़ावा दिया। अन्य आंदोलन जो मुसलमानों के बीच हुआ, वह था **तारीख-ए-मुहमदिया** जो कि टीटू मीर के नेतृत्व में हुआ तथा सैय्यद अहमद बरेलवी के नेतृत्व में आगे बढ़ा। इस आंदोलन ने भी अतीत की शुद्धि पर लौटने पर जोर दिया। एक अन्य आंदोलन उलेमा वर्ग (मुस्लिम धर्माधिकारी) की शक्ति के पतन को लेकर संयुक्त क्षेत्र के देवबंद में प्रारंभ हुआ।

इस्लामी विचारों की दिल्ली शाखा दिल्ली कॉलेज (वर्तमान में जाकिर हुसैन कॉलेज) से प्रारंभ हुई जिसने एक समांनांतर शिक्षा की शुरुआत की –इस्लामी तथा ब्रिटिश। सन् 1830 के शुरु में कॉलेज ने मुस्लिमों में शिक्षा के प्रति आधुनिक चेतना का विस्तार किया। हालाँकि 1857 के विद्रोह तथा परिणामस्वरूप ब्रिटिश सेनाओं के दमन ने इस बौद्धिक उत्साह को दबा दिया। किंतु आधुनिकीकरण की इच्छा एक वर्ग के भीतर तीव्र रूप से बनी रही।

सैय्यद अहमद खान (1817–1898) के नेतृत्व में मुस्लिमों को नई दिशा मिली जिनके अनुसार आधुनिक शिक्षा भारतीय मुस्लिमों की स्थिति में सुधार के लिए आवश्यक थी। उन्होंने यूरोपीय विज्ञान तथा तकनीकी शिक्षा पर जोर दिया। सन् 1866 में उन्होंने ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन की नींव डाली। वे सन् 1869–1870 के दौरान एक वर्ष तक इंग्लैंड में रहे। वहाँ से वापस आकर उन्होंने अपने मुस्लिम समुदाय से अंग्रेज समाज की कुछ सकारात्मक विशेषताओं को अपनाने की सलाह दी, जैसे अनुशासन, क्रमबद्धता, कुशलता तथा शिक्षा का उच्च स्तर। उन्होंने संकेत दिया कि कुरान तथा प्राकृतिक विज्ञान में कोई भी मूलभूत अन्तर नहीं है। उन्होंने सन् 1875 में अलीगढ़ में मुहम्मद एंग्लो ओरिएंटल कॉलेज की स्थापना की जो मुसलमानों के लिए आधुनिक शिक्षा का मुख्य केन्द्र बन गया। विद्यार्थी प्रारंभिक स्तर पर सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम का अनुसरण करते थे तथा माहौल इस्लामी होता था। सन् 1878 में महाविद्यालय में



आपकी टिप्पणियाँ

कक्षाएँ प्रारम्भ हुई तथा गैर मुस्लिमों ने भी नामांकन कराया। सन् 1886 में सैय्यद अहमद खान ने मुहम्मद एंग्लो ओरिएंटल शैक्षणिक सम्मेलन की नींव डाली। अलीगढ़ के मुस्लिम स्नातकों ने, जो कि 1882–1902 के दौरान 220 की संख्या में थे, मुस्लिम बुद्धिजीवियों को प्रभावित किया तथा समाज को साथ एक योग्य तथा आधुनिक नेतृत्व प्रदान किया।

सुधार आंदोलनों के प्रभाव

19वीं शताब्दी में हुए सुधार आंदोलनों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार की। कुछ महिला आंदोलनकारियों ने भी 19वीं शताब्दी के सामाजिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। इनमें मुख्य नाम थे, पश्चिम क्षेत्र में पंडिता रामाबाई, मद्रास में सिस्टर सुब्बालक्ष्मी एवं बंगाल में रोकया सखावत हुसैन। सुधार आंदोलनों ने आधुनिक मध्यवर्ग को जन्म दिया जो अपने अधिकारों के प्रति सजग था। कुछ आंदोलनकारियों ने ऐसे ब्रिटिश कानूनों का विरोध किया जो उनके अनुसार धर्म में दखलंदाजी करने वाले थे। शादी की आयु 10 से बढ़ा कर 12 किए जाने के मामले से यह स्पष्टतः दिखाई देता है। हमें यह भी प्रतीत होता है कि इन सुधार आंदोलनों ने कुछ ऐसे भी मुद्दे उठाए जो कि अन्य सम्प्रदायों के हित के खिलाफ थे तथा आगे चलकर जिन्होंने सम्प्रदायिकता को हवा दी।

पाठगत प्रश्न 18.2

1. राममोहन राय द्वारा उठाए गए मुख्य मुद्दों को विस्तार से लिखिए।

2. देवेन्द्रनाथ टैगोर तथा केशव चन्द्र सेन के मध्य विवाद के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

3. आर्य समाज विभाजित क्यों हुआ? इसकी भिन्न–भिन्न शाखाओं के नेता कौन थे?

4. फराजी आंदोलन ने किस मुद्दे पर जोर दिया?

5. मुस्लिम समुदाय को आधुनिक बनाने में सैय्यद अहमद खान की भूमिका की समीक्षा कीजिए।

18.3 भारत में पश्चिमी शिक्षा का उदय

ब्रिटिश शासक भारत में अपनी विचारधारा तथा शिक्षा के प्रचार को लेकर बहुत ही उत्सुक थे। यह देश में उनकी जड़ों को मजबूत कर सकता था। इसके अतिरिक्त इसकी वजह से भारत में ब्रिटिश शासन के स्वामिभक्त वर्ग का उदय भी हो सकता था। ब्रिटिश शिक्षा इस उद्देश्य की प्राप्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण माध्यम थी। 19 से 20 वीं शताब्दी के दौरान ब्रिटिश शिक्षा को लोकप्रिय बनाने के लिए अनेक प्रयास किए गए तथा तदनुसार



आपकी टिप्पणियाँ

आधारभूत ढांचे बनाए गए। आरंभ में वारेन हेस्टिंग्स, कार्नवालिस, विलियम जोन्स, जोनाथन डंकन तथा अन्य प्राच्यविद प्रशासकों एवं विद्वानों ने भारतीय प्राचीन शिक्षा को ही प्रमुखता दी। किंतु शनैः शनै : उनके विचार अपना महत्त्व खोते चले गए। यह माना गया कि ब्रिटिश साम्राज्य को अपना सांस्कृतिक अभियान भारत में पूर्ण करना है, इसलिए पश्चिमी विज्ञान तथा सभ्यता को लोकप्रिय बनाना होगा।

ब्रिटिश शिक्षा की शुरुआत तथा चार्टर एक्ट 1813

भारत में ब्रिटिश शिक्षा की शुरुआत 18वीं शताब्दी में कुछ चैरिटी स्कूलों द्वारा कलकत्ता, मद्रास तथा मुम्बई में यूरोपीय तथा एंग्लो–इंडियन बच्चों की शिक्षा द्वारा हुई। हालांकि ईस्ट इंडिया कंपनी ने कई तरीकों से इन स्कूलों को सहयोग दिया किंतु भारतीयों को अंग्रेजी पढ़ाने में कोई रुचि नहीं दिखलाई। इसकी शुरुआत अंततः 1813 में चार्टर एक्ट द्वारा हुई। इस एक्ट ने मिशनरियों को पूरे भारत में यात्रा करने की अनुमति दी। उन मिशनरियों का उद्देश्य भारत में पश्चिमी शिक्षा का प्रचार तथा अंग्रेजी के माध्यम से ईसाइयत का प्रचार–प्रसार था। विशेष रूप से, इस एक्ट ने (i) भारतीय शिक्षित वर्ग को प्रोत्साहित करने, साहित्य के विकास तथा (ii) भारतीयों के बीच विज्ञान के प्रचार प्रसार पर कंपनी को वार्षिक एक लाख रुपए खर्च करने को कहा। हालाँकि इस एक्ट की व्याख्या अलग–अलग लोगों ने भिन्न–भिन्न रूपों में की।

शिक्षा के माध्यम तथा मैकाले की भूमिका पर बहस

भारत में जिस शिक्षा पर कंपनी पैसा खर्च कर रही थी, उसके माध्यम को लेकर बहसें प्रारंभ हो गईं। प्राचीन विद्वानों तथा ब्रिटिश व्यवस्था के समर्थकों के बीच तमाम बहसें हुईं। अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में माहौल तब बनना प्रारंभ हुआ जब बेनटिंक ने गर्वनर जनरल का पदभार सँभाला (1828)। सन् 1834 में टी. बी. मैकाले उसकी सलाहकार समिति में कानूनी सदस्य के रूप में सम्मिलित हुआ। मैकॉले अंग्रेजी शिक्षा का महान पक्षधर था। वह जन निर्देशों की सामान्य समिति का अध्यक्ष बनाया गया। ब्रिटिश आधारित शिक्षा के समर्थक अथवा ब्रिटिश विद, मैकॉले के नेतृत्व में विजयी सिद्ध हुए। मैकाले ने भारतीय शिक्षा पर अपना प्रपत्र फरवरी, सन् 1835 में जारी किया। यह संदेश भारत में अंग्रेजी शिक्षा का पथप्रदर्शक सिद्धांत बन गया। सरकार ने संकल्प लिया कि भविष्य में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से यूरोपीय साहित्य तथा विज्ञान का प्रचार–प्रसार उसका उद्देश्य होगा। भविष्य में कंपनी द्वारा खर्च किया गया कोष इसी उद्देश्य के लिए प्रयुक्त होगा। इस कदम का अर्थ यह हुआ कि अब भारत में अंग्रेजी शिक्षा पश्चिमी ज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम बन गई थी।

मैकॉले का स्पष्ट मानना था कि भारत में अंग्रेजी शिक्षा एक ऐसे वर्ग का निर्माण करेगी जो कि 'शक्ल सूरत से तो पूरी तरह भारतीय होगा किंतु स्वभाव में अंग्रेज'। यह उम्मीद जताई गई कि यह वर्ग भारत में ब्रिटिश राज का सुदृढ़ स्तंभ बनेगा। यह समझा गया कि अंग्रेजी माध्यम से प्रशिक्षित ये भारतीय पश्चिमी नीतियाँ तथा नैतिकता सीखेंगे जब औपनिवेशिक ढांचे के साथ जुड़ने की बात आएगी तो ये भारतीय भारत में ब्रिटिश शासन को मजबूत करेंगे। यह डाउनवार्ड फिल्ट्रशन सिद्धांत था। यह शिक्षा जन सामान्य के लिए न होकर पढ़े लिखे तथा कुलीन वर्ग के लिए थी। इस सिद्धान्त के अनुसार यह माना गया कि इन कुलीन भारतीयों के माध्यम से अंग्रेजी शिक्षा नीति जन साधारण में फैलेगी। इन प्रशिक्षित भारतीयों ने जब शिक्षकों का कार्य किया तो क्षेत्रीय भाषाओं में प्राथमिक शिक्षा



का स्वतः ह्रास होने लगा। मैकॉले को यकीन था कि सीमित कोष से वह जन साधारण को ब्रिटिश में शिक्षित नहीं कर पाएगा। इससे बेहतर यह था कि ये मुट्ठी भर भारतीय अंग्रेज भाषांतरकारों का काम करते। यह वर्ग स्थानीय भाषा तथा साहित्य को समृद्ध कर पश्चिमी विज्ञान तथा साहित्य को जन–जन तक पहुंचाने में मदद करेगा। यह ब्रिटिश शासकों को बहुत ही कम खर्च पर पश्चिमी सभ्यता को जन–जन तक फैलाने में मदद की। इस सिद्धांत ने ब्रिटिश अफसरशाही में भारतीयों को अधीनस्थ पदों जैसे कि क्लर्क आदि बनने के योग्य बनाया।

वुड्स डिस्पैच/वुड योजना

19वीं शताब्दी में भारत में शिक्षा, विशेषकर अंग्रेजी शिक्षा के विकास का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा था राज्य सचिव चार्ल्स वुड द्वारा तैयार किया गया दिशा–निर्देश। यह सन् 1854 में जारी किया गया तथा वुड घोषणा पत्र के नाम से जाना गया। इस विस्तृत योजना ने 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित किया। इसने यूरोपीय शिक्षा को भारतीय नक्शे पर पूर्णतः स्थापित कर दिया।

इसकी मुख्य विशेषताएँ थीं

1. इसने भारत में शिक्षा का उद्देश्य यूरोपीय ज्ञान के प्रसार को माना।
2. उच्च शिक्षा के लिए माध्यम अंग्रेजी ही रहेगी तथा स्थानीय भाषाएँ ऐसी माध्यम होंगी जिनके द्वारा यूरोपीय ज्ञान जन सामान्य तक पहुँच सके।
3. इसने स्कूलों में कुछ श्रेणियों का प्रस्ताव दिया। यथा, देशी भाषा की प्राथमिक पाठशालाएँ गांव के स्तर पर, उसके बाद माध्यमिक स्तर पर एंग्लो देशभाषा के उच्च विद्यालय तथा जिला स्तर पर संबद्ध महाविद्यालय।
4. इस घोषणा पत्र ने पहली बार शिक्षा क्षेत्र में निजी प्रयासों को प्रोत्साहित करने हेतु सरकारी अनुदान की सिफारिश की।
5. इसने ब्रिटिश शासन के अधीनस्थ सभी पाँच क्षेत्रों में एक निदेशक के नेतृत्व में जन निर्देश विभाग की स्थापना का भी प्रस्ताव दिया। इस विभाग का उद्देश्य क्षेत्र विशेष में शिक्षा की प्रगति की समीक्षा करना था। जन निर्देश विभाग की स्थापना सन् 1855 में हुई तथा इसने जन निर्देश समिति एवं शिक्षा परिषद् (कमिटी ऑफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन एंड काउंसिल ऑफ एजुकेशन) का स्थान ले लिया।
6. इसने कलकत्ता, मुम्बई तथा मद्रास में लंदन विश्व – विद्यालय की तर्ज पर विश्वविद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव भी दिया जो कि परीक्षाओं का आयोजन करता तथा उपाधि देता। सन् 1857 में कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई।
7. औपचारिक शिक्षा के अतिरिक्त इस घोषणा पत्र ने व्यावसायिक शिक्षा के महत्त्व पर भी बल दिया तथा तकनीकी स्कूल और महाविद्यालयों की स्थापना की भी वकालत की।
8. इसने भावी शिक्षकों हेतु प्रशिक्षण संस्थानों का भी प्रस्ताव रखा।
9. इसने महिलाओं के लिए शिक्षा का भी समर्थन किया। परिणाम स्वरुप कई आधुनिक बालिका विद्यालय खोले गए जिन्हें सरकार की तरफ से सहायता भी प्राप्त हुई।



आपकी टिप्पणियाँ

हंटर कमीशन

शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति की समीक्षा करने के लिए वुड के घोषणा पत्र के पश्चात् सन् 1882 में डब्ल्यू डब्ल्यू हंटर के नेतृत्व में हंटर कमीशन की स्थापना हुई। यह मुख्यतः प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा पर ही केन्द्रित था। हंटर कमीशन ने ढेर सारी संस्तुतियाँ कीं। उसने प्राथमिक शिक्षा पर विशेष बल दिया जिसका नियंत्रण जिला तथा नगरपालिका बोर्ड को स्थानांतरित करने की बात कही गई। माध्यमिक स्तर पर दो संकाय होने चाहिएँ–एक तो साक्षरता शिक्षा जो विश्वविद्यालय शिक्षा का रुख करे तथा दूसरी व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने वाला संकाय। शिक्षा के क्षेत्र में निजी प्रयासों को भी बढ़ावा दिया गया। इसने चुनिंदा शहरों से बाहर निकलकर महिलाओं की शिक्षा व्यवस्था पर विशेष ध्यान देने को कहा। अगले दो दशकों तक हंटर की सिफारिशों का असर चारों ओर दिखाई पड़ा। माध्यमिक तथा प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई। सन् 1882 में पंजाब विश्वविद्यालय तथा सन् 1887 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।

पाठगत प्रश्न 18.3

1. किस एक्ट ने ईस्ट इंडिया कंपनी को शिक्षा पर सालाना एक लाख रुपए खर्च करने का निर्देश दिया।

2. भारत में ब्रिटिश शिक्षा का जबरदस्त समर्थक कौन थ?
   (क) जोनाथन डंकन
   (ख) टी बी मैकाले
   (ग) वारेन हेस्टिंग्स
   (घ) विलियम जोन्स

3. मैकॉले द्वारा भारत में ब्रिटिश शिक्षा के विस्तार के उद्देश्य को संक्षेप में समझाइए।

4. भारत में शिक्षा नीति के निर्देशन में वुड के घोषणा–पत्र की महत्ता को रेखांकित कीजिए।

5. हंटर कमीशन किससे संबंधित था?

18.4 भारत में पत्रकारिता का विकास

प्रेस तथा पत्रकारिता के उदय ने आधुनिक युग के दौरान एक नई चेतना को जन्म दिया। छपाई तकनीक के विस्तार ने पुस्तकों को आसानी से उपलब्ध कराया।



आपकी टिप्पणियाँ

दूसरे शब्दों में, छपाई ने भारत में संवाद के मार्ग खोले। छपाई की नई तकनीक ने पत्रकारिता तथा प्रेस की प्रगति में अहम भूमिका निभाई। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अंग्रेजी भाषा में समाचार पत्र का प्रकाशन आरंभ हो गया। 19वीं शताब्दी के दौरान स्थानीय भाषाओं में भी कई पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारंभ हो गया। जेम्स ऑगस्टस हिक्की ने सन् 1780 में बंगाल गजट के नाम से भारत में पहला समाचार पत्र प्रकाशित किया। इसके पश्चात् बंगाल, मुम्बई तथा मद्रास से समाचार पत्रो की श्रृंखला आरंभ हो गई। कुछ मुख्य समाचार पत्र थे–कलकत्ता क्रोनिकल (1786) मद्रास कुरियर (1788) तथा बाम्बे हेराल्ड (1789)।

ब्रिटिश के आरंभिक समाचार पत्र भारत में रह रहे यूरोपीय तथा एंग्लो इंडियन समुदाय के लिए प्रकाशित होने थे। हालांकि कंपनी के अधिकारी अपने द्वारा किए जा रहे दुष्कृत्यों के समाचारों से चिंतित थे, अतः तमाम तरह के प्रतिबंध लागू किये गए। लॉर्ड वेलेस्ली (1796–1804) ने 1799 में सेंसरशिप ऑफ प्रेस एक्ट के जरिए कड़े प्रतिबंध लगाए। इस अधिनियम में चेतावनी दी गई। कि सभी सूचनाएँ सरकार के सचिव द्वारा अनुमोदित होनी चाहिए। प्रकाशक, संपादक तथा मालिक का नाम हर अंक में उल्लिखित होना चाहिए। लॉर्ड हेस्टिंग्स (1813–23) ने 1818 ई. में इनमें से कुछ नियमों में ढील दी तथा प्रेस से प्री–सेंसरशिप हटा ली। हालांकि, यह ढील अस्थायी ही सिद्ध हुई क्योंकि 1823 में कार्यवाहक गवर्नर जनरल का पद संभालने वाले जॉन एडम्स ने इसी वर्ष कुछ और कड़े नियम प्रेस पर थोप दिये। किसी प्रेस का संचालन करने एवं प्रयोग करने के लिए लाइसेंस का होना आवश्यक कर दिया गया। गवर्नर जनरल के पास लाइसेंस निरस्त करने का अधिकार था।

बाद के गवर्नर जनरल चार्ल्स मेटेकैफे (1835–1836) स्वतंत्र प्रेस के पक्षधर थे। उन्होंने 1823 के नियमों को निरस्त कर दिया गया। मेटकैफे प्रेस अधिनियम चाहता था कि प्रकाशक केवल अपने नाम तथा प्रकाशन के स्थान एवं परिसर की घोषणा कर दे। इस उदारवादी कदम ने प्रेस की प्रगति पर सकारात्मक प्रभाव डाला तथा 1857 तक जब तक कि विद्रोह के चलते पुनः कड़े नियम नहीं लगाये गए बड़ी संख्या मे समाचार पत्र प्रकाशित हुए। भारतीय भाषाओं के समाचार पत्र पर सबसे कठोर प्रतिबंध लॉर्ड लिटन का वर्नाकुलर प्रेस एक्ट 1878 का था। एक अत्यन्त ही रंगभेदी तथा भेदभाव वाले इस अधिनियम ने सरकार के खिलाफ भारतीय भाषाओं की अभिव्यक्ति का गला घोंटने का प्रयास किया। ये प्रतिबंध ब्रिटिश समाचार पत्रों पर लागू नहीं हुए। यह लिटन की रूढ़िवादी तथा घमंडी सोच का परिचायक था। इसने सरकार को अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय बुद्धिजीवियों की लेखनी पर नियंत्रण का अधिकार दे दिया। जिलाधिकारी के विरूद्ध अपील करने का प्रावधान नहीं था। इस अधिनियम को सन् 1882 में लॉर्ड रिपन द्वारा बदल दिया गया जो अपने उदारवादी दृष्टिकोण की वजह से भारतीय जनता में बहुत लोकप्रिय था।

पाठगत प्रश्न 18.4

1. भारत का पहला समाचार पत्र कौन–सा था और यह कब प्रकाशित हुआ था?



आपकी टिप्पणियाँ

2. समाचार पत्रों को प्रगति में प्रिंटिंग प्रेस की महत्ता को रेखांकित कीजिए।

3. सेंसरशिप ऑफ प्रेस एक्ट 1799 के जरिए कौन से प्रतिबंध लागू किए गए?

4. चार्ल्स मेटेकैफे ने क्या सकारात्मक बदलाव किए?

5. वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट 1878 क्या था?

आपने क्या सीखा

आपने पढ़ा कि भारत के प्रति ब्रिटिश शासकों का रुख सर्वथा भिन्न था। उनके द्वारा बनाई गई नीतियाँ उनके वैचारिक झुकाव को ही दर्शाती हैं 19वीं शताब्दी के दौरान सुधार आंदोलनों की कड़ियों ने भारत को झकझोर दिया। इन आंदोलनों ने अन्य मुद्दों यथा, महिलाओं की स्थिति, जातिगत भेदभाव, धार्मिक कुरीतियाँ, समाजों का आधुनिकीकरण तथा शिक्षा के पिछड़ेपन को भी संबोधित किया। ब्रिटिश नीति निर्मातओं ने ब्रिटिश शिक्षा को लोकप्रिय बनाने का भी प्रयत्न किया। जिसके परिणामस्वरूप देश पर उनका नियंत्रण और मजबूत हुआ। इस अवधि के दौरान भारतीय तथा ब्रिटिश दोनों ही समाचार पत्र फले–फूले। हालांकि प्रतिबंधों ने प्रेस की स्वतंत्रता को प्रभावित अवश्य किया। इस अवधि के दौरान हुए सामाजिक परिवर्तनों ने अंततः ब्रिटिश शासन के खिलाफ स्वतंत्रता आंदोलन की नींव डाली।

पाठांत प्रश्न

1. भारत में ब्रिटिश नीतियों के निर्धारण में विचार धाराएं आवश्यक क्यों थी?
2. भारत के अतीत की लोकप्रियता में प्राच्यविदों का क्या योगदान था?
3. 19वीं शताब्दी में हिन्दू समाज में कौन–कौन सी कुरीतियाँ व्याप्त थीं?
4. इस अवधि के दौरान हुए सुधार आंदोलनों में महिलाओं से संबंधित मुद्दे कितने आवश्यक थे?
5. पूर्वी एवं पश्चिमी सभ्यताओं के प्रति विवेकानंद के क्या विचार थे?
6. आर्य समाज द्वारा उठाए गए महत्त्वपूर्ण मुद्दे कौन–कौन से थे?
7. 19वीं शताब्दी में मुस्लिम समुदाय में हुए महत्त्वपूर्ण सुधारवादी आंदोलनो की समीक्षा कीजिए। उनके द्वारा कौन–कौन से मुद्दे उठाए गए?
8. भारत में ब्रिटिश शिक्षा के विस्तार पर मैकॉले के विचारों पर प्रकाश डालिए।



आपकी टिप्पणियाँ

9. डाउनवार्ड फिल्ट्रेशन का सिद्धांत क्या था?

10. वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट 1878 में क्या कमियाँ थी?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

18.1

1. कोलकाता मदरसा (1781), एशियायिक सोसायटी ऑफ बंगाल (1789) तथा बनारस में संस्कृत महाविद्यालय (1794)
2. एशियाटिक सोसायटी ने संस्कृत के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के अनुवाद किए।
3. लॉर्ड वैलेजली
4. इंग्लैंड
5. 1813 ई. का चार्टर एक्ट

18.2

1. स्त्री शिक्षा का अभाव, बहुपत्नीवाद तथा सती प्रथा जैसे मुद्दे। देखें 18.2 अनुच्छेद 3।
2. केशव चंद्र सेन देवेन्द्रनाथ टैगोर की तुलना में सामाजिक संदर्भ अधिक सुधारवादी थे। देखें 18.3 अनुच्छेद–5
3. 1893; डी ए वी विभाग : लाला हंसराज; लाला लाजपत राय; गुरूकुल विभाग; मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानंद) लेखराम तथा गुरूदत
4. धार्मिक शुद्धिकरण तथा फैराज अर्थात् इस्लाम के मूल कर्तव्यों की ओर वापसी।
5. उन्होंने भारत में मुस्लिम संप्रदाय के लिए आधुनिक शिक्षा पर जोर दिया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने अलीगढ़ में मुस्लिम एंग्लो ओरिएंटल कॉलेज की स्थापना की। देखे 18.2 अनुच्छेद 4

18.3

1. सन् 18.13 ई. का चार्टर एक्ट
2. टी बी मैकाले
3. उसके मुताबिक अंग्रेजी शिक्षा के विस्तार से ऐसे वर्ग का उदय होगा जो ब्रिटिश शासन का समर्थन करेगा। देखें 18.3 अनुच्छेद 4
4. यह घोषणा पत्र की एक विस्तृत योजना था जो यूरोपीय मॉडल पर आधारित था, जिसने भारत की शिक्षा नीति को 50 वर्षों तक निर्देशित किया। देखें 18.3 अनुच्छेद 5
5. यह वुड के घोषणा पत्र के पश्चात् हुई शिक्षा में प्रगति से संबंधित था तथा मुख्यतः प्रारंभिक तथा माध्यमिक शिक्षा से संबंधित था। देखें 18.3 अनुच्छेद 6



18.4

1. बंगाल गजट– 1780
2. छपाई तकनीक के व्यापक प्रयोग ने समाचार पत्रों की प्रगति तथा बड़ी मात्रा में किताबों के प्रकाशन को बढ़ावा दिया। देखें 18.4 अनुच्छेद।
3. पूरी सामग्री सरकार के सचिव द्वारा अनुमोदित होनी चाहिए थी। प्रकाशक के नाम के अतिरिक्त हर अंक में संपादक तथा मालिक के नाम का उल्लेख भी अनिवार्य था।
4. उसने 1823 में प्रेस पर लगे नियमों मे ढील दी। अब प्रकाशकों के लिए मात्र अपना नाम तथा प्रकाशन स्थान पता देना अनिवार्य था। देखें 18.4 अनुच्छेद–3
5. 1878 के वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट ने भारतीय भाषाओं की पत्र–पत्रिकाओं पर पाबंदी लगाई।

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. 18.1 – प्रशासन एवं आर्थिक नीतियों से संबंधित विचारों के प्रभाव के अंतर्गत
2. 18.2 अनुच्छेद 2, 18.2.1 एवं 2.2
3. 18.2.2 तथा 18.2.3
4. 18.2.5 – आर्य समाज के अधीन
5. 18.2.3 रामकृष्ण मिशन के अंतर्गत
6. 18.2.7
7. 18.3 तथा 18.1.1
8. 18.3.2 अनुच्छेद – 1
9. 18.3.2 अनुच्छेद 2
10. 18.4 अनुच्छेद 3

शब्दावली

1. **ओरिएंटलिस्ट -प्राच्यवादी** – अंग्रेज प्रशासकों का वह समूह जिसने भारत के गौरवशाली अतीत को लोकप्रिय बनाया।
2. **व्हिग का राजनीतिक दर्शन** – कार्यपालिका, विधायिका तथा न्याय पालिका सरकार के पृथक अंग होने चाहिए।
3. **बंगाल पुनर्जागरण** – बंगाल के भव्य इतिहास की पुनः खोज तथा भाषा एवं साहित्य का आधुनिकीकरण।
4. **सती प्रथा** – पति की चिता पर पत्नी को जीवित जलाना
5. **बहुपत्नी प्रथा** – एक से अधिक पत्नियाँ रखना



आपकी टिप्पणियाँ

6. ब्रह्मो प्रण	–	देवेन्द्रनाथ द्वारा लिखित। इसमें ब्रह्म समाज के सदस्यों के कर्त्तव्यों तथा दायित्वों का विवरण है।
7. आध्यात्मिक हिन्दूवाद	–	हिन्दू धर्म की आध्यात्मिकता का स्वामी विवेकानंद द्वारा प्रचार
8. मूर्तिपूजा	–	मूर्तियों की पूजा
9. एकेश्वरवाद	–	एक ही ईश्वर में विश्वास रखना।
10. एंग्लोवैदिक शिक्षा	–	आर्य विचारधारा, अंग्रेजी शिक्षा के साथ वैदिक ग्रंथो की शिक्षा पर बल देनेवाली शिक्षा पद्धति।
11. शुद्धि	–	धर्मान्तरण के खिलाफ आर्य समाज द्वारा चलाया गया अभियान। धर्मान्तरित हुए हिन्दुओं को पुनः हिन्दू धर्म में लाना।
12. गौरक्षिणी सभा	–	गायों की रक्षा के लिए समिति
13. फराइज	–	इस्लाम की पवित्रता को कायम रखना तथा गैर इस्लामिक रीति–रिवाजों का इस्लाम में प्रवेश के लिए विरोध करना। हज, नमाज, रोज़ा, जकात तथा विश्वास पर जोर डालना।
14. प्राकृतिक-विज्ञान	–	प्रकृति को समझने का प्रयास
15. चार्टर एक्ट	–	रानी एलिजाबेथ द्वारा दिया गया कंपनी को अधिकार पत्र, व्यापार में विशेषधिकार तथा संबंधित दिशा–निर्देश जिनकी समय–समय पर समीक्षा होती थी।
16. वर्नाक्युलर प्रेस	–	स्थानीय भाषाओं के समाचार पत्र।



आपकी टिप्पणियाँ

19

कंपनी शासन का जन विरोध

भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के शासनकाल के प्रारंभिक वर्षों में अनेक बगावतें और विद्रोह हुए। जैसा कि हमें मालूम है, 1750 ईस्वी से 1850 ईस्वी तक की 100 वर्षों की अवधि में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत को उपनिवेश में बदलने के लिए विभिन्न उपाय किए। इस अवधि के दौरान भारत में ब्रिटिश द्वारा अनेक नीतियाँ अपनाई गईं, जो मुख्यतः ब्रिटिश के हित में थीं। अनेक भू–राजस्व प्रयोग किए गए, जिनके कारण किसानों को मुश्किलों का सामना करना पड़ा। स्थानीय प्रशासन निर्धन ग्रामीणों को सहायता और प्राकृतिक न्याय देने में विफल रहा। इस पाठ में हम जानेंगे कि औपनिवेशिक प्रशासन में किसानों और आदिवासी लोगों ने कैसे दुःख उठाए तथा उन्होंने विद्रोह क्यों किए। महत्त्वपूर्ण जन संघर्षों के संक्षिप्त वर्णन से हम इन बगावतों के स्वरूप और महत्व का विश्लेषण कर सकेंगे। 1857 का विद्रोह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अंग्रेजी शासन के खिलाफ इस एकीकृत आंदोलन में पहली बार विभिन्न जाति, धर्म और वर्ग की पृष्ठभूमि वाले लोग एकजुट हुए।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- 1857 तक हुए जन विद्रोहों की पृष्ठभूमि के बारे में चर्चा कर सकेंगे;
- इन विद्रोहों के स्वरूप और महत्व की व्याख्या कर सकेंगे;
- उन मुद्दों को पहचान सकोगे, जिनके कारण 1857 का विद्रोह हुआ और
- 1857 के विद्रोह की सार्थकता और महत्त्व का विश्लेषण कर सकेंगे।

19.1 जन विद्रोह के लिए जिम्मेदार परिस्थितियाँ

प्रारंभिक पाठों में हम पढ़ चुके हैं कि भारत में ब्रिटिश शासन ने भारतीयों के सामाजिक एवं–आर्थिक जीवन में अनेक परिवर्तन किए। औद्योगिक क्रांति (इसके बारे में हम अगले पाठों में और अधिक जानेंगे) के चलते इंग्लैंड को अन्य राष्ट्रों में

कच्चा माल और बाजार ढूँढना आवश्यक हो गया। इस आवश्यकता ने भारत में औपनिवेशिक शासकों की नीति को प्रभावित किया। भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश शासकों के हितों के अनुकूल बना लिया गया। आओ हम इस अवधि के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था में आए कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों का स्मरण करते हैं।

- सम्पत्ति से संबंधित नियमों का एक नया संग्रह सामने लाया गया तथा भूमि को बेचे जाने योग्य वस्तु बनाया गया।
- भूमि के निजी स्वामित्व को मान्यता प्रदान की गई तथा स्वामी और भूमि पर खेती करने वाले किसान के बीच अनेक मध्यस्थ आ गए।
- ब्रिटिश पूंजीपतियों को लाभ पहुँचाने के लिए खाद्य फसलों की जगह वाणिज्यिक फसलों को बढ़ावा दिया गया।
- व्यापारियों, नौकरशाहों और भूस्वामियों द्वारा भूमि में सट्टेबाजी एवम् निवेश करने से दूरस्थ भू–स्वामी की परिपाटी का विकास हुआ।
- करों के बढ़ते भार से किसान आसानी से राजस्व संग्रहकर्ताओं, व्यापारियों और साहूकारों के शिकार होते गए।
- भारत से इंग्लैंड में धन का स्थानांतरण सामान्य बात हो गई।
- ब्रिटेन में उत्पादित वस्तुओं को बाजार में स्थान देने के लिए स्थानीय उद्योगों को कुचला गया।
- ब्रिटिश सरकार की भू–राजस्व नीति के कारण आदिवासियों ने भूमि पर अपने परंपरागत अधिकार खो दिए।

इन सब परिवर्तनों से ग्रामीण समाज विशेष रूप से किसानों और आदिवासियों को भयंकर झटका लगा। किसान के लिए कृषि अर्थव्यवस्था और सामाजिक ढांचे में नए परिवर्तनों का अर्थ किसान का और अधिक तथा व्यवस्थित शोषण किया जाना था।

इसे फिर स्मरण करें, औपनिवेशिक शासकों को उच्च दरों पर निर्धारित राजस्वों की समय पर वसूली करने से मतलब था। राजस्व एकत्रित करने में लगे जमींदारों और अन्य लोगो को किसानों की राजस्व भुगतान करने की क्षमता से कोई मतलब नहीं था और वे करों की जबरन वसूली करते थे। करों की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए किसान अपनी जमीनें बेचने को मजबूर हो जाते थे अथवा साहूकारों के चंगुल में फँस जाते थे। स्थानीय प्रशासन से न्याय की आशा नहीं की जा सकती थी क्योंकि वह तो धनी लोगों के प्रभाव में रहता था। इस प्रकार औपनिवेशिक शासन के दौरान कर्मचारी, भू–स्वामी और साहूकार कृषकों का शोषण करने के लिए एकजुट हो गए। सन् 1770 में बंगाल में पड़ा अकाल ग्रामीण समाज पर ब्रिटिश साम्राज्य की नीति के विध्वंसकारी प्रभाव का प्रमाण है। अर्थव्यवस्था के उपनिवेशन के साथ–साथ ब्रिटिश सरकार ने स्थानीय प्रशासन और समाज में परिवर्तन किए, इससे स्थानीय लोगों में असंतोष और रोष पैदा हो गया। विभिन्न स्थानों पर फैले इस असंतोष ने विद्रोह का रूप धारण कर लिया।



आपकी टिप्पणियाँ

पाठगत प्रश्न 19.1

1. भारतीय किसानों ने ब्रिटिश सरकार द्वारा बढ़ाई जा रही करों की मांग को कैसे पूरा किया?

2. औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत किसानों का शोषण करने के लिए कौन–कौन सी एजेंसियों ने गठजोड़ कर लिए थे?

19.2 मुख्य विद्रोह

ब्रिटिश सरकार के प्रारंभिक विरोध के स्वरूप और महत्व का विश्लेषण करने से पहले यह बेहतर होगा कि हम कुछ विद्रोहों के विषय में जानें। 1760 ईस्वी के दशक से 1857 के विद्रोह तक भारत के विभिन्न भागों में कई विद्रोह हुए। इन विद्रोहों पर हम दो श्रेणियों–कृषक विद्रोह तथा आदिवासी विद्रोह में चर्चा करेंगे।

1. कृषक विद्रोह

करों के बढ़ते भार, भूमि से बेदखली और बंगाल में पड़े अकाल से किसानों का एक बहुत बड़ा वर्ग निर्धन हो गया। भूमि से बेदखल इनमें से बहुत से लोग सन्यासी और फकीर बन गए। हालांकि ये धार्मिक भिखारी थे, फिर भी वे अमीरों के अनाज गोदामों और स्थानीय सरकार के खजानों को लूटते थे। ये संन्यासी अकसर अपना धन गरीबों में बाँट देते थे और इन्होंने अपनी स्वयं की सरकार स्थापित कर ली। यद्यपि, ये ब्रिटिश शासकों के सशक्त दमनकारी उपायों के सामने अपने संघर्ष को ज्यादा लंबे समय तक जारी नहीं रख सके। बंकिम चंद्र चटर्जी ने संन्यासी विद्रोह को चिरस्मरणीय बनाने के लिए आनन्द मठ नाम का उपन्यास लिखा था।

बंगाल के दो जिलों रंगपुर और दिनाजपुर के किसान राजस्व ठेकेदार के अत्याचार से दुखी थे। ऐसे एक राजस्व ठेकेकार, देबीसिंह ने कर वसूल करने के लिए किसानों पर अत्याचार करके आतंक फैलाया हुआ था। जब ब्रिटिश अधिकारी किसानों की रक्षा करने में विफल रहे तो किसानों ने कानून को अपने हाथों में ले लिया। उन्होंने स्थानीय कचहरियों तथा ठेकेदारों और सरकारी कर्मचारियों के गोदामों पर आक्रमण किया। विद्रोहियों ने अपनी स्वयं की सरकार बनाई तथा कंपनी एजेंटों को राजस्व का भुगतान करना बंद कर दिया। यह विद्रोह 1783 में हुआ। विद्रोहियों को अंततः कंपनी अधिकारियों के समक्ष जबरन समर्पण करना पड़ा।

दक्षिण भारत में भी स्थिति अलग नहीं थी। बेदखल किए गए भूस्वामियों और विस्थापित किसानों ने विद्रोह कर दिया। तमिलनाडु मालाबार और तटीय आंध्र प्रदेश के पॉलिगरों ने 18वीं शती के अंत में और 19वीं शती के प्रारंभ में औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध विद्रोह किया। मालाबार के मप्पिलों का विद्रोह सबसे महत्त्वपूर्ण था। मालाबार के मप्पिला यहाँ बस गए अरब जाति के लोगों के वंशज थे और वे



धर्म परिवर्तन कर हिन्दू बने थे। इनमें ज्यादातर भूमि का किराया देकर खेती करने वाले, भूमिहीन मजदूर, छोटे व्यवसायी तथा मछुआरे थे। ब्रिटिश द्वारा 18वीं शताब्दी के अंतिम दशक में मालाबार पर विजय तथा मालाबार में ब्रिटिश भू–राजस्व प्रशासन के प्रारंभ होने से मप्पिला भड़क उठे। अधिक कर–निर्धारण, अवैध कर, भूमि से बेदखली तथा भू–स्वामित्व अधिकार में परिवर्तन इनमें बढ़ते असंतोष के कारण थे। इसलिए उन्होंने ब्रिटिश और भूस्वामियों के विरुद्ध विद्रोह किया। धार्मिक गुरूओं ने मप्पिलों की एकता को मजबूती प्रदान करने और ब्रिटिश–विरोधी चेतना का विकास करने में सहायता की। इन मप्पिलों का औपनिवेशिक शासकों द्वारा दमन किया गया।

उत्तरी भारत में पश्चिमी उत्तर प्रदेश और हरियाणा के जाटों ने सन् 1824 में विद्रोह किया। पश्चिम भारत में महाराष्ट्र विद्रोह का आम केंद्र था तथा गुजरात में कोलियों ने विद्रोह किया। हम किसान विद्रोहों की सूची में कुछ और भी सम्मिलित कर सकते हैं, लेकिन अब हम आदिवासी विद्रोहों का अवलोकन करें।

2. आदिवासी विद्रोह

औपनिवेशिक शासन की स्थापना से आदिवासी लोग भी प्रभावित हुए। जनसमुदाय की मुख्यधारा से अलग–थलग रहने वाले आदिवासी अपने स्वयं के संसार में रहते थे और इन पर उनकी स्वयं की परंपराएँ और रीति–रिवाज लागू होते थे। औपनिवेशिक सरकार ने आदिवासियों की भूमियों पर अपना अधिकार कर लिया और आदिवासियों से जबरन भूमि छीन ली थी। आदिवासी अपनी भूमि में औपनिवेशिक प्रशासन के प्रवेश से क्रोधित थे। खानदेश के भीलों और सिंहभूम (बिहार) के कोलों का उदाहरण लें, ये अपने मुखियाओं के शासन में स्वतंत्र थे। परन्तु इनके क्षेत्रों पर ब्रिटिश का कब्जा होने और इन आदिवासी भूमियों में व्यापारियों, साहूकारों और ब्रिटिश प्रशासन के प्रवेश से आदिवासी मुखियाओं के अधिकार कम हो गए। इससे आदिवासी नेताओं ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तथा उन्होंने आदिवासी क्षेत्रें में सभी बाहरी व्यक्तियों को आक्रमण का निशाना बनाया। ब्रिटिश सरकार द्वारा इन विद्रोहों का दमन किया गया।

इसी प्रकार संथाल जाति के लोग बंगाल, बिहार और उड़ीसा की सीमा के एक बड़े भू–भाग में रहते थे। उनकी आजीविका जंगल की वनस्पति और प्राणियों पर निर्भर थी। ब्रिटिश शासन के प्रारंभ होने से उन्हें जंगल की भूमियों को साफ करना पड़ता था और जब वे इन भूमियो पर खेती करना प्रारंभ कर देते थे तो उनसे ये जमीन जबरदस्ती छीन ली जाती थी। इस प्रकार इनकी भूमियों पर भूस्वामियों, व्यापारियों और साहूकारों के प्रवेश से साधारण जिन्दगी जीने वाले संथालों की दुर्दशा हुई और उन्होंने अत्याचार सहे। इस अत्याचार ने संथालों को हथियार उठाने के लिए मजबूर किया, उन्होंने सिद्धू और कानू नामक दो भाईयों को अपना नेता बनाया। ऐसा माना जाता था कि सिद्धू और कानू को देवताओं के ऐसे आशीर्वाद प्राप्त थे कि वे इनकी दुर्दशा को समाप्त कर सकते थे। उन्होंने अपनी जमीनों को वापस लेने और अपनी खुद की सरकार स्थापित करने का निर्णय लिया। इन विद्रोही संथालों को ग्वालों, तेलियों, लुहारों और अन्य स्थानीय गरीब लोगों का समर्थन प्राप्त था। विद्रोही संथाल अंततः ब्रिटिश के निर्दयतापूर्ण अत्याचारों के सामने विफल रहें।



आपकी टिप्पणियाँ

19.3 प्रारंभिक विरोध का स्वरूप एवम् महत्व

जन विद्रोहों के उपर्युक्त वर्णन ने इन विद्रोहों के स्वरूप के बारे में कुछ बिन्दुओं को स्पष्ट किया है।

- विद्रोहियों के कार्य यह प्रमाणित करते हैं कि उन्हें अपने हितों और अपने शत्रुओं के बारे में स्पष्ट ज्ञान था। किसान और आदिवासी विरोध आंदोलनों की कुछ विशेषताएँ उनमें जन्मी राजनीतिक और सामाजिक संचेतना के एक निश्चित स्तर को दर्शाती हैं।
- कई अवसरों पर स्थानीय मुद्दों के कारण ये विद्रोह आरम्भ किए गए होगें। लेकिन इस आंदोलन के विस्तार के दौरान इसके उद्देश्य और व्यापक होते गए। एक आंदोलन का आरंभिक कारण स्थानीय भूस्वामियों द्वारा दमन करना रहा हो परन्तु एक बार ये आन्दोलन शुरू हुए तो इनकी परिसमाप्ति ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति विरोध के रूप में हुई।
- धार्मिक विश्वास, जातीय संबंधों और परंपराओं ने किसानों को एकजुट होने तथा उनकी एकता को सुदृढ़ बनाने में सकारात्मक भूमिका निभाई। कई बार अपने अतीत के सुखद विचार विद्रोहियों को अपना खोया हुआ अतीत प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते। अतीत का स्मरण मुख्यतया विद्रोहियों के लिए शोषण और अत्याचार की पीड़ा से मुक्ति पाना था।
- शासक वर्ग ने इन विद्रोहों को कानून और व्यवस्था के लिये समस्या तथा अपराधों के रूप में निर्धारित करने का प्रयास किया। यह किसानों की तकलीफों को सुनने, समझने और उनके प्रतिरोध अधिकार को पूरी तरह से अस्वीकार करना है। किसानों और आदिवासियों की कार्य प्रणाली को इसके अपने ढंग से समझना आवश्यक है।
- यद्यपि, पुराने आदेश की बहाली के बाद विद्रोहियों की कोई भावी योजना नहीं थी। अपने सीमित उद्देश्य और संकीर्ण वैश्विक विचार के बावजूद विद्रोहियों ने निश्चित रूप से औपनिवेशिक साम्राज्य के अलोकप्रिय गुणों को प्रकट किया।

पाठगत प्रश्न 19.2

1. संथाल विद्रोह कौन से क्षेत्र में हुआ?

2. कौन–से उपन्यास ने संन्यासी विद्रोह को चिरस्मरणीय बनाया?

19.4 1857 का विद्रोह-कारण और कार्य प्रणाली

प्रारंभिक भाग में हमने पढ़ा कि विभिन्न समय पर भारत के अलग–अलग भागों में ब्रिटिश साम्राज्य को जन विद्रोहों ने कैसे चुनौती दी। 1857 में पहली बार देखने में आता है कि ब्रिटिश विजय के विरुद्ध समाज के कुछ अन्य वर्गों के साथ–साथ असंतुष्ट किसान आंदोलन में समाज के विभिन्न वर्ग समेकित रूप से एकजुट हो



गए। कई इतिहासकार 1857 की घटनाओं को राष्ट्रवाद की प्रारंभिक अभिव्यक्ति समझ रहे हैं।

विद्रोह के कारण

ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध लोगों के असंतोष को प्रेरित करने वाली विशेष तकलीफें थीं, जिनसे 1857 का विद्रोह हुआ। यह विद्रोह 10 मई को मेरठ में प्रारंभ हुआ, जब सिपाहियों ने विद्रोह किया और अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह द्वितीय को पुनः सिंहासन पर बैठाने के लिए दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। सिपाहियों द्वारा प्रारंभ किया गया यह विद्रोह शीघ्र ही समाज के अन्य वर्गों में फैल गया। ऐसा क्यों हुआ? ब्रिटिश सरकार द्वारा भू–राजस्व प्रणाली और प्रशासनिक ढांचे में परिवर्तन करने से ज्यादातर स्थानीय जनसमुदायों ने इसके राज को अस्वीकार कर दिया। लॉर्ड डलहौजी की संयोजन नीति और समाप्ति सिद्धांत, विशेष रूप से अवध और उत्तर एवम् मध्य भारत के अन्य भागों के संयोजन से इस क्षेत्र के स्थानीय लोगों में व्यापक असंतोष पैदा हो गया। भूमि मुख्य आर्थिक संसाधन होने के कारण ब्रिटिश द्वारा भारत में विभिन्न भू–राजस्व बंदोबस्त जैसे स्थायी बंदोबस्त, रैयतबाड़ी बंदोबस्त, महलबाड़ी बंदोबस्त आदि प्रारंभ किए गए, जिनका स्थानीय समाज में भू–वितरण और शक्ति वितरण पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। नए भू–बंदोबस्तों का मुख्य उद्देश्य सरकार की राजस्व आय को बढ़ाना और ऐसे स्थानीय एजेंटों के वर्ग का सृजन करना था, जो ब्रिटिश साम्राज्य का समर्थन करते हों। इन सबका किसानों पर अनर्थकारी प्रभाव पड़ा और राजस्व की बढ़ती मांगों के कारण तालूकदारों और अन्य मुखियाओं को भी मजबूरन अपनी भूमि बेचनी पड़ी। साहूकारी और सम्पत्ति की नीलामी ने किसानों की मुश्किलों को और बढ़ा दिया। इंग्लैंड में बनी वस्तुओं के प्रोत्साहन और घरेलू उद्योग की उपेक्षा से कारीगर एवम् हस्तशिल्पियों पर भी बुरा प्रभाव पड़ा।

आर्थिक तकलीफों के अतिरिक्त अपनी प्राचीन रीति–रिवाजों और परंपराओं में ब्रिटिश हस्तक्षेप के विरुद्ध स्थानीय समाज में सामाजिक स्तर पर भी कड़ी प्रतिक्रिया व्यक्त की गई थी। समाज में जातिगत श्रेष्ठता का दर्शन व्यापक होने के कारण ब्रिटिश अधिकारियों का एक वर्ग भारत को आधुनिक और सभ्य बनाने के कार्य में लगा हुआ था। लोग ब्रिटिशों द्वारा प्रारंभ किए गए सामाजिक विधान से आशंकित थे। विशेष रूप से सती प्रथा के उन्मूलन और विधवा के पुनर्विवाह का आम आदमी पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। इन परिवर्तनों को स्थानीय परंपरा और संस्कृति में हस्तक्षेप के रूप में समझा गया। इसके साथ लागों में धर्म बदल कर ईसाई बनाए जानें का डर भी पैदा हो गया था। इन सब बातों ने लोगों को ब्रिटिश राज से विमुख कर दिया।

सिपाहियों में उत्पन्न रोष के उनके अपने कारण थे। सिपाही कम वेतन और पदोन्नति, पेंशन एवम् सेवा शर्तों के मामलों में जातिगत भेदभाव के कारण अप्रसन्न थे। किसान परिवारों के सिपाही ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रारंभ किए गए नए भू–बंदोबस्तों से भी अप्रसन्न थे। यह सच है कि सिपाही विभिन्न कारणों की वजह से उत्तेजित थे, परन्तु उनके तत्काल गुस्से का कारण उनकी यह शंका थी कि उन्हें सदियों पुराने अपने सांस्कृतिक लोकाचार को छोड़ना पड़ेगा। 1857 के विद्रोह से ठीक पहले राशन (आटे की बोरी) में हड्डियों का बारीक चूरा होने की अफवाह फैली। एनफिल्ड राइफलों के कारतूसों को लोड करने से पहले दांतों से काटना पड़ता था, ऐसी खबर थी कि उनमें सूअर और गाय

आपकी टिप्पणियाँ

की चर्बी भरी होती थी। उसे हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मों के सैनिकों के धार्मिक विश्वास पर आक्रमण समझा गया। दिल्ली में जारी घोषणा में सिपाहियों के भावों को अच्छी तरह दर्शाया गया था–'यह सर्वविदित है कि इन दिनों सभी अंग्रेज इन हानिकर मनसूबों पर विचार कर रहे हैं–पहले समग्र हिन्दुस्तानी सेना के धर्म को भ्रष्ट करना और भिर सबको जबरदस्ती ईसाई बनाना। इसलिए हम केवल अपने धर्म के कारण लोगों से जुड़े हैं और हमने एक भी नास्तिक को जीवित नहीं छोड़ा है तथा हम इन्हीं शर्तों पर दिल्ली राजवंश की पुनः स्थापना करते हैं।

विद्रोह की कार्य प्रणाली

प्रारंभिक उपद्रव मार्च, 1857 में उस समय प्रारंभ हुआ, जब कलकत्ता के निकट बैरकपुर में मंगल पांडे नामक सिपाही ने अन्य सिपाहियों को ब्रिटिश सेना अधिकारियों के खिलाफ



चित्र 19.1 स्वतंत्रता सेनानी, बहादुर शाह (द्वितीय)जफर, अंतिम मुगल सम्राट्



चित्र 19.2 झांसी की रानी लक्ष्मी बाई, स्वतंत्रता सेनानी



चित्र 19.3 तांत्या टोपे



चित्र 19.4 नाना साहेब

विद्रोह करने के लिए कहा और उसने ब्रिटिश एड्जुटेंट को मार दिया। बाद में मंगल पांडे को गिरफ्तार कर फांसी पर लटका दिया गया। इसके बाद मई, 1857 में मेरठ में भारतीय सिपाहियों की रेजिमेंट्स ने ब्रिटिश अधिकारियों को मार डाला, जेल तोड़ दी, अपने साथियों को रिहा करा दिया और अंग्रेजों से पेंशन पाने वाले मुगल सम्राट् बादशाह बहादुर शाह जफर (द्वितीय) को अपना नेता बनाने के लिए दिल्ली की ओर कूच किया। ब्रिटिश शासन के समाप्त होने के बारे में अफवाह चारों ओर फैल गई तथा शीघ्र ही विद्रोह उत्तरी भारत और मध्य भारत के अन्य भागों में फैल गया। अवध में सिपाहियों ने घोषणा कर दी कि सिपाही राज आ गया। ब्रिटिश राज के विरुद्ध असंतोष और उसके मायाजाल से मुक्ति ने कई स्थानीय प्रमुखों, किसानों, कारीगरों, सिविल कर्मचारियों, धार्मिक विधियों से अपचार करने वालों आदि को इस विद्रोह में एकजुट कर दिया। अवध से यह विद्रोह लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस, रोहिलखंड, बुंदेलखंड, ग्वालियर, झांसी और बिहार में फैल गया। इन क्षेत्रों में इस विद्रोह को सिविल जन समुदाय से व्यापक समर्थन मिला। इस विद्रोह के कुछ महत्त्वपूर्ण नेताओं में रानी लक्ष्मी बाई, ताँत्या टोपे, बेगम हजरत महल, नाना साहेब, आरा के कुंअर सिंह आदि थे।

पाठगत प्रश्न 19.3

1. भारतीय सिपाहियों की तकलीफें क्या थीं?

2. 1857 के विद्रोह के किन्हीं पाँच महत्त्वपूर्ण नेताओं के नाम बताओ?

19.5 इस विद्रोह का स्वरूप एवम् परिणाम

स्वरूप

1857 के विद्रोह के स्वरूप के संबंध में इतिहासकारों के अलग–अलग विचार हैं। ब्रिटिश इतिहासकारों ने इस विद्रोह की व्याख्या सिपाहियों के विद्रोह के रूप में की है। स्थानीय लोगों की तकलीफों और इस आंदोलन में उनकी भागीदारी को अनदेखा करते हुए ब्रिटिश इतिहासकारों का मानना था कि इस विद्रोह को सिपाहियों, कुछ भू–स्वामियों और राजकुमारों ने अपने निहित स्वार्थो के लिए आरम्भ किया। यद्यपि, 1857 पर हाल के शोधों में यह दावा किया गया है कि अप्रिय ब्रिटिश साम्राज्य के संयुक्त विरोध के सामने स्वार्थ पूर्ण प्रयोजनों का अधिक महत्व नहीं रह जाता है।

कुछ इतिहासकार 1857 के इस विद्रोह को भारत की स्वतंत्रता का प्रथम युद्ध मानते हैं। जो इस व्याख्या से सहमत नहीं है, तर्क देते हैं कि विद्रोह के नेताओं ने नई सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने बहादुर शाह दूतीय को आमंत्रित करके प्राचीन मुगल शासन को पुनः स्थापित करने की कोशिश की। कहा जाता है कि हालाकि राज्य बदलने के लिये भारतीयों की पहल और प्राथमिकता केन्द्रीभूत थीं 1857 में कोई राष्ट्रव्यापी विद्रोह नहीं हुआ। असंतुष्ट वर्ग में इसके प्रति वफादारी और



आपकी टिप्पणियाँ

विचारधारा में बिखराव था जिनके ध्यान में एक ऐसा पुराना समाज और नियम थे जो अधिक समय व्यावहारिक नहीं रहने वाले थे। इस प्रकार यह विद्रोह नहीं बल्कि पुनर्स्थापना जैसा काम था।

1857 के विद्रोह के हाल के अध्ययन इस विद्रोह में लोकप्रिय भागीदारी होने की बात कहते हैं। सिपाहियों और तालूकेदारों के अतिरिक्त ग्रामीण किसानो की बड़ी संख्या ने इस विद्रोह में भाग लिया। अवध के मामले में यह दर्शाया गया है कि तालूकेदारों और किसानों ने मिलकर आक्रमण आरंभ किया था। कई स्थानों पर तो तालूकेदारों ने ब्रिटिशों के साथ मिलकर शांति कायम की, परन्तु किसानों ने अपना आंदोलन जारी रखा। सिपाहियों के गांवों में अपने रिश्तेदारों से संबंध थे तथा सिपाहियों के इस विद्रोह ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध अपनी शिकायततें जनता के सामने रखने के लिए नागरिक जनसमुदाय को प्रभावित किया। इस प्रकार 1857 के विद्रोह ने लोकप्रिय विद्रोह का रूप ले लिया।

इस विद्रोह की असफलता के कारण

1857 के इस विद्रोह में लोगों की अत्यधिक भागीदारी होने के बावजूद विद्रोहियों को अंततः ब्रिटिश सरकार के समक्ष आत्मसमर्पण करना पड़ा। विद्रोहियों की असफलता के निम्न कारण थे–

- विद्रोहियों के पास हथियारों और गोला–बारूद की सीमित मात्रा होती थी।
- विद्रोहियों में संचार और केंद्रीय नेतृत्व की कमी थी।
- ब्रिटिशों के पास पर्याप्त संसाधन और बेहतर हथियार और उपकरण थे।
- विद्रोहियों का विदेशी शासन को समाप्त करने के अलावा भविष्य के लिए कोई स्पष्ट राजनीतिक कार्यक्रम नहीं था।
- विद्रोही इस आंदोलन के व्यापक स्वरूप के बावजूद व्यापारियों, बुद्धिवादी वर्ग और कई स्थानीय राजकुमारों का सहयोग प्राप्त नहीं कर सके। जो प्रायः अंग्रेजों के समर्थक थे।

इस विद्रोह का महत्व

हालांक ब्रिटिश सरकार इस विद्रोह को कुचलने में सफल रही, परतु उसे लोगों के असंतोष की सीमा का पता लग गया। 1857 की घटनाओं ने ब्रिटिश सरकार को भारत के लिए अपनी नीति की पुनः जांच करने के लिए मजबूर कर दिया, अतः इस विद्रोह के बाद उन्होंने ऐसे किसी विद्रोह की भविष्य में होने से रोकने की रणनीति अपनाई। स्थानीय राजकुमारों का विश्वास पुनः जीतने के लिए ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि वे अपने मौजूदा कब्जे वाले क्षेत्रों का और अधिक विस्तार नहीं करेंगे। वफादार राजकुमारों को विशेष पुरस्कार दिए गए। सैनिकों में एकता को रोकने के लिए फौज में भर्ती करने में संप्रदाय, जाति, जनजाति और क्षेत्रीय वफादारों को बढ़ावा दिया गया। ब्रिटिश सरकार ने जाति, धर्म और भारतीयों की क्षेत्रीय पहचान का चतुराई से उपयोग करते हुए 'फूट डालो और शासन करो' की नीति अपनाई। 1857 के विद्रोह का दूसरा महत्त्वपूर्ण परिणाम 1858 में शाही घोषणा पत्र की उद्घोषणा था। इस घोषणा से ईस्ट इंडिया

कंपनी के शासन को समाप्त करते हुए भारत का प्रशासन सीधे तौर पर ब्रिटिश राज के अधीन कर दिया गया।

अंत में, हालांकि विद्रोही असफल रहे, परन्तु ब्रिटिश राज के खिलाफ उनके वीरता पूर्ण संघर्ष ने लोगों के मस्तिष्क में गहरी छाप छोड़ी। भारतीय राष्ट्रवाद की भावना, जो कि 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विकासशील स्तर पर थी, इस विद्रोह से अत्यधिक प्रभावित हुई।

पाठगत प्रश्न 19.4

1. ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन कब और कैसे समाप्त हुआ?

2. इस विद्रोह की असफलता के तीन मुख्य कारणों को सूचीबद्ध करो?

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में हमने सीखा है कि ब्रिटिश शासन की स्थापना से भारत ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बन गया। इससे ग्रामीण समाज पर अत्यधिक बुरा प्रभाव पड़ा। अपनी भूमियों से बेदखल किए जाने से किसान अपनी स्वयं की भूमियों पर ही मजदूर बन गए। विभिन्न प्रकार के करों ने उनके जीवन को और अधिक दुखी बना दिया। जबकि ब्रिटिश द्वारा निर्मित वस्तुओं का आयात होने के कारण लघु उद्योगों के मालिकों को अपने कारखाने बंद करने पड़े। इन सब परिवर्तनों और ब्रिटिश प्रशासन के सहानुभूतिहीन रवैये ने किसानों को अपनी तकलीफें विद्रोह के माध्यम से कहने को मजबूर कर दिया। संगठित अंग्रेजी सशस्त्र सेना के सामने विद्रोह सफल नहीं हो पाए। तथापि, इन विद्रोहों ने भारत में अंग्रेजी राज के समक्ष भावी चुनौती के लिए मार्ग प्रशस्त किया। इस संबंध में, 1857 का विद्रोह इस अर्थ में अद्वितीय माना जाता है कि जाति, समुदाय और वर्ग की सीमाओं को समाप्त कर भारतीयों ने पहली बार ब्रिटिश शासन को संगठित रूप से चुनौती दी। हालांकि विद्रोहियों के प्रयास असफल रहे, परन्तु इससे भारत के प्रति अपनी नीति में परिवर्तन करने के लिए ब्रिटिश सरकार पर दबाव बनाया गया।

पाठांत प्रश्न

1. 1857 के विद्रोह से पहले के विद्रोहों के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।
2. 1857 के विद्रोह के कारणों की चर्चा कीजिए।
3. 1857 के विद्रोह के महत्व की व्याख्या कीजिए।



आपकी टिप्पणियाँ

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

19.1

1. अपनी कब्जे वाली जमीनों की बिक्री द्वारा।
2. ब्रिटिश सरकार के कर्मचारी, भू–स्वामी और साहूकार।

19.2

1. बंगाल, बिहार और उड़ीसा की सीमा।
2. बंकिम चंद्र चटर्जी द्वारा लिखित आनन्द मठ।

19.3

1. कम वेतन तथा पदोन्नति, पेंशन और सेवा शर्तों में सामाजिक भेदभाव।
2. रानी लक्ष्मी बाई, तॉंत्या टोपे, बेगम हजरत महल, नाना साहेब और आरा के कुंवर सिंह।

19.4

1. 1858 में ब्रिटिश राज द्वारा शाही घोषणा की उद्घोषणा के माध्यम से ।
2. खण्ड 19.5 देखें।

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. खण्ड 19.2, 19.3 देखें
2. खण्ड 19.4 देखें
3. खण्ड 19.5 का अनुच्छेद–4 देखें।



20

राष्ट्रवाद

हम सभी को अपने जीवन में कभी–न–कभी अपने देश के प्रति ईमानदार होना पड़ता है। अपने देश के प्रति वफादारी को आम तौर पर राष्ट्रीयता की भावना के रुप में समझा जाता है। राष्ट्रवादी व्यक्ति वही है, जो अपने देश से प्यार करता है। इस प्रकार के कथन आपको उपन्यासों और कविताओं, भाषणों और समाचार–पत्रों और फिल्मों में भी मिल सकते हैं।

क्या आपको कभी हैरानी नहीं होती कि यह सब कब शुरु हुआ होगा? राष्ट्रीयता की भावना का इतिहास क्या है? यह विचार कितना पुराना है? अथवा क्या लोग हमेशा ही अपने देश से प्यार करते रहे हैं? क्या 'राष्ट्रीयता' शब्द का अर्थ अपने देश के प्रति वफादारी अनुभव करने के अतिरिक्त कुछ और भी है? इस पाठ में हम इन सभी प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप:

- राष्ट्रीयता के विचार के इतिहास की जड़ें ढूंढ सकेंगे;
- यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना के उत्थान के कारणों की व्याख्या कर सकेंगे;
- भारत में राष्ट्रीयता की भावना के विकास को ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष के साथ संबद्ध कर सकेंगे;
- भारत के सांस्कृतिक क्षेत्र में राष्ट्रीयता के विचार के उद्भव की जड़ें ढूंढ सकेंगे और
- राष्ट्रीयता की भावना को आर्थिक संदर्भ में कैसे अभिव्यक्त किया गया है, इसकी व्याख्या कर सकेंगे।



आपकी टिप्पणियाँ

20.1 राष्ट्रीयता की भावना : उद्‌भव और अर्थ

आपको यह जानकार आश्चर्य होगा कि इस विचार का इतिहास दो सौ वर्ष से ज्यादा पुराना नहीं है। आज 'राष्ट्रीयता की भावना' शब्द का हम जिस अर्थ में प्रयोग करते हैं, उस अर्थ का 19वीं सदी से पहले भारत में कोई अस्तित्व नहीं था। आपको यह जानकर भी आश्चर्य होगा कि इस विचार की जड़ें भारत के इतिहास में नहीं, बल्कि आधुनिक यूरोप के इतिहास में हैं। असल में हम भारतीय राष्ट्रीयता के संबंध में इसके यूरोपीय समकक्ष अर्थों से नितान्त भिन्न अर्थों में संभावना होने की बात कर सकते हैं। इस भिन्नता को जानने के लिए महत्त्वपूर्ण है कि हमें इस बात की जानकारी हो कि यूरोप में किन परिस्थितियों के कारण राष्ट्रीयता की भावना पैदा हुई।

यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना का विकास, 18वीं सदी के आसपास समाज और अर्थव्यवस्था में वहां हो रहे मूलभूत परिवर्तनों के परिणामस्वरुप हुआ। औद्योगिक क्रांति शुरु होने से बहुत–सी वस्तुओं और सामग्री का उत्पादन हुआ, जिसकी वजह से इतनी अभूतपूर्व धन–सम्पदा वहां आई, जैसी पहले कभी भी नहीं थी। इसके परिणामस्वरुप ऐसी जरुरत महसूस की गई कि एक ऐसा एकीकृत और विशाल बाजार बनाया जाए, जहां इन चीजों को बेचा जा सके। विशाल बाजार बनाने के लिए गांवों, जिलों और प्रांतों को राजनीतिक रुप से जोड़कर बड़े राज्य का रुप दिया गया। इस विशाल और संयुक्त बाजार में विभिन्न भूमिकाएं निभाने के लिए अलग–अलग प्रकार के लोगों की जरुरत थी, जिसके लिए उन्हें विभिन्न प्रकार के कौशल पूर्ण कार्य में प्रशिक्षित किया जाना आवश्यक था। परन्तु इन सबसे ऊपर उन्हें आपस में परस्पर संवाद–संचार की आवश्यकता थी। इसी कारण से एक भाषा पर केंद्रित समान शैक्षिक केंद्रों की आवश्यकता महसूस हुई। पूर्व–आधुनिक काल में अधिकांश लोगों ने अपने स्थानीय वातावरण में भाषा और अन्य हुनर सीखे, जो एक–दूसरे से भिन्न थे। परन्तु अब आधुनिक अर्थव्यवस्था के कारण नए परिवर्तनों के परिणामस्वरुप प्रशिक्षण और स्कूलों की एक समान नई प्रणाली अस्तित्व में आई। इस प्रकार इंग्लैंड में अंग्रेजी भाषा, फ्रांस में फ्रांसीसी और जर्मनी में जर्मन भाषा इन देशों की प्रमुख भाषा बन गई।

संचार प्रणाली में एकरुपता के परिणामस्वरुप 'राष्ट्रीय संस्कृति' बनी और इसने राष्ट्रीय सीमाओं को मजबूत बनाया। इन सीमाओं के भीतर रहने वाले लोगों ने स्वयं को इन सीमाओं से जोड़ना शुरु कर दिया। सांस्कृतिक दृष्टि से भी इन लोगों ने खुद को समान व्यक्तियों की तरह और एक बड़े समुदाय का सदस्य समझना शुरु कर दिया। यानी अंग्रेजों ने खुद को दूसरों से भिन्न रुप में अंग्रेज होने की पहचान दे दी और इंग्लैंड की भौगोलिक सीमाओं का वासी समझकर उसके साथ स्वयं को जोड़ लिया। जर्मन और फ्रांसीसियों ने भी ऐसा ही किया। राष्ट्रीयता के विचार की यही शुरुआत थी।

आइए, हम इसे थोड़ा अलग तरीके से समझते हैं। राष्ट्रवाद, यूरोप में राष्ट्रों और राष्ट्र राज्यों (जो विशाल व सांस्कृतिक समनुरुप क्षेत्र होने के साथ–साथ राजनीतिक व्यवस्था में भी एक समान थे) के उद्‌भव का परिणाम था। ये राष्ट्र–राज्य हमेशा नहीं बने रहे। प्रारंभिक समाज, मानव संगठनों के सरल स्वरुप सहित और श्रम के किसी विस्तृत विभाजन के बगैर किसी राज्य या कानून और व्यवस्था लागू करने वाले किसी केन्द्रीय प्राधिकरण (अथॉरिटी) के बगैर भी अपने जीवन को व्यवस्थित और विनियमित कर सकते



थे। केन्द्रीय प्राधिकरण शक्ति (अथॉरिटी) के रुप में राज्य का अस्तित्व व्यवस्थित खेती–बाड़ी प्रारंभ होने के बाद ही अस्तित्व में आया। किसी केन्द्रीय सत्ता के अभाव में लोगों को आम तौर पर अपने जीवन को व्यवस्थित ढंग से व्यतीत करने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। औद्योगीकरण और आधुनिक विश्व अर्थ–व्यवस्था के प्रारंभ होने पर अनिवार्य रुप से राज्यों के होने की जरुरत और अधिक महसूस की गई। संचार की व्यापक प्रणाली और एक मानक भाषा पर केन्द्रित समनुरुप शिक्षा पद्धति ने सांस्कृतिक और राजनीतिक समानता की परिस्थितियां पैदा कीं। इस प्रकार आधुनिक राष्ट्र राज्य अस्तित्व में आए। इन राष्ट्र राज्यों को, अपने आपको निरंतर अस्तित्व में बनाए रखने के लिए, इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के सहयोग और वफादारी की आवश्यकता थी और यही राष्ट्रवाद की शुरुआत थी। अन्य शब्दों में कहें तो किसी राष्ट्र को राज्य के एक सीमा क्षेत्र में रहने वाले लोगों या समुदाय की विशिष्ट पहचान और इसकी उच्च संस्कृति ने ही उस राष्ट्रीयता की भावना को मूर्त रुप दिया।

परन्तु भारत में राष्ट्रवाद का विकास इस रुप में नहीं हुआ। जिस समय यूरोप में राष्ट्रवाद की जड़ें पनप रही थीं, उस समय भारत में परिस्थितियां बिल्कुल भिन्न थीं। यहां बहुत सीमित स्तर पर औद्योगीकरण अस्तित्व में आया। जब यूरोप में तेजी से औद्योगीकरण विकसित हो रहा था उस समय भारत की अर्थव्यवस्था अभी भी कृषि पर आधारित थी। अलग–अलग लोग भिन्न–भिन्न भाषाएँ बोलते थे। यद्यपि देश भक्ति की भावना (देश भक्ति : अपने क्षेत्र और संस्कृति के लिए प्यार और वफादारी की भावना, जो मराठवाड़ा के लिए मराठों में और राजपूताना के लिए राजपूतों में मौजूद थी) आधुनिक काल से पूर्व के समय में भारत में पहले ही मौजूद थी, परन्तु आज जिन अर्थों में हम राष्ट्रवाद का मतलब समझते हैं (प्रशासन की एकीकृत प्रणाली, सामान्य भाषा, उच्च कोटि की एक जैसी संस्कृति और राजनीतिक एकीकरण), उन अर्थों में इसका अस्तित्व 19वीं सदी के मध्य तक भारत में अस्तित्व में नहीं आया था।

बुनियादी तौर पर भारत में राष्ट्रीयता का विकास ब्रिटिश शासन के प्रत्युत्तर के रुप में अस्तित्व में आया। जैसा कि आप जानते हैं, भारत में ब्रिटिश शासन की शुरुआत 1757 में प्लासी के युद्ध के साथ हुई और यहां के स्थानीय शासकों को हराने के बाद धीरे–धीरे यहां ब्रिटिश शासन स्थापित हुआ। अंग्रेज़ों के शासक के रुप में आगमन का अनेक स्थानीय शासकों और लोगों ने विरोध किया था। वे सभी भारत में ब्रिटिशों की उपस्थिति का विरोध करना चाहते थे और उसके खिलाफ युद्ध करना चाहते थे। परन्तु प्रारंभ में उन्होंने यह विरोध मिलकर या एकजुट होकर नहीं किया। अलग–अलग लोगों को ब्रितानी लोगों से विशिष्ट या अलग–अलग शिकायतें थी और इसलिए वे अपनी विशेष तकलीफें दूर करने के लिए अंग्रेजों से लड़े। उदाहरण के लिए, स्थानीय शासक नहीं चाहते थे कि ब्रिटिश शासक उनके क्षेत्रों को हथिया लें (जैसा कि वर्तमान उत्तर प्रदेश के तत्कालीन अवध और झांसी के शासकों के साथ हुआ) इसी प्रकार किसान, कारीगर और जनजातीय लोग ब्रिटिशों के हाथों पीड़ित हुए और प्रायः अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करते रहे। (इस संबंध में आप इस पुस्तक के मॉडयूल 3 में पढ़ चुके हैं) परन्तु ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सिर्फ विरोध करने या युद्ध करने से ही भारत में राष्ट्रीयता की भावना नहीं आई। यद्यपि जन सामान्य के विभिन्न वर्ग ब्रिटिशों के हाथों समान रुप से पीड़ित होने के कारण एकजुट हए, परन्तु इससे भी पूरे देश और इसके लोगों के साथ एक जैसी



आपकी टिप्पणियाँ

समानता की पहचान होने की भावना नहीं आई। यहां तक कि 1857 के भारी विद्रोह, जिसमें संपूर्ण जनसामान्य के अनेक वर्गों ने मिलकर युद्ध किया (जैसे स्थानीय शासक, सैनिक, जमींदार और किसान) परंतु इससे भी राष्ट्रीयता की भावना या अखिल भारतीय एकता विकसित नहीं हुई। भारत के लोगों में, परस्पर अनेक मतभेदों के बावजूद, अनेक ऐसी चीजें हैं जो सामान्य हैं, इस विचार ने अभी जड़ें नहीं पकड़ी थीं। इसी प्रकार यह अहसास भी अभी किसी को नहीं हुआ था कि ब्रिटिश शासन विदेशी और पराया शासन है, जो यह चाहता था कि सभी लोगों पर वह अपना अधिकार करके उन्हें अपने नियंत्रण के अधीन कर ले।

भारत में राष्ट्रीयता का या भारतीय राष्ट्रीयता का सार यही भावना थी कि सभी भारतीयों की एक सामान्य राष्ट्रीयता है और ब्रिटिश शासन का विरोध करना सामूहिक रुप से सभी के हित में है। साधारण शब्दों में कहें तो ब्रिटिश शासन का सामूहिक विरोध और राष्ट्रीय एकता को हासिल करने की इच्छा भारतीय राष्ट्रवाद की भावना के केन्द्र में निहित थी।

औपनिवेशक शासकों के आगमन, भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था में उनकी घुसपैठ, वास्तव में राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए बाहरी रुप से जिम्मेदार परिस्थितियां थीं। तथापि इन परिस्थितियों ने लोगों में राष्ट्रवाद संबंधी जागरुकता की भावना पैदा नहीं की। राष्ट्रीय भावना के विचार की चेतना को परिपक्व होने में बहुत लंबा समय लगा और सांस्कृतिक, अर्थव्यवस्था संबंधी और राजनीतिक क्षेत्रों में धीरे–धीरे यह विचार पनपने लगा। आगे हम इन विषयों पर इन अलग–अलग विचार करेंगे।

पाठगत प्रश्न 20.1

1. निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही या गलत बतलाएँ:

   (1) राष्ट्रवाद के विचार का इतिहास मानव इतिहास जितना प्राचीन है। (सही/गलत)

   (2) राष्ट्रवाद के विचार की जड़ें आधुनिक यूरोप के इतिहास में हैं। (सही/गलत)

   (3) राष्ट्रवाद, आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था का परिणाम था। (सही/गलत)

   (4) भारत में राष्ट्रवाद का अहसास 19वीं सदी के मध्य तक अस्तित्व में नहीं आया था। (सही/गलत)

2. ऐसे दो मुख्य मुद्दों का वर्णन करें जो भारतीय राष्ट्रवाद को समझने के लिए निर्णायक हैं।

20.2 संस्कृति और राष्ट्रवाद

राष्ट्रवाद के विचार की अभिव्यक्ति सबसे पहले सांस्कृतिक क्षेत्र में देखने में आई। ऐसा दो स्तरों पर हुआ। पहले तो यह पारंपरिक भारतीय संस्कृति के कुछ तत्वों के संबंध में

सवाल उठाने और भारतीय सभ्यता की कुछ सामाजिक बुराइयों जैसे जाति व्यवस्था, धार्मिक अंधविश्वास, पुरोहिताई, महिलाओं के प्रति भेदभाव इत्यादि को दूर करके सुधार लाने की इच्छा के कारण पैदा हुई। दूसरे, भारतीय सभ्यता में अंग्रेजों के हस्तक्षेप के विरोध का भी भारतीयों द्वारा प्रयास किया गया।

स्मरणीय बात यह है कि औपनिवेशिक विजय का अर्थ मात्र यही नहीं था कि एक प्रकार के शासकों के स्थान पर दूसरे प्रकार के शासकों का आ जाना। साधारण लोगों के जीवन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश शासकों और उनके एजेंटो के प्रयासों से उस समय के औपनिवेशिक शासकों की संस्कृति भारतीयों में फैलने लगी। उपनिवेशवादी संस्कृति और भाषा के प्रसार का भारतीय उच्च कुलीन वर्गों में दो प्रकार से असर पड़ा (कुलीन इलीट : समाज की उच्च संस्कृति से संबद्ध सामाजिक विशेषाधिकार प्राप्त और समाज के उच्च वर्ग से संबंधित लोग)। उनमें से कुछ लोगों ने पारंपरिक भारतीय समाज और संस्कृति की तुलना आधुनिक इंग्लैंड में उस समय मौजूद संस्कृति के साथ करनी शुरु कर दी थी। इस प्रकार उन्होंने भारतीय संस्कृति के कुछ तत्वों के विरुद्ध प्रश्न किए। उदाहरण के लिए, राजा राम मोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे समाज सुधारकों ने कुछ ऐसी सामाजिक बुराइयों को दूर करने के प्रयास किए जो भारतीय समाज का हिस्सा थीं। विशेष रुप में राजा राममोहन राय ने सती प्रथा (पति की मृत्यु होने पर उसकी चिता के साथ उसकी विधवा का भी जला जाना) पर आपेक्ष किया और विद्यासागर ने विधवा के विवाह पर बल दिया। ज्योतिबा फुले जैसे नेताओं ने महाराष्ट्र में जातपात के विरुद्ध आंदोलन शुरु किया। उन्होंने उपनिवेशीय शासकों से भी अपील की कि वे भारतीय समाज में हस्तक्षेप करे और इसमें सुधार लाएँ यद्यपि उन्हें यह विश्वास नहीं था कि यूरोपीय संस्कृति, भारतीय संस्कृति से श्रेष्ठ है। परंतु उन्हें यह विश्वास अवश्य था कि ब्रिटिश शासन उस आधुनिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है, जो भारतीय समाज में आधुनिकता के समानान्तर चलते हुए समुचित ढंग से विकास कर सकती है।

एक अन्य स्तर पर यद्यपि, भारतीय नेताओं ने भारतीय संस्कृति की रक्षा करने और इसे बचाने का प्रयास किया जिसके सोचने के पीछे उनकी यह धारणा है थी कि भारतीय लोगों के जीवन में उपनिवेशवादी संस्कृति अतिक्रमण कर रही हैं। 1850 के दशक में जब यूरोपीय वेशभूषा और उनकी प्रथाओं को भारतीयों पर जबरन लागू करने का प्रयास किया गया, तो उन्होंने इसका विरोध किया। दिलचस्प बात यह है कि यह उन सुधारकों के संबंध में भी सत्य है जिन्होंने यह स्वीकार किया था और यह आशा भी की थी कि ब्रिटिश शासन कानून द्वारा लागू करके अथवा अन्य उपायों से, भारत में आधुनिकता की शुरुआत करेंगे। जैसे 19वीं सदी के प्रख्यात सुधारक और ब्रह्मसमाज (1828 में राममोहन राय द्वारा गठित) के नेता, केशव चन्द्र सेन अंग्रेजी पोशाक पहनना और अंग्रेजी भोजन खाना पसंद नहीं करते थे। इसी प्रकार ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा आयोजित समारोह में भाग लेने से इंकार कर दिया था, क्योंकि उन्हें यूरोपीय पोशाक पहनने के लिए कहा गया था। इस दृष्टि से यह समझा जाता था कि लोगों के लिए सांस्कृतिक अधिकार और प्रथाएँ बहुत महत्त्वपूर्ण थीं और उपनिवेशीय शासन का इस आधार पर विरोध किया गया कि यह एक प्रकार से उनकी संस्कृति पर अतिक्रमण करने का प्रयास है।



आपकी टिप्पणियाँ

ऊपर उल्लिखित दो दृष्टिकोण आपको दो नितान्त भिन्न और एक–दूसरे के विरोधी भी दिखाई दे सकते हैं। प्रथम दृष्टिकोण, (पारंपरिक भारतीय संस्कृति की बुराइयों के खिलाफ सवाल उठाना) तथा दूसरा दृष्टिकोण (उपनिवेशीय शासकों द्वारा स्थानीय भारतीय संस्कृति में दखल देने अथवा उसे बदलने के प्रयास का विरोध) प्रथम दृष्टि में परस्पर विरोधी लग सकते हैं। देखने में आपको ऐसा लग सकता है कि प्रथम दृष्टिकोण के मुताबिक भारतीय समाज में हस्तक्षेप करने के लिए ब्रिटिशों को आमंत्रित किया गया जबकि दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार इसका विरोध किया गया। परन्तु इस बात को याद रखना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि भारतीय राष्ट्रवाद के घटकों के रुप में, ये दोनों दृष्टिकोण एक–दूसरे के पूरक थे। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का विचार, जैसा कि यह 19वीं सदी में इस आधार पर विकसित हुआ कि पारंपरिक भारतीय संस्कृति की कुछेक बुराइयों को औपनिवेशीय शासकों द्वारा, या उनकी संस्कृति के साथ इसका एकाकार करके सख्ती से नकारा जाए, अन्य शब्दों में 19वीं सदी के समाज सुधारक भारतीय संस्कृति को वास्तव में आधुनिक बनाना चाहते थे, परन्तु वे इसे पूरी तरह पश्चिमी रुप में नहीं ढलने देना चाहते थे। यानी वे अपनी पारंपरिक संस्कृति चाहते थे। इसका अभिप्राय यह हुआ कि उन्होंने पारंपरिक संस्कृति के साथ–साथ आधुनिक औपनिवेशिक संस्कृति का भी विरोध किया। 19वीं सदी में भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद जिस रुप में प्रचलित था उसका यही संक्षिप्त सार है।

पाठगत प्रश्न 20.2

1. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दें :

   (i) उस सुधारक का नाम बताएँ, जिसने सती प्रथा का विरोध किया।

   _____

   (ii) विधवा विवाह पर किस भारतीय सुधारक ने बल दिया?

   _____

   (iii) राममोहन राय द्वारा स्थापित संगठन का नाम बताएँ।

   _____

2. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की दो मुख्य विशेषताएं बताएँ।

   _____

20.3 आर्थिक राष्ट्रवाद

अब आप समझ गए होंगे कि सांस्कृतिक राष्ट्रीयता से क्या अभिप्राय है और भारत की संस्कृति और राष्ट्रवाद में परस्पर क्या संबंध था। आइए, अब हम आर्थिक राष्ट्रवाद को समझने का प्रयास करें। आर्थिक राष्ट्रवाद की जड़ों को हम 19वीं सदी के द्वितीय अर्ध–शतक के काल में ढूंढ सकते हैं जब दादाभाई नौरौजी, महादेव गोविंद रानाडे और रोमेश चन्द्र दत्त और अनेक अन्य लोगों ने यह अनुभव करना प्रारंभ किया था कि ब्रिटिश

शासन भारत का आर्थिक रुप से शोषण कर रहा था और भारत को अत्यन्त निर्धन स्थिति में रखने के लिए मुख्यतया वही जिम्मेदार था। इसीलिए गोपालकृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक, जी वी जोशी और अनेक अन्य भारतीय नेताओं ने, ब्रिटिश शासन की आर्थिक व्यवस्था की आलोचना करने के लिए भली–भांति व्यवस्थित और समेकित आलोचना पद्धति विकसित की। उनके द्वारा अपने लेखों के माध्यम से प्रतिपादित और प्रचारित आर्थिक राष्ट्रवाद की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

उन्होंने इस बात पर बल दिया कि औपनिवेशिक शासन अनेक प्रकार से भारत का आर्थिक रुप से शोषण कर रहा था। शुरु में यह शोषण किसानों पर लगाये गए भारी करों और भारत के साथ असमान व्यापार तक ही सीमित था। यह असमान व्यापार था क्योंकि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी (जिसे ब्रिटिश संसद ने भारत के साथ व्यापार करने का एकाधिकार दिया था) बहुत सस्ते दामों पर भारतीय सामान खरीदती थी और ब्रिटेन में निर्मित वस्तुओं को बहुत ही महंगे दामों पर भारत में बेचती थी। इसके परिणामस्वरुप भारत की धन–दौलत इंग्लैंड जाने लगी। इसने भारत के परंपरागत हस्तशिल्प उद्योगों को भी नष्ट कर दिया। तथापि, 19वीं सदी में, जबकि इस प्रकार का आर्थिक शोषण जारी था, नए जटिल प्रकार के शोषण के रुप अस्तित्व में आ गए। अब औपनिवेशिक शासकों ने भारत को अपने उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति करने वाले आपूर्तिकर्ता के रुप में शोषित करना शुरु कर दिया और एक ऐसे बाजार में बदल दिया जहां ब्रिटिश उद्योगों में निर्मित वस्तुओं को बेचा जा सके। भारत को ऐसी सामग्री की फसलें उगाने (जैसे कपास या पटसन) के लिए मजबूर किया जाने लगा जो ब्रिटिश उद्योगों के लिए आवश्यक थीं। इसका प्रभाव यह हुआ कि जो भारतीय धन–सम्पदा भारत के औद्योगीकरण और आर्थिक विकास के लिए प्रयोग में लाई जा सकती थी, ब्रिटेन के आर्थिक विकास के लिए प्रयोग में लाई गई। भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने इन महत्त्वपूर्ण तथ्यों को जाना और साथ ही इनका प्रचार भी किया।

भारत के लगातार आर्थिक शोषण को समझने के एक अंग के रुप में राष्ट्रीय नेता, विशेष रुप से दादाभाई नारौजी 'निष्कासन सिद्धान्त' को विचार के लिए सामने लाए। नारौजी ने, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'पावर्टी एंड द् अन–ब्रिटिश रुल इन इंडिया' (1901 में लिखित और 1988 में प्रकाशित) में यह तर्क दिया कि भारत के आर्थिक संसाधनों को व्यापार, औद्योगीकरण और ब्रिटिश अधिकारियों को दिए जाने वाले अति उच्च वेतन, जो भारतीय खज़ाने से अदा किए जा रहे थे, के जरिये बहुत व्यवस्थित पद्धति से इंग्लैंड को प्रदान किया जा रहा है। उनके आकलन के अनुसार धन के निष्कासन की यह मात्रा सरकारी लगान का आधा हिस्सा और भारत की कुल बचत के एक तिहाई हिस्से के बराबर थी। इस प्रकार ब्रिटेन के धनी बनने और भारत को निर्धन बनाने की प्रक्रिया साथ–साथ चल रही थी।

इस प्रकार प्रारंभिक राष्ट्रीय नेताओं ने यह तर्क दिया कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने, अनेक प्रकार के उपायों के जरिए भारत की अर्थव्यवस्था को पूरी तरह से ग्रेट ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था के अधीन कर लिया था। उनके विचार में भारत की अर्थव्यवस्था की समस्त दिशा को ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की जरुरतों के अनुसार मोड़ा जा रहा था। उन्होंने यह मांग की कि भारत की धन–सम्पदा का इंग्लैंड को निष्कासन बंद किया जाए और भारत की पूंजी से ही भारत में औद्योगीकरण लाया जाए, ताकि इससे भारत और भारत के लोगों



आपकी टिप्पणियाँ

दोनों का हित हो सके। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए राष्ट्रवादी नेताओं ने अपने देश के लिए स्व–शासन या स्व–सरकार या कहें स्वराज की मांग की।

राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा संरचित आर्थिक राष्ट्रीयवाद का संदर्भ द्विपक्षीय था :

सबसे पहले तो इससे इस धारणा को खत्म किया गया, जो 19वीं सदी की प्रथम अर्द्ध शती के दौरान शिक्षित वर्ग के दिल में बैठ गई थी कि ब्रिटिश उपनिवेशवादी सरकार कल्याणकारी सरकार है और इससे अन्त में भारत का आर्थिक विकास होगा। अनेक लोगों को यह विश्वास था कि यदि औपनिवेशिक शासन लंबी अवधि तक चलेगा तो, अन्त में, भारत ग्रेट ब्रिटेन की तरह समृद्ध राष्ट्र बन जाएगा। भारतीय राष्ट्रवादी नेता यह प्रदर्शित करने में समर्थ थे कि यह धारणा गलत थी और यह कि उपनिवेशवादी शासन वास्तव में भारत के लोगों के हितों के लिए हानिकारक था।

दूसरे, आर्थिक राष्ट्रवाद ने ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन के विरुद्ध एक शक्तिशाली आंदोलन की नींव रखी, जो 20वीं सदी में महात्मा गांधी और अन्य नेताओं के नेतृत्व में प्रारंभ हुआ। इन नेताओं ने आर्थिक राष्ट्रवाद के विचारों को भारतीय जनता तक पहुंचाया और उन्हें इसके पक्ष में राष्ट्रीय आंदोलन के लिए प्रेरित किया। एक बार भारतीय जनमानस के विशाल संख्या में राष्ट्रीय आंदोलन के साथ जुड़ते ही, ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का भारत में रहना असंभव हो गया।

पाठगत प्रश्न 20.3

1. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दें :

   (i) भारत के कुछ ऐसे नेताओं के नाम लिखें जिन्होंने यह तर्क दिया कि ब्रिटिश शासन द्वारा भारत की अर्थव्यवस्था का शोषण किया जा रहा था।

   _____

   (ii) निष्कासन सिद्धांत क्या था और इसे किसने प्रतिपादित किया?

   _____

   (iii) आर्थिक राष्ट्रवाद का क्या महत्व है?

   _____

   (iv) 20वीं सदी के राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं द्वारा आर्थिक राष्ट्रवाद के विचार का किस प्रकार उपयोग किया गया?

   _____

2. रिक्त स्थान भरें :

   (i) ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत के साथ _____ किया।

   (ii) दादाभाई नौरोजी ने _____ पुस्तक लिखी।

   (iii) भारत से इंग्लैंड को निष्कासित की जाने वाली धन–सम्पदा की कुल मात्रा भारत की _____ बचत के बराबर थी।

(iv) उपनिवेशवादी शासकों ने अपने उद्योगों के लिए भारत को _____ के स्रोत के रुप में शोषित किया।

20.4 धर्म और राष्ट्रवाद

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और आर्थिक राष्ट्रवाद के अतिरिक्त, अन्य उपाय भी थे जिनके माध्यम से भारतीय राष्ट्रवाद की भावना अभिव्यक्त की जा रही थी। 19वीं सदी की दूसरी अर्ध शती के दौरान भारतीय राष्ट्रवाद के संदर्भ में यह विचार अस्तित्व में आया जो धर्म पर आधारित था। यह बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय, दयानंद सरस्वती (जिन्होंने 1875 में आर्य समाज की स्थापना की) और अरबिन्दो घोष जैसे नेताओं ने हिन्दू धर्म और इसकी भावना को भारतीय राष्ट्रवाद के पीछे की प्रेरक शक्ति बना दिया। उन्होंने भारत में ब्रिटिशों की उपस्थिति को पश्चिमी सभ्यता द्वारा भारत की सभ्यता पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के रुप में देखा। वे इस प्रभुत्व के पूरी तरह विरुद्ध थे।

ये नेता पूरी तरह यह मानते थे कि यद्यपि ब्रिटिश, भारत पर विजय प्राप्त करने में सफल रहे परन्तु पूर्वी सभ्यता पश्चिमी सभ्यता से श्रेष्ठ थी। बंकिम चन्द्र ने यह तर्क दिया कि यद्यपि ब्रिटिशों ने सेना और प्रौद्योगिकी की श्रेष्ठता की सहायता से भारत पर विजय प्राप्त कर ली थी, परन्तु भारतीयों को इसका अंधानुकरण नहीं करना चाहिए। उन्होंने भारतीय समाज की अद्वितीयता का पक्ष लिया और कहा कि इस पर पश्चिमी सभ्यता के विचारों को लागू नहीं किया जा सकता। इन नेताओं ने यह समझ लिया था कि पश्चिमी सभ्यता व्यक्तिवादी विचारधाराओं (आध्यात्मिकता के स्थान पर) पर आधारित थी और यह विचार भारत के लिए पूरी तरह अनुचित था। विवेकानंद का विश्वास था कि पश्चिमी विचारों को भारतीय परिस्थितियों के अनुसार पुनः रचित करना होगा। उन्होंने कहा, "यूरोप में राजनीतिक विचार राष्ट्रीय एकता लाते हैं एशिया में धार्मिक विचार राष्ट्रीय एकता की भावना पैदा करते हैं।"

इन नेताओं का प्रेरणा स्रोत पश्चिमी साहित्य और अन्य साधन नहीं बल्कि वेद, उपनिषद और गीता जैसे भारतीय ग्रंथ थे। उन्होंने ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन की आलोचना की, जिसका मुख्य आधार था कि यह लोग आध्यात्मिक संसाधनों से संपन्न समृद्ध भारत भूमि पर एक घटिया भौतिक पद्धति लागू करना चाहते हैं।

धर्म पर आधारित राष्ट्रवाद की इस समझ का राजनीतिक पक्ष भी था। बालगगाधर तिलक जैसे नेता राष्ट्रवाद की इस भावना को जनमानस तक ले जाना चाहते थे। वे जानते थे कि भारतीय समाज में धर्म बहुत महत्त्वपूर्ण नैतिक शक्ति था। अतः उन्होंने राष्ट्रवादी भावना के प्रचार के लिए धर्म का इस्तेमाल करने का निर्णय लिया। लोगों से वे उन्हीं की भाषा, यानी धार्मिक भाषा में बात करने के योग्य हो सकें इसके लिए तिलक ने 1893 में महाराष्ट्र में 'गणपति उत्सव' मनाने की शुरुआत की ताकि ऐसा मंच तैयार किया जा सके जहां से राष्ट्रवादी विचारों का प्रचार और प्रसार किया जा सके।

20वीं सदी के दौरान, धर्म पर आधारित इस राष्ट्रवादी समझ के परिणामस्वरुप, दो विभिन्न किस्म की राजनीतिक गतिविधियां पैदा हुई। एक तरफ, महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने राष्ट्रवादी प्रेरणा को गति देने के लिए धर्म के इस्तेमाल का स्वागत किया। परन्तु उन्होंने इस दृष्टिकोण को केवल हिन्दू धर्म तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने हिन्दुत्व,



आपकी टिप्पणियाँ

इस्लाम और अन्य धर्मों के प्रतीकों और भाषाओं का भी इस्तेमाल किया। इस प्रकार उन्होंने विभिन्न धार्मिक समुदायों के सदस्यों को राष्ट्रीय आंदोलन के साथ जोड़ने और उनमें एकता की भावना पैदा करने का प्रयास किया।

दूसरा दृष्टिकोण विशिष्ट प्रकृति का था और यह 'हिन्दू महासभा' और 'मुस्लिम लीग' जैसे संगठनों की गतिविधियों में लक्षित होता था। 'हिन्दू महासभा' के नेताओं ने स्वयं की गतिविधियों को हिन्दुओं तक और 'मुस्लिम लीग' ने मुसलमानों तक सीमित रखा। उन्होंने भारतीय जनमानस में एकता के प्रयास करके या ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन के लगातार विरोध द्वारा, किसी भी तरह से भारतीय राष्ट्रवाद की विचारधारा के लिए योगदान नहीं किया।

अंत में, आपके लिए यह समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि विभिन्न प्रकार के राष्ट्रवाद के परस्पर संबंधों के कौन–कौन से पक्ष हैं, जो आपने इस मॉड्यूल में पढ़े हैं। यद्यपि देखने में वे एक–दूसरे से भिन्न दिखाई देते हैं परन्तु असल में उनमें बहुत सी बातें सामान्य थी। वे एक दूसरे से सिर्फ इस सीमा तक भिन्न थे कि उन्होंने एक ही लक्ष्य तक पहुंचने के लिए अलग–अलग रास्तों को अपनाया। वे किसी भी मूलभूत भावना में परस्पर विरोधी नहीं थे। उन सभी ने ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन का विरोध किया परन्तु उनके विरोध के आधार भिन्न–भिन्न थे। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के पक्षधरों का विश्वास था कि औपनिवेशिक शासन ने भारतीय संस्कृति का अतिक्रमण करना शुरु कर दिया था जिसका विरोध किया जाना चाहिए। आर्थिक राष्ट्रवाद के प्रतिपादकों ने तर्क दिया कि उपनिवेशवादी शासक आर्थिक रुप में भारत का शोषण कर रहे थे और भारत को पिछड़ा बनाए रखने में यह एक मुख्य घटक था। इसी प्रकार बंकिम चंद्र और विवेकानंद जैसे नेताओं ने ब्रिटिश शासन का इस आधार पर विरोध किया कि यह भारत के आध्यात्मिक संसाधनों को प्रदूषित कर रहा था। इन तीनों के उपनिवेशवादी शासन के विरुद्ध होने का कारण था भारतीय जनमानस पर पड़ रहा उस शासन का प्रभाव। उनके विचारों ने 20वीं सदी के दौरान उपनिवेशवाद–विरोध शक्तिशाली भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की भूमिका तैयार करने में सहयोग दिया, जिसने अंततः भारत से उपनिवेशवादी शासन को पराजित किया और भारत से बाहर निकाल फेंका।

पाठगत प्रश्न 20.4

1. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दें :

   (i) आर्य समाज की स्थापना किसने की?

   _____

   (ii) भारतीय नेताओं के अनुसार, पश्चिमी सभ्यता के कौन से मुख्य विचार थे?

   _____

   (iii) उस भारतीय नेता का नाम लिखें, जिसने भारतीय जनमानस तक पहुंचने के लिए गणेश उत्सव मनाने की शुरुआत की।

   _____

2. निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही या गलत बतलाएँ :

(i) बंकिम चन्द्र ने अनुभव किया कि पश्चिमी सभ्यता के विचारों को भारत में लागू किया जा सकता है। (सही/गलत)

(ii) दयानंद और विवेकानंद जैसे नेताओं ने अपनी प्रेरणा यूरोपीय ग्रंथों (साहित्य) से प्राप्त की। (सही/गलत)

(iii) आर्थिक राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और धर्म पर आधारित राष्ट्रवाद ने एक ही लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न मार्गों को अपनाया। (सही/गलत)

आपने क्या सीखा

इस पाठ में निम्नलिखित मुद्दे उल्लेखनीय हैं :

- सर्वप्रथम 19वीं सदी में यूरोप में राष्ट्रवाद की जड़ें पनपीं और यह तेजी से हुए औद्योगीकरण और आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था का परिणाम था।
- भारतीय राष्ट्रवाद अपने समकालीन यूरोप के राष्ट्रवाद से नितान्त भिन्न था। भारत में राष्ट्रवाद की भावना का उदय 19वीं सदी के उत्तरार्ध के दौरान हुआ।
- भारतीय राष्ट्रवाद का विचार दोहरे विरोध की भावना पर आधारित था। एक था, ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन का विरोध और दूसरा था, भारत के लोगों की एकता।
- ब्रिटिश शासन का प्रभाव सर्वप्रथम संस्कृति के क्षेत्र में अनुभव किया गया। भारतीय नेताओं द्वारा तर्क दिया गया कि भारतीय संस्कृति में उपनिवेशवादी संस्कृति का अतिक्रमण हानिकारक है और इसका विरोध किया जाना चाहिए।
- प्रारंभिक राष्ट्रवादी नेताओं ने ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन की आर्थिक दृष्टि से शोषणकारी प्रकृति की ओर इशारा किया और इस प्रकार आर्थिक राष्ट्रवाद का जन्म हुआ।
- इसके साथ–साथ, अनेक अन्य नेताओं ने भारतीय राष्ट्रवाद का प्रचार किया, जो धर्म पर आधारित था और जो धार्मिक विचार–विमर्श द्वारा प्रेरित था।
- 20वीं सदी के दौरान, अनेक शाखाओं सहित जिस भारतीय राष्ट्रवाद का विकास हुआ उसी के परिणामस्वरुप शक्तिशाली भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन रुप ले सका। यह भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन 19वीं सदी के भारतीय राष्ट्रवाद के विचार पर आधारित था और इसे जनमानस की व्यापक भागीदारी द्वारा समर्थन मिला। विशाल जनमानस की सक्रिय भागीदारी ने भारतीय राष्ट्रवाद को शक्तिशाली अजेय बल में बदल दिया, जिसने अंत में ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन को भारत से वापस जाने पर मजबूर कर दिया।



आपकी टिप्पणियाँ

पाठांत प्रश्न

1. औद्योगीकरण ने यूरोप में राष्ट्रवाद को विकसित करने में किस प्रकार दिशा दी?
2. भारतीय राष्ट्रवाद, अपने यूरोपीय समकालिक राष्ट्रवाद से किस प्रकार भिन्न था?
3. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का सार क्या था?
4. दादाभाई नारौजी और आर. सी. दत्त जैसे नेताओं ने आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में किस प्रकार योगदान किया?
5. वे कौन–से विभिन्न उपाय थे जिनके द्वारा ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन ने भारतीय अर्थव्यवस्था को ग्रेट ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था के अधीन किया?
6. दयानंद सरस्वती, विवेकानंद और अरबिन्दो घोष के दृष्टिकोण से धर्म और राष्ट्रीयता में परस्पर क्या संबंध था?
7. भारतीय राष्ट्रवाद के विकास का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विकास से क्या संबंध था?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

20.1

1. (क) गलत, (ख) सही, (ग) सही, (घ) सही
2. (क) ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन का विरोध और (ख) भारतीय लोगों की एकता।

20.2

1. (क) राममोहन राय, (ख) ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, (ग) ब्रह्म समाज
2. पारंपरिक भारतीय संस्कृति के कुछ तत्वों का विरोध और लोगों के जीवन में उपनिवेशवादी संस्कृति के अतिक्रमण का विरोध।

20.3

1. दादाभाई नारौजी, आर. सी. दत्त, महादेव गोविंद रानाडे और कुछ अन्य।
2. निष्कासन पद्धति का अभिप्राय था व्यापार, उद्योग और भारत में नियुक्त ब्रिटिश अधिकारियों के वेतनों के जरिये भारतीय धन–सम्पदा को एक प्रणाली का रुप देकर इंग्लैंड में स्थानांतरित करना।
3. आर्थिक राष्ट्रवाद का यह महत्व था कि इससे यह भ्रम समाप्त हो गया कि ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन भारत के लोगों की भलाई के लिए काम कर रहा था।
4. आर्थिक राष्ट्रवाद की भावनाओं का, राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने, भारतीय लोगों को ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रेरित करने के लिए उपयोग किया।

2. (क) असमान व्यापार, (ख) निर्धनता और भारत में ब्रिटिशों के शासन को हटाना (ग) एक तिहाई, (घ) कच्चा माल

20.4

1. (क) दयानंद सरस्वती, (ख) व्यक्तिवाद, धर्मनिरपेक्षता, औचित्यपूर्ण व्याख्या, (ग) बाल गंगाधर तिलक
2. (क) गलत, (ख) गलत, (ग) सही

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. देखें 20.1, अनुच्छेद 2
2. देखें 20.1, अनुच्छेद 5
3. देखें 20.2
4. देखें 20.3, अनुच्छेद 1 व 2
5. देखें 20.3, अनुच्छेद 3 व 4
6. देखें 20.4, अनुच्छेद 1 व 2
7. देखें 20.4, अनुच्छेद 7 (अंतिम अनुच्छेद)



21

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन

हमारे स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास कोई एक समरूप कहानी नहीं है। इसमें बहुत से भिन्न–भिन्न प्रकार के धागे हैं जो आपस में गुंथे हुए हैं और परस्पर एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं और स्वतंत्रता के लिए हमारे लोगों के संघर्ष की परतों को खोलते हैं। नरमदल के प्रयासों से कानूनी और संवैधानिक परिवर्तन हुए। क्रांतिकारियों के उत्साह के परिणामस्वरूप बहादुरी और अटल संघर्ष की घटनाएं घटीं। महात्मा गांधी द्वारा शुरु किए गए जन–आंदोलन पर जनता के प्रत्येक वर्ग की ओर से व्यापक प्रतिक्रिया हुई। प्रत्येक आंदोलन ने एक–दूसरे को समर्थन दिया और उन्हें पुष्ट किया, जिसके परिणामस्वरूप अंततः हमें स्वतंत्रता मिली। इस पाठ में हम इन विभिन्न आंदोलनों के संबंध में पढ़ेंगे और यह देखेंगे कि कैसे इन्होंने एक–दूसरे पर असर डाला और सबके सामान्य लक्ष्य अर्थात् स्वतंत्रता पाने की ओर अग्रसर किया।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के संबंध में एक समग्र दृष्टिकोण विकसित कर सकेंगे;
- आंदोलन के विविध तानों–बानों की पहचान कर उन्हें क्रमवार स्थिति में व्यवस्थित कर सकेंगे और
- यह देख सकेंगे कि राष्ट्रीय आंदोलन के प्रत्येक वर्ग ने कैसे दूसरे को प्रभावित किया।

21.1 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और प्रारंभिक राष्ट्रवादी

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन 1885 में राजनीतिक दृष्टि से जागरूक शिक्षित 72 भारतीयों के एक समूह द्वारा किया गया था। ब्रिटिश इंडियन सिविल सर्विस के सेवानिवृत्त अधिकारी, मिस्टर ए. ओ. ह्यूम ने इसके गठन में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके सदस्यों में शामिल थे फिरोजशाह मेहता, बदरूद्दीन तैय्यबजी, डब्ल्यू.सी. बनर्जी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, आनंदमोहन बोस और रोमेश चन्द्र दत्त। यह संगठन किसी भी प्रकार से भारतीय लोगों की ऐसी पहली संस्था नहीं थी। भारत में अंग्रेजी पढ़ा–लिखा वर्ग

धीरे–धीरे राजनीतिक दृष्टि से जागरूक हो रहा था और 1875 से 1885 के दौरान अनेक राजनीतिक संस्थाएं गठित की जा रही थीं। कलकत्ता के द्वारकानाथ गांगुली, पुणे के रानाडे और जी.वी. जोशी, बम्बई के के.टी. तेलंग और मद्रास के जी. सुब्रमन्यम अय्यर व वीरराघवचारी पहले ही क्षेत्रीय राजनीतिक संगठनों से जुड़े हुए थे। इनके संगठनों के नाम क्रमश : इंडियन एसोसिएशन, पूना सार्वजनिक सभा, बांबे प्रेजिडेंसी एसोसिएशन, और मद्रास महाजन सभा थे। इन संस्थाओं की कार्य सूची संपूर्ण स्वतंत्रता के आदर्श से दूर, बहुत सीमित थी। ये संस्थाए औपनिवेशिक शासन की उन नीतियों के विरुद्ध आवाज उठा रही थीं, जो भारतीयों के हित में नहीं थीं। इन संस्थाओं से संबद्ध प्रारंभिक राष्ट्रवादियों के बुनियादी सरोकार निम्नलिखित थे :

1. कपास के आयात–कर को भारतीयों के अनुकूल बनाया जाए।
2. सरकारी सेवाओं का भारतीयकरण किया जाए।
3. ब्रिटिश सरकार की अफगान नीति का विरोध।
4. वर्ना कुलर प्रेस एक्ट और प्रेस पर नियंत्रण का विरोध।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की जो बात इसे अन्य संस्थाओं से पृथक करती थी–वह थी कभी भारत के लोगों के लिए एक ऐसा सामान्य राजनीतिक मंच उपलब्ध कराने का प्रयास, जिसने इसे यह दावा करने के योग्य बनाया कि यह देश का प्रतिनिधित्व करती है। यद्यपि ब्रिटिश प्रशासन ने कांग्रेस के महत्त्व को कम करने का प्रयास किया, परन्तु इसके बावजूद यह लोगों की महत्त्वाकांक्षा को दर्शाने में सफल रही। अतः इस संगठन का सबसे महत्त्वपूर्ण और सर्वोपरि लक्ष्य था लोगों के मन में यह जागरूकता पैदा करना कि वे सभी एक राष्ट्र से संबंध रखते हैं। यहां की सांस्कृतिक, भाषाई और धार्मिक परंपराओं की विविधता के चलते यह कार्य अत्यन्त भयावह था। सभी विभिन्न ताकतों को एक सामान्य प्रतिपक्षी–ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोध में संगठित करना था।

प्रारंभ में कांग्रेस के संस्थापकों को सरकार को उन मामलों में प्रभावित करने की आशा की थी जो देश के कल्याण और विशेष रूप से आर्थिक विकास को प्रभावित करते थे। उन्हें उम्मीद थी कि यदि समुचित प्रचार के जरिए राष्ट्र की समस्याओं को प्रकाश में लाया जाये तो औपनिवेशिक सरकार इन समस्याओं के समाधान के लिए कदम उठा सकती है।

अतः प्रारंभिक वर्षों के दौरान राष्ट्रवादियों ने वक्तव्यों और समाचार–पत्रों में लेखों द्वारा राष्ट्र की मुख्य समस्याओं और उन्हें सुधारने के उपायों को सामने लाने का प्रयास किया। तथाकथित नरमपंथियों या कांग्रेस के प्रारंभिक सदस्यों का सबसे मूल्यवान योगदान था, आर्थिक समीक्षा का सूत्रपात करना। सर्वप्रथम दादा भाई नौरोजी और तत्पश्चात् अन्य राष्ट्रवादियों ने यह देखा कि औद्योगिक क्रांति लाने के बजाय, जिसकी भारत का बौद्धिक वर्ग आशा कर रहा था, ब्रिटिश शासन भारत को और निर्धन बना रहा था और भारत के स्वदेशी हस्तशिल्प–उत्पादन को नष्ट कर रहा था। इस खोज ने प्रारंभिक राष्ट्रवादियों के मन में कुछ भ्रम पैदा कर दिया था क्योंकि उन्हें यह आशा थी कि ब्रिटिश शासन के परिणामस्वरूप भारत में आधुनिकता आयेगी। प्रारंभिक कांग्रेस के अन्य सरोकार इस प्रकार थे :

(1) भारतीय प्रतिनिधियों को अधिकाधिक शक्तियां दिये जाने सहित सर्वोच्च और स्थानीय विधान परिषदों में सुधार।



आपकी टिप्पणियाँ

(2) इंग्लैंड और भारत में समानान्तर परीक्षाओं के जरिए सिविल सर्विसेज का भारतीयकरण करना।

(3) वन संबंधी कानूनों को बदलना, जो भारतीयों को प्रभावित करते थे।

(4) असम के चाय के बागान में अनुबंधित मजदूरी के विरोध में संगठित अभियान चलाना।

21.2 स्वदेशी और बहिष्कार : गरमपंथी राजनीति

1885–1905 के बीच के चरण को गरमपंथियों का काल कहा जाता है। 1905 में तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन की घोषणा की। उस समय के बंगाल में वर्तमान पश्चिम बंगाल, बिहार और झारखंड, ओड़िसा और असम शामिल थे। इसमें वर्तमान बांग्लादेश भी शामिल था। निस्संदेह यह एक बहुत ही विस्तृत प्रशासकीय इकाई थी। किंतु इसके विभाजन के तरीके अंग्रेजों की फूट डालने की नीतियां साफ जाहिर कर दीं। एक तो यह विभाजन धर्म के आधार पर था, जिन क्षेत्रों में हिन्दुओं की आबादी अधिक थी, उन्हें मुस्लिम–बहुल आबादी वाले क्षेत्रों से अलग किया गया। इसके अतिरिक्त पुनरुज्जीवित बौद्धिक (अंग्रेजी शिक्षित उच्च वर्ग भारतीय) वर्ग के शहरी आधार वाले स्थलों को मुख्यतया खेतीबाड़ी वाले क्षेत्रों (मुख्य रूप से पटसन (जूट) पैदा करने वाले क्षेत्र) से अलग किया गया, जिसके पीछे उद्देश्य था कलकत्ता के महत्त्व को कम करने का प्रयास क्योंकि यहीं पर पूरे बंगाल के बौद्धिक वर्ग के लोग आपस में मिलते थे और एक–दूसरे को प्रेरित करते थे। इस घोषणा के बाद व्यापक विरोध–प्रदर्शन हुए। शुरू में यह विरोध नरमपंथियों के 'अनुनय–विनय' की युक्तियों के रूप में किया गया, जिसमें औपनिवेशिक सरकार के नाम याचिकाएं और ज्ञापन भेजे गए, भाषण, दिन भर सार्वजनिक सभाएं आयोजित की गई और प्रेस–आंदोलन चलाए गए। यह भारत और इंग्लैंड में जनमत को प्रभावित करने का प्रयास था। इन प्रयासों के बावजूद जुलाई 1905 में बंगाल का विभाजन घोषित कर दिया गया।

अंतिम घोषणा होते ही बंगाल में विरोध की आग फूट पड़ी। पूरे बंगाल में विरोध सभाएं आयोजित की गईं और खास तौर पर न सिर्फ कलकत्ता में बल्कि बंगाल के अंदरूनी छोटे कस्बों, जैसे दिनाजपुर, पाबना, फरीदपुर, ढाका, बड़िसाल इत्यादि में भी सभाएं हुई। ऐसी ही एक सभा में पहली बार ब्रिटिश सामान के 'बहिष्कार' का निर्णय लिया गया। 7 अगस्त 1905 को कलकत्ता के टाउनहॉल में एक बैठक में 'बहिष्कार' का 'संकल्प' पारित करके स्वदेशी आंदोलन की औपचारिक घोषणा की गई, जिसमें अब तक बिखरे नेतृत्व को एकजुट बना दिया। जिस दिन विभाजन लागू किया गया, यानी 11 अक्टूबर 1905 को उस दिन कलकत्ता में हड़ताल की गई और उसे शोक–दिवस घोषित किया गया। सभी लोगों ने उपवास किया और किसी भी घर में खाना पकाने के लिए चूल्हे नहीं जलाए गए। बंदे मातरम का गीत गाते हुए गलियों में परेड निकाली गई। बंगाल के लोगों ने एकता के प्रतीक के रूप में एक–दूसरे की कलाइयों पर राखियां बांधी।

इस विशेष प्रकार के 'स्वदेशी' और 'बहिष्कार' के जन–विरोध ने कांग्रेस के उन नए सदस्यों में भी लोकप्रियता हासिल कर ली, जो अपने प्रयासों के अनुकूल परिणाम देखने में नरमपंथियों से ज्यादा असहनशील थे। लोकमान्य तिलक स्वदेशी और विदेशी सामान के बहिष्कार के संदेश को मुम्बई और पुणे लेकर गए, अजीत सिंह और लाला लाजपतराय

पंजाब में और उत्तर भारत के अन्य भागों में लेकर गए। सैय्यद हैदर रजा दिल्ली तक और चिदम्बरम पिल्लई मद्रास प्रेजिडेंसी तक इस संदेश को लेकर गए, जो कि बिपिन चन्द्र पाल के विस्तृत भ्रमणों के दौरान दिए गए व्यापक वक्तव्यों से भी प्रेरणा ले रहे थे। कांग्रेस ने स्वदेशी के आह्वान को गोपालकृष्ण गोखले की अध्यक्षता में 1905 हुए अधिवेशन के दौरान औपचारिक रूप से अपनाया। यद्यपि कांग्रेस ने बंगाल में स्वदेशी आंदोलन को समर्थन दिया, परन्तु इसने इस आंदोलन को और आगे संपूर्ण भारत के स्तर पर अथवा संपूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य तक विस्तारित नहीं किया। तिलक, बिपिन चन्द्र पाल, लाला लाजपत राय और अरबिंद घोष इत्यादि जैसे चरमपंथी नेताओं की इच्छा केवल यही थी। चरमपंथियों के इस दबाव ने दादा भाई नारौजी को कलकत्ता अधिवेशन के दौरान अपने अध्यक्षीय संबोधन में यह कहने के लिए प्रेरित किया कि कांग्रेस का अंतिम लक्ष्य है, 'स्व–शासन या स्वराज'।

स्वदेशी आंदोलन का योगदान यह था कि उसने नए किस्म के प्रतिरोधों की शुरूआत की। विरोध के इन तरीकों में से कुछ ने महात्मा गांधी द्वारा सत्याग्रह के दौरान अपनाए गए अनेक तरीकों की पृष्ठ भूमि तैयार की। विरोध करने के यह नए तरीके थे जनसभाएं, जुलूस, विदेशी सामान का बहिष्कार (बाद में जिसका विस्तार सरकार स्कूलों, कॉलेजों, न्यायालयों, उपाधियों और सरकारी सेवाओं का बहिष्कार तक हो गया), हड़तालें, सार्वजनिक रूप से विदेशी सामान को जलाना और विदेशी सामान बेचने वाली दुकानों के सामने धरने इत्यादि। व्यापक स्तर पर जनमानस में सक्रियता पैदा करने के प्रयास किए गए और ऐसी 'समितियों' का गठन किया गया, जिन्होंने बंगाल के अंदरूनी हिस्सों में जाकर स्वदेशी का संदेश फैलाया।

पहली बार जन सामान्य तक पहुँचने के लिए राष्ट्रीय आंदोलन में पारंपरिक और लोकप्रिय त्योहारों का इस्तेमाल किया गया।

महाराष्ट्र में तिलक द्वारा बड़ी संख्या में लोगों को इस आंदोलन की ओर आकर्षित करने और इस संबंध में उन्हें शिक्षित करने के लिए गणपति और शिवाजी उत्सवों का उपयोग किया गया। बंगाल में लोगों को प्रेरित करने के लिए स्वदेशी गीतों का प्रयोग किया गया। लोकप्रिय रंगमंच 'यात्रा' की एक किस्म को राष्ट्रीय भावनाओं के विस्तार के लिए प्रयोग में लाया गया। इस आंदोलन के साथ–साथ सांस्कृतिक गतिविधियों की एक बाढ़–सी आ गई थी।

अंत में औपनिवेशिक सरकार उस रूप में विभाजन को वापस लेने के लिए मजबूर हो गई, जिस रूप में उसने इसकी परिकल्पना की थी। फिर भी उन्होंने 1911 में राजधानी को कलकत्ता से दिल्ली स्थानांतरित करके कलकत्ता और उसके साथ–साथ बंगाल के बुद्धिजीवियों के महत्त्व को कम करने का प्रयास तो किया ही।

पाठगत प्रश्न 21.1

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन कब हुआ? किस ब्रिटिश अधिकारी ने इसके गठन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई?



आपकी टिप्पणियाँ

2. बंगाल–विभाजन की घोषणा किसने और कब की ?

3. राष्ट्रवादी भावनाओं के प्रसार के लिए किस लोकप्रिय किस्म के रंगमंच का प्रयोग किया गया?

4. 1911 में राजधानी को स्थानांतरित करने का मुख्य कारण क्या था?

21.3 भारत और विदेश में क्रांतिकारी आंदोलन का पहला चरण

कांग्रेस के भीतर ही नरमपंथियों और गरमपंथियों के बीच मतभेदों की खाई चौड़ी होती चली गई। गरमपंथी लोग औपनिवेशिक सरकार द्वारा शुरू किए गए संवैधानिक सुधारों के नाम पर कराए जाने वाले असेबली चुनावों का बहिष्कार करने के पक्ष में थे। नरमपंथी लोग इस चुनाव प्रतिक्रिया में भाग लेना चाहते थे, हालांकि सीमित स्तर पर। अंत में इस मतभेद का परिणाम यह हुआ कि 1907 में कांग्रेस के सूरत अधिवेशन के दौरान कांग्रेस का विभाजन हो गया। गरमपंथी नेताओं ने जनसामान्य को क्रियाशील करना जारी रखा, जबकि कांग्रेस ने सरकारी नीतियों को प्रभावित करने का प्रयास किया। 1909 के मॉर्ले–मिंटो सुधार रमपंथियों की आकांक्षाओं पर एक करारा आघात था। स्वदेशी आंदोलन अपनी गति खो चुका था। फिर भी आंदोलन के क्रांतिकारी संदेश ने एक अन्य वैयक्तिक किस्म के विरोध यानी क्रांतिकारी आंदोलन को प्रेरित किया।

क्रांतिकारियों का लक्ष्य था चरम आत्म–बलिदान द्वारा ब्रिटिश शासन का अंत। उनका तरीका था उन अलोकप्रिय औपनिवेशिक अधिकारियों की हत्या करना, जो सरकार के दमनकारी कार्यों को आकार देने के लिए जिम्मेदार थे। इन जन–आंदोलनों के प्रति औपनिवेशिक प्रतिक्रिया हमेशा दोहरी रहती थी। एक ओर तो उन्होंने संवैधानिक सुधार करके और उन्हें सीमित चुनावों में भाग लेने के लिए आमंत्रित करके नेताओं को कुछ रियायतें दीं, दूसरी ओर प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार करके बड़े पैमाने पर उनका दमन किया। गरमपंथी नेताओं ने अनेक वर्ष जेलों में बिताऐ। उन नेताओं के कभी जेल के अंदर तो कभी बाहर रहने के परिणामस्वरूप क्रातिकारी आंदोलन मुख्यतः भूमिगत रहकर, गुप्त संगठनों द्वारा चलाये जाने लगे। इन संगठनों की उपत्ति के बीज स्वदेशी के दिनों में गठित 'समितियों' में समाहित थे।

सन् 1908 में खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ने एक वाहन पर बम फेंका, जिसके संबंध में वे समझते थे कि उसमें मुजफ्फरपुर का एक अलोकप्रिय जज किंग्सफोर्ड बैठा है। लेकिन उन्होंने उसके स्थान पर दो महिलाओं की हत्या कर दी। चाकी ने खुद को गोली मार ली थी और खुदीराम को फांसी दे दी गई थी। क्रांतिकारियों ने, जो मुख्यतया अनुशीलन और युगांतर समितियों से संबंधित थे, अपने आंदोलनों के लिए धन इकट्ठा करने के लिए स्वदेशी डकैतियाँ भी डाली। क्रांतिकारी आंदोलन सिर्फ बंगाल तक ही सीमित नहीं था। रासबिहारी बोस और शचीन्द्रनाथ सान्याल ने पंजाब से लेकर उत्तर–प्रदेश और दिल्ली तक के क्षेत्रों में क्रांतिकारी तंत्र की स्थापना की। 1912 में इन

दोनों क्रांतिकारियों ने वाइसराय लॉर्ड हार्डिंग पर दिल्ली में घातक प्रहार किया। क्रांतिकारी आंदोलन धीरे–धीरे भारतीय तटों से बाहर भी फैल रहा था। श्यामजी कृष्णवर्मा ने सन् 1905 में लंदन में भारतीय विद्यार्थियों के लिए इंडिया हाउस नाम का एक केन्द्र शुरू किया। सन् 1907 में इस संगठन की कमान बी.डी. सावरकर के अधीन एक क्रांतिकारी समूह के हाथों में आ गई थी। इस संगठन के मदनलाल ढींगरा ने सन् 1909 में भारतीय कार्यालय के अफसरशाह कर्जन–विली की लंदन में हत्या कर दी थी। यूरोप में (पेरिस और जेनेवा) एक पारसी क्रांतिकारी मादाम कामा ने फ्रांसीसी समाजवादियों के साथ संपर्क स्थापित किया और 'बंदे मातरम' नामक एक क्रांतिकारी पत्रिका की शुरूआत की। बर्लिन में वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय और अन्य नेता 1909 से सक्रिय थे। ब्रिटेन और यूरोप में क्रांतिकारी समूह बिलकुल अलग–थलग थे। फिर भी संयुक्त राज्य अमेरिका में और विशेष रूप से ब्रिटिश कोलम्बिया और प्रशांत महासागर के तटवर्ती राज्यों में इस आंदोलन को कुछ हद तक जनाधार मिला। इन राज्यों में 15000 भारतीयों की आबादी थी, जो मुख्य रूप से सिख समुदाय के लोग थे जो वहां सफल व्यापारी और कारीगर होने के बावजूद अत्यधिक नस्ली भेदभाव का सामना कर रहे थे। सन् 1913 में सैन–फ्रांसिस्को शहर में इस आबादी में गदर आंदोलन शुरू हुआ। यह आंदोलन सोहन सिंह भाकना द्वारा शुरू किया गया था और हरदयाल इसके अत्यंत प्रमुख नेताओं में से एक थे।

1914 में प्रथम विश्व युद्ध शुरू हुआ और क्रांतिकारियों ने इस अवसर को अपने पूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य को आगे बढ़ाने के लिए एक बहुत ही समुचित अवसर समझा। ब्रिटेन युद्ध की तैयारियों में व्यस्त था और इस प्रयोजन के लिए भारत से सैनिक दलों को बाहर भेजा जा रहा था। जर्मनी जैसे शत्रु राष्ट्र ब्रितानियों को कमजोर करने के लिए क्रांतिकारियों की गतिविधियों के लिए धन की व्यवस्था करने के लिए अत्यंत उत्सुक थे। तुर्की पर ब्रिटेन के आक्रमण से संपूर्ण इस्लामिक जगत का तुर्की को समर्थन मिला, क्योंकि तुर्की उस 'खलीफा' का स्थान था जिसका पूरे विश्व में सम्मान किया जाता था। बरकतुल्ला मुख्य मुस्लिम क्रांतिकारी नेताओं में से एक महत्त्वपूर्ण नेता थे जो गदर आंदोलन में शामिल हुए। उत्तर प्रदेश में देवबंद में एक मुस्लिम शिक्षण केन्द्र में शिक्षित व्यक्तियों के एक समूह या 'उलेमा' ने भी क्रांतिकारी संदेश का प्रचार किया जिसका बड़ी संख्या में मुसलमानों ने समर्थन किया।

इस दौरान स्वदेशी डकैतियाँ और ब्रिटिशों की हत्याए जारी रहीं, और इस अवधि में क्रांतिकारी गतिविधियों में उल्लेखनीय वृद्धि देखने में आई। जतिन मुखर्जी (बाघा जतिन) के नेतृत्व में बंगाली क्रांतिकारियों का समूह संगठित हुआ और उन्होंने बहुत बड़े पैमाने पर रेल–सेवा को तहस–नहस करने और हथियार छीनने की योजना बनाई। उन्हें तब सफलता मिली, जब बहुत बड़े पैमाने पर कलकत्ते में रोडा फर्म के शस्त्र और बारूद इन लोगों के हाँथ लगे। तथापि उड़ीसा में बालासोर की पुलिस द्वारा बाघा जतिन को पकड़ लिए जाने इनकी दीर्घकालीन योजनाओं को बड़ा झटका लगा। रास बिहारी बोस और सचिन सान्याल की योजना भी बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन का अंग थी। इस समूह वाले लोग बड़ी संख्या में भारत में वापस आने शुरू हो गए थे। कामागाटा मारू की घटना ने इस आवेग को और भड़का दिया था। सिखों और मुस्लिम यात्रियों को कनाडा ले जा रहे कामागाटा मारू जहाज को कनाडा सरकार ने परे धकेल दिया और यह सितम्बर 1914 में कलकत्ता पहुंचा। यात्रियों ने पुलिस से मुठभेड़ की जिसमें 22 लोग मारे गए थे।



आपकी टिप्पणियाँ

गदर आंदोलन और क्रांतिकारी योजनाएं असफल रहीं, क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने इन पर बहुत सख्ती शुरू कर दी थी। जो भी गदरी वापस आए थे, उन्हें तत्काल गिरफ्तार कर लिया गया था और रास बिहारी बोस जापान चले गए थे। सचिन सान्याल को जीवन–भर के लिए देशनिकाला दिया गया था। क्रांतिकारी और विशेष से गदरी सैनिक इकाइयों और किसानों के मध्य क्रांति को संगठित रूप देने में अग्रणी थे।

21.4 होमरूल आंदोलन

बालगंगाधर तिलक, जो 1908–1914 के दौरान जेल की सजा काट रहे थे, कांग्रेस में वापस आ गए थे जहाँ की रात मॉर्ले मिंटो सुधारों के तहत कौंसिल चुनावों में हाथ लगी निराशा के बाद उनके लिए और अधिक खुल गई थी। 1914–15 तक स्वदेशी आंदोलन, कौंसिल में प्रवेश और अंदर रहकर प्रशासन को प्रभावित करने के प्रयास और क्रांतिकारी आंदोलन सभी अपने–आप में अपना प्रभाव खो चुके थे। यह वह वक्त था, जब राष्ट्रीय आंदोलन को नए सिरे से जोरदार ढंग से आगे बढ़ाने की जरूरत थी और यह एनी बेसेंट और तिलक के होमरूल आंदोलन से ही संभव था। तिलक ने कांग्रेस के भीतर से ही होमरूल लीग के जरिए एक आक्रामक तंत्र स्थापित करने का काम किया, जिसे उन्होंने अप्रैल 1916 में स्थापित किया थी। लगभग इसी दौरान थियोसोफिस्ट लीडर एनी बेसेंट सुर्खियों में आई और उन्होंने भारतीयों के लिए स्व–शासन हेतु बहुत जोर–शोर से विरोध शुरू करने का प्रस्ताव रखा। बेसेंट ने आयरिश होम रूल के मॉडल के अनुरूप देश में एक होम रूल लीग आंदोलन स्थापित करने का प्रस्ताव रखा ताकि लोगों में जागरूकता का प्रसार किया जा सके। बेसेंट की लीग की स्थापना सितम्बर 1916 में हुई थी।

तिलक की लीग महाराष्ट्र और कर्नाटक में सक्रिय थी। बेसेंट की लीग का प्रभाव अखिल भारतीय स्तर पर था, जिसका मुख्यालय अड्यार, मद्रास में था। होम रूल लीग की गतिविधियां थीं शहरों में चर्चाओं और वाचनालयों की व्यवस्था करना, परचे बाटना और जनमत को प्रभावित करने के लिए व्याख्यान देने के लिए दौरे इत्यादि संचालित करना। होम रूल आंदोलन ने कभी भी संपूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य के संबंध में बात नहीं की, परन्तु फिर भी, उन्होंने सरकारी नीतियों के विरोध के जरिए, उदाहरणतया, मद्य कानून, वन कानून इत्यादि जैसी, उपनिवेशवादियों की दमनकारी नीति के विरुद्ध अपना ध्यान अवश्य केन्द्रित किया। इसी समय राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं की नई पीढ़ी तैयार की गई और इस आंदोलन के केन्द्र को बंगाल और पंजाब से महाराष्ट्र और दक्षिण में स्थानांतरित किया गया। अनेक नरमपंथी कांग्रेसी भी होम रूल आंदोलन से जुड़ गए, फिर भी, 1918 के बाद होम रूल आंदोलन का अचानक ही अंत हो गया।

पाठगत प्रश्न 21.2

1. सेन फ्रांसिस्को शहर में गदर आंदोलन की नींव किसने रखी?

2. कॉमा गाटामारू की घटना क्या है?



3. क्रांतिकारी पत्रिका की शुरूआत किसने की।

4. ऐनी बेसेंट और तिलक ने कौन सा आंदोलन शुरू किया?

21.5 गांधी जी का जन-आंदोलन : प्रारंभिक वर्ष

ब्रिटिश सरकार ने 1919 में संवैधानिक सुधारों की अगली कड़ी मॉन्टेग्यू–चैमस्फोर्ड सुधार की शुरूआत की। यद्यपि इन सुधारों के द्वारा यह दावा किया गया कि इनसे स्थानीय स्व–शासन आया है और भारतीयों को काफी हद तक स्वायत्ता मिली है, परन्तु वास्तविक शक्तियाँ अभी भी उन्होंने सख्ती से ब्रिटिश हाथों में ही रखीं। इन सुधारों के द्वारा शुरू की गई द्विशासन प्रणाली ने और अधिक भारतीयों को प्रतिनिधित्व का अवसर दिया और स्थानीय व्यय पर अधिकाधिक नियंत्रण दिलाया, परन्तु चुनी गई विधायिका का कार्यपालिका पर कोई नियंत्रण नहीं था।

युद्ध के बाद के वर्षों में (प्रथम विश्व युद्ध 1918 में समाप्त हुआ था) देश में बढ़ता असंतोष दिखाई देने लगा क्योंकि भारत की अर्थव्यवस्था पर युद्ध का प्रभाव बहुत ही स्पष्ट रूप से सामने आ गया था। युद्ध के परिणामस्वरूप कीमतें, अभाव और बेरोजगारी तो बढ़ी ही, इसके साथ ही इन्फ्लूएंजा महामारी भी फूट पड़ी। युद्धकालीन आवश्यकताओं से भारत में उद्यमियों के एक नये वर्ग का उद्भव हुआ और एक बड़ा कामगार वर्ग पैदा हुआ, जो अधिकाधिक संगठित होता जा रहा था। यह कामकाजी वर्ग अत्यन्त उद्विग्न था और राष्ट्रवादी आंदोलन के लिए एक संभावित बल था। पूंजीवादी वर्ग का एक हिस्सा औपनिवेशिक राज्य के प्रति निष्ठावान था क्योंकि वह श्रमिक वर्ग के नियंत्रण में सहायता करता था। फिर भी, उनमें से भी कुछ लोग राष्ट्रीय आंदोलन के समर्थक थे। वे बेशक सरकार की आर्थिक नीतियों का विरोध करते थे परंतु उन्होंने यह अनुभव किया था कि ब्रिटिश नीतियों का अंतिम परिणाम भारतीय उद्योगों के लिए हानिकारक होगा।

इस अशांत अवधि के दौरान मोहनदास करमचंद गांधी के आगमन ने राष्ट्रवादी आंदोलन का एक अन्य कालखंड चिह्नित हुआ। सन् 1915 में भारत आए गांधी ने युद्ध के बाद के वर्षों में मौजूद इन शक्तियों को नियंत्रित करने के लिए अपने ही तरीकों का प्रयोग किया। उनका तरीका था विशिष्ट मुद्दों और कानूनों का पता लगाना और शांतिपूर्ण ढंग से उनका विरोध करना तथा अनुशासित व्यक्तियों की मदद से उन कानूनों का उल्लंघन करना। गांधी जी के आंदोलन का महत्त्व यह था कि उन्होंने विशिष्ट मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित कराया। गांधी जी ने सर्व प्रथम चम्पारण, खेड़ा और अहमदाबाद के तीन आंदोलनों में सफलता प्राप्त की। इनमें से पहले दो किसान–आंदोलन थे और अंतिम आंदोलन था अहमदाबाद में मिल–कामगारों की हड़ताल।

चम्पारण के किसान उन यूरोपीय उपनिवेशी काश्तकारों के खिलाफ आंदोलन कर रहे थे जो उन्हें नील की खेती करने के लिए मजबूर करते थे। चम्पारण में उपनिवेशी काश्तकारों के खिलाफ पहले से ही विरोध का इतिहास था। किसान नेताओं में से एक राज कुमार शुक्ला अपनी हालत दिखाने के लिए गांधी जी को आमंत्रित करने लखनऊ तक गए।



आपकी टिप्पणियाँ

गांधी जी ने 1917 इस मामले में खुली जांच करवाना शुरू की। गांधी जी को चंपारण आने से रोकने का प्रयास करने और बाद में सत्याग्रह की धमकी देने पर उन्हें वहां जाने देने से चंपारण आंदोलन का व्यापक प्रचार हुआ। चम्पारण आंदोलन का परिणाम यह हुआ कि 'तिनकाठिया' प्रणाली को हटा दिया गया, जिसके अंतर्गत किसानों को अपनी अधिकृत जमीन के 3/20 वें हिस्से में नील की खेती करनी पड़ती थी।

जिस दूसरे आंदोलन के साथ गांधी जी ने खुद को जोड़ा, वह था अहमदाबाद के मिल कामगारों का आंदोलन। कामगारों और मालिकों के बीच झगड़े की वजह थी 'प्लेग बोनस' वापस लेना। महामारी समाप्त होने के बाद मिल–मालिकों ने बोनस वापस ले लिया था और कामगार युद्ध के बाद हुई मूल्य–वृद्धि की वजह से बोनस की वापसी का विरोध कर रहे थे। गांधी जी ने कामगार और मालिक दोनों पर दबाव डाला कि वे एक न्यायाधिकरण यानी ट्रिब्यूनल के समक्ष वार्ता करें।

मालिक कुछ कारीगरों द्वारा बुलाई गई हड़ताल का बहाना लेकर अचानक पंच–फैसले से हट गए और घोषणा की कि वे 20% बोनस देने को तैयार हैं और धमकी दी कि जो कामगार भी शीघ्र काम पर वापस नहीं आयेगा, उसे बर्खास्त कर दिया जाएगा। गांधी जी उनके द्वारा करार तोड़े जाने पर बहुत नाराज हुए और उन्होंने कुल उत्पादन की सही लागत, लाभ और जीवन–यापन के खर्च का उपयुक्त अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला था कि वेतन में 35 की वृद्धि करने की कामगारों की मांग न्यायपूर्ण थी। मिल–मालिकों ने साबरमती स्थित उनके आश्रम को खुले दिल से दान दिया था, उनमे से एक अम्बालाल साराभाई जो गांधी जी के परममित्र थे, तथा उनकी बहन अनुसूया बेन अहमदाबाद में मिल कामगारों के संघर्ष में उनके सबसे बड़े समर्थक थे। इस संघर्ष के अंतिम चरण में पहली बार गांधी जी ने विरोध के साधन के रूप में उपवास का इस्तेमाल किया। गांधी जी ने देखा कि कामगार धीरे–धीरे अपना मनोबल खो रहे हैं, इसीलिए उन्होंने उपवास पर जाने का निर्णय लिया। उन्होंने घोषणा की कि यदि भूखों मरने की नौबत आई तो वे ऐसे पहले व्यक्ति होंगे। इसके बाद कारीगरों को 35 प्रतिशत की वृद्धि दिये जाने के समझौते के साथ इस मामले का समाधान हुआ।

तीसरा आंदोलन खेड़ा के किसानों का था, जिनकी फसलों की पैदावार नहीं हो सकी और उन्हें सरकार से जमीनों के लगान की माफी नहीं मिल सकी। सर्वप्रथम इस परिस्थिति की जांच–पड़ताल की गई, जैसा कि गांधी जी के सभी आंदोलनों का सामान्य मानदंड था। उपज की कुल पैदावार का आकलन किया गया और इससे यह पुष्टि हुई कि सामान्य पैदावार से एक तिहाई पैदावार कम हुई है जिसकी वजह से किसान पूरी की पूरी लगान–माफी के हकदार है। गांधी जी ने किसानों को लगान रोकने की सलाह दी। बल्लभ भाई पटेल और इंदुलाल याजनिक ने गांवों में गांधी जी के खेड़ा जिले के दौरों की व्यवस्था करके और किसानों से दृढ़ बने रहने का अनुरोध कर उनकी सहायता की। सरकार किसानों के पशु छीनकर, उनके घरों का सामान जब्त करके, यहां तक कि खड़ी फसलों को छीनकर सख्ती से दमन करना शुरू कर दिया। तभी गांधी जी को पता चला कि सरकार यह निर्देश जारी करके कि केवल उन्हीं लोगों से लगान वसूल किया जाये जो उसे अदा कर सकते हैं, एक समझौता करना चाहती है। गांधी जी ने समृद्ध किसानों से भी भुगतान रोकने का आग्रह किया, ताकि गरीब किसान कहीं घुटने न टेक दें। परन्तु सरकारी निर्देशों की जानकारी मिलने पर गांधी जी ने यह आंदोलन वापस ले लिया।

1916–1917 में हुए चंपारण, अहमदाबाद और खेड़ा आंदोलनों का परिणाम यह हुआ कि गांधी जी अहिंसात्मक सत्याग्रह के अपने तरीके की आजमाइश कर सके। इन आंदोलनों ने परिस्थितियों को परखने में उनकी सहायता की। उन्होंने अपने अनुयायियों के एक ऐसे केन्द्रीय समूह का गठन किया, जो उनकी सहायता कर सके और भावी आंदोलनों में उनके आदेशों का पालन कर सके। इन आंदोलनों में गांधी जी ने स्पष्ट तथा विरोधी हितों, जैसे मिल–मालिकों और कामगारों के बीच, समझौता कराने में अपनी विशिष्ट प्रतिभा दिखाई इनमें से एक से उन्होंने मित्रता निभाई तो उसी के समानान्तर दूसरे वर्ग का भी उन्होंने विश्वास जीता।

गांधी जी के नेतृत्व में दूसरा महत्त्वपूर्ण आंदोलन था रॉलेट सत्याग्रह। फरवरी 1919 में भारतीयों की नागरिक स्वतंत्रता को कठोरता से नियंत्रित करने वाले दो विधेयक पेस किये गए, जिन्हें कानून बनाया जाना था। सरकार ये कानून इसलिए पारित करना चाहती थी, ताकि वह जन–सामान्य के बीच उठने वाले असंतोष की लहर को नियंत्रित करने में समर्थ हो सके। इस कानूनों के बनने से उसे लोगों को बगैर मुकदमा इत्यादि चलाए ही गिरफ्तार करने और सजा देने की निरंकुशता मिल जाती। असल में इनमें से एक विधेयक को चुने गए भारतीय सदस्यों के विरोध के बावजूद कौंसिल में पास करके कानून बना दिया गया था। स्वतंत्रता पर इस प्रकार के प्रतिबंधों को लोग युद्ध के दौरान शायद स्वीकार कर भी लेते। परन्तु युद्ध के समापन ने और अधिक संवैधानिक सुधारों और संपूर्ण स्व–शासन नहीं तो कम से कम अपने निजी मामलों में भारतीयों के अपने अधिकाधिक नियंत्रण की उम्मीद तो जगा ही दी थी।

कौंसिल के सदस्यों और अन्य लोगों के विरोधों की विफलता को देखने के बाद गांधी जी ने 'सत्याग्रह' शुरू कर दिया। एक 'सत्याग्रह सभा' का गठन किया गया, जिसके बहुत से सदस्य बन गए थे। यह निर्णय किया गया कि इस अधिनियम का विरोध करने के लिए एक राष्ट्रव्यापी हड़ताल की जाए और उपवास तथा प्रार्थनाए आयोजित की जाए। कुछ कानूनों के विरोध में सविनय अवज्ञा आंदोलन भी चलाए गए। रॉलेट संत्याग्रह, गांधी जी के मार्गदर्शन में चलाया जाने वाला पहला व्यापक अखिल भारतीय विरोध–प्रदर्शन था। भारत के लोगों ने ब्रिटिश शासन के विरूद्ध बहुत बड़ी संख्या में जुड़कर विरोध प्रदर्शित किया और हड़तालें हिंसात्मक हो गईं। 6 अप्रैल 1919 का दिन हड़ताल के लिए निर्धारित किया गया, परन्तु कुछ भ्रम होने के कारण दिल्ली में यह हड़ताल 30 मार्च को की गई और इससे गलियों में लड़ाइयां भड़क उठीं। जबरन भर्ती और बड़े पैमाने पर फैले रोग तथा अन्य कठिनाइयों के कारण पंजाब ने युद्ध के दौरान अत्यन्त कठोर उत्पीड़न का सामना किया था। अमृतसर और लाहौर इस आंदोलन के केन्द्र थे। गांधी जी ने पंजाब जाकर इस आंदोलन को वापस लेने और इसे 'अहिंसक सत्याग्रह' की राह पर ले जाने का प्रयास किया। परन्तु ब्रिटिश सरकार द्वारा गांधी जी को पंजाब में प्रवेश करने से रोक दिया गया और उन्हें बम्बई भेज दिया गया। बम्बई और अहमदाबाद में भी उस समय अशांति चल रही थी और गांधी जी ने यहां भी आंदोलन को नियंत्रित करने का प्रयास किया।

जब पंजाब में दो स्थानीय नेताओं को गिरफ्तार किया गया तो वहां घटनाए शीर्ष पर आ गईं, जिसके परिणामस्वरूप टाउन हॉल और डाक घर पर भी हमला किया गया। राष्ट्रवादी आंदोलन के दौरान विरोध करने का सबसे लोकप्रिय तरीका था, ब्रिटिश सरकार



आपकी टिप्पणियाँ

के प्रतीकों पर हमला करना, अतः टेलीग्राफ की तारें काट दी गई, डाक घरों पर धावा बोला गया और महिलाओं सहित यूरोपियनों पर हमले किये गये। सेना बुला ली गई और बैठकें करने और इकट्ठे होने पर रोक लगा दी गई।

13 अप्रैल 1919 को बैसाखी के दिन अमृतसर को जलियावाला बाग में जनरल डायर का आक्रोश देखना पड़ा, जिसे इस शहर का प्रभारी बनाया गया था। सार्वजनिक सभाओं पर प्रतिबंध लगाए जाने के बावजूद लोगों द्वारा इस नियम का उल्लंघन किए जाने से उसने हमला बोल दिया। निहत्थे, असहाय लोगों पर प्रहार किया और उसके आदमियों ने लगातार 10 मिनट तक गोलियां बरसाईं और गोलीबारी तब बंद की, जब उसका बारूद खत्म हो गया।

गोलीबारी से पूर्व कोई चेतावनी नहीं दी गई थी और वहां से बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं था, सिवाय एक तंग गलियारे के, जहां डायर के आदमी अपनी तोपें लगाकर खड़े थे, क्योंकि जलियावाला बाग चारों तरफ से दीवारों से घिरा था। कंजर्वेटिव सरकार के अनुमान के अनुसार इस घटना में 379 लोगों की मृत्यु हुई। इस हिंसक घटना के बाद और अधिक बर्बरता से दमन की घटनाए घटित हुईं।

पाठगत प्रश्न 21.3

1. 1916–1917 के दौरान गांधी जी ने अपने अहिंसात्मक सत्याग्रह का प्रयोग किस आंदोलन में किया?

   _____

2. रॉलेट सत्याग्रह कब शुरू हुआ?

   _____

3. राष्ट्रीय आंदोलन में 1919 के बैसाखी के दिन का क्या महत्त्व है?

   _____

21.6 अहिंसात्मक असहयोग

जलियावाला बाग जनसंहार के बाद पंजाब में मार्शल लॉ लागू कर दिया गया था। भारतीयों के साथ अमानवीय व्यवहार किया गया, उदाहरण के लिए जिन गलियों में यूरोपीयन महिलाओं पर हमला किया गया था, वहां पर आदमियों को पेट के बल घिसटने के लिए बाध्य किया गया। यद्यपि रॉलेट सत्याग्रह को वापस ले लिया गया था, परन्तु ब्रिटिश शासन के विरुद्ध रोष की भावना में और अधिक कड़वाहट भर गई थी। 1919 के मौंटेग्यू चैम्सफोर्ड सुधारों ने उन लोगों की आशाओं को कुंठित कर दिया था, जिन्हे अब भी औपनिवेशिक सरकार की नीयत पर यह विश्वास था कि वह भारतीयों की सरकार में भागीदारी के द्वारा उन्हें सुधार लाने का अवसर देगी।

इस संक्रमण काल में जागरूक मुस्लिम नेताओं का एक बहुत बड़ा वर्ग आगे आया जिनके पास ब्रिटिश सरकार से असंतुष्ट होने का विशेष कारण था। ये मुसलमान प्रथम विश्व युद्ध

के बाद तुर्की के साथ अमानवीय व्यवहार किए जाने से नाराज थे। पूरे विश्व के मुसलमान तुर्की के खलीफा को अपने आध्यात्मिक गुरू की तरह मानते थे और उन्हें यह आश्वासन दिया गया था कि तुर्की और उसके मित्रों की युद्ध में हार के बाद भी खलीफा के साथ नरमी से व्यवहार किया जायेगा। परन्तु युद्ध के उपरांत तुर्की के साथ समझौते में खलीफा की शक्तियों को बुरी तरह खत्म कर दिया गया था।

जलियांवाला बाग त्रासदी के मामले की जांच के लिए सरकार द्वारा नियुक्त हंटर कमेटी से जब अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की तो ये सभी मामले उभरकर सामने आए। इस रिपोर्ट में उन्होंने जनरल डायर के कारनामों और अन्य सभी प्रकार के दमनकारी कृत्यों का समर्थन किया था। इस रिपोर्ट ने सभी भारतीय नेताओं के आक्रोश को बढ़ा दिया और अगले विरोध आंदोलन के लिए यह अवसर बिल्कुल सटीक प्रतीत हुआ। यही समय था जब गांधी जी ने अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन का इरादा किया। असहयोग आंदोलन ब्रिटिश शासन के दमन के विरूद्ध भारतीय जनमानस के सभी वर्गों के आक्रोश की अभिव्यक्ति था। गांधी जी ने तीन मुख्य मुद्दों पर आंदोलन शुरू किया (क) खिलाफत की बुराई (ख) पंजाब के साथ अन्याय, और (ग) स्वराज। असहयोग आंदोलन का आह्वान सर्वप्रथम 22–23 नवम्बर 1919 को दिल्ली में अखिल भारतीय खिलाफत कान्फ्रेंस द्वारा किया गया, जो अली भाइयों (मोहम्मद और शौकत) की अगुवाई में शुरू हुआ। इलाहाबाद में हुई खिलाफत कांफ्रेंस की बैठक में चार चरणों के असहयोग की घोषणा की गई ,यानी–सिविल सेवा की उपधियों का बहिष्कार, पुलिस और सेना का बहिष्कार और अंत में करों का भुगतान न करने का निश्चय। तत्पश्चात गांधी जी ने कांग्रेस के सदस्यों से इस आंदोलन का समर्थन करने का आग्रह करना शुरू किया। सितम्बर 1920 में कलकत्ता के ऐतिहासिक विशेष अधिवेशन में कांग्रेस ने उपाधियों को त्यागने, स्कूलों अदालतों और कौंसिलों का बहिष्कार करने और विदेशी सामान का भी बहिष्कार करने का कार्यक्रम बनाया। इस बहिष्कार के साथ–साथ राष्ट्रीय स्कूल खोलने और सरकार की न्यायिक प्रणाली का सहारा लिए बगैर मामलों को सुलझाने के लिए स्वदेशी अदालतें खोलने तथा खादी को अपनाने का निर्णय किया गया। दिसम्बर 1920 की नागपुर कांग्रेस में वरिष्ठ कांग्रेसी बंगाली नेता चितरंजन दास ने इस आंदोलन को अपना समर्थन दिया। यद्यपि औपचारिक रूप से इस आंदोलन की शुरूआत 1 अगस्त 1920 को हुई कांग्रेसी नेताओं के समर्थन ने इसे नई गति दी और जनवरी 1921 से इसने बहुत शक्तिशाली रूप धारण कर लिया। एक महीने की अवधि में बहुत बड़ी संख्या में विद्यार्थियों ने सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों और कॉलेजों को छोड़ दिया और देश के विभिन्न भागों में शुरू की गई राष्ट्रीय संस्थाओं में प्रवेश ले लिया।

अनेक सुस्थापित वकीलों, जैसे सी.आर.दास, मोती लाल नेहरू, सैफुद्दीन किचलू, वल्लभभाई पटेल, सी. राजगोपालाचारी, और आसफ अली इत्यादि ने अपनी–अपनी आकर्षक प्रैक्टिस बंद कर दी। इस त्याग ने लोगों को बहुत प्रेरित किया। विदेशी सामान का बहिष्कार और विदेशी कपड़ा बेचने वाली दुकानों पर धरना इत्यादि देना विरोध करने के अन्य तरीके थे। चरखों का वितरण शुरू हुआ और हाथ से काते गए सूत से बना कपड़ा राष्ट्रवादियों में लोकप्रिय होने लगा। राष्ट्रवादी समाचारों पत्रों में विज्ञापन देकर लोगों को विदेशी सामान की होली जलांने के कार्यक्रम में भाग लेने के



आपकी टिप्पणियाँ

लिए आमंत्रित किया गया। कपड़े के निर्यात के मूल्यों में एकदम गिरावट आ गई। कपड़े की दुकानों के साथ–साथ इस बार पहली बार शराब की दुकानों पर भी धरना दिया गया।

ब्रिटिश सरकार के सामने यह बात चेतावनी के रूप आई कि जुलाई 1921 में मोहम्मद अली ने ब्रिटिश इंडियन आर्मी में काम कर रहे मुस्लमानों से घोषित रूप से अपील की कि उन्हें सोचना चाहिए कि उनका ब्रिटिश सेना का अंग बनना अनैतिक है और उन्हें वहां काम करना बंद कर देना चाहिए। उन्हें तुरंत गिरफ्तार कर लिया गया। इस आह्वान को कांग्रेस और गांधी ने स्वीकार किया। एक घोषणा–पत्र जारी किया गया, जिसमें सभी लोगों (सिविलियन और सैनिक) को ब्रिटिश सेना से सभी संबंध तोड़ने का आह्वान किया गया। इन सभी हालात के दौरान नवम्बर 1921 में प्रिंस ऑफ वेल्स् भारत आए और बम्बई में जहां वे आए थे और शेष सारे देश में भी, उनका स्वागत हड़ताल से किया गया। गांधी जी ने प्रिंस ऑफ वेल्स् के आगमन के दिन एक बहुत बड़ी बैठक को संबोधित किया ब्रिटिश–विरोधी भावना इतनी प्रबल थी कि जब बैठक स्थल से जाते समय लोगों का उन लोगों से सामना हुआ जो प्रिंस के स्वागत के जुलूस में गए थे तो दंगों जैसी परिस्थिति पैदा हो गई। इस तनाव को कम करने के लिए गांधी जी को चार दिन के उपवास पर जाना पड़ा।

असहयोग आंदोलन धीरे–धीरे शक्तिशाली होता जा रहा था। बंगाल के मिदनापुर जिले में यूनियन बोर्ड के करों के खिलाफ एक आंदोलन आयोजित किया गया और आन्ध्र प्रदेश में भी कोई टैक्स नहीं आंदोलन आयोजित किया गया। गांधी जी की योजना के तहत करों का भुगतान करने से बिलकुल मना करने का सहारा बिल्कुल अंत में करना था और यही इस आंदोलन का सबसे मौलिक चरण था। उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र में किसान आंदोलन किसान–सभाओं के जरिए जोर पकड़ रहा था जो और अधिक व्यवस्थित रूप लेती जा रही थीं और ब्रिटिश शासन के लिए एक बड़ा खतरा थीं।

औपनिवेशिक सरकार का रूख और अधिक सख्त होता जा रहा था। कपड़े के निर्यात में आई कमी; विद्यार्थियों, वकीलों, सरकारी कर्मचारियों, कामगारों, किसानों, खेतिहार मजदूरों द्वारा दर्शाए गए विरोध और सेना को प्रभावित करने के प्रयासों के परिणामस्वरूप इस आंदोलन के विरुद्ध दमनकारी उपाय अपनाने के तरीकों में वृद्धि हो गई थी। सार्वजनिक बैठकों और सभाओं पर रोक लगा दी गई, समाचार–पत्रों का दमन किया गया, और कांग्रेस और खिलाफत के कार्यालयों पर आधी रात को छापे मारे गए। गांधी जी के मार्ग दर्शन में कांग्रेस बारदोली में सिविल सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करने का कार्यक्रम बना रही थी। परन्तु उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में चौरी चौरा स्थान पर हिंसात्मक घटना होने की वजह से इस आंदोलन को समाप्त कर दिया गया। पुलिस द्वारा विरोध किए जाने पर खिलाफत और कांग्रेस का जुलूस हिंसक हो उठा और उन्होंने पुलिस पर हमला कर दिया। पुलिस के लोगों ने थाने में शरण लेने की कोशिश की, परन्तु भड़की हुई भीड़ ने थाने में आग लगा दी और जो पुलिस वाले आग से बचने के लिए बाहर भागे, उन्हें घसीटकर मौत के घाट उतार दिया गया। पुलिस के बाईस आदमी मारे गए। यह घटना 5 फरवरी को घटी और 12 तारीख को गांधी जी ने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया। इस वापसी ने प्रमाणित कर दिया कि इस स्थिति



में गांधी जी किसी भी ऐसे आंदोलन का नेतृत्व नहीं करना चाहते थे जिसे वे नियंत्रित न कर सकें और यह भी प्रमाणित हो गया कि राष्ट्रवादी गांधी जी के इस आह्वान को स्वीकार करेंगे, यद्यपि अनेक लोगों का मत इससे भिन्न था, पर इसके बावजूद किसी ने भी आंदोलन की वापसी के उनके आह्वान के विरोध के बारे में नहीं सोचा।

कांग्रेस पार्टी के भीतर ही उन लोगों की राय में मतभेद था जो शीघ्र होने वाले चुनावों के जरिए विधान परिषद में प्रवेश करना चाहते थे, और वे जो गांधी जी द्वारा बताए गए रचनात्मक कार्यों को गांवों में जाकर अंजाम देना चाहते थे और संघर्ष के अगले चरण की तैयारी कर रहे थे। राजगोपालाचारी, अंसारी और कुछ अन्य व्यक्तियों ने ग्रामीण रचनात्मक कार्य की वकालत की, जबकि मोतीलाल नेहरू, विट्ठलभाई पटेल और हकीम अजमल खान परिषदों में प्रवेश पाना चाहते थे और उनकी प्रणाली में रुकावटें डालकर सरकार के कामकाज को तहस–नहस करना चाहते थे। राजेन्द्र प्रसाद और बल्लभभाई पटेल ने पहेल मत का समर्थन किया, जबकि सी.आर.दास दूसरे मत का ही समर्थन करते रहे। दास और मोतीलाल नेहरू ने चुनाव लड़ने के लिए 1923 में स्वराज पार्टी की स्थापना की। अ–परिवर्तनशील (नो–चेंजर्स) कहे जाने वाले गांधी जी के अनुयायियों के एक समूह को 1924 में गांधी जी के जेल से छूटने पर अधिकाधिक समर्थन मिला तथापि कांग्रेसियों को चुनावों में खड़े होने से नहीं रोका जा सका, यद्यपि उन्होंने रचनात्मक कार्य के महत्त्व को भी स्वीकार किया। कांग्रेसी प्रत्याशियों ने नवम्बर 1924 में हुए चुनावों में केन्द्रीय प्रांतों और बंगाल में कुछ सीटों पर जीत हासिल की। कौंसिलों की प्रक्रिया को तोड़ने के प्रारंभिक प्रयास शुरू हो गए थे, परन्तु जिस भी विनियम को सदस्य, पास नहीं होने देते थे, उसे गवर्नर द्वारा सौंपी गई विशिष्ट शक्तियों से पारित करा लिया जाता था, जिससे दोहरे शासन की सीमाओं का पता चलता था। शीघ्र ही चुने गए सदस्य अपनी दिशा खोने लगे और धीरे–धीरे प्रणाली में समाहित होने शुरू हो गए। बंगाल में सी.आर. दास का अचानक देहांत होने से वहां नेतृत्व की समस्या खड़ी हो गई। राजनीतिक अनिश्चितताओं और 'मुख्यधारा' के कांग्रेसियों की आंदोलन संबंधी गतिविधियों में कुछ मंदी आने की परिस्थिति में राष्ट्रवादी आंदोलन में से क्रांतिकारी आंदोलन के द्वितीय चरण में और अधिक मौलिकतावादी सक्रिय वर्ग का उदय हुआ।

21.7 क्रांतिकारी आंदोलन : पुनर्गठन और पुनःस्थापना

असहयोग आंदोलन की स्वाभाविक लहर ने भारतीय युवा शक्ति के एक ऐसे वर्ग को सामने ला खड़ा किया, जो स्वतंत्रता पाने के लिए दृढ़–संकल्प थे। देश के युवा वर्ग ने गांधी जी के आह्वान का बहुत उत्सुकता से प्रत्युत्तर दिया और उनके असहयोग आंदोलन में भाग लिया। आंदोलन को अचानक वापस लेना उनकी आकांक्षाओं पर एक आघात था। क्रांतिकारी आंदोलन के पहले चरण की गुप्त समितियों को पंजाब और बंगाल में पुनः स्थापित करना शुरू कर दिया गया था।

बंगाल की अनुशीलन समिति का संबंध सुभाष बोस से और युगांतर समिति का जे.एम. सेन गुप्ता समूह से था। इन दोनों समूहों में अत्यधिक राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता थी। कुछ छोटे क्रांतिकारी समूह बनने शुरू हो गए थे जैसे चिटगांव के सूर्य सेन के अधीन गठित एक समूह, जो अत्यधिक मौलिक विचारधारा के रूप में विकसित हुआ, उस समय की सबसे उल्लेखनीय क्रांतिकारी गतिविधि थी।



आपकी टिप्पणियाँ

जनवरी 1924 में गोपीनाथ साहा द्वारा डे नामक एक अंग्रेज की हत्या की गई। साहा ने कलकत्ता के पुलिस कमिश्नर टिगर्ब की हत्या की योजना बनाई थी और गलती से उसने डे की हत्या कर दी। इस घटना के परिणामस्वरूप अनेक राष्ट्रवादियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

क्रांतिकारी घटनाओं में वृद्धि का एक अन्य केन्द्र था उत्तर भारत जहाँ संयुक्त प्रांत में सचिन सान्याल और जोगेश चटर्जी तथा अन्यों लोगों ने हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन का गठन किया और डकैतियों के जरिए धन इकट्ठा करना शुरू कर दिया। इनमें से सबसे प्रसिद्ध घटना है अगस्त 1925 में हुई काकोर ट्रेन डकैती, जिसके परिणामस्वरूप इस संगठन के अनेक सदस्यों गिरफ्तारी की गई। इस संगठन ने पंजाब के एक अत्यन्त ऊर्जावान और प्रतिभाशाली विद्यार्थी नेता भगत सिंह के नेतृत्व में गठित युवकों के एक समूह से भी संबंध स्थापित किए। पंजाब का यह समूह समाजवादी विचारधारा से अत्यन्त प्रभावित था अतः इस संगठन को हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (एच एस आर ए) का नया नाम दिया गया। क्रांतिकारियों का उद्देश्य था संपूर्ण स्वतंत्रता, और उनके पास यह संकल्पना भी थी कि स्वतंत्रता मिलने के उपरांत राज्य का स्वरूप कैसा होगा। उन्होंने एक व्यापक जन–संघर्ष शुरू किया और इस प्रयोजन के लिए उन्होंने विद्यार्थियों, कामगारों और किसानों को सक्रिय किया।

21.8 साइमन कमीशन का बहिष्कार

क्रांतिकारी आंदोलन के पुनर्गठन और पुनरुज्जीवन के बीच और मुख्यधारा के आंदोलन के दमन के बाद भारत में और अधिक संवैधानिक सुधारों लाने के लिए साइमन कमीशन के गठन की घोषणा की गई। सभी गोरे लोगों के इस कमीशन में एक भी भारतीय शामिल नहीं था, जिससे स्पष्ट था कि आने वाले सुधार, अगर कोई होंगे, तो भी भारतीय लोगों की अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पायेंगे।

दोहरा शासन पहले ही एक मजाक बनकर रह गया था क्योंकि इसकी वजह से सभी मुख्य निर्णय लेने की शक्ति अभी भी दृढ़ता से औपनिवेशिक सरकार के हाथों में ही थी। सभी गोरों वाले साइमन कमीशन की घोषणा से एक व्यापक असंतोष फैल गया था और इसने राष्ट्रवादी आंदोलन की आग को और भड़का दिया था। भारत में हर मत के राजनीतिज्ञों ने एकमत से कमीशन की निंदा की क्योंकि इसमें भारत के किसी एक भी सदस्य को शामिल नहीं किया गया था।

कमीशन के लिए भारत की प्रतिक्रिया थी, प्रत्येक मत के मानने वाले नेताओं द्वारा एकमत से बहिष्कार का संकल्प लेना। जिस दिन कमीशन के सदस्य भारत में उतरे (3 फरवरी 1928) उस दिन हर मुख्य शहर और कस्बे में एक दिन की हड़ताल की गई। कमीशन के खिलाफ बड़े–बड़े जन–प्रदर्शन और जुलसू निकाले गए। बैनरों, इश्तिहारों और यहाँ तक कि पतंगों पर भी 'साइमन वापस जाओ छपा हुआ था। जहां पर भी कमीशन गया, हर जगह उसे काले झंडे दिखाए गए। कहने की आवश्यकता नहीं कि पुलिस ने बड़ी सख्ती और बर्बरता से दमन किया और जुलूसों पर धावा बोला गया और यहां तक कि अत्यन्त प्रमुख नेताओं को भी नहीं बख्शा गया। सबसे घातक हमला लाला लाजपत राय पर किया गया, जो लाहौर में इस युग के बहुत ही प्रतिभाशाली नेताओं में से एक थे। वृद्ध हो चुके इस नेता को लाठियों से पीटा गया और इस हमले के कुछ दिन बाद ही उनका

देहांत हो गया। लाला लाजपत राय की मृत्यु ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक व्यापक विक्षोभ पैदा कर दिया था। इस अवधि के दौरान कांग्रेस के बीच हुआ एक महत्त्वपूर्ण विकास था पूर्ण स्वराज या पूर्ण स्वतंत्रता का लक्ष्य अपनाना। पूर्ण स्वतंत्रता का अभिप्राय था ब्रिटिशों के साथ संबंधों से पूरी तरह छुटकारा।

पूर्ण स्वराज की शपथ लेने के परिणामस्वरूप देश में बहुत सी उम्मीदें जाग उठीं और 26 जनवरी 1930 को पूरे देश में इसी प्रकार की स्वतंत्रता की शपथ ली गई। देश में एक असंतोष पनप रहा था, जिसका प्रमाण था बम्बई–नागपुर क्षेत्र में कम्युनिस्टों द्वारा बुलाई गई रेलवे–हड़ताल, कांग्रेसियों के नेतृत्व में चलाया जा रहा आंदोलन जो सविनय अवज्ञा आंदोलन की तैयारी के लिए था, जिसका चरम रूप था करों का भुगतान न करना। कांग्रेस के विधायकों को अनुदेश जारी किए गए कि वे संघर्ष के अगले दौर की तैयारी के लिए त्याग पत्र दे दें। गांधी जी ने 31 जनवरी को वायसराय इरविन को अंतिम चेतावनी देकर इसकी शुरूआत की, जिसमें पूर्ण स्वतंत्रता या पूर्ण स्वराज का उल्लेख नहीं था। उसमें उल्लिखित ग्यारह सूत्र वास्तव में औपनिवेशिक सरकार से इस राष्ट्र द्वारा की गई विशिष्ट मांगों का एक समूह था। इन मांगों में से एक मांग थी नमक के कर को हटाना और नमक के उत्पादन से सरकार के एकाधिकार को समाप्त करना। इन मांगों में भूमि के राजस्व में पचास प्रतिशत की कमी, कपड़ा–मिलों की सुरक्षा, सेना के खर्चों और सिविल सेवा के वेतनों इत्यादि में पचास प्रतिशत की कमी करना शामिल था।

पाठगत प्रश्न 21.4

1. किन विशिष्ट मुद्दों पर असहयोग आंदोलन की शुरूआत हुई थी?

   _____

2. स्वराज पार्टी की स्थापना कब और किसके द्वारा हुई?

   _____

3. एच.एस.आर.ए. का पूर्ण रूप बताएं।

   _____

21.9. सविनय अवज्ञा आंदोलन

ग्यारह सूत्रीय चेतावनी की कोई प्रतिक्रिया न होने के कारण नमक के मुद्दे पर आधारित सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू किया गया। नमक मूलभूत आवश्यकता की ऐसी वस्तु थी, जिस पर कर लगाने का प्रभाव गरीब से गरीब तबके पर भी पड़ता था, अतः इस प्रकार नमक भारतीय लोगों को वंचित किए जाने और उनके दमन का प्रतीक बन गया। जनसाधारण और राष्ट्रवादी नेता दोनों ने इस मुद्दे को महत्त्व देना शुरू कर दिया। 12 मार्च 1930 को गांधी जी ने अपने साबरमती आश्रम से अपने 72 अनुयायियों को साथ लेकर समुद्र तक डांडी मार्च शुरू किया। डांडी मार्च के पक्ष में लोगों की बहुत बड़ी प्रतिक्रिया हुई। लोगों की बहुत बड़ी भीड़ ने रास्ते में इस मार्च का स्वागत किया और अंत



आपकी टिप्पणियाँ

तक साथ दिया। गांधी जी के प्रति एकता की भावना प्रदर्शित करने के लिए ग्रामीणों ने उन जगहों पर सूत काता जहां–जहां से गाधी जी गुजरे। 6 अप्रैल को गांधी जी समुद्र तट पर पहुंचे और वहां से एक मुट्ठी नमक उठाकर अखिल भारतीय स्तर पर डांडी के नमक का कानून तोड़कर सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरूआत की। संपूर्ण भारत में लोगों ने गैर–कानूनी तौर पर नमक का निर्माण शुरू कर दिया। बड़ी सावधानी के साथ योजनाबद्ध तरीके से और बड़ी संख्या में स्वयंसेवकों का चुनाव करके इस आंदोलन को एक भाग से दूसरे भाग में, मद्रास से महाराष्ट्र तक और बंगाल, असम से कराची तक फैलाया गया। सुदूर उत्तर में पेशावर में बहुत बड़े स्तर पर प्रदर्शन किया गया, जहां खान अब्दुल गफ्फार और उनके अनुयायी खुदाई खिदमतगार या कहें लाल कमीज (रेड शर्ट्स) सक्रिय थे और पिछले कुछ वर्षों से वहां रचनात्मक कार्य कर रहे थे। इसकी बहुत ही अच्छी प्रतिक्रिया देखने में आई थी। कम से कम एक सप्ताह तक परिस्थिति पूरी तरह जनता के हाथ में थी और गढ़वाली रेजिमेंट के सैनिकों ने निहत्थी भीड़ पर गोली चलाने से इंकार कर दिया था। 14 अप्रैल को नेहरू जी की गिरफ्तारी पर मद्रास, कलकत्ता और कराची में सार्वजनिक विरोध प्रदर्शन किए गए। औपनिवेशिक सरकार बहुत अनिश्चय की स्थिति में थी, क्योंकि उसने कभी भी यह आशा नहीं की थी कि नमक सत्याग्रह इस हद तक भड़क जाएगा। अंत में उसने कार्रवाई करने का निर्णय किया और मई में गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि आंदोलन और अधिक भड़क गया। सविनय अवज्ञा आंदोलन का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह था युवकों, खासतौर पर विद्यार्थियों और महिलाओं की भी इसमें भागीदारी थी। महिलाओं ने शराब और विदेशी सामान बेचने वाली दुकानों पर धरने दिए।

सरकार ने लोगों की नागरिक स्वतंत्रताओं को कम करने के लिए अध्यादेश जारी करने और प्रांतों में सिविल अवज्ञा संगठनों पर रोक लगानी शुरू कर दी। जून में कांग्रेस कार्य–समिति पर रोक लगा दी गई और कांग्रेस के अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू को गिरफ्तार कर लिया गया। अगस्त आते–आते स्थानीय कांग्रेस समितियों पर भी रोक लगा दी गई थीं। अनेक स्थानीय मुद्दे भी सिविल अवज्ञा आंदोलन का हिस्सा बन गए थे।

सरकारी दमन और आंदोलन के और अधिक गहन होने के बीच साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित की गई, जिसमें ऐसा कोई संकेत नहीं था कि भारत को स्वतंत्र उपनिवेश का दर्जा दिया जा सकता है। इसका परिणाम यह हुआ कि अत्यधिक नरमपंथी भारतीय राजनीतिज्ञ भी ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध हो गए। इस पर वाइसराय ने गोलमेज सम्मेलन का निमंत्रण भेजा और स्वतंत्र उपनिवेश की हैसियत देने के इरादे पर चर्चा करने की बात कही। मोतीलाल और जवाहर लाल नेहरू को इस प्रस्ताव पर चर्चा करने के लिए गांधी जी के पास ले जाया गया। परन्तु कांग्रेस और सरकार किसी भी परिणाम तक नहीं पहुंच सकीं। पहला गोलमेज सम्मेलन नवंबर, 1930 में लंदन में भारतीय नेताओं और ब्रिटिशों के बीच बुलाया गया, परन्तु उसमें कांग्रेस का कोई प्रतिनिधि नहीं था। परंतु यह स्पष्ट था कि ब्रिटिश और भारतीय नेताओं में परस्पर बराबरी के किसी भी वार्तालाप में कांग्रेस की अनुपस्थिति से कोई परिणाम नहीं निकलेगा। अगला सम्मेलन अगले वर्ष बुलाए जाने का निश्चय किया गया। सरकार ने 25 जनवरी, 1931 को गांधी जी को मुक्त कर दिया और कांग्रेस कार्य–समिति के

सभी सदस्यों को भी बिना किसी शर्त के छोड़ दिया। कांग्रेस से आग्रह किया गया कि वह अगले गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए वाइसराय के प्रस्ताव पर विचार–विमर्श करे।

प्रथम गोलमेज सम्मेलन के प्रतिनिधियों के साथ लंबे वार्तालाप और विचार–विमर्श के बाद कांग्रेस ने गांधी जी को वाइसराय से वार्तालाप करने का काम सौंपा। गांधी और इरविन के बीच करीब पंद्रह दिन तक विचार–विमर्श हुआ। अंत में 5 मार्च, 1931 को गांधी इरविन समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। इस समझौते की शर्तें निम्नलिखित थीं :

(क) अहिंसात्मक प्रतिरोध में गिरफ्तार किए गए सभी लोगों को तत्काल मुक्त किया जाएगा।

(ख) जो जुर्माने अभी तक वसूल नहीं किए गए थे, उन्हें माफ कर दिया जाएगा।

(ग) अधिग्रहण की गई वह सारी भूमि, जिसे अभी बेचा नहीं गया है, किसानों को लौटा दी जाएंगी।

(घ) जिन सरकारी कर्मचारियों ने त्याग–पत्र दे दिया था, उनके साथ नम्रता का व्यवहार किया जाएगा।

(ङ) तटवर्ती गांवों को अपने उपयोग के लिए नमक बनाने का अधिकार दिया जाएगा।

(च) शांतिपूर्ण और गैर–आक्रामक धरने का अधिकार दिया जाएगा।

कांग्रेस ने अपनी ओर से सविनय अवज्ञा आंदोलन को वापस लेने की सहमति दे दी और अगले गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए भी सहमति प्रदान कर दी। अनेक राष्ट्रवादी नेताओं ने इस समझौते को अस्थायी विराम–संधि ही समझा। परन्तु बहुत से नेता इस समझौते की अनिवार्यता से सहमत नहीं थे। इससे क्रांतिकारी गुप्त समितियों की नई गतिविधियों और अधिकाधिक मौलिकतावादी कम्युनिस्ट आंदोलनों में और तेजी आई। भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरू को इसी समय फांसी दी गई थी, क्योंकि कम्युनिस्ट आंदोलन पूरे देश में फैल चुका था।

मार्च, 1931 में आयोजित कराची अधिवेशन में कांग्रेस ने 'पूर्ण स्वराज' के लक्ष्य को दोहराने के साथ ही दिल्ली में हुए गांधी–इरविन समझौते का भी समर्थन किया। यद्यपि दिल्ली समझौते में स्वतंत्रता का कोई जिक्र नहीं था, फिर भी कराची में कांग्रेस भारत के संविधान की रचना की तैयारी कर रही थी और उसने मौलिक अधिकारों और एक राष्ट्रीय आर्थिक नीति बनाने के संबंध में भी संकल्प लिए। यह संकल्प हमारे संवैधानिक इतिहास का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पड़ाव था, जहां नागरिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, प्रेस की स्वतंत्रता और संघ बनाने की आजादी की रूपरेखा बनाई गई। धार्मिक मामलों में तटस्थता, कानून के समक्ष समानता, सभी वयस्कों को मत देने का समान अधिकार, निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा और अनेक अन्य प्रावधान स्वतंत्र भारत के संवैधानिक प्रावधानों की पूर्व कल्पना थे।

गांधी जी, अगस्त 1931 में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के लिए रवाना हुए। इस दौरान ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटेन और भारत दोनों जगह बहुत सख्त कदम उठाये। इरविन के स्थान पर विलिंगटन आ गए और होम गवर्नमेंट के हितकारी व्यवहार में भी परिवर्तन आ



आपकी टिप्पणियाँ

गया। इसके परिणामस्वरूप गांधी जी को गोलमेज सम्मेलन के विचार–विमर्श के दौरान न सिर्फ कुछ हासिल नहीं हुआ, अपितु दिसम्बर 1931 में वापस लौटते पर उन्होंने पाया कि नए वाइसराय उनसे मिलने के भी इच्छुक नहीं हैं। इससे ऐसे लगता था कि शायद औपनिवेशिक सरकार कांग्रेस को अपने बराबर करने पर अफसोस कर रही थी। हैसियत की मानकर उसके साथ समझौता सरकार ने जवाहरलाल नेहरू को गिरफ्तार कर लिया था और उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रांत में खुदाई खिदमतगारों के नेता अब्दुल गफ्फार खान को गिरफ्तार करके उनके आंदोलन को बुरी तरह कुचल दिया था।



मानचित्र 21.1 भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य घटनाओं के स्थल

इन परिस्थितियों में कांग्रेस ने पुनः सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करने का निर्णय लिया और उसी दिन गांधी जी ने शांति–वार्ता के लिए वाइसराय से मिलने का अनुरोध किया, परन्तु उसने मिलने से इनकार कर दिया। इसके पश्चात औपनिवेशिक सरकार ने सख्त आक्रामक कदम उठाये, जिनमें से पहला कदम था जनवरी के प्रारंभ में गांधीजी को गिरफ्तार करना और लोगों के नागरिक अधिकारों को बिल्कुल खत्म कर देना। उसके बाद सरकार ने जायदाद जब्त करने और लोगों को नजरबंद रखने का अधिकार प्राप्त कर लिया। इस अधिकार के प्राप्त करने के बाद सरकार ने कांग्रेस के सभी प्रमुख नेताओं को जेल में बंद कर दिया।

लोगों में इसकी बहुत भारी प्रतिक्रिया हुई। व्यापक जन–प्रदर्शन हुए। शराब की दुकानों और विदेशी सामान बेचने वाली दुकानों पर धरने दिये गये, बहुत बड़े पैमाने पर गैर–कानूनी वसूली इत्यादि की घटनाएं हुई और इनका सरकार ने बड़ी सख्ती से दमन किया क्योंकि सरकार राष्ट्रवादियों के साथ किसी प्रकार के समझौते के लिए तैयार नहीं थी। जेल पूरी तरह भर गईं थीं, कांग्रेस पर पूरी तरह रोक लगा दी गई थी, गांधी जी के आश्रमों पर पुलिस ने कब्जा कर लिया था, जुलूसों में लोगों को पीटकर भगा दिया जाता था, जो लोग कर का भुगतान करने से मना करते थे उन्हें पीटा और जेल भेज दिया जाता था, और उनकी सम्पत्ति को हड़प लिया जाता था। पूरे देश में अधिकांश नेता जेल में थे और सरकार के क्रूरतापूर्ण व्यवहार और अपमान के बावजूद लोगों ने अपने प्रयासों से दो वर्ष से अधिक समय तक इस सविनय अवज्ञा आंदोलन को जारी रखने का प्रयास किया। इस आंदोलन ने यह प्रमाणित कर दिया कि भारत के आम आदमी का मनोबल कितना मजबूत है और राष्ट्रवादी नेता के रूप में गांधी जी का नेतृत्व कितना सशक्त है। यहां तक कि इस स्थिति में भी नेताओं के अभाव और उनकी राय में अंतर के बावजूद लोगों ने आंदोलन जारी रखने के उनके निर्णय का पालन किया।

21.10 मौलिकतावादी और क्रांतिकारी आंदोलनों में वृद्धि और वामपंथियों का उद्भव

1930 से 1934 के वर्षों के दौरान भी अनेक अभूतपूर्व क्रांतिकारी आतंकवाद के कार्यों की बाढ़ सी आ गई थी, जिनका केन्द्र था बंगाल और पंजाब। सन् 1931 के दौरान कुल 92 घटनाओं की रिपोर्ट मिली, जिनमें से 9 घटनाएं हत्याओं की थीं, उनमें से उल्लेखनीय घटना थी चटगांव के के शस्त्रागार पर धावा। चटगांव में सूर्य सेन के नेतृत्व में क्रांतिकारियों के एक समूह ने स्थानीय शस्त्रागार पर कब्जा कर लिया और इंडियन रिपब्लिकन आर्मी के नाम पर स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और गांवों की पहाड़ियों में कई दिनों तक ब्रिटिशों के साथ बहादुरी से युद्ध किया। औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा क्रूरता से दमन के बावजूद क्रांतिकारी घटनाओं की संख्या में बढ़ोत्तरी होती गई। पंजाब में एच. एस.आई.ए भी बहुत सक्रिय हो गई थी, जहां पर सिर्फ 1930 के दौरान 26 घटनाएं घटित होने की रिपोर्ट मिली।

स्वतंत्रता–संघर्ष कभी भी गांधीवादी सत्याग्रह के एक ही मार्ग तक सीमित नहीं रहा। इसमें अत्यन्त हिंसक और उग्रवादी क्रांतिकारी आंदोलन और रूसी क्रांति के बाद भारत में आई समाजवादी विचारधारा भी शामिल थी और इसमें सैनिक आंदोलन भी शामिल थे। आंदोलन की ये भिन्न–भिन्न धारायें किसी भी तरह से पृथक नहीं थीं। अधिकांश



आपकी टिप्पणियाँ

क्रांतिकारियों ने गांधी जी के असहयोग आंदोलन में भाग लिया था। असल में चटगांव शस्त्रागार पर कब्जा इसी शोर–शराबे में किया गया था कि 'गांधी राज आ गया है।' चन्द्रशेखर आजाद और भगतसिंह के क्रांतिकारी दलों ने समाजवाद को अपना लिया था, जैसा कि जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस के अधीन कुछ वर्गों ने किया था।

समाजवाद ने व्यवस्थित जन–आंदोलनों के जरिए सामाजिक समानता के बहुत स्पष्ट एजेंडे के साथ आजादी के संघर्ष को जोड़ दिया था, जिससे कामगार वर्ग को गतिशील करने में सहायता मिली। एम.एन रॉय जैसे प्रमुख लोगों ने भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन के सिद्धांत की शुरूआत करने की रूपरेखा बनाई, जिसने भारतीय संदर्भ में मार्क्सवाद और लेनिन के विचारों के उचित समायोजन की व्याख्या की। सात भारतीयों ने जिनमें रॉय भी शामिल थे, अक्तूबर 1920 में ताशकंद में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की नींव रखी। धीरे–धीरे अनेक भारतीय बुद्धिजीवियों के बीच और यहां तक कि कांग्रेस के सदस्यों में भी साम्यवाद के सिद्धांत को समर्थन मिलने लगा। सुभाष चन्द्र बोस एक अद्वितीय व्यक्तित्व के धनी थे और अनेक विचाराधाराओं (सिद्धांतों) से प्रभावित थे। सरकारी पदों को छोड़कर असहयोग आंदोलन से लेकर, क्रांतिकारियों के अतिवाद तक, समाजवादी विचारों की भावना को समर्थन देने के साथ–साथ अंत में सैनिक आक्रमण करने के साहसिक कदम का चुनाव करके वे राष्ट्रवादी आंदोलन की भावना का प्रतीक बनकर उभरे। बोस ने इन सभी विभिन्न युद्धनीतियों को लक्ष्य बनाकर यह प्रमाणित कर दिया कि राष्ट्रवादी आंदोलनों के बीच स्वतंत्रता प्राप्ति की विभिन्न संकल्पनाओं के अतिरिक्त और कोई मौलिक नहीं था।

21.11 संवैधानिक सुधार और विधान मंडल में कांग्रेस की भागीदारी

सन् 1935 में भारत सरकार अधिनियम पारित किया गया, जिसमें प्रांतों के विधान मंडलों के चुने गए सदस्यों को अधिक स्वायत्तताः देकर राष्ट्रवादी आंदोलनों को कुछ और रियायतें दी गई। इस अधिनियम द्वारा भारत के और अधिक लोगों को मतदान का अधिकार भी प्रदान किया गया। 1935 का अधिनियम लागू किए जाने के बाद ब्रिटिशों ने 1937 के प्रारंभ में प्रांतीय विधान मंडलों में चुनाव कराने की घोषणा की। कांग्रेस के भीतर दुविधा के समाधान के बाद उसने चुनाव–प्रक्रिया में भाग लिया और इसके बहुत ही अच्छे परिणाम आये। ग्यारह में से पांच प्रांतों में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ। इस जीत ने स्वतंत्रता–आंदोलन से जुड़े विद्यार्थियों, किसानों और कामगार वर्गों को अत्यन्त प्रोत्साहित किया। उन सभी ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई और सभी वर्गों में यहां तक कि राजसी राज्यों में भी, जो कि औपनिवेशिक राज्यों के पूर्ण नियंत्रण से बाहर थे, आंदोलन शुरू हो गए।

21.12 स्वतंत्रता की ओर

विविध प्रांतों में दो वर्ष तक कांग्रेसी सरकारें रहीं और उन्होंने सामान्य जनमानस के विभिन्न वर्गों के हितों के लिए अनेक कदम उठाये। कांग्रेस सरकारों द्वारा उठाये गए कुछ कदम थे किसानों के लिए किरायों में कमी, राजनीतिक कैदियों की रिहाई और प्रेस पर से प्रतिबंध उठाना। इन सबसे बढ़कर बात यह थी कि इससे यह संकेत मिला कि भारतीय लोग स्वयं पर शासन करने में सक्षम हैं। 1939 के अंत तक सभी कांग्रेसियों ने त्यागपत्र

दे दिये। 1938 में द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो चुका था और वाइसराय ने भारत की ओर से यह इकतरफा घोषणा कर दी थी कि भारत ब्रिटिश उपनिवेश होने के नाते युद्ध में ब्रिटेन की ओर से भाग ले रहा है। इस निर्णय के विरोध स्वरूप कांग्रेस हाईकमान ने यह अनुदेश जारी किए कि सभी कांग्रेसी त्याग–पत्र दे दें।

कांग्रेसी मंत्रियों के त्याग–पत्र के साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन का एक महत्त्वपूर्ण चरण समाप्त हो गया। असहयोग और सविनय अवज्ञा आंदोलन के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आंदोलन नए क्षेत्रों और वर्गों तक पहुंच गया था। इससे लोगों के दिलो–दिमाग से ब्रिटिश नियंत्रण कम होने लगा था। कांग्रेस द्वारा सरकार को प्रभावशाली ढंग से चलाने से प्रमाणित हो गया था कि आगे चलकर ब्रिटिशों का नियंत्रण और कम हो सकता है।

द्वितीय विश्व युद्ध ने ब्रिटिशों के लिए और नई मुसीबतें पैदा कर दीं। युद्ध के कारण सैनिकों के लिये कपड़े और भोजन जैसी भिन्न उपभोक्ता–वस्तुओं की नई मांग पैदा हो गई थी। इन मांगो को समाज से जबरदस्ती छीना झपटी से ही पूरा किया जा सकता था। इससे ब्रिटिशों के विरुद्ध आक्रोश में और वृद्धि हो गई और उनके समर्थन की बुनियाद और कमज़ोर होने लगी। उदाहरणतया, युद्ध की जरुरतों को पूरा करने के लिये बहुत बड़ी मात्रा में खाद्य पदार्थों को बंगाल से बाहर लेकर जाना पड़ा। इसके परिणामस्वरुप बंगाल में भीषण अकाल पड़ गया और भूख की वजह से लगभग तीस लाख से ज्यादा लोगों की मृत्यु हो गई। इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध द्वारा पैदा हुई परिस्थितियों ने लोगों के लिये अनेक कठिनाइयाँ पैदा कर दीं। इससे भारत में ब्रिटिश शासन के लिये भी अभूतपूर्व संकट पैदा हो गया।

लगातार ब्रिटिश समर्थन की बुनियाद कमज़ोर होने की परिस्थितियों को देखकर महात्मा गांधी ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध अंतिम आक्रमण करने का निर्णय किया। इस प्रकार अगस्त 1942 में प्रसिद्ध भारत छोड़ो आंदोलन शुरु हुआ। इस आंदोलन में ब्रिटिशों के समक्ष कोई मांगें नहीं रखी गईं।उनसे सिर्फ भारत छोड़ने के लिये कहा गया। ब्रिटिशों ने गांधी ज़ी के 'भारत छोड़ो' आंदोलन के प्रत्युत्तर में उन्हें और कांग्रेस कार्य समिति के सभी सदस्यों को बंदी बना लिया। कांग्रेस के नेताओं को बंदी बनाए जाने के समाचार ने लोगों को और अधिक क्रोधित कर दिया और वे सब सड़को पर उतर आए और उन्हें जैसे भी समझ आया, उसी रुप में उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर आक्रमण कर दिया। अपने नेताओं की अनुपस्थिति में लोग स्वयं अपने नेता बन बैठे और उन्होंने सरकारी सम्पत्ति पर आक्रमण किया, उसे लूटा और नष्ट किया। सरकार ने इस आंदोलन का क्रूरता से दमन किया और पुलिस की गोलीबारी में अनेक लोग मारे गए।

अंत में बहुत बड़े स्तर पर हत्याओं और गिरफ़तारियों के बाद सरकार इस आंदोलन का दमन करने में कामयाब हो सकी। सरकारी आंकड़ो के मुताबिक, 1943 के अंत तक गिरफ़तार किये गये लोगों की संख्या 91,000 लोगों से भी ज़्यादा थी। यद्यपिइ स आंदोलन का दमन हो चुका था, परन्तु ब्रिटिश सरकार के समक्ष यह स्पष्ट हो चुका था कि वे बहुत लम्बी अवधि तक भारत पर अपनी पकड़ बनाकर नहीं रख पाएंगे। ब्रिटिशों ने स्वयं ही यह अनुभव किया था कि अब तक उन्होंने उस समर्थन–प्रणाली की सहायता से देश पर शासन किया था, जो 19वीं सदी से भारत में उन्होंने निर्मित की थी। राष्ट्रीय आंदोलनों से जुड़े संघर्षों की शृंखला के माध्यम से यह समर्थन–प्रणाली खत्म हो चुकी थी। भारतीयों के विभिन्न वर्गों



आपकी टिप्पणियाँ

(किसानों, कामगारों, मध्यम–वर्ग, धनी लोग, पुलिस, सेना और अन्य सभी) की सहायता के बगैर ब्रिटिशों के लिये भारत पर शासन करना संभव नहीं था।

एक बार यह अनुभव होने के बाद ब्रिटिशों ने धीरे–धीरे और शांतिपूर्ण ढंग से भारत से वापसी की तैयारियाँ शुरु कर दीं। सन् 1944–45 के बाद उन्होंने सभी कांग्रेसी नेताओं को मुक्त कर दिया और ब्रिटिशों से भारतीयों के हाथों में सत्ता हस्तांतरित करने के लिये कांग्रेस के नेताओं के साथ वार्त्ता शुरु कर दी। और इस प्रकार अगस्त 1947 में भारत स्वतन्त्र हो गया। स्वतन्त्रता–प्राप्ति भारतीयों के लिये बहुत ही खुशी की बात थी। भारतीयों ने शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ़ अपनी लड़ाई में विजय प्राप्त की थी। परन्तु यह संपूर्ण विजय नहीं थी। भारत और पाकिस्तान में विभाजन भी साथ में आया। ब्रिटिश सरकार ने हमेशा भारतीय लोगों की एकता तोड़ने का प्रयास किया। वे कभी भी इस बात से सहमत नहीं हुए कि सभी भारतीय लोग सामान्य हितों पर सहमत हैं। और इसीलिये, जब उन्होंने भारत छोड़ा तो इस देश को धर्म के आधार पर विभाजित करने का निर्णय लिया। भारत के विभाजन के साथ–साथ बहुत बड़े स्तर पर साम्प्रदायिक हिंसा भी साथ आई।

वर्ष 1947 भारत के इतिहास का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण चरण है। यह वर्ष भारतीय लोगों की विजय का वर्ष है क्योंकि इसी वर्ष उन्होंने विदेशी शासन के चंगुल से स्वतन्त्रता प्राप्त की। परन्तु यह वर्ष भारतीय लोगों की एकता के लिये एक बड़ी त्रासदी का वर्ष भी है क्योंकि इस वर्ष देश का दो पृथक राष्ट्र–राज्यों में विभाजन हो गया था।

पाठगत प्रश्न 21.5

1. डांडी मार्च कहाँ से शुरु हुआ था?

2. 1937 के चुनावों में कितने प्रान्तों में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत मिला?

3. भारत छोड़ो आंदोलन में कितने लोगों को गिरफ़्तार किया गया था?

आपने क्या सीखा

इस पाठ में निम्नलिखित मुद्दे उल्लेखनीय हैः

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन किसी एक अकेली घटना का नाम नहीं था, बल्कि यह राजनीतिक घटनाओं की एक संपूर्ण श्रृंखला थी जिसका विस्तार अनेक दशकों तक फैला था।



साम्राज्यवाद का विरोध और राष्ट्रीय एकता दो ऐसे विषय थे जो सभी घटनाओं में सामान्य थे और उन्हें परस्पर जोड़ते थे।

राष्ट्रीय आंदोलन के प्रारंभिक चरण में नरमपंथी नेताओं का वर्चस्व था। इन नेताओं ने औपनिवेशवादी शासको के समक्ष सिलसिलेवार अनेक मांगे रखी। परन्तु इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उन्होंने इस विचार को जन्म दिया कि ब्रिटिश शासन भारतीयों की अर्थव्यवस्था को विकास की ओर निर्दिष्ट नहीं कर रहा है, बल्कि वह भारतीय अर्थव्यवस्था को पतन की ओ ले जा रहा है।

नरमपंथी नेताओं के बाद आए बालगंगाधर तिलक, बिपिन चन्र्द पाल और लाजपतराय जैसे गरमपंथी नेता, जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में जनसामान्य की भागीदारी के विचार को जन्म दिया। गरमपंथी नेताओं ने स्वदेशी आंदोलन का नेतृत्व किया, जो कि ब्रिटिशों के बंगाल–विभाजन के निर्णय के विरुद्ध प्रारंभ किया गया था।

स्वदेशी आंदोलन के अंत ने क्रांतिकारी गतिविधियों को राष्ट्रीय आंदोलन में प्रविष्ट करा दिया। ये क्रांतिकारी नेता, जैसे खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ब्रिटिश सरकार से हिंसक उपायों द्वारा लड़ना चाहते थे। वे व्यक्तिगत रुप में ब्रिटिश कार्यालयों को भी अपना लक्ष्य बनाना चाहते थे।

राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गांधी का प्रवेश अगला महत्त्वपूर्ण कदम था। प्रारंभ में महात्मा गांधी ने चम्पारण, खेड़ा और अहमदाबाद में स्थानीय स्तर पर अपने राजनीतिक तरीके आज़माए। शीघ्र ही उन्होंने राष्ट्र व्यापी संघर्ष का नेतृत्व किया।

ब्रिटिश शासन के विरुद्ध गांधी जी का संघर्ष अहिंसात्मक – असहयोग पर आधारित था। इन तरीकों के जरिए उन्होंने तीन मुख्य संघर्षों का नेतृत्व किया – असहयोग आंदोलन (1920–22), सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930–34) और भारत छोड़ो आंदोलन (1942)।

इन संघर्षों का परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय आंदोलन ने भारतीय जनमानस के बीच अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त कर ली। यह आंदोलन किसानों, कामगारों और विद्यार्थियों के विविध वर्गो तक जा पहुचाँ। धीरे–धीरे यह राष्ट्रीय आंदोलन देश के अधिकांश हिस्सों तक फैल गया।

जैसे–जैसे राष्ट्रीय आंदोलन की लोकप्रियता बढ़ती गई, वैसे–वैसे ब्रिटिश सरकार की लोकप्रियता घटती गई। ब्रिटिशों ने अनेक भारतीयों की सहायता से भारत पर शासन किया था। ये भारतीय भारत में ब्रिटिश शासन की समर्थन–प्रणाली का निर्माण करते थे। इस समर्थन–प्रणाली को नष्ट करने और तोड़ने मे राष्ट्रीय आंदोलन सफल रहा।

जैसे ही ब्रिटिशों की समर्थन–प्रणाली टूटने लगी, उन्होंने अनुभव किया कि अब भारत में उनके लिये शासन करना असंभव होगा। इसलिए ब्रिटिशों ने धीरे–धीरे भारतीयों के हाथों में सत्ता हस्तांतरित करने के लिये भारतीय नेताओं से वार्त्ता की प्रक्रिया प्रारंभ करने का निर्णय लिया।

अंत में 1947 में ब्रिटिशों ने भारत छोड़ दिया। 15 अगस्त 1947 से भारतीय विदेशी शासन से स्वतन्त्र हो गये।



आपकी टिप्पणियाँ

लेकिन भारत छोड़ने से पहले ब्रिटिशों ने धर्म के आधार पर भारत का विभाजन करने का निर्णय लिया। भारत की स्वतंत्रता के साथ ही भारत का विभाजन भी हो गया। अतः स्वतंत्रता और विभाजन को आधुनिक भारत के इतिहास में दो अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटनाओं के रुप में देखा जाना चाहिए।

पाठांत प्रश्न

1. प्रारंभिक कांग्रेस के सरोकारों के मुद्दो का उल्लेख करें.
2. स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन के विकास की जड़ें खोजें.
3. 1907–1914 के दौरान भारत और विदेशों में क्रांतिकारी आंदोलन की विविध शक्तियों की संक्षेप में चर्चा करें।
4. साइमन कमीशन के बहिष्कार की चर्चा करें।
5. गांधी–इरविन समझौते की क्या शर्तें थी?
6. द्वितीय असहयोग आंदोलन क्यों शरू किया गया था?
7. 1930–1934 के दौरान वामपंथियों के उद्भव का उल्लेख करें।
8. 'वर्ष 1947 विजय के साथ–साथ महान त्रासदी का भी वर्ष था' टिप्पणी करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

21.1

1. दिसंबर 1885 ए. ओ. ह्यूम
2. 1905 लॉर्ड कर्जन
3. जात्रा
4. कलकत्ता के महत्त्व को कम करने के लिये

21ण्2

1. सोहन सिंह भाकना और हर दयाल
2. कनाडा जाने वाले जहाज कामागाटा मारु के यात्रियों को कनाडा सरकार द्वारा परे धकेल दिया गया था, जब वे 1914 में कलकत्ता पहुँचे तो उन यात्रियों की पुलिस के साथ झड़प हुई जिसमें 22 लोग मारे गये थे।
3. मैडम कामा
4. होम रुल आंदोलन

21.3

1. चम्पारण, अहमदाबाद, खेड़ा
2. 6 अप्रैल 1919
3. इस दिन जलियांवाला बाग में लोगों के एकत्रित होने पर जनरल डायर ने अपने लोगों को निहत्थे और असहाय लोगों पर गोलीबारी करने का आदेश दिया, जिसमें 379 लोग मारे गये थे।

21.4

1. खिलाफ़त की गलती, पजाब की गलती और स्वराज
2. 1923; मोती लाल नेहरू और सी. आर. दास
3. हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन

12.5

1. सामरमती आश्रम
2. पाँच
3. 91,000 लोगों से अधिक

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. देखें 21.1
2. देखें 21.2
3. देखें 21.3
4. देखें 21.8
5. देखें 21.9 अनुच्छेद 4
6. देखें 21.9 अनुच्छेद 7, 8, और 9
7. देखें 21.10 अनुच्छेद 2 और 3
8. देखें 21.12

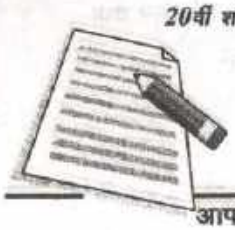

आपकी टिप्पणियाँ

22

19वीं शताब्दी का महत्त्व

जब हमें पुस्तकों, फिल्मों, दूरदर्शन अथवा बुजुर्गों द्वारा बताई गई कहानियों के माध्यम से अतीत के बारे में जानकारी मिलती है। तो हमें अन्य युगों और अपने काल के बीच अनेक विभिन्नताएं और समानताएं दिखाई देती हैं। हमें मालूम है कि अनेक भौतिक वस्तुएं और प्रौद्योगिकियां, जिनका हम आज उपयोग करते हैं, वे 1900 में मौजूद नहीं थी अथवा उस समय बहुत कम लोग उनका उपयोग करते थे। फिर भी मानव जीवन के संगठन के रुप में हम वर्ष 1900 के लोगों से बहुत अधिक समान है। इस इकाई में हम चर्चा करेंगे कि 1900 में विश्व के विभिन्न भागों में लोग कैसे रहते थे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- 1900 में विश्व के विभिन्न प्रदेशों में जनसंख्या के रुप की कल्पना कर सकेंगे;
- पूंजीवादी औद्योगीकरण को परिभाषित कर सकोगे और इसके सामाजिक परिणामों को समझा सकेंगे;
- उपनिवेशवाद के संबंधों की व्याख्या कर सकेंगे;
- ऊर्जा और संसाधन उपयोग के आधुनिक ढ़ाँचे की कल्पना कर सकेंगे और
- आधुनिक राजनीतिक विचारधाराओं और संघटनों के उद्गम का विश्लेषण कर सकेंगे।

22.1 विश्व जनसंख्या की संरचना : 1900

मानव जनसमुदायों, उनकी विकास दरों और आवासों के बदलते रुप का अध्ययन जनसांख्यिकी कहलाता है।

सन 1900 में मानव जनसंख्या लगभग 150 करोड़ थी। आज की तरह उस समय भी चीन और भारत सबसे अधिक जनसंख्या वाले देश थे। फिर भी आज की अपेक्षा सन 1900 में विश्व की जनसंख्या का कम भाग एशिया में निवास करता था। समग्र विश्व के ज्यादातर लोग सन 1900 में कृषकों के रुप में बस गए थे, ये फसलें उगाते और पशु

आपकी टिप्पणियाँ

पालते थे तथा गांवों में रहते थे। विश्व के अनेक भागों में लोग खानाबदोश थे, वे पशुओं के समूहों को चराते थे और कई आदिवासी शिकार–खाद्य संग्रहकर्ता थे, हालांकि कई सौ वर्षो पूर्व की तुलना में सन 1900 में वे बहुत कम थे।

विश्व की जनसंख्या का लगातार बढ़ता भाग शहरों में निवास करता था। विश्व के कई भागों में प्राचीन कालों से शहर मौजूद थे, परन्तु इनका आकार और जनसंख्या सीमित थी। तथापि पूंजीवादी औद्योगीकरण से शहरीकरण हुआ और शहरों में जनसंख्या तेजी

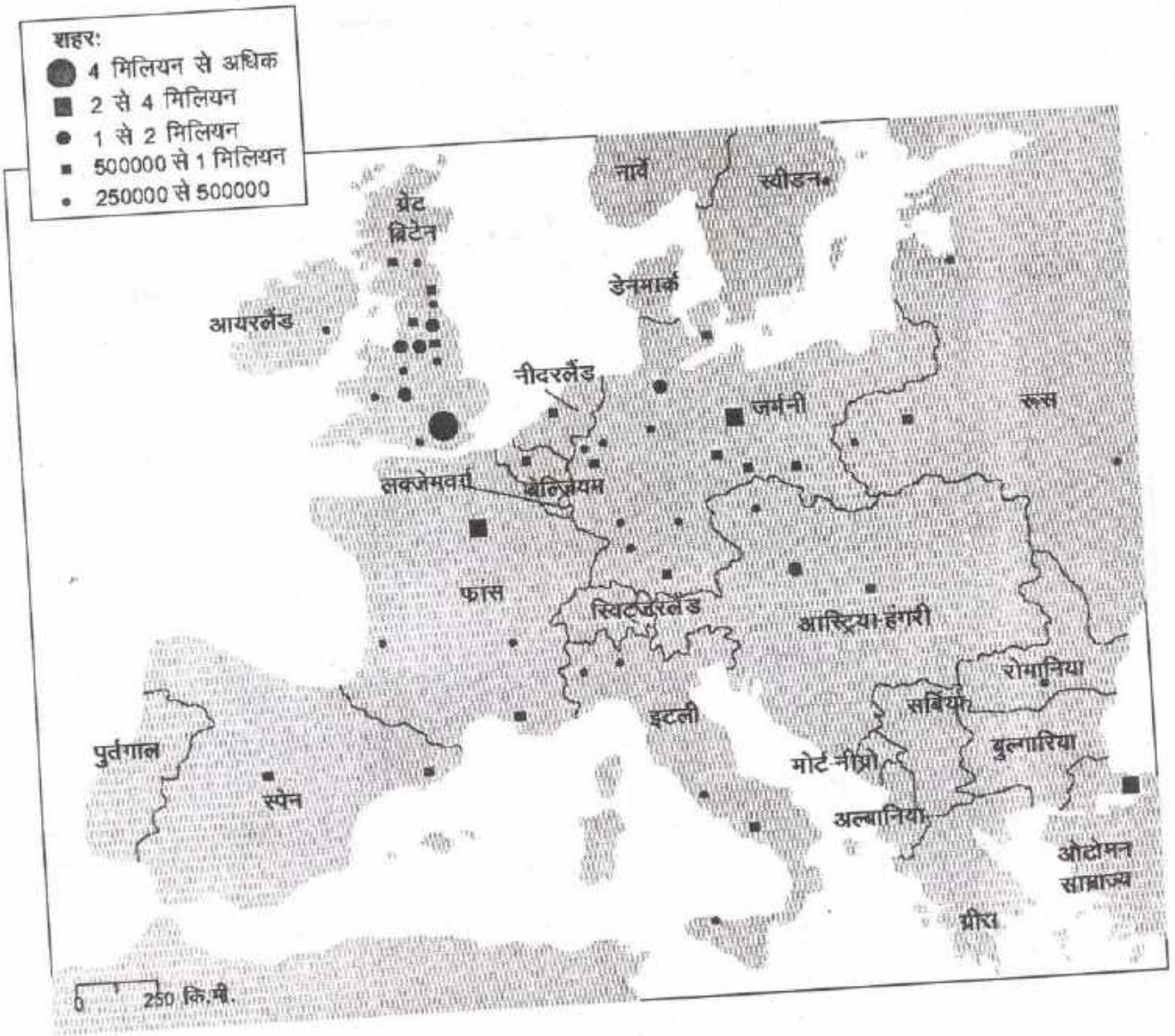

मानचित्र 22.1 (अ) प्रारंभिक 20वीं सदी के यूरोप में शहरीकरण

आपकी टिप्पणियाँ

से बढ़ी। सन 1900 तक यूरोप में विश्व के अन्य प्रदेशों की तुलना में शहरों का घनत्व बढ़ा। सौ से अधिक शहरों में कम–से–कम 1,00,000 लोगों की जनसंख्या थी और छह यूरोपीय शहरों में प्रत्येक में लगभग 10,00,000 लोग रहते थे। यूरोप और अमरीका में सबसे बड़े शहर थे, जबकि एशिया तथा अफ्रीका में ऐसे बड़े भूभाग थे, जिनमें कुछ ही शहर थे और सैकड़ों वर्षों की तलना में वे अलग–थलग थे तथा कम बसे हुए थे। सन

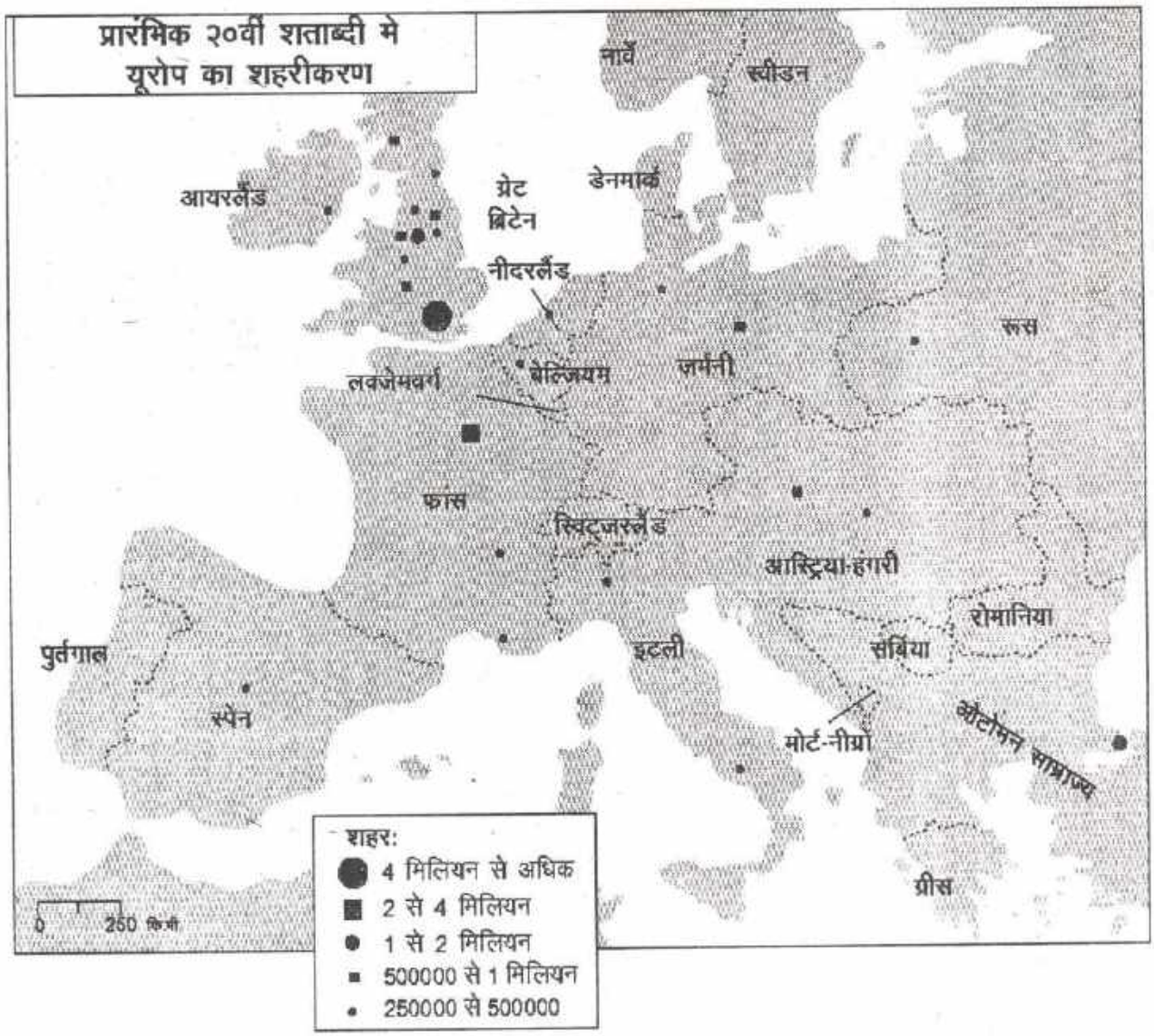

मानचित्र 22.1 (ब) प्रारंभिक 20वीं सदी के यूरोप में शहरीकरण



1900 में यूरोप से बाहर के ज्यादातर बड़े शहर जैसे सिडनी और शिकागो 100 या 200 वर्ष पुराने थे तथा इनमें ज्यादातर यूरोप मूल के लोग रहते थे। कुछ शहर जैसे बंगाल में कलकत्ता ब्रिटिश शासन के तहत विकसित हुए।

सामान्यतः सन 1900 में एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका की मानव जनसंख्या में 75–95 प्रतिशत ग्रामीण थे अथवा गांवों में रहते थे और कृषि पर निर्भर थे। औद्योगीकृत यूरोप अथवा अमरीका और ऑस्ट्रेलिया, जहां यूरोपीय मूल के लोग बस गए थी, वे पहले से ही शहरी हो चुके थे अथवा उनकी लगभग 50 प्रतिशत जनसंख्या शहरी थी अर्थात् वे नगरों और शहरों में रहते थे।

22.2 औद्योगीकरण और सामाजिक वर्ग

लगभग सन 1700 के बाद पश्चिमी यूरोप में औद्योगीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। उससे बहुत बड़ी संख्या में श्रमिक धातु का उत्पादन करने के लिए ऊर्जा और संसाधनों वाले क्षेत्रों के निकट आ गए तथा तैयार माल का तेजी से उत्पादन करने के लिए मशीन चलाने लगे। सन 1900 तक जब व्यापक पैमाने पर उद्योग चलाने के लिए भारी धन राशि की आवश्यकता पड़नी शुरु हुई तो पूंजीवादी औद्योगीकरण का विकास हुआ। 'पूंजीवाद' पूंजी शब्द से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ संचित धन और सम्पत्ति है और जिनके पास पूंजी होती है वे पूंजीपति कहलाते हैं। पूंजीपतियों का सीधा संबंध औद्योगिक उत्पादन, व्यापार, प्रशासन और बैंकिंग से होता था। 1900 तक ज्यादातर यूरोप, अमरीका और ऑस्ट्रेलिया में पूंजीवादी औद्योगीकरण फैल गया था।.

पूंजीपति यह धन और सम्पत्ति व्यापार और वाणिज्य अथवा छोटे मालिकों की सम्पत्ति के हरण करने से प्राप्त करते थे। दूसरी ओर फैक्टरियों में काम करने वाले पुरुष, महिलाएं और बच्चे थे, जिनके पास कोई संपत्ति नहीं थी और वे अपनी आजीविका के लिए अपनी मजदूरी पर आश्रित थे, जिसके लिए उन्हें निश्चित पगार मिलती था। 1900 में उन मज़दूरी पाने वालों की संख्या अधिक थी, जिनके पास पैसे की कमी नहीं थी, फिर भी उन्हें धनी नहीं कहा जा सकता था। इनमें से कई वेतन भोगी मध्यम वर्ग के लोग थे, जैसे अध्यापक, डॉक्टर, इंजीनियर, क्लर्क तथा अन्य सेवाओं से संबंध रखने वाले लोग।

उस समय बहुत से लोगों का मानना था कि ऐसे वर्गों का होना एक सामान्य बात है तथा ये हमेशा रहेंगे और ज्यादातर लोग इन असमानताओं को तब तक स्वीकार करते रहेंगे, जब तक उनकी स्थिति में सुधार नहीं हो जाता। उन्होंने देखा था कि उपनिवेशों से धन का हस्तांतरण होने से यूरोप के देशों में भी कार्य करने वाले लोगों को कुछ लाभ होता था। 1900 तक कुछ हद तक यह हुआ और ज्यादातर लोग अपने पूर्वजों की तुलना में बेहतर जीवन जीने लगे। लेकिन अभी भी बेरोजगारी की समस्या गंभीर थी।

1900 तक एशिया और अफ्रीका के बम्बई, शंघाई और डकार जैसे शहरों में बड़ी संख्या में व्यापारी, दुकानदार और मध्यम श्रेणी के अन्य वर्ग तथा औद्योगिक वेतन वाले कामगर रहने लगे थे। परन्तु यहां की जनसंख्या में आसपास के गांवों के भूस्वामियों, किसानों और कृषि श्रमिकों की संख्या ही अधिक थी।

1900 के पूंजीवादी समाजों के बारे में कुछ अन्य तथ्यों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं के लिए अधिकतर कच्चा माल उपनिवेशों से लाया जाता था



आपकी टिप्पणियाँ

और तैयार माल उपनिवेशों के बाजारों में बेचा जाता था। यह संबंध भी असमानता पर आधारित था: यह कोई समान व्यापार संबंध नहीं था। यूरोपीय समाजों में भूस्वामियों का अधिक दिनों तक वर्चस्व नहीं रहा।

22.3 शहरी विचारधारा और ज्ञान

औद्योगीकरण की अन्य विशेषता थी इसमाज में उत्पादन करना तथा ज्ञान की भागीदारी। लोग शहरी जीवन से पहले की तुलना में और अधिक निकटता से जुड़ गए। शहरों और नगरों में न सिर्फ औद्योगिक वेतन पाने वाले श्रमिकों की संख्या अधिक थी, बल्कि शिक्षा औरसाक्षरता वाले कार्यों में लगे लोगों – क्लर्कों, मैनेजरों, अध्यापकों, सरकारी कर्मचारियों आदि की भी संख्या बढ़ रही थी। शीघ्र ही इस बात को स्वीकार किया जाने लगा कि कार्य कुशलता में पढ़े–लिखे और हिसाब–किताब जानने वाले औद्योगिक कामगारों का भी योगदान होता था। समाचार–पत्रों और पत्रिकाओं ने इसमें योगदान दिया। 1900 में लंदन, पेरिस, बर्लिन और न्यूयॉर्क जैसे शहरों में प्रतिदिन दस लाख प्रतियों से अधिक समाचार–पत्र छपने लगे।

1900 तक ज्यादातर औद्योगिक समाजों के लिए यह आवश्यक हो गया था कि लड़के और लड़कियां कम–से–कम तेरह अथवा चौदह वर्ष की आयु तक प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त कर लें। विद्यालय में पढ़ाने का कार्य आधुनिक व्यवसाय हो गया था, जिसमें महिलाओं की संख्या अधिक थी। इससे शहरी और ग्रामीण लोगों में ज्ञान और संस्कृति का अंतर आ गया। कुल मिलाकर 1900 तक कुछ पश्चिमी समाजों में प्रौढ़ साक्षरता साठ प्रतिशत और नब्बे प्रतिशत के बीच थी, जबकि गैर–पश्चिमी समाजों में इसका प्रतिशत बहुत कम था।

पाठगत प्रश्न 22.1

1. 1900 में यूरोप से बाहर के जनसमुदायों का कितना भाग गांवों में रहता था?

2. 1900 में विश्व के ज्यादातर बड़े शहर (10,00,000 से अधिक लोग) यूरोप में थे अथवा उससे बाहर?

3. 1900 तक शहरी केंद्रों और ग्रामीण क्षेत्रों में 'साक्षरता अंतर' क्यों था?

4. 1900 के विश्व में उच्च साक्षरता के क्या संकेत थे?

22.4 ऊर्जा और संसाधन उपयोग : विश्व के औद्योगिक बनाम गैर-औद्योगिक क्षेत्र

1900 में औद्योगीकृत और गैर–औद्योगीकृत विश्व में लोगों ने सिर्फ विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन ही नहीं, किया बल्कि उन्होंने ऊर्जा के उपयोग की बिलकुल भिन्न पद्धतियां भी विकसित कीं। 1900 में गैर–औद्योगीकृत विश्व का ज्यादातर उत्पादन मानव और पशु

शक्ति से किया जाता था। अमरीका के खेतों में हल और यांत्रिकी कटाई मशीनें घोड़ों द्वारा चलाई जाती थीं, इसी प्रकार नगरों में ठेला, गाड़ियां और बसें चलाई जाती थीं।

औद्योगिक समाजों को अपनी फैक्टरियां चलाने, अपने घरों और कार्यालयों में रोशनी करने, परिवहन के शक्तिशाली आधुनिक साधनों जैसे रेलवे–इंजन और ऑटोमोबाइल्स चलाने के लिए नए ऊर्जा स्रोतों की आवश्यकता थी। अतः 1900 में ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी व्यापक रुप से कोयले का उपभोग करने वाले समाज थे, जबकि इटली ने जल–विद्युत का उपयोग करना शुरु कर दिया था। अमरीका पेट्रोलियम ईंधनों पर आश्रिम होता जा रहा था। 1915 तक यह स्पष्ट हो गया था कि परिवहन में घोड़ों के स्थान पर कारों का उपयोग होगा।

इन राष्ट्रों ने यह महसूस करना शुरु कर दिया था कि इनकी आर्थिक और राजनीतिक शक्ति ऊर्जा स्रोतों पर निर्भर थी और इन्होंने अपने उपनिवेशों के संसाधनों का दोहन करना शुरु कर दिया। उदाहरण के लिए ब्रिटिश लोग असम और बर्मा से तेल जुटाते थे; यही कार्य डच लोग सुमात्रा में और अमरीका के लोग मैक्सिको में कर रहे थे। ये घटक इनकी विदेशी नीतियों का निर्धारण करते थे।

22.5 उपनिवेशवाद, आर्थिक ढांचे और सामाजिक संबंध

1900 में पश्चिमी विश्व के ज्यादातर औद्योगीकृत राष्ट्र अपनी सीमाओं से दूर के प्रदेशों पर शासन करते थे अथवा उनको आर्थिक रुप से नियंत्रित करते थे। ब्रिटेन ने भारत के ज्यादातर भागों पर राज्य किया जबकि हालैंड ने आधुनिक इंडोनेशिया के संपूर्ण क्षेत्र पर शासन किया। फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी, इटली, पुर्तगाल और बेल्जियम के अफ्रीका, जापान और चीन में उपनिवेश थे।

इन उपनिवेशों के शासकों ने एशिया और अफ्रीका को नवीनतम प्रौद्योगिकियां हासिल करने से वंचित रखा तथा इन्होंने अपने उपनिवेशों में सावधानीपूर्वक रेलवे और टेलीग्राफ पर नियंत्रण रखा। ये स्वतंत्रता की अभिलाषा करने वालों पर सख्ती करते थे। इन्होंने प्रशासन में पहले से उपयोग मे लाई जा रही भाषा के स्थान पर अपनी भाषा लागू कर दी। उन्होंने विदेशी शासन मे औपनिवेशिक समाज के कुछ भागों को सम्मिलित करने के उद्देश्य से कुछ शैक्षिक नीतियां प्रारंभ की। उन्होंने निम्नतर स्तरों पर औपनिवेशिक प्रशासन को चलाने के लिए उनके कुछ भागों को भी तैयार किया। उन्होंने 'फूट डालो राज करो' की नीति अपनाई, आधुनिक आर्थिक क्रियाकलाप के विकास को रोका तथा औपनिवेशिक भाषाओं और शिक्षा का उपयोग स्थानीय भाषाओं में शिक्षितों के बीच भेद करने वे उद्देश्य हेतु किया।

उपनिवेशवाद के प्रभाव और पूंजीवाद के प्रवेश ने उपनिवेशों में सामाजिक संबंधों को बदल दिया। उन्होंने नकदी फसलों, जिसका वे व्यापार करना चाहते थे, के लिए अपनी प्राथमिकताओं में परिवर्तन लाने के लिए उत्पादन के ढांचे में बदलाव किया। निर्यात हेतु उत्पादन के इस प्रतिमान में उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अत्यधिक विस्तार किया गया। उदाहरण के लिए भारतीय किसान अफीम का उत्पादन करते थे जिसे ब्रिटेन के उद्यमी चीन को निर्यात करते थे। भारतीय व्यापारी भी इसमें सम्मिलित थे। दूसरे शब्दों में, उत्पादन और व्यापार दोनों की शासक के हितों में वृद्धि की जाती थी। परिणामस्वरुप



आपकी टिप्पणियाँ

संपूर्ण विश्व के ज्यादातर लोग उन वस्तुओं का उत्पादन करने लगे, जिनका वे उपभोग नहीं करते थे, जबकि वे उन वस्तुओं का उपभोग करते थे जिनका कहीं और अन्यों द्वारा उत्पादन किया जाता था।

ऐसे वाणिज्यिक ढांचों ने शासकों के नियंत्रण के कारण अंतर–निर्भरता और अधीनताएं सृजित कीं। कई क्षेत्रों में किसान पर्याप्त मात्रा में खाद्य पदार्थों का उत्पादन नहीं कर पाते थे जिसके परिणामस्वरुप उन्नसवीं शताब्दी के अंत में आए अकालों के कारण लाखों लोग मरे; यद्यपि अब तक के इतिहास में खाद्य का विश्व में कुल उत्पादन पहले से अधिक था।

पाठगत प्रश्न 22.2

1. 1900 में कौन से देशों ने जीवाश्म ईंधनों का उपयोग करना प्रारंभ किया?

2. 1900 में ऐसी आपूर्ति कहां स्थित थी?

3. क्या 1900 में महाशक्तियों के उपनिवेशों के लिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का लाभ था?

4. उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में जबकि विश्व में कुल खाद्य आपूर्ति में तेजी से वृद्धि, हुई अनेक लोगों की खाद्य सुरक्षा समाप्त हो गई। क्यों?

5. भाषा के उपयोग तथा शिक्षा में पहुँच बनाने से औपनिवेशिक शासन का क्या संबंध था?

22.6 विकसित और अविकसित राष्ट्रों में विचारधाराओं और राजनीति की गतिशीलता

1900 के विश्व ने समाज के जीवन और संगठन के बारे में विचारों के तीव्र विकास तथा विचारधारा की होड़ अथवा राजनीतिक विचारों की विभिन्न धाराओं को देखा। बड़ी हद तक यह औद्योगीकरण से संबंधित आर्थिक व सामाजिक बदलाव का परिणाम था। छपाई संस्कृति और संचार के अन्य साधनों के आगमन से इन बहसों का व्यापक विस्तार हुआ तथा जनता और संगठन विभिन्न विचारधाराओं का अनुसरण करने लगे। 1900 तक पश्चिमी राष्ट्रों और साथ ही कई उपनिवेशों में प्रिंट मीडिया लोगों की बहुत बड़ी संख्या को उत्पादों और सेवाओं के विज्ञापन संबंधी सूचना उपलब्ध कराते थे, परन्तु साथ ही उनके राजनीतिक विचारों को मूर्त रुप देते थे।

उदारवाद

विचारों के समूह के रुप में उदारवाद का उदय तीन सौ वर्षों से पहले उस समय हुआ था जब कुलीन लोग और बड़ी सम्पत्ति के मालिक (कभी–कभी गरीब लोग भी इसमें

सम्मिलित हो जाते थे) शासकों के अधिकारों को निर्धारित अथवा सीमित करने के लिए संघर्षरत थे। उदारवादियों का मानना था कि व्यक्तियों को 'नैसर्गिक अधिकार' प्राप्त हैं जिनमें उत्पीड़न के विरुद्ध अधिकार, सम्पत्ति संचित करने, धार्मिक स्वतंत्रता, अपने विचारों को स्वतंत्रतापूर्वक व्यक्त करने का अधिकार और अन्य सम्मिलित थे। उनका मत था कि सरकार व शासकों द्वारा इन अधिकारों का सम्मान करवाया जाना चाहिए। इनका मानना था कि इन अधिकारों को सृजित करने और इन्हें लागू करने के लिए सार्वजनिक कानूनों और संविधानों को तैयार करना सर्वोत्तम विधि थी। ये कानून और संविधान शासकों और सरकारी तंत्र द्वारा उपयोग किए गए निरंकुश अधिकारों के विरुद्ध श्रेष्ठ रक्षा उपाय थे। ये राष्ट्रीय चर्चा के माध्यम से अपने लोगों के धार्मिक विश्वासों के अनुसार आदेश देने वाले राजकीय अधिकारियों के प्रति आपत्ति जताते थे, क्योंकि धर्म निजी मामला था। जन आंदोलनों के विकास से उदारवाद को मजबूरन न सिर्फ धनी वर्गों को बल्कि समाज के सभी सदस्यों को राजनीतिक और नागरिकता के अधिकार प्रदान करने पड़े। इन अधिकारों में संगठन बनाने और चुनावों में भाग लेना सम्मिलित था।

उदारवाद अनेक आर्थिक विचारधाराओं से संबंधित था। उदारवादी सभी लोगों को आर्थिक एजेंटों, उत्पादकों और वस्तुओं और सेवाओं के उपभोक्ताओं के रुप में समझते थे। ये इनको अपने व्यक्तित्वों के महत्वपूर्ण पहलुओं और व्यक्तियों की अभिव्यक्ति के रुप में मानते थे। परंतु उनके लिए मजदूर श्रेणी के लोग नहीं बल्कि लाभ कमाने वाले व्यापारी, दुकानदार और उत्पादक नायक थे। आर्थिक उदारवाद के मुख्य प्रवक्ताओं में एडमस्मिथ का कहना था कि यदि लोगों को उनके हित में काम करने की अनुमति दे दी जाए, तो ये सर्वसामान्य के हित के लिए योगदान करेंगे। यदि आर्थिक गतिविधि को स्वतंत्र रखा जाए, तो यह अपनी आपूर्ति व मांग के समीकरण बना लेती है और इससे समाज की स्थिति उपयुक्त बन जाती है। इन्होंने मुक्त व्यापार का समर्थन किया। इस प्रकार, अर्थव्यवस्था हेतु श्रेष्ठ सरकार वही है, जो नियंत्रण कम रखे और सब कुछ बाजार प्रचालन पर छोड़ दे।

1900 तक अनेक उदारवादियों ने यह सोचना शुरु कर दिया था कि सरकारों को समाज के गरीब वर्गों के लिए शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे कुछ कल्याणकारी कार्य प्रारंभ करके न्यूनतम हस्तक्षेप करना चाहिए। परन्तु इनके मौलिक विचार आज तक बाकी हैं। इन्होंने मुख्यतया धनी लोगों के हितों को बढ़ावा दिया। उदारवादियों को व्यावसायियों और शिक्षित लोगों से अपना मुख्य समर्थन मिलता था जो ऐसी परपरागत और निरंकुश व्यवस्था से असंतुष्ट थे जो जन्म के आधार (अर्थात कुलीन वर्ग) और व्यापार और औद्योगिक पूंजीपतियों को विशेषाधिकार प्रदान करती थी। इन्होंने कई ऐसे कामगार लोगों का समर्थन हासिल कर लिया था जो संविधानों और व्यक्ति के अधिकारों के बारे में इनके विचारों से सहमत थे, परन्तु ये लोग यह नहीं समझ पाए कि वे आर्थिक समानता अथवा कामगार लोगों के आर्थिक अधिकारों के प्रति बिल्कुल भी इच्छुक नहीं थे।

अनुदारवाद

अनुदारवाद मुख्यतः समाज के भूस्वामी और अन्य वर्गों से आया, जो अपने लिए लाभकारी विशेषाधिकारों को समाप्त करना और सीमित करना नहीं चाहते थे। ये भूस्वामी वर्गों के वे सौदागर और व्यापारी थे, जिन्हें राज्य संरक्षण और एकाधिकार प्राप्त थे जो मुक्त



आपकी टिप्पणियाँ

व्यापार नीतियों के कारण समाप्त हो गए थे। उनके लिए नैसर्गिक अधिकारों की संपूर्ण विचारधारा विघटनकारी थी क्योंकि इससे समाज में प्रचलित पुरानी व्यवस्था समाप्त हो गई थी जिसमें समाज के प्रत्येक वर्ग का अपना स्थान पहले से ही निर्धारित था। इनके लिए सामाजिक व्यवस्था और स्थिरता समानता से ज्यादा महत्वपूर्ण थी। इन्होंने महसूस किया कि भगवान के समक्ष सब बराबर हो सकते है परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वास्तविक संसार में भी सब बराबर हो। ये उसे आधुनिक विश्व की अव्यवस्था के विरुद्ध पुरानी सामाजिक व्यवस्था को श्रेष्ठ सुरक्षा मानते थे, क्योंकि आधुनिक व्यवस्था से समाज में भारी परिवर्तन और संघर्ष उत्पन्न हो गया। सभी पश्चिमी राष्ट्रों में मजबूत अनुदार राजनीतिक समूह थे, जो चुनावों में भाग लेते थे और इनका प्रशासनिक तंत्र पर भी प्रभाव था।

समाजवाद

समाजवादी भी उदारवादियों की आलोचना करते थे, परन्तु उन बातों के लिए जो अनुदारवादियों से बहुत भिन्न थीं। समाजवादियों ने कामगार लोगों के हितों को प्रस्तुत किया और उनका मानना था कि औद्योगीकृत पूंजीवादी समाजों में राजतंत्र की पुरानी तानाशाही के जुल्म और अभिजात तंत्र का स्थान धनी पूंजीपति बुजुर्आओं ने ले लिया। लूई ब्लाँक और रॉबर्ट ओवेन जैसे कुछ पहले के समाजवादियों का मानना था कि उत्पादकों के सहयोग से लाभ में और अधिक समान भागीदारी होगी।

कार्ल मार्क्स जैसे अन्य समाजवादियों का मानना था कि श्रमिकों को पूंजीवादी प्रणाली में कभी उचित पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। यह तभी संभव होगा जब सभी उद्यमों पर सार्वजनिक स्वामित्व हो अर्थात सबके समान लाभ हेतु उन पर राज्य का स्वामित्व हो। मार्क्स ने कहा कि साम्यवादी समाज में जब उत्पादन के सभी साधन सार्वजनिक होंगे और कोई निजी संपत्ति नहीं होगी, तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार योगदान देगा/देगी और उसकी आवश्यकताओं के अनुसार उसे प्राप्ति होगी। अतः सामाजिक न्याय के लिए निजी सम्पत्ति समाप्त करना आवश्यक था। समानता वाले समाज को अस्तित्व में लाने के लिए वर्गों को भी समाप्त करना होगा। मार्क्स के अनुसार समाजवादी आंदोलनों का अंतिम उद्देश्य ऐसे समाज की स्थापना करना है। मार्क्स ने यह भी कहा कि चूंकि शासन करने वाला वर्ग इसमें सहयोग नहीं देगा इसलिए क्रांति आवश्यक है। अतः साम्यवादी पार्टियाँ और मजबूत और समर्पित श्रमिक आंदोलन होने चाहिए।

अतः 1900 में सोशल डेमोक्रेटिक (मार्क्सवादी) पार्टी ने लाखों कामगारों को श्रमिक संघों, क्लबों और समितियों में संगठित किया, चुनावों में भाग लिया तथा रीशस्टेग (जर्मन संसद) में भारी सीटों पर विजय प्राप्त की। वे कामगारों के जीवन में सुधार लाने से संबंधित विधेयक पास कराने में सफल हो गए। 1900 तक विश्व के कई भागों में मार्क्सवादी, समाजवादी और लेबर पार्टियां अस्तित्व में आ गईं, हालाँकि वे सरकारों और अपने देशों की पुलिस की कड़ी निगरानी में थीं, क्योंकि सरकारें क्रांतियों को किसी भी कीमत पर रोकना चाहती थी। रुस जैसे राष्ट्रों में साम्यवादी संगठनों पर प्रतिबंध लगा दिया गया तथा जाने–माने साम्यवादियों को जेल में डाल दिया गया अथवा उन्हें देश निकाला दिया गया (जैसा कि रुसी क्रांतिकारी आंदोलन के नेता वी. आई. लेनिन के साथ हुआ)।

पाठगत प्रश्न 22.3

1. उदारवादियों द्वारा मान्यता प्राप्त 'नैसर्गिक अधिकार' कौन से थे?

2. उदारवादियों ने आर्थिक गतिविधि के सरकारी निर्धारण का सिद्धान्ततः विरोध क्यों किया?

3. उदारवाद और अनुदारवाद के संबंध में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बदलते वर्गों में बहस का उल्लेख कीजिए।

4. समानता की मार्क्सवादी अवधारणा और असमानता के आधार की मार्क्सवादी समझ को स्पष्ट कीजिए?

5. 1900 के एक ऐसे राष्ट्र का उदाहरण दीजिए जहां मार्क्सवादी कामगार वर्ग के लोगों को एकजुट करने में अत्यधिक सफल रहे?

6. साम्यवादी (मार्क्सवादी) साम्राज्यवाद के घोर विरोधी हैं। क्यों?

साम्राज्यवाद

1900 का विश्व ऐसा था जिसमें ज्यादातर औद्योगीकृत राष्ट्रों का गैर–औद्योगीकृत राष्ट्रों के लोगों और संसाधनों पर अधिकार था। औद्योगीकृत राष्ट्रों के कई निवासियों का मानना था कि जिन राष्ट्रों पर शासन किया जा रहा था उनके लिए उपनिवेशवाद लाभकारी था और 'पिछड़े' राष्ट्रों के निवासियों को विदेशी शासन द्वारा 'सभ्य' बनाया जा रहा था। शासक राष्ट्रों के उदारवादी इस बात पर बंटे हुए थे कि उपनिवेशों पर अपने राष्ट्रों के प्रभुत्व को कैसे बनाए रखा जाए। प्रत्येक यह नहीं सोचता था कि प्रत्यक्ष राजनीतिक शासन आवश्यक था परन्तु साथ भी उपनिवेशवाद के लाभों और उपनिवेशों के संसाधनों पर नियंत्रण खोने का भी इच्छुक नहीं था। जर्मनी में उदारवादियों का मानना था कि उनके राष्ट्र की औद्योगिक शक्ति अधिक उपनिवेश बनाने पर निर्भर थी। अमरीका के अनेक उदारवादियों का कहना था कि उनके राष्ट्र को क्यूबा और फिलिपींस पर राज्य करने का कोई नैतिक अधिकार नहीं था, परन्तु अमरीका के किसी भी नागरिक ने लातिन अमरीका में अपनी सरकार के हस्तक्षेप की आलोचना नहीं की। ब्रिटिश, फ्रांसीसी, जर्मन, बेल्जियम के और अमरीका के पूंजीपतियों ने औपचारिक साम्राज्यों की भीतरी औरबाह्य दोनों आर्थिक गतिविधियों पर भारी निवेश किया था। अतः इन्होंने अपने संबंधित देशों को समर्थन दिया और विदेशी–नीतियों को प्रभावित किया तथा शेष विश्व के राष्ट्रों पर औपनिवेशिक आधिपत्य जमाने के लिए प्रेरित किया। जिनमें अफ्रीका लातिन अमरीका और एशिया सम्मिलित थे।



आपकी टिप्पणियाँ

1900 में घोर साम्राज्यवाद–विरोधी विचारों वाला राजनीतिक समूह साम्यवादियों का था, उनका मानना था कि सब जगह उपनिवेशवाद सिर्फ शासक वर्गों को लाभ पहुंचाता था, और कहीं भी कामगार लोगों के हित में नहीं था। अतः सभी राष्ट्रों के कामगार वर्गों का कुछ राष्ट्रों के इस साम्राज्यवादी प्रभुत्व को उखाड़ फेंकने के लिए एकजुट होना आवश्यक था।

राष्ट्रवाद

राष्ट्रवाद और राष्ट्र–मुक्ति की विचारधारा उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों के विश्व में विस्फोटक शक्ति थी। 1900 में विश्व के सभी भागों में प्रतिस्पर्धी राष्ट्रवादी उन्नति कर रहे थे और लोगों को संघटित करने का यह महत्वपूर्ण ढंग था। सभ्यतागत पहचान की व्यापक धारणाएं लोगों का समर्थन हासिल करने के लिए राष्ट्रवाद से प्रतिस्पर्धा में थी। थे दोनों एशिया और अफ्रीका में महत्वपूर्ण थीं। पैन (सभी) अफ्रीकावाद और पैन–इस्लामवाद ने उपनिवेशों में स्वतंत्रता संग्राम को बढ़ावा दिया। चीनियों और भारतीयों ने अपनी सांस्कृतिक स्वतंत्रता पर बल दिया तथा स्वतंत्रता हेतु अपने संघर्ष में औपनिवेशिक नीतियों का विरोध किया। सरकार में जन प्रतिभागी राष्ट्रीय आंदोलनों का महत्त्वपूर्ण पक्ष था। साम्राज्यवादी राष्ट्रों की औपनिवेशिक नीतियों का विरोध करना, आर्थिक दोहन को समाप्त करना और स्वशासन, इन बातों ने समग्र विश्व के राष्ट्रीय उदारवादी आंदोलनों हेतु आधार तैयार किया। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के ज्यादातर राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष प्रजातंत्र से संबंधित विचारधाराओं और कैसे राष्ट्रीय सम्पत्ति सृजित की जाए और उसमें भागीदारी की जाए आदि से संबंधित विचारधाराओं से जुड़े थे।

इसके विपरीत, औद्योगीकृत, साम्राज्यवादी देशों में राष्ट्रवाद आक्रामक हो गया था तथा औपनिवेशिक नीतियों और अन्य राष्ट्रों पर प्रभुत्व के समर्थन में हो गया। अगली इकाइयों के अपने अध्ययन में आप देखेंगे कि इससे इन राष्ट्रों में प्रतिस्पर्धा और बढ़ी तथा अन्ततः प्रथम विश्व युद्ध आरम्भ हो गया।

आपने क्या सीखा

1900 से पूर्व की शताब्दी तीव्र जनसंख्या वृद्धि की अवधि थी, इसमें ज्यादातर वृद्धि यूरोप और उत्तरी अमरीका में हुई। इन स्थानों पर जनसंख्या वृद्धि औद्योगीकरण के साथ–साथ हुई। औद्योगिक समाज के आविर्भाव से अपेक्षित सामाजिक व्यवस्था प्राप्त करने संबंधी विचारों और सिद्धांतों अर्थात विचाराधाराओं का निर्माण और सुदृढ़ीकरण हुआ। 1900 तक साम्राज्यवाद से मुक्ति हेतु इन नीतियों से गैर–औद्योगिक समाजों के लोगों के संघर्षों को स्वरुप प्रदान करने के लिए विचारधाराएं बनने लगी थीं। उनका विकसित यूरोप तथा अविकसित औपनिवेशिक विश्व पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

पाठांत प्रश्न

1: औद्योगीकरण ने मानव अस्तित्व के प्राचीन ढांचों में किस प्रकार परिवर्तन किया?

2. औद्योगीकरण ने वैश्विक उत्पादन और व्यापार के ढांचों में किस प्रकार परिवर्तन किया?
3. उदारवाद और समाजवाद कैसे एक दूसरे के विरोधी थे, जबकि दोनों मानव स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते थे?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

22.1

1. 75–95 प्रतिशत
2. यूरोप के भीतर
3. शहरी क्षेत्र औद्योगिक उत्पादन और वाणिज्यिक वितरण के स्थल थे। साक्षरता ऐसे क्षेत्रों में अत्यधिक उपयोगी अथवा प्रासंगिक थी और ग्रामीण क्षेत्रों में कम उपयोगी थी।
4. प्राथमिक विद्यालयों में बड़ी संख्या में उपस्थिति तथा समाचार पत्रों का व्यापक प्रचलन।

22.2

1. ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, अमरीका कुछ राष्ट्र थे जो 1900 में जीवाश्म ईंधन पर निर्भर थे।
2. 1900 में जीवाश्म ईंधन की कई समृद्ध आपूर्तियां यूरोप और अमरीका से बाहर स्थित थीं।
3. उपनिवेश असमान व्यापार से दुखी थे। वे मुख्यतया औद्योगीकृत राष्ट्रों के लिए कम दाम का खाद्य और कच्चा माल उत्पन्न करते थे।
4. ज्यादातर लोग उनसे दूर रहने वाले लोगों के लिए खाद्यान्न उत्पन्न करते तथा दूसरों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की व्यापक मात्रा का उपभोग करते थे।
5. औपनिवेशिक शासकों ने नए सामाजिक भेदभाव सृजित करने तथा राष्ट्रीय जागरुकता के विकास में बाधा डालने के लिए भाषा और शिक्षा का उपयोग किया।

22.3

1. अत्याचार का विरोध, निजी सम्पत्ति, धर्म चुनने की स्वतंत्रता, बोलने तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सरकार में भागीदारी।
2. उदारवादियों का मानना था कि आर्थिक गतिविधि में अपने फायदे में लगे व्यक्ति शक्तिशाली नियामक प्राधिकरण (सरकार) से कहीं ज्यादा बेहतर ढंग से कार्य करेंगे।
3. 1900 के प्रारंभ में ज्यादातर अनुदारवादी भू–स्वामी वर्गों के सदस्य थे या उन पर निर्भर थे। जबकि उदारवादी अक्सर उत्पादन और वाणिज्य में सक्रिय रहते थे।



आपकी टिप्पणियाँ

1900 तक परम्परागत भू–स्वामी वर्गों के सदस्य उदारवादियों का समर्थन करने के लिए व्यापारी वर्ग से जुड़ गए, जबकि कुछ परम्परागत उदारवादी अनुदारवादियों की सहायता करते थे।

4. मार्क्सवादियों का मानना था कि मानव असमानता उत्पादन के साधनों तक पहुंच अथवा पहुंच की कमी के कारण थी। निजी सम्पति समाप्त करने तथा संसाधनों को राष्ट्र के नियंत्रण में रखने से लोग वास्तव में समान हो जाते।

5. जर्मनी जहां सोशल डेमोक्रेटिक वर्कर्स पार्टी ने कामगार वर्गों से ज्यादातर वोट प्राप्त किए।

6. समाजवादियों का मानना था कि पूंजीवादियों और श्रमजीवी वर्ग के बीच समाज का बँटवारा विश्व स्तर पर घट रहा था। अतः सभी राष्ट्रों/उपनिवेशों के श्रमजीवियों को दमनकारी पूंजीपतियों के विरुद्ध सर्वत्र संघर्षों में रुचि रखनी चाहिए।

पाठांत प्रश्नों हेतु संकेत

1. अनुच्छेद 22.1–22.4 देखें
2. अनुच्छेद 22.5 देखें
3. अनुच्छेद 22.6.2 और 22.6.4 देखें

शब्दावली

1. **बुर्जुआ** – सामाजिक वर्ग के ऐसे लोग जिनके पास घरों, फैक्टरियों के रुप में पर्याप्त सम्पत्ति थी अथवा बैंको में खाते थे – पूंजीपति।

2. **सी. ई** – सामान्य काल – ईसाई कैलेन्डरों के अनुसार निर्धारित ऐतिहासिक कालावधि इसमें ईसा मसीह के जन्म के बाद के वर्ष को एक वर्ष माना जाता है। अन्य धार्मिक परंपराओं (उदाहरण के लिए यहूदी धर्म, हिन्दू धर्म, इस्लाम) पर केन्द्रित सभ्यताआ और राष्ट्रों में अलग–अलग कैलेन्डरों का अनुसरण किया जाता था जबकि आज संपूर्ण विश्व में ईसाई कैलेंडर का व्यापक उपयोग किया जाता है। बीसवीं शताब्दी का अर्थ है 1900 से आरम्भ होने वाले वर्षों का समय।

3. **विचारधारा/आदर्श** – सिद्धांतों अथवा विचारों अथवा वैश्विक विचार का समूह जो समाज के विकास हेतु विशेष योजना का समर्थन करता है; सामाजिक दर्शन शास्त्र।



आपकी टिप्पणियाँ

4. **साम्राज्यवाद** – (1) मूल देश पर आश्रित उपनिवेशों, प्रदेशों का अधिग्रहण करने अथवा उनके रखरखाव करने की प्रक्रिया।

(2) साम्राज्य अधिग्रहण करने की विचारधारा

5. **श्रमवाद/मजदूरदलवादी** – कामगारों के राजनीतिक अथवा आर्थिक संगठनों का संकेत देते हैं। 'श्रमवाद' नियोक्ताओं अथवा राष्ट्र से श्रम अधिकारों की रक्षा करता है। कुछ मजदूर–दलों के समर्थक मार्क्सवादी हैं।

6. **(छापे की) संस्कृति** – मुद्रित पाठों जैसे पुस्तकों और समाचार पत्रों पर आधारित संचार और ज्ञान का ढांचा (जो लोगों द्वारा हाथ से पाठो की प्रतिलिपि करने के बजाय) यांत्रिक साधनों के माध्यम से तत्काल प्रतिकृति कर सकत हैं। छापे की संस्कृति साक्षरता, प्रतिलिपि बनाने और मुद्रण की सस्ती प्रौद्योगिकी पर निर्भरहै। यूरोप, जापान और कोरिया में 1500 सी. ई. में छापे की संस्कृति थी, जिसमें इन सभी स्थानों पर कम संख्या में पाठक थे। 1850 तक संपूर्ण विश्व के करोड़ों लोग प्रिंट संस्कृति से जुड़ गए थे जो ज्यादातर नगरों और शहरा में रहते थे। स्टॉक्स (सट्टा बाजार) की कीमत जानने के लिए समाचार पत्र पढ़ना और उपन्यास पढ़ना दोनों ही छापे की संस्कृति का व्यावहारिक अनुभव हैं।



आपकी टिप्पणियाँ

23

प्रथम विश्व युद्ध और रूसी क्रांति

प्रथम विश्व युद्ध तथा रूसी क्रांति उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के वर्षों में हुए परिवर्तनों और शृंखलाबद्ध घटनाओं का परिणाम थी। दोनों ही बहुत बड़ी महत्त्वपूर्ण घटनाएं थीं और इनसे लाखों लोग प्रभावित हुए थे। दोनों ने समग्र रूप से बीसवीं शताब्दी को प्रभावित किया तथा उसे नया स्वरूप प्रदान किया।



उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप:

- कुछ ऐसे घटकों को पहचान पाएँगे जो 1914 में युद्ध के कारण बने और इस बात पर चर्चा कर सकेंगे कि क्या युद्ध के ऐसे घटक आज के विश्व में भी मौजूद हैं;
- 1917 के रूसी साम्राज्य में ही यह क्रांति कैसे संभव हुई तथा किसी अन्य देश में क्रांति में क्यों नहीं हुई इसकी व्याख्या कर सकेंगे;
- दोनों युद्धों और रूसी क्रांति के तात्कालिक और दीर्घकालिक परिणामों का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- भारत के लिए इस युद्ध और इस क्रांति की क्या सार्थकता है; इस पर चर्चा कर सकेंगे।

23.1 इतिहास में प्रथम विश्व युद्ध पिछले युद्धों से किस प्रकार भिन्न था

स्पेन, नीदरलैंड, तीन स्केन्डीनेवियन राष्ट्रों और स्विटजरलैंड को छोड़कर यूरोप के सभी राष्ट्र ऐसे युद्ध में सम्मिलित थे जिन्होंने संपूर्ण विश्व को हिंसा और दुःख से जोड़ दिया। अन्य क्षेत्रों, विशेष रूप से उपनिवेशों पर शासन करने वाले राष्ट्रों के लिए उनकी सेनाओं को भी इस युद्ध में लड़ाई लड़नी पड़ी। उदाहरण के लिए, भारतीय सैनिकों को भारत से बाहर ब्रिटेन के लिए लड़ाई लड़नी पड़ी। यह अनुमान लगाया गया है कि ब्रिटेन की तरफ से कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका और भारत (जिन क्षेत्रों पर ब्रिटेन का शासन था) से 30 लाख से अधिक सैनिक आए थे। इन युद्धों का क्षेत्र व्यापक था अर्थात इस युद्ध के क्षेत्रों के प्रदेश में यूरोप, एशिया, अफ्रीका और प्रशांत महासागर सम्मिलित थे। पहली बार लगभग समग्र विश्व के लोग ऐसे युद्ध में सम्मिलित थे, जिसे वे विश्व युद्ध के रूप में जानते थे।

युद्ध में नई प्रौद्योगिकियों, हवाई जहाजों, टैंकों और पनडुब्बियों का उपयोग किया गया था, जिन्हें इससे पहले के युद्धों में नहीं देखा गया था। परन्तु साधारण ढंग से भूमि पर लड़े जाने के अतिरिक्त ज्यादातर लोग इसे इसलिए याद रखेंगे कि युद्ध की ज्यादातर फोटो में सैनिकों को भूमि पर खाइयों में लड़ते दिखाया गया था। समुद्री युद्ध दक्षिण अटलांटिक और प्रशांत महासागर में हुआ। ब्रिटेन तथा इसके मित्र राष्ट्रों की और से 100,000 से अधिक सैन्य टुकड़ियों के साथ अमेरीका पहली बार विश्व स्तर पर सम्मिलित हुआ था।

इस विश्व युद्ध के कारण लोगों को भारी मात्रा में सैनिकों के रूप में संगठित किया गया, जबकि महिलाओं को शहरों में कई कार्यों के लिए तथा युद्ध क्षेत्रों में उन्हें नर्स के रूप में रखा गया। सरकारों ने यह सुनिश्चित करने के लिए अनेक उपाय किए कि उनकी अपनी सेनाओं को किसी वस्तु की कमी नहीं होगी। जैसे वे लोगों को संगठित करते थे वैसे ही उन्होंने खाने के लिए किसानों से खाद्यान्न एकत्रित किए। उन्होंने सेना की उपकरण और गोलाबारूद संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसी वेतन पर अधिक लंबे समय तक कार्य करने के लिए कामगारों के अधिकारों को समाप्त कर दिया। खाद्य और रोजमर्रा के उपभोग वाली वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हो गई क्योंकि ज्यादा निवेश युद्ध संबंधी उद्योगों और युद्ध संबंधी अन्य आवश्यकताओं पर किया गया। सामान्यतः लोगों में निराशा का भाव था।

हमें यह याद रखना चाहिए कि युद्ध अथवा युद्ध से आई विपत्तियों के कारण 10 लाख लोग मारे गए, 20 लाख लोग घायल हो गए और लाखों लोग शरणार्थी अथवा बेरोजगार हो गए थे क्योंकि नगर और उद्योग नष्ट हो गए थे। देशों के सीमा क्षेत्रों पर रहने वाले ही नहीं वरन राष्ट्र के आंतरिक भागों में रहने वाले लोग भी बेघर हो गए थे। युद्ध के इतिहास में पहली बार असैनिक जन समुदाय प्रभावित और घायल हुआ। असैनिक क्षेत्रों पर बम डाले गए और युद्ध के कारण अकाल तथा महामारियाँ फैलीं जिनसे लाखों नागरिकों की मौत हो गई।

जब यह युद्ध शुरू हुआ तो लोगों ने सोचा कि यह युद्ध छोटा होगा, लेकिन यह चार वर्ष तक चला। आप कल्पना कर सकते हैं कि लगातार चार वर्ष तक युद्ध में संलग्न रहने वाले राष्ट्रों के लोगों का जीवन कैसा रहा होगा। इसने मौजूदा सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक ढाँचे को नष्ट कर दिया। संपूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया। चारों ओर फैलने तथा पहली बार इतने बड़े स्तर पर विरोधी राष्ट्रों द्वारा सभी संसाधनों को संगठित करने के कारण इसे प्रथम विश्व युद्ध के रूप में जाना गया।

इन सब कारणों से इस युद्ध को विश्व इतिहास का निर्णायक बिन्दु माना जाता है।

23.2 युद्ध के कारण

प्रथम विश्व युद्ध के कारण जटिल हैं, हालांकि यह युद्ध एक विशेष घटना के कारण प्रारंभ हुआ था जो कहीं भी, किसी भी समय घट सकती थी। सर्बिया और आस्ट्रिया में शत्रुता थी जिसके कारण हिब्सबर्ग साम्राज्य के सिंहासन के उत्तराधिकारी आर्क ड्यूक फ्रेंज फरदिनांद की 1914 में साराजीवों में हत्या कर दी गई थी। यही घटना मुख्य कारण बनी जो प्रथम विश्व युद्ध के रूप में परिवर्तित हो गई।

एक घटना के ऐसे विध्वंसकारी परिणाम क्यों हुए, जिनके कारण अंततः संपूर्ण विश्व में चार वर्ष तक युद्ध चला?



आपकी टिप्पणियाँ

आप प्रारंभिक पाठों में उपनिवेशों हेतु दौड़ के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कैसे पूर्ण रूप से साम्राज्यवाद प्रणाली ने स्थान बनाया। उदाहरण के लिए, 1876 में अफ्रीका का 10 प्रतिशत से ज्यादा हिस्सा यूरोप के शासन के अधीन नहीं था परन्तु 1900 तक वहाँ 90 प्रतिशत से अधिक उपनिवेश बन गए। आप देख चुके हैं कि जर्मनी इस दौड़ में पीछे रह गया था लेकिन उसने भी यह महसूस करना शुरू कर दिया कि शासन करने के लिए उसे भी अपने उपनिवेश स्थापित करने चाहिए। 1914 तक ये शक्तियां अपने प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाने, अपने अधीन और अधिक क्षेत्र लाने तथा विश्व के संसाधनों में अधिक भागीदारी करने को तैयार थीं।

ज्यादातर विश्व इनमें पहले से ही बँट चुका था, प्रत्येक अपने अधीन वाले क्षेत्रों के आर्थिक तथा राजनीतिक नियंत्रण विश्व को पुनः व्यवस्थित करके बढ़ा सकते थे अथवा दूसरे के खर्च पर अपने हिस्से को एक दूसरे से लड़कर बढ़ा सकते थे। तथापि उनमें से किसी ने भी इतने बड़े युद्ध के बारे में नहीं सोचा था, फिर भी संघर्ष की संभावना हमेशा रहती थी।

वे दूसरे देश में नए क्षेत्र प्राप्त करने अथवा पहले से अपने अधीन वाले क्षेत्रों की सुरक्षा करने के लिए छोटे–छोटे युद्ध करते थे; और कभी–कभी वे अपने प्रतिद्वंदी को रोकने के लिए दूसरी शक्ति का सहयोग करते थे। जर्मनी के बिस्मार्क ने 1879 में ऑस्ट्रिया–हंगरी के साथ सहयोग किया था, जो द्विपक्षीय सहयोग के रूप में जाना जाता था। 1894 में जब इटली इसमें सम्मिलित हो गया तो यह त्रिपक्षीय सहयोग बन गया। दूसरी ओर 1884 में फ्रांस ने रूस के साथ सहयोग किया, 1904 में फ्रांस ने ब्रिटेन के साथ करार किया और 1907 में ब्रिटेन ने रूस के साथ संधि की। यह त्रिपक्षीय संधि के रूप में जानी जाती है।

यूरोप के नेताओं ने सोचा कि इन सहयोगों से शक्ति के संतुलन के माध्यम से युद्ध रोका जा सकेगा। वास्तव में यह हुआ कि इन सहयोग से देश एक–दूसरे से बंध गए थे। जब एक देश युद्ध करता तो अपने सहयोग के दूसरे देशों को उसकी सहायता के लिए इस युद्ध में सम्मिलित होना पड़ता था। इस प्रकार साम्राज्यवादी राष्ट्रों में प्रतिद्वंद्विताएँ और संघर्ष इस युद्ध के मुख्य कारण बन गए।

राष्ट्रीय आंदोलन उन्नीसवीं शताब्दी की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ थीं। उन्नीसवीं के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में राष्ट्रवाद में भी परिवर्तन आया। विकसित पूंजीवादी राष्ट्रों में यह नियंत्रण के क्षेत्रों के विस्तार और उसकी सैन्य शक्ति की वृद्धि से जुड़ गया। फ्रांस की क्रांति इसकी 'स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व' के आदर्शों से आई। दबाव का बोध अब नहीं था। ये राष्ट्र एक देश में प्रचलित अक्षुण्णता के विचार से और अधिक नहीं जुड़ना चाहते थे। दूसरी ओर बहु–राष्ट्रीय साम्राज्यों जैसे, ऑस्ट्रिया–हंगरी और रूस साम्राज्य में लोग स्वयं को मुक्त करना और स्वतंत्र राष्ट्रों का निर्माण करना चाहते थे, सभी बड़ी शक्तियां उसका विरोध करती थीं।

इस प्रकार, बड़ी शक्तियां अभूतपूर्व शस्त्रास्त्रों की दौड़ में लग गईं तथा उन्होंने विशाल थल और जल सेनाएं तैयार कर लीं। सैन्यवाद विदेशी नीति का मुख्य पहलू बन गया। घरेलू नीतियों का लक्ष्य अपने नागरिकों का कल्याण करने के बजाय अपनी सैन्य शक्तियों तथा सामर्थ्य को बढ़ाना था। जन संचार को इसमें मुख्य साधन बनाया गया। समाचार पत्रों ने आक्रामक राष्ट्रवाद का प्रचार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1901 में अपेक्षाकृत कुछ लोगों को कहीं भी वोट डालने की अनुमति दी गई और महिलाओं को व्यावहारिक रूप से कहीं भी वोट डालने की अनुमति नहीं थी। अतः बहुत कम लोग ही अपनी सरकारों द्वारा बनाई गई नीतियों से प्राभावित होते थे। सरकारें पूंजीपतियों और भू–स्वामियों के हितों का ध्यान रखती थीं और इनके प्रभाव में सरकारें अपनी नियंत्रणाधीन क्षेत्रों में वृद्धि करने के लिए आपस में प्रतिस्पर्धा करती थीं। यद्यपि इस प्रतिस्पर्धा में आम आदमी की भागीदारी कम थी। फिर भी युद्ध प्रारंभ होने पर लोग अपने राष्ट्रों की सहायता के लिए निकल पड़ते थे।

लोग आधुनिक युद्ध की विभीषिका को अभी तक नहीं समझ पाए थे। यह युद्ध का प्रभाव था कि लोगों ने इस युद्ध पर पुनर्विचार किया तथा शांति की मांग शुरू कर दी।

23.3 युद्ध की प्रक्रिया

हम युद्ध अथवा मुख्य आंदोलनों की प्रक्रिया की विस्तार से चर्चा नहीं करेंगे। परन्तु आपको यह जान लेना चाहिए कि ऑस्ट्रिया ने सरबिया में हुई हत्या को युद्ध का कारण बताया और उसने इसका बदला लेने का निर्णय लिया तो इसके त्रिपक्षीय सहयोगी राष्ट्र जर्मनी और इटली इसके पक्ष में आ गए तथा अन्य शक्तियां (ब्रिटेन, फ्रांस और रूस) विरोधी पक्ष में आ गईं।

जर्मनी ने फ्रांस की ओर सेनाएं भेजीं तथा ऐसा प्रतीत हुआ कि उसे सफलता प्राप्त हो रही है, तब रूस ने पूर्व से जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया पर आक्रमण किया। इस तरह यह युद्ध काफी जटिल हो गया। जमीन पर, खाइयों में युद्ध लगातार चार वर्षों तक चला, क्योंकि दोनों ही पक्ष बराबर थे। खाइयां खोदने के लिए उपनिवेशों के श्रमिकों का उपयोग किया गया। तत्पश्चात यह युद्ध एशिया और अफ्रीका के क्षेत्रों में फैल गया।

इस युद्ध में प्रौद्योगिकी के उपयोग का अर्थ था, सभी राष्ट्रों के अधिक से अधिक लोगों का हताहत होना। उदाहरण के लिए, सोमी के युद्ध के पहले दिन 60,000 ब्रिटिश सैनिक मारे गए थे अथवा घायल हुए थे।

इस युद्ध की प्रक्रिया के दौरान इटली ने पक्ष बदल लिया। अप्रैल 1917 में अमरीका ने भी जर्मनी से युद्ध की घोषणा कर दी। इस स्थिति में रूस साम्राज्य का क्रांतिकारी आंदोलन निर्णायक घटक था।

अक्तूबर, 1917 में रूसी क्रांति सफल हुई और जब वहाँ कम्युनिस्ट सत्ता में आए तो रूस युद्ध से अलग हो गया। उन्होंने मार्च 1918 में जर्मनी के साथ शांति संधि पर हस्ताक्षर किए। यह संधि रूस के लिए बहुत अप्रिय थी, परन्तु रूस में लेनिन के नेतृत्व वाली नई सरकार इससे सहमत थी, क्योंकि वे शुरू से ही युद्ध का विरोध कर रहे थे।

ये जटिल मामले न सिर्फ जर्मनी, बल्कि ब्रिटेन और फ्रांस के लिए भी थे, नया रूस बड़ा दुश्मन प्रतीत होता था, क्योंकि वे मूल रूप से साम्यवाद के विरोधी थे।

अतः 1918 के प्रारंभ से युद्ध की नियति बदली और जर्मन सेनाओं ने बदला लेना शुरू किया, तो ब्रिटेन तथा फ्रांस शांति के लिए सहमत हो गए। जर्मनी के कामगारों ने उसी प्रकार क्रांति की धमकी दी, जिस प्रकार से रुस के कामगारों ने दी थी। नवम्बर, 1918



आपकी टिप्पणियाँ

में युद्ध विराम लागू हुआ और तत्पश्चात सभी शक्तियों ने मिलकर रूस में क्रांति को असफल बनाने के लिए अपनी ताकत लगा दी। इस बारे में आप अगले भाग में कुछ और जान सकेंगे।

पाठगत प्रश्न 23.1

1. प्रथम विश्व युद्ध में कौन–कौन से नए हथियार उपयोग में लाए गए थे?

2. 1914 तक किए गए दो मुख्य अंतर्राष्ट्रीय सहयोगों के नाम बताइए।

3. प्रथम विश्व युद्ध से कितने लोग प्रभावित हुए थे?

4. प्रथम विश्व युद्ध में भारतीय सैनिकों ने किसकी ओर से युद्ध किया था।

23.4 रूसी क्रांति, 1917

इस युद्ध के समाप्त होने से पहले 1917 में रूसी क्रांति आई थी। यह बोल्शेविक क्रांति के रूप में भी जानी जाती है, क्योंकि राजनीतिक समूह के रूप में बोल्शेविक ने इस क्रांति को सफल बनाने और इसकी नीतियों को भी निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

यह इतिहास में पहली समाजवादी क्रांति थी और यह साम्यवादी आदर्शों से प्रेरित थी। पिछले पाठों में आप यह पढ़ चुके हैं कि साम्यवाद कैसे पूंजीवाद की तुलना में अधिक समानता और सामाजिक न्याय प्रदान करता है। यह क्रांति कामगारों–श्रमिक वर्ग और किसानों के आंदोलनों के परिणामस्वरूप आई।

1917 तक रूसी साम्राज्य लंबे युद्ध के परिणामों और देश के भीतर चल रहे राजनीतिक तथा सामाजिक आंदोलनों के दबाव में था। फरवरी 1917 तक रूस बहु–राष्ट्रवादी साम्राज्य था जिस पर तानाशाह द्वारा शासन किया जाता था, जो जार के रूप में जाना जाता था। इसका राज्य क्षेत्र विशाल था। इसमें मध्य एशिया का बड़ा भाग और पूर्वी यूरोप के भाग सम्मिलित थे। संस्थानों के कोई प्रतिनिधि नहीं थे, यहां कोई भी राजनीतिक अथवा व्यापारिक संगठन बनाने का अधिकार नहीं था। यहां चुनाव नहीं होते थे। कड़ी सेंसरशिप थी और लोगों को मनमाने तरीके से बंदी बना लिया जाता था। यहां कोई धार्मिक सहिष्णुता नहीं थी, इस साम्राज्य में दूसरे देशों के लोगों और अल्पसंख्यकों को रूस के नागरिकों के बराबर अधिकार प्राप्त नहीं थे क्योंकि जार, निकोलस द्वितीय रूसी रोमनोव वंश का था। जार ने यूरोप के सभी प्रजातांत्रिक आंदोलनों के विरुद्ध अपनी सैन्य और कूटनीतिक ताकत का उपयोग किया। इसके लिए यह यूरोप के सिपाही के रूप में जाना जाता है। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पश्चिमी यूरोप की तुलना में ये परिस्थितियां काफी कष्टकर तथा बहुत भिन्न थीं।



23.5 प्राचीन और नवीन

यद्यपि राजनीतिक प्रणाली निरंकुश बनी हुई थी तथापि अर्थव्यवस्था और समाज में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे, जिनसे नई महत्त्वाकांक्षाएं सृजित हुईं। नए विचार विकसित हुए तथा समाज के कई वर्ग जार के अत्याचारी शासन से असंतुष्ट थे। चूंकि उनके पास कोई संसदीय प्रणाली अथवा चुनाव नहीं थे जिनके माध्यम से वे जार की नीतियों के प्रति अपना विरोध व्यक्त कर सकते, इसलिए उन्हें क्रांति का मार्ग अपनाना पड़ा। समाज को प्रभावित करने वाली नीतियां बनाने के लिए उन्हें तानाशाही प्रणाली समाप्त करनी पड़ी। यूरोप के अन्य देशों और रूसी साम्राज्य में यह बहुत बड़ा अंतर था।

23.6 कृषि तथा असंतुष्ट किसान

किसान भी बहुत अधिक असंतुष्ट थे। पश्चिमी और मध्य यूरोप की तरह रूसी साम्राज्य में भी कृषक–दास स्वतंत्र थे हालांकि ऐसा बहुत बाद में 1861 के अंत में जाकर हुआ। इस भू–सुधार के बावजूद भू–अभिजात वर्ग मजबूत बना हुआ था और उसने किसानों का दमन करना जारी रखा था। साथ ही कृषकों के पास पर्याप्त भूमि भी नहीं थी। जनसंख्या का 80 प्रतिशत किसान थे, परन्तु उनके पास मुश्किल से 50 प्रतिशत भूमि थी। इस प्रकार भूमि की मांग जार के विरुद्ध क्रोध का मुख्य कारण थी क्योंकि उसने अपर्याप्त भू–सुधार द्वारा उन्हें निराश किया।

साथ ही मुक्त किसानों को भूमि और स्वतंत्रता के लिए भारी खामियाजा भुगतना पड़ा, क्योंकि जार बड़े जमींदारों को जरूरत से ज्यादा मुआवजा देकर उनसे सद्भाव और सहयोग बनाए रखना चाहता था। किसानों को भारी कीमत चुकानी पड़ी, जिससे वे हमेशा के लिए कर्जदार हो गए और उन्हें जमींदारों के लिए कम मजदूरी पर काम करने के लिए मजबूर होना पड़ा। किसानों पर करों का भी बहुत भार था।

कृषि हमेशा पिछड़ी रही, क्योंकि किसानों के पास इतना धन नहीं था कि वे अपनी भूमि सुधारने के लिए निवेश कर सकें और जमींदार सोचते थे कि मशीनें खरीदने के लिए क्यों पैसा खर्च किया जाए क्योंकि कम मजदूरी पर कृषक–श्रमिक मिल जाते थे।

किसानों के हित के सभी मामलों में अभिजात वर्ग ने जमींदारों का पक्ष लिया तथा किसानों के विद्रोहों को दबाने के लिए सेना भेजी। चूंकि कृषि रूसी अर्थव्यवस्था का मुख्य क्षेत्र थी और किसानों की जनसंख्या भी अधिक थी इसलिए कृषि का पिछड़ापन और किसानों का असंतोष इस क्रांति के मुख्य घटक बन गए। 19वीं शताब्दी के दौरान किसानों के विद्रोह जारी थे और 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में ये सामान्य क्रांतिकारी आंदोलन के हिस्से बन गए।

23.7 औद्योगिकीकरण और श्रमिकों का असंतोष

रूसी साम्राज्य में श्रमिकों का आंदोलन यूरोप के अन्य भागों की तुलना में सशक्त तथा ज्यादा राजनीतिक था। यह यहाँ के औद्योगिकीकरण के स्वरूप और राजनीतिक परिस्थितियों से संबंध रखता था। पश्चिमी यूरोप की तुलना में रूस में औद्योगिकीकरण विलंब से आया था, लेकिन यह काफी तीव्र था। इसका अर्थ था कि यहाँ औद्योगिकीकरण की प्रारंभिक अवस्थाओं में विशाल श्रमिकों वाली कई बड़ी–बड़ी फैक्टरियां थीं। श्रमिक वर्ग के आंदोलन पश्चिमी यूरोप के देशों की तुलना में यहां तीव्र गति से विकसित हुए और



आपकी टिप्पणियाँ

यहां पूंजीवादी कमजोर हो गए। वे श्रमिक वर्ग के आंदोलन के समक्ष अपनी शक्ति को संचित नहीं कर पाए थे। 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में अनेक हड़तालें हुई तथा 1905 तक श्रमिकों ने क्रांतिकारी आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

रूसी साम्राज्य में श्रमिकों का आंदोलन अन्य देशों की तुलना में कहीं अधिक उग्रवादी तथा राजनीतिक था। यह दोनों तरह से अभिजात वर्ग के विरुद्ध था, जो उन्हें संगठन बनाने की अनुमति नहीं देता था और उनके नियोक्ताओं का पक्ष लेता था और श्रमिकों का आंदोलन उन नियोक्ताओं के खिलाफ था, जो फैक्टरियों के स्वामी थे और उनकी न्यूनतम मजदूरी तथा खराब कार्य की परिस्थितियों के लिए जिम्मेवार थे। उनका आंदोलन अन्य राष्ट्रों की तुलना में साम्यवाद की ओर अधिक उन्मुख था।

20वीं शताब्दी के प्रथम दशक तक महिलाओं की श्रमिक वर्ग और श्रमिक वर्ग के संगठनों में भागीदारी अच्छी–खासी थी। जिसके परिणामस्वरूप उनसे संबंधित मामले श्रमिकों के अधिकारों और महिलाओं की समानता विषयक चर्चाओं में प्रतिबिंबित होना शुरू हो गए थे। श्रमिक महिलाएं बड़ी संख्या में श्रमिक वर्ग के आंदोलनों में भाग लेने लगी थीं।

23.8 राष्ट्रीयताओं के बीच असंतोष

रूसी रोमेनोव राजवंश और अन्य राष्ट्रीय प्रदेशों में लगभग औपनिवेशिक संबंध थे इसलिए रूसी प्रदेशों में उद्योगों के विकास हेतु कच्चे माल के स्रोत के रूप में इन क्षेत्रों का उपयोग किया जाता था। आपको स्मरण होगा कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत भारत के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ था। रूसी अभिजात वर्ग को समाप्त करने में काकेशियंस, पॉलिश, कजाख, लाटविएस, ऐस्टोनियंस जैसे राष्ट्रों और अन्य राष्ट्रों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

23.9 नेतृत्व तथा दूरदृष्टि

क्रांतिकारी आंदोलन को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि समर्पित नेतृत्व होना चाहिए, निश्चित आदर्शों द्वारा इसका मार्गदर्शन किया जाना चाहिए और परिवर्तन का एक कार्यक्रम होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, लोग विध्वंसकारी नहीं होने चाहिए, उनके पास ऐसा विचार होना चाहिए कि वे क्या निर्माण करना चाहते हैं। वे ऐसे संगठनों का गठन करने में समर्थ होने चाहिए जो उनके आंदोलनों को आगे बढ़ा सकें।

20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कई राजनीतिक समूह सक्रिय थे, परन्तु वे गैर कानूनी थे और वे गुप्त रूप से कार्य करते थे, जार के सिपाही उनकी खोज में लगे रहते थे और पकड़े जाने पर उन्हें कड़ी यातना और दंड दिया जाता था। तथापि उन्होंने राजनीतिक शिक्षा, राजनीतिक प्रचार–प्रसार और आंदोलनों के माध्यम से लोगों विशेष रूप से श्रमिकों और किसानों में चेतना का निर्माण करने में नेतृत्वपूर्ण और महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस आधार पर समाज के सभी वर्गों श्रमिकों, किसानों और सैनिकों, विद्यार्थियों, और अध्यापकों, सभी प्रकार के कर्मचारियों और महिलाओं के लाखों संगठनों का गठन किया गया। इनमें से कई संगठनों के राजनीतिक पार्टियों से घनिष्ठ संबंध थे और ये राजनीतिक चर्चाओं और विचारों के लिए प्रतिक्रियाशील थे।

सन 1917 में महिला संगठनों ने श्रमिक संगठनों के समान कामकाजी महिलाओं के हितों को प्रतिबिंबित करना प्रारंभ कर दिया था, तथापि महिलाओं के इस तरह से ध्यान आकृष्ट करने हेतु लगातार संघर्ष करना पड़ा। हालांकि जन आंदोलनों में महिलाओं की अत्यधिक भागीदारी होती थीं, तथापि अभी तक बहुत कम महिलाएं नेतृत्व करने की स्थिति में थीं।

महत्त्वपूर्ण राजनीतिक समूह जनवादी (19वीं शताब्दी के अंत में) और साम्यवादी क्रांतिकारी, विभिन्न प्रकार के उदारवादी तथा सामाजिक लोकतंत्रवादी (मार्क्सवादी) थे। सामाजिक लोकतंत्रवादियों की दो पार्टियां थीं – होल्शेविक (अर्थात रूस में बहुमत वाली) और मेंशेविक (अर्थात अल्पसंख्यक)। आपस में मतभेदों के परिणामस्वरूप अलग होने के बाद इनके ये नाम पड़े। इन समूहों में क्रांति लाने और रूसी समाज तथा राजनीतिक प्रणाली में परिवर्तन लाने के संबंध में विभिन्न विचारधाराएं थीं।

लेनिन 1917 की रूसी क्रांति का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण नेता था। दूसरा त्रोत्स्की था। दोनों ही बोल्शेविक थे। तथापि यह कहना उचित होगा कि यहां भी हजारों पुरुष और महिलाएं महत्त्वपूर्ण नेता थे जैसा कि हमारे स्वतंत्रता आंदोलन में थे। उनके प्रयासों वीरता और बलिदानों के बिना क्रांति सफल नहीं हो सकती थी।

23.10 क्रांति के चरण

19वीं शताब्दी में रूसी क्रांतिकारी आंदोलन का उस समय विकास हुआ जब अभिजात वर्ग के कुछ सदस्यों ने यह महसूस करना शुरू कर दिया था कि जार की राजनीतिक प्रणाली अत्यधिक कष्टकर थी और रूसी समाज भी अन्यायपूर्ण था। उन्होंने विशेष रूप से कृषकों की हालत के बारे में सोचा। रूस कैसे प्रगति कर सकता था, जबकि उसके ज्यादातर लोगों की हालत इतनी खराब हो? अभिजात वर्ग के इन सदस्यों और नए उभरे मध्यमवर्ग ने बुद्धिजीवी वर्ग का गठन किया जो रूसी समाज तथा राजनीतिक प्रणाली की आलोचना करता था तथा इसके रूपांतरण के लिए काम करता था। इन्होंने गुप्त समाजों तथा छोटे राजनीतिक समूहों का निर्माण किया। ये कड़ी सेंसरशिप और राजनीतिक गतिविधि पर प्रतिबंध होने के कारण अपने विचारों का प्रचार–प्रसार करने के लिए खुले तौर पर आंदोलन अथवा काम नहीं कर सकते थे, इसलिए ये समर्पित क्रांतिकारी बन गए। इन्होंने संविधान और चुनावों की मांग की। कई महिलाएं सक्रिय क्रांतिकारी थी। जब वे पकड़ी जाती थीं तो उन्हें क्रूरता से दंड दिए जाते थे। इसके बावजूद भी आंदोलन आगे बढ़ रहा था।

जैसे ही श्रमिक और किसान अपनी जिंदगी के अन्यायों के लिए लड़ने हेतु आश्वस्त हो गए, उन्होंने अभिजात वर्ग के विरुद्ध भी संघर्ष करना शुरू कर दिया। जब इनका संपर्क क्रांतिकारियों से हुआ, तो दोनों आंदोलन और तीव्र हो गए। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में रूसी क्रांतिकारी आंदोलन व्यापक आधार वाला आंदोलन हो गया था, तथा 'क्रांति' एक नारा बन गई।

एकतंत्र पर पहला मुख्य जन आक्रमण 1905 में हुआ। यह महत्त्वपूर्ण क्रांतिकारी विद्रोह असफल रहा और इन आंदोलनों को दबा दिया गया। परन्तु क्योंकि लोग इस अनुभव से बहुत सारी महत्त्वपूर्ण सीख ले चुके थे, इसलिए बाद में लेनिन ने 1917 की क्रांति के लिए इसे 'पूर्वाभ्यास' का नाम दिया था। मुख्य माँगों में प्रजातांत्रिक गणराज्य, पूर्ण मताधिकार,



किसानों हेतु भूमि, श्रमिकों के लिए अधिक मजदूरी और कम कार्य–समय सम्मिलित थे। महिला की समानता, विभिन्न नागरिकताओं हेतु स्वनिर्धारण तथा मृत्युदंड समाप्त करने संबंधी अन्य माँगे थीं। पहली बार वहाँ आम हड़ताल हुई। सेना और नौसेना की टुकड़ियों ने भी विद्रोह कर दिया। सोवियत के रूप में प्रसिद्ध श्रमिक वर्ग के क्रांतिकारी संगठन का गठन किया गया। इसने क्रांति में अग्रणी भूमिका निभाई।

इसके बाद कई वर्षों तक दमन चलता रहा, परन्तु प्रथम विश्व युद्ध के बाद यह क्रांतिकारी आंदोलन पुनः सक्रिय हो गया और इसमें वे लोग पुनः सम्मिलित हो गए जिनमें से ज्यादातर लोगों ने युद्ध के प्रभाव को सीधे तौर पर महसूस करना और जार की नीतियों की प्रकृति को समझना प्रारंभ कर दिया था। कठपुतली के समान मंत्रिमंडल कार्य नहीं करता था तथा कमजोर संसद (दुमा) जन आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर सकती थी।

1917 तक रूसी साम्राज्य के ज्यादातर लोगों ने निरंकुश वर्ग को हटाने तथा मुद्दों को अपने हाथों में लेने का निर्णय लिया। इस वातावरण में ब्रेड की कमी के कारण फरवरी क्रांति शुरू हुई और महिलाओं ने प्रदर्शन किया जिसमें उन्होंने उनका दमन करने वाले जार के बजाय अपने भाइयों और बहिनों की सहायता करने के लिए सैनिकों का आह्वान किया। इस युद्ध से ऊबे हुए सैनिकों ने भी विद्रोह करने वाले लोगों पर गोलियां नहीं चलाई।

कुछ दिनों बाद मांग आई 'एकतंत्र मुर्दाबाद'। राजधानी शहर सेंट पीटर्सबर्ग की गलियों में लाल झंडों का प्रभुत्व कायम हो गया तथा साम्राज्य का सारा क्षेत्र क्रांति के नारों से गूंजने लगा। एकतंत्र को समाप्त कर उसके स्थान पर अस्थायी सरकार बनाई गई। श्रमिकों और किसानों ने इस परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा बुर्जुआ वर्ग ने इसका समर्थन किया। यहां तक कि सैनिकों ने भी क्रांतिकारी ताकतों का पक्ष लिया। सेंट पीटर्सबर्ग का नाम बदलकर पेट्रोग्रेड कर दिया गया।

इस अस्थायी सरकार ने राजनीतिक स्वतंत्रता हेतु शर्ते बनाई जैसे संगठनों का गठन करने का अधिकार तथा वाक् स्वतंत्रता, परन्तु इसने लोगों को प्रभावित करने वाली नीतियों में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया। यह ऐसा नहीं कर सकती थी क्योंकि इस सरकार में जमींदार और पूंजीपति के हितों को प्रस्तुत करने वाली पार्टियों का प्रभुत्व था अतः बोल्शेविक पार्टी के साथ श्रमिकों, सैनिकों और किसानों ने अपने आंदोलनों को जारी रखा जो 1917 की अक्तूबर बोल्शेविक क्रांति की पराकाष्ठा पर पहुँचा।

1917 में लोगों की आकांक्षाओं के अनुसार बोल्शेविक ही एकमात्र राजनीतिक समूह था। उन्होंने युद्ध को तत्काल समाप्त करने का आह्वान किया; उन्होंने किसानों के लिए जमीन, उद्योगों पर श्रमिकों के नियंत्रण तथा स्वाधीनता हेतु नागरिकता के अधिकार की मांग की। संपूर्ण राष्ट्र के श्रमिकों, किसानों और सैनिकों के सभी जन संगठनों में शांति! रोटी! भूमि! प्रजातंत्र! नारे बन गए तथा बोल्शेविकों को इन संगठनों में बहुमत में होने के कारण उन्हें इनका नेतृत्व करने के लिए चुना गया'

अक्तूबर 1917 की क्रांति का जनाधार था और अस्थायी सरकार को समाप्त करने के लिए यह कोई सामान्य सैन्य तख्ता पलट नहीं था। आपको स्मरण होना चाहिए कि हालांकि यह अक्तूबर क्रांति के नाम से प्रसिद्ध है किंतु यह क्रांति 7 नवंबर, 1917 को हुई और इसे 7 नवम्बर को मनाया गया क्योंकि इस क्रांति के बाद रूस ने अंतर्राष्ट्रीय

कैलेंडर अपनाया। इससे पहले रूस अपने स्वयं के कैलेंडर का उपयोग कर रहा था जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उपयोग में लाए जा रहे कैलेंडर से 10 दिन पीछे था।

23.11 इस क्रांति की नीतियाँ और प्रभाव

क्रांतिकारी रूस ने न सिर्फ जार की रूस संबंधी नीतियों को बदल दिया बल्कि इसने और भी कई कार्य किए जो यूरोप के पूँजीवादी राष्ट्रों में मौजूद चीजों से भिन्न और अधिक थे। इसकी नीतियों ने रूस में साम्यवाद की नींव डाली।

इस बात को अच्छी तरह से जानते हुए कि लोग युद्ध से थक चुके थे और वे शांति चाहते थे तथा यह युद्ध किसी भी राष्ट्र के लोगों के हित में नहीं था, उसका सबसे पहला कार्य इस युद्ध से हटना था।

बोल्शेविकों ने उत्पादन साधनों, अर्थात भूमि, फैक्टरियों, और बैंकों में निजी सम्पत्ति समाप्त कर दी, इन सबको राष्ट्रीयकृत कर दिया गया तथा अब ये राज्य के स्वामित्व में थीं, न कि निजी स्वामित्व में। इसका अर्थ हुआ कि वे दूसरों की मेहनत का शोषण करने के आदी नहीं हो सकते तथा निजी लाभ प्राप्त नहीं कर सकते। निर्णय लेने वाली प्रक्रियाओं में श्रमिक संगठनों का बोलबाला होता था।

नवम्बर 1917 की भूमि डिक्री के माध्यम से जमींदारी समाप्त कर दी गई थी और पैतृक उपयोग के लिए भूमि किसानों को सौंप दी गई। किसान इस भूमि को बेच नहीं सकते थे अथवा गिरवी नहीं रख सकते थे अथवा दूसरों की मेहनत का शोषण करने के लिए इसका उपयोग नहीं कर सकते थे परन्तु वे अपनी भूमि के स्वामी थे और इस भूमि से अपनी मजदूरी और उत्पादन का पूरा लाभ उठा सकते थे। वे किसी भी तरह से पूर्ववर्ती जमींदारों पर निर्भर नहीं थे। ग्रामीण अर्थव्यवस्था और समाज पर से जमींदारो की शक्तियां समाप्त कर दी गई थीं।

इन उपायों का अर्थ था कि रूस के लोग देश के संसाधनों और अर्थव्यवस्था से समान रूप से लाभान्वित थे। सभी भागों और वर्गों के लोगों के लाभ के लिए केन्द्रीय रूप से योजना बनाना भी अब संभव हो गया था। केन्द्रीयकृत योजना बनाने की इस प्रणाली को महत्त्वपूर्ण समझा गया तथा भारत सहित कई राष्ट्रों द्वारा इसे अपनाया गया।

नए संविधान में निःशुल्क चिकित्सा सुविधा, सभी को निःशुल्क तथा समान शिक्षा, बेरोजगारी भत्ता, संस्कृति और सांस्कृतिक प्रगति के लिए समान पहुंच की गारंटी दी गई थी। यह सब कुछ तत्काल उपलब्ध नहीं था, परन्तु सबके लिए इसका अधिकार बनाकर नए शासन ने अपनी नीति और वचनबद्धता के दिशा–निर्देश स्पष्ट रूप से दर्शाए। वेतन तथा राज्य द्वारा उपलब्ध कराई गई सुविधाओं की पात्रता दोनों के अनुसार अन्य देशों की तुलना में मध्य वर्ग के काम करने वाले लोगों और खेतों अथवा फैक्टरियों में काम करने वाले लोगों में कोई ज्यादा अंतर नहीं था। जीवन स्तर इस बात पर निर्भर नहीं था कि किसी व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप से कितना भुगतान करना पड़ सकता है, क्योंकि बहुत सारी चीजों के लिए भुगतान करना ही नहीं पड़ता।

महिलाओं को समान नहीं समझा जाता था इसलिए सामाजिक और राजनीतिक जीवन में उनकी समान भागीदारी संभव बनाने के लिए मातृत्व छुट्टी, सरकारी कैंटीनों, कार्य स्थलों आदि में निःशुल्क पालना घर खोलने संबंधी उपाय किए गए।



आपकी टिप्पणियाँ

वे अपनी स्थिति को 'श्रमिक वर्ग की तानाशाही' समझते थे, क्योंकि काम करने वाले साधारण लोग और उनका कल्याण राजनीतिक तथा नीतियों पर आधारित था।

नई शासन प्रणाली ने औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध स्वतंत्रता संघर्षों को नैतिक तथा भौतिक सहायता प्रदान की तथा सभी राष्ट्रों को अपने भविष्य का निर्धारण करने के अधिकार को मान्यता प्रदान की। इस कारण से सभी एशियाई देशों में रूसी क्रांति की प्रशंसा की गई तथा संपूर्ण विश्व में लोग इससे प्रेरित हुए। चीन और भारत रूसी क्रांति से अत्यधिक प्रभावित हुए। इससे साम्यवादी विचारधाराओं का प्रचार हुआ था।

भारत के राष्ट्रीय नेताओं ने राजनीतिक संघर्षों में किसानों और श्रमिकों के हस्तक्षेप के महत्त्व को जाना। भारत के लोगों ने अनुभव किया कि रूस में 'किसान मजदूर राज' की स्थापना की गई है। अतः 1920 में श्रमिकों और किसान पार्टियों, ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस का गठन हुआ तथा भारत में श्रमिकों और किसानों को संगठित करने के प्रयासों में वृद्धि हुई।

तथापि साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने इस क्रांति का विरोध किया और उन्होंने नई बोल्शेविक शासन प्रणाली को पराजित करने के लिए अपनी सेनाएं भेजी। वे सफल नहीं हुए तथा नई क्रांतिकारी शासन प्रणाली मुख्य रूप से लोगों की सहायता और क्रांतिकारियों के आत्मबलिदानों के कारण बची रही। रूसी क्रांति और प्रथम विश्व युद्धकी समाप्ति के बाद रूस और यूरोप में क्या हुआ यह एक अलग कहानी है, जिसके बारे में आप अगले पाठ में पढ़ेंगे।

पाठगत प्रश्न 23.2

1. इस क्रांति से पहले रूस में कौन–सी राजनीतिक प्रणाली थी?

2. 1917 की रूस की क्रांति के दूसरे किस नाम से रूप में जाना जाता है?

3. जार के समकालीन रूस के महत्त्वपूर्ण राजनीतिक समूहों के नाम लिखिए?

4. निजी सम्पत्ति की समाप्ति का क्या अर्थ है?

आपने क्या सीखा

प्रथम विश्व युद्ध इतिहास के पिछले युद्धों से बिलकुल भिन्न था, क्योंकि इसकी हिंसा और पीड़ा से सारा विश्व प्रभावित हुआ था। युद्ध में नई प्रौद्योगिकियों का उपयोग किया गया था, जिन्हें पहले नहीं देखा गया था और इसका जीवन के सभी पहलुओं पर प्रभाव पड़ा।

इस युद्ध के कारण तात्कालिक तथा दीर्घावधि के थे। उपनिवेशों हेतु होड़, विश्व के संसाधनों पर नियंत्रण करना इसके मुख्य कारण थे। यह युद्ध 1914 से 1918 तक चलता रहा तथा जर्मनी और सहयोगी राष्ट्रों की पराजय के बाद समाप्त हुआ। इसके समाप्त होने से पहले 1917 में रूस की क्रांति हो चुकी थी। रूस की क्रांति युद्ध के दबाव और रूसी समाज में चल रहे संघर्षों के कारण आई। यह इतिहास में पहली साम्यवादी क्रांति थी।

इसके तीन चरण थे : 1905 की क्रांति जो असफल रही; फरवरी 1917 की क्रांति के परिणामस्वरूप अभिजात वर्ग की समाप्ति; और अक्तूबर 1917 की क्रांति जिसका नेतृत्व बोल्शेविकों ने किया। इसने साम्यवादी राष्ट्र की स्थापना की।

इस क्रांति ने सामाजिक न्याय पर आधारित नई सामाजिक और राजनीतिक प्रणाली बनाई। अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाले राष्ट्रों सहित शेष विश्व पर इसका अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

पाठांत प्रश्न

1. जार कालीन रूस की राजनीतिक प्रणाली का उल्लेख कीजिए? किसान अभिजात वर्ग से असंतुष्ट क्यों थे?
2. विभिन्न राष्ट्रों ने विद्रोह क्यों किया?
3. 1905 की क्रांति क्यों महत्त्वपूर्ण थी?
4. रूस में फरवरी 1917 में क्या हुआ?
5. बोल्शेविकों द्वारा लाए गए मुख्य परिवर्तन के बारे में लिखिए। क्या आप समझते हैं कि ये रूस के लोगों के हित में थे?
6. भारत पर इस क्रांति के प्रभाव के बारे मे लिखिए?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

23.1

1. हवाई जहाज, टैंक और पनडुब्बियां
2. त्रिपक्षीय संधि, त्रिपक्षीय सहयोग
3. 10 लाख मरे, 20 लाख घायल हुए, लाखों शरणार्थी हो गए
4. ब्रिटेन

23.2

1. एकतंत्र



आपकी टिप्पणियाँ

2. बोल्शेविक क्रांति
3. सामाजिक लोकतंत्रवादी, उदारवादी, समाजवादी क्रांतिकारी
4. उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व था।

पाठान्त प्रश्नों हेतु संकेत

1. 23.4 अनुच्छेद 2 देखें
2. 23.8 देखें
3. 23.10 अनुच्छेद 3 देखें
4. 23.10 अनुच्छेद 5 तथा 6 देखें
5. 23.11 अनुच्छेद 1–7 देखें
6. 23.11 अनुच्छेद 9 तथा 10 देखें

शब्दावली

1. **निरंकुशता** - एकतंत्र ऐसी राजनीतिक प्रणाली जिसमें राजा शासन करता है, जिसके पास सभी शक्तियां होती हैं और जिसमें ऐसा कोई प्रभावशाली प्रतिनिधि संस्थान नहीं होता जो राजनीतिक शक्ति में भागीदारी कर सके।
2. **सामाजिक लोकतंत्र** - जिनका ऐसा मानना था कि मात्र राजनीतिक और विधि समानता ही पर्याप्त नहीं है, परन्तु आर्थिक और सामाजिक समानता भी होनी चाहिए। अतः वे साम्यवाद में विश्वास रखते थे।
3. **पूंजीवाद** - निजी सम्पत्ति और बाजार के अधिकारों पर आधारित प्रणाली है और इसमे निजी लाभ भी होता है। इसमें सम्पत्ति का स्वामी इस पर काम करने वाले श्रमिक के शोषण से अपना लाभ प्राप्त करता है।
4. **साम्यवाद** - ऐसी प्रणाली, जिसमें उत्पादन के साधनों पर राष्ट्र का स्वामित्व होता है ताकि श्रम करने वाले श्रमिक का कुछ लोगों के निजी लाभ के लिए शोषण न किया जा सके और इसमें ऐसी राजनीतिक प्रणाली होती है, जिसमें श्रमिक के हित का पहले ध्यान रखा जाता है।



24

अंतर-युद्ध अवधि और द्वितीय विश्व युद्ध

बीसवीं शताब्दी का प्रथम पूर्वार्द्ध इतिहास में विश्व युद्धों के युग के रूप में जाना जाता है। प्रथम विश्वयुद्ध को कई लोगों द्वारा 'सभी युद्धों को समाप्त करने वाला युद्ध' समझा गया। तथापि अगले बीस वर्षों में हुए परिवर्तनों से विश्व एक और युद्ध की ओर धकेला गया, जो अधिक विध्वंसकारी, अधिक व्यापक तथा बहुत बड़े पैमाने पर था। इस युद्ध के प्रारंभ होने के कारणों को समझने के लिए हमें अंतर–युद्ध अवधि का विस्तार से अध्ययन करने की आवश्यकता है।

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति से यूरोप के देशों में प्रतिद्वंद्विता समाप्त नहीं हुई थी। यहाँ तक कि शांति संधियाँ भी शांति सुनिश्चित कराने में असफल रहीं। ये संधियाँ पराजित राष्ट्रों के प्रति कठोर थीं और इस प्रकार इन्होंने भावी संघर्षों के बीज बोए। इसी तरह संधियाँ कुछ मित्र राष्ट्रों की राज्यों संबंधी आकांक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ रहीं। कई राष्ट्रों में शक्तिशाली तानाशाहों ने सत्ता पर कब्जा कर लिया और उग्र राष्ट्रीयता का संदेश फैलाया। सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह था कि युद्ध के मूल कारण साम्राज्यवाद को समाप्त नहीं किया गया था।

रूसी क्रांति और सोवियत संघ के आविर्भाव से विश्व दो समूहों में विभाजित हो गया–पहले समूह में इस क्रांति का समर्थन करने वाले थे और दूसरे समूह में इसके प्रभावों से डरने वाले सम्मिलित थे। पश्चिमी यूरोप के ज्यादातर राष्ट्र दूसरे समूह से संबंध रखते थे। वे समाजवाद को अपनी सामाजिक एवं आर्थिक प्रणालियों के लिए धमकी मानते थे। सोवियत रूस भी साम्राज्यवाद विरोधी था और यह एशिया तथा अफ्रीका के औपनिवेशिक देशों में स्वतंत्रता संघर्षों को समर्थन देता था। इस पाठ में आप यह जान पाएँगे कि इन सबने मिलकर किस प्रकार से दूसरे विश्व युद्ध की परिस्थितियाँ तैयार कीं।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- इन शांति–संधियों और यूरोप के बदले हुए मानचित्र का विश्लेषण कर सकेंगें;
- सर्वसत्तात्मक शासन प्रणालियों–इटली, जर्मनी और जापान के उदय का पता लगा सकेंगें;
- संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत समाजवादी संघ गणराज्य पर अत्यधिक दबाव के प्रभावों की व्याख्या कर सकेंगे,
- आक्रमण और तुष्टीकरण में सह–संबंध स्थापित कर सकेंगे, तथा



आपकी टिप्पणियाँ

- युद्ध प्रक्रिया का उल्लेख कर सकेंगे।

24.1 शांति संधियाँ

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पेरिस में हुए सम्मेलन में शांति संधियों पर हस्ताक्षर करने के साथ हुई। इस सम्मेलन में उपस्थित महत्त्वपूर्ण नेताओं में अमरीका के राष्ट्रपति वुड्रो विलसन, ब्रिटेन के प्रधानमंत्री लॉयड जॉर्ज और फ्रांस के प्रधानमंत्री जॉर्ज क्लेमन्सू सम्मिलित थे।

राष्ट्रसंघ

इस शांति सम्मेलन का सबसे पहला काम 'अंतर्राष्ट्रीय सहयोग, शांति और सुरक्षा' को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्र संघ नामक विश्व संगठन बनाने संबंधी निर्णय था। इस संघ के प्रतिज्ञापत्र (औपचारिक समझौते) को अप्रैल, 1919 में अनुमोदन प्रदान किया गया।

इस समझौते में सभी सदस्यों को शांति के हित में युद्ध सामग्री में कमी लाना आवश्यक था। यदि कोई सदस्य राष्ट्र युद्ध का सहारा लेगा तो उस राष्ट्र के विरुद्ध सामूहिक रूप से कार्रवाई की जाएगी। आक्रमण करने वाले राष्ट्र के साथ व्यापार संबंध भी समाप्त कर दिए जाएंगे तथापि यह राष्ट्र संघ कभी प्रभावी संगठन नहीं हो सका। दो राष्ट्रों–सोवियत संघ एवं जर्मनी को कई वर्षों तक इसका सदस्य बनने की अनुमति नहीं दी गई। संघ के निर्माण में अग्रणी भूमिका निभाने के बावजूद अमरीका ने इसमें सम्मिलित न होने का निर्णय लिया। अतः 1930 में जब आक्रमण शुरू हुआ तो संघ इसे रोकने में असफल रहा।

वर्साय की संधि

शांति संधियाँ राष्ट्रपति विल्सन के शांति प्रस्तावों अथवा चौदह सूत्रों, जिनमें शांति, स्वतंत्रता, प्रजातंत्र, स्वाधीनता, स्वसंकल्प इत्यादि (अपनी स्वयं की सरकार में अपनी बात स्थापित करने का अधिकार) स्थापित करने संबंधी वायदे पर आधारित होती थीं। परन्तु जर्मन के साथ वर्साय की संधि पर हस्ताक्षर करते समय मित्र राष्ट्रों ने इन सिद्धांतों को अनदेखा कर दिया।

इस संधि के अनुसार

1. जर्मन को आक्रामक बताया गया तथा युद्ध के दौरान मित्र राष्ट्रों को हुए नुकसान की जिम्मेवारी स्वीकार करने के लिए विवश किया गया।
2. जर्मन ने इन मित्र राष्ट्रों की क्षतिपूर्ति के लिए इन्हें 6,600 मिलियन डॉलर का भुगतान किया।
3. सार घाटी में जर्मन की कोयला खान क्षेत्रों को 15 वर्ष की अवधि के लिए संघ के नियंत्रण में रखा गया, जबकि उक्त अवधि के लिए इन खानों को फ्रांस में हस्तांतरित कर दिया गया था।
4. नए बनाए गए पोलैंड राष्ट्र (मानचित्र–1 देखें) का कॉरिडोर उपलब्ध कराया गया था, जो इसे बाल्टिक महासागर तक जाने का मार्ग देता है। यह कॉरिडोर पूर्वी प्रूशिया को शेष जर्मनी से अलग करता है। इस कॉरिडोर में आने वाले डेंजिंग बंदरगाह को स्वतंत्र शहर बना दिया गया था।
5. जर्मन की सेना की संख्या को 100,000 तक सीमित कर दिया गया तथा वायु सेना अथवा जल सेना में से कोई एक रखने की अनुमति दी गई।
6. जर्मन के अधिकार वाले उपनिवेशों को विजयी राष्ट्रों ने बांट लिया। यूरोप के मानचित्र का अध्ययन करने के बाद हम जर्मन द्वारा गंवाए गए राष्ट्रों के बारे में और अधिक पढ़ेंगे।



जर्मन को आक्रमण की धमकी के तहत इस संधि पर हस्ताक्षर करने पड़े। वास्तव में, इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए किसी भी जर्मन प्रतिनिधि को आमंत्रित नहीं किया गया था। इसलिए जर्मन ने इसे 'तानाशाही शांति' का नाम दिया।



मानचित्र 24.1 प्रथम विश्व युद्ध के परिणामस्वरुप प्रादेशिक परिवर्तन

आपकी टिप्पणियाँ



मानचित्र 24.2 प्रथम विश्व युद्ध के बाद प्रादेशिक व्यवस्था

इस प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध के कुछ बीज वर्साय में ही बो दिए गए थे। यूरोप का युद्ध संबंधी व्यय के मानचित्र का अध्ययन हमें दर्शाता है कि यूरोप के लगभग सभी देश परिवर्तित सीमाओं सहित युद्ध से उभरे थे। जर्मनी ने अल्सेस लोरेन फ्रांस के हवाले कर दिया। जिस पर इसने 1871 में कब्जा किया था। उत्तर में इसने बेल्जियम और डेनमार्क के कुछ क्षेत्रों को त्याग दिया था। पोलैंड को दिए गए क्षेत्र का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। यूरोप में नुकसान होने के अतिरिक्त जर्मनी को अपने अफ्रीका के उपनिवेशों और चीन में प्राप्त विशेषाधिकारों को भी छोड़ना पड़ा। अतः युद्ध के बाद जर्मन अत्यधिक असंतुष्ट थे।



आपकी टिप्पणियाँ

इटली ने ऑस्ट्रिया, तुर्की साम्राज्य और अफ्रीका में अपनी राजक्षेत्रीय आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध किया था। परन्तु इटली को शांति समझौते से जो कुछ प्राप्त हुआ वह ऑस्ट्रिया का एक छोटा भाग था।

रूस के लोग सभी मित्र राष्ट्रों के युद्ध में मरने वाले लोगों से ज्यादा मारे गए। जर्मनी के साथ संधि पर हस्ताक्षर करने के बाद मार्च 1918 में यह युद्ध से अलग हो गया। इस संधि से इसने पोलैंड, फिनलैंड और इस्टोनिया, लाटविया, लिथुवानिया के बाल्टिक राज्यों की स्वतंत्रता को स्वीकार कर लिया। इससे गृहयुद्ध, सैन्य हस्तक्षेप और आर्थिक विफलता की समस्याएं बढ़ गईं। पॉलैंड जो 1815 में मानचित्र से लुप्त हो गया था, तीनों साम्राज्यों–ऑस्ट्रिया, पुरुसिया और रूस के सम्मेलन के बाद अब पुनः दिखाई देने लगा, जब इन तीनों साम्राज्यों का एक साथ पतन हुआ। तथापि नए पड़ोसी राष्ट्रों के साथ पुरानी शत्रुता को इतनी आसानी से समाप्त नहीं किया जा सकता।

एक अलग संधि द्वारा, ऑस्ट्रिया को कम करके एक छोटा राष्ट्र बना दिया गया था और इसने अपना शाही गौरव खो दिया था। ऑस्ट्रिया ने नए गठित राष्ट्रों हंगरी, पॉलैंड, चेकोस्लोवाकिया और युगोस्लाविया की स्वतंत्रता को मान्यता प्रदान की। आपको स्मरण होगा कि इटली को भी ऑस्ट्रिया के बदले कुछ क्षेत्र प्राप्त हुआ था। नए गठित सभी राष्ट्रों को सीमा विवाद, राजनैतिक विद्रोहों और आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

ब्रिटेन को अधिदेशों के रूप में फिलिस्तीन और इराक दिए गए थे तथा फ्रांस को सीरिया दिया गया। वे तब तक उनका प्रशासन चलाएंगे जब तक कि लोग स्वयं शासन करना न सीख जाएँ। परन्तु इन अधिदेशों पर उपनिवेशों के रूप में शासन किया गया।

तुर्की के साथ संधि के परिणामस्वरूप तुर्की साम्राज्य का पूर्ण रूप से विघटन हो गया था। तुर्की ने उत्तरी अफ्रीका में अपने अरब के आधिपत्य, दक्षिण–पूर्व एशिया और यूरोप में अपने लगभग सभी शासन क्षेत्रों को गंवा दिया था। इनमें से कुछ क्षेत्रों का शासन अधिदेशों के रूप में ब्रिटिश और फ्रांस के अधीन आ गया। रूस और ग्रीस को भी कुछ क्षेत्र प्राप्त हुए। इस प्रकार तुर्की को खंडित कर एक छोटा राष्ट्र बना दिया गया। तुर्की ने मुस्तफा कोमल के नेतृत्व में इस संधि के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। सुल्तान को गद्दी से हटा दिया गया और 1923 में तुर्की में गणराज्य की स्थापना की गई तथा मुस्तफा कोमल इसके पहले राष्ट्रपति बने। इन्होंने देश को आधुनिक बनाने की प्रक्रिया प्रारंभ की। लोग इन्हें 'अतातुर्क' अथवा तुर्कों का पिता कहने लगे।

आपने विभिन्न यूरोपीय देशों में आए परिवर्तनों के बारे में अभी पढ़ा होगा। इन परिवर्तनों को समझने से हमें पता चलता है कि ज्यादातर राष्ट्र इन शांति संधियों से असंतुष्ट थे। क्या विश्व का एक और पुनर्विभाजन अनिवार्य था? क्या एक और युद्ध ही इसका समाधान था? इस अध्याय में आपको इन उत्तरों को खोजने में सहायता मिलेगी।

पाठगत प्रश्न 24.1

क. निम्नांकित को मेल कीजिए

1. वर्साय की संधि — बाल्टिक महासागर हेतु मार्ग



आपकी टिप्पणियाँ

2.	रूसी क्रांति	प्रतिज्ञापत्र
3.	राष्ट्र संघ	अधिदेशात्मक शांति
4.	इराक एवं फिलिस्तीन	अधिदेश
5.	पॉलिश कॉरिडोर	मित्र राष्ट्रों का हस्तक्षेप

ख. निम्नांकित वाक्यों को पूरा करो

1. राष्ट्र संघ _____ हेतु सृजित किया गया था।
2. विलसन के चौदह सूत्रों में _____ लाने का वायदा किया गया था।
3. रूस _____ के बाद युद्ध से अलग हो गया था।
4. युद्ध के बाद स्वतंत्रता हासिल करने वाले बाल्टिक राष्ट्रों में _____ सम्मिलित थे।
5. पोलैंड का गठन _____ और _____ के पतन के बाद हुआ।

24.2 एकदलीय शासन प्रणालियों का उदय

यूरोप के लगभग सभी राष्ट्रों के लिए युद्ध के तत्काल बाद का समय समस्याओं से भरा हुआ था। इनमें अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन करना, युद्ध से बचे हुए लोगों का पुनर्स्थापन करना और बढ़ती बेरोजगारी सम्मिलित थी। कई राष्ट्रों के श्रमिक वर्गों ने सोवियत नमूने पर समाजवादी क्रांतियां लाने की कोशिश की, लेकिन निर्दयता से उनका दमन किया गया। उनके स्थान पर हंगरी, पोलैंड, इटली, पुर्तगाल, जर्मन और स्पेन में शक्तिशाली, प्रजातंत्र विरोधी आंदोलनों का उदय हुआ, जिन्हें सामान्य तौर पर 'फासिस्ट' का नाम दिया गया।

इटली में फासिस्टवाद का आविर्भाव

'फासिस्ट' शब्द इटली मूल का है और इसका पहली बार उपयोग इटली में बेनितो मुसोलिनी द्वारा प्रारंभ किए गए आंदोलन के लिए किया गया था। फासिस्टवादियों ने अपने चिह्न के रूप में कुल्हाड़ी हत्था अथवा छड़ों का गट्ठा अपनाया था, जो राष्ट्र शक्ति को प्रस्तुत करता था। इन आंदोलनों की मुख्य विशेषताएं प्रजातंत्र और समाजवाद का विरोध करना और तानाशाही शासन, उग्र राष्ट्रवाद और सैन्यवाद की स्थापना थीं।

मुसोलिनी ने प्राचीन रोमन साम्राज्य के गौरव के बारे में भावपूर्ण भाषण दिए तथा लोगों से इटली के सम्मान को पुनर्स्थापित करने का आह्वान किया। इसके भाषण सुनने के बाद कई भूतपूर्व सैनिक इसके सैन्य दल में सम्मिलित हो गए, जो एक निजी सेना थी, जिसे 'ब्लेकशर्टस' के नाम से जाना जाता था। मुसोलिनी इन दलों का उपयोग हड़तालें समाप्त करने और समाजवादियों एवं साम्यवादियों में आतंक फैलाने के लिए करता था। इटली के शासक वर्ग भी कोई कार्रवाई करना नहीं चाहते थे, क्योंकि वे भी समाजवादी क्रांति को समाप्त करना चाहते थे।

1921 में, मुसोलिनी ने राष्ट्रीय फासिस्ट पार्टी गठित की। अगले वर्ष अक्तूबर में इसने अपनी ब्लैकशर्ट सेना के 30,000 जवानों को रोम में मार्च के लिए भेजा। सरकार ने कोई लड़ाई किए बिना समर्पण कर दिया तथा राजा ने मुसोलिनी को नई सरकार बनाने के लिए कहा। 1928 तक मुसोलिनी ने सभी संसदीय विरोधियों को समाप्त कर दिया तथा एक तानाशाह के रूप में शासन करना शुरू कर दिया। सभी गैर–फासिस्टवादी पार्टियों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। वह जेल में यातनाएं देता और सुनियोजित ढंग से हत्याएं



करता ताकि समाजवादियों और साम्यवादियों का दमन किया जा सके। उसने फासिस्ट ग्रांड काउंसिल की स्थापना की तथा इसके II–ड्यूस की पदवी हासिल की। उसने युद्ध और विस्तार की नीति का समर्थन करके इटली को महाशक्ति बनाने का प्रयास किया।

हिटलर और नाजी जर्मनी

आपको जर्मनी की अपमानजनक पराजय और इसके राजतंत्र के पतन के बारे में पहले से ही पता है। 1919 में नए संविधान के अंतर्गत गणराज्य सरकार की स्थापना की गई, जिसमें राष्ट्रपति, चांसलर और चुनी गई संसद का प्रावधान किया गया था। इस विश्वयुद्ध में, एडोल्फ हिटलर जर्मन सेना में क्रॉस का विजेता था। जर्मनी की हार से निराश होकर

> इटली में फासिस्टवाद द्वारा सत्ता हथियाने के बाद कोर्पोरेल एडोल्फ हिटलर ने जर्मनी में 1923 में ऐसा ही प्रयास किया था। यह प्रयास असफल रहा तथा हिटलर को जेल हो गई। जब हिटलर जेल में था तो उसने अपनी पुस्तक **मैन केम्फ** (मेरा संघर्ष) लिखी, जिसमें उसने आधुनिक काल की अत्यधिक बर्बर तानाशाही सृजित करने के संबंध में अपनी योजनाओं का खुलासा किया था।

उसने राजनीति में भाग लेने का निर्णय किया। 1921 में हिटलर के शक्तिशाली भाषणों और उसके संगठनात्मक कौशलों ने उसे नेशनल सोशलिस्ट जर्मन वर्कर्स पार्टी संक्षिप्त में नाजी पार्टी का अध्यक्ष बना दिया। फासिस्टवाद की तरह इसकी भी 'स्टॉर्म ट्रुपर्स' अथवा 'ब्राउनशर्ट' नाम की अपने सेना थी। 1930 तक ब्राउनशर्टस में लोगों की संख्या लगभग 100,000 तक हो गई थी।

नाजी नीतियों का उद्देश्य वर्साय के अपमान का प्रतिकार करना और जर्मनी को शक्तिशाली बनाना तथा विश्व को भयभीत करना था।

नाजी फासिस्टवादियों के समान प्रजातंत्र, नागरिक स्वतंत्रताओं तथा समाजवाद के विरोधी थे। वे किसी भी विरोध को समाप्त करने के लिए निर्दयता से बल का उपयोग करते थे।

हिटलर ने युद्ध में जर्मनी की पराजय के लिए यहूदियों को दोषी ठहराया इसलिए यहूदी जाति का विध्वंस करना नाजीवाद की मुख्य विशेषता बन गई। वह जर्मन जाति की शुद्धता और श्रेष्ठता में विश्वास रखता था और उन्हें आर्यों का शुद्ध वंशज कहता था–तथा विशाल जर्मनी का सृजन करने के लिए सभी जर्मन वासियों में एकता बनाए रखना चाहता था। लोगों का बहुत बड़ा वर्ग नाजी राजनीति से प्रभावित था। उन्होंने जर्मन के लोगों से राष्ट्रीय गौरव की अपील की तथा नाजी राजनीति के लिए सहायता प्राप्त की।

> 1936 में बर्लिन में ओलंपिक खेल हुए थे। हिटलर आर्य जाति की श्रेष्ठता के अपने सिद्धांत को सिद्ध करने के लिए इन खेलों का उपयोग करना चाहता था, परन्तु उसका प्रयास विफल रहा, क्योंकि इन खेलों का अत्यधिक लोकप्रिय नायक अफ्रीका–अमेरीकन स्प्रिंटन–जेस्सी ओवेन्स था।

1930 के आर्थिक विकास ने सत्ता में आने के लिए हिटलर की सहायता की। कड़ी मंदी



आपकी टिप्पणियाँ

ने अमरीका एवं यूरोप पर आघात किया। जिसके परिणामस्वरूप जर्मनी में 8 मिलियन कामगार बेरोजगार हो गए। नाजी पार्टी ने अपना प्रभाव जमाना शुरू किया। साम्यवादी और समाजवादी नाजियों के विरुद्ध संगठित होने में असफल रहे। परिणामस्वरूप 1928 में संसद की केवल 12 सीटें जीतने वाली नाजी पार्टी 1932 में अकेली सबसे बड़ी पार्टी बन गई। राष्ट्रपति हिंडेनबर्ग ने हिटलर को चांसलर नियुक्त किया तथा उसे नई सरकार बनाने के लिए कहा। सत्ता में आने के तत्काल बाद हिटलर ने आतंक के आधिपत्य को प्रवर्तित कर दिया। सभी प्रजातांत्रिक सिद्धांतों को रद्द कर दिया गया। फरवरी 1933 में नाजियों ने संसद भवन पर आग लगा दी और इसका दोष समाजवादियों और साम्यवादियों पर लगा दिया। 60,000 से अधिक व्यक्तियों को जेल में अथवा नजरबंदी शिविरों में डाल दिया गया। 1933 के मध्य तक आते–आते नाजी पार्टी को छोड़कर सभी राजनीतिक पार्टियों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। 2 अगस्त 1934 को अंको हिंडेनबर्ग की मृत्यु के बाद हिटलर जर्मनी का राष्ट्रपति बन गया। यहूदियों के संपूर्ण विध्वंस हेतु संगठित अभियान चलाया गया। इसके साथ–साथ सैन्यीकरण का कार्यक्रम भी प्रारंभ किया गया। नाजीवाद की विजय ने विश्वयुद्ध को और नजदीक ला खड़ा किया।

> हिटलर इतना अधिक विदेशी था कि उसने उसको सत्ता में आने में सहायता देने वाले स्टोर्म ट्रूपर्स के सैकड़ो लोगों की एक रात में ही हत्या करने के आदेश दिए। 30 जून, 1934 का दिन 'नाइट ऑफ लोंग नाइव्स' के रूप में जाना जाता है।

जापान में सैन्य फासिस्टवाद

जापान एशिया का एकमात्र ऐसा देश था जो उपनिवेशवाद से बचा हुआ था। उन्नीसवीं शताब्दी की समाप्ति पर जापान की विस्तारवादी नीति के कारण चीन से उसका युद्ध हुआ। चीन की हार होने से जापान इस देश में अपने पांव जमाने में समर्थ हो गया। जापान ने युद्ध में रूस को हराकर चीन में रूस के अधिकार वाले क्षेत्र मैनचुरिया पर कब्जा कर लिया। यह पहली घटना थी कि एशिया के किसी देश ने यूरोप के शक्तिशाली राष्ट्र को युद्ध में पराजित किया था। बाद में जापान ने कोरिया को भी जीत लिया।

प्रथम विश्व युद्ध के प्रादुर्भाव से इसे चीन में जर्मनी के कब्जे वाले क्षेत्रों और प्रशांत में जर्मनी के कब्जे वाले द्वीपों को अधिग्रहण करने का अवसर मिला। युद्ध के बाद संघ ने इसे द्वीपों का अधिदेश दिया। इस समय तक, जापान की सेना विश्व में सर्वोच्च सेना बन गई थी। इसने देश के भीतर प्रजातंत्र को समाप्त कर दिया और उग राष्ट्रवाद और विस्तारवाद का समर्थन किया। पचास वर्षों से कम की अवधि में जापान शांतिप्रिय राष्ट्र से आक्रामक सैन्य शक्ति में परिवर्तित हो गया। इसे जर्मनी और इटली की फासिस्ट सरकारों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करने पड़े थे।

पाठगत प्रश्न 24.2

(क) निम्नलिखित में से सही और गलत बताएँ :

1. 1920 में कई राष्ट्रों में समाजवादी क्रांतियां सफल हुईं।



आपकी टिप्पणियाँ

2. 'फासिस्टवाद' शब्द का उपयोग प्राजातांत्रिक आंदोलनों का उल्लेख करने के लिए किया जाता है।

_____

3. हिटलर ने आधुनिक काल की अत्यधिक बर्बर शासन प्रणाली स्थापित की।

_____

4. यूरोप की सरकारों ने समाजवाद के उदय का समर्थन किया।

_____

5. जापान ने चीन के प्रति शांतिपूर्ण नीति अपनाई।

_____

(ख) रिक्त स्थानों को भरो :-

1. मुसोलिनी के सैन्य दलों को _____ कहा जाता था।
2. जेल में हिटलर ने _____ लिखी थी।
3. फासिस्टवादियों की तरह नाजी भी _____ और _____ के विरोधी थे।
4. _____को _____ आयोजित करके मुसोलिनी सत्ता में आया था।
5. युद्ध में रूस को पराजित करके जापान ने _____ में _____ पर कब्जा कर लिया।

24.3 तीव्र मंदी और इसके प्रभाव

प्रथम विश्व युद्ध के बाद एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह पड़ा कि यूरोप की सर्वोच्चता में कमी आई और संयुक्त राज्य अमरीका का महत्त्व बढ़ा। यद्यपि युद्ध ने यूरोप के राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था को क्षति पहुंचाई तथापि अमरीका की अर्थव्यवस्था अधिक मजबूत हुई। अमरीका की जमीन पर कोई युद्ध नहीं लड़ा गया और युद्ध के दौरान औद्योगिक विकास जारी रहा क्योंकि यह मित्र राष्ट्रों को हथियार और अन्य सामग्री की आपूर्ति करता था। तथापि, एक दशक बाद देश में गंभीर आर्थिक समस्या उठ खड़ी हुई। जो बाद में शेष यूरोप में भी फैल गई।

आप यह जानते हैं कि अमरीका ने उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली अपनाई थीं जिसमें उद्योग स्वामियों द्वारा अधिकतम लाभ कमाया जाता था। तथापि ज्यादातर श्रमिक गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करते थे। अतः उद्योगों द्वारा बनाई जा रही वस्तुओं को खरीदने के लिए बहुत कम लोगों के पास साधन थे। इसलिए 'अति उत्पादन' और 'क्रय शक्ति का कुवितरण' तीव्र मंदी के दो मुख्य कारण थे, जिन्होंने अक्टूबर 1929 में संयुक्त राज्य अमरीका पर आघात किया और तत्पश्चात संपूर्ण विश्व पर आघात किया।

शेयरों की कीमतों में गिरावट आने से यह संकट आया जिससे अमरीकन स्टॉक बाजार में भारी गिरावट आई। एक दिन में ही न्यूयॉर्क स्टॉक एक्सचेंज में लगभग 16 मिलियन शेयरों की खरीद–फरोख्त की गई।

अगले चार वर्षों के दौरान लगभग 9000 बैंकों ने काम करना बंद कर दिया तथा लाखों लोगों के जीवन भर की बचत चली गई।



आपकी टिप्पणियाँ

वस्तुओं की खरीद न होने के कारण हजारों फैक्टरियों बंद हो गईं, जिसके परिणामस्वरूप बेरोजगारी, गरीबी और भूखमरी फैल गई।

सोवियत संघ को छोड़कर शेष यूरोप के राष्ट्र भी इसे झेल रहे थे। क्योंकि वे अमरीका की अर्थव्यवस्था, विशेष रूप से अमरीकन बैंक पर निर्भर हो गए थे। इन राष्ट्रों में इस संकट के प्रभाव समान थे। विश्व में बेरोजगारों की संख्या 50 मिलियन से अधिक हो गई थी जिसमें से अकेले अमरीका में बेरोजगारों की संख्या 15 मिलियन थी।

आर्थिक संकट ने इन देशों की राजनैतिक परिस्थितियों पर भी प्रभाव डाला। अमरीका में डेमोक्रेटिक पार्टी सत्ता में आई तथा फ्रेंकलिन डी रूजवेल्ट राष्ट्रपति बने। उसने न्यू डील नामक आर्थिक सुधार और सामाजिक कल्याण का कार्यक्रम प्रारंभ किया। ब्रिटेन और फ्रांस में श्रमिकों के समर्थन वाली सरकारें सत्ता में आई। यद्यपि फासिस्ट आंदोलन ब्रिटेन तथा फ्रांस में आए तथापि वे सफल नहीं हुए।

जैसा कि आप ऊपर पढ़ चुके है जर्मनी तथा इटली में युद्ध के बाद अंसतोष और मंदी के कारण फासिस्ट पार्टियों की जीत हुई।

1930 के दौरान अमरीका, ब्रिटेन और फ्रांस की विदेशी नीतियां समान थीं। इन्होंने फासिस्टवाद के विरुद्ध कोई कठोर कदम नहीं उठाया था। उनकी मुख्य चिंता समाजवादी विचारधाराओं और श्रमिकों के आंदोलनों को पनपने से रोकने की थी। अतः जब फासिस्ट का आक्रमण शुरू हुआ तो उन्होंने इसे रोकने के लिए कुछ नहीं किया। इसके बजाय उन्होंने से इस आशा से फासिस्टवाद को संतुष्ट करना पसंद किया कि यह साम्यवाद को समाप्त करेगा।

यू एस एस आर में विकास

युद्ध में रूस की भागीदारी तथा रूसी क्रांति के बारे में हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं। इसके बाद गृह युद्ध और मित्र राष्ट्रों का सैन्य हस्तक्षेप हुआ। इन सबके परिणामस्वरूप रूस की अर्थव्यवस्था चरमरा गई। यहाँ खाद्यान्नों की अत्यधिक कमी हो गई तथा औद्योगिक उत्पादन में अत्यधिक गिरावट आ गई। अकाल पड़ने से स्थिति और खराब हो गई थी।

लेनिन को कड़े उपाय करने के लिए मजबूर किया गया। सोवियत सरकार ने धनी किसानों (कुलाकों) से जबरन अतिरिक्त अनाज छीना ताकि शेष लोगों को खाना उपलब्ध कराया जा सके। बाजारों में कुछ भी बेचा अथवा खरीदा नहीं जा सकता था। मजदूरों को मजदूरी के बदले औद्योगिक उत्पाद बांटे जाते थे। लोगों को प्रोत्साहित किया जाता था तथा उन्हें विशेष प्रयोजन के बजाय अपने साथियों के लाभ के लिए काम करने हेतु मजबूर किया जाता था। 1918–1921 तक चली समस्याओं से ग्रस्त स्थिति को 'युद्ध साम्यवाद' कहा जाता था।

किसान और इसकी उक्त पार्टी के कुछ सदस्य मुख्य रूप से इस प्रणाली के घोर विरोधी थे जिससे लेनिन को इसके स्थान पर 1921 में नई आर्थिक नीति लागू करनी पड़ी। युद्ध साम्यवाद के कड़े उपायों को वापस लिया गया। अब किसान को अपने उत्पाद का दसवां हिस्सा कर के रूप में देना पड़ता था और उसे शेष उत्पाद को खुले बाजारों में बेचने की अनुमति दे दी गई थी! हालांकि ज्यादातर उद्योग राज्य के नियंत्रण में थे फिर भी लघु उद्योगों को उनके स्वामियों को वापस लौटा दिया गया था। मजदूरी का भुगतान नकद करना पुनः प्रारंभ किया गया।

नया संविधान 1924 में लागू किया गया था जिसके तहत रूस सोवियत संघ समाजवादी गणराज्य बन गया। परन्तु 1924 में लेनिन की मृत्यु के बाद पार्टी के भीतर सत्ता के लिए घोर संघर्ष उत्पन्न हो गया। अपनाई जाने वाली नीतियों पर वरिष्ठ नेताओं में गंभीर मतभेद पैदा हो गए। अंत में स्टालिन की विजय हुई तथा वह साम्यवादी पार्टी के महासचिव बना और शीघ्र ही उसने अत्यधिक शक्तियां हासिल कर लीं।

कुछ वर्षों के भीतर यू एस एस आर ने पंचवर्षीय योजनाओं की श्रृंखलाओं के माध्यम से औद्योगिकीकरण के सशक्त कार्यक्रम प्रारंभ किए। प्रथम योजना 1929 में प्रारंभ की गई थी। इस योजना का एक लक्ष्य कृषि में परिवर्तन लाना था। क्रांति के बाद, कृषि योग्य खेती का किसानों में पुनः वितरण किया गया जिसके परिणामस्वरूप भूमि के लाखों छोटे तथ कम उपजाऊ टुकड़े हो गए। उत्पादन को बढ़ाने के लिए सरकार ने छोटे खेतों के सामूहिकीकरण के विचार को बढ़ावा दिया। किसानों को प्रोत्साहित किया गया तथा उन पर खेतों के निजी स्वामित्व को छोड़ने के लिए दबाव भी डाला गया। खेतों को इकट्ठा किया गया और उन्हें समाकलित खेतों के सदस्य तथा संयुक्त स्वामी बनना पड़ा। सामूहिकीकरण का विरोध करने वाले कुलाकों से कड़ाई से निपटा गया। यह अनुमान लगाया जाता है कि इस अवधि के दौरान हजारों लोग मारे गए थे।

इस योजना का मुख्य प्रयास औद्योगिकीकरण हेतु था। इसमें अत्यधिक सफलता मिली और शीघ्र ही सोवियत रूस विश्व में एक मुख्य, औद्योगिक शक्ति के रूप में उभरा। यह याद रखना महत्त्वपूर्ण है कि इस समय पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाएं अत्यधिक आर्थिक संकट का सामना कर रहीं थीं। सोवियत संघ सफल समाजवादी अर्थव्यवस्था का उदाहरण बन गया तथा स्वतंत्र होने के बाद कई उपनिवेशों ने इसको अपनाया। तथापि यूरोप के ज्यादातर राष्ट्रों और अमरीका ने 1933 तक सोवियत रूस को मान्यता प्रदान नहीं की थी। यह 1934 में ही राष्ट्र संघ का सदस्य बना। इसके बावजूद सोवियत संघ से शत्रुता बनी हुई थी। 1930 में जब फासिस्ट का आक्रमण शुरू हुआ तो सोवियत संघ ही एकमात्र मुख्य शक्ति थी, जिसने सक्रिय रूप से उनका विरोध किया।

पाठगत प्रश्न 24.3

क. निम्नलिखित के जोड़े बनाएं :

1. नया सौदा	यू एस एस आर
2. धनी किसान	सहकारी खेती
3. नई आर्थिक नीति	यू एस ए
4. सामूहिकीकरण	कुलाको
5. अति उत्पादन	तीव्र मंदी

ख. निम्नलिखित में से सही अथवा गलत बताएं

1. यूरोप के ज्यादातर राष्ट्र अमरीकी अर्थव्यवस्था पर आश्रित थे।
2. पूंजीवादी प्रणाली में, श्रमिकों को कम मजदूरी दी जाती थी।



आपकी टिप्पणियाँ

3. लोग लेनिन की युद्ध साम्यवाद की नीति से खुश थे।
4. रूस ने तीव्र औद्योगिकीकरण हेतु पंचवर्षीय योजनाएं प्रारंभ कीं।
5. स्वतंत्र होने के बाद अनेक उपनिवेशों ने रूस की समाजवादी अर्थव्यवस्था के उदाहरण को अपनाया।

24.4 आक्रमण एवं तुष्टिकरण

सन् 1930 इटली, जर्मनी और जापान के अनेक आक्रमणों का साक्षी है। इस खंड में हम देखेंगे कि पश्चिम की ज्यादातर शक्तियां इन कार्यों की मूक दर्शक बनी रहीं, परन्तु इनमें से कुछ ने तो इसका समर्थन भी किया, जिसके द्वारा फासिस्टों को युद्ध की स्थिति तैयार करने में सहायता मिली।

> तुष्टिकरण कमजोर राष्ट्रों की कीमत पर आक्रामकों को छूट देने की नीति है।

जापान के मैनचुरिया पर आक्रमण

आक्रमण का पहला मुख्य कार्य 1931 में जापान के मैनचुरिया पर धावा बोलना था। जापानी रेलवे लाइन पर विस्फोट से मुसीबत प्रारंभ हुई थी तथा जापानी सेना के अधिकारियों ने इसे मैनचुरिया पर कब्जा करने का बहाना बना लिया। चीन ने राष्ट्र संघ से अपील की परन्तु कोई कार्रवाई नहीं की गई। जापान ने राष्ट्र संघ छोड़ दिया और इसने 1937 में चीन पर एक और आक्रमण किया।

इटली का इथियोपिया पर कब्जा

1936 में इटली ने इथियोपिया पर धावा बोला और संघ से इसकी अपील की गई। लीग ने आक्रामक के रूप में इटली की निंदा की तथा इटली को हथियारों की बिक्री पर रोक लगा दी। तथापि 1936 तक इटली ने इथियोपिया पर जीत हासिल की तथा संघ एक बार फिर आक्रमण को रोकने में असफल रहा।

नाजी जर्मनी का विस्तार

हिटलर के सत्ता में आने संबंधी अपने अध्ययन में हमने देखा कि वह जर्मनी का चांसलर तथा राष्ट्रपति बन गया। तत्पश्चात् इसने वर्साय की संधि का उल्लंघन करते हुए जर्मनी में पुनः सैन्यीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ की।

जर्मन की सेनाओं ने रिनेलैंड में प्रवेश किया, जहाँ इस संधि द्वारा सैनिक शासन हटाया गया था। इसके अतिरिक्त इस संधि सीमा की 100,000 की तुलना में सैनिकों की संख्या 800,000 थी। फ्रांस और ब्रिटेन द्वारा बदले की कोई कार्रवाई करने के कारण हवाई सेना और जल सेना के निर्माण के लिए हिटलर के विश्वास को बल मिला। 1936 में हिटलर और मुसोलिनी ने रोम–बर्लिन एक्सिस पर हस्ताक्षर किए तथा 1937 में जापान के साथ उन्होंने कमिंटर्नरोधी समझौते पर हस्ताक्षर किए।

हिटलर की अगली योजना ऑस्ट्रिया को मिलाने की थी। ऑस्ट्रिया और जर्मनी का समायोजन अथवा एंसीड्लूज 1938 में पूरा हुआ। उसी वर्ष म्यूनिक के सम्मेलन में ब्रिटेन और फ्रांस ने म्युनिक समझौते पर हस्ताक्षर किए। इस समझौते के द्वारा वे चेकोस्लोवाकिया

में सुडेटेनलैंड में जर्मन के कब्जे से सहमत थे। इन वार्ताओं में चेकोस्लोवाकिया के लोगों की कोई भूमिका नहीं थी। जर्मनी सुडेटेनलैंड पर अपना कब्जा बनाए रखना चाहता था, क्योंकि इस क्षेत्र में जर्मन के लोग अधिक रहते थे तथा यह कोयला, रसायन एवं आयरन और स्टील उद्योगों का केंद्र था। कुछ माह बाद जर्मनी ने समग्र चेकोस्लोवाकिया पर कब्जा कर लिया। म्युनिक समझौता पश्चिमी शक्तियों के तुष्टिकरण का अंतिम कृत्य था।

दिनांक 5 अक्तूबर, 1938 के नेशनल हेराल्ड के एक लेख में पंडित नेहरू ने लिखा था कि म्युनिक समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए ब्रिटेन और फ्रांस को शर्म से सिर कटवा लेना चाहिए।

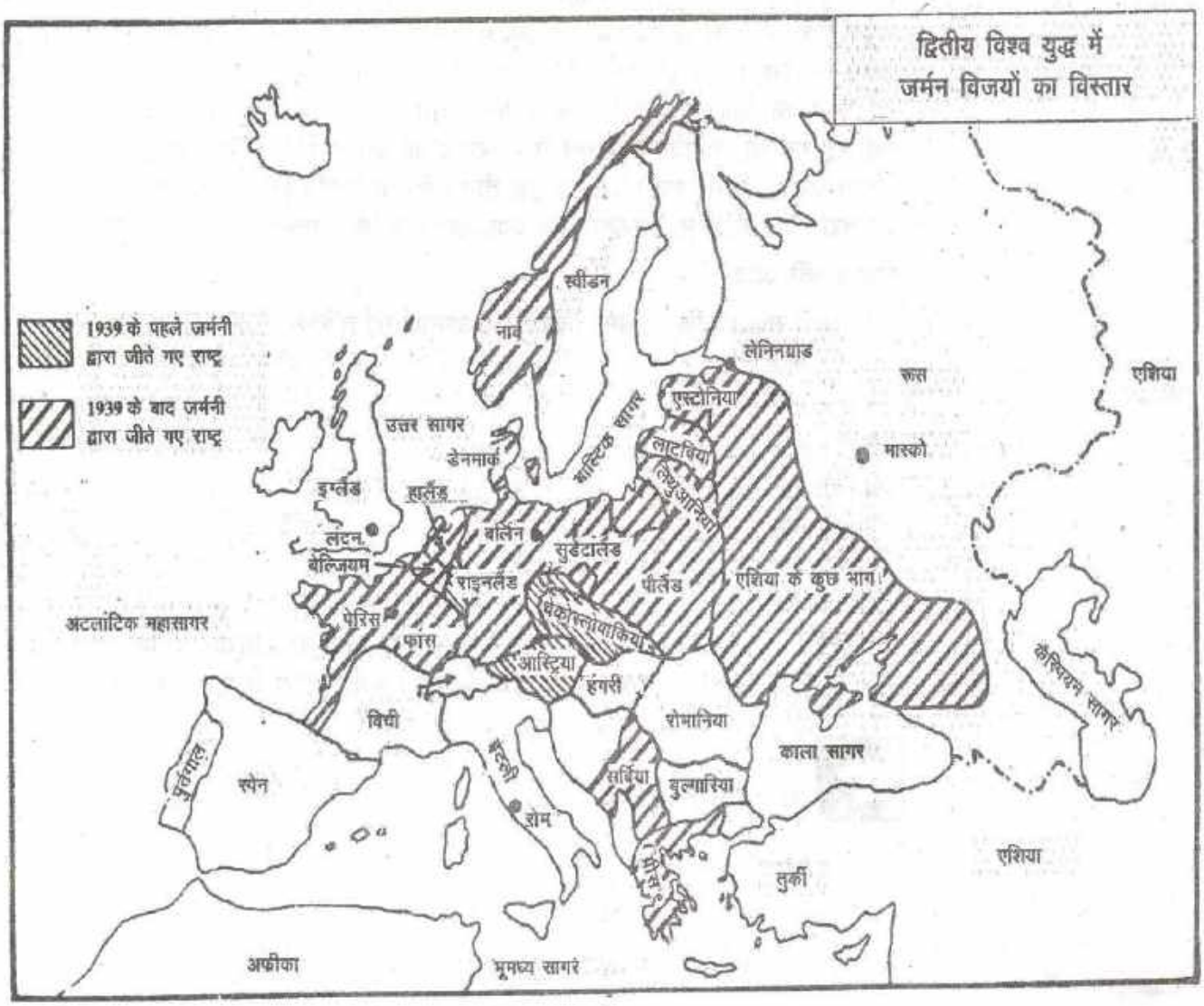

मानचित्र 24.3-द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मन विजयों का विस्तार



आपकी टिप्पणियाँ

द्वितीय विश्वयुद्ध का पूर्वाभ्यास

जर्मनी–इटली के संयुक्त आक्रमण का प्रथम उदाहरण स्पेन के गृहयुद्ध (1936–39) के दौरान देखा गया था। संपूर्ण विश्व पर गंभीर परिणाम पड़े तथा इसे द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्वाभ्यास के रूप में समझा गया है।

1936 में समाजवादियों, साम्यवादियों एवं फासिस्ट–विरोधी अन्य पार्टियों वाली लोकप्रिय फ्रंट सरकार स्पेन में सत्ता में आई। जनरल फ्रेंकों की अध्यक्षता में उन्होंने प्रजातांत्रिक गणराज्य गठित किया, सेना के एक भाग ने इस सरकार को उखाड़ फेंकने की योजना बनाई। जर्मनी और इटली ने फ्रैंकों के लोगों को सैन्य सहायता दी थी तथा जर्मनी के हवाई जहाजों ने स्पेन के नगरों और गांवों पर हवाई छापे मारे। उन्होंने देश के कई भागों पर कब्जा कर लिया तथा अधीनता स्वीकार करने पर लोगों को आतंकित किया।

गणराज्य सरकार ने सहायता के लिए गुहार लगाई परन्तु ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका ने हस्तक्षेप न करने की नीति स्वीकार की। सिर्फ सोवियत संघ ने गणराज्य की सहायता की। संपूर्ण विश्व से फासिस्ट विरोधी गणराज्य हेतु लड़ाई करने के लिए इंटरनेशनल ब्रिगेड गठित करने के लिए एकत्र हो गए। पंडित जवाहर लाल नेहरू गणराज्य को भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की सहायता प्रदान करने के लिए स्पेन गए। स्पेन का गृह युद्ध स्पेन की समस्या नहीं रह गई थी, क्योंकि फासिस्टों से गणराज्य को बचाने के लिए गैर–स्पेन लोगों ने अपने जीवन का बलिदान दिया। यह गृह युद्ध तीन वर्ष तक चला। 1939 तक स्पेन ने फासिस्टों को हरा दिया तथा नई सरकार को ज्यादातर पश्चिमी ताकतों ने मान्यता प्रदान की।

पोलैंड की ओर

आप समझ सकते हैं कि पश्चिमी ताकतों द्वारा अपनाई गई तुष्टिकरण की नीति फासिस्टों को और अधिक आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित करती थी। सोवियत ने फासिस्ट विरोधी सहयोग की मांग की थी, लेकिन पश्चिमी ताकत सहमत नहीं हुईं। अपने हित की रक्षा करने के लिए यूएसएसआर ने अगस्त 1939 में जर्मनी के साथ आक्रमण समझौते हस्ताक्षर किए।

अब हिटलर ने अपना ध्यान पोलैंड पर लगा लिया। वह डैनजिंग मुक्त शहर और पॉलिश कॉरिडर दोनों लेना चाहता था। आपको याद होगा यह जो पूर्वी प्रूसिया को शेष–जर्मनी से अलग करता था। ब्रिटिश और फ्रांस की सरकारों ने घोषणा की कि यदि ने जर्मनी पोलैंड पर धावा किया तो वे जर्मनी पर आक्रमण करेंगे। परन्तु अब हिटलर को नहीं रोका जा सकता था। सितंबर, 1939 को जर्मनी ने पोलैंड पर धावा बोल दिया। दो दिन बाद ब्रिटेन और फ्रांस ने जर्मनी से युद्ध की घोषणा कर दी। अब द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हो गया।



पाठगत प्रश्न 24.4

क. निम्नांकित वाक्यों को पूरा करो

1. संघ _____ को रोकने में विफल रहा।
2. 1931 में जापान ने _____ पर धावा बोला।
3. इटली ने _____ पर कब्जा करके संघ की अवहेलना की।
4. जर्मनी की सेनाओं ने _____ के विसैन्यीकरण क्षेत्र में प्रवेश किया।

5. म्युनिक समझौते में जर्मनी को _____ पर कब्जा करने की अनुमति थी।
6. एंस्कल्स _____ और _____ के संयोजन से संबंधित है।
7. स्पेन की लोकप्रिय फ्रंट सरकार में _____ सम्मिलित थे।
8. _____ पर आक्रमण करने से द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हुआ।
9. कॉमिंटर्नविरोधी समझौता पर _____ के बीच हस्ताक्षर हुए।
10. तुष्टिकरण की नीति _____ को बढ़ावा देती थी।

24.5 युद्ध के दौरान विश्व

अभी हमने पढ़ा है कि पोलैंड के आक्रमण को द्वितीय विश्वयुद्ध की शुरुआत माना जाता था। जर्मन की सेना ने पश्चिम से पोलैंड की सीमा में प्रवेश किया तथा तीन सप्ताह में पोलैंड पर जीत हासिल कर ली। युद्ध की घोषणा किए जाने के बावजूद, पोलैंड को कोई सहायता नहीं मिली। सोवियत रेड आर्मी ने उन क्षेत्रों को वापस हासिल करने के

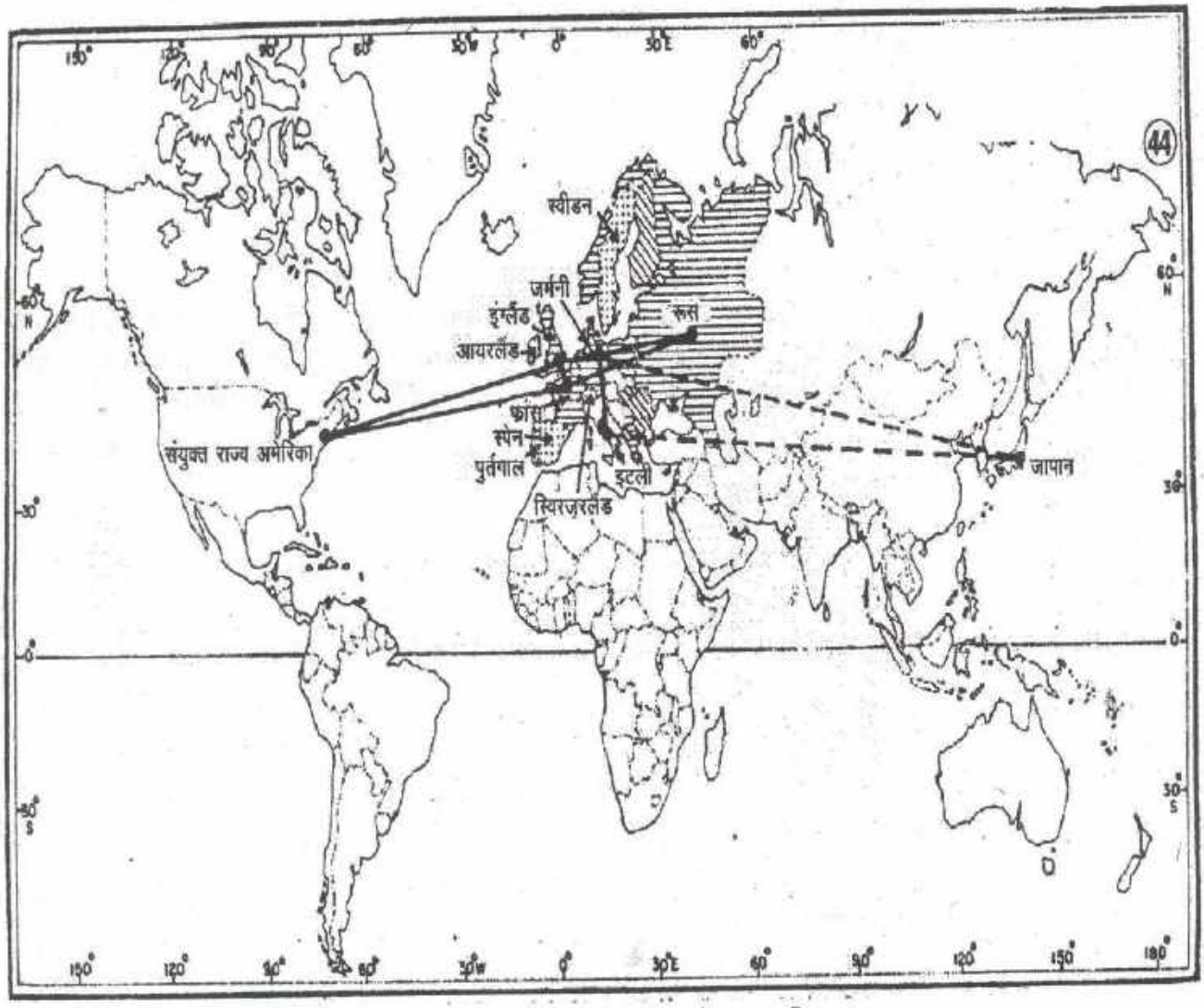

मानचित्र 24.4 युद्ध के समय विश्व



आपकी टिप्पणियाँ

अवसर का फायदा उठाया, जो पहले रूसी साम्राज्य के हिस्से थे। 1940 तक रूस ने बाल्टिक राज्यों ऐस्टोनिया, लाटविया और लिथुवानिया पर कब्जा कर लिया तथा फिनलैंड से जबरन संधि कर ली। क्योंकि पहले छह माह तक वास्तव में बहुत कम युद्ध हुआ। अतः इस अवधि को 'फोनी युद्ध अवधि' के रूप में जाना जाता है

9 अप्रैल, 1940 को जर्मनी सेनाओं ने नोर्वे और डेनमार्क पर आक्रमण किया तथा उन पर जीत हासिल की। अगला आक्रमण तटस्थ देशों बेल्जियम, हॉलैंड तथा लक्समबर्ग पर था। इसके बाद फ्रांस पर धावा बोला गया। जर्मनी सेनाओं ने 14 जून, 1940 को लड़ाई किए बिना राजधानी शहर पेरिस पर अधिकार कर लिया। फ्रांस की सरकार ने आत्मसमर्पण कर दिया और जर्मनी ने उत्तरी फ्रांस के आधे भाग पर कब्जा कर लिया। आधा भाग फ्रांस के अधीन बना रहा और इसे विशी फ्रांस कहा जाता था। वे नाजियों से मिल गए। हिटलर द्वारा यूरोप के देशों पर त्वरित रूप से कब्जा करने को 'लाइटनिंग युद्ध' कहा जाता है।

यद्यपि लगभग 350000 ब्रिटिश, फ्रांस और बेल्जियम सेनाओं ने आत्मसमर्पण नहीं किया था तथापि वे फ्रांस के उत्तरी तट पर डनकिर्क पहुंचे जहां से उन्होंने ब्रिटेन की ओर प्रस्थान किया। उनमें फ्रांस की सेना का कर्नल चार्ल्स था, जिसने नाजी जर्मनी से युद्ध करने के लिए ब्रिटेन में 'स्वतंत्र फ्रांस' आंदोलन प्रारंभ किया था।

ब्रिटेन हेतु युद्ध

पश्चिमी यूरोप पर विजय अभियान लगभग पूरा हो जाने पर हिटलर ने अपना ध्यान ब्रिटेन पर केंद्रित कर लिया। ब्रिटेन पर आक्रमण अथवा 'ऑपरेशन–सी–लॉयन' तभी संभव था जब जर्मन की सेना इंगलिश चैनल को पार कर ले। इसका अर्थ था कि शाही हवाई सेना और शाही जल सेना को कार्रवाई के लिए तुरंत रवाना होना था।

ऊपर उल्लिखित विकास के दौरान ब्रिटेन की सरकार में परिवर्तन हो गया था। म्युनिक समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने त्यागपत्र दे दिया था तथा संयुक्त सरकार के नए प्रधानमंत्री के रूप में विंस्टन चर्चिल ने कार्यभार संभाला।

अगस्त 1940 में, जर्मन हवाई सेना (लुफ्तवैफे) ने ब्रिटिश आसमान पर अपना अभियान शुरू कर दिया तथा ब्रिटिश बंदरगाहों और शहरों पर हवाई हमले किए। जर्मनी ने रात को बड़े–बड़े शहरों विशेष रूप से लंदन पर रात को हमले करना शुरू कर दिया था। अगर एक और लुफ्तवैफे के बीच हुए हवाई युद्धों को 'डॉग फाउट्स' के रूप में जाना जाता था। चर्चिल के प्रभावी भाषणों ने लोगों के मनोबल को ऊंचा बनाए रखा तथा ब्रिटिश हवाई सेना ने लुफ्तवैफे को भारी नुकसान पहुंचाया।

नवंबर 1940 तक 'ऑपरेशन–सी–लॉयन' अनिश्चित काल के लिए समाप्त हो गया था।

आरएएफ की भूमिका की प्रशंसा करते हुए चर्चिल ने कहा था, 'कभी किसी ने इतने कम में इतना अधिक करके नहीं दिखाया।'

युद्ध का विस्तार

27 सितंबर, 1940 को जर्मनी, इटली और जापान ने बर्लिन में त्रिपक्षीय समझौते पर हस्ताक्षर किए, जिसमें आक्रमण होने पर प्रत्येक देश ने एक–दूसरे को पूर्ण समर्थन देने का वादा किया गया था। तीन महाशक्तियां यूरोप की नई व्यवस्था की स्थापना में जर्मनी और इटली की अध्यक्षता तथा एशिया में जापान की इसी तरह की अध्यक्षता के लिए सहमत थीं। कुछ अन्य राष्ट्र जैसे हंगरी, रूमानिया और बुल्गारिया भी इस समझौते मेंसम्मिलित हो गए थे।



इस दौरान युद्ध यूरोप और अफ्रीका के अन्य भागों में फैल गया था। इटली ने ग्रीस पर आक्रमण कर दिया परन्तु उसे कड़े मुकाबले का सामना करना पड़ा। तथापि जर्मनी सेनाएं ग्रीस, यूगोस्लाविया और उत्तरी अफ्रीका के भागों पर कब्जा करने में सफल रहीं। इटली और ब्रिटेन की सेनाओं ने अफ्रीका के अनेक क्षेत्रों के लिए युद्ध किया तथा यह युद्ध अगले दो वर्षों तक जारी रहा।

जर्मनी सोवियत संघ के विरुद्ध

हिटलर के सोवियत संघ पर आक्रमण करने के निर्णय से युद्ध में एक नया अध्याय और जुड़ गया। आक्रमण नही करने के समझौते को भुला दिया गया तथा युद्ध की औपचारिक घोषणा किए बिना 22 जून, 1941 को 'ऑपरेशन बारबेरोसा' प्रारंभ किया गया। जर्मनी की सेना तीन भागों–लेनिनग्रेड, मॉस्को और कीब की ओर तेजी से बढ़ी तथा सोवियत सेना घबरा कर पीछे हट गई। सोवियत संघ द्वारा सहायता के लिए की गई सकारात्मक पहल के अच्छे परिणाम निकले और इस बार ब्रिटेन तथा अमरीका ने सहायता दी।

हिटलर को सर्दी शुरू होने से पहले युद्ध के समाप्त होने की उम्मीद थी। अक्तूबर के प्रारंभ तक मॉस्को को घेर लिया गया। परन्तु तब तक सर्दी आरंभ हो चुकी थी। एक माह के भीतर तापमान–40 डिग्री सेल्सियस चला गया। जर्मन के सैनिक और उनके उपकरण इतनी ठंड में ठीक से काम नहीं कर पाए। दिसंबर में रूस ने प्रति आक्रमण प्रारंभ किया और जर्मनी सेनाओं को वापस जाना पड़ा। मॉस्को की धमकी समाप्त हो गई थी। 'ऑपरेशन बारबेरोसा' असफल रहा, परन्तु जर्मन ने रूस की एक और सर्दी के कष्ट उठाने और सोवियत रेड आर्मी के साहसिक मुकाबले के बाद ही पूर्ण हार स्वीकार की।

वैश्विक युद्ध

युद्ध प्रारंभ हो गया था इसलिए अमरीका ने ब्रिटेन के प्रति सहानुभूति दिखाई, उसे पहले नकद बिक्री आधार पर तथा तत्पश्चात् 'उधार–पट्टा' प्रणाली पर हथियार खरीदने की अनुमति दी गई थी। दूसरे प्रकार की सहायता नवंबर, 1941 में सोवियत संघ को भी दी गई थी। तथापि अमरीका ने प्रत्यक्ष युद्ध करने का विरोध किया था।

तथापि 7 सितंबर, 1941 में जापान ने हवैई में पर्ल हॉर्बर में अमरीका के नेवल बेस पर अचानक आक्रमण प्रारंभ कर दिया। इसके परिणामस्वरूप अमरीकी प्रशांत बेड़ा ध्वस्त हो गया तथा 2000 से अधिक सैनिकों की मृत्यु हुई। 8 दिसंबर को अमरीका ने जापान से युद्ध की घोषणा की और कुछ दिन बाद ही जर्मनी और इटली से भी युद्ध की घोषणा की। वास्तव में यह युद्ध वैश्विक हो गया।

पर्ल हर्बर के बाद जापानी 1942 के मध्य में थाइलैंड, मलाया, सिंगापुर, हांगकांग, फिलिपिंस तथा बर्मा पर कब्जा करता हुआ सुदूर पूर्व में तेजी से आगे बढ़ा। फासिस्ट राष्ट्रअपनी शक्ति के चरम पर थे।

स्टेलिनग्रेड का युद्ध

1942 की गर्मियों के दौरान, हिटलर की सेना ने सोवियत संघ में अपने आक्रमण जारी रखे। हिटलर की जीत की दुबारा आशा थी परन्तु जर्मनी सेना को स्टेलिनग्रेड में रोका गया। नवंबर तक जर्मन की सेनाएं स्टेलिनग्रेड के आस–पास थीं परन्तु सोवियत सेनाओं ने उन्हें घेर लिया। जर्मनी सेना की सभी आपूर्ति रोक दी गई थी। इस युद्ध में जर्मनी और इसके मित्र राष्ट्रों ने लगभग 250000 जानें गंवाई, जिसे इस युद्ध का मोड़ समझा गया। अत्यधिक लोगों की मृत्यु होने और घायल होने से सोवियत संघ को भी भारी नुकसान हुआ।



आपकी टिप्पणियाँ

अंत की शुरुआत

इसी बीच उत्तरी अफ्रीका में यह युद्ध जनरल मोंटगोमरी के अंतर्गत पश्चिमी आठ सेनाओं तथा इटली की सेनाओं की सहायता के लिए हिटलर द्वारा भेजे गए जनरल रोमेल के अधीन जर्मनी अफ्रीका कॉर्प्स के बीच संघर्ष में बदल गया। अगस्त 1942 में रोमेल मिस्र की ओर बढ़ना शुरू हुआ। यह निर्णायक युद्ध अक्तूबर 1943 में मिस्र के उत्तरी तट पर ई1 अलेमैन में लड़ा गया था, जिससे रोमेल की हार हुई।

1943 की गर्मियों तक मित्र राष्ट्रों ने उत्तरी अफ्रीका पर कब्जा कर लिया। जुलाई में उन्होंने सिसिली पर आक्रमण किया। मुसोलिनी की सरकार को हटा दिया गया तथा इटली ने बिना शर्त के आत्मसमर्पण किया। जर्मनी सेनाओं ने तत्काल उत्तरी इटली में कूच किया और मुसोलिनी को आजाद किया, जिससे जर्मनी के संरक्षण में अपनी सरकार स्थापित की।

पूर्वी सीमा पर सोवियत रेड आर्मी ने हिटलर की सेना को उसी रास्ते पर पीछे हटने के लिए मजबूर किया, जिस पर वे पिछले ढाई वर्ष से बड़े विश्वास से डेरा डाले हुए थे।

पूर्वी यूरोप के ज्यादातर राष्ट्र–पोलैंड, रूमानिया, बुल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया तथा हंगरी–स्वतंत्र हो चुके थे। फासिस्टों को ग्रीस, युगोस्लाकिया और अल्बानिया से खदेड़ा जा चुका था।

जून 1944 में, मित्र राष्ट्रों ने पश्चिमी यूरोप में द्वितीय मोरचा प्रारंभ कर दिया। 6 जून के दिन मित्र राष्ट्रों की सेनाओं की पहली टुकड़ी फ्रांस के उत्तरी तट में नॉर्मैंडी के तटों पर उतरी। सेनाओं को यहाँ उतारने की योजना अत्यधिक गोपनीय रूप से बनाई गई थी तथा उन्होंने अचानक जर्मनी पर कब्जा कर लिया। जनरल इसेनहोवर के नियंत्रण में उन्होंने जर्मनी की सुरक्षा पंक्ति में सेंध लगाई तथा सितंबर तक ब्रूसेल्स, पेरिस और लक्समबर्ग को स्वतंत्र करवाया।

फासिस्ट शक्तियों द्वारा आत्मसमर्पण

1945 की वसंत ऋतु तक युद्ध की समाप्ति महसूस होने लगी थी। मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने इटली के कई शहरों को कब्जे में ले लिया था। अप्रैल में फासिस्ट के कब्जे वाले क्षेत्रों में विद्रोह हुआ। 28 अप्रैल को मुसोलिनी को बंदी बनाया गया और फांसी दी गई, इस प्रकार इटली में फासिस्टवाद का अंत हुआ।

अब जर्मनी का पतन निश्चित था। मित्र राष्ट्रों की सेना ने जर्मनी में तीन दिशाओं–दक्षिण, उत्तर–पश्चिम तथा पूर्व से प्रवेश किया और जैसे ही सोवियत सेना बर्लिन पहुंची, हिटलर ने आत्महत्या कर ली। 7 मई को जर्मनी ने बिना शर्त के आत्मसमर्पण कर दिया।

जापान का पतन

जर्मनी के आत्मसमर्पण के बावजूद भी एशिया और प्रशांत में युद्ध जारी रहा। प्रशांत और सुदूर पूर्व में अमरीका और ब्रिटेन की विजय के बावजूद जापान अभी भी डरा हुआ था। 6 अगस्त, 1945 को अमरीका ने जापान के शहर हिरोशिमा पर पहला परमाणु बम गिराया। पचास हजार लोग मारे गए तथा शहर का बड़ा भाग धराशायी हो गया। दो दिन बाद, दूसरे बम ने नागाशाकी शहर को ध्वस्त कर दिया तथा जापान को मजबूरन आत्मसमर्पण करना पड़ा।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति हुई। 50 से ज्यादा राष्ट्र इस युद्ध में सम्मिलित थे। एक और अंतर्राष्ट्रीय संगठन–संयुक्त राष्ट्र संगठन–की स्थापना की गई ताकि विश्व में शांति कायम की जा सके। परन्तु दो महाशक्तियां–संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत

समाजवादी संघ गणराज्य–संसार को दो शक्तियों में बांटने की कोशिश करेंगे। इससे शीतयुद्ध की स्थिति उत्पन्न होगी। इस संबंध में हम अगले अध्याय में पढ़ेंगे।

पाठगत प्रश्न 24.5

क. निम्नलिखित का मेल कीजिए

1. मुक्त फ्रांस आंदोलन	ऑपरेशन बारबेरोसा
2. ब्रिटेन का युद्ध	विंस्टन चर्चिल
3. यूएसएसआर का आक्रमण	ऑपरेशन सी–लॉयन
4. ब्रिटिश प्रधानमंत्री	नॉर्मेन्डी
5. द्वितीय मोरचा	स्पिटफॉयर और हरिकेन
6. ब्रिटिश हवाई जहाज	चार्ल्स डि गौले

ख. निम्नांकित वाक्यों को पूरा करो

1. द्वितीय विश्व युद्ध _____ से शुरू हुआ था।
2. ऑपरेशन सी–लॉयन तभी संभव था यदि _____।
3. पर्ल हार्बर पर आक्रमण से _____ हुआ।
4. ऑपरेशन बारबेरोसा विफल रहा, क्योंकि _____ ।
5. स्टेलिनग्रेड का युद्ध _____ समझा जाता था।
6. एशिया और प्रशांत में युद्ध _____ से समाप्त हुआ।

आपने क्या सीखा

1. शांति संधियों पर हस्ताक्षर करने के साथ ही प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति हुई तथा राष्ट्र संघ का सृजन किया गया ताकि वह विश्व को युद्ध से सुरक्षित रख सके।
2. इन संधियों ने यूरोप का मानचित्र बदल दिया। बड़े साम्राज्यों जैसे रूस, प्रूशिया और ऑस्ट्रिया–हंगरी के टुकड़े हो गए तथा इनके स्थान पर अनेक छोटे–छोटे राष्ट्र–राज्यविकसित हुए।
3. रूसी क्रांति की सफलता से समाजवादी विचारधाराएं फैलीं तथा यूरोप के लगभग सभी राष्ट्रों में समाजवादी पार्टियों का उदय हुआ।
4. युद्धोत्तर काल यूरोप के ज्यादातर राष्ट्रों के लिए आर्थिक संकट से भरा था तथा इनकी सरकारों ने अपने देशों में इस प्रकार की क्रांति को आने से रोकने के लिए कदम उठाए।
5. इटली और जर्मनी में शासित पार्टियों ने फासिस्ट आंदोलनों को प्रोत्साहन दिया, जिसके परिणामस्वरूप इटली में मुसोलिनी और जर्मनी में हिटलर जैसे ताकतवर तानाशाहों का आविर्भाव हुआ। इन फासिस्ट नेताओं ने समाजवादियों और साम्यवादियों का निर्दयता से दमन किया। ये विस्तार–वाद और युद्ध में विश्वास रखते थे।



आपकी टिप्पणियाँ

जापान ने जर्मनी और इटली से सहयोग किया तथा तीनों महाशक्तियों ने 1937 में कोमिंटर्न विरोधी समझौते पर हस्ताक्षर किए।

6. जब फासिस्ट आक्रमण शुरू हुआ तो पश्चिमी शक्तियों ने तुष्टिकरण की नीति अपनाई। इनका मानना था कि सोवियत रूस पर आक्रमण से नियंत्रण किया जा सकेगा। परन्तु हिटलर की योजनाएं थीं और शीघ्र ही यह युद्ध यूरोप में फैल गया।
7. द्वितीय विश्व युद्ध (1939–1945) अत्यधिक विनाशकारी था और यह जापान के हिरोशिमा और नागाशाकी शहरों पर परमाणु बम गिराने के साथ समाप्त हुआ।

पाठांत प्रश्न

1. वर्साय की संधि के क्या प्रावधान थे? क्या इन्होंने दूसरे युद्ध के बीज बोए?
2. इटली में मुसोलिनी के सत्ता में आने का उल्लेख करें? उसने विरोधियों के साथ कैसा व्यवहार किया?
3. नाजी नीतियों के क्या उद्देश्य थे? इन उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए हिटलर ने क्या–क्या प्रयास किए? क्या उसकी पद्धतियाँ उचित थी?
4. पश्चिमी ताकतों ने 1930 के दौरान तुष्टिकरण की नीति क्यों अपनाई? फासिस्टों पर इसका क्या प्रभाव पड़ा?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

24.1 क

1. अधिदेशात्मक शांति
2. मित्र राष्ट्रों का हस्तक्षेप
3. प्रतिज्ञापत्र
4. अधिदेश
5. बाल्टिक महासागर हेतु मार्ग

24.1 ख

1. अंतर्राष्ट्रीय सहयोग, शांति और सुरक्षा को बढ़ावा
2. शांति, स्वतंत्रता, प्रजातंत्र और स्वाधीनता का युग
3. जर्मनी के साथ संधि पर हस्ताक्षर
4. इस्टोनिया, लाटविया तथा लिथुवानिया
5. ऑस्ट्रिया, प्रूसिया और रूस

24.2 क

1. गलत

2. गलत
3. सही
4. गलत
5. गलत

24.2 ख

1. ब्लैक शर्ट्स
2. मैन कैम्फ (मेरा संघर्ष)
3. प्रजातंत्र, समाजवाद
4. मार्च, रोम
5. मनचुरिया, चीन

24.3 क

1. अमरीका
2. कुलाक
3. यूएसएसआर
4. सहकारी खेत
5. तीव्र मंदी

24.3 ख

1. सही
2. सही
3. गलत
4. सही
5. सही

24.4

1. आक्रमण
2. मैनचुरिया
3. इथियोपिया
4. रिनेलैंड
5. सुडेटेनलैंड
6. ऑस्ट्रिया, जर्मनी
7. साम्यवादी और फासिस्ट विरोधी
8. पोलैंड



आपकी टिप्पणियाँ

9. जर्मनी, इटली और जापान
10. फासिस्टवादी

24.5 क

1. चार्ल्स डि गोले
2. ऑपरेशन सी–लॉयन
3. ऑपरेशन बारबेरोसा
4. किंस्टन चर्चिल
5. नोर्मैंडी
6. स्पिट फायर्स एवं हरिकेंस

24.5 ख

1. पोलैंड पर आक्रमण
2. जर्मनी सेना इंगलिश चैनल पार करती
3. युद्ध में अमरीका का प्रवेश
4. जर्मनी सेनाएं रूस की ठंड बरदाश्त नहीं कर सकीं
5. युद्ध का दिशा–परिवर्तन
6. हिरोशिमा और नागाशाकी पर परमाणु बम गिराया जाना।

पाठांत प्रश्नों हेतु संकेत

1. 24.1 पैरा 2–3
2. 24.2 पैरा 3–4
3. 24.2 पैरा 7–9
4. 24.4 पैरा–1

शब्दावली

समामेलन : दूसरे के राज्य को अपने राज्य क्षेत्र में मिलाना

कमिनटर्न : रूसी कम्युनिस्ट पार्टी वाले राष्ट्रों द्वारा स्थापित कम्युनिस्ट इंटरनेशनल। संपूर्ण विश्व में क्रांतियां लाने के उद्देश्य से विश्व की संपूर्ण कम्युनिस्ट पार्टियां इसकी सदस्य थीं।

भावपूर्ण भाषण : धाराप्रवाह, ओजस्वी, प्रभावशाली और आकर्षक ढंग से बोलना।

विध्वंस : द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान और बाद में नाजियों द्वारा 6 मिलियन से अधिक यूरोप के यहूदियों को व्यवस्थित ढंग से मारा गया।

साम्राज्यवाद : उपनिवेशों अथवा पराधीन राष्ट्रों के अधिग्रहण करने और प्रशासन चलाने की नीति उदाहरणार्थ भारत, ब्रिटेन साम्राज्यवाद का उपनिवेश था।



आपकी टिप्पणियाँ

अतिराष्ट्रीयता : अतिशय अथवा अत्यधिक देशभक्ति राष्ट्र के प्रति अत्यधिक वफादारी।

समाजवाद : राजनैतिक और आर्थिक प्रणाली जिसमें उत्पादन के साधनों पर राज्य का नियंत्रण होता है और सम्पत्ति का उचित वितरण होता है।

सर्वसत्तात्मक : सरकार की ऐसी प्रणाली जिसमें एक पार्टी की तानाशाही होती है और राज्य सर्व शक्तिमान होता है तथा व्यक्ति राज्य के अधीन रहता है।

समय रेखा (1919-1945)

28 अप्रैल, 1919	:	राष्ट्र संघ की स्थापना
28 जून, 1919,	:	वर्साय की संधि पर हस्ताक्षर
29 जुलाई, 1921	:	हिटलर नाजी पार्टी के नेता बने
28–29 अक्तूबर, 1922	:	रोम पर चढ़ाई, मुसोलिनी ने सरकार बनाई
29 अक्तूबर, 1929	:	अमरीका में शेयर बाजार में गिरावट आई
30 जनवरी, 1933	:	हिटलर की जर्मनी के चांसलर के रूप में नियुक्ति
2 अगस्त, 1934	:	हिटलर राष्ट्रपति भी बने
7 मार्च, 1936	:	जर्मनी सेनाओं ने रिनेलैंड पर कब्जा किया
9 मई, 1936	:	मुसोलिनी की इटली सेनाओं ने इथियोपिया पर कब्जा किया
18 जुलाई, 1936	:	स्पेन में गृह युद्ध प्रारंभ
12 मार्च, 1938	:	एंस्क्लूस–नाजियों ने ऑस्ट्रिया पर कब्जा किया
30 सितंबर, 1938	:	म्युनिक समझौते पर हस्ताक्षसर
23 अगस्त, 1939	:	नाजी–सोवियत समझौते पर हस्ताक्षर
3 सितंबर, 1939	:	ब्रिटेन और फ्रांस ने जर्मनी से युद्ध की घोषणा की
अप्रैल–मई, 1940	:	नाजियों ने नॉर्वे, डेनमार्क, बेल्जियम, हॉलैंड, लक्सम्बर्ग और फ्रांस पर आक्रमण किया।
10 जुलाई, 1940	:	ब्रिटेन का युद्ध प्रारंभ
13 सितम्बर, 1940	:	इटली ने मिस्र पर आक्रमण किया
12 अक्तूबर, 1940	:	ऑपरेशन सी–लायन समाप्त
22 जून, 1941	:	ऑपरेशन बारबेरोसा प्रारंभ
5 दिसंबर, 1941	:	मॉस्को पर जर्मन का आक्रमण रोक दिया गया।



आपकी टिप्पणियाँ

25

शीतयुद्ध युग और इसकी राजनीति

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, इस युद्ध के मित्र राष्ट्र संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत रूस के बीच शीत युद्ध प्रारंभ हो गया। युद्ध के दौरान ये दोनों राष्ट्रों जर्मनी एवं इटली की फासीवादी तानाशाही और जापान के साम्राज्य को हराने के लिए ब्रिटेन और फ्रांस के साथ एक ही ओर से लड़ रहे थे। दोनों देशों ने 1941 में पांच वर्षीय अनाक्रमण–संधि पर हस्ताक्षर भी किए थे। यहाँ तक कि फरवरी 1945 में हुए याल्टा सम्मेलन तक दोनों देशों के बीच कुछ सौहार्द कायम था। लेकिन जल्दी ही परिस्थिति पूर्णतः बदल गई और संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत संघ दोनों एक–दूसरे के सामने 'युद्ध जैसी स्थिति' में खड़े हो गए, जिसे सामान्यतः शीतयुद्ध कहा जाता है।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- शीतयुद्ध का अर्थ बता सकेंगे;
- शीतयुद्ध के लिए जिम्मेदार कारकों का वर्णन कर सकेंगे;
- संघर्ष के विभिन्न मुद्दों का उल्लेख कर सकेंगे; और
- शीतयुद्ध की नए शीतयुद्ध से तुलना कर सकेंगे।

25.1 शीतयुद्ध का अर्थ

शीतयुद्ध को नई महाशक्तियों के बीच 'शांतिकाल में बिना हथियारों के चलने वाले युद्ध' के रूप में वर्णित किया जाता है। यह महाशक्तियों के बीच 'कूटनीतिक युद्ध' या हथियारबंद लड़ाई नहीं, बल्कि यह वैचारिक घृणा और राजनीतिक अविश्वास पर आधारित था। फ्लेमिंग के अनुसार 'शीतयुद्ध एक ऐसा युद्ध है, जो युद्ध–क्षेत्र में नहीं लड़ा जाता, अपितु लोगों के दिमाग में चलता है, इसमें एक व्यक्ति दूसरे के दिमाग को नियंत्रित करने की कोशिश करता है। शीतयुद्ध खुले युद्ध से बहुत भिन्न होता था, क्योंकि खुले युद्ध में शत्रुओं को पूर्ण जानकारी होती है और युद्ध खुले मैदान में लड़ा जाता है। शीतयुद्ध में कभी युद्ध की घोषणा नहीं की गई और देशों के बीच कूटनीतिक संबंध कायम रखे गए। शीतयुद्ध में सैनिक टकराव और जीवन–हानि भी हुई, लेकिन वह एक

मनोवैज्ञानिक युद्ध भी था, जिसका उद्देश्य दुश्मन के प्रभाव क्षेत्र को कम करना और अपने समर्थकों की संख्या बढ़ाना था।

शीतयुद्ध संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के बीच द्विध्रुवीय टकराव था, लेकिन उसमें मित्र राष्ट्र और दोनों महाशक्तियों के सहयोगी और अधीनस्थ राष्ट्र भी शामिल थे। शीतयुद्ध को दो विचारधाराओं और दो अलग–अलग ढंग से संगठित अर्थव्यवस्था प्रणालियों एवं सामाजिक साम्यवाद और उदार प्रजातंत्र तथा समाजवादी नियंत्रित अर्थव्यवस्था तथा पूंजीवाद के बीच विरोध के रूप में भी समझा गया है। यद्यपि इतिहास में अनेक द्विध्रुवीय विरोध देखने को मिलते हैं, लेकिन यह पहला अवसर था, जब दो भिन्न–भिन्न स्वरूपों वाले सामाजिक संगठन विश्व के वैकल्पिक दृष्टिकोण लागू करने की होड़ में लगे थे।

बीसवीं सदी के प्रारंभ से ही संयुक्त राज्य अमेरिका एवं सोवियत संघ दोनों ही महाशक्तियां बनने की ओर अग्रसर थे। महामंदी के तुरंत बाद 1932 में विनिर्माण में जुटे विभिन्न देशों के अंश का तुलनात्मक अध्ययन दर्शाता है कि अमेरिका लगभग 32 प्रतिशत अंश के साथ निर्विवाद नेता था और रूस 11.5 प्रतिशत अंश के साथ दूसरे स्थान पर। लेकिन अन्य अग्रणी देश ब्रिटेन 10.9 प्रतिशत, जर्मनी 10.6 प्रतिशत, फ्रांस 16.9 भी ज्यादा पीछे नहीं थे। किंतु द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जर्मनी और जापान की सैन्य शक्ति पराजित हो गई और ब्रिटेन तथा फ्रांस बुरी तरह पस्त हो गए। अब दो देश ही ऐसे बचे जो महाशक्ति बनकर उभरे–अमेरिका और रूस। युद्ध के दौरान भारी क्षति होने के बावजूद सोवियत संघ ने अपनी साम्यवादी अर्थव्यवस्था के कारण तेजी से प्रगति की। इन दोनों राष्ट्रों की तेजी से हो रही उन्नति के परिणामस्वरूप दोनों के बीच प्रतिद्वंद्विता बढ़ गई, जिससे शीतयुद्ध प्रारंभ हो गया।

सोवियत संघ ने कॉमिनफॉर्म (कम्युनिस्ट सूचना ब्यूरो), रेडियो मॉस्को की स्थापना की और कुछ अन्य देशों में भी कुछ कम्युनिस्ट दलों का समर्थन किया। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने 'वॉयस ऑफ अमेरिका' नामक रेडियो न्यूज कार्यक्रम प्रारंभ किया और अन्य देशों में कम्युनिस्ट–विरोधी राजनीतिक दलों एवं आंदोलनों का समर्थन किया।

इन दोनों देशों के बीच के विरोध ने इनके द्वारा अपनाई गई विचारधाराओं के बीच विरोध का रूप ले लिया। इनमें से एक विचारधारा थी राजनीतिक एवं आर्थिक उदारवाद, जिसे अमेरिका ने अपनाया और दूसरी थी मार्क्सवाद–लेनिनवाद, जिसे रूस ने अपनाया।

पाठगत प्रश्न 25.1

1. शीतयुद्ध में किन दो विचारधाराओं में टकराव था?

2. अमेरिका तथा रूस द्वारा कौन–कौन सी समाचार सेवाओं की स्थापना की गई?



आपकी टिप्पणियाँ

25.2 शीतयुद्ध के लिए जिम्मेदार प्रमुख कारक

दूसरे विश्व युद्ध के बाद अमेरिका और रूस दोनों नई महाशक्तियों अपनी–अपनी स्थिति एवं विचारधारा का वर्चस्व स्थापित करना चाहती थीं और यही संघर्ष अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का केंद्र–बिंदु बन गया। विरोधी धड़े बनने लगे, जिससे इन महाशक्तियों के बीच प्रतिद्वंद्विता और बढ़ने लगी। अधिकांश पश्चिमी देश अमेरिका के समर्थन में खड़े हो गए और साम्यवाद का खुलकर विरोध करने लगे। परमाणु हथियार बनाने के बाद अमेरिका को महाशक्ति का दर्जा प्राप्त हो गया। रूस बहुत जल्दी ही अमेरिका की स्थिति को चुनौती देनेवाला प्रतिद्वंद्वी बनकर उभरा और 1949 में उसने भी परमाणु हथियार बनाकर अमेरिका के वर्चस्व को समाप्त कर दिया।

सोवियत संघ एवं पश्चिमी देशों के बीच लंबे समय तक संदेह और अविश्वास का दौर चलता रहा। सोवियत संघ यह कभी नहीं भूल सका कि पश्चिमी देशों (ब्रिटेन, फ्रांस एवं अमेरिका) ने बोल्शेविक क्रांति को विफल करने की कोशिश की थी और (जापान के साथ) गृहयुद्ध में हस्तक्षेप किया था। पश्चिमी देश भी यह नहीं भूल पाए कि सोवियत संघ का घोषित उद्देश्य समूचे विश्व से पूंजीवाद को उखाड़ फेंकना था। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान आपसी संदेह और बढ़ गया। 1941 में जब जर्मनी ने सोवियत संघ पर आक्रमण किया तो पश्चिमी गणतंत्रों ने जर्मन के खिलाफ दूसरा मोर्चा खोलने में देर लगाई। ब्रिटेन एवं अमेरिका ने ऐसा करने का वायदा किया था, लेकिन इसमें हुए विलंब ने रूस का यह संदेह पक्का कर दिया कि पश्चिमी देश जर्मनी एवं रूस के बीच लंबी अवधि तक लड़ाई जारी रहने देना चाहते हैं ताकि दोनों का सफाया हो सके।

युद्ध के दौरान, दोनों पक्ष धुरी शक्तियों (जर्मनी, इटली और कुछ अन्य छोटे–छोटे राष्ट्र) से मुक्त हुए देशों में विरोधी तत्वों को प्रोत्साहित करने लगे। जब इटली से फासीवाद तानाशाह मुसोलिनी को सत्ता से हटा दिया गया, तब पश्चिमी शक्तियों ने इटली को समर्थन दिया और इसे पुनर्निर्माण के लिए सहायता (सैकड़ों मिलियन अमेरिकी डॉलर की सहायता राशि) दी। चूंकि रूस से बाहर इटली में सबसे अधिक साम्यवादी दल थे, अतः अमेरिका ने इसे पूंजीवादी खेमे अथवा देशों के धड़े को मजबूत करने के प्रयास के रूप में देखा। ऐसी ही समस्याएँ ग्रीस और पोलैंड में भी थीं। अमेरिका ने ग्रीस में साम्यवादी शक्तियों को हराने में मदद की। 1945 के बाद, दोनों महाशक्तियों ने आपसी संदेह को कम करने के लिए कुछ कदम उठाए। अमेरिका में केवल जर्मनी के पश्चिमी क्षेत्रों और ऑस्ट्रिया पर कब्जा रखने और पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया एवं अन्य पूर्वी यूरोपीय क्षेत्रों से बाहर रहने पर सहमत हो गया, जिन्हें सोवियत लाल सेना में स्वतंत्र कराया था। सोवियत संघ ने कोमिनफॉर्म (कम्युनिस्ट सूचना ब्यूरो) भंग कर दी और पूंजीवादी शक्तियों को ग्रीस पर नियंत्रण करने दिया। सोवियत संघ 1952 में फिनलैंड से हट गया और 1955 तक ऑस्ट्रिया से अपनी पूरी सेना वापस बुला ली। यूरोप एवं अन्य क्षेत्रों के भविष्य को लेकर अमेरिका तथा रूस के बीच मतभेद बने रहे। सोवियत संघ नाजी जर्मनी से स्वतंत्र कराए गए पूर्वी यूरोपियन देशों में मित्र सरकारें स्थापित करवाना चाहता था। यहाँ मित्र सरकारों से सोवियत संघ का अर्थ था साम्यवादी सरकारें, जो अमेरिका और ब्रिटेन को मंजूर नहीं थीं। सोवियत संघ ने टर्की में भी अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया और ईरान से अपनी फौज वापस बुलाने में देरी की, जो पश्चिमी देशों को नागवार गुजरा।

शीतयुद्ध के लिए दोनों ही पक्ष जिम्मेवार थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान दोनों पक्षों के बीच अस्थायी युद्ध विराम युद्ध के पूर्व और पश्चात् उनके बीच के तनावपूर्ण संबंधों में एक पैबंद मात्र था।

पाठगत प्रश्न 25.2

1. कौन से देश धुरी शक्तियों के अंग थे?

2. कौन से देश मित्र शक्तियों के अंग थे?

3. यूरोप के कौन से क्षेत्र अमेरिका तथा रूस से प्रभावित थे?

25.3 शीतयुद्ध के विभिन्न चरण

चूंकि शीतयुद्ध की कभी घोषणा नहीं की गई थी और यह अघोषित युद्ध भी दीर्घकालिक किस्म का था, अतः इसके प्रारंभ होने की सही तारीख बता पाना बहुत कठिन है। प्रारंभिक चरण (1945–47) जिसे अस्थिविकास चरण कहा जाता है, के बाद शीतयुद्ध में तेजी आई, जिसके केंद्र में था युद्ध के बाद यूरोप की व्यवस्था का निर्माण। शीतयुद्ध के प्रारंभ ने विभिन्न शक्तियों द्वारा याल्टा और पोट्सडम में युद्धकालीन सम्मेलनों में स्वीकृत सिद्धांतों का सतत सम्मान करने में विफलता प्रतिबिंबित की।

प्रथम चरण

प्रारंभिक चरण में पोलैंड का हश्र एक नाजुक प्रश्न बन गया। पोलैंड में सभी देशों की विशेष रूचि थी। जब सितंबर 1939 में हिटलर की सेना ने पोलैंड की सीमा पार कर ली तो फ्रांस एवं ब्रिटेन ने जर्मनी के खिलाफ युद्ध घोषित कर दिया था। रूस के लिए पोलैंड एक ऐतिहासिक शत्रु था, तो दूसरी ओर पश्चिम की ओर से रूस पर चढ़ाई करने के लिए पोलैंड की भूमि परंपरागत प्रवेश–द्वार थी। जब 1944 में सोवियत संघ ने पोलैंड में प्रवेश किया, तब उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता की समर्थक साम्यवादी राष्ट्रीय मुक्ति समिति समर्थक लुबलिन सरकार को औपचारिक रूप से सत्ता सौंप दी। पोलैंड के भविष्य पर स्टालिन, चर्चिल और रूजवैल्ट के याल्टा सम्मेलन में विस्तृत चर्चा हुई। पोलैंड की सटीक सीमा के संबंध में कोई समझौता नहीं हो सका। लेकिन पोलैंड अंततः सोवियत खेमे में आ गया। पोलैंड का सोवियतीकरण शीतयुद्ध के प्रारंभ सीमाचिह्न बन गया।

टकराव दूसरा मुख्य क्षेत्र था। बलकान ब्रिटेन एवं सोवियत संघ दोनों ने बलकान इलाके में अपने–अपने प्रभाव क्षेत्र बनाने का निश्चय किया। लेकिन ग्रीस को छोड़कर सभी देशों में साम्यवादी सरकार बना दी गई और एक बार जब साम्यवादी शासन लागू हो गया तो सोवियत संघ ने उन्हें खुला समर्थन देना प्रारंभ कर दिया। ग्रीस को छोड़कर, जो ब्रिटेन के नियंत्रण में आ गया, अन्य सभी पूर्वी यूरोपीय देशों पर सोवियत संघ का प्रभुत्व स्थापित



आपकी टिप्पणियाँ

हो गया। चर्चिल ने इस स्थिति का प्रतिपादन इस प्रकार किया कि यूरोप के ऊपर एक 'लोहे का आवरण' छा गया है। इससे पूर्व एवं पश्चिम के रिश्तों में भारी खटास आ गई, जिसमें अमेरिका एवं सोवियत संघ भी शामिल थे।

मित्र राष्ट्रों की सेनाओं के आगे बिना शर्त समर्पण के बाद जर्मनी को चार अधिग्रहण–क्षेत्रों में विभक्त कर दिया गया, जिनमें से प्रत्येक भाग पर सोवियत संघ, अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस का नियंत्रण था। जर्मनी की राजधानी बर्लिन सोवियत अधिग्रहण–क्षेत्र में थी, लेकिन जर्मनी की तर्ज पर अधिग्रहण क्षेत्रों में बर्लिन स्वयं पूरी बंटी थी। सैन्य कब्जा शांति समझौता संपन्न होने तक चलने वाली एक अस्थायी व्यवस्था थी। शांति–समझौता संपन्न हो गया। जर्मनी के साथ शांति–समझौता करने के लिए पोट्सडम सम्मेलन बुलाया गया। महत्त्वपूर्ण विषयों पर मित्र राष्ट्रों की राय स्पष्ट न थी, जैसे क्या जर्मनी को शस्त्र–विहीन कर दिया जाए, सेनाविहीन किया जाए या उसका विभाजन कर दिया जाए। जर्मनी के उद्योगों का किस सीमा तक पुनर्निर्माण किया जाए? सोवियत संघ एक कंगाल और कमजोर जर्मनी चाहता था ताकि जर्मनी द्वारा उसके हितों के लिए खतरा न बन सके। सोवियत संघ ने जर्मनी से क्षतिपूर्ति के रूप में 20 बिलियन अमेरिकी जर्मन की भी मांग की। लेकिन पश्चिमी मित्र राष्ट्र इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हुए। बाद में ब्रिटिश, अमेरिकी और फ्रांसीसी अधिकार वाले क्षेत्रों का एकीकरण कर दिया गया और इस तरह जर्मन संघीय गणराज्य (पश्चिमी जर्मनी) अस्तित्व में आया। नए राज्य में चुनाव के बाद एक पश्चिम–समर्थक सरकार सत्ता में आई। उसे अमेरिका से भारी मात्र में वित्तीय सहायता प्राप्त होने लगी। जल्दी ही सोवियत संघ की मदद से दूसरा क्षेत्र भी राज्य बन गया, जो जर्मन प्रजातांत्रिक गणराज्य (पूर्वी जर्मनी) कहलाया।

पश्चिमी देश जर्मनी में मौद्रिक सुधार लाना चाहते थे, लेकिन सोवियत संघ ने अपना जवाब बर्लिन–नाकाबंदी के रूप में दिया। सोवियत संघ ने बर्लिन एवं पश्चिमी क्षेत्रों के बीच सभी प्रकार के यातायात पर प्रतिबंध लगा दिया, चाहे वह सड़क–मार्ग हो रेल मार्ग या फिर जलमार्ग। यह नाकाबंदी ब्रसेल्स संधि के विरोध में भी थी, जिसे ब्रिटेन, फ्रांस और बेल्जियम के बीच आपसी रक्षा संधि के रूप में प्रतिपादित किया गया था। इस संधि में हस्ताक्षरकर्ताओं को ये निर्देश दिए गए थे कि जर्मनी अथवा यूरोप के किसी अन्य हमला किए जाने की स्थिति में वे हर सदस्य राष्ट्र को सैन्य सहायता उपलब्ध कराएंगे। यद्यपि उसके मूल पाठ में सोवियत संघ के नाम का उल्लेख नहीं किया गया था, फिर भी उसका मुख्य लक्ष्य जर्मनी न होकर सोवियत संघ ही था।

जब मार्च 1946 तक सोवियत सेना ईरान से वापस नहीं हुई तो एक संकट पैदा हो गया। युद्ध के दौरान ईरान सोवियत संघ तक पश्चिमी सहायता पहुंचाने का एक आम मार्ग था। ईरान में तेल भी प्रचुर मात्रा में था। सोवियत संघ ने ईरान के तेल पर पैठ बनाने का विशेषाधिकार मांगा और सोवियत संघ के कब्जे वाले क्षेत्रों में ईरान की सेना को प्रवेश की अनुमति नहीं दी। तब अमेरिका ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में सोवियत संघ की सेनाओं द्वारा ईरान छोड़ने के लिए दबाव बनाया।



मानचित्र 25.1 महाशक्तियों के मध्य टकराव – 1950

शीतयुद्ध का युग तथा इसकी राजनीति

टर्की में सोवियत संघ ने बोसपोरम जलडमरूमध्य के अंतर्राष्ट्रीयकरण की मांग की। पश्चिमी मित्र–राष्ट्रों ने इसका विरोध किया। ग्रीस में अमेरिका तथा सोवियत संघ ने विरोधी ताकतों को समर्थन दिया। ग्रीस की रूढ़िवादी ताकतों ने अमेरिका से मदद की भी मांग की थी।

इसी पृष्ठभूमि में अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रूमैन ने अपनी एक नीति प्रतिपादित की, जिसे **ट्रूमैन सिद्धांत** के नाम से जाना जाता है। ट्रूमैन का सिद्धांत 'अवरोध' पर आधारित था अर्थात् साम्यवाद को उन क्षेत्रों तक सीमित या अवरुद्ध करना, जिन्हें वह पहले ही जीत चुका है, और उसे और आगे न बढ़ने देना। इस प्रकार, अमेरिका की विदेश नीति अलगाववाद से बदलकर हस्तक्षेपवादी की हो गई। इस हस्तक्षेप का उद्देश्य था विश्व में कहीं पर भी साम्यवाद के विस्तार को रोकना।

कुछ पश्चिमी यूरोपीय देशों में भी साम्यवाद काफी तेजी से बढ़ा। यूरोप के युद्ध से जर्जर देशों को युद्ध के बाद अनेक सुधारों की आशा थी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। यूरोप की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएँ तथा उद्योग चरमरा रहे थे और इन देशों में साम्यवादी दलों की संख्या निरंतर बढ़ रही थी। इसी पृष्ठभूमि में अमेरिका के राज्य सचिव मार्शल ने यूरोप के आर्थिक पुनर्निर्माण की योजना पेश की, जिसे **मार्शल योजना** के नाम से जाना जाता है। इस योजना में 20 वर्षों की अवधि में अमेरिका द्वारा 10 बिलियन डॉलर से अधिक की राशि यूरोप को दिए जाने की बात कही गई थी। यह आशा की गई कि इतने बड़े धन से यूरोप युद्ध में हुई क्षति की भरपाई कर सकेगा और इस प्रकार अपनी भौतिक एवं राजनीतिक दशा सुधार पाएगा। यह भी माना गया कि स्थिर यूरोप ही आंतरिक एवं बाह्य साम्यवाद की चुनौतियों का सामना कर सकेगा। महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि सहायता का प्रस्ताव पूर्वी यूरोपियन देशों के सामने भी रखा गया था। ट्रूमैन सिद्धांत एवं मार्शल योजना के जवाब में सोवियत संघ ने अपनी ओर से कॉमिनफॉर्म (साम्यवादी सूचना ब्यूरो) को पुनर्जीवित कर दिया। उसकी स्थापना सोवियत प्रभाव क्षेत्र वाली सभी साम्यवादी सरकारों को मॉस्को की नीतियों के अनुरूप बनाए जाने के लिए की गई थी। इस प्रकार यह यूरोप में साम्यवाद को और मजबूत करने का प्रयास था। 4 अप्रैल, 1949 को उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन अर्थात् नॉर्थ अटलांटिक ट्रीटी आर्गनाइजेशन (नाटो) पर हस्ताक्षर किए गए। यह संधि 'अवरोध' की नीति के अनुसरण में हस्ताक्षरित की गई। यह संधि अमेरिका और अन्य यूरोपीय देशों ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, कनाडा, डेनमार्क, आइसलैंड, इटली, नीदरलैंड, लक्जेमबर्ग, नार्वे और पुर्तगाल के बीच हुई। यह संधि सोवियत ब्लॉक के खिलाफ एक सैन्य गठजोड़ था। नाटो संधि का अनुच्छेद–V केंद्रीय उपबंध है, जिसके अनुसार नाटो के किसी भी सदस्य पर हुए आक्रमण को अन्य सभी सदस्य देशों पर आक्रमण समझा जाएगा। फिर भी प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को यह तय करने का अधिकार था कि वह अन्य सदस्य राष्ट्रों को किस प्रकार की सहायता प्रदान करना चाहता है। बाद में ग्रीस एवं जर्मनी भी नाटो के सदस्य बन गए।

चीन तथा कोरिया में 1945 के बाद हुई गतिविधियों से और सघन हो गया। शीतयुद्ध में चीन 1949 में माउत्से तुंग के नेतृत्व में साम्यवादियों को सत्ता मिल गई और चीनी लोकतांत्रिक गणतंत्र की स्थापना हुई। संयुक्त राज्य अमेरिका ने चीनी लोकतांत्रिक गणतंत्र को मान्यता देने से इंकार कर दिया। उसे संयुक्त राष्ट्र में प्रवेश भी नहीं दिया गया, केवल ताइवान (राष्ट्रवादी चीन) को ही मान्यता दी गई। अमेरिका ने चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ से बाहर रखने के लिए अपनी वीटो शक्ति का प्रयोग किया और रूस ने संयुक्त राष्ट्र संघ का कारगार ढंग से बहिष्कार कर दिया। फिर भी इसका मतलब यह नहीं निकाला जाना चाहिए कि सोवियत संघ एवं चीन के बीच मित्रता स्थापित हो गई। 1950 के बाद इनके संबंध बिगड़ने लगे।

द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान की हार के बाद कोरिया, उत्तरी और दक्षिणी दो भागों में बंट गया। पोट्सडम सम्मेलन के अनुसार उत्तरी कोरिया सोवियत संघ के नियंत्रण में और दक्षिण कोरिया अमेरिका के नियंत्रण में आया। दक्षिणी कोरिया में एक कारगर तानाशाही व्यवस्था स्थापित हुई, जिसे अमेरिका का सीधा समर्थन हासिल था। उत्तरी कोरिया में सोवियत संघ समर्थक सरकार स्थापित हुई। न तो सोवियत संघ ने और न ही अमेरिका ने अपने विरोध वाली सरकार को मान्यता दी। 1950 में उत्तरी कोरिया ने दक्षिण कोरिया पर आक्रमण कर दिया। संयुक्त राष्ट्र संघ, ने जिसकी स्थायी सुरक्षा परिषद में पूंजीवादी राष्ट्रों का दबदबा था; उत्तरी कोरिया को आक्रमणकारी घोषित कर दिया और उत्तरी कोरिया के आक्रमण का जवाब देने के लिए एक संयुक्त कमान का गठन किया। अमेरिका के जनरल को इसका कमांडर बनाया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ की सेनाओं ने उत्तरी कोरिया की सेना को दक्षिण कोरिया से खदेड़ दिया और उत्तरी कोरिया की सीमा में काफी अंदर चीन की सीमा तक घुस गई। तब संयुक्त राष्ट्र संघ की सेनाओं को दक्षिण कोरिया में धकेलने के लिए चीन ने उत्तरी कोरिया का साथ देना शुरू कर दिया। अंततः 1953 में एक युद्ध–विराम पर हस्ताक्षर किए गए, जिससे एक खुले युद्ध का खतरा टल गया। कोरिया का संकट शीतयुद्ध का पहला सैन्य संघर्ष था। सोवियत संघ और अमेरिका तथा चीन एक दूसरे के साथ ज्यादा सीधी लड़ाई में शामिल नहीं हुए। (यद्यपि उत्तरी कोरिया के हवाई जहाजों को वास्तव में सोवियत संघ के पायलट उड़ा रहे थे) लेकिन वे एक–दूसरे पर आश्रित शक्तियों (कोरियाई गणतंत्र और कोरियाई प्रजातांत्रिक गणराज्य, जिनमें से असल में कोई भी प्रजातंत्र नहीं था) से लड़ रहे थे।

पाठगत प्रश्न 25.3

1. याल्टा सम्मेलन में किस देश के भविष्य को लेकर चर्चा हुई?

2. 'लोहे का आवरण' नामक प्रसिद्ध शब्दावली किस नेता ने गढ़ी थी?

3. ट्रूमैन सिद्धांत का क्या उद्देश्य था?

4. नाटो का पूरा नाम क्या है?

25.4 शीतयुद्ध का दूसरा चरण : ट्रूमैन स्टालिन के बाद का युग

द्वितीय चरण में तनाव काफी कम हो गया था, लेकिन शीतयुद्ध का कोई अंत नहीं था। दोनों देशों के सर्वोच्च नेतृत्व में परिवर्तन हुआ। अमेरिका में सन् 1953 में ट्रूमैन के शासन का अंत हो गया और 1953 में ही सोवियत संघ में स्टालिन की मृत्यु हो गई। स्टालिन के बाद निकिता खुश्चेव ने बागडोर संभाली, जिसने स्टालिन की अनेक नीतियों में बदलाव कर दिया। नीति के मोर्चो पर खुश्चेव ने यूरोप में तनाव की नीति करने का पक्ष लिया



आपकी टिप्पणियाँ

और वहाँ की कुछ समस्याओं के लिए सोवियत संघ की जिम्मेवारी को स्वीकारा। दूसरी ओर उसने पोलैंड एवं हंगरी में सोवियत विरोधी नेताओं का सरेआम दमन किया और पोलैंड और हंगरी के राष्ट्रवाद की बात करने वाले उदारवादियों तथा कैथोलिकों की गतिविधियों को 'फासीवादी' कहकर उनकी निंदा की। सोवियत संघ के नेताओं ने इस दौरान अमेरिका में चल रहे जातीय संघर्ष पर भी तीखी टिप्पणियां की, जिसे वे पूंजीवादी असमानता के अपरिहार्य परिणाम बताते थे। बदले में अमेरिका एवं उसके मित्र राष्ट्रों ने पूर्वी यूरोपीय देशों में सोवियत संघ विरोधी भावनाएं भड़काने का प्रयास किया। सोवियत संघ में नेतृत्व परिवर्तन और खुश्चेव द्वारा स्टालिनवाद की निंदा ने पोलैंड एवं हंगरी में विद्रोह को बढ़ावा दिया। सन् 1956 में पोलैंड के पोजनान शहर में विद्रोह हो गया, लेकिन उसे दबा दिया गया। पोलैंड का साम्यवादी दल दो धड़ों में बंट गया, जिनमें से एक स्टालिन के समर्थक थे तो दूसरे गोमुल्का के साथ थे। गोमुल्का के समर्थकों को सफलता मिली और पोलैंड की साम्यवादी पार्टी ने 'समाजवाद की तरफ एक राष्ट्रीय मार्ग' अपनाने का निर्णय लिया। इसका अर्थ था कि जब तक पोलैंड पूरे पूर्वी यूरोप में सोवियत संघ के नेतृत्व का सम्मान करता रहेगा, तब तक वह अपने मामलों (उदाहरण के लिए आर्थिक और सैनिक मामलों) पर ज्यादा नियंत्रण रख सकेगा। इस प्रकार यूगोस्लाविया के बाद पोलैंड राष्ट्रीय साम्यवाद के रास्ते पर चलने वाला दूसरा देश बन गया, जिसे अधिकतर सोवियत नेताओं ने सीमाओं के भीतर स्वीकृति प्रदान की।

1956 में हंगरी में लोग बगावत में खड़े हो गए। प्रारंभ में सोवियत संघ कुछ सुधार लाने के लिए सहमत हुआ, लेकिन जब हंगरी ने सोवियत सेना की पूर्ण वापसी की मांग करा दी और वारसा संधि (जिसे सोवियत संघ ने नाटो के जवाब में बनाया था) से पीछे हट गया तब इस 'नए कदम' से सोवियत संघ का नेतश्त्व नाराज हो गया। हंगरी द्वारा अंततः स्वयं को निरपेक्ष घोषित करने तथा वारसा संधि से अलग हो जाने के परिणामस्वरूप हंगरी के तत्कालीन शासक इम्रे नागी को मृत्युदंड दिया गया और सोवियत संघ ने हंगरी पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार सोवियत संघ ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह पोलैंड में उदारीकृत साम्यवादी शासन अथवा बहुदलीय प्रजातंत्र स्वीकार करने को तैयार नहीं। अमेरिका ने इस संबंध में कुछ नहीं किया, क्योंकि उसकी किसी कार्रवाई से सोवियत संघ और अमेरिका के बीच सीधी लड़ाई शुरू हो जाती।

चीनी क्रांति के बाद जनरल चियांग काई–शेक अपने समर्थकों को ताइवान जलडमरूमध्य के पार ले गया और वहाँ चीनी गणराज्य की स्थापना की, जो 1971 तक संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन का प्रतिनिधित्व करता रहा। 1950 से पहले अमेरिका की नीति यह थी कि साम्यवादी चीन (चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य) के द्वारा ताइवान पर आक्रमण करने की स्थिति में वह हस्तक्षेप नहीं करेगा। लेकिन 1950 में कोरिया युद्ध के पश्चात् अमेरिका की नीति में बदलाव आया और 1953 के बाद अमेरिकी राष्ट्रपति आइजनहावर ने ताइवान में भारी अमेरिकी सैन्य सशस्त्रीकरण को अनुमति दे दी।

1954 में चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य (चीन) ने यह घोषणा कर दी कि ताइवान को स्वतंत्र कराया जाना है और सैन्य कार्रवाई प्रारंभ कर दी। अमेरिका ने इस पर परमाणु हथियार प्रयोग करने की धमकी दे दी और चीन व अमेरिका के बीच युद्ध अवश्यम्भावी लगने लगा। साम्यवादी चीन ने इस मामले में थोड़ा पीछे हटने का रुख दिखाया और नाटो देशों ने यह घोषणा कर दी कि वे अमेरिका द्वारा परमणु हथियारों के प्रयोग का

समर्थन नहीं करेंगे। इस अवधि के दौरान चीनी लोकतांत्रिक राज्य के नेताओं का विश्वास था कि परमाणु हथियारों को ले जाने वाली लंबी दूरी की सुपुर्दगी–प्रणाली (आईसीबीएम) की दिशा में सोवियत संघ द्वारा की गई उन्नति ने यूरोप का शक्ति संतुलन पूर्वी खेमे के पक्ष में कर दिया है। चीनी लोकतांत्रिक राज्य के नेताओं को यह मालूम न था कि रूस के सैन्य पुनरुत्थान का उनके लिए क्या मतलब है। शायद इससे अमेरिका द्वारा चीन को धमकाने की संभावना कम होगी। जब 1957 में चीन ने किमोत्र पर बमवर्षा की, तब रूस ने ही चीन पर रुकने का दबाव डाला था। अंततः चीन एवं रूस के बीच सीधा युद्ध होने से तो बच गया, लेकिन रूस एवं अमेरिका पर चीनी साम्यवादी संदेह और बढ़ गया।

19वीं सदी के मध्य में ब्रिटिश एवं फ्रांस ने मिलकर स्वेज नहर का निर्माण किया था। स्वेज नहर कंपनी के पास 1869 से लेकर 99 वर्ष की अवधि तक इस नहर का संचालन करने और उससे लाभ कमाने का अधिकार था। 1956 में मिस्र द्वारा स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण करने अर्थात् उसे मिस्र का राष्ट्रीय क्षेत्र बनाने के निर्णय ने संकटों की एक शृंखला पैदा कर दी। ब्रिटेन, फ्रांस और इजराइल ने मिस्र के विरुद्ध सुनियोजित सैन्य कार्रवाई शुरू करने का निर्णय लिया। अमेरिका सैन्य शक्ति के प्रयोग के खिलाफ था। लेकिन इजरायल ने ब्रिटेन एवं फ्रांस के साथ मिलकर मिस्र पर आक्रमण कर दिया। इससे अमेरिका को अपने ही मित्र राष्ट्रों की निंदा करने के लिए बाध्य होना पड़ा और शीतयुद्ध प्रारंभ होने के बाद पहली बार अमेरिका और रूस इस विषय पर साथ हो गए। ब्रिटेन और फ्रांस को नहर के लिए संयुक्त राष्ट्र शांति सेना स्वीकार करनी पड़ी। फ्रांस जिसने अभी तक अमेरिकी सुरक्षा खेमे से अलग रहने का प्रयास किया था, का शाही पतन 'स्वेज संकट' के बाद तेजी से बढ़ने लगा। ब्रिटेन भी अब सामान्यतः एक दोयम दर्जे की शक्ति और अमेरिका के एक कनिष्ठ पार्टनर मात्र के रूप में जाना जाने लगा था।

क्यूबा में अनेक वर्षों तक संघर्ष करने के बाद सन् 1959 में फिदेल कास्त्रो सत्ता में आए। कुछ ही वर्षों में वह क्यूबा को सोवियत संघ के निकट ले आया। अमेरिका ने क्यूबा के साथ कूटनीतिक संबंध काट लिए, क्यूबाई चीनी खरीदने से इनकार कर दिया और अमेरिका में निर्वासन में रह रहे कास्त्रो–विरोधी क्यूबाइयों द्वारा 1961 में क्यूबा पर किए गए 'हमले' का समर्थन किया। निर्वासित क्यूबाइयों ने पिग्स की खाड़ी में उतरने का प्रयास किया। यह 'आक्रमण' पूर्णतः असफल साबित हुआ, क्योंकि निर्वासितों को क्यूबा की जनता से कोई सहायता नहीं मिली। सोवियत संघ ने तब क्यूबा में एक परमाणु बमवर्षक और जमीन से जमीन पर मार करने वाली मिसाइल तैनात करने का निर्णय किया। (इनमें से कुछ तो अमेरिका से महज 150 कि.मी. दूरी पर तैनात थीं) सोवियत संघ ने दर्जनों लंबी दूरी तक मार करने वाली मिसाइलें भी क्यूबा भेजीं। टर्की एवं सीधे रूस की सीमा से (1949 से अमेरिका ने नार्वे से लगते अन्य स्थानों पर बमवर्षक और मिसाइल बेस बना लिए थे।) अमेरिका ने बदले में क्यूबा की नाकेबंदी करने की घोषणा कर दी। दोनों महाशक्तियों के बीच युद्ध होने की प्रबल संभावना थी। प्रारंभ में सोवियत संघ ने नाकेबंदी की निंदा की, लेकिन बाद में मिसाइलों को वापस लेने के लिए इस शर्त पर सहमत हो गया कि अमेरिका क्यूबा पर हमला नहीं करेगा और टर्की से अपनी मध्यम दूरी तक मार करनेवाली मिसाइलों को हटा लेगा। अमेरिका ने पहली शर्त मंजूर कर ली और फिर टर्की से अपनी मिसाइलें भी इस बहाने से वापस हटा लीं कि वे अब पुरानी हो चुकी हैं। यह संभवतः पहला अवसर था जब शीतयुद्ध के दौरान दोनों महाशक्तियां परमाणु–युद्ध के कगार पर पहुंच गई थीं।



आपकी टिप्पणियाँ

सोवियत संघ ने वास्तविक रूप में पश्चिमी शक्तियों को छह माह के अंदर बर्लिन का पूर्ण निःशस्त्रीकरण करने का अल्टीमेटम दे दिया और कहा कि यदि अन्य देश भी ऐसा करते हैं तो वह भी अपनी सेना को वापस बुला लेगा। यदि यह करार छह माह के भीतर पूरा नहीं किया जाता है तो सोवियत संघ पूर्वी बर्लिन में अपने अधिग्रहण–अधिकार के जर्मन प्रजातांत्रिक गणराज्य (पूर्वी जर्मनी) को देगा। जब सोवियत संघ की सेना ने शहर को चारों ओर से घेर लिया, तब पश्चिमी बर्लिन वासी एवं विदेशी अधिग्रहणकर्ताओं को एक 'हवाई पुल' उपलब्ध कराया गया। सोवियत नेताओं ने शीघ्र ही महसूस किया कि वे पश्चिमी ताकतों को आसानी से बर्लिन शहर से बाहर नहीं निकाल सकेंगे, जिसे अपने कब्जे में करने के लिए दूसरे विश्व युद्ध के दौरान उन्हें 3 लाख सैनिकों की बलि चढ़ानी पड़ी थी। बर्लिन संकट में विजय पाना पश्चिमी ताक़तों के लिए आसान नहीं था।

1950 के दशक में बर्लिन के रास्ते से अनेक पेशेवर लोग जब पूर्वी जर्मनी से पश्चिमी जर्मनी की ओर पलायन करने लगे तो सोवियत संघ की चिंता बढ़ गई। जब उसने बर्लिन की स्थिति को लेकर पश्चिमी ताकतों पर दबाव बनाना शुरू किया तो उन्होंने अधिग्रहण की कुछ शर्तों में परिवर्तन कर दिया ताकि जर्मनी को लेकर किसी बड़े फसाद से बचा जा सके। 1955 के बाद पश्चिमी जर्मनी–जर्मन संघीय गणतंत्र का पुनः सैन्यीकरण किया जा रहा था और उसे अधिकतर पश्चिमी अधिग्रहण क्षेत्रों पर प्रभावी नियंत्रण दे दिया गया, जहां कुछ समय के लिए साम्यवादियों को निर्वासित कर दिया गया था। 1961 में सोवियत संघ ने पूर्वी जर्मनी से पश्चिमी जर्मनी की ओर पलायन करने वालों को रोकने के लिए एक कंक्रीट की दीवार बना दी। यह बर्लिन की दीवार तब तक शीतयुद्ध की राजनीति का प्रतीक बनी रही, जब तक इसे सन् 1989–90 में जर्मनवासियों ने नहीं तोड़ दिया। शीतयुद्ध के दूसरे चरण में दोनों महाशक्तियों के बीच तनाव कम होने लगा था, लेकिन कुछ अवसरों पर जैसे 1962 में क्यूबा को मिसाइल संकट में इन दोनों में तनाव काफी बढ़ जाता था। परमाणु–युद्ध की संभावना और उसके भयानक परिणाम दो ऐसे कारक थे, जिन्होंने दोनों महाशक्तियों को अपनी सोच बदलने के लिए बाध्य किया। दोनों ही देशों में सेना व्यय कम करने का दबाव बना।

दोनों महाशक्तियों के बीच संबंध सुधारने के लिए कुछ कदम उठाए जा चुके थे। 1963 में सोवियत संघ, अमेरिका और ब्रिटेन ने एक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि पर हस्ताक्षर किए थे और इस बात पर सहमति व्यक्त की थी कि अब परीक्षण जमीन के नीचे किए जाएँगे ताकि वातावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सके। उसी वर्ष (हाट लाइन) मॉस्को एवं वाशिंगटन के बीच (तथाकथित हॉटलाइन) एक टेलीफोन सेवा प्रारंभ की गई ताकि तत्काल संपर्क स्थापित करना सुनिश्चित किया जा सके।

पाठगत प्रश्न 25.4

1. किस सोवियत नेता ने यूरोप को लेकर तनाव घटाने और साथ ही सोवियत विरोधी नेताओं और विचारों का दमन भी करने की नीति अपनाई?



2. पीआरसी का पूरा नाम क्या है?

3. बर्लिन की दीवार कब गिरी?

25.5 तनाव में कमी

अब सोवियत संघ एवं अमेरिका के संबंधों ने एक नए चरण में प्रवेश किया, जिसे **डेटांट** यानी तनाव में कमी कहा जाता है। 'डेटांट' शब्द का प्रयोग पश्चिम एवं पूर्व के बीच तनाव में शिथिलता लाने के लिए किया गया। डेटांट में चीन को भी ध्यान में रखना जरूरी था। अमेरिका तथा चीन के रिश्तों में कई वर्षों से खटास चली आ रही थी। चीन के साथ तनाव–शैथिल्य एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। शीतयुद्ध इस अवधि के दौरान समाप्त नहीं हुआ, लेकिन आपसी समझ में काफी सुधार आया। अमेरिका के एक अधिकारी हेनरी किसिंजर ने डेटांट को विरोधी ताकतों के बीच सामंजस्य का तरीका बताया है। लियेनिड ब्रेझनेव जिसने क्यूबा के मिसाइल–संकट के बाद सोवियत नेता के रूप में खुश्चेव से सत्ता हासिल की, के अनुसार डेटांट मतभेद एवं विवादों को ताकत, धमकियों एवं सैन्य शक्ति के प्रदर्शन से नहीं अपितु शांतिपूर्वक ढंग से आमने–सामने बैठकर सुलझाने की इच्छा बताया है। इसका अर्थ एक–दूसरे पर कुछ भरोसा करना तथा दूसरे के जायज हितों के बारे में सोचना भी है।' अमेरिका के राष्ट्रपति निक्सन को डेटांट का जनक कहा जाता है। लेकिन यह चीन–अमेरिका संबंधों के बारे में अधिक उपयुक्त है। यद्यपि निक्सन ने 1940–60 में अपने कैरियर की शुरुआत एक कट्टर साम्यवाद–विरोधी के रूप में की थी, लेकिन जब वे 1968 में राष्ट्रपति बने तो उन्होंने अमेरिका–चीन संबंधों को सुधारने के प्रयास किए।

दोनों ने तनाव कम करने की दिशा में अनेक कदम उठाए। 1968 में यू.के., यू.एस.ए. एवं यू.एस.एस.आर. के बीच एक परमाणु अप्रसार संधि हुई। दोनों महाशक्तियों के बीच झगड़े की मुख्य वजह थे जर्मनी एवं बर्लिन। 1969 में पश्चिमी जर्मनी 'ओस्टथपोलिटिक' की नीति प्रारंभ की, जिसका अर्थ है, 'पूर्व के लिए नीति'। पश्चिमी जर्मनी से पूर्वी यूरोपीय देशों के साथ सामान्य संबंध बनाए। दोनों जर्मनियों ने एक–दूसरे को मान्यता प्रदान की और महाशक्तियों ने इन्हें दो स्वतंत्र एवं विधिसम्मत अलग राज्यों के रूप में मान्यता दे दी। दोनों जर्मनी से 1973 में संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य बन गए। 1972 में अमेरिका एवं सोवियत संघ ने सामरिक परिसीमन संधि (साल्ट I) पर हस्ताक्षर किए। इस संधि में शस्त्रों की संख्या में कोई कटौती नहीं की गई, लेकिन इससे हथियारों की होड़ धीमी हो गई। सोवियत संघ एवं अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति (क्रमशः ब्रेझनेव और निक्सन) तीन बार मिले। अमेरिका ने सोवियत संघ को गेहूं निर्यात करना भी शुरू कर दिया। जुलाई 1975 में 35 देश हेलसिंकी (फिनलैंड) सम्मेलन के लिए इकट्ठे हुए। इसके अंतिम निर्णय पर हस्ताक्षर किए जाने के कुछ समय के लिए शीतयुद्ध की समाप्ति के रूप में देखा गया। इसके अंतिम निर्णय में दस सिद्धांत थे, जिनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यह था कि सभी देश यूरोप की सीमा को स्वीकार करेंगे, जो द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद खींची गई थी। इस प्रकार जर्मनी के विभाजन को



आपकी टिप्पणियाँ

स्वीकृति मिल गई। साम्यवादी देशों ने अपनी जनता को भाषण की स्वतंत्रता एवं देश छोड़ने की स्वतंत्रता सहित 'मानवाधिकार' देने का वचन दिया।

डेटांट की अवधि के दौरान अमेरिका तथा चीन के संबंधों में काफी सुधार आया। राष्ट्रपति निक्सन एवं राज्य सचिव हेनरी किसिंजर ने चीन के साथ तनाव कम करने की दिशा में विशेष प्रयास किए। 1971 में चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में शामिल कर लिया गया और ताइवान को निकाल दिया गया। 1978 में अमरिका ने राष्ट्रवादी चीन की मान्यता रद्द कर दी और 1979 में चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य को मान्यता दे दी और दोनों ने एक–दूसरे के यहां राजदूत भेजे।

पाठगत प्रश्न 25.5

1. डेटांट क्या था? इसका जनक कौन था?

   _____

2. एनपीटी क्या थी?

   _____

3. साल्ट–I क्या था?

   _____

4. ऑस्टोपोलिटिक की नीति क्या थी?

   _____

25.6 नया शीत युद्ध

हेलसिंकी सम्मेलन के बाद तनाव शैथिल्य यानी डेटांट की प्रक्रिया का वेग धीमा पड़ गया। अमेरिका एवं सोवियत संघ के संबंध इतने खराब हो गए कि 1980 तक ऐसा लगने लगा कि शीतयुद्ध फिर से शुरू हो गया है। इस नए तनाव का उल्लेख नए शीतयुद्ध के रूप में किया गया। नया शीतयुद्ध पहले के शीतयुद्ध से इस अर्थ में अलग था कि यह वैचारिक मतभेदों के बजाय शक्ति–संतुलन पर आधारित था। नए शीतयुद्ध के दौर में एक नया शक्ति खेमा चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में सामने आया, जो ऐसी शक्ति के रूप में उभरा, जिसे न तो हराया जा सकता था और न ही जिसकी अनदेखी की जा सकती थी। 1979 में अफगानिस्तान में सोवियत सेना का दखल एक महत्त्वपूर्ण बिंदु था। नए शीतयुद्ध के दौरान दोनों ही देश अपने–अपने प्रभाव को, खासकर यूरोप से बाहर, बढ़ाने में जुट गए। यूरोप से बाहर चल रहे संघर्षों को इतनी अधिक महत्ता मिलने लगी, जितनी कभी नहीं मिली थी। सोवियत संघ के लिए डेटांट का अर्थ केवल यूरोप में यथास्थिति मंजूर करना था। भारत–चीन, अफ्रीका, अफगानिस्तान आदि में दोनों देशों ने विरोधी समूहों को समर्थन देना शुरू कर दिया। सोवियत संघ ने अफगानिस्तान के राष्ट्रपति को बदलकर अपनी पसंद का राष्ट्रपति बैठा दिया। लगभग 1,00,000 सोवियत सैनिक अफगानिस्तान में तैनात कर दिए गए। अमेरिका ने अफगानिस्तान में सोवियत सैनिकों की उपस्थिति को ईरान के लिए खतरा माना और अपने युद्धपोत खाड़ी में भेज

दिए। दोनों देश विनाशकारी हथियार बनाने की होड़ में जुटे थे। अमेरिका के राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने स्ट्रेटेजिक डिफेंस इनीशियेटिव (एसडीआई) नामक एक नई हथियार–प्रणाली विकसित करने की योजना को मंजूरी दे दी, जो स्टार वार्स के रूप में भी जानी गई।

25.7 शीतयुद्ध का अंत

अनेक पूर्वी यूरोपियन देशों में साम्यवाद के समाप्त होने के साथ ही शीतयुद्ध का अंत हो गया। यह पतन बहुत तेजी से हुआ और अंततः साम्यवाद अपने जन्मस्थान सोवियत संघ से भी समाप्त हो गया। यह प्रक्रिया 1988 में पोलैंड में शुरू हुई, जब सॉलिडैरिटी ट्रेड यूनियन ने बड़ी–बड़ी सरकार–विरोधी हड़तालें प्रारंभ कर दीं, जिनसे सरकार को स्वतंत्र चुनाव करवाने पर मजबूर होना पड़ा, जिसमें साम्यवादियों की करारी हार हुई। यही स्थिति हंगरी, बुल्गेरिया, रोमानिया और चेकेस्लोवाकिया आदि में भी हुइ। पूर्वी जर्मनी में साम्यवादी नेता ऐरिक होनेफर ने प्रदर्शनकारियों को बल–प्रयोग करके खदेड़ना चाहा, लेकिन उसके साथियों ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। 1989 के अंत तक पूर्वी जर्मनी में साम्यवादी सरकार को हटाना पड़ा और शीतयुद्ध की प्रतीक की दीवार को जनता ने जोश में आकर 1989 में तोड़ दिया। जिस प्रकार से बर्लिन की दीवार के बनने को शीतयुद्ध की शुरुआत के रूप में देखा जाता है, वैसे ही इसके टूटने को शीतयुद्ध की समाप्ति के रूप में देखा गया। 1990 में पूर्वी जर्मनी में पश्चिमी जर्मनी की मुद्रा को चलाया गया और अंततः दोनों जर्मनी पुनः एक हो गए। जर्मनी संघीय गणराज्य के चांसलर को एकीकृत देश की सरकार का मुखिया चुना गया और जिसने बाजार–आधारित अर्थव्यवस्था एवं पश्चिमी देशों जैसे प्रजातंत्र को अपनाया।

सोवियत संघ में भी साम्यवाद खत्म हो गया। मिसाइल गोर्वचेव ने अपनी ग्लासनॉस्त (खुलापन) एवं प्रेसट्रोइका (पुनर्निर्माण) जिसका अर्थ है आर्थिक एवं सामाजिक सुधार जैसी नीतियों से देश को पुनः मजबूत करने के अनेक प्रयास किए। लेकिन ये उपाय सफल नहीं हुए और 1991 तक सोवियत संघ अलग–अलग गणराज्यों में बंट गया और अब रूस का वह पुराना रूतबा नहीं रह गया। जो सोवियत संघ का हुआ करता था। शीतयुद्ध का अंत हो गया। अनेक राजनीतिक टिप्पणीकारों ने दलीलें दीं कि शीतयुद्ध के अंत के साथ ही विश्व की सभी समस्याएं समाप्त हो जाएंगी, लेकिन अब नई समस्याएं और संघर्ष के नए क्षेत्र उभर आए हैं।

पाठगत प्रश्न 25.6

1. एसडीआई क्या थी?

2. ग्लॉसनॉस्त एवं पेरेस्ट्रोइका क्या थे?

3. शीतयुद्ध की समाप्ति का प्रतीक कौन–सा था?



आपकी टिप्पणियाँ

आपने क्या सीखा

द्वितीय विश्व युद्ध के फौरन बाद शीतयुद्ध प्रारंभ हो गया था, यद्यपि इसके संकेत युद्ध के दौरान ही मिलने लगे थे। शीतयुद्ध के प्रारंभिक दौर में, अमेरिका तथा रूस दोनों ने अपने प्रभाव और विचारधारा को बढ़ाने के प्रयास किए। इन दोनों के बीच संदेह एवं अविश्वास था। दूसरे चरण में दोनों देशों के बीच तनाव में कुछ कमी आई। यद्यपि संदेह एवं अविश्वास अभी भी बना हुआ था। डेटांट के तुरंत बाद नया शीतयुद्ध प्रारंभ हो गया। इस अवधि में एक नया शक्ति खेमा चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में उभर कर आया। पूर्वी यूरोपीय देशों तथा रूस में साम्यवाद की समाप्ति के बाद ही शीतयुद्ध समाप्त हुआ।

पाठांत प्रश्न

1. शीतयुद्ध से आप क्या समझते हैं? यह खुले युद्ध से किस प्रकार अलग था?
2. शीतयुद्ध के लिए जिम्मेदार कुछ कारकों का उल्लेख कीजिए।
3. शीतयुद्ध के पहले चरण के दौरान पोलैंड के मुद्दे पर चर्चा करें।
4. बर्लिन नाकाबंदी का क्या अर्थ है?
5. शीतयुद्ध के दूसरे चरण के दौरान स्वेज नहर की संकट पर चर्चा करें।
6. शीतयुद्ध में डेटांट के चरण का वर्णन करें।
7. नया शीतयुद्ध क्या है? यह शीतयुद्ध से किस रूप में अलग था?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

25.1

1. राजनीतिक एवं आर्थिक उदारीकरण और मार्क्सवाद–लेनिनवाद।
2. वॉइस ऑफ अमेरिका और रेडियो मॉस्को

25.2

1. 25.2 का तीसरा पैरा देखें।
2. 25.2 का तीसरा पैरा देखें।
3. 25.2 का अंतिम से पहला पैरा देखें। पूर्वी यूरोप सोवियत संघ द्वारा, पश्चिमी यूरोप अमेरिका द्वारा।

25.3

1. पोलैंड

2. चर्चिल
3. अवरोध नियंत्रण में करना
4. नार्थ एटलांटिक ट्रीटी आर्गेनाइजेशन

25.4

1. निकिता ख्रुश्चेव
2. लोकतांत्रिक पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना यानी चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य।
3. 1989–90

25.5

1. 'डेटांट' पूर्व–पश्चिम संघर्ष में कमी के लिए प्रयुक्त शब्द है। अमेरिकी राष्ट्रपति निक्सन इसके जनक थे।
2. न्यूक्लियर नॉन–प्रोलिफरेशन ट्रीटी यानी परमाणु अप्रसार संधि।
3. स्ट्रेटेजिक आर्म्स लिमिटेशन ट्रीटी–I यानी रणनीतिक शस्त्र परिसीमित संधि– I
4. पश्चिमी जर्मनी की नीति, जिसका मतलब था 'पूर्व के लिए नीति'।

25.6

1. स्ट्रेटेजिक डिफेंस इनिशियेटिव यानी रणनीतिक रक्षा पहल
2. खुलापन एवं पुनर्निर्माण
3. बर्लिन की दीवार का गिरना।

पाठांत प्रश्नों के उत्तर

1. देखें 25.1
2. देखें 25.2
3. देखें 25.3 अनुच्छेद 2
4. देखें 25.3 अनुच्छेद 5
5. देखे 25.4 अनुच्छेद 6
6. देखें 25.5
7. देखें 25.6

शब्दावली

कॉमिनफॉर्म – साम्यवादी सूचना ब्यूरो। सोवियत संघ ने 1947 में इसकी स्थापना की। अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी एकता को बढ़ावा देना इसका उद्देश्य था।



आपकी टिप्पणियाँ

अस्थिविकास चरण – 1945–47 के बीच शीतयुद्ध का प्रारंभिक चरण। इस चरण के बाद शीतयुद्ध सघन हो गया।

लौह आवरण – इस शब्द का निर्माण ब्रिटिश प्रधानमंत्री विस्टन चर्चिल द्वारा किया गया था। चर्चिल ने इसका प्रयोग बाल्कन राज्यों की स्थिति का विवरण देने के लिए किया था, जहाँ पर ग्रीस को छोड़कर सभी देश रूस के आधिपत्य मे आ गए थे।

बर्लिन नाकाबंदी – सोवियत संघ द्वारा बर्लिन पर लगाया गया प्रतिबंध, जिसके द्वारा उसने पश्चिमी क्षेत्रों से उसका संपर्क तोड़ दिया। पश्चिमी मित्र जर्मनी में मौद्रिक सुधार लाना चाहते थे।

ब्रसेल्स संधि – इस संधि के माध्यम से ब्रिटेन, फ्रांस और बेल्जियम ने जर्मनी के विरुद्ध एक साझा रक्षा समझौता किया था। लेकिन यह संधि मूलतः सोवियत संघ के विरुद्ध थी न कि जर्मनी के।

ट्रूमैन सिद्धांत – ट्रूमैन सिद्धांत एक अवरोध की नीति थी, जिसका उद्देश्य साम्यवाद को उन क्षेत्रों में सीमित या अवरुद्ध करना था, जहाँ उसने जड़ें जमा ली थीं।

मार्शल योजना – इस योजना में युद्ध की क्षति से उबरने के लिए अमेरिका द्वारा 20 वर्ष की अवधि में यूरोपीय देशों को 10 बिलियन डॉलर से अधिक धन देने का प्रावधान था।

नाटो – नार्थ अटलांटिक ट्रीटी आर्गेनाइजेशन, जिसका गठन अमेरिका तथा कुछ यूरोपीय देशों ने मिलकर किया था। यह सोवियत खेमे के खिलाफ सैन्य गठबंधन था।

डेटांट – पूर्व एवं पश्चिम के बीच तनाव कम होने के लिए प्रयुक्त शब्द। डेटांट की अवधि के दौरान दोनों महाशक्तियों के बीच संबंधों में पर्याप्त सुधार आया। इस दौरान चीन के साथ भी अमेरिका के संबंधों में सुधार आया।

साल्ट–I – स्ट्रेटेजिक आर्म्स लिमिटेशन ट्रीटी यानी रणनीतिक शस्त्र परिसीमित संधि, जो अमेरिका एवं सोवियत संघ के बीच पारित हुई। इससे शस्त्रों की दौड़ धीमी हो गई।

एसडीआई – स्ट्रेटेजिक डिफेंस इनिशियेटिव यानी रणनीतिक रक्षा पहल, जिसे स्टार बार के नाम से भी जाना जाता है। इससे विनाश के और नए हथियारों का विकास होने लगा।



आपकी टिप्पणियाँ

ग्लासनॉस्त – इस नीति का मतलब था खुलापन। इसे सोवियत संघ के राष्ट्रपति मिसाइल गोर्वाचेव ने प्रारंभ किया था। इसका उद्देश्य था देश को रूपांतरित करना और पुनः मजबूत बनाना।

पेरेस्ट्रोइका – सोवियत संघ के राष्ट्रपति मिखाइल गोर्वाचेव द्वारा शुरू की गई नीति जिसका उद्देश्य था आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों का पुनर्गठन करना।

ऑस्टपोलिटिक – इस नीति की शुरुआत पश्चिमी जर्मनी की सरकार ने की, जिसका अर्थ था 'पूर्व के लिए नीति'। पश्चिमी जर्मनी ने पूर्वी यूरोपीय देशों के साथ सामान्य संबंध बहाल कर लिए और दोनों जर्मनियों ने एक दायरे को मान्यता दे दी और साथ ही महाशक्तियों ने भी इन्हें स्वतंत्र और वैध राष्ट्रों का दर्जा प्रदान कर दिया।



26

राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन

बीसवीं सदी के दौरान औपनिवेशिक शासन के अधीन रहनेवाले लाखों लोग प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप से राष्ट्रीय स्वतंत्रता–संग्राम में संलग्न थे। 1945 से 1980 के बीच एशिया, अफ्रीका, ओशियाना (पश्चिमी प्रशांत महासागर में बसे द्वीप) और कैरिबियाई देशों के प्रायः समस्त भाग, जो यूरोपीय, जापानी और अमेरिकी शासन के अधीन थे, स्वतंत्र हो चुके थे और स्वयं को स्वतंत्र राष्ट्रों के रुप में संगठित कर चुके थे।

दूसरे विश्वयुद्ध (1939–1945) के दौरान, परिजित शक्तियों जर्मनी एवं जापान के साम्राज्यवादी और विस्तारवादी लक्ष्य विफल कर दिए गए। यहां तक कि ब्रिटेन, फ्रांस और नीदरलैंड जैसी विजयी औपनिवेशिक ताकतें भी अपनी साम्राज्यवादी प्रतिबद्धताएं पूरी करने में असमर्थ रहीं और उनके नेताओं पर 'विउपनिवेशीकरण' अर्थात् औपनिवेशिक शासन समाप्त करने का दबाव बढ़ने लगा। यह दबाव न केवल उनके अधीनस्थ उपनिवेशों की जनता एवं राष्ट्रीय नागरिकों की ओर से अपितु दो नई महाशक्तियों अमेरिका एवं सोवियत संघ की ओर से भी पड़ रहा था। 1945 के बाद अधिकांश पश्चिम अफ्रीका (अमेरिका का एशियाई उपनिवेश) और कुछ अन्य देशों ने बिना अधिक खून–खराबे के स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। केवल अल्जीरिया, हिंदचीन, मलाया, अंगोला, मोजांबिक और अन्य देशों को राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए वर्षों के सशस्त्र संघर्ष के बाद आजादी प्राप्त हो सकी।

राजनीतिक स्वतंत्रता तुरंत वैसे लाभ लेकर नहीं आई, जिनका उपनिवेशों की जनता ने सपना देखा था। नए राष्ट्रों को आर्थिक विकास तथा आधुनिकीकरण संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिनका हल ढूंढना उनके लिए 'नव–उपनिवेशीकरण' से बचने की दृष्टि से जरुरी था। अधिकतर स्वतंत्र राष्ट्रों में जीवन का स्तर वैसा नहीं था जैसा कि पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका के 'विकसित' देशों में था और आज अनेक व्यक्तियों का भी यह मत है कि औपचारिक रुप से स्वतंत्र हुए देशों की दुनिया में आज भी औपनिवेशिक शासन के रुप या शोषण के पुराने प्रतिमान विद्यमान हैं।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- कुछ राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलनों के बारे में जान पाएंगे;



- वि–उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाली वैश्विक राजनीतिक ताकतों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- उत्तर–उपनिवेशवादी दुनिया में पर–निर्भरता और असमानता के संबंध की चर्चा कर पाएंगे और
- राष्ट्रीय विकास संबंधी कुछ समस्याओं और उनके कुछ प्रस्तावित समाधानों के बारे में जान पाएँगे।

26.1 राष्ट्रीय स्वाधीनता और राष्ट्रीय विकास के मॉडल-वि-उपनिवेशीकरण का प्रारंभ

मॉडल

बीसवीं सदी के राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलनों के नेताओं ने नागरिकता के इस आधुनिक विचार को प्रस्तुत करनेवाले राष्ट्रीय स्वाधीनता एवं विकास के पिछले उदाहरणों से प्रेरणा प्राप्त की कि एक राष्ट्र के सभी सदस्यों के समान अधिकार एवं दायित्व होने चाहिए।

अमेरिका के स्वाधीनता–संग्राम के बाद नए संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थायी प्रजातांत्रिक शासन की नींव पड़ी और धीरे–धीरे अमेरिका राष्ट्र के सभी सदस्यों को पूर्ण नागरिकता के अधिकार दे दिए गए। साथ ही अमेरिका की सेना का आकार छोटा रहा और उसने अक्सर नागरिक संस्थाओं के काम–काज में दखल नहीं दिया। एशिया तथा अफ्रीका के उपनिवेशों की जनता के लिए यह बहुत आकर्षक था जिन्हें नियंत्रण में रखने के लिए सेना का नियमित रुप से इस्तेमाल किया जाता था।

सन् 1789 की फ्रांस की क्रांति किसी विदेशी ताकत के खिलाफ शुरु नहीं हुई थी, अपितु क्रांतिकारियों ने यूरोप के अन्य भागों में स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के सार्वभौमिक सिद्धांत फैलाने के लिए अभियान किया था। फ्रांस की क्रांति ने यूरोप के लोगों और फ्रांस के उपनिवेशों की जनता को इन सिद्धांतों के नाम पर फ्रांसीसी शासन के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए प्रेरित किया। इन राष्ट्रवादी क्रांतिकारियों में से सभी प्रजातंत्र अथवा समानता में गहराई से विश्वास नही करते थे, लेकिन उनमें से ज्यादातर यह मानते थे कि विदेशी शासन के खिलाफ लड़ने के लिए 'जनता' को तैयार करना होगा।

कुछ अन्य कारणों से भी औपनिवेशिक शासन के अधीन जी रहे लोगों ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता एवं विकास के *'अमेरिकी'* मॉडल को सराहा। वर्ष 1865 से 1950 के बीच अमेरिकियों ने पूंजीवादी कृषि, भारी उद्योग और सामूहिक उपभोक्ता–व्यय पर आधारित विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था विकसित की। संसार भर में अनेक लोगों का यह मानना था कि संयुक्त राज्य अमेरिका वैश्विक पैमाने पर स्व–शासन के प्रति ईमानदारी से समर्पित है और वह संभवतः उपनिवेशों की जनता को उनके राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्रामों में प्रत्यक्ष रुप से सहायता प्रदान कर उपनिवेशवाद के खिलाफ एक ताकत की तरह कार्य करेगा।

1917–1921 की रुसी (बोल्शेविक) क्रांति का विश्व पर भारी वैश्विक प्रभाव पड़ा। बोल्शेविकों का तर्क था कि समूचे विश्व में विभिन्न 'राष्ट्रीयताओं' को स्वतंत्र रहने एवं अपना भविष्य तय करने का अधिकार है। रुसी क्रांति ने भी पूंजीवादी पश्चिमी देशों से भिन्न तीव्र सामाजिक तथा आर्थिक 'विकास' का एक वैकल्पिक प्रतिमान प्रस्तुत किया।



आपकी टिप्पणियाँ

1941 में अनेक रुसी नागरिकों का भौतिक जीवन–स्तर अपने दादा–दादियों की तुलना में उच्चतर था।

रुसी नेताओं ने राजनीतिक एवं आर्थिक रुप से शासित अनेक देशों एवं उपनिवेशों के नागरिकों को 'नैतिक' एवं भौतिक सहायता प्रदान की। मार्क्सवादी सिद्धांत ने सिखाया कि संसार भर के छोटे किसानों और प्रोलेतेरियनों के हित समान हैं और बुर्जुआओं तथा साम्राज्यवादियों को हटाने के लिए उन्हें सहयोग की आवश्यकता है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का आयोजन सीखने के लिए कुछ उपनिवेशों के राष्ट्रवादियों ने सोवियत संघ का दौरा किया था, वहां जाकर अध्ययन किया। इनमें वियतनामी राष्ट्रवादी हो ची मिन्ह, चीनी राष्ट्रवादी चियांग काईशेक (1887–1975) और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता जवाहर लाल नेहरु शामिल थे, जो प्रजातांत्रिक समाजवाद में यकीन रखते थे और जिनका विचार था कि सोवियत प्रभुत्व वाली अर्थव्यवस्था का अनुकरण कर सकता है।

वि-उपनिवेशीकरण की शुरुआत

ग्रेट ब्रिटेन एवं फ्रांस स्व–शासन और 'स्व–राज्य' के लिए बढ़ते प्रदर्शनों में से कुछ पर ध्यान देने के लिए बाध्य हुए। 1867 में ही ब्रिटेन ने ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और दक्षिण अफ्रीका को तथा कनाडा के कुछ भागों को, जहां के मूल निवासियों को भगाकर या मारकर 1600 ई.से बड़ी संख्या में यूरोप के लोग बस गए थे, कारगार स्व–राज्य प्रदान करना शुरु कर दिया। इन स्थानों के गोरे उपनिवेशियों को निर्वाचित विधानसभाओं और विधायिका एवं संसदों के माध्यम से 'घरेलू' मामलों में निर्णय लेने की स्वतंत्रता दे दी गई, किंतु अन्य उपनिवेशों तथा राष्ट्रों के साथ उनके सबंधों पर लंदन की राजशाही का ही नियंत्रण रहा। 1910 के बाद इन उपनिवेशी राष्ट्रों को स्वतंत्र उपनिवेश अथवा सहयोगी राष्ट्रों का ब्रिटिश राष्ट्रमंडल कहा जाने लगा। ब्रिटेन ने दक्षिण अफ्रीकी संघ को भी राष्ट्रमंडल का दर्जा प्रदान कर दिया (जहां काले अफ्रीकियों ने संख्या में यूरोपियनों को पीछे छोड़ दिया था, लेकिन उन्हें मतदान की अनुमति नहीं थी)।

ब्रिटिश और अन्य पश्चिमी देशों की भांति, अनेक फ्रांसीसियों का मानना था कि कुछ 'जातियाँ' एवं समाज, खासकर उनकी जाति और समाज उन्नत हैं, जबकि अन्य जातियाँ और समाज 'आदिम' हैं। उनका कहना था कि उन्नत समाजों का यह नैतिक दायित्व है कि वे ज्यादा पिछड़े समाजों का मार्गदर्शन करें या उन्हें शिक्षित करें। 1914 के बाद फ्रांसीसी उपनिवेशों में गैर–फ्रांसीसी लोगों को अपने समाज के शासन में मतदान द्वारा सहभागिता करने अथवा विधानसभाओं में सेवा करने की इजाजत दे दी गई।

ब्रिटिश, फ्रांसीसी और डच औपनिवेशक शासन इस बात को मानने लगे थे कि उपनिवेशों के लोग भावनात्मक कारणों (जैसे यूरोपीय संस्कृति के प्रति सराहना) से अथवा इस कारण से कि वे अपने मातृ–देश से जुड़े रहने से आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकेंगे, इस आंशिक स्वतंत्रता को स्वीकार कर लेंगे। अनेक उपनिवेशों ने पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता की ओर पहले कदम के रुप में यूरोपीय मार्गदर्शन के अंतर्गत ढीले–ढाले राज्य–संघ की योजना को स्वीकार कर लिया। किंतु कुछ उपनिवेशों में जैसे कि भारत में, राष्ट्रवादी पूर्ण स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते रहे।

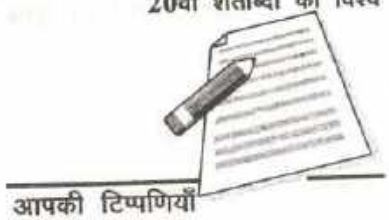

हमें यह भी जानना चाहिए कि 1945 के पहले औपनिवेशिक शासन में किए गए संशोधनों ने वास्तव में यूरोपीय उपनिवेशवादियों की स्थिति को कमजोर नहीं बनाया और उपनिवेशों के थोड़े से 'मूल निवासियों' को ही लाभ पहुंचाया।

26.2 उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष पर द्वितीय विश्व-युद्ध का प्रभाव

द्वितीय विश्व–युद्ध ने औपनिवेशिक दुनिया के उन लोगों को भी प्रेरित कर दिया जो पहले राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलनों से अछूते रह गए थे। कुछ मामलों में उपनिवेश के लोगों द्वारा नए आक्रांताओं (मुख्यतः जापान) के विरुद्ध किए जा रहे सैन्य संघर्षों को उपनिवेशों पर पुनः कब्जा करने की कोशिश करने वाले यूरोपियनों के विरुद्ध संघर्षों में बदल दिया। अफ्रीकियों एवं एशियाइयों को विश्व के सुदूर कोनों में जर्मनी, इटैलियनों और जापानियों के विरुद्ध लड़ने के लिए औपनिवेशिक सेनाओं में शामिल कर लिया गया। जहाँ उन्होंने यह सीखा कि यूरोपियन पृथ्वी के अजेय अधिपति नहीं हैं। युद्ध के दौरान लगभग पचास लाख भारतीय सैनिकों ने ब्रिटिश नेतृत्व वाली सेनाओं में सेवा की। एशियाई और अफ्रीकी सैनिकों का दूसरे उपनिवेशों के लोगों और यूरोपीय तथा अमेरिकी सैनिकों व नागरिकों के साथ संबंध था। जर्मन एवं जापानी आतंक 'तानाशाही' से लड़ने के लिए प्रशिक्षित इन सैनिकों ने अपने स्वयं के औपनिवेशिक शासकों के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया। 1940 के दशक में एशिया, अफ्रीका और कैरेबियाई देशों में पुलिस और सैनिकों (अपने 'देशवासियों' सहित) के हमलों के बावजूद उपनिवेशी जनता सामूहिक प्रदर्शनों में शामिल हुई। 1945 तक युद्ध से पहले की तुलना में और अधिक जनता ने पूर्ण नागरिकता के अधिकार एवं राष्ट्रीय स्वाधीनता की माँग करनी शुरु कर दी और वे अपनी मांगों का विरोध करने वालों से लड़ने के लिए ज्यादा आत्मविश्वास से भरे थे।

1939 से पहले अफ्रीकी बुद्धिजीवी, पेशेवर और सिविल सेवकों ने राष्ट्रवादी आंदोलनों का आधार तैयार कर दिया था। फिर भी 1945 के बाद इन लोगों को अपने ही देश से अधिक दबाव एवं श्रमिक वर्ग की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने तथा अपने राष्ट्रीय स्वतंत्रता अभियानों में नेताओं को किसानों और श्रमिक स्त्री–पुरुषों की ओर से प्रजातांत्रिक सुधारों और आर्थिक समानता के लिए ज्यादा सशक्त मांगें शामिल करने का दबाव झेलना पड़ा।

राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम

1930 के दौरान फ्रांसीसी हिंदचीन में हो ची मिन्ह ने साम्यवादी विचार फैलाने की कोशिश की। 1940–41 में जापानियों ने फ्रांस को हिंदचीन से बाहर खदेड़ दिया और उस पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उन्हें भगाने के लिए हो ने एक राष्ट्रीय जन मोर्चा (वियत मिन्ह) बनाया और जब 1945 में फ्रांसीसी, ब्रिटेन और अमेरिका की सहमति से पुनः हिंदचीन के शासक बन गए तब हो और वियत मिन्ह ने फ्रांस के खिलाफ लड़ना जारी रखा तथा 1954 तक अधिकांश हिंदचीन पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। इसी वर्ष वियतनाम नाममात्र के स्वतंत्र देशों में विभक्त हो गया, जिनमें से उत्तरी क्षेत्र हो और उसके सहयोगियों के नियंत्रण में आ गया और दक्षिणी भाग पर अमेरिका की राजनीति, सैन्य एवं आर्थिक उपस्थिति बढ़ने लगी। इस टकराव में लगभग 50,000 अमेरिकी सैनिक मारे गए और लाखों वियतनामियों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा, लेकिन वियतनामियों ने 1975 में विश्व की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी शक्ति को पीछे हटने के लिए मजबूर कर दिया।



आपकी टिप्पणियाँ

भारत में पूरे देश में कांग्रेस के नेतृत्व में ब्रिटिश शासन के खिलाफ सामूहिक आंदोलन हुए। इसके अलावा साम्यवादियों के नेतृत्व में मजदूरों और किसानों द्वारा और साथ ही युवाओं, लेखकों, महिलाओं एवं निम्न जातियों के संगठनों द्वारा स्वतंत्र आंदोलन भी चलाए जा रहे थे। 1947 में ब्रिटिशों को भारत छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा। स्वतंत्रता विभाजन बंटवारे और दो स्वतंत्र राष्ट्रों भारत एवं पाकिस्तान के निर्माण के साथ प्राप्त हुई।

पाठगत प्रश्न 26.1

1. 1867 से 1914 के बीच स्वतंत्र अथवा अर्द्ध–स्वतंत्र हुए कुछ देशों के नाम बताइए।

2. द्वितीय विश्व युद्ध ने उपनिवेशीकृत देशों के लोगों को किस प्रकार प्रेरित किया?

3. 1945 के बाद सशस्त्र संघर्ष से राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करने वाले कुछ देशों के नाम बताइए।

26.3 औपनिवेशिक राष्ट्रवाद, स्वाधीनता संग्राम और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग

सन् 1945 के बाद एशिया और अफ्रीका के कुछ औपनिवेशिक राष्ट्रवादी नेताओं ने सोवियत अथवा अमेरिकी सहायता मांगी अथवा पाई और उन्हें **संयुक्त राष्ट्र संघ** (1945 से जिसका मुख्यालय अमेरिका में है) जैसे नए अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से निष्कपट वार्ता की उम्मीद हुई। उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता और विकास के समान हितों वाले स्वतंत्र राष्ट्रों का एक क्षेत्रीय संघ भी बनाया। इन संघों में से एक अफ्रीकी एकता संगठन (ओ.ए.यू.) था, जिसकी स्थापना 1963 में नए राष्ट्रों के बीच होने वाले विवादों में मध्यस्थता करने तथा औपनिवेशिक ताकतों को अपने शेष अधीनस्थ राष्ट्रों से चले जाने के लिए बाध्य करने हेतु हुई थी। एक और महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम था **गुटनिरपेक्ष आंदोलन (एन.ए.एम.)** का अस्तित्व में आना, जिसमें अन्य देशों के अलावा चीन, भारत, पाकिस्तान, इंडोनेशिया, ईरान और मिश्र शामिल थे। 1955 में साम्राज्यवाद, राष्ट्रीय आक्रमण, जातिवाद और अधिक हथियारों की निंदा करने के लिए बांडुंग, इंडोनेशिया में 29 राष्ट्रों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया।

गुटनिरपेक्ष आंदोलन ने तीसरी दुनिया के देशों द्वारा आपस में तथा दोनों महाशक्तियों के साथ शांतिपूर्ण सहयोग की आवश्यकता बताई। गुटनिरपेक्ष आंदोलन के सदस्य देशों में से अधिकतर के नेता एक मध्यम मार्ग खोजने और अपनाना चाहते थे, जो न तो विशुद्ध साम्यवादी हो और न ही विशुद्ध पूंजीवादी। 1950 के दशक से 1970 के दशक के बीच समाजवाद एवं प्रजातंत्र के एशियाई और अफ्रीकी 'मार्गों' पर खूब चर्चा हुई। अफ्रीका के अनेक नए राष्ट्र स्वतंत्र होते ही तानाशाही के अधीन हो गए, जैसे जायरी (पूर्व बेल्जियम उपनिवेश) जो मोबुतो सेस सेको (राष्ट्रपति, 1965–1977) के अधीन और युगांडा (पूर्व ब्रिटिश उपनिवेश) इदी अमीन दादा (1924–2003, 1979 में पदच्युत) के अधीन था।

सहारा अफ्रीका (जैसे मिस्र एवं लीबिया) के कुछ नेताओं ने आर्थिक विकास के मामलों में और इजराइल राष्ट्र (पूर्व ब्रिटिश फिलस्तीन) को फिलस्तीनी भूमि का अवैध, अर्द्ध–औपनिवेशिक कब्जा समाप्त करवाने में मध्यपूर्वी राष्ट्रों के साथ सहयोग किया। यह अखिल अरब आंदोलन का एक हिस्सा था। 1970 के दशक से 1980 के दशक के बीच 'काले अफ्रीका' के नेता रोडेशिया और दक्षिण अफ्रीका गोरे–अल्पसंख्यक शासनों पर जाति भेद और काले लोगों के साथ पक्षपात खत्म करने के लिए दबाव डालते रहे। उन्होंने गोरी–अल्पसंख्यक सरकारों द्वारा गैर–कानूनी करार दिए गए (जैसे दक्षिण अफ्रीका की अफ्रीकी राष्ट्रीय कांग्रेस) को मदद पहुंचाई।

नव–स्वतंत्र राष्ट्रों को शीतयुद्ध के दौर (1945–1991) में राष्ट्रीय स्वाधीनता और विकास संबंधी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। साम्यवाद के प्रति सहानुभूति रखने वाले–या कम से कम उसका विरोध न करने वाले नेताओं को अक्सर लोकप्रियता मिलने लगी। लेकिन जब उन्होंने पुराने औपनिवेशिक 'मूल' श्रेष्ठजनों की स्थिति कमजोर करने की कोशिश की तो उन्हें विरोध का सामना करना पड़ा।

इंडोनेशिया में स्वतंत्रता सेनानी अहमद सुकर्णो (1901–1970) ने 1920 के दशक में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जैसे इंडोनेशिया ने राष्ट्रीय स्वाधीनता के पांच सिद्धांत प्रतिपादित किए : ईश्वर में आस्था, मानवतावाद, राष्ट्रीय स्वाधीनता, प्रजातंत्र और सामाजिक न्याय (जिसका अर्थ था केंद्रीय आर्थिक मार्गदर्शन एवं धन का पुनः वितरण)। मुसलमान (बहुसंख्यक धार्मिक समुदाय) इस शर्त पर केंद्रीकृत इंडोनेशियाई राष्ट्र द्वारा शासने के लिए सहमत हुए कि उन्हें उनके पास कुछ स्थानीय नियंत्रण, विशेषकर धार्मिक मामलों में रहेगा। 1950 के दशक में सुकर्णो ने चीनियों से प्रेरित साम्यवादी जन–आंदोलन भी शुरु किया, किंतु 1959 में उन्होंने तानाशाही स्थापित कर दी हालांकि उन्होंने साम्यवादी आंदोलन की वैधता स्वीकार की। 1965 में सुकर्णो के आंतरिक दुश्मनों (मुख्यतः सैन्य अधिकारियों) ने उन्हें अपदस्थ कर दिया और हजारों लोगों का कत्ल करते हुए इंडोनेशियाई साम्यवादियों पर शिकंजा कसना प्रारंभ कर दिया। सोवियत संघ किनारे खड़ा यह सब देखता रहा, जबकि अमेरिका ने सैन्य अधिकारियों को गुप्त रुप से मदद की। इंडोनेशिया में अभी हाल तक सैन्य तानाशाही बनी हुई थी।

पाठगत प्रश्न 26.2

बाएं कॉलम में दिए गए शब्दों को दाएं कॉलम में दिए गए अर्थ से या शब्द को मिलाइए।

1. इदी अमीन	1945 में स्थापित
2. सुकर्णो	इसमें भारत शामिल है।
3. गुटनिरपेक्ष आंदोलन	अफ्रीकी तानाशाह
4. संयुक्त राष्ट्र संघ	इंडोनेशिया



आपकी टिप्पणियाँ

26.4 वि-उपनिवेशीकरण और वैश्विक राजनीति

उपनिवेशवाद का विरोध करने पर हजारों स्त्री–पुरुषों को कष्ट झेलने पड़े, जैसे–फ्रांसीसी ट्यूनीशिया (उत्तरी अफ्रीका) में स्वतंत्रता–आंदोलन के नेता हबीब बुर्गीबा (1903–2000) में और ब्रिटिश पश्चिमी अफ्रीका में घाना के स्वाधीनता–संग्राम की प्रमुख हस्ती क्वामे एनक्रूमाह (1909–1972) को तथापि अन्य नेता अपने औपनिवेशिक शसकों के गृह–राष्ट्रों में रहकर युद्ध के समय राजनीतिक विचार तथा संगठन की तकनीकें सीखते रहे। हो चि मिन्ह (1894–1969) 1918 से 1930 के बीच फ्रांस में रहे, जहाँ उन्होंने वियतनामी स्वतंत्रता हेतु लड़ने के लिए फ्रांसीसी हिंदचीन लौटने से पहले फ्रांसीसी साम्यवादी दल की स्थापना की। लियोपोल्ड सेदर सेनघोर (1906–2001) फ्रांस में एक यूनिवर्सिटी प्रोफेसर और कवि थे और सेनेगल के प्रजातांत्रिक ब्लॉक का नेतृत्व करने के लिए अपने मूल स्थान पश्चिम अफ्रीका लौटने से पहले वे 1960 से 1980 तक सेनेगल के प्रथम राष्ट्रपति रहे।

1945 के बाद वि–उपनिवेशीकरण में तेजी आई। कुछ क्षेत्रें में सीमित हिंसा एवं जन–हानि के साथ वि–उपनिवेशीकरण हो गया। उदाहरण के लिए, 1958 के बाद फ्रांसीसी आधिपत्य वाला पश्चिमी अफ्रीका स्वतंत्र सेनेगल, मारीशियाना, माली, आइवरी कोस्ट, गीनिया और अन्य राष्ट्रों में विभाजित हो गया, जबकि ब्रिटिश आधिपत्य वाला पश्चिमी अफ्रीका 1957 से 1961 के बीच सियरा तिओन और नाइजीरिया के स्वतंत्र राष्ट्रों में बंट गया।

सन् 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान अंग्रेजों ने हजारों भारतीयों को जेलों में ठूंस दिया। लेकिन उसके बाद भारतीय स्वाधीनता संग्राम में भारतीयों और अंग्रेजों के बीच कम हिंसा हुई। फिर भी लाखों दक्षिण एशियाई आगामी भारत–पाकिस्तान बंटवारे के समय अपनी जान से हाथ धो बैठे या सीमाओं के पार विस्थापित हो गए। पूर्व ब्रिटिश राज के कुछ पड़ोसी क्षेत्र जैसे सीलोन (अब श्रीलंका) और बर्मा (अब म्यांमार) कम हिंसा से ही स्वाधीन हो गए।

1950 के दशक में उत्तरी अफ्रीका के मोरक्को एवं ट्यूनीशिया शांतिपूर्वक फ्रांस के चंगुल से अलग हो गए, लेकिन पड़ोसी अल्जीरिया को आठ वर्षों के संघर्षों के बाद स्वतंत्रता प्राप्त हुई, जिसमें हजारों अल्जीरियाई और फ्रांसीसी मारे गए। आज के अंगोला एवं मोजांबिक (दक्षिण अफ्रीका में) ने एक दशक की लड़ाई के बाद 1975 में पुर्तगाली शासन से अपने को स्वतंत्र कराया, जिसमें बड़ी संख्या में अफ्रीकियों और पुर्तगालियों की जानें गई। वर्तमान मलेशिया की जनता ने दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान जापानी कब्जे के खिलाफ संघर्ष किया। इसी मलायी जापान–विरोधी जन–सेना ने फिर ब्रिटेन द्वारा पुनः कब्जा किए जाने के खिलाफ लड़ाई की। अगले 10 वर्षों में एक समय 100,000 से अधिक ब्रिटिश सैनिक ब्रिटिश नेताओं द्वारा कथित 'साम्यवादी बगावत' कुचलने के लिए मलाया में उपस्थित थे। 1957 में ब्रिटेन को अपनी सेनाएं वापस बुलानी पड़ीं और ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के एक अर्ध–स्वतंत्र सदस्य के रुप में मलेशियाई संघ को मान्यता देनी पड़ी।

1945 के बाद अर्थात् दोनों महाशक्तियों के गुटों के बीच शत्रुता से वि–उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया का शीतयुद्ध गहरा रिश्ता रहा है। जिनमें से 'पहली दुनिया' की अगुआई अमेरिका कर रहा था, जो पूँजीवादी प्रजातंत्र का पक्षधर माना जाता था, और दूसरी



दुनिया की प्रणाली की प्रतिनिधित्व सोवियत संघ तथा चीन गणराज्य जैसे उभरते समाजवादी राष्ट्र कर रहे थे। उपनिवेश की बेड़ियों से मुक्त हुई तीसरी दुनिया के नए राष्ट्रों को दोनों महाशक्तियों में से किसी एक के साथ निकट संबंध बना लेने से लाभ हुआ।

1945 में कोरिया से जापान के निकलने के बाद कोरिया जलडमरु का उत्तरी भाग सोवियत संघ एवं चीन गणराज्य के प्रभाव में आ गया, जबकि दक्षिणी भाग अमेरिका पर आश्रित हो गया। 1953 से 1970 के बीच अमेरिका ने दक्षिण कोरिया को **'विकास सहायता'** के तौर पर दस बिलियन डॉलर से अधिक की राशि दी। अर्थशास्त्री 1970 के दशक से ही दक्षिण कोरिया, ताइवान, हांगकांग और सिंगापुर को निर्यात के लिए एशिया को 'नन्हे ड्रैगन' कहने लगे थे। 'बड़े ड्रैगन' औद्योगिक वस्तुओं (जैसे इस्पात, जहाज, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण) के उत्पादन पर आधारित अपनी तेजी से बढ़ रही अर्थव्यवस्थाओं के कारण जापान एवं चीनी गणराज्य कहलाते थे। नन्हे ड्रैगन विकसित देशों, मुख्यतः अमेरिका, जापान और ग्रेट ब्रिटेन से मिलने वाली भारी सहायता राशि और ऋणों के साथ–साथ व्यापारिक समझौतों से लाभान्वित हुए।

किंतु अफ्रीका में यूरोपीय देशों ने अपने आधिपत्य वाले अफ्रीकी देशों में शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य मानव–विकास संबंधी जरुरतों पर थोड़ा ही धन लगाया। यहां तक कि लैटिन अमेरिका में जहाँ 1900 तक कुछ औपचारिक उपनिवेश बने हुए थे, अनेक लोग लगभग गरीब, अशिक्षित और राजनीतिक रुप से शक्तिहीन बने रहे, जैसे 18वीं एवं 19वीं सदी में उनके पूर्वज थे।

पाठगत प्रश्न 26.3

1. 1945 के बाद की महाशक्तियों ने किस प्रकार उपनिवेश–विरोधी संघर्ष में अपनी रुचि प्रदर्शित की?

2. 1953 से 1980 के बीच एशिया के कुछ 'नन्हे ड्रैगनों' के नाम बताइए?

3. 1945 के बाद कौन–से महाद्वीप अविकसित बने रहे?

26.5 चीन : राष्ट्रीय स्वाधीनता, दो राष्ट्र

1911–1912 में एक सम्राट द्वारा नियंत्रित चीनी तानाशाही प्रणाली औपचारिक रुप से समाप्त हो गई और उसके स्थान पर गणराज्य बन गया, लेकिन नया गणराज्य विदेशी आधिपत्य को हटाने में असमर्थ रहा। 1920 के दशक के अंतिम चरण में माओ जेडोंग, (1893–1976) चाऊ एनलाई, डेंग झिआओपिंज एवं अन्य नेताओं के नेतृत्व में साम्यवादियों ने चीनी राष्ट्रवादियों (गुओमिनडंग) के विरुद्ध लड़ाई लड़ी और दोनों ही समूहों ने जापान को खदेड़ने की कोशिश की जिसने 1840 के दशक से उन पर क्षेत्रीय



आपकी टिप्पणियाँ

और आर्थिक नियंत्रण बनाया हुआ था। माओ का मानना था कि चीनी राष्ट्रवादी ऐसे सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन नहीं लाना चाहते, जिनसे चीन की जनता का उद्धार हो सके और वे इतने अधिक भ्रष्ट हैं कि विदेशियों का विरोध नहीं कर सकते। इसलिए चीन के साम्यवादी नेताओं ने 1949 तक न केवल जापानी, फ्रांस और ब्रिटेन को अधिकांश 'राष्ट्रीय' क्षेत्र से बाहर निकालने के लिए बाध्य किया, वरन् अपने विरोधी चीनी 'राष्ट्रवादियों गुओमिनडंग को मुख्यभूमि चीन से एक–एक पतली खाड़ी के पार फॉरमोसा द्वीप–वर्तमान ताइवान में धकेल दिया। हांगकांग 1977 तक ब्रिटेन का उपनिवेश था। उनका परम उद्देश्य ताइवान को चीनी मुख्य भूमि के साथ एकीकृत करना था, जो एक अलग राष्ट्र बन गया था।

1945 से चीन में इतिहास की संभवतः सबसे बड़ी क्रांति आई, जिसमें उसने खुद को मूल श्रेष्ठजनों और ब्रिटेन, फ्रांस तथा अमेरिका के भी, जिनका देश के अधिकांश व्यापार पर नियंत्रण था, प्रभुत्व वाले किसान–बहुल समाज से चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य नामक एक समाजवादी राष्ट्र में बदल डाला। समाजवादी राष्ट्र का मतलब था राष्ट्र के स्वामित्व वाले औद्योगिक उद्यम और सामूहिक स्वामित्व वाली भूमि पर सामूहिक खेती की नीति।

किंतु 1980 से चीनी साम्यवादी दल (सीपीसी) के नेतृत्व ने विनिर्माण और वाणिज्यिक क्रियाकलापों में मुक्त उद्यम को बढ़ावा दिया है। 1993 तक चीनी गणराज्य का दस प्रतिशत से भी कम औद्योगिक उत्पादन केंद्रीय योजना के अधीन था। 1980 के दशक से चीनी गणराज्य ने अपने वैचारिक विरोधी देशों से सैकड़ों बिलियन (अमेरिकी) डॉलर के विदेशी निवेश का स्वागत किया है। कुछ अर्थशास्त्रियों का अनुमान है कि चीनी गणराज्य 2010 तक विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था होगा, जैसा कि वह 1800 से पूर्व था, लेकिन आर्थिक उदारीकरण एवं सरकारी नियंत्रण में कुछ ढिलाई बरतने से 1949–1980 के रुझान को उलट भी दिया, जब सीसीपी का लक्ष्य चीनियों को हर संभव तरीके से अधिकाधिक समान बनाना था।

एक ओर जहां चीनी गणराज्य ने पश्चिमी आक्रमण तथा परमाणु हथियारों के विकास की निंदा की वहीं दूसरी ओर वह 1960 के दशक के प्रारंभ तक परमाणु हथियार–संपन्न राष्ट्र बन गया। चीनी नेताओं ने अपने सैन्य निर्माण को यह कहकर उचित ठहराया कि कोरियाई युद्ध (1950–1953) के दौरान अमेरिका ने चीनी गणराज्य पर परमाणु बम गिराना चाहा था। साथ ही 1950 के दशक में चीन और रुस के रिश्ते बिगड़ने लगे थे, क्योंकि माओ का मानना था कि मार्क्सवाद एवं लेनिनवाद को चीन की स्थितियों के अनुसार समायोजित किए जाने की आवश्यकता है और उन्हें तथा कुछ अन्य नेताओं को सोवियत प्रभुत्व की आशंका थी। 1960 एवं 70 के दशक के दौरान सोवियत संघ ने वियतनामी साम्यवादियों को अमेरिका के विरुद्ध संघर्ष में सैन्य सहायता मुहैया करवाई थी, लेकिन चीन ने वियतनामी के साम्यवादी आंदोलन का समर्थन करने से मना कर दिया। इस समय चीन अफ्रीका में चल रहे साम्यवाद–समर्थक जन–संग्राम को मदद कर रहा था। चीन ने तीसरी दुनिया के अनेक देशों को विकास संबंधी सहायता उपलब्ध कराई।

पाठगत प्रश्न 26.4

1. सीसीपी द्वारा 1930 से चीन के दुश्मनों के रुप में चिह्नित दो राष्ट्रों के नाम बताइए।



2. क्या प्रमाण हैं कि चीन के साम्यवादी नेतृत्व ने 1980 से समाजवाद और विकास की अपनी संकल्पना में संशोधन कर लिया?

3. क्या चीनी गणराज्य ने वियतनाम के स्वाधीनता संग्राम को मदद पहुंचाई या हतोत्साहित किया?

26.6 उपनिवेशोत्तर विश्व में 'विकास' की समस्याएँ

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान और बाद में बड़ी शक्तियों के नेतृत्व ने वैश्विक स्तर पर अधिक समान धन–वितरण को विश्व–शांति और स्थायित्व के लिए अनिवार्य माना। 1945 के बाद धन उत्पादन और व्यापार में पैठ को लेकर होने वाले विवादों के समाधान के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ, अंतअंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक जैसी नई वैश्विक संस्थाओं की स्थापना की गई। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष उन देशों के लिए ऋणों की व्यवस्था करता है जो उन्हें आयातों पर होने वाले अपने व्यय को 'संतुलित' करने के लिए अपने निर्यातों से पर्याप्त धन नहीं जुटा पाते। विश्व बैंक सिंचाई और जल–विद्युत प्रणालियों के लिए भुगतान करने और उत्पादकता तथा आर्थिक सुरक्षा बढ़ाने के लिए अपेक्षित अन्य बुनियादी सुविधा विषयक सुधार करने के लिए राष्ट्रों को ऋण देता है, जो प्रायः 'विकास सहायता' के पूरक के रुप में दिए जाते हैं।

किंतु अनेक लोगों का कहना है कि इन संस्थाओं ने उन्हीं राष्ट्रों के हित पूरे किए हैं, जो पहले से ही विकसित हैं। अंतअंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ऋण लेने वाली सरकारों से अपना घाटा कम करने की अपेक्षा करता है, जिसे ये सरकारें अक्सर 'सामाजिक मदों पर व्यय' (जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास के लिए निधि प्रदान करना) घटाकर करती हैं। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने सरकारों को अपनी मुद्राओं का अवमूल्यन करने का परामर्श भी दिया है जिससे विश्व बाजार में उनके द्वारा निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की कीमत कम हो जाती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थायी सुरक्षा परिषद में 1945 के बाद रुस, अमेरिका, राष्ट्रवादी चीन (1970 तक), ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस शामिल थे। शीतयुद्ध के दौरान ब्रिटेन और फ्रांस ने सुरक्षा परिषद में उठाए गए लगभग दो–तिहाई मुद्दों पर अमेरिका का पक्ष लिया, जिससे विश्व की राजनीति तथा आर्थिक मसलों पर अमेरिकी प्राथमिकताएं और निर्णय हावी रहे। एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के कुछ व्यक्तियों की दृष्टि में विकसित पूंजीवादी समाजों के नेताओं द्वारा स्वाधीनता एवं न्याय के संबंध में किए गए दावे अक्सर खोखले लगते हैं और उनके द्वारा बनाई गई नीतियां पाखंड प्रतीत होती हैं। दूसरी ओर विश्व भर में लोग पत्रिकाओं, सिनेमा और टेलीविजन के माध्यम से 'पश्चिमी' जीवनशैली के गहन संपर्क में आए, जिससे वे पश्चिमी (विशेषकर अमेरिकी) तरीकों से अपने आर्थिक तथा अन्य क्रियाकलाप व्यवस्थित करने लगे। अमेरिकी अर्थशास्त्री डब्ल्यू डब्ल्यू रोस्टो मानते थे कि पूर्ववर्ती उपनिवेश ब्रिटेन जैसे प्रारंभिक औद्योगिक राष्ट्रों द्वारा अपनाए गए मार्ग पर चल सकते हैं और वे अपने कृषि–उत्पादन बढ़ाकर तथा मुक्त व्यापार की नीतियों का अनुसरण करके उद्योग विकसित करने के लिए पूंजी एकत्र कर सकते हैं और इस



आपकी टिप्पणियाँ

प्रकार आर्थिक आधुनिकता की दिशा में बढ़ सकते हैं। विकास के इस सिद्धांत को 'आधुनिकीकरण का सिद्धांत' कहते हैं।

पहले अर्जेंटीना और फिर ब्राजील ने इस मॉडल को अपनाने का प्रयास किया और कुछ उद्योग भी लगाए, लेकिन अनेक अमेरिकी, अफ्रीकी और एशियाई देशों में 1960 के दशक से 1980 के दशक के बीच विकास के संकट के संकेत दिखे। औद्योगिकीकरण ठहर गया और गरीबी बढ़ गई। 1960 के बाद लैटिन अमेरिका में विदेशी कंपनियाँ निवेशित धन से कहीं अधिक धन (लाभ के रुप में) निकालकर ले गईं। निजी निकायों जैसे अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से लिए गए ऋणों से हालात नहीं सुधरे। 1980 के दशक में लैटिन अमेरिकी देशों को कुल 200 बिलियन अमेरिकी डॉलर से अधिक ऋण अदायगी करनी थी। 1990 के दशक के प्रारंभ में 60 प्रतिशत से अधिक लैटिन अमेरिकी परिवार अपनी मूलभूत आवश्यकताएं, जैसे–भोजन, कपड़ा और मकान पूरी करने लायक भी नहीं कमा पाते थे। अफ्रीका में आर्थिक स्थिति और खराब थी, 1980 के दशक में जाइरा एवं बुरुंडी जैसे अफ्रीका के कुछ देशों में नकारात्मक संवृद्धि होने लगी।

लैटिन अमेरिका के अर्थशास्त्रियों एवं वैज्ञानिकों ने रोस्टो जैसे अर्थशास्त्रियों द्वारा दिए गए तर्कों और कुछ पश्चिमी नेताओं द्वारा प्रवर्तित विकास संबंधी सिद्धांत की आलोचना की। यह आलोचना कभी–कभी 'निर्भरता नीति' अथवा 'अल्पविकास का सिद्धांत' कही जाती है। राउल प्रेविस्च और अन्य 'निर्भरता सिद्धांतवादियों' ने दावा किया कि शताब्दियों के स्पेनी एवं पुर्तगाली शासन और उसके बाद ब्रिटेन, अमेरिका तथा अन्य देशों द्वारा दशकों के आर्थिक प्रभुत्व के कारण अधिकतर लैटिन अमेरिकी देशों को अपनी स्वतंत्रता कार्यान्वित करने में, खासकर रोजगार और आर्थिक संसाधनों के उपयोग जैसी भौतिक परिस्थितियों के संबंध में, असमर्थ बना दिया। प्रेविस्च की भांति 1970 के दशक में अफ्रीका में वाल्टर रॉडनी ने पाया कि उपनिवेश सदियों के उपनिवेशवाद के दौरान सृजित 'निर्भरता पैटर्न' से आसानी से बाहर नहीं निकल सकते। (यूनिट 5.1 में साम्राज्यवाद पर की गई चर्चा देखें)। उनका दावा था कि जब तक बड़े जमींदार गरीब किसानों एवं श्रमिकों का शोषण करना बंद नहीं करेंगे, तब तक कृषि पिछड़ी ही रहेगी : बड़ी जागीरों (जैसे भारत में जमींदारी) तोड़ कर किसनों को पुनः वितरित की जानी चाहिए। 'तीसरी दुनिया' के अनेक सफल राजनेताओं ने सोवियत संघ एवं चीन के अनुभवों के आधार पर उद्यमों और संसाधनों पर राष्ट्र के स्वामित्व अथवा नियंत्रण पर आधारित आर्थिक विकास की रणनीति अपनाई है। उन्होंने विदेशी निवेशकों एवं राष्ट्रों को भारी लाभ प्राप्त करने से रोकने और मुफ्त शिक्षा, सुलभ स्वास्थ्य सुविधाओं आदि के माध्यम से गरीबों का उत्थान करने की भी कोशिश की है। उदाहरण के लिए क्यूबा में फिदेल कास्त्रे (1927) ने 1950 के दर्शक के उत्तरार्ध में एक राष्ट्रवादी क्रांति का नेतृत्व किया और क्यूबाई जनता के हित के लिए हितकर नीतियों का अनुसरण करते रहे। कास्त्रों क्रांति कुछ लैटिन अमेरिकी देशों में लोकप्रिय रही है, जो अपने देश की अमेरिका द्वारा प्रेरित तानाशाही एवं सतत विदेशी प्रभाव से नाराज़ हैं। अधिकांश क्यूबा निवासी का जीवन–स्तर धनी देशों के लोगों की तुलना में बेहतर है।

1960 के बाद अन्य लैटिन अमेरिकी देशों ने कुछ संदर्भों में क्यूबा के उदाहरण को अपनाया। 1970 में सल्वाडोर अलेंडे एक समाजवादी के रुप में चिली के राष्ट्रपति चुने गए। अपने संक्षिप्त कार्यकाल में उन्होंने चिली के विदेशी निगमों द्वारा नियंत्रित खनिज



संसाधनों के 'राष्ट्रीयकरण' का प्रयास किया। लेकिन वे अमेरिका की मदद से आंतरिक दु मनों द्वारा 1973 में अपदस्थ कर मार दिए गए और उनके स्थान पर एक तानाशाह (जनरल पिनोचे) आकर 1990 तक पदासीन रहे। हाल ही में एक सेनाधिकारी ह्यू चावेज (1954) 1998 में वेनेजुएला के राष्ट्रपति चुने गए। वेनेजुएला को गरीबी से उबारने के लिए राष्ट्र के स्वामित्व वाली तेल–कंपनियों से प्राप्त राजस्व का इस्तेमाल किया। उनके कार्यकाल के पहले वर्ष सामाजिक कार्यक्रमों पर सरकारी व्यय नाटकीय रुप से बढ़ा और वे काफी कारगर ढंग से अमेरिका का मुकाबला करने में सफल रहे। क्यूबा में कास्त्रे का शासन एवं वेनेजुएला में चखेज का उदय राष्ट्रवादी विकासशील विश्व के भागों में बल और विकास के जनोन्मुखी प्रतिमान को प्रदर्शित करते हैं।

पाठगत प्रश्न 26.5

बाईं ओर के कालम में दिए गए शब्दों को दाईं ओर के कॉलम में दिए गए नामों से मिलाइए।

1. डब्ल्यू डब्ल्यू रोस्टो	भुगतान–संतुलन संबंधी समस्याओं का समाधान
2. अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष	क्यूबा
3. प्रेब्रिस्च	वेनेजुएला के राष्ट्रीय नेता
4. फिडेल कास्त्रे	आधुनिकीकरण का सिद्धांत
5. चावेज	आश्रित का सिद्धांत

आपने क्या सीखा

आज संसार अनेक ऐसे राष्ट्रों में बँटा है, जो अपने मामलों में निर्णय लेने के लिए औपचारिक रुप से स्वतंत्र है। यूरोपीय देश अब अपने से कहीं बड़े और अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रें पर शासन नहीं करते। सैकड़ों राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम, जिनमें से कुछ द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले शुरु हुए, युद्ध के बाद सफल रहे। एक ओर जहां राष्ट्रों और 'राष्ट्रीय' अलगाववादी आंदोलनों (अन्य राष्ट्रों में शमिल होने की या अपने स्वयं के राष्ट्र बनाने के इच्छुक लोगों द्वारा चलाए गए) के बीच आक्रामकता जारी है, वहीं ऐसे टकरावों को न्यूनतम करने के लिए पारदेशीय संस्थाएं और संगठन भी मौजूद हैं। इनमें से कुछ संगठन पूर्ववर्ती उपनिवेशों और विश्व के अन्य गरीब क्षेत्रें के 'विकास' में सहायता करने के लिए स्थापित हुए थे। फिर भी, राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्रामों की शुरुआत के पचास से ज्यादा साल बाद भी पांच–छह राष्ट्र शेष सब राष्ट्रों की सम्मिलित धन–संपदा से भी ज्यादा धन–संपदा पर नियंत्रण रखते हैं : विश्व में असमान आर्थिक शक्ति के बारे में बहस भी जारी है।



आपकी टिप्पणियाँ

पाठांत प्रश्न

1. 'पुरानी' आधुनिक क्रांतियों (अमेरिका और फ्रांस की) और 1917 की रुसी क्रांति ने बीसवीं शताब्दी के राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्रामों को किस प्रकार प्रभावित किया।
2. उपनिवेश–विरोधी संग्रामों के उन कुछ नेताओं के बारे में बताएं, जिन्होंने अपने औपनिवेशिक 'स्वामियों' के देश में रहकर कार्य किया?
3. कौन से उपनिवेश–विरोधी राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम दूसरे विश्वयुद्ध से प्रारंभ हुआ या उसमें से निकला?
4. यह कहना क्यों उचित है कि बीसवीं सदी की चीनी क्रांति इतिहास की 'महानतम क्रांति' रही है?
5. राष्ट्रीय विकास की कुछ प्रमुख (भिन्न) रणनीतियों का वर्णन करें?
6. वैश्विक व्यापार और विकास में समानता लाने के लिए कौन–सी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं आविष्कृत की गई हैं?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

26.1

1. ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, कनाडा
2. उपनिवेशी जनता को ाही सेना में शामिल करने और युद्ध–उद्योगों में भागीदारी से उन लोगों को पूर्ण नागरिकता के अधिकार तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता की मांग करने की प्रेरणा मिली।
3. अल्जीरिया, मलाया, अंगोला, मोजाम्बिक, वियतनाम

26.2

1. अफ्रीकी तानाशाह
2. इंडोनेशिया
3. भारत
4. 1945 में स्थापत

26.3

1. 1945 के बाद सोवियत संघ ने अनेक स्वाधीनता संग्रामों को मदद दी। अमेरिका ने कुछ राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्रामों का विरोध किया और कुछ को प्रोत्साहित किया। महा ाक्तियों ने इस बात को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्रामों का समर्थन या विरोध किया कि इससे उनके विरोधियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।
2. दक्षिण कोरिया, ताइवान, हांगकांग, सिंगापुर



3. अफ्रीका और लैटिन अमेरिका

26.4

1. सोवियत संघ के साथ जापान, अमेरिका और चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य के संबंध 1957 के बाद की तुलना में पहले बेहतर थे। चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य के ग्रेट ब्रिटेन के साथ खराब संबंध थे, क्योंकि उसने हांगकांग पर कब्जा (1997 तक) किया हुआ था।
2. 1980 में सीसीपी का पिछले तीन दशकों की तुलना में राष्ट्रीय उद्योगों के एक छोटे हिस्से पर नियंत्रण था और उसने भारी विदेशी निवेश को आमंत्रित और प्राप्त भी किया।
3. चीनी लोकतांत्रिक राज्य ने अमेरिका के विरुद्ध वियतनाम की सहायता नहीं की, हालांकि समाजवादी आदर्शों के अनुसार उसे ऐसा करना चाहिए था।

26.5

1. आधुनिकीकरण का सिद्धांत
2. भुगतान–संतुलन संबंधी समस्याओं का निवारण
3. निर्भरता का सिद्धांत
4. क्यूबा
5. वेनेजुएला के राष्ट्रीय नेता

पाठान्त प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें पैरा 26.1
2. देखें पैरा 26.4
3. देखें पैरा 26.2, 26.4
4. देखें पैरा 26.5
5. देखें पैरा 26.6 उपपैरा 4 से 9
6. देखें पैरा 26.6 उपपैरा 1.2

शब्दावली

वि–उपनिवेशीकरण – यह साम्राज्यवाद की उलटी प्रक्रिया है, जिसमें उपनिवेश राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र राष्ट्र बन जाते है। ऐतिहासिक दृष्टि से वि–उपनिवेशीकरण सामान्यतः 1945–90 की अवधि को कहा जाता है।

शीतयुद्ध – 1945 से 1990 तक की अवधि जब दो नई महाशक्तियों ने एक दूसरे से सीधे युद्ध (उष्ण युद्ध) न करके छदय युद्धों के माध्यम से एक दूसरें के



आपकी टिप्पणियाँ

विस्तार का विरोध करने की कोशिश की। शीतयुद्ध के मुख्य संघर्ष थे– सोवियत संघ द्वारा वियतनामी राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम को सहायता पहुँचाना। और अमेरिका द्वारा सोवियत संघ के खिलाफ लड़ रहे अफगानी स्वंत्रता सेनानियों की मदद करना।

गुटनिरपेक्ष आंदोलन (एन ए एम नाम) – 1950 से पूर्ववती उपनिवेशीकृत राष्ट्रों का एक संघ, जिसने 'महाशक्तियों' अमेरिका और सोवियत संघ पर नई निर्भरता से बचने का प्रयास किया। नाम राष्ट्रों में भारत, पाकिस्तान, मिस्र, क्यूबा एवं इंडोनेशिया शामिल है। गुटनिरपेक्षता की शपथ लेने के बावजूद कुछ राष्ट्र सैन्य सुरक्षा, व्यापार और आर्थिक विनिमय जैसे मामलों में किसी न किसी महाशक्ति पर निर्भर हो गए।

तीसरी दुनिया – 'विकास' (आर्थिक आधुनिकीरण) के जरुरतमंद पूर्ववर्ती औपनिवेशिक क्षेत्रों को दर्शाने के लिए 1950 के दशक के प्रारंभ में गढ़ा गया शब्द। पहली दुनिया यू0 के0, अमेरिका एवं कनाडा सहित धनी पूँजीवादी या गैर–समाजवादी राष्ट्रों को कहा जाता है। दूसरी दुनिया में (1990 तक) सोवियत संघ और उसका समाजवादी मार्ग अपनाने वाले अन्य यूरोपीय देश आते है, जैसे पोलैंड एवं बुलारिया।

विकास सहायता – धनी राष्ट्रों (या ऐसे राष्ट्रों के संघों) द्वारा गरीब देशों को उनके आर्थिक आधुनिकीकरण के लिए दिया जाने वाला धन या वित्तीय ऋण। शीतयुद्ध के दौरान महाशक्यिों अथवा उनके सहयोगी राष्ट्रों द्वारा विकास सहायता राशि का उपयोग पूर्ववर्ती उपनिवेशीकृत राष्ट्रों को अमेरिका या सोवियत संघ के पक्ष में करने के लिए किया गया।

आधुनिकीकरण का सिद्धांत – अमेरिकी अर्थशास्त्री डब्लयू डब्लयू रोस्टो द्वारा 1950 के दशक में प्रतिपादित आर्थिक विकास का सिद्धांत। रोस्टो का मानना था कि आर्थिक विकास और आधुनिकीकरण में औद्योगीकरण शामिल होगा, लेकिन पूँजीवादी कृषि विकास के बाद। मोटे तौर पर ब्रिटेन, अमेरिका और जर्मनी ऐसे देश थे, जिनका तीसरी दुनिया के देशों ने अनुसरण किया।

बाज़ार का समाजवाद – चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य के नेताओं द्वारा सन् 1980 से अपने विकास की मिश्रित या संयुक्त रणनीति को परिभाषित करने के लिए प्रयुक्त शब्द।



पूरे देश में सशक्त केन्द्रीय (आर्थिक) आयोजना और संसाधनों (उत्पादन के साधनों) पर राष्ट्र के स्वामित्व के बजाय, जैसा कि 1980 से पहले था, विदेशी भागीदारों सहित पूँजीपतियों को अपनी निवेशकों के लिए लाभ कमाने की अनुमति होती है। विशेष 'मुक्त उद्यम क्षेत्रों' को मान्यता देकर चीनी राज्य उनमें पूँजीवाद को कार्य करने की अनुमति देते है।



आपकी टिप्पणियाँ

27

20वीं शताब्दी में सामाजिक रूपांतरण

अध्याय 26 में आपने 19वीं शताब्दी में औपनिवेशिक विस्तार तथा पूँजीवादी औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप हुए परिवर्तनों का अध्ययन किया। इस अध्याय में हम 20वीं शताब्दी की उस सामाजिक प्रक्रिया की तीव्रता और गहराई का अध्ययन करेंगे जिसने 19वीं शताब्दी को पहचान दी थी। इनमें से कुछ तो मानव जीवन पर अमिट प्रभाव डालने वाली थीं।

20वीं शताब्दी के अंतिम दशक ने यूरोप में समाजवादी समूहों का पतन तथा पूँजीवादी कल्याणकारी राज्यों का विनाश भी देखा। इसने पूँजीवादी देशों के बीच तथा पूँजीवादी देशों के भीतर असमानता में वृद्धि भी देखी। हम इनमें से कुछ तथा पूँजीवाद तथा समाजवादी विचारधाराओं के सामाजिक रूपान्तर में भिन्नताओं का भी अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप:

- औद्योगिकीकरण के विकास ने किस प्रकार विश्व के कई भागों में समाज के आधारभूत परिवतनों में सहयोग दिया, इस पर चर्चा कर सकेंगे;
- यह पहचान कर सकेंगे कि पहले से ही विकसित देशों तथा 20वीं शताब्दी में अंग्रेजी राज से आजाद होने वाले देशों के बीच अंतर था;
- विकसित देशों में समय के साथ हुए परिवर्तन का अध्ययन कर पाएँगे;
- पूँजीवादी तथा समाजवादी देशों के बीच अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।

27.1 जनसांख्यिकी परिवर्तन

19वीं शताब्दी में विद्यमान जनसांख्यिकी परिवर्तन अगली सदी में भी जारी रहा। नब्बे के दशक में विश्व में 5 या 6 खरब लोग थे, शायद उस संख्या से तीन गुना जो प्रथम विश्व युद्ध के लड़े जाने के बाद थी। यह संख्या उन 18.70 करोड़ लोगों की मृत्यु के बावजूद थी जिनकी इस शताब्दी के दौरान विविध कारणों से स्वाभाविक मृत्यु हुई।



पूरे देश में सशक्त केन्द्रीय (आर्थिक) आयोजना और संसाधनों (उत्पादन के साधनों) पर राष्ट्र के स्वामित्व के बजाय, जैसा कि 1980 से पहले था, विदेशी भागीदारों सहित पूँजीपतियों को अपनी निवेशकों के लिए लाभ कमाने की अनुमति होती है। विशेष 'मुक्त उद्यम क्षेत्रों' को मान्यता देकर चीनी राज्य उनमें पूँजीवाद को कार्य करने की अनुमति देते है।

संपूर्ण 20वीं शताब्दी में विश्व जनसंख्या में वृद्धि दिखाई देती है। पश्चिमी यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका में यह मुख्यतः विकसित स्वास्थ्य सुविधाएं तथा कम शिशु मृत्यु दर की वजह से हुआ तथा सामाजिक सुरक्षा प्रणाली ने जीवन आयु वृद्धि में मुख्य भूमिका निभाई। यूरोप तथा अन्य प्रायद्वीपों में यह वृद्धि इसलिए थी क्योंकि जन्म दर बहुत ऊंची थी।

किंतु 1930 के पश्चात हम पूर्वी यूरोप में भी कमी का रुख देखते हैं तथा 1960 तक तो लगभग पूरे यूरोप में कम प्रजनन था, हालांकि न्यून मृत्यु दर के प्रति संतुलन था। अतः कुल मिलाकर पूरे विकसित संसार में जनसंख्या में वृद्धि हुई।

किंतु 20वी शताब्दी में हुए दो विश्व युद्धों का यूरोप की जनसंख्या वृद्धि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। क्योंकि काफी संख्या में लोग मारे गए तथा देर से विवाह तथा परिवारिक जीवन में अवरोध भी कारण बने।

1945 के पश्चात विकासशील देशों में पश्चिम की तुलना में कहीं अधिक जनसंख्या वृद्धि देखी गई। 20वी शताब्दी में जहाँ एक ओर विकसित स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध होने लगीं वहीं कृषि प्रधान पुरानी अवधारणा (जितने हाथ उतने काम) भी प्रचलन में रही, जिसकी परिणति अधिक गति से जनसंख्या वृद्धि में हुई।

एक तुलनात्मक तथ्य प्रदर्शित करता है कि सदी के अंत में पश्चिमी जगत में विश्व की जनसंख्या का 1/6 हिस्सा ही होगा।

जनसांख्यिकी परिवर्तनों ने मानवीय रहन–सहन तथा जनसंख्या वितरण के ढंग को भी बदल दिया। उदाहरण के लिए, 20वीं शताब्दी में जनसंख्या वितरण को प्रभावित करने में लगातार प्रवास एक महत्त्वपूर्ण घटक रहा। 1901 से 1915 तक यूरोप में अत्यधिक मात्रा में प्रवास हुआ। दक्षिण तथा पूर्वी यूरोप से जहाँ एक ओर लोग बाहर जा रहे थे वहीं उत्तरी यूरोप में प्रवासी वापस आ रहे थे और जा भी रहे थे। पश्चिमी यूरोप में प्रवासी आ अधिक रहे थे और जा कम रहे थे। प्रवास का यह विशिष्ट ढाँचा राजनीतिक प्रभाव के चलते श्रमिकों की बढ़ती तथा घटती मांग के कारण था। उदाहरणार्थ, नाजी नीतियों की वजह से जर्मनी से यहूदियों, अल्पसंख्यकों तथा राजनीतिक कैदियों का पलायन हुआ। जबकि युद्ध के पश्चात पुनर्वास की वजह से जर्मनी में तुर्क श्रमिकों का प्रवास हुआ। रूस तथा स्पेन में नागरिक युद्ध के चलते भी बाहरी प्रवास हुआ।

इस प्रकार हम देख सकते है कि जनसंख्या वृद्धि तथा स्थानांतरण कई महत्त्वपूर्ण घटनाओं के परिणाम थे। आज हम गरीब देशों से अमीर देशों में पलायन देखते हैं किन्तु अधिकतर प्रशिक्षित तथा कुशल मध्य वर्ग को, जबकि गरीब व्यक्ति के पास कड़े नियम के चलते प्रवास का कोई अवसर ही नहीं होता। हालांकि मध्य–एशिया में गरीब तबकों का प्रवास कोई बड़ी बात नहीं है।

पुत्र की अभिलाषा ने भारत तथा चीन जैसे देशों में लिंग संतुलन को नष्ट कर दिया तथा अब यह चिंता का विषय बन गया है।

27.2 शहरीकरण

आधुनिक शहरी जीवन पूँजीवादी औद्योगीकरण से संबंधित है। शहरीकरण का क्या अर्थ है? शहरों की सख्या में वृद्धि तथा ग्रामीण जनसंख्या की तुलना में शहरी जनसंख्या में



आपकी टिप्पणियाँ

तेजी से वृद्धि। इस प्रकार शहरीकरण एक स्वाभाविक प्रक्रिया न होकर औद्योगीकरण तथा शहरों में बेहतर आर्थिक अवसरों की वजह से ग्रामीण जनसंख्या का शहरों की ओर पलायन है। आप पाठ 22 में इस प्रक्रिया के विषय में पढ़ चुके हैं। यह आपको पूरे विश्व में, यहाँ तक कि पूरे यूरोप में भी एक सा नहीं मिलेगा, एक देश में भी यह नहीं है और यह प्रक्रिया अचानक नहीं आई है।

हमें औद्योगीकरण तथा अनौद्योगीकरण वाले क्षेत्रों में भारी असमानता देखने को मिलती है। कई क्षेत्रों में कृषि–का मशीनीकरण हो गया तो कहीं नहीं हुआ। औद्योगीकरण के साथ ही अधिकतर व्यक्ति निर्मित सामान के उत्पादन तथा सेवाओं के क्षेत्र में आए, किंतु ये दोनों ही क्षेत्र शहरों तथा कस्बों में ही केन्द्रित रहे।

सन 1900 में ब्रिटेन जहाँ औद्योगीकरण हुआ, प्रथम देश था, सर्वाधिक 77% तक शहरी जनसंख्या वाला देश था, जबकि जर्मनी जिसमें तब तक काफी गति से औद्योगीकरण हो रहा था, 56% शहरी जनसंख्या वाला देश हो चुका था। अन्य देशों में 50 प्रतिशत से कम ही शहरी जनसंख्या थी। और यदि इस शताब्दी के प्रारंभ में पूरे विश्व को आँके तो हम पाएँगे कि करीब 70 प्रतिशत जनसंख्या अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती थी।

20वीं शताब्दी के परिप्रेक्ष्य में यदि हम देखें तो पाएँगे कि विज्ञान तथा तकनीक में परिवर्तन के चलते उत्पादन वृद्धि ने शहरीकरण को और अधिक विस्तृत कर दिया। अमेरिका तथा इंग्लैंड में 1970 के मध्य तक 95 प्रतिशत से अधिक कार्यरत जनसंख्या निर्माण तथा सेवा क्षेत्र में कार्यरत थी, जबकि कृषि क्षेत्र में मात्र 5 प्रतिशत जनसंख्या ही रोजगार पा रही थी। यूरोप में (रूस के अतिरिक्त) 1980 के मध्य तक 70 प्रतिशत, जापान में 80 प्रतिशत तक जनसंख्या शहरी क्षेत्र में निवास कर रही थी, जबकि 20 प्रतिशत से कम कृषि क्षेत्र में।

रूस जैसे देशों में 1917 तक अधिकतर जनसंख्या गांवों से जुड़ी थी। हालांकि 1930 तथा शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रूस में तेजी से शहरीकरण हुआ। एशिया तथा अफ्रीका के कई देशों में (भारत–सहित) कृषि अभी भी ऐसा क्षेत्र था, जहाँ लोग अधिक संख्या में रोजगार पा रहे थे। शहरीकरण का अर्थ बड़े शहरों में प्रगति ही नहीं बल्कि हमारे जैसे विकासशील देशों में छोटे कस्बों का विस्तार भी था। सन 1900 में करीब 16 शहर ही एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले थे, 1950 में ये 67 तथा 1985 में ये 250 से अधिक हो गए। कुल मिलाकर पूरे विश्व में करीब 40 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति शहरों में निवास कर रहे थे। और आज यह संख्या पचास प्रतिशत तक हो सकती है। आप यह प्रवृत्ति हमारे देश में भी देख सकते है। हजारों की संख्या में लोग नौकरी की तलाश में बाहर आ रहे हैं। वास्तव में विकासशील देशों में कई शहर तो विश्व के सबसे बड़े शहर हैं – कोलकाता, दिल्ली, मुंबई, फैरो, शंघाई, नैरोबी, सियोल, बैंकाक, इत्यादि।

पाठगत प्रश्न 27.1

1. जनसंख्या वृद्धि किस प्रकार दो विश्व युद्धों से प्रभावित हुई?



2. किस प्रकार राजनीतिक पहलुओं ने जर्मनी में जनसंख्या पलायन को प्रभावित किया?

3. शहरीकरण से आप क्या समझते हैं?

4. विकासशील देशों के कुछ बड़े शहरों के नाम बताएं?

27.3 आधुनिक सामाजिक वर्ग

पूँजीवादी औद्योगीकरण का परिणाम आधुनिक सामाजिक वर्ग के रूप में सामने आया जिससे हमारा तात्पर्य उस सामाजिक वर्ग से है जो रूपांतरित होने से पहले हुआ करता था तथा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था तथा समाज का अभिन्न अंग था। दो नए वर्गों का उदय हुआ–मध्य वर्ग तथा श्रमिक वर्ग। पूर्व–पूँजीवाद व्यवस्थाएं भूमि की संपत्ति तथा भूमि के स्वामित्व के द्वारा संचालित होती थीं। जैसे ही यह संसार के हर क्षेत्र में फैला, दोनो पूँजीवादी उद्योगीकरण से बहुत बुरी तरह प्रभावित हुए। जनसंख्या तथा शहरीकरण में परिवर्तन के फलस्वरूप पूरे विश्व में सामाजिक ढांचे में बदलाव एक समान नहीं थे तथा न ही अचानक आए थे।

अधिकांश यूरोप के लिए 19वीं शताब्दी एक महत्त्वपूर्ण युग था, जब अचानक आई कुलीनता ने उनकी जिंदगी को बदल कर रख दिया। इंग्लैंड में वे आधुनिक जमींदार बन गए जो भूमि के किराए तथा अन्य पूँजीवादी कामों, जैसे – वाणिज्य, खनन, रेलवे इत्यादि से पैसा कमाते थे। इन जमींदारों का वर्चस्व 20वीं शताब्दी में भी कायम रहा।

किसान हालाँकि पूँजीवादी औद्योगीकरण तथा कृषि में पूँजी की अधिकता के बावजूद समाज का महत्त्वपूर्ण घटक बने रहे, लेकिन पूँजीवादी अर्थव्यवस्था ने उनकी जिंदगी को बदल कर रख दिया कृषक वर्ग स्वयं वर्गों में विभाजित हो गया – अमीर, गरीब तथा मध्य किसान तथा सम्पत्ति आपराधिक तथा राज्य प्राधिकरणों की संचालन अलग–अलग करने लगे। इसी दौरान भूमिहीन खेती श्रमिकों का वर्ग भी हमें दीखता है। हालांकि कृषि में संलग्न व्यक्तियों की संख्या यूरोप में तब तक कम नहीं हुई, जब तक कि 1940 में कृषि का मशीनीकरण हो गया था। जमींदार के साथ रिश्ते सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण पहलू बने रहे।

20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लगभग पूरे पश्चिमी जगत से किसान हमें गायब मिलते हैं तथा सामान्यतया जापान तथा पूर्वी एशिया में भी किसानों की संख्या में ह्रास दिखाई पड़ता है, मात्र सहारा – अफ्रीका, भारत तथा चीन में किसान भारी तादाद में बने रहे।

तीसरी दुनिया के देश विशेषकर एशिया तथा अफ्रीका की सरकारों द्वारा आत्मसमर्पण ने कृषि संबंधी विपदाओं को बढ़ाया तथा किसानों के लिए परेशानी वाली स्थिति उत्पन्न कर दी थी। भूमिहीनता बढ़ रही थी तथा व्यावसायिक कृषि के बढ़ने का अर्थ था फसलों का स्थानातंरण होना। निर्यात करने वाली फसलों के प्रति यूरोप के पूँजीवादी देशों की मांग ने खाद्यान्न फसलों के उत्पादन को कम कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप किसान वर्ग



आपकी टिप्पणियाँ

ने खाद्य पदार्थों के उपयोग को भी कम कर दिया जो कि यह हजारों किसान वर्गों की आत्महत्या की वजह बनी और समर्थन मूल्य, लागत का कम मूल्य तथा सिंचाई के लिए पानी और बिजली के लिए आंदोलन में सहायक रही। चीन अपनी कृषि व्यवस्था को राजनीतिक प्रणाली के साथ जोड़ने में सक्षम रहा। किंतु दो दशकों के भूमि सुधार असंतोष को बढ़ावा दे रहे थे क्योंकि औद्योगिक उद्देश्यों के लिए कृषि भूमि की माँग थी।

मध्यवर्ग प्रगतिशील तथा अंततः अधिकार स्थापित करने वाला वर्ग बनकर 20वीं शताब्दी में उभरा। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से पूरे पश्चिमी यूरोप में सबसे समृद्ध तथा प्रभावशाली मध्यवर्ग रहा था – उद्योगपति, फैक्ट्री मालिक, बैंकर तथा खान मालिक।

मध्यवर्ग में दुकानदार, प्रबंधन, डॉक्टर, इंजीनियर तथा सेवारत लोग भी शामिल थे। शिक्षा के विस्तार के साथ ही इस वर्ग का भी विस्तार हुआ। 20वीं शताब्दी के दौरान इसमें निम्न मध्यवर्ग की संख्या भी देखी जाने लगी जिन्हें कम वेतन प्राप्त हुआ करता था। यह वर्ग सर्वाधिक असुरक्षित वर्ग तथा अर्थव्यवस्था के उतार–चढ़ाव में सबसे ज्यादा प्रभावित वर्ग हुआ करता था ।

श्रमिक वर्ग का निर्माण जो श्रम के मूल्य पर आधारित था, का संबंध पूँजीवादी उद्योग की प्राप्ति से है। पूरे यूरोप में श्रमिक वर्ग संतुष्ट तथा 20वीं शताब्दी में भिन्न बना रहा क्योंकि मशीनीकरण अचानक नहीं आया था तथा सभी उद्योग एक साथ मशीनीकृत नहीं हुए थे। कुछ बड़ी फैक्ट्रियों के उदय से कुछ हस्तशिल्प तो मर चुके थे, किंतु नई योग्यताओं की आवश्यकता थी तथा नए दक्ष श्रमिक, धातु से संबंधित तथा इलैक्ट्रिक तथा बाद में इलैक्ट्रांनिक व्यक्तियों की माँग दिन – ब – दिन बढ़ रही थी। किंतु लगभग हर समय में कुशल कारीगर, घरेलू नौकर, दर्जी, धोबी, छपाई कर्मचारी, मजदूर, डाक अधिकारी, कई पदों पर तैनात थे। भारतीय रेलवे के कर्मचारी सभी शहरों में साथ–साथ निवास किया करते थे। इन श्रमिकों का एक महत्त्वपूर्ण घटक महिलाएं थी, हालांकि इस क्षेत्र में महिलाओं का प्रवेश निषिद्ध था। यह सब औपनिवेशिक संसार में श्रमिक वर्ग के लिए एकदम सटीक था। जैसे कि एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका में – और बाद में भी जब वे स्वतंत्र हो गए।

नगर तथा सामाजिक जीवन

शहर तथा सामाजिक जीवन गरीब तथा अमीर के भेदों को प्रत्यक्ष दर्शाता है। उनके शहर में रहने के ठिकाने एकदम अलग थे, तथा मिलने वाली सुविधाएं भी अलग थीं। बहुमंजिला इमारतों, मॉल, बड़े स्टोर, पार्कों, मुख्य मार्ग ने आधुनिक शहरों के जमीनी संसार को बदलकर रख दिया था। लेकिन इनके कारण प्रदूषण, गंदे सीवेज, झुग्गी–झोपड़ी, एक दो या तीन परिवार एक कमरे में ही रहते थे। यह आज भी संसार के किसी भी शहर का हिस्सा बन हुआ है। बेरोजगारी एक गंभीर समस्या बनी हुई थी।

27.5 परिवार

पूँजीवादी उद्योगीकरण के परिणामस्वरूप एकल तथा संयुक्त दोनों परिवारों में परिवर्तन आए। आर्थिक क्रांति से पूर्व गृहस्थी का अर्थ पारिवारिक कार्यों तथा श्रम में कोई अंतर न समझना था जबकि कई महत्त्वपूर्ण काम महिला तथा पुरुष द्वारा अलग–अलग किए करते रहे।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के साथ ही परिवार उत्पादन की एक इकाई न रहा, हालांकि उपयोग के मामले में यह एक ही इकाई बना रहा। उत्पादकों तथा कारखानों की वृद्धि ने श्रम मूल्य को जन्म दिया, हर व्यक्ति परिवार में पृथक् रूप से कमाता था। मध्यवर्ग के मूल्य थे – एक व्यक्ति का वेतन पूरे परिवार का वेतन समझा जाता था अर्थात एक व्यक्ति के वेतन पर ही पूरा परिवार जीवन–यापन करता था तथा महिलाओं के काम थे मुख्यतः घर को संभालना तथा बच्चों की देखभाल करना। ये हालांकि मध्य वर्ग के मूल्य थे, जिन्हें थोड़ा सा बेहतर कामकाजी वर्ग पाना चाहता था, किंतु ये श्रमिक वर्ग के लिए बाध्यकारी नही थे।

श्रमिक वर्ग की महिलाएं भी पुरुषों की भांति मजदूर थीं। जबकि वास्तव में कुछ उद्योग तो महिलाओं और बच्चों को ही श्रमिक के रूप में रखते थे क्योंकि उन्हें कम वेतन देना होता था। व्यवहार में समान काम समान दाम का सिद्धांत महिलाओं पर लागू नहीं होता था।

आधुनिक संसार में महिलाएँ घर और परिवार दोनों की ही जिम्मेदारी सँभाल रही हैं। इस स्थिति से तो आज सभी भली – भांति परिचित ही होंगे।

पाठगत प्रश्न 27.2

1. पूँजीवादी औद्योगीकरण के फलस्वरूप कौन से दो वर्गों का उदय हुआ?

2. मध्य वर्ग में कौन–से व्यक्ति सम्मिलित थे?

3. बड़े कारखानों के उदय ने श्रमिकों को किस प्रकार प्रभावित किया?

4. पूँजीवादी औद्योगीकरण ने महिलाओं के रोजगार के क्षेत्र में क्या प्रभाव डाले?

27.6 महिला की समानता तथा नारीवाद

20वीं शताब्दी में अर्थव्यवस्था के विस्तार ने साक्षरता के संग महिलाओं के लिए नई राहें खोलीं, मध्यवर्ग तथा श्रमिक वर्ग दोनों ही महिलाओं के लिए। घरेलू सेवाओं के अतिरिक्त महिलाएं अब दुकानों तथा कार्यालयों में भी कार्यरत थीं। नर्स तथा स्कूल अध्यापिका इत्यादि को प्रथम महिला अनुकूल नौकरियाँ माना गया। दोनों विश्वयुद्धों में महिलाओं को नए अवसर प्रदान किए गए, क्योंकि पुरुषों के युद्ध में चले जाने की वजह से उनके काम महिलाओं को करने पड़े। इन सबसे महिलाओं की सामाजिक स्थिति तथा अपेक्षाओं में बदलाव आया।



आपकी टिप्पणियाँ

मध्यवर्गीय महिलाओं ने मतदान का अधिकार मांगा तथा समानता की मांग में मताधिकार आंदोलन एक महत्त्वपूर्ण घटक बन गया। पश्चिमी जगत में महिलाओं की स्थिति में वास्तविक बदलाव श्रम तथा सामाजिक आंदोलनों के फलस्वरूप आया, जिसने सभी दबे–कुचलों के मुद्दे उठाए तथा समाज में ऐसे परिवर्तन की मांग की जो समानता लाए। महिलाओं ने इसे यथार्थ माना। महिलाओं ने बड़ी संख्या में संघ के सदस्य तथा सामाजिक संगठन बनाए तथा आंदोलनों के भी हालांकि नेतृत्व के मुद्दे पर वे उठ नहीं पाई। महिलाओं के लिए इन संस्थानों में समानता पाना संभव न था और महिलाओं को समान अधिकार की मांग कई आंदोलनों के दबाव के फलस्वरूप पूरी की गई।

रोजा लक्समबर्ग तथा बेट्रिक वेब प्रख्यात समाजवादी नेता थीं, कॉलेट तथा सेलमा लेजरलोफ महत्त्वपूर्ण लेखिकाएँ थीं। तथा आरंभिक 20वीं शताब्दी से ही महिलाएं महत्त्वपूर्ण टेनिस प्रतियोगिताओं, जैसे विम्बलडन, अमेरिकी ओपन में भाग लेने लगी थीं। महिलाओं ने पत्रकारिता तथा फोटोग्राफी को भी पेशे के रूप में अपनाना प्रारंभ कर दिया था तथा वे डॉक्टर तथा इंजीनियर भी बनने लगी थीं। सोवियत संघ में उसके बड़े संस्थानों, संसद आदि में काफी संख्या में महिलाएं थीं तथा वैज्ञानिक संस्थानों में भी।

रूस में श्रमिक आंदोलन में महिलाओं की भूमिका अहम रही। तथा कृषक महिलाएँ हरित आंदोलन का हिस्सा थीं। रूस में तथा उपनिवेश विरोधी आंदोलन में उन्होंने जन प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त माहौल पाया। भारत और चीन जैसे देशों में महिलाओं को शिक्षा के प्रश्न तथा सामाजिक पिछड़ापन, स्वतंत्रता आंदोलन का ही अंग थे तथा महिला–पुरुष दोनों ने ही इसके प्रति सहास दिखया जिसके परिणामस्वरूप स्वतंत्रता के पश्चात महिलाओं को भी पुरुषों के समान मत डालने का अधिकार मिला। रूस की क्रांति 1917 के बाद रूस में यह काफी पहले मिल गया था।

सन 1990 तक महिलाएं 16 देशों में शासनाध्यक्ष हो चुकी थी। कार्यस्थल पर उनकी संख्या नाटकीय रूप से एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका में बढ़ी। मॉरीशस इसका सटीक उदाहरण है। चीन तथा पूर्वी यूरोप में सौ प्रतिशत महिला रोजगार हासिल हो चुका है।

और यह कहने की बात नहीं कि समानता के लिए महिलाओं का संघर्ष समाप्त हुआ; यह संसार में प्रत्येक स्थान पर लागू नहीं होता। 1990 की नव–उदार नीतियों ने बेरोजगारी को बढ़ावा दिया। महिलाएं भी इसकी चपेट में आईं जिनमें पूर्व समाजवादी देश भी थे। तीसरी दुनिया के देशों में महिलाओं को गैर–संगठित क्षेत्र में काम करने को बाध्य होना पड़ा जिसमें न तो श्रमिक अधिकार थे, न ही न्यूनतम भत्ते की गारंटी। घरेलू सेवा अभी भी महिलाओं के रोजगार का साधन थी।

भारत में कन्या शिशु हत्या तथा भ्रूण हत्या 20वीं शताब्दी के आखिरी दशक में काफी बढ़ गइ थी। भारत में दहेज हत्या तथा संसार में घरेलू हिंसा में भी बढ़ोतरी पाई गई।

27.7 काम के तरीकों में परिवर्तन

जैसे–जैसे कारखाना प्रणाली विकसित होती गई, काम करने के तरीके बदलते गए। यूरोप में यह 19वीं शताब्दी में हुआ, किंतु बाकी संसार में यह 20वीं शताब्दी में हुआ। श्रमिकों का कार्यस्थल कारखाना हो गया। उसे समय काम के निर्धारित समय का

अनुसरण करता होता था। महिलाएं तथा बच्चे भी काम पर लग गए तथा उन्हें भी कारखाने के नियमानुसार ही चलना पड़ता था। कारखाना पद्धति का अपने अनुसार नियम तथा शर्तें थीं और श्रमिक नहीं, बल्कि मशीन काम का स्वरूप निर्धारित करती थी। नई तकनीक का आविष्कार बहुधा छंटनी का कारण बनता था। अतः श्रमिकों के बीच तनाव तथा बेरोजगारी बढ़ाता था, किंतु कई बार यह नई मशीनरी के अनुसार अपनी दक्षता को ढालने का अवसर देता था।

शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, एक अन्य प्रकार का परिवर्तन कार्य स्थल पर देखने को मिला। पश्चिमी देशों की कुछ बड़ी फर्मों ने पाया कि कम्प्यूटर के साथ घर से ही काम करना संभव है तथा यह सस्ता है क्योंकि उन्हे ऑफिस मशीनरी पर कुछ खर्च नहीं करना पड़ता। ये परिवर्तन कर्मियों के फायदे दर्शाते थे, किंतु हकीकत में ये कर्मी कभी काम से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाते थे। वे छुट्टी तथा अन्य सुविधाएं नहीं मांग सकते थे, क्योंकि वे नौकरी नहीं करते थे तथा ट्रेड यूनियन (श्रमिक संघों) की स्थापना तथा अन्य सहयोगियों के साथ दुख बांटने का कोई अवसर भी नहीं मांग सकते थे।

नए प्रकार के सॉफ्टवेयर ने मालिकों को काम पर नजदीक से नजर रखने के अवसर दिए तथा कम्प्यूटर नेटवर्क के जरिए अपने कर्मियों को काम के समय पर भी आप समाचार पत्रों में पढ़ सकते हैं कि बी पी ओ तथा कॉलसेंटर में काम करने वाले लोगों की परिस्थितियों के विषय में जो हमारे देश में कुकुरमुत्तों की तरह खुल रहे हैं।

एक अन्य बड़े परिवर्तन को हम आउट–सोर्सिंग कह सकते हैं। बड़ी राष्ट्रीय कंपनियों के लिए यह बड़े फायदे का सौदा होता है कि वे अपने कुछ काम तीसरी दुनिया के देशों में स्थानांतरित कर दें, जहां वेतन भत्ते कम हैं तथा जहाँ वे सरकार करों में छूट के लिए दबाव बना सकें। इसका अर्थ हुआ, पश्चिमी देशों में बेरोजगारी में वृद्धि तथा तीसरी दुनिया के देशों के लिए नौकरी किंतु खराब दशाओं में।

बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने छोटी दुकानों का दौर भी वापस बुलाया है। जहाँ वे अपना कार्य ठेके पर दे पाएं। जिसका अर्थ हुआ कि उत्पादन घर में ही होता था। यहाँ वेतन बहुत कम था तथा श्रमिक अत्यधिक शोषित थे। क्योंकि इस प्रकार का काम तीसरी दुनिया के देशों में तेजी से बढ़ा, क्योंकि अधिकतर महिलाएं यह कार्य करना चाहती हैं।

पाठगत प्रश्न 27.3

1. 20वीं शताब्दी में महिलाओं द्वारा अपनाई गई नई नौकरियां क्या थी?

2. 1990 की नव उदार नीतियों ने महिलाओं को किस प्रकार प्रभावित किया?

3. कारखाना व्यवस्था ने काम के ढंग को किस प्रकार बदला?



आपकी टिप्पणियाँ

4. 'आउट–सोर्सिंग' के द्वारा आए बदलावों की व्याख्या कीजिए।

27.8 सामाजिक और राजनीतिक संगठन

20वीं शताब्दी में सामाजिक तथा राजनीतिक संगठन की संख्या चामत्कारिक रूप से बढ़ी। राजनीतिक दलों तथा श्रम संघों के अतिरिक्त कर्मचारियों के विभिन्न वर्गों के बीच, महिलाओं तथा क्षेत्रों और लेखकों के संगठन के अतिरिक्त संगठनात्मक रूप को हर प्रकार के विचार तथा संभावनाएँ प्राप्त हो जाएँगी – शिक्षा पर, जन स्वास्थ्य पर, अल्पसंख्यकों के अधिकार, मानवाधिकार, शक्ति आंदोलन, सभ्यता, समलैंगिक अधिकार, पर्यावरण, तथा संरक्षण, कर्ज तथा स्व–मदद समूह इत्यादि। जिंदगी का कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं है। इनमें से कई संस्थान मांग उठा चुके हैं जो यह बताने के लिए पर्याप्त है कि हमारे समाज में क्या होता है किंतु कई संगठन समाज के पक्ष में भी हैं।

27.9 पूँजीवाद, समाजवाद और असमानता

20वीं शताब्दी के तकनीकी तथा वैज्ञानिक उपलब्धियों ने महान प्रगति तथा मानव जाति को लाभ पहुंचाए। सर्वश्रेष्ठ उपलब्ध सभावनाएँ पूरे विश्व की जनसंख्या की बेहतरी के लिए उपलब्ध कराई गईं तथा सभी व्यक्तियों के जीवन स्तर में बेहतरी भी उपलब्ध कराई गई। किंतु वैश्वीकरण तथा आर्थिक स्तर ने अमीर और गरीब की खाई को चौड़ा ही किया है।

समाजवादी विचारधारा अपने कई दोषों के बावजूद अधिक समान समाज की रचना करने में सक्षम रही, उस बड़े अंतर के बिना जो पूँजीवादी देशों में अमीरों तथा गरीबों के बीच दीखता है।

समाजवाद के पतन के पश्चात (सोवियत संघ तथा पूर्वी यूरोप में) पूँजीवादी सरकारों ने कल्याणकारी कार्यों में काफी विराम लगाए हैं। जिसका परिणाम संसार के अधिकतर व्यक्तियों के खिलाफ रहा।



आपने क्या सीखा

इस अध्याय में आपने पढ़ा कि किस प्रकार 19वीं शताब्दी में प्रारंभ हुई सामाजिक प्रक्रिया 20वीं शताब्दी में फली फूली। जनसंख्या परिवर्तन के अतिरिक्त शहरीकरण की प्रगति तथा शहरी जीवन में परिवर्तन भी देखे जा सकते हैं। पूँजीवादी औद्योगीकरण के विस्तार ने आधुनिक कुलीन वर्ग को जन्म दिया तथा परिवार तथा काम के ढंग में बदलाव प्रस्तुत किए। इसने लोकप्रिय आंदोलनों तथा सामाजिक और राजनीतिक संगठनों को भी बढ़ावा दिया, जो विभिन्न वर्गों के विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

पूँजीवादी औद्योगीकरण ने 20वीं शताब्दी में विस्तार किया जिसने प्रगति तो की, किंतु समाज में असमानता को भी बढ़ावा दिया।

पाठांत प्रश्न

1. पश्चिमी यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका में जनसंख्या वृद्धि के मुख्य कारणें पर प्रकाश डालिए।
2. आधुनिक कुलीन वर्ग से क्या तात्पर्य है?
3. तीसरी दुनिया के देशों में कृषि संबंधी आपदा के प्रभावों का वर्णन करें।
4. अमीरों और गरीबों की जिंदगी का चित्रण शहर किस प्रकार करते हैं?
5. श्रमिक तथा सामाजिक आंदोलनों ने महिलाओं को किस प्रकार प्रभावित किया?
6. कम्प्यूटर द्वारा कार्य की पद्धति पर पड़ने वाले प्रभावों की समीक्षा कीजिए।
7. कुछ उदहारण देकर स्पष्ट कीजिए कि किस प्रकार विज्ञान तथा तकनीक ने मानव जीवन को बेहतर बनाया है।
8. क्या अमीरों और गरीबों का अंतर आज बढ़ रहा है या कम हो रहा है विस्तार से चर्चा करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

27.1

1. बड़ी संख्या में लोग मारे गए, विवाह टले तथा पारिवारिक जीवन का विध्वंस।
2. नाजी नीतियों ने यहूदियों, अल्पसंख्यकों तथा जर्मनी के राजनीतिक कैदियों के पलायन को जन्म दिया, वहीं युद्ध उपरांत पुनर्वास ने तुर्की के मजदूरों का जर्मनी में प्रवास कराया।
3. औद्योगीकरण तथा शहरों में बेहतर आर्थिक सुविधाओं के चलते ग्रामीण जनसंख्या का शहर में पलायन
4. कलकत्ता, दिल्ली, मुम्बई, शंघई, कैरो इत्यादि।

27.2

1. मध्यवर्ग, श्रमिक वर्ग
2. उद्योगपति, बैंकर, वकील, डॉक्टर, इंजीनियर, अध्यापक तथा अन्य कामकाजी वर्ग।
3. कुछ रोजगार बढ़े, कुछ ने बेरोजगारी का सामना किया, कारखाने में श्रम मूल्य कामगारों के भत्ते में परिवर्तन।
4. घर के बाहर रोजगार, असमान वेतन, कारखाना अनुशासन

27.3

1. कारखाने का काम, शिक्षक, कार्यालय, तथा दुकानें



आपकी टिप्पणियाँ

2. बेरोजगारी में वृद्धि, गैरसंगठित क्षेत्रों में तथा घरेलू काम के लिए धकेल दिया जाना
3. जगह, ढंग, काम के घंटे, अनुशासन
4. बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपने काम का कुछ हिस्सा तीसरी दुनिया के देशों में स्थानांतरित कर देती हैं जहां वेतन कम है तथा जहाँ वे सरकार के ऊपर करों में छूट का दबाव बना पाए।

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. देखें 27.1 अनुच्छेद 2
2. देखें 27.3 अनुच्छेद 1
3. देखें 27.3 अनुच्छेद 5
4. देखें 27.4
5. देखे 27.6 अनुच्छेद 2
6. देखें 27.7 अनुच्छेद 2 तथा 3
7. खुद खोजें और उत्तर दें।
8. लिखें जो आप सोचते हैं।

28

20वीं शताब्दी में परिवर्तन

बीसवीं सदी को प्रायः बोल्शेविक क्रांति, विश्व युद्धों, फासिज्म और एशियन और अफ्रीकन राष्ट्रों के उपनिवेशवादी शासन से स्वतंत्र होने जैसी मुख्य ऐतिहासिक घटनाओं के कारण याद किया जाता है।



चित्र 28.1.1 बोलशेविक क्रांति किले पर पत्थरबाजी



चित्र 28.1.2 अफ्रीका की स्वतंत्रता



चित्र 28.1.3 पर्ल हार्बर पर आक्रमण द्वितीय विश्व युद्ध



चित्र 28.1.4 इटली में फासिस्टवाद



चित्र 28.1.5 इथियोपिया का स्वतंत्रता आंदोलन



चित्र 28.1.6 प्रथम विश्व युद्ध में एक खाई

यह सभी विकास निस्संदेह निर्णायक थे और इन्होंने समसामयिक विश्व पर अपना बहुत गहरा प्रभाव छोड़ा। तथापि, यह जानना दिलचस्प है कि समाज में आए परिवर्तन किन्हीं नाटकीय घटनाओं के परिणाम नहीं हैं, बल्कि अर्थव्यवस्था, संस्कृति और जनसांख्यिकीय में धीरे–धीरे आए दीर्घकालिक परिवर्तनों का भी परिणाम हैं। बीसवीं शताब्दी के दौरान ऐसे भी अनेक परिवर्तन देखने में आए जो उस काल के व्यक्तियों की प्रत्यक्ष कल्पना में नहीं आ सके, परन्तु जिन्होंने अंत में, विश्व के वर्तमान रूप को आकार देने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई।



आपकी टिप्पणियाँ

पिछले पाठ में आपने ऐसी अनेक विकासशील घटनाओं के संबंध में पढ़ा जिनमें जनसांख्यिकीय विस्फोट, तेज गति से आया शहरीकरण और पिछली सदी के दौरान मध्य और कामगार वर्गों मे आया चमत्कारिक विकास शामिल है।

विभिन्न देशों के सामाजिक ढाँचों या उनके प्रमुख सामाजिक समूहों के परस्पर संबंधों में इसी प्रकार के परिवर्तन; सांस्कृतिक परिवर्तन, यानी लोगों के मूल्यों, व्यवहारों, कलात्मक रुचियों इत्यादि में भी इसी अवधि के दौरान धीरे–धीरे और दीर्घकालिक परिवर्तन देखने में आए। अगले पाठ में हम इनमें से कुछ सांस्कृतिक परिवर्तनों के संबंध में विस्तृत विचार–विमर्श करने का प्रयास करेंगे और यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि क्या इन परिवर्तनों ने वर्तमान व्यापक साझा वैश्विक संस्कृति का विकास किया है या संस्कृतियों के बीच और अधिक तनाव और मन–मुटाव आए हैं।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- संस्कृति शब्द के विभिन्न अभिप्रायों की व्याख्या कर सकेंगे;
- संस्कृति के विशेष लक्षणों पर प्रकाश डाल सकेंगे और संस्कृति की समस्याओं की व्याख्या कर सकेंगे;
- बीसवीं सदी के दौरान विज्ञान, कला, धर्म, शिक्षा, मीडिया, मनोरंजन और व्यवहार और मूल्यों में आए मुख्य परिवर्तनों का संक्षिप्त वर्णन कर सकेंगे, और
- 'वैश्वीकरण' अथवा एकीकृत विश्व अर्थव्यवस्था और संस्कृति तथा वर्तमान में पश्चिमी वर्चस्व के सतत विरोध के बीच संतुलन का आकलन कर सकेंगे।

28.1 संस्कृति की परिभाषा

परन्तु इससे पहले कि हम 20वीं सदी में आये सांस्कृतिक परिवर्तनों को समझें, यह लाभकारी होगा कि विभिन्न शास्त्रों में दिए गए संस्कृति शब्द के विभिन्न अर्थों को हम ध्यान से जाँच परख लें। वास्तव में 'संस्कृति' शब्द सामाजिक विज्ञानों में सबसे जटिल शब्द है। न सिर्फ इसलिए कि यह शब्द रीति–रिवाजों, आदतों, मूल्यों इत्यादि जैसे व्यापक स्वभाविक गुणों की ओर संकेत करता है जिन्हें आंकना या उनके परिणाम निर्धारित करना कठिन है परन्तु इसलिए कि इस शब्द को विभिन्न विद्वानों द्वारा अनेक अर्थों में प्रयोग में लाया गया है। उदाहरण के लिए, सरकारी घोषणाओं और समाचार बुलैटिनों में संस्कृति शब्द का उपयोग प्रायः कलात्मक सृजनात्मकता और बौद्धिक सफलताओं का उल्लेख करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार शास्त्रीय तथा लोक संगीत, नृत्यों की किस्मों, साहित्य इत्यादि के जरिए दर्शाए जाने वाली भारतीय संस्कृति के लिए भी इसी शब्द का प्रयोग किया जाता है।

इस धारणा से थोड़ा हटकर, मानवविज्ञानी (एन्थ्रोपॉलोजिस्ट) संस्कृति शब्द को किसी भी समुदाय के संपूर्ण जीवन के हर पक्ष, जैसे–खान–पान, वेश–भूषा, काम और खाली समय व्यतीत करने की दिनचर्या के साथ–साथ लोकप्रिय परम्पराओं, त्योहारों इत्यादि को

व्यक्त करने के लिए प्रयोग करते हैं। इस प्रकार के प्रयोग में दृष्टि महान कलाकारों अथवा विचारकों की विशिष्ट या उत्कृष्ट उपलब्धियों पर अधिक नहीं होता है परन्तु उनके दिन–प्रतिदिन के कार्यों पर होता है जिनमें समुदाय पारंपरिक रूप से सम्मिलित रहा है अथवा उन्हें स्वीकृत किया जाता रहा है। अतः इस परिभाषा के अनुसार भारतीय संस्कृति के अध्ययन में दृष्टि हमारे लोकप्रिय त्योहारों, धार्मिक परंपराओं और जाति व्यवस्था पर होगा।

एक अन्य परिभाषा में संस्कृति शब्द में समाहित हैं किसी समुदाय के निहित मूल्य, विश्वास और आचार–व्यवहार जो सभी के साझे हों या जो किसी समुदाय की मुख्य विशेषता के रूप में समझे और पहचाने जाते हों। अतः इस प्रकार भारतीय संस्कृति में पारंपरिक पारिवारिक बंधनों का और बड़ों के सम्मान का महत्त्व पश्चिमी विश्व से कहीं अधिक है जहाँ पर बच्चे विवाह के पश्चात अपने माता–पिता को छोड़ देते हैं और उनके वैवाहिक बंधन भी बहुत नाजुक होते हैं। ऐसी मानसिकताओं या आदर्शों और विश्वास पद्धतियों के सरोकारों के विपरीत, पुरातत्वविज्ञानी प्राचीन समुदायों की भौतिक संस्कृति' (मैटीरियल कल्चर) या आमतौर पर प्रयोग में लाई जाने वाली शिल्पकृतियों, जैसे–मिट्टी के बर्तन, आभूषण और भवन इत्यादि पर अधिक केन्द्रित हैं जिनके अवशेषों को खुदाइयों के जरिए ढूँढने का प्रयास करते हैं।

यदि आपको पीछे दी गई परिभाषाओं की ध्यानपूर्वक समीक्षा करनी हो तो आप नोट करेंगे कि किसी भी संस्कृति का अध्ययन मस्तिष्क में दो विभिन्न मानदंडों के आधार पर किया जा सकता है : एक ओर कलात्मक और बौद्धिक परिष्करण और दूसरी ओर एतिहासिक रूप से की गई सह–भागीदारी अथवा लोकप्रिय परंपराएँ। दूसरे मानदंडों की भी विभिन्न स्तरों पर पहचान की जा सकती है : भौतिक वस्तुएँ, प्रथाएँ या मूल्यों और व्यवहारों में।

संस्कृति के इन बहुआयामी पहलुओं का अनुसरण करते हुए अब हम विज्ञान, कला, मनोरंजन, मूल्य, धर्म और शिक्षा से संबंधित क्षेत्रों के कुछ असाधारण विकासों के संबंध में पढ़ेंगे जो कि 20वीं शताब्दी के दौरान देखने में आयी थी।

1. बीसवीं शताब्दी के दौरान दिखाई देने वाले, क्रांतिकारी और धीमी प्रकृति के परिवर्तनों के दो उदाहरण दीजिए।
2. संस्कृति शब्द की विभिन्न परिभाषाओं के समान और विरोधी लक्षणों का उल्लेख करें। क्या आप इन परिभाषाओं में कुछ सामान्य विशेषताओं का पता लगा सकते हैं?
3. सामाजिक विज्ञानों में संस्कृति शब्द एक जटिल अभिव्यक्ति क्यों है?

28.2 विज्ञान और प्रौद्योगिकी

बीसवीं शताब्दी की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों में शायद विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास रहा है जिसने उस अवधि के दौरान मनोरंजन और शिक्षा से लेकर परिवहन और संचार तक जीवन के हर पक्ष को तीव्र गति से प्रभावित और परिवर्तित किया। पिछली सदी के दौरान आधुनिक प्रौद्योगिकी ने कारें एवं वायुयान, रेडियो और ट्रांजिस्टर, फिल्में तथा टेलीविजन, कैलक्यूलेटर एवं कम्प्यूटर, सैटेलाइट और मोबाइल फोन तथा लेजर एवं अंग प्रत्यारोपण कुछेक ऐसे नए उत्पाद और सेवाएँ उपलब्ध कराईं। इन प्रौद्योगिकी आविष्कारों के इस महासमुद्र के पीछे विविध वैज्ञानिक क्षेत्रों, जैसे–सब–एटॉमिक

फिजिक्स, आनुवंशिकी और अणु जीवविज्ञान और अंतरिक्ष अनुसंधान में जटिल विकास हुए हैं। इन क्षेत्रों में प्रमुख खोजें करने वाले कुछ प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं, मैडम क्यूरी, अलबर्ट आईंस्टाइन, फिनमैन और होमी जे भामा।



चित्र 28.2.1 मैडम क्यूरी, रेडियो एक्टिविटी की खोज



चित्र 28.2.2 रिचर्ड पी फिनमैन



चित्र 28.2.3 अलबर्ट आइंस्टाइन, परमाणु वैज्ञानिक



चित्र 28.2.4 होमी जे भामा, परमाणु वैज्ञानिक

परन्तु कुल मिलाकर हाल ही में हुए वैज्ञानिक विकास किसी एक प्रतिभाशाली व्यक्ति की प्रगति नहीं हैं बल्कि विश्व के विभिन्न देशों और विकसित देशों खासतौर से अमरीका में अत्यधिक वित्त पोषित अनुसंधान केन्द्रों के वैज्ञानिकों की प्रगति का परिणाम हैं।

यह ध्यान देना भी महत्त्वपूर्ण है कि जबकि समकालीन विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने जनसामान्य को अत्यन्त लाभ पहुँचाया है, फिर भी लोगों में विज्ञान के प्रति आशंका और भय उत्पन्न हुए हैं। आंशिक तौर पर ऐसा शिक्षित जन सामान्य का आधुनिक विज्ञान की नवीनतम उन्नतियों की अज्ञानता के कारण हुआ है।

पहले से अधिक विध्वंसक हथियारों का निर्माण करने की इसकी शक्ति ने आधुनिक विज्ञान को शायद और अधिक खौफनाक बनाया है और यह पृथ्वी के संवेदनशील पारिस्थितिकीय संतुलन के लिए चुनौती है।

वर्तमान युग में वैज्ञानिक अनुसंधान को बढ़ावा देने और उनका स्पष्टतया संचालन करने की वैज्ञानिकों और सरकारों की सामाजिक जवाबदेही और जिम्मेदारी बहुत अधिक है।

कला और साहित्य

विज्ञान के अतिरिक्त, बीसवीं शताब्दी कला के रूपों, जैसे–चित्रकला, संगीत और साहित्य और कुछ नवीनतम कलात्मक माध्यमों, जैसे–सिनेमा और रिकॉर्ड किए गए संगीत में भी महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई है।

इस अवधि के दौरान संपूर्ण राष्ट्रों में नये सृजनात्मक कार्य को दिशा देने वाले कुछ मुख्य कला आंदोलनों में आधुनिकतावाद, सामाजिक यथार्थवाद और उत्तर–आधुनिकतावाद थे।

वास्तव में आधुनिकतावाद उन्नीसवीं सदी की अंतिम चौथाई अवधि (क्वार्टर) के दौरान यूरोप में अग्रणी लेखक वर्ग या अग्रणी कला प्रवृत्ति के रूप में विकसित हुआ और उसने बीसवीं सदी में संपूर्ण विश्व पर प्रभाव डाला। यद्यपि आधुनिकतावाद की विभिन्न शाखाएँ

थीं, जैसे–प्रतीकवाद, प्रभाववाद और अतियथार्थवाद, परन्तु इन सभी में एक मुख्य सामान्य प्रवृत्ति थी कि प्रत्यक्ष विश्व में दिखाई दे रही वस्तुओं और व्यक्तियों को यथारूप में चित्रित करने के स्थान पर अवचेतन मन की भावनाओं और विचारों की गहराई को प्रकट करने पर बल दिया गया है। इसके अतिरिक्त इस आधुनिक सरोकार को व्यक्तिनिष्ठ और अवचेतन तत्वों सहित अभिव्यक्ति देने के लिए, कलात्मक अभिव्यक्ति के पारंपरिक तरीकों को भी श्रेष्ठ बनाया गया और बार–बार साहसिक प्रयोगों को दोहराने का प्रयास किया गया। ये प्रायः एक साधारण दर्शक को अत्यन्त सूक्ष्म और अबोधगम्य लगने लगे थे।

इस प्रवृत्ति में अपनी निजी शैलियाँ विकसित करने वाले कुछ महान आधुनिकतावादी स्पेन के चित्रकार पाब्लो पिकासो जो चित्रकारी में आकृतियों के बहु–आयामी चित्र प्रस्तुत करने के लिए प्रसिद्ध थे। क्यूबिज्म आयरिश लेखक जेम्स जॉयस ने उलिसेस नामक अपनी पुस्तक में द स्ट्रीम ऑफ कॉन्शियसनेस की तकनीक प्रस्तुत की थी।



चित्र 28.3 पिकासो

विडम्बना यह है कि अधिकांश आधुनिकतावादी अपने सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण की कलात्मक अभिव्यक्ति में नई शैलियां विकसित करने में अत्यंत साहसी और प्रौद्योगिकी दृष्टिकोण अपना रहे थे, वहीं उनमें से अनेक अपने समय की राजनीतिक चुनौतियों के प्रति बिल्कुल उदासीन रहे और समग्र रूप से आधुनिक सभ्यता या यहाँ तक कि मानवीय परिस्थितियों के प्रति गहरी निराशाजनक स्थिति में रहे।

तथापि, इसी अवधि के दौरान, कलाकारों के एक अन्य वर्ग ने सामाजिक यथार्थवाद की शैली के माध्यम से अपनी कला कृतियों में अधिक प्रगतिशीलता और सामाजिक परिवर्तनों के प्रति आशावादी दृष्टिकोण की कलात्मक अभिव्यक्ति की। जर्मनी में बर्टोल्ड ब्रेख्त और ब्रिटेन के जॉर्ज बर्नाड शॉ और रूस में मैक्सिम गोर्की जैसे उपन्यासकारों और अलेक्जेन्डर ब्लोक जैसे कवियों की इस प्रवृत्ति के दिशा निर्देशकों में गणना की जा सकती है। ये कवि और लेखक, समाज के समतावादी परिवर्तन के आदर्श से प्रेरित थे। बोल्शेविक क्रांति और सोवियत संघ के गठन ने अनेक लोगों को प्रेरित किया और कलात्मक प्रवृत्ति के रूप में सामाजिक यथार्थवाद ने इन्हें अनेक गैर–कम्युनिस्ट देशों में, जो कि समानान्तर रूप से उपनिवेशवाद, सामंतवाद और पूंजीवादी शोषण के हिंसक जाल में फंसे हुए थे, पर्याप्त भाग में सृजनात्मक कार्य करने के लिए प्रेरित किया। उदाहरणतया भारत में 1940 में वामपंथियों के स्पष्ट समर्थन से मजाज और जोश जैसे प्रबुद्ध शायरों

ने और अन्य विद्वान लेखकों जैसे प्रेमचंद ने समकालीन ग्रामीण जीवन के सामजिक सरोकारों का बहुत ही गहन यथार्थवादी चित्रण किया। इसी प्रकार चीन में, लू हसुन जैसे प्रबुद्ध और महान यथार्थवादी लेखकों ने, जिनकी लेखकीय प्रवृत्तियाँ समाजवाद से प्रेरित थीं, अपनी महान कृतियाँ लिखीं जबकि लैटिन अमेरिका में संयुक्त राष्ट्र (यू एस) विरोधी प्रतिरोध ने पाब्लो नेरूदा के काव्य को प्रेरित किया।

वास्तव में 19वीं और 20वीं सदी के दौरान एशियाई, अफ्रीकी और लैटिन अमरीकी देशों में कला और साहित्य की समृद्धि, हाल ही के वर्षों में हुए विकास में से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विकास रहा है। इन देशों के कलाकारों ने एक ओर तो राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं को अभिव्यक्ति दी और इसके साथ ही अपने समाजों में उभर रही सामंतवादी और पूँजीवादी शोषण की समस्याओं का भी सामना किया, वहीं दूसरी ओर तीव्र गति से आती आधुनिकीकरण की लहर के साथ–साथ अपनी परंपराओं के संश्लेषण की विशिष्ट चुनौतियों का भी सामना किया। सौ वर्ष पूर्व के प्रबुद्ध सृजनात्मक लेखक रवीन्द्रनाथ टैगोर से लेकर उपनिवेशवादी काल के बाद तक सृजित, लैटिन अमेरिका में गैब्रियल गर्सिया मर्कीज और अफ्रीका के चिनुआ ऐसीब की मधुर रचनाएँ, हाल ही में सृजित महान सर्जनात्मक साहित्यिक रचनाएँ हैं।

दर्शनशास्त्र और मानव विज्ञान

विद्यार्थियों के संदर्भ में, विश्वविद्यालयों के संकाय और प्रकाशनों की स्थितियों और मानव विज्ञानों (सामाजिक विज्ञान और मनोविज्ञान) में, बीसवीं सदी के दौरान और विशेष रूप से द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत अद्भुत विस्तार दृष्टिगोचर हुआ।

तथापि, प्रकाशनों के लिए बढ़ती होड़ और सामाजिक वैज्ञानिकों में हुई प्रगति के बढ़ते विस्तार के साथ–साथ विशेषज्ञता प्राप्त करने और विद्वता के लिए अपरिचित एवं क्लिष्ट तकनीकी शब्दों के प्रयोग और विशिष्ट शब्दावली के इस्तेमाल की प्रवृत्ति में भी बहुत वृद्धि हुई है, जो कि समकालीन शैक्षिक लेखन को पर्याप्त सीमा तक चित्रित करती है।

महान विचारक



चित्र 28.4.1 ई. वी. थाम्पसन



चित्र 28.4.2 अमर्त्य सेन

वास्तव में, सामाजिक और दर्शनशास्त्रीय जिज्ञासा की समग्र और गैर–विशेषज्ञतापूर्ण समझ से विशेषज्ञता पूर्ण अध्ययन के विषयों तक के उद्भव की जड़ों को हम उन्नीसवीं सदी के यूरोप में ढूँढ सकते हैं जब अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, मानव–विज्ञान और मनोविज्ञान धीरे–धीरे अपनी विशिष्ट पद्धतियों के साथ, पृथक अध्ययन विषयों के रूप में विकसित हुए और इन्होंने संबद्ध सरोकारों को विस्तृत बना दिया।

इसी दौरान, ए. जे. अय्यर और विटजेन्स्टीन जैसे विचारकों के प्रभाव के कारण दर्शनशास्त्र ने अपनी विचार दृष्टि की गति को नैतिकता और राजनीति के व्यापक प्रश्नों के अन्वेषण से भाषा और प्रतीकों, जिनके माध्यम से मुद्दों को व्यक्त किया जाता है, के स्पष्टीकरण के साथ और अधिक संकीर्ण और गहन सरोकार से जोड़ दिया।

इसका अभिप्राय यह नहीं है कि कार्यकारणता (कॉजेशन), मानव प्रकृति और परिवर्तनों से संबद्ध व्यापक प्रश्न, आज उठाये नहीं जा रहे हैं। बर्ट्रेन्ड रसेल, नोऐम चोम्स्की और लुईस आल्थुस्सर जैसे महान विचारकों ने सरोकारों के व्यापक संदर्भों से संबद्ध विषयों के संबंध में लेखन जारी रखा।

पाठगत प्रश्न 28.2.1

1. बीसवीं सदी के चार प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों के अनुसंधानों सहित, उनके नाम लिखें।

2. बीसवीं सदी के दौरान विभिन्न राष्ट्रों में हुए उन प्रमुख कला आंदोलनों के नाम लिखें, जिन्होंने सभी राष्ट्रों में कलाकारों और लेखकों को प्रभावित किया।

3. कुछ ऐसे विचारकों के नाम लिखें जिन्होंने ऐसे समय में नैतिक और राजनीतिक मुद्दों पर महत्त्वपूर्ण नवीन दृष्टिकोण से अपना लेखन जारी रखा जबकि गत सदी में विचारपूर्ण लेखन में अति–विशेषज्ञता और अपरिचित क्लिष्ट तकनीकी शब्दावली, विशिष्ट शब्दावली का अत्यधिक वर्चस्व हो चुका था।

28.3 सांस्कृतिक संस्थाएँ और प्रतीक

वैज्ञानिकों, दर्शनशास्त्रियों और कलाकारों के सांस्कृतिक इतिहास के महत्त्वपूर्ण पक्षों के बदलते सरोकारों के साथ–साथ, सांस्कृतिक संरचनाओं, जैसे धर्म, लोक आख्यान, भाषा, शिक्षा–प्रणालियों और मास मीडिया में आए कोई भी परिवर्तन भी, सांस्कृतिक परिवर्तनों के अध्ययन में अत्यन्त उल्लेखनीय स्थान रखते हैं। मानवविज्ञानी इन सांस्कृतिक संस्थाओं या प्रतीक प्रणाली की ओर संकेत करते हैं, जो इसके भागीदारों के मूल्यों और उनके वैश्विक दृष्टिकोण की संबद्ध पद्धति का प्रतिनिधित्व करती हैं। ऐसे सांस्कृतिक प्रतीकों का बहुत ऐतिहासिक महत्त्व है, न सिर्फ इसलिए कि यह सूचना मनोरंजन और आस्था या जीवन में अर्थ के लिए मानव की मूल अनिवार्यताओं को संबोधित करते हैं बल्कि इसलिए भी कि यह विभिन्न सामाजिक समूहों (वर्गों में



आपकी टिप्पणियाँ

लोकप्रिय) मूल्यों, विश्वासों, भावनाओं और सामान्यतया दिखने वाले आचार–व्यवहार के तरीकों को भी दिशा देते हैं।

परन्तु यहाँ ध्यान देने की मुख्य बात यह है कि अधिकांश समाजों में सांस्कृतिक संस्थाओं, जैसे शिक्षा और मास मीडिया, का विनियमन और नियंत्रण ज्यादातर प्रभावी आभिजात्य वर्ग के हाथों में है जो सम्पत्ति के साथ–साथ सत्ता के केन्द्रों को भी नियंत्रित करते हैं। आप जाति प्रथा, सती प्रथा इत्यादि से संबंधित हिंदु विश्वासों पर ब्राह्मणों के प्रभाव से पहले ही परिचित हैं जिसने उच्च जातियों को, विशेष रूप से प्राचीन भारत में, शूद्रों की मेहनत के फल भोगने का एकाधिकार प्राप्त किया। इसी प्रकार, आधुनिक युग में पूंजीवादी वर्ग, व्यापक जन मानस (मास मीडिया) को इस प्रकार प्रभावित करने का प्रयास करता है और प्रचलित विश्वासों और आचार–व्यवहारों को इस प्रकार ढालने का प्रयास करता है कि जिस व्यापक जन मानस का शोषण, बलपूर्वक अथवा बिना किसी बल प्रयोग के किया गया है। उस पर उनके वर्चस्व की सुविधा उनको मिलती रहे। सांस्कृतिक संस्थाओं के इस सामान्य स्वरूप में संचलन में उसकी विशिष्टताओं या 'अभिप्रायों' में अनेक विविधताएँ देखने में आती हैं। निस्संदेह पिछली सदी तेजी से परिवर्तन का काल था जब न सिर्फ शिक्षा के संदेश और निहित विषयवस्तु धर्म और लोक संस्कृति इत्यादि में मौलिक परिवर्तन आए बल्कि सभी देशों में इन प्रमुख सांस्कृतिक संस्थाओं के परस्पर संतुलन में भी अनेक परिवर्तन आये।

भाषाएँ

किसी भी संस्कृति के प्रमुख घटकों में से उसकी भाषा भी एक मुख्य घटक है। बीसवीं शताब्दी के दौरान विश्व के भाषायी मानचित्र पर जनमानस द्वारा बोली जा रहीं स्थानीय बोलियों, यहाँ तक कि संस्कृत और लैटिन जैसी प्रतिष्ठित भाषाओं में भी, नाटकीय परिवर्तन देखने में आए जो कि सदियों से विद्वानों के बीच ज्ञान के लिए विशिष्ट माध्यम रही हैं और जिन्होंने उभरती हुई राष्ट्रीय पहचानों को अभिव्यक्त करने के लिए उन क्षेत्रों द्वारा अपनाई गई विशिष्ट राष्ट्रीय भाषाओं को दिशा दी।

ऐसा अनुमान है कि आज भी विश्व में लगभग 6500 भाषाएँ बोली जाती हैं। इनमें से लगभग आधी भाषाएँ छोटे समुदायों द्वारा बोली जाती हैं और यह पहले ही लुप्त होने की प्रक्रिया में हैं। दस प्रमुख भाषाएँ पहले ही विश्व की आधी से ज्यादा आबादी की मातृभाषाएँ हैं (स्त्रोत : फाउंडेशन फॉर एनडेन्जरड लैंग्युएनिज वेबसाइट)

हाल ही में विश्व के भाषाई समूह में परिवर्तन की एक दिलचस्प विशेषता रही है कि संपूर्ण विश्व में शिक्षित लोगों के बीच द्विभाषिकता या कम से कम दो भाषाओं को बोलने–समझने की बढ़ती प्रवृत्ति का विकास हुआ। विशेष रूप में अंग्रेजी भाषा बढ़ते वैश्वीकरण और इंटरनेट के विकास के साथ–साथ अपनाई जाने वाली द्वितीय भाषा के रूप में उभर रही है। जबकि चीनी भाषा अभी भी विश्व में सबसे बड़ा भाषाई समूह है, अंग्रेजी जानने वाले लोगों की संख्या (विश्व जनसंख्या का 10 प्रतिशत दूसरे नंबर पर है और अंग्रेजी को दूसरी भाषा के रूप में जानने वालों की संख्या विश्व में सर्वाधिक है। बढ़ती शिक्षा और प्रचार–प्रसार के प्रभाव के अधीन भाषाओं के बीच परस्पर आदान–प्रदान से हुआ मिश्रण बीसवीं सदी में भाषाओं के बीच हुआ एक अन्य मुख्य विकास रहा है। जबकि अंग्रेजी ने, फ्रांसीसी और हिंदी सहित, अन्य भाषाओं से अनेक नए शब्दों को अपनाया है, तो भारत

के शिक्षित वर्ग में हिंगलिश या कहें हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी की मिली–जुली बोली जाने वाली भाषा का विकास भी इस संदर्भ में रेखांकित किये जाने योग्य है।

लोक परंपराएँ

बीसवीं सदी के दौरान विभिन्न समाजों की लोकप्रिय संस्कृति की लोक कथाओं की स्थितियों में भी बड़े परिवर्तन देखने में आए। पिछली सदी के दौरान विकासशील जगत में दर्जनों पारम्परिक कलाएँ और मनोरंजन के साधन, जैसे–कठपुतलियों के प्रदर्शन कहानियां सुनाना, पौराणिक नाटक, लोक नृत्यों आदि, को धीरे–धीरे हाशिये पर सरका दिया गया है। पुराने चले आ रहे गीत, कहानियां और पौराणिक आख्यान, जिन्हें विभिन्न समुदायों द्वारा अपने विचारों के सम्प्रेषण और भावी पीढ़ियों के लिए मूल्यों के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है, तेजी से लुप्त हो गए हैं और उनके स्थान पर आधुनिक प्रचार–प्रसार के माध्यम से व्यावसायिक रूप में तैयार किए गए मनोरंजन और समाचार के कार्यक्रमों ने अपनी जगह बना ली है।

फिर भी, राज्यों और नागरिक एजेंसियों द्वारा, जैसा कि भारत में किया जा रहा है, अब वित्तीय सहायता और संस्थागत समर्थन से इसे बचाने का प्रयास किया जा रहा है।

(मास मीडिया) जन संचार माध्यम

दूसरी तरफ रेडियो, सिनेमा, ग्रामोफोन रिकॉर्ड, टेलीविजन, कैसेट और सीडी और कम्प्यूटरों और मोबाइल फोनों ने तेजी से जीवन में जगह बनाई है और हमारे सूचना–प्राप्ति के तरीकों में, मनोरंजन के साधनों में और परस्पर संबंध स्थापित करने में या यहां तक कि सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिए हैं।

यद्यपि सिनेमा और टेलीविजन जैसे कुछ नए माध्यमों को चार्ली चैपलिन, सत्यजीत राय और स्टीवन स्पिलबर्ग जैसे सदी के महान कलाकारों द्वारा अत्यन्त उच्च कोटि के कलात्मक फिल्मों और शैक्षिक कार्यक्रमों के निर्माण के लिए प्रयुक्त किया गया है। व्यापक श्रोता वर्ग के लिए प्रचार और प्रतियोगिता के लिए अधिकाधिक सनसनी परक सेक्स आधारित और हिंसात्मक कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दिया है।

जन संचार (मास कम्युनिकेशन) और मनोरंजन के इन नए चैनलों ने जो ध्यान आकर्षित किया है वह अपने आप में ऐतिहासिक है। अतः एक सर्वेक्षण के दौरान यह पाया गया कि 1980 में अमेरिका में अधिकांश परिवारों के पास दो टी.वी सेट थे और वहां का एक साधारण बालक अपनी पढ़ाई या खेलों से दुगुना समय टेलीविजन के सामने गुजारता था।

धर्म

पारंपरिक कला के रूपों और लोक आख्यानों के अतिरिक्त, एक अन्य मुख्य सांस्कृतिक संस्था धर्म हैं जिसकी भूमिका पिछली सदी से अधिकांश समाजों में सीमित हुई है। विकसित और विकासशील दोनों देशों में, पहले से प्रभावी धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोणों और निष्ठाओं जैसे मानववाद, राष्ट्रवाद और लोकतंत्र ने पिछली सदी से लोगों में व्यापक आंदोलनों और प्रतिबद्धताओं के लिए प्रेरित किया है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि



आपकी टिप्पणियाँ

राष्ट्रवादी (जो खुलेआम राष्ट्र राज्य के प्रति निष्ठा का दावा करते हैं) या मानवतावादी (जो मानव जीवन को मृत्यु के उपरांत जीवन से ज्यादा मूल्य देते है), साथ–साथ धार्मिक नहीं हो सकते। निस्संदेह, लगभग सभी देशों में, अधिकतर लोग (विशेष रूप से महिलाएँ) आज भी स्वयं को आस्थावानों में ही समझते हैं। उदाहरणार्थ 1981 में यू एस में धार्मिक आस्थाओं पर हुए एक सर्वेक्षण में, लगभग केवल 10% लोगों ने स्वयं को नास्तिक बताया। इसके अतिरिक्त, तीर्थ यात्राओं और व्यक्ति साहित्य और भजनों इत्यादि में पिछली सदी के दौरान अत्यधिक वृद्धि देखने में आई है।

फिर भी, दिन–प्रतिदिन के जीवन में धर्म का सिकुड़ता हुआ प्रभाव इस तथ्य में भी स्पष्टतया दिखाई देता है कि अभिवादन (ग्रीटिंग्स), खानपान, उत्सवों, सार्वजनिक समारोहों इत्यादि में, विशेष रूप में शहरों में धर्म की व्याप्ति उस रूप में नहीं है जिस रूप में यह सौ वर्ष पहले हुआ करती थी। दूसरे, धार्मिक मूल्यों और दृष्टिकोणों ने राज्य कला इत्यादि जैसी अन्य संस्थाओं को पूरी तरह वैसे संबद्ध नहीं किया है जैसे यह पहले करता था और आज हमारी अनेक प्रथाएँ वास्तव में उन सामान्य धार्मिक विश्वासों के बिल्कुल विपरीत हैं। अतः केवल एक सदी पूर्व, ज्यादातर विवाह, यहाँ तक कि पश्चिम में भी, चर्च में होते थे और बपतिस्मा (ईसाई धर्म में नामकरण संस्कार), हर नवजात शिशु के लिए अनिवार्य था। 1990 तक यह देखने में आया कि फ्रांस में केवल 30 जोड़ों की चर्च में शादियां हुईं। तलाक और गर्भपात जिसकी चर्च के द्वारा मनाही थी, अब न सिर्फ पश्चिम के अनेक देशों में विधिसम्मत बना दिए गए थे बल्कि अब ज्यादा से ज्यादा लोग इन्हें स्वीकार करने लगे थे और अब इन्हें कलंक नहीं समझा जाता था। एशिया और अफ्रीका के अनेक देशों में भी इसी प्रकार की प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं।

शिक्षा

आज जबकि धर्म ने बढ़ते सामाजिक क्षेत्रों में सक्रिय नियमों और आदर्शों को परिभाषित करना बंद कर दिया है, इसके समानान्तर धर्मनिरपेक्षता और वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित आधुनिक शिक्षा में चमत्कारिक वृद्धि देखने में आई है। पढ़ने, लिखने और गणना करने में प्रवीण और अपने राष्ट्रीय इतिहास और विरासत पर गर्व करने वाले नागरिकों को न सिर्फ राज्य और औद्योगिक तथा अर्थव्यवस्था के सर्विस सैक्टरों में आधुनिक पदों पर तैनात करने की सख्त जरूरत महसूस की गई है बल्कि ऐसे नागरिकों के एक समरूप निकाय बनाए जाने की भी जरूरत भी महसूस की गई है जो अपने राष्ट्र राज्यों के प्रति निष्ठावान हों।

बहुत से पश्चिमी देशों ने उन्नीसवीं सदी में ही स्कूली शिक्षा को अनिवार्य और सस्ती अथवा निःशुल्क कर दिया था। पिछली सदी में एशिया और अफ्रीका के नव–स्वतंत्रता प्राप्त राष्ट्रों ने भी इसी दिशा में प्रयास किए, यद्यपि सीमित संसाधनों और उपनिवेशवादी भारी बोझ और उनकी शिक्षा प्रणालियों में विदेशी पैटर्न के कारण इन्हें बहुत कम सफलता प्राप्त हुई। हमारे देश में 1980 तक भी लगभग आधी आबादी अशिक्षित थी और सिर्फ पिछले दो दशकों में अशिक्षितों को संख्या में औसतन 25% की कमी आई है।

इस दौरान बीसवीं सदी के मध्य तक आते–आते विश्वविद्यालयी स्तर की शिक्षा में भी तेजी से विस्तार हुआ। अतः 1939 में ब्रिटेन और फ्रांस जैसे विकसित देशों में कुल आबादी के 0.1% लोगों ने कॉलेजों में अपने नाम लिखवाये। तथापि, 1990 के दशक

तक इन राष्ट्रों की कुल आबादी की लगभग 2 प्रतिशत आबादी कॉलेज की शिक्षा प्राप्त कर रही थी (लगभग 20 गुणा वृद्धि)। निस्संदेह, 1960 और 1980 के दौरान, विकासशील देशों में भी उच्च शिक्षा का विस्तार चमत्कारिक गति से हुआ और इसी अनुपात में छात्रों ने निर्धन देशों में भी शीघ्र ही विश्वविद्यालयों में अपने नाम लिखवाये, यद्यपि उनकी व्यावसायिक और प्राथमिक शिक्षा अभी भी अविकसित ही थी। इसके अलावा, इनकी अर्थव्यवस्थाओं में लघु स्तर के संगठित क्षेत्र के कारण शिक्षित बेरोजगारों की समस्या भी इन देशों में अत्यधिक विकट थी।

विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी सामाजिक और सांस्कृतिक विरोधों में सक्रिय थे। व्यापक पैमाने एवं समकालिक छात्र विरोध 1968 में न्यूयॉर्क और सान फ्रांसिस्को से लेकर पैरिस और पेरुग्वे तक जंगल की आग की तरह फैला था, इसकी मौलिकता के लिए आज भी याद किया जाता है क्योंकि इन्होंने न सिर्फ अपने–अपने देशों में राज्य की शोषणकारी नीतियों और शैक्षिक विशिष्ट वर्ग का विरोध किया बल्कि वियतनाम में यू एस के हस्तक्षेप को चुनौती देकर बृहदाकार अन्तरराष्ट्रीयवाद और युद्ध विरोधी साम्राज्यवाद, विरोध भावनाओं को जागृत किया। फिर भी, हाल ही के बीते दशकों में विशेष रूप से सोवियत संघ के विघटन और पलायनवादी मनोरंजन चैनलों की बाढ़ आने के बाद, पूरे विश्वस्तर पर विद्यार्थी आंदोलनों में कुछ शांति की स्थिति दिखाई देती है।

पाठगत प्रश्न 28.3

1. दिये गए पाठ में 'सांस्कृतिक संस्थाएँ' शब्द का क्या अभिप्राय है? संस्कृति की कुछ प्रमुख संस्थाओं के नाम लिखें।

   ---

2. बीसवीं सदी के दौरान विश्व (ग्लोब) के भाषाई पैटर्न में किस प्रकार के परिवर्तन आए?

   ---

3. जन संचार (मास कम्युनिकेशन) के विभिन्न नए चैनलों के नाम लिखें जिन्होंने आजकल के समाचार, सूचना प्राप्त करने और मनोरंजन और बातचीत के तरीकों में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है।

28.4 वैश्वीकरण

आधुनिक शिक्षा, मास मीडिया (जन संचार माध्यम) और धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक सिद्धांतों के उदय ने, बीसवीं सदी के एक अन्य महत्त्वपूर्ण विकास में योगदान दिया है और जिसे वैश्वीकरण का नाम दिया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया को बढ़ते बहु–राष्ट्रीय व्यापार, उत्पादन और वित्त के साथ–साथ राजनीतिक और कल्याणकारी एजेंसियों, जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ और व्यावसायिक निकायों, जैसे विश्व सामाजिक मंच (वर्ड सोशल फोरम) ने परस्पर–निर्भरता के रूप में अत्यधिक संख्या में व्यक्तियों को जोड़ने वाले एक समेकित विश्व के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें धनी लोगों को महत्त्व दिया गया।



आपकी टिप्पणियाँ

वैश्वीकरण बहु–राष्ट्रीय निगमों के विकास, नगरों के मॉल्स और इंटनेट पर संपूर्ण विश्व से आये सामान और सेवाओं की उपलब्धता, विचारों, समाचारों और सूचनाओं को पूरे विश्व में सस्ती दरों पर और तुरंत भेजा जाना, ग्लोबल सामानों और फैशन मार्किट, खानपान और मनोरंजन में ग्लोबल झलक इत्यादि सभी कुछ स्पष्टतया आज के वैश्वीकरण को ही दर्शाते हैं। यहां यह समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि, बीसवीं सदी के दौरान, ग्लोबलाइजेशन का उद्भव अचानक से नहीं हुआ। विश्वस्तर पर व्यापारिक नेटवर्क और चिकित्सा और तकनीकी ज्ञान के प्रवाह की धारा के अवशेष प्राचीन कालावधियों में भी खोजे जा सकते हैं। यूरोपियन शक्तियों द्वारा गैर–यूरोपियन देशों के औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया ने बहुत अद्भुत ढंग से विश्व के असमान एकीकरण को बढ़ावा दिया जो सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में शुरू हुई थी। परन्तु, शक्तिशाली और सुदूर क्षेत्रों तक पहुंच वाले ट्रांसनेशनल कार्पोरेशनों और संगठनों का विकास और ग्लोबल मीडिया नेटवर्क का विकास खासतौर पर केवल पिछली शताब्दी के दौरान ही हुआ।

जबकि, ये न्यूज चैनल सामान, सेवाओं और सूचना के प्रवाह को संभव बनाते हैं और आशा की जा सकती है कि यह कुछ क्षेत्रों में और अधिक चुनाव की सुविधा और शायद समृद्धि भी लायेंगे, परन्तु वास्तविकता यह है कि इन्होंने न सिर्फ अत्यंत प्राचीन सांस्कृतिक पद्धतियों और सामाजिक प्रथाओं को तहस–नहस कर दिया है बल्कि यह संपूर्ण विश्व में धनियों और निर्धनों के बीच असमानताओं को और अधिक तेज करने के अतिरिक्त, संपूर्ण विश्व को सामान्यतया पश्चिमी आदतों और मूल्यों की तरफ मोड़ रहे हैं।

दुर्भाग्यवश, संपूर्ण विश्व में पश्चिमी विचारों और आदतों के पुनः आगे आने से, स्वतंत्रता, समानता और लोकतंत्र के महान विचारों का गैर–पश्चिमी विश्व में स्थानांतरण, पश्चिमी व्यक्तिवाद, भौतिकतावाद, संयुक्त परिवार और सामुदायिक संबंधों के टूटने, एकाकीपन, मानसिक विक्षिप्तता इत्यादि जैसे संक्रमणों का प्रसार पहले की तुलना में अत्यधिक हो गया है। इससे भी ऊपर जाकर देखें तो अनेक विकासशील देशों में, बेलगाम गरीबी, भ्रष्टाचार, अपराधीकरण, निरंकुशता या तानाशाही समान रूप से अभी भी परिस्थितियों को अधिकाधिक जटिल बना रही हैं।

इस परिदृश्य में, युवा पीढ़ी के कंधों पर बड़ी भारी जिम्मेदारी है कि वे मौजूदा प्रलोभनों के विकल्पों में से सही चुनाव करें और इस नई सदी में सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तनों में आशंकित तेजी आने के तूफान के बीच से निकलकर अपने–अपने देशों की दिशा निर्दिष्ट करें।



आपने क्या सीखा

नेताओं, युद्धों और क्रांतियों का समय–समय पर विश्व पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है, परंतु जनसांख्यिकी और सामाजिक श्रेणियों में होने वाले धीरे–धीरे और अप्रत्यक्ष परिवर्तन और व्यापक स्तर पर समन्वित विश्वास, मूल्य और आचार–व्यवहार भी समेकित रूप से परिवर्तन लाते हैं।

बीसवीं शताब्दी दूसरे किस्म की प्रमुख तब्दीलियों का भी एक अद्वितीय काल रहा है। अतः इस अवधि के दौरान विज्ञान और प्रौद्योगिकी की गति में चमत्कारिक विकास हुआ, जबकि



आपकी टिप्पणियाँ

हुए, परन्तु प्रमुख परिवर्तनों के उदाहरणों में शिक्षा का प्रसार और शैक्षिक संस्थाओं के साथ–साथ मास मीडिया के जरिये विचारों का प्रसार और मनोरंजन, समाचारों और ज्ञान के उत्पादों में बढ़ता वैश्वीकरण (ग्लोबलाइजेशन) सम्मिलित है।

2. सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा 'संस्कृति' शब्द को दो पृथक तरह से प्रयुक्त किया गया है : कला, साहित्य, दर्शन इत्यादि जैसे सर्जनात्मक कार्यों का संदर्भ देने के लिए और किसी समुदाय के सामान्य मूल्यों, विश्वासों और व्यवहार के तरीकों को रेखांकित करने के लिए, जो कि उसने साझा इतिहास, भौतिक परिवेश और भाषा की परंपराओं और लोक आख्यानों इत्यादि से हासिल किए होंगे। जबकि संस्कृति की पहली धारणा विशेष रूप से उच्च कोटि के प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों से संबद्ध है तो दूसरी ओर कुल मिलाकर सामाजिक समूहों से संबंधित है। तथापि दोनों धराणाएं, मुख्यतः मानसिक घटनाक्रम के संबंध में ही बात करती हैं।

3. संस्कृति शब्द की अभिव्यक्ति उतनी ही कठिन है, जितनी कि यह सामाजिक विज्ञानों के लिए महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि विभिन्न विचारकों ने इसे विविध प्रकार से प्रयुक्त किया है और यह शब्द उन इन्द्रियगोचर घटनाक्रमों की ओर संकेत करता है, जो न तो प्रत्यक्ष हैं और न ही उन्हें आंका जा सकता है।

28.2

1. बीसवीं सदी के विशिष्ट वैज्ञानिकों में शामिल हैं : मैडम क्यूरी (जिसने रेडिएशन की प्रक्रिया पर काम करते समय अपने जीवन का बलिदान कर दिया), अलबर्ट आईंस्टीन (सापेक्षता के सिद्धांत का श्रेय इनको जाता है); फिनमैन (सब एटॉमिक पार्टिकल्स के तरंग सिद्धांत की खोज इन्होंने की) और चार्ल्स बैज (जिसने कम्प्यूटरों के सृजन में अग्रणी कार्य किया)।

2. आधुनिकतावाद, सामाजिक यथार्थवाद, उत्तर आधुनिकतावाद

3. बरट्रैंड रसेल, नोएम चोम्स्की, ई.पी. थाम्पसन, अमर्त्यसेन

28.3

1. यहाँ सांस्कृतिक संस्थाओं का अभिप्राय है प्रतीक प्रणालियाँ (सिम्बल सिस्टम्स) जिन्हें किसी समुदाय की अभिवशत्तियों (रुख), विश्वासों और मूल्यों को आकार देने के लिए तैयार किया गया था। सभी समाजों में सामान्यतया पाए जाने वाली कुछ मुख्य सांस्कृतिक संस्थाएं हैं, धर्म, शिक्षा, भाषा, लोक आख्यान और रीति–रिवाज और जनसंचार (मास कम्युनिकेशन) के साधन।

2. बीसवीं सदी के दौरान एशियन और अनेक अफ्रीकन देशों में भी, स्थानीय बोलियों और प्रतिष्ठित भाषाओं से ऊपर उठकर राष्ट्रीय भाषाओं या मुख्य प्रादेशिक भाषाओं में और अधिक संघटन देखने में आया। इसी के साथ–साथ अंग्रेजी वैश्वीकृत विश्व को जोड़ने वाली एक मुख्य भाषा के रूप में उभरी है।

3. टेलीफोन, रेडियो, सिनेमा, टेलीविजन, टेप रिकॉर्डर, काम्पैक्ट डिस्क, कंप्यूटर, कम्युनिकेशन, सैटेलाइट और मोबाइल फोन।

कलाओं, दर्शन और साहित्य में विश्व स्तर पर आंदोलन हुए, जैसे आधुनिकतावाद, सामाजिक यथार्थवाद और उत्तर–आधुनिकतावाद और सर्वव्यापी (यूनीवर्सल) सांस्कृतिक संस्थाएं, जैसे–भाषा, धर्म, क्रिया, शिक्षा और मास मीडिया इत्यादि के कार्य–व्यवहार में बहुत बड़े स्तर पर मात्रात्मक और गुणात्मक परिवर्तन आए।

चारों ओर तीव्र गति से होने वाले इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप, अब संपूर्ण विश्व भी अधिकाधिक वैश्वीकृत (ग्लोबलाइज्ड) बन रहा है। इसमें न सिर्फ विश्व के अनेक देशों में बढ़ता एकीकरण वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और उपभोग के संदर्भ में ही सम्मिलित नहीं है, बल्कि इनमें समाचारों, सूचनाओं, विचारों और मनोरंजन के साधनों के जरिए एकीकरण का भी समावेश है।

जबकि, बढ़ती हुई सांस्कृतिक तब्दीलियां आज के युवाओं को सीखने और गतिशीलता के नए अवसर प्रदान करती हैं, इसके साथ ही उनके समक्ष बढ़ती ग्लोबल प्रतियोगिता, अहंकार में वृद्धि, उपभोक्तावाद और भोगवाद की चुनौतियां भी खड़ी करती हैं, जिसके परिणामस्वरूप परिवार और देश से परायापन की स्थितियां पैदा करती हैं और एक न्यायपूर्ण, समृद्ध और मुक्त समाज बनाने के लिए सामूहिक प्रयास करने की चुनौती भी देती हैं।

पाठांत प्रश्न

1. बीसवीं सदी के दौरान विज्ञान और प्रौद्योगिकी में हुआ अभूतपूर्व विकास एक अमिश्रित वरदान नहीं था। समीक्षा करें।
2. इस तथ्य के बावजूद कि विश्व में अधिकतर लोग अभी भी स्वयं को धार्मिक कहते हैं, सार्वजनिक जीवन में धर्म की भूमिका, हाल के कुछ समय में काफी कम हुई है। व्याख्या करें?
3. बीसवीं सदी के दौरान हुए सांस्कृतिक परिवर्तन में शिक्षा और विद्यार्थियों की भूमिका का उल्लेख करें।
4. वैश्वीकरण और पश्चिमीकरण में परस्पर संबंध की व्याख्या करें और साथ ही यह भी उल्लेख करें कि भारत जैसे देशों की संस्कृतियों में यह किस प्रकार की चुनौतियाँ और अवसर प्रदान करती हैं?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

28.1

1. बीसवीं शताब्दी में हुए क्रांतिकारी परिवर्तनों के उदाहरणों में 1917 में सोवियत यूनियन का जन्म और 1947 से, भारत के नेतृत्व में, एशिया और अफ्रीका के औपनिवेशिक राष्ट्रों की स्वतंत्रता शामिल है। इसी कालावधि के दौरान धीरे–धीरे

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. देखें 28.2
2. देखें 28.3
3. देखें 28.3.6
4. देखें 28.4

परियोजना कार्य

सांस्कृतिक परिवर्तन प्रायः धीमे और अप्रत्यक्ष होते हैं। परंतु 20वीं सदी के दौरान संस्कृति में भी पहले की तुलना में बहुत तेज गति से परिवर्तन देखनें में आए। अपने पूर्वजों से पूछे और उनके जीवनकाल में उनके द्वारा देखे गए कुछ सांस्कृतिक परिवर्तनों के कुछ उदाहरण दें, जिनसे इन परिवर्तनों को रेखांकित किया जा सके।

आजकल भारत में भारतीय संस्कृति के संदर्भ में सांस्कृतिक मूल्यों, कलाओं, संस्थाओं और रीति–रिवाजों की पृष्ठभूमि में मौजूद अनेकता में एकता के कुछ तत्वों का उल्लेख करें।

शब्दावली

संस्कृति – एक ओर किसी समुदाय के साझा मूल्य, विश्वास और रीति–रिवाज और दूसरी तरफ कला, साहित्य, दर्शन शास्त्र या विज्ञान के क्षेत्र में हुए सृजनात्मक कार्य।

वैश्वीकरण – सभी देशों के आर–पार (क्रॉस कंटरी) संचार, मनोरंजन, व्यापार और राजनीति के बढ़ते नेटवर्क के माध्यम से बढ़ता हुआ विश्व एकीकरण।

जरमॉन – विद्वता प्रदर्शन के लिए दिन–प्रतिदिन में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के स्थान पर तकनीकी और अपरिचित शब्दों को अत्यधिक प्रयोग में लाना।

द्विभाषीकरण – समान क्षमता के साथ दो भाषाओं का प्रयोग करने और समझने की योग्यता।

आधुनिकतावाद – बीसवीं शताब्दी का एक बड़ा सौंदर्यपूर्ण रुझान जिसे आधुनिक समाज को आंतरिक पीड़ाओं और समस्याओं की अभिव्यक्ति के लिए तलाश किया गया था।

धर्म निरपेक्षता – बढ़ती नास्तिकता को अनिवार्य रूप में समाविष्ट किए बगैर सार्वजनिक जीवन में धर्म की घटती हुई भूमिका।

उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम

इतिहास

3

वैकल्पिक मॉड्यूल

पाठ्यक्रम समन्वयक
विवेक सिंह

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
ए-24-25, शैक्षणिक क्षेत्र, सेक्टर-62, नोएडा-201309 (उ.प्र.)

परामर्श समिति

डॉ. सितांशु शेखर जेना
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

डॉ. राजेश कुमार
संयुक्त निदेशक, शैक्षिक
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

डॉ. अनिता प्रियदर्शिनी
संयुक्त निदेशक, शैक्षिक
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

प्रो. टी. के. वी. सुब्रमण्यम
अध्यक्ष
इतिहास विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. बी. आर. मनी
उप निदेशक
भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग,
नई दिल्ली

सुश्री मंजिष्ठा बोस
अवकाश प्राप्त पी.जी.टी. इतिहास
और विभागाध्यक्ष सामाजिक विज्ञान
स्प्रिंगडेल स्कूल, पूसा रोड, नई दिल्ली

प्रो. जे. के. शर्मा
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

डॉ. पी. के. बसंत
सह. प्रोफेसर
इतिहास विभाग,जामिया मिलिया इस्लामिया,
नई दिल्ली

डॉ. गुरप्रीत मैनी
पंजाब एजुकेशन सर्विस,श्नई दिल्ली

सुश्री अनीता देवराज
प्रधानाचार्य
डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, बहादुरगढ़, हरियाणा

प्रो. ए. आर. खान
प्रोफेसर, इतिहास
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मैदान गढ़ी, नई दिल्ली–110068

सुश्री पद्मा श्रीनिवासन
पी.जी.टी (इतिहास)
दिल्ली पब्लिक स्कूल
आर.के. पुरम, नई दिल्ली

डॉ. अनिता प्रियदर्शिनी
संयुक्त निदेशक, शैक्षिक
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान,
नोएडा

विषय संपादक

मॉड्यूल 6 ए
प्रो. टी. के. वी. सुब्रमण्यम
अध्यक्ष
इतिहास विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मॉड्यूल 6 बी
प्रो. कुमकुम रॉय
प्रोफेसर,
स्कूल ऑफ़ सोशल साइंसेस
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

भाषा संपादक

डॉ. सुरेशकान्त
उप महाप्रबन्धक (रिटा.) भारतीय स्टेट बैंक
25 ए, पाकेट J & K
दिलशाद गार्डेन, दिल्ली

श्री राम देव
पी.जी.टी. इतिहास
एस.बी.टी. झण्डेवालान,
दिल्ली–55

डॉ. बी. के. राय
शैक्षिक अधिकारी (हिन्दी)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा
संस्थान, नोएडा

संपादकीय सहयोग

श्री. एन.पी. सिंह
वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान,
नोएडा

अनुवादक

श्री राम देव
पी.जी.टी. इतिहास
एस.बी.टी. झण्डेवालान,
दिल्ली–55

डॉ. सुरेशकान्त
उप महाप्रबन्धक (रिटा.) भारतीय स्टेट बैंक
25 ए, पाकेट J & K
दिलशाद गार्डेन, दिल्ली

पाठ लेखक

प्रो. कुमकुम रॉय
प्रोफेसर,
स्कूल ऑफ़ सोशल साइंसेस
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

श्री शालीन जैन (6 ए पाठ 30, 31)
सहायक प्रोफेसर
हंसराज कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

डा. भारती जगन्नाथन (6 बी पाठ 31)
सहायक प्रोफेसर
मिरांडा हाउस
दिल्ली विश्वविद्यालय

श्री संतोष कुमार राय (6 ए पाठ 32)
सहायक प्रोफेसर
एस. जी. टी. बी. खालसा कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

डा. विजया रामास्वामी (6 बी पाठ 31)
प्रोफेसर,
स्कूल ऑफ़ सोशल साइंसेस
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

रेखाचित्र

श्री महेश शर्मा
रेखाकार,
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

श्री प्रवीण मिश्रा
मानचित्रकार, भूगोल विभाग
मिरांडा हाउस, दिल्ली

श्री सुंदर सिंह रावत
कार्यालय सहायक
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग का विशेष आभार, जिन्होंने इस पुस्तक में छपने के लिए चित्र प्रदान किए।

निदेशक की कलम से

प्रिय शिक्षार्थियों

आपकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान का शैक्षिक विभाग आपके लिए नित नए कार्यक्रमों के द्वार खोलता है। हमने विस्त त अध्ययन करने के बाद पाया कि आपका यह पाठ्यक्रम अधिक व्यावहरिक, सहज और आज के समाज से जुड़ा हुआ है। अब हमारा काम था कि आपके लिए इसे और अधिक सार्थक व उपयोगी बनाया जाए। हमने देश के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्रियों और विषय विशेषज्ञों को आमंत्रित करके उनके दिशा-निर्देशन में इतिहास के पाठ्यक्रम को राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के आधार पर पुनः अवलोकन कर आपके लिए नए रूप में प्रस्तुत किया है।

साथ ही, हमने कुछ ऐसी सामग्री हटा दी है, जो आज के समाज में अप्रासंगिक हो गई है तथा नवीन सामग्री को जोड़ दिया है ताकि आपके लिए यह अधिक प्रभावी, आकर्षक और उपयोगी हो। मुझे आशा है कि आपको यह नवीन पाठ्यसामग्री अधिक रोचक और उत्साहवर्द्धक लगेगी। सामग्री में सुधार के लिए आपके सुझावों का सहर्ष स्वागत है।

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान देश में माध्यमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के लिए वचनबद्ध है। माध यमिक शिक्षा एक ऐसी सामान्य शिक्षा है, जिसका मुख्य ध्येय अपनी मात भूमि को ऐसे सपूत देना है, जो अच्छे नागरिक हों व जिनकी समाज, राज्य व राष्ट्र के प्रति सकारात्मक सोच हो। साथ ही उनके अंदर ज्ञान के लिए ऐसी जिज्ञासा व पिपासा पैदा हो कि वे सजग, सार्वभौमिक, वैश्विक नागरिक बनें। दूसरी तरफ उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम अधिकतर विश्व ज्ञान की ओर इंगित करता है तथा महाविद्यालय में प्रवेश पाने का आधार बनता है।

इतिहास बीते समय की घटनाओं से संबंधित होता है, परन्तु इसका प्रमुख ध्येय सामयिक परिस्थिति को सही ढंग से समझना होता है। यह आज के समाज की विडंबनाओं की व्याख्या करता है तथा उनके कारणों की जाँच-पड़ताल करता है। आज के विश्व को अच्छी तरह समझ पाने के लिए हमें उसके अतीत की खोज व छानबीन करनी होती है ताकि हम जान सकें कि आज के हालात को अतीत ने किस प्रकार आकार दिया। भावी नागरिकों, प्रशासनिक अधिकारियों, विदेशी सलाहकारों तथा हमारी धरोहर के संरक्षकों को शिक्षित करने हेतु इनकी जरूरत हर समय बनी रहती है।

मैं आपका स्वागत करता हूं कि आपने इतिहास विषय को चुना है मैं आपके अच्छे भविष्य की कामना करता हूँ।

डॉ. राजेश कुमार

संयुक्त निदेशक (शैक्षिक)

अपने पाठ कैसे पढ़ें

बधाई! आपने खुद पढ़ने की चुनौती स्वीकार की। राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान ने आपको ध्यान में रखते हुए विद्वानों की एक समिति की सहायता से इतिहास में अध्ययन सामग्री तैयार की है और हम हर कदम पर आपके साथ है। स्वतंत्र अध्ययन को सहयोग करने वाली एक पद्धति का अनुसरण किया गया है। अगर आप दिए गए निर्देशों का पालन करेंगे, तो इस अध्ययन सामग्री का सर्वोत्तम उपयोग कर सकते हैं। अध्ययन सामग्री में प्रयुक्त चिह्न ऐसा करने में आपकी मदद करेंगे।

शीर्षकः *शीर्षक आपको इसकी विषय सामग्री के संबंध में स्पष्ट संकेत देगा।*

भूमिकाः *यह आपको पाठ की सामग्री से परिचित कराने के साथ ही पिछली जानकारी से भी जोड़ेगी।*



उद्देश्यः *ये आपके अध्ययन के परिणाम हैं, जिनकी आशा आपसे इस पाठ को पढ़ने के पश्चात् की जाती है। आपसे उम्मीद की जाती है कि आप इन्हें पढ़ें और ज्ञान की परख करें।*

मूल पाठ/विषय सामग्रीः *संपूर्ण विषय सामग्री को कई भागों एवं उपभागों में विभाजित किया गया है। ये भाग आपको विषय सामग्री के एक घटक से दूसरे में ले जाते हैं और उपभाग विषय सामग्री के घटक के विचार को समझने में सहायता करते हैं।*

टिप्पणीः *आपके लिए महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को लिखने या टिप्पणियां लिखने के लिए प्रत्येक प ष्ठ में किनारे की ओर खाली स्थान दिया गया है। इसका भरपूर उपयोग करें।*



पाठगत प्रश्नः *प्रत्येक भाग के पश्चात् स्वतः जाँच के लिए कुछ वस्तुनिष्ठ प्रश्न दिए गए हैं। इनके उत्तर भी पाठ के अंत में दिए गए हैं। ये आपकी प्रगति की जाँच करने में आपकी सहायता करेंगे। इन्हें हल कीजिए। इसे सफलतापूर्वक पूरा करने पर आपको यह निश्चय करने में मदद मिलेगी कि आप आगे बढ़ें या पुनः पीछे लौटकर इकाई का फिर से अध्ययन करें।*



आपने क्या सीखाः *यह पाठ के प्रमुख बिन्दुओं का सारांश है। यह पाठ के सार कथन और दोहराने में मदद करेगा। आप इनमें कुछ बिंदु जोड़ भी सकते हैं।*



पाठांत प्रश्नः *ये लघु और दीर्घ उत्तरों वाले प्रश्न हैं, जो आपको संपूर्ण पाठ को ठीक से समझने के लिए अभ्यास का अवसर प्रदान करते हैं।*



पाठगत प्रश्नों के उत्तरः *ये आपको यह पता करने में सहायता करेंगे कि आपने कितने पाठगत प्रश्नों के सही उत्तर दिए हैं।*

पाठांत प्रश्नों के संकेतः *ये आपको सही उत्तर खोजने में सहायता करेंगे।*

पाठ्य सामग्रीः एक नज़र में

पुस्तक - 1

मॉड्यूल 1

प्राचीन भारत

1. भारत के इतिहास को समझना
2. भारत का भौगोलिक परिवेश और प्रागैतिहासिक सभ्यताएँ
3. हड़प्पा सभ्यता
4. वैदिक काल
5. जनपद से साम्राज्य की ओर
6. मौर्योत्तर काल
7. गुप्तवंश तथा उनके उत्तराधिकारी
8. 750-1200 ई. के मध्य भरतीय परिद श्य

मॉड्यूल 2

मध्यकालीन भारत

9. दिल्ली सल्तनत की स्थापना और विस्तार
10. मुगल शासन की स्थापना
11. भारत में प्रादेशिक राज्यों का उदय
12. प्रशासनिक प्रणाली और संस्थाएं
13. अर्थव्यवस्था
14. मध्यकालीन भारत में सांस्क तिक विकास
15. 18वीं शताब्दी में भारत की स्थिति

पुस्तक - 2

मॉड्यूल 3

आधुनिक भारत

16. भारत में ब्रिटिश शासन का संस्थापन 1857 तक
17. ब्रिटिश उपनिवेशवाद का आर्थिक प्रभाव
18. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन
19. कंपनी शासन का जन विरोध

मॉड्यूल 4

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन तथा तत्कालीन भारत

20. राष्ट्रवाद
21. राष्ट्रीय आंदोलन तथा भारतीय प्रजातंत्र

मॉड्यूल 5

20वीं शताब्दी का विश्व

22. 19वीं शताब्दी का महत्त्व
23. प्रथम विश्व युद्ध तथा रूसी क्रांति
24. दोनों विश्व युद्धों के अंतराल का समय व द्वितीय विश्व युद्ध
25. शीत युद्ध व उसके प्रभाव
26. राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन
27. 20वीं शताब्दी में सामाजिक रूपांतरण
28. 20वीं शताब्दी में परिवर्तन

पुस्तक - 3

मॉड्यूल 6 क

भारत में राज्यों का विकास

29. राज्य के निर्माण की ओर
30. प्रारंभिक राज्य
31. मध्यकालीन राज्य
32. औपनिवेशिक राज्य

मॉड्यूल 6 बी

भारत में सांस्क तिक विकास

29. समसामयिक सांस्क तिक स्थिति
30. सांस्क तिक उत्पादन
31. सांस्क तिक संप्रेषण

आपसे दो बातें

प्रिय शिक्षार्थी,

आज के समाज में हम आतंकवादी, नक्सलवादी हिंसा, दंगे, साम्प्रदायिक कलह, जातीय तनाव के दौर से गुजर रहे हैं। ये सामाजिक समस्याएँ हमारे वर्तमान समाज की हैं तथा आप इन्हें सही प ष्ठभूमि में समझने का प्रयास करते होंगे। यदि हम आज की सामाजिक समस्याओं के मूल कारणों को सही तरीके से समझना चाहें तो इतिहास का विधिवत अध्ययन आपको सही दिशा दे सकता है।

इतिहास की विषय-वस्तु बहुत विस्त त है । यह मानव सभ्यता की कहानी के इर्द-गिर्द घूमती है। इसके एक छोर पर तो आदि मानव है जो भोजन संग्रह कर्ता है तथा दूसरी छोर पर आज का आधुनिक मानव है जिसने विज्ञान व तकनीक में अद्‌भुत प्रगति की है। यह भी सत्य है कि आज घातक हथियार, जनसंख्या विस्फोट, प्रदूषण, आर्थिक असमानता इत्यादि से मानव का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है।

इतिहास बीते समय की घटनाओं को खुदाई, छानबीन, शिलालेखों, दस्तावेजों इत्यादि के अध्ययन से समझने का प्रयास करता है तथा उनका विश्लेषण करने की कोशिश करते हुए, आज के हालात के कारणों को ढूँढने का प्रयत्न करता है। आज की जिंदगी अत्यधिक जटिल हो गई है और इसी तरह इतिहास भी। आज का इतिहास केवल राजाओं और सम्राटों के जीवन से ही संबंधित नहीं रहा परन्तु इसकी विषयवस्तु बहुत विस्त त हो गई है जो एक मानव सभ्यता के राजनीतिक पक्ष से प्रारम्भ होते हुए उसके सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्क तिक पहलुओं को छूती है।

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान में उच्चतर माध्यमिक स्तर के इतिहास पाठ्‌यक्रम को इतिहास के विभिन्न कालक्रमों को सम्मिलित करते हुए बनाया गया है । पूरे पाठ्‌यक्रम को तीन पुस्तकों में विभक्त किया गया है। पहली पुस्तक प्राचीन तथा मध्यकालीन इतिहास से सम्बन्धित है। यह प्राचीन व मध्यकालीन समाज को समझने का प्रयास करती है। दूसरी पुस्तक आधुनिक काल और समसामायिक इतिहास पर विचार करती है। तीसरी पुस्तक में वैकल्पिक मॉड्‌यूल हैं। आपको इन दो मॉड्‌यूलों में से किसी एक को चुनना है-

(अ) भारत में राज्यों का विकास, तथा

(ब) भारत में सांस्क तिक विकास

विकल्प ए - भारत में राज्यों का विकास में प्राचीनकाल से लेकर मध्यकाल और औपनिवेशक काल तक में भारत में राज्यों के विकास की रुपरेखा बताई गयी है।

विकल्प बी - भारत में संस्क ति में आप समकालीन सांस्क ति उत्पादन, इसके विभिन्न रुप, साहित्य, वास्तुकला, खाघ संस्क ति के साथ बुद्ध के उदाहरण लेते हुए सांस्क तिक सम्प्रेषण का अध्ययन करेंगे।

मुझे आशा है आपको यह पुस्तक रोचक लगेगी। यदि आपको इसमें कोई दिक्कत आती है तो बिना झिझक आप हमें लिख सकते हैं।

शुभकामनाओं के साथ,

विवेक सिंह

(पाठ्‌यक्रम समन्वयक)

विषय-सूची

मॉडयूल 6 ए	**भारत में राज्यों का विकास**	
पाठ 29	**_राज्य के निर्माण की ओर**	**1**
पाठ 30	**__प्रारंभिक राज्य**	**13**
पाठ 31	**मध्यकालीन राज्य**	**30**
पाठ 32	**औपनिवेशिक राज्य**	**46**
मॉडयूल 6 बी	**भारत में सांस्क तिक विकास**	
पाठ 29	**समसामयिक सांस्क तिक स्थिति**	**60**
पाठ 30	**सांस्क तिक उत्पादन**	**75**
पाठ 31	**सांस्क तिक संप्रेषण**	**85**

- **नमूना प्रश्न पत्र**
- **प्रतिक्रिया पत्र**

मॉड्यूल 6 ए

भारत में राज्यों का विकास

पाठ 29	राज्य के निर्माण की ओर
पाठ 30	प्रारंभिक राज्य
पाठ 31	मध्यकालीन राज्य
पाठ 32	औपनिवेशिक राज्य

मॉड्यूल 6 बी

भारत में सांस्कतिक विकास

पाठ 29 समसामयिक सांस्कतिक स्थिति

पाठ 30 सांस्कतिक उत्पादन

पाठ 31 सांस्कतिक संप्रेषण

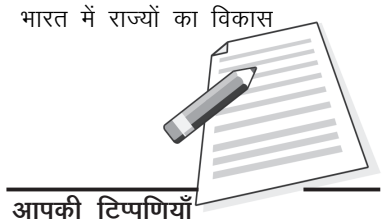

29

राज्य के गठन की ओर

राज्य ऐसा शब्द है, जिसे हम ज्यादा महत्त्व नहीं देते हैं। इससे हमारा क्या अभिप्राय होता है? प्रायः हम राज्य को सरकार के कुछ रूपों से जोड़ते हैं। सरकार के ये रूप राजतंत्र अथवा गणतंत्र अथवा कुछ मामलों में कुलीनतंत्र, अर्थात थोड़े लोगों का शासन हो सकते हैं। ये भिन्नताएं सत्ता अर्थात लोगों की प्रव त्तियों को प्रभावित और नियंत्रित करने की क्षमता के ढंग पर आधारित होती हैं, जो कुछ लोगों के हाथों में केंद्रित होती हैं अथवा उसमें कई लोगों की भागीदारी होती है।

जो लोग राज्यों को नियंत्रित करते हैं, जिन्हें हम शासकों के रूप में जानते हैं, वे राजनीतिक संबंधों का निर्धारण करते हैं और विभिन्न संस्थानों के माध्यम से कार्य करते हैं। इनमें प्रशासनिक सेवाएँ शामिल हैं, जिनका उपयोग अनेक कार्यों, जैसे – राजस्व–संग्रह, सेना और न्यायपालिका के लिए किया जाता है। शासक लोगों को यह विश्वास दिलाने का प्रयास करता है कि सरकार के जिस रूप के वे प्रमुख हैं, वही सरकार आदर्श है। दूसरे शब्दों में वे राज्य के अस्तित्व को वैध बनाने का प्रयास करते हैं।

राज्यों का विकास लंबी अवधि में और भिन्न तरीकों से हुआ है। इस पाठ में हम उपमहाद्वीप की कुछ पुरानी प्रव त्तियों का पता लगाएंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- सरदारी और बादशाहत में अंतर कर सकेंगे;
- प्रारंभिक राज्यों की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे और
- कुछ प्रारंभिक राज्य किस प्रकार शक्तिशाली राज्य बन गए, इसका उल्लेख कर सकेंगे।

29.1 पृष्ठभूमि

प्रारंभिक पाठों में आपने हड़प्पा सभ्यता के बारे में पढ़ा होगा। यह अत्यधिक सुविकसित सभ्यता थी जिसमें बड़े–बड़े शहर थे, लोग विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करते

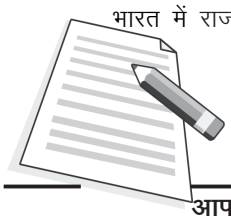

आपकी टिप्पणियाँ

थे। कुछ विद्वानों का मानना है कि हड़पा सभ्यता अवश्य ही एक राज्य–संगठन रहा होगा। इस बात की अत्यधिक संभावना है, परन्तु हमारे पास इस बात के सबूत नहीं हैं कि यह राज्य कैसा था तथा हमारे पास प्रशासनिक संस्थाओं की जानकारी भी नहीं है।

(i) प्रारंभिक वैदिक साहित्य में सरदारी

आपने प्रारंभिक पाठों (पाठ 4) में ऋग्वेद के बारे में पढ़ा है। ऋग्वेद संभवतः 1800–1000 ई.पू. के बीच लिखा गया था। यह स्रोत्रों का संग्रह है, जिसमें विभिन्न देवताओं विशेष रूप से अग्नि, इन्द्र और सोम से संबंधित स्रोत्र हैं। सामान्यतः स्रोतों की रचना पुरोहितों द्वारा की जाती थी। अक्सर बलि देते समय इनका उच्चारण किया जाता था और अनुष्ठानों हेतु देवताओं को आमंत्रित करने के लिए इनका उपयोग किया जाता था। अधिकतर स्रोतों की रचना उत्तर–पश्चिम भारत में की गई थी इस क्षेत्र में सिंधु और इसकी सहायक नदियां बहती थी।

इन स्रोतों में अन्य जानकारी भी मिलती है। इनमें उन वस्तुओं की सूचियां भी शामिल हैं, जिनके लिए लोग प्रार्थना करते थे तथा कभी–कभी इनसे हमें उस काल के प्रमुखों अथवा महत्त्वपूर्ण लोगों के नामों की भी जानकारी मिलती है।

क्या इन स्रातों से हमें राजनीतिक प्रक्रियाओं के बारे में भी जानकारी मिलती है? उत्तर है – हां। कुछ दुर्लभ उदाहरणणों को छोड़कर इन स्रोतों में हमें राजनीतिक घटनाओं के बारे में सीधी जानकारी नहीं मिलती। किंतु इन स्रोतों की विषयवस्तु का विश्लेषण कर यह समझा जा सकता है कि राजनीतिक संबंध किस प्रकार स्थापित किए गए थे।

(ii) भिन्न-भिन्न राजा

सामान्यतः जब हम राजा शब्द का उपयोग करते हैं, तो हमारे मस्तिष्क में यह विचार आता है कि राजा महलों में रहता है। उसके अनेक नौकर–चाकर होते हैं। वह अत्यधिक धनी होता है। वह विशाल सेना का सेनापति होता है और उसका दरबार होता है। अक्सर हम सोचते हैं कि राजा अपनी सत्ता अपने पुत्रों को दे देता है। संभवतः सबसे बड़े पुत्र को। परन्तु राजा शब्द का हमेशा यह अर्थ नहीं होता।

ऋग्वेद में राजा शब्द का उपयोग अनेक देवताओं के विशेषण के रूप में किया गया है। कभी–कभी इसका उपयोग शक्तिशाली व्यक्तियों का उल्लेख करने के लिए भी किया गया है। ये व्यक्ति विशाल सेना अथवा विशाल प्रशासनिक प्रणाली को नियंत्रित नहीं करते थे। इनकी शक्ति का मुख्य स्रोत शायद युद्ध में नेत त्व करने से उत्पन्न होता था। आइए देखें कि युद्ध क्यों होते थे और उसके बाद क्या होता था।

(iii) युद्ध

आपको याद होगा कि ऋग्वेद इंगित करता है कि उस काल के लोग मुख्यतः किसान थे। अतः हमें पता चलता है कि कुछ युद्ध चरागाह–भूमि को लेने के लिए होते थे। अक्सर उत्तम चरागाह–भूमि नदियों के किनारे थी। युद्ध लोगों और पशुओं दोनों के लिए जल हेतु, मवेशियों तथा भूमि हड़पने, विशेष रूप से चरागाह के लिए और जल्दी से पकने वाली फसलों, जैसे बाजरा उगाने के लिए भी होते थे। इसके अतिरिक्त स्त्रियों पर अधिकार जमाने के लिए युद्ध होते थे।

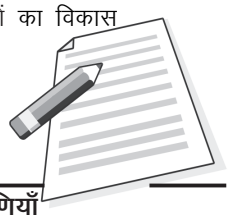

ज्यादातर पुरुष ही इन युद्धों में हिस्सा लेते थे। कोई नियमित सेना नहीं होती थी, परन्तु सभाएं होती थी, जिनमें लोग सम्मिलित होते थे और युद्ध और शांति के विषयों पर चर्चाएं की जाती थीं। वे नेताओं, बहादुरों तथा योग्य लड़ाकुओं को चुनते थे। कभी–कभी वे सफलता के लिए विशेष बलि देते थे और देवताओं से प्रार्थना करते थे।

राजा द्वारा अपने लोगों को विजय दिलवाने पर क्या होता था? जीती हुई जमीन अथवा हासिल किए गए जल–स्रोतों को संभवतः सामूहिक उपयोग के लिए रखा जाता था। अन्य वस्तुएं, जैसे मवेशी और स्त्रियां, संभवतः राजाओं के समर्थकों को दी जाती थी। इनमें से कुछ उन पुजारियों को दी जाती थी जो राजा की विजय हेतु प्रार्थना करने तथा अपने राजा को विजयी बनाने में सहायता करने हेतु देवताओं का आभार प्रकट करने के लिए बलि देते थे।

ये किससे युद्ध करते थे? ऋग्वेद में अनेक कबीलों के नाम दिए गए हैं। इनमें पौरुष यादव, भरत, अनु तथा द्रुहु सम्मिलित हैं। कभी–कभी ये कबीले परस्पर संगठित हो जाते थे, परन्तु ये एक–दूसरे से युद्ध भी करते थे। स्वयं को आर्य कहने वाले ये लोग कभी–कभी दासों अथवा दस्युओं से युद्ध करते थे।

आम आदमी के लिए दो शब्दों का प्रयोग मिलता है। एक शब्द है जन, जिसका प्रयोग आज भी हिंदी और अन्य भाषाओं में किया जाता है। दूसरा शब्द है विस। अक्सर राजा का उल्लेख जन अथवा विस के राजा के रूप में किया गया है। दूसरे शब्दों में राजा का संबंध किसी राज्य अथवा किसी निर्धारित क्षेत्र से नहीं था, बल्कि वह लोगों के एक समूह का राजा होता था।

जैसा कि हमने देखा, ये राजा वैसे राजा नहीं, जिन्हें हम जानते हैं। इन्हें अक्सर राजाओं के बजाय सरदार अथवा प्रमुख कहा जाता है तथा जिस क्षेत्र पर इनका अधिकार होता है, उसे राज्य के बजाय सरदारी अथवा प्रमुख के क्षेत्र के रूप में परिभाषित किया जाता था।

- प्रायः प्रमुख मुखिया का चुनाव लोगों द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है, जबकि राजा वंशानुगत होता है।
- प्रमुख के पास कोई स्थायी प्रशासनिक तंत्र नहीं होता है, जो उनकी सहायता करे; वे कुटुम्ब और अन्य अनुयायियों पर आश्रित होते हैं। जबकि राजा सहायता के लिए अपने संबंधियों पर भी निर्भर रहते हैं, इसके अलावा उनके पास प्रशासनिक प्रणाली भी होती है, जिस पर वे निर्भर रहते हैं।
- प्रमुख नियमित कर एकत्र नहीं करता, वह प्रायः उन उपहारों पर निर्भर रहता है, जो उसके अनुयायी लाते थे। राजाओं को भी उपहार मिलते थे, परन्तु उनकी आय का मुख्य स्रोत कर–संग्रहण था।
- प्रमुख स्थायी सेनाएं नहीं रखते थे। वे नागरिक सेना पर आश्रित रहते थे। अर्थात जरूरत पड़ने पर लोगों को युद्ध करने के लिए बुलाया जाता था और उन्हें नियमित रूप से वेतन नहीं दिया जाता था। राजा नागरिक सेना के रूप में लोगों को भर्ती करते रहते थे, परन्तु अक्सर वे स्थायी सेनाएं भी रखते थे।

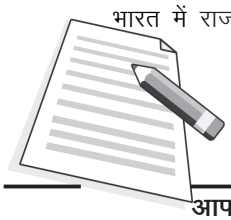

आपकी टिप्पणियाँ

- सामान्यतः प्रमुख उन सभाओं में लोगों से बातचीत करते हैं, जहाँ लोग महत्त्वपूर्ण विषयों पर अपनी राय व्यक्त कर सकते थे। राजा भी इन सभाओं में भाग लेते थे, परन्तु ऐसा औपचारिक अवसरों पर ही होता था।



पाठगत प्रश्न 29.1

1. ऋग्वेद की रचना संभवतः _____ से _____ ई.पू. के बीच हुइ थी।
2. स्रोतों में _____ घटनाओं के बारे में हमें प्रत्यक्ष जानकारी नहीं मिलती।
3. अक्सर उत्तम चरागाह भूमियां _____ के किनारों पर होती हैं।
4. स्वयं को आर्य कहने वाले लोग अन्य लोगों से युद्ध करते थे, जिन्हें वे _____ अथवा _____ कहते थे।

29.2 प्रारंभिक राज्यः जनपद

लगभग 1000 ई.पू. से 500 ई.पू. के बीच उत्तरी भारत में अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएं हुईं। हम अब पाते हैं कि ऐसी अनेक बस्तियों का विकास हो चुका था, जो चित्रित धूसर म द्भांड संस्क ति से जुड़ी थीं, जिसके बारे में आप पाठ पांच में पढ़ चुके हैं। अन्य बातों के साथ–साथ क षि अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई थी, जन–समुदाय का विकास हो गया था तथा औजार और हथियार बनाने के लिए लोहे का उपयोग बढ़ गया था।

हमारे पास मूल ग्रंथों का विस्त त समूह भी है, जिसे हम उत्तर वैदिक साहित्य कहते हैं। इन ग्रंथों में धार्मिक अनुष्ठान, उनकी व्याख्या और विश्लेषण दिए गए हैं तथा यह उल्लेख किया गया है कि उन्हें प्रासंगिक रूप से कैसे निष्पादित किया जाता था। उनमें यह भी बताया गया है कि राजनीतिक संगठन का एक नया रूप, जिसे अक्सर जनपद कहा जाता है, अब अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो चला था।

जैसा कि स्पष्ट है जनपद शब्द की उत्पत्ति 'जन' शब्द से हुई थी, जैसा कि हमें मालूम है, जन का अर्थ है व्यक्ति। वास्तव में जनपद का अर्थ है वह स्थान, जहाँ लोग अपने समूह में रहने लगे थे और स्थायी रूप से बस गए थे। उस भूमि का नाम उनके नाम पर पड़ गया। उदाहरण के लिए, जिस भूमि पर कुरु बस गए थे वह भूमि कुरु जनपद कहलाने लगी।

जनपद की एक अन्य विशेषता थी। कि इन क्षेत्रों में रहने वाले समुदायों को वर्ण के अनुसार वर्गीक त किया गया था चतुर्वर्णीय सामाजिक वर्गीकरण के बारे में आप पाठ चार में पढ़ चुके हैं।

29.3 राजा बनने के नए तरीके

जनपद के सरदार अथवा प्रमुख को राजा कहा जाता रहा। परन्तु कुछ महत्त्वपूर्ण ढंग थे, जिनमें यह राजा जन से भिन्न था। शुरुआत में हमें ये संकेत मिलते हैं कि कम से कम कुछ मामलों में अब राजा का पद वंशानुगत हो गया था। दूसरे शब्दों में, पुत्र वंशानुगत अथवा वैध रूप से अपने पिता के शासन पर दावा कर सकते थे।

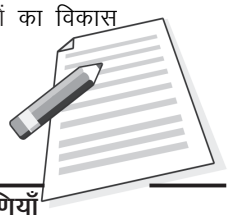

दूसरे, अब हमें विस्त त धार्मिक अनुष्ठानों का उल्लेख मिलता है, जिनमें राजसूय और अश्वमेध अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। ये काफी लंबे चलते थे, कभी–कभी तो ये एक वर्ष से भी अधिक समय तक चलते थे। केवल विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित पुजारी ही इन्हें संपन्न कर सकते थे। वैदिक साहित्य की रचना और संकलन करने वाले पुजारियों का कहना था कि इन विस्त त धार्मिक अनुष्ठानों को संपन्न करने में सक्षम व्यक्ति को ही राजा के रूप में मान्यता प्रदान की जाएगी।

ऐसी बलियों में अनेक लोग भाग लेते थे। इनमें राजा भी सम्मिलित होता था। अपनी शक्ति की घोषणा करने का यह महत्त्वपूर्ण अवसर होता था। उसका परिवार, विशेषकर उसकी पत्नियां और उसके पुत्र इस बलि में उसकी सहायता करते थे। रथ का सारथी, पारिवारिक पुरोहित, सेनापति और दूत सहित उसके अन्य सहायक भी इसमें सम्मिलित होते थे। आम जनता विस अथवा वैश्य द्वारा राजा के लिए उपहार लाने की अपेक्षा की जाती थी, जो बलि देने के लिए आवश्यक धन से अधिक होता था। पड़ोसी राजाओं को भी इसमें भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जाता था। निसन्देह पुजारी ही संपूर्ण अनुष्ठान को पूरा करते थे।

क्या शुद्र इन धार्मिक अनुष्ठानों में भाग ले सकते थे? कभी–कभी उनको इन अनुष्ठानों में छोटी भूमिकाएं दी जाती थी, परन्तु अक्सर उन्हें इन धार्मिक अनुष्ठानों मे सम्मिलित नहीं होने दिया जाता था। उनमें भाग लेने वाले भी केवल अपनी भूमिका ही निभा सकते थे। उदाहरण के लिए, वैश्य पुजारी का कार्य नहीं कर सकता था, न ही राजा की पत्नी उसका स्थान ले सकती थी।

ये धार्मिक अनुष्ठान क्यों आवश्यक थे? अश्वमेध अथवा घोड़े की बलि के मामले में बलि दिए जाने वाले घोड़े को हथियारबंद लोगों के समूह के साथ एक वर्ष तक घूमने के लिए खुला छोड़ दिया जाता था। वे सब जो घोड़े को अपने राज्य में से गुजरने की अनुमति देते थे, उनके बारे में, यह समझा जाता था कि उन्होंने घोड़े के स्वामी के प्रभुत्व को मौन स्वीक ति प्रदान कर दी है।

जब घोड़े को वापस लाया जाता था, तो विस्त त धार्मिक अनुष्ठान में इसकी बलि दी जाती थी। अन्य राजाओं, पुजारियों, आम जनता सहित अनेक लोगों को इस अनुष्ठान में भाग लेने और/अथवा साक्षी होने के लिए आमंत्रित किया जाता था। भोज कराया जाता और कथा सुनाई जाती थी। दूसरे शब्दों में, यह काफी खर्चीला अनुष्ठान होता था।

ऐसा धार्मिक अनुष्ठान करने के इच्छुक किसी भी महत्त्वाकांक्षी राजा का शक्तिशाली और धनवान दोनों होना आवश्यक था। पुजारियों को बहुत अधिक बलि–शुल्क अथवा दक्षिणा दी जाती थी उसमें अन्य चीजों के अलावा घोड़े, मवेशी, सोने–चांदी की वस्तुएं, रथ, कपड़े और दास और दासियां सम्मिलित थी। अतः ऐसे धार्मिक अनुष्ठान को सफलतापूर्वक संपन्न करके राजा अपनी शक्ति की सार्वजनिक घोषणा करने के साथ–साथ अपनी शक्ति का प्रदर्शन करता था। इनमें से कई धार्मिक अनुष्ठानों में अभिषेक भी सम्मिलित था। इसका अर्थ था राजा पर शुद्ध पवित्र जल छिड़कना। अक्सर पहला छिड़काव पुजारी करता था, तत्पश्चात अन्य लोग जैसे वैश्य और राजा के संबंधी भी इस प्रक्रिया में भाग ले सकते थे।

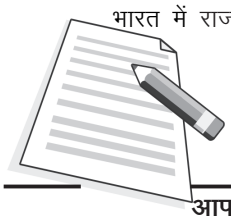

आपकी टिप्पणियाँ

जैसा कि आप देख सकते हैं, जन–सभा द्वारा राजा के चयन का कोई प्रश्न ही नहीं था। किसी राज–परिवार में जन्मा व्यक्ति ही राजा बन सकता था। या फिर वह व्यक्ति राजा बनने की कोशिश कर सकता था, जिसके पास पर्याप्त सेना और भौतिक संसाधन हो।

29.4 प्रशासनिक प्रणाली की शुरुआत

उत्तर वैदिक साहित्य में जिन धार्मिक अनुष्ठानों का बार–बार वर्णन किया गया है, उनमें से एक है, राजसूय। यदि आप महाभारत की कहानी से परिचित हैं तो आपको स्मरण होगा कि राजसूय एक महत्त्वपूर्ण यज्ञ था, जो युधिष्ठिर द्वारा सिंहासन पर अपना दावा करने के लिए किया गया था।

राजसूय के एक भाग के रूप में 'रत्नीनाम हविमासि' नामक अनुष्ठान का उल्लेख मिलता है। यह ऐसा धार्मिक अनुष्ठान है जिसमें 'रत्नीनों' (इसका शाब्दिक अर्थ है वे लोग, जिनके पास रत्न थे) के रूप में उल्लिखित महत्त्वपूर्ण लोगों के घरों में राजा चढ़ावा भिजवाता था। इन महत्त्वपूर्ण लोगों में राजा की पत्नियां, सेना नायक, मुख्य पुजारी, सारथी तथा दूत और राजा की ओर से आहार एकत्र और प्राप्त करने वाले लोग सम्मिलित थे।

इन पदाधिकारियों को दिए जाने वाले नियमित वेतनों का कोई उल्लेख नहीं मिलता। तथापि उनके कार्यों से हम पता लगा सकते हैं कि उनमें से कुछ एक केंद्र का निर्माण करते थे, जिससे बाद में प्रशासनिक प्रणाली विकसित हुई।

29.5 राजा के लिए संसाधन

हालांकि जनपद पर राज्य करने वाला राजा ऋग्वेद में उल्लिखित राजा से कई मामलों में भिन्न था पर उसकी कई विशेषताएं उसके समान भी थी। हम पाते हैं कि इस अवधि के दौरान भी राजा द्वारा संसाधन जुटाने के मुख्य तरीके युद्ध और उपहारों की प्राप्ति ही थे।

अक्सर इन उपहारों को बलि कहा जाता था, जिनकी मांग धार्मिक अनुष्ठानों के अवसर पर की जा सकती थी उदाहरण के लिए, यदि राजा अश्वमेध यज्ञ करता था, तो वह अपने लोगों से संसाधनों की मांग कर सकता था। 'उपहार' शब्दों से लगता है कि वह स्वेच्छा से दी गई भेंट हैं, परन्तु उपहार देने के लिए लोगों को मजबूर भी किया जाता था।

हम पाते हैं कि इन ग्रंथों में राजा और प्रजा के बीच संबंधों का उल्लेख करने के लिए अनेक नई उपमाओं का उपयोग किया है। राजा का उल्लेख भोजनकर्ता अथवा हिरण के रूप में तथा प्रजा का उल्लेख 'भोजन' अथवा 'चारे' के रूप में मिलता है। इससे पता चलता है कि नियमित करों की मांग न किए जाने के बावजूद अक्सर लोगों का शोषण किया जाता था।

तथापि लोगों को राजा का समर्थन पाने और यह सुनिश्चित करने के लिए कि वह उन्हें अन्य राजाओं से बचाने में समर्थ और इच्छुक दोनों हैं, राजा को भेंट देनी पड़ती थी।

ऋग्वेद के राजा और उत्तर वैदिक परंपरा के राजा में एक और समानता यह थी कि दोनों ही सशस्त्र सहायता के लिए नागरिक सेना पर आश्रित थे तथा आप सोच सकते हैं कि राजा स्थायी सेना रखने में समर्थ क्यों नहीं था?

29.6 महाजनपद

लगभग 500 ई.पू. तक कुछ जनपद अन्य जनपदों की तुलना में अत्यधिक शक्तिशाली बन गए थे और अब वे महाजनपद कहलाते थे। हमें बौद्ध और जैन ग्रंथों में 16 महाजनपदों की सूची मिलती है। इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण महाजनपद और उनकी राजधानियां मानचित्र में दर्शाई गई हैं (क पया पुस्तक 1 में पाठ 5 में तालिका सं. 5.1 और मानचित्र 5.1 देखें) चार जनपद विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण थे। वे थे कोसल, अवन्ति, वज्जि और मगध। इनमें से अंततः मगध सबसे शक्तिशाली जनपद बन गया। उपमहाद्वीप के इतिहास में पहला ज्ञात साम्राज्य मौर्य साम्राज्य था, जिसका केंद्र मगध में था। महाजनपद जनपदों से कई प्रकार से भिन्न थे। आइए, इनमें से कुछ भिन्नताओं पर नजर डालें।

29.7 किलेबंद शहर

लगभग सभी महाजनपदों की राजधानी होती थी। जनपदों की बस्तियों के विपरीत इनमें से कई राजधानियां किलेबंद थी। इसका अर्थ है कि इनके चारों ओर लकड़ी, ईंट अथवा पत्थर की विशाल दीवारें बनी हुई थी।

हमारे पास इन शहरों में रहने वाले लोगों के बारे में कुछ जानकारी है। इन लोगों में राजा और उसके समर्थक तथा शिल्पकार, सौदागर, व्यापारी और छोटे दुकानदार जैसे अन्य लोग सम्मिलित थे। इन शहरों में रहने वाले कुछ लोग धनी व्यक्ति थे। आज हम जिन कई शहरों को जानते हैं, वे इसी अवधि में विकसित हुए थे। इनमें मथुरा, वाराणसी, वैशाली और पाटलिपुत्र जैसे शहर शामिल हैं। इन शहरों में लोहे के औजार के उपयोग से क षि में विकास जारी रहा। जिससे अब और अधिक अनाज उत्पन्न करना संभव हो गया था।

शायद किले इसलिए बनाए गए थे कि इन शहरों में रहने वाले कुछ लोग आक्रमणों से डरते थे और उन्हें बचाव की आवश्यकता थी। यह भी संभव है कि कुछ राजा को दर्शाना चाहते थे कि वे इतने धनी और शक्तिशाली हैं कि वे अपने शहरों के चारों ओर विशाल बड़ी भव्य दीवारें बनवा सकते हैं।

ऐसी विशाल दीवारों का निर्माण करने के लिए बड़ी योजनाएं बनाने की आवश्यकता थी। लाखों नहीं बल्कि हजारों पत्थर की ईंटें बनानी पड़ी होंगी। इसके लिए पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के रूप अनेक मजदूर में उपलब्ध कराए गए होंगे। और निसन्देह इन सबका भुगतान करने के लिए धन एकत्र करना पड़ा होगा।

29.8 नई सेनाएँ

हमारे पास उपलब्ध प्रमाणों से पता चलता है कि लगभग 330 ई.पू. तक इन महाजनपदों में से कुछ में अलग–अलग ढंग से सेनाएं संगठित की गई थी। यह वह काल था जब उत्तरी ग्रीस के मकदूनिया के शासक सिकंदर ने विश्व विजय की यात्रा प्रारंभ करने का निर्णय लिया था। जैसी उम्मीद लगाई गई थी। वह विश्व पर विजय हासिल नहीं कर पाया। तथापि उसने मिस्र के भाग, पश्चिम एशिया पर विजय हासिल की तथा वह भारतीय उपमहाद्वीप में व्यास के किनारे तक आ पहुंचा।

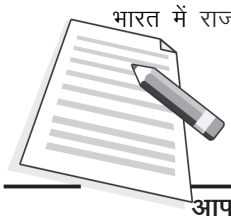

आपकी टिप्पणियाँ

जब वह पूर्व की ओर बढ़ना चाहता था तो उसके सैनिकों ने इंकार कर दिया। वे भयभीत थे क्योंकि उन्होंने सुन रखा था कि भारत के राजाओं के पास विशाल पैदल सैनिक, रथ और हाथी थे।

ये सेनाएं उन सेनाओं से भिन्न थी, जिनका पहले उल्लेख किया गया है। राजा द्वारा नई सेना के सैनिकों को नियमित वेतन दिया जाता था और उन्हें पूरे साल रखा जाता था। हमें यह भी पता चलता है कि हाथियों का व्यापक पैमाने पर उपयोग किया जाता था। हाथियों को पकड़ना, उन्हें पालतू बनाना और प्रशिक्षित करना मुश्किल है। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि अब सेनाएं पहले से बहुत अधिक सुसज्जित और संगठित हो गईं। ऐसी विशाल सेनाओं को रखने के लिए जनपदों की साधारण सेनाओं के लिए अपेक्षित संसाधनों से कहीं अधिक संसाधनों की जरूरत थी।

हमें बौद्ध ग्रंथों से पता चलता है कि मगध के शासकों ने सर्वोत्तम सेनाएं गठित की थी। उन्होंने राज्य के जंगलों में पाए जाने वाले हाथियों का उपयोग किया। उन्होंने अपने राज्य की खानों से प्राप्त लोहे का भी उपयोग किया। इससे सेना को मजबूत हथियार उपलब्ध कराए गए।

महत्त्वाकांक्षी शासकों के नेत त्व वाली सुसज्जित सेना का अर्थ था कि मगध का राजा शीघ्र अन्य राजाओं पर विजय प्राप्त कर सकता था और पड़ोसी राज्यों पर नियंत्रण कर सकता था। कुछ मामलों में शासकों ने प थ्वी पर और नदियों के साथ–साथ संचार के मार्गों पर नियंत्रण करने की कोशिश की। अन्य मामलों में उन्होंने भूमि पर, विशेष रूप से उपजाऊ क षि योग्य भूमि पर नियंत्रण करने की कोशिश की, चूँकि वह अधिक संसाधन प्राप्त करने का महत्त्वपूर्ण स्रोत थी।

पाठगत प्रश्न 29.2

रिक्त स्थान भरिए:

1. लगभग सभी महाजनपदों में एक _____ शहर था।
2. ऐसी विशाल दीवारों का निर्माण करने के लिए _____ की आवश्यकता थी
3. इन शहरों ने लोहे के औजारों के उपयोग से क षि में विकास जारी रखा। जहाँ अब _____ और अधिक _____ करना संभव हो गया।
4. सिकंदर ने मिस्र के भाग, पश्चिम एशिया पर विजय हासिल की और भारतीय उपमहाद्वीप में _____ के किनारे तक आ पहुंचा।

29.9 नियमित विभिन्न कर

चूंकि महाजनपदों के शासक विशाल किले बनवा रहे थे और बड़ी सेनाएं रख रहे थे, अतः इसके लिए उन्हें धन की नियमित आपूर्ति की आवश्यकता थी, इसलिए कर एकत्र करना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गया था।

- फसलों पर कर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था। ऐसा इसलिए था क्योंकि ज्यादातर लोग

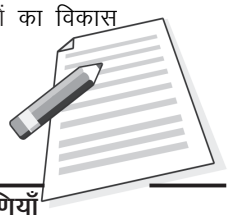

किसान थे। वे अक्सर अपनी भूमि और फसलों को बचाने के लिए राजाओं पर आश्रित रहते थे। आम तौर पर भूमि के उत्पादन का 1/6वां भाग कर के रूप में निर्धारित किया गया। यह कर 'भाग' के रूप में जाना जाता था।

- शिल्प पर भी कर लगाया गया था। यह कर श्रम के रूप में होता था। उदाहरण के लिए, एक बुनकर अथवा लुहार को प्रत्येक महीने में एक दिन सरकार के लिए काम करना पड़ता था। चरवाहों से भी कर–अदायगी अपेक्षित थी।
- व्यापार के माध्यम से खरीदी और बेची जाने वाली वस्तुओं पर भी कर लगाया जाता था।

निःसन्देह राजा को कर एकत्रित करने के लिए कई अधिकारियों और उनका वेतन देने के लिए अधिक धन की आवश्यकता थी। कुछ कर वस्तुओं, जैसे – अनाज, मवेशी अथवा शिल्पकारों द्वारा निर्मित वस्तुओं के रूप में एकत्र किए जाते थे। कभी–कभी ये कर नकद भी एकत्र किए जाते थे। वास्तव में प्रारंभ के कुछ सिक्के इसी अवधि के थे।

29.10 मगध और उसके शासक

मगध लगभग दो सौ वर्षों में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण महाजनपद बन गया था। यह आंशिक रूप से मगध की सेना के कारण हुआ था। इसके अतिरिक्त, मगध नदियों से घिरा था, जिसमें गंगा और सोन नदी सम्मिलित थी। परिवहन, जल आपूर्ति और ऊपजाऊ भूमि के लिए उनका बहुत महत्त्व था।

मगध के दो अत्यधिक शक्तिशाली राजा हुए–बिम्बिसार और उसका पुत्र अजातशत्रु, जिन्होंने प्रतिद्वंद्वियों और अन्य जनपदों पर विजय हासिल करने के लिए सभी संभावित साधनों का उपयोग किया। कभी–कभी वे अपने पड़ोसी शासकों से विवाह–संबंध स्थापित करते। अन्य मामलों में वे सेनाओं का नेत त्व करते और पड़ोसी राज्यों पर वस्तुतः विजय प्राप्त करते थे।

महापद्मनाद मगध का एक अन्य महत्त्वपूर्ण राजा था। उसने उपमहाद्वीप के उत्तर पश्चिमी भाग तक अपने शासन का विस्तार किया। संभव है सिकंदर के सैनिकों ने इसकी विशाल सेना के बारे में सुन रखा हो। हमने मगध के राजाओं को व्यापक–पैमाने पर बलियां देते नहीं सुना है। क्या आप सोच सकते हैं कि ऐसे विस्त त धार्मिक अनुष्ठान संपन्न क्यों नहीं किए गए?

29.11 गण संघ

एक ओर जहाँ अनेक महाजनदों पर विशिष्ट राजाओं द्वारा शासन किया जाता था। वहीं दूसरी ओर कुछ जनपद विभिन्न प्रकार की सरकार के अधीन थे और गण संघ कहलाते थे। यहाँ एक नहीं, बल्कि अनेक शासक होते थे। दिलचस्प बात यह है कि कभी–कभी हजारों व्यक्ति एक साथ शासन करते थे और उनमें से प्रत्येक व्यक्ति राजा कहलाता था।

ये राजा एक साथ धार्मिक अनुष्ठान संपन्न करते थे। ये धार्मिक अनुष्ठान वैदिक बलियों जैसे नहीं थे। वे सभाओं में मिलते थे और चर्चाओं और वाद–विवादों के माध्यम से क्या

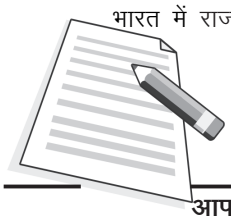

आपकी टिप्पणियाँ

किया जाए और कैसे किया जाए, इसका निर्णय करते थे। उदाहरणणण के लिए, यदि शत्रु द्वारा इन पर आक्रमण किया जाता, तो वे इस चुनौती का सामना करने के लिए क्या किया जाए इस पर चर्चा करने के लिए अपनी सभा बुलाते थे। हम पाते हैं कि स्थायी सेनाएं रखने की बजाय सभी राजा अपने अनुचरों के साथ मिलकर आवश्यकता पड़ने पर सेना का गठन करते थे।

गण संघों की सारी जमीन के स्वामी सभी राजा मिलकर होते थे। उस पर अधिकार कर लिया जाता था। उन्हें अक्सर इस भूमि को जोतने के लिए दास और मजदूर मिलते थे, जिन्हें दास कर्मकार कहा जाता था। इन स्त्री–पुरुषों को कुछ खाना, कपड़े और मकान दिए जाते थे, परन्तु जो भी कुछ ये उत्पन्न करते, उसे राजा और उसके रिश्तेदार ले लेते थे।

सबसे अधिक प्रसिद्ध गण संघों में मल्ल और वज्जि थे। वज्जि गण संघ महाजनपद था और इसकी राजधानी प्रसिद्ध शहर वैशाली थी, बुद्ध और महावीर दोनों गण संघ के थे। गण संघों में जीवन के सजीव विवरण बौद्ध ग्रंथों में देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार आपने देखा कि सभी महाजनपदों में समान प्रकार की सरकार नहीं थी।



पाठगत प्रश्न 29.3

1. सबसे अधिक शक्तिशाली जनपद कौन–सा था?

2. मगध की सेनाओं द्वारा मार्गों पर नियंत्रण करने के लिए परिवहन और संचार के कौन–कौन से साधन उपयोग में लाए जाते थे?

3. राजा द्वारा क षि की फसल पर कितना कर लिया जाता था?

4. मगध के किन्हीं दो शक्तिशाली राजाओं के नाम बताइए?



आपने क्या सीखा

राज्य के गठन के सूत्र प्रारंभिक वैदिक काल में ढूंढे जा सकते हैं, जब सरदारी से धीरे–धीरे राज्य के गठन का मार्ग प्रशस्त हुआ। चरागाह भूमि के लिए युद्ध के परिणामस्वरूप ऐसा हुआ। ये युद्ध एक कबीले द्वारा दूसरे कबीले से या एक कबीलाई समूह द्वारा दूसरे समूह से लड़े गए। प्रारंभिक राज्य को जनपद कहा जाता था, जिनसे धीरे–धीरे महाजनपद बने जिनमें पत्थर की चारदीवारी, अनेक नौकर–चाकर और विशाल सेनाएं होती थी। राजा अथवा प्रमुख जन कहलाने वाले सामान्य लोग कई रूपों में भिन्न थे।

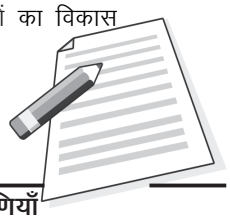

धीरे–धीरे राजा का पद वंशानुगत बन गया। उसके पास विशाल सेना होती थी जिसे रखने के लिए भारी व्यय की आवश्यकता होती थी। इस व्यय को फसलों, शिल्पों और वस्तुओं पर लगाए गए करों से पूरा किया जाता था। एक दिलचस्प संकल्पना थी, गण संघों की, जिसका अर्थ था कई राजाओं का राज्य। ये राजा मिलकर धार्मिक अनुष्ठान संपन्न करते थे। वे सभाएं बुलाते और निर्णय करते कि क्या किया जाए? गण संघों की भूमि पर सभी राजाओं का संयुक्त स्वामित्व होता था।

पाठांत प्रश्न

1. ऋग्वेद क्या है?
2. युद्ध क्यों लड़े जाते थे?
3. 'सरदारी' और 'बादशाहत' में अंतर बताइए?
4. ऋग्वेद में उल्लिखित किन्हीं चार वंशों के नाम बताइए।
5. राजा बनने के नए तरीकों का उल्लेख कीजिए।
6. कर एकत्र करना क्यों महत्त्वपूर्ण था? उल्लेख कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

29.1

1. 1800–1000 ई.पू.
2. राजनीतिक
3. नदियों
4. दास, दस्यु

29.2

1. राजधानी
2. योजना
3. अनाज उत्पन्न करना
4. व्यास नदी

29.3

1. मगध

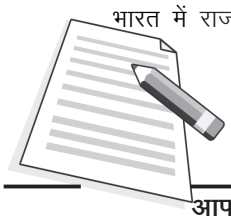

आपकी टिप्पणियाँ

2. भूमि पर और नदियों के साथ
3. 1/6
4. बिम्बिसार, अजातशत्रु और महापद्मनंद (कोई दो)

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें अनुच्छेद 29.1.2
2. देखें अनुच्छेद 29.1.(iii)
3. देखें अनुच्छेद 29.1.(iii) शेष पांच बिंदु
4. देखें अनुच्छेद 29.1.(iii)
5. देखें अनुच्छेद 29.3
6. देखें अनुच्छेद 29.5

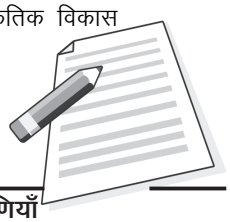

29

समसामयिक सांस्कतिक स्थिति

कल्पना करें, आप एक सुबह जागते हैं और खुद को एक अलग देश में पाते हैं, जहां लोग ऐसी भाषा बोलते हैं जिसे आप नहीं समझते, अलग तरह के कपड़े पहनते हैं और वैसा खाना खाते हैं जिसके आप आदी नहीं। जब तक आप उनके व्यवहार के तरीके नहीं सीख लेते, तब तक शायद आपको अपना जीवित रहना असंभव लगे। व्यवहार के ये तरीके अन्य चीजों के साथ मिलकर हमारी संस्कति का निर्माण करते हैं।

जैसा कि आप देखेंगे, हम सब संस्कृतियों में पैदा होते हैं। यह हमारे क्षेत्र, धर्म और जाति या वर्ग के अनुसार भिन्न हो सकती है। बड़े होने पर हममें से प्रत्येक व्यक्ति स्वतः लगभग दर्जनों सांस्कृतिक प्रथाएं आत्मसात कर लेता है। इनमें से अनेक प्रथाएं हमें पीढ़ियों से और उनमें से कुछ शताब्दियाँ से सौंपी जाती रही हैं, बल्कि कुछ तो सहस्राब्दियाँ पुरानी परंपरांए हैं। पर साथ ही, सांस्कृतिक प्रथाएं बदलती भी रहती है। इस पाठ में हम संस्कति के साथ अपने रिश्ते की पड़ताल करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- संस्कति को परिभाषित कर सकेंगे;
- संस्कति कैसे आकार लेती है, इसका विश्लेषण कर सकेंगे;
- सांस्कतिक अंतःक्रिया को स्पष्ट कर सकेंगे और
- वैश्वीकरण की घटना का समीक्षात्मक विश्लेषण कर सकेंगे।

29.1 संस्कति से हमारा क्या तात्पर्य है

सांस्कतिक अभिव्यक्ति के रूप

जब हम रेडियो अथवा टीवी या मंच पर कोई सांस्कतिक कार्यक्रम सुनते अथवा देखते हैं तो उसमें आम तौर पर संगीत, गीत और नत्य शामिल होते हैं। इनमें से प्रत्येक

सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का एक रूप है। ऐसा प्रत्येक रूप एक संदेश देता है। उदहारण के लिए, ध्यान में लीन बुद्ध की मूर्ति (चित्र 29.1) का आशय अमन और शांति की भावनाओं को बढ़ावा देना हो सकता है। लोकगीत/लोककथा शिक्षा और मनोरंजन प्रदान कर सकते हैं, जबकि कुतुब मीनार (29.2) जैसे बुलंद स्मारक हमें हैरानी में डाल सकते हैं। दूसरे शब्दों में, संस्कति तरह–तरह के विचार संप्रेषित करने के लिए इस्तेमाल की जा सकती है। इसके और उदाहरण हम पाठ संख्या 31 में देखेंगे।



चित्र 29.1 बुद्ध



29.2 कुतुब मीनार

भारत में हमें सांस्कतिक रूपों की एक व्यापक श्रंखला मिलती है। इनमें से कुछ– मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला, साहित्य और संगीत हैं। इनमें प्रत्येक में बहुत विविधता है। उदाहरण के लिए, अगर हम गीतों के बारे में विचार करें तो हम तुरंत उनकी कई किस्मों के बारे में सोच सकते हैं, जैसे लोकगीत, फिल्मी गीत, भजन, कव्वालियाँ आदि। हर प्रकार के गीत विशेष अवसर पर गाए जाते हैं और उनका खास प्रयोजन होता है। साथ ही, आपने ध्यान दिया होगा कि कुछ फिल्मी गीत असल में भजन हैं या लोकधुनों पर आधारित हैं। आपके खयाल में कोई फिल्मी भजन मंदिर में भक्तों द्वारा गाए जाने वाले भजन से किस रूप में अलग होता है?

29.2 लोकप्रिय अथवा लोक-संस्कति

आम लोगों ने समद्ध सांस्कतिक परंपराएँ विकसित कर ली हैं जिन्हें 'लोकप्रिय' कहा जाता है जिसका शाब्दिक अर्थ है 'लोगों की'। लोगों ने गीत, नत्य और कथावाचन के जरिए स्वयं को अभिव्यक्त किया है और सांस्कतिक मूल्य संप्रेषित किए हैं। इन सबसे लोक–संस्कति का निर्माण होता है।

अपने सीमित भौतिक संसाधनों के कारण आम आदमी भव्य स्मारक नहीं बना सकते, पर वे छोटी–छोटी अनगिनत वस्तुएँ बना सकते हैं और उनका उपयोग कर सकते हैं, जो अत्यंत सुंदर होती हैं। इनमें से कुछ वस्तुएँ रोजमर्रा की गतिविधियों में इस्तेमाल की जाती हैं तो अन्य वस्तुएँ खास अवसरों के लिए सुरक्षित रहती हैं। दुर्भाग्य से उनमें प्रयुक्त अधिकांश सामग्री नाशवान होती है जैसे बेंत, कपड़े, लकड़ी, पत्ते या मिट्टी के बर्तन/इसलिए ये वस्तुएँ ज्यादा दिनों तक नहीं चलतीं। अतः हम प्राचीन काल से आम आदमी की संस्कृतियों के बारे में बहुत कम जानते हैं।



चित्र 29.3 कैलाशनाथ मन्दिर

29.3 शास्त्रीय संस्कति

भरतनाट्यम जैसे नत्य के रूप अक्सर शास्त्रीय कहे जाते हैं। इसका मतलब है कि यह कलात्मक अभिव्यक्ति का उत्कष्ट रूप है। इसी प्रकार कालिदास को शास्त्रीय संस्कत कवि का उदाहरण माना जाता है। चोल राजाओं द्वारा निर्मित मंदिर शास्त्रीय मंदिर–वास्तुकला के उदाहरण माने जाते हैं, इसी प्रकार ताजमहल (चित्र 29.4) मुगल वास्तुकला का उदाहरण है।



चित्र 29.4 ताजमहल

हमारा इन उपलब्धियों पर गर्व करना उचित है। लेकिन हमें यह भी याद रखना चाहिए कि जिस समय कालिदास लिख रहे थे (चौथी शताब्दी में,) उस समय उत्तर और मध्य भारत में ज्यादातर लोग प्राकत भाषा (जिससे अनेक आधुनिक भारतीय भाषाएँ विकसित हुई हैं) के विभिन्न रूप बोल रहे थे। जहाँ उन्होंने कालिदास के नाटकों के प्राकत अंशों को समझ लिया होगा, वहीं उनके संस्कत श्लोकों को समझ पाने में वे असमर्थ रहे होंगे।

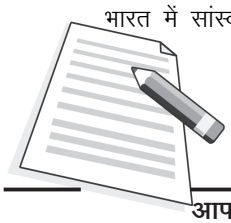

आपकी टिप्पणियाँ

इसी प्रकार आम आदमी के लिए उन उत्कष्ट स्मारकों में प्रवेश करना कति रहा होगा, जिनका अभी हमने उल्लेख किया है। उनमें प्रवेश जाति या धर्म के आधार पर प्रतिबंधित रहा होगा।

इस प्रकार शास्त्रीय संस्कृति की प्रवत्ति अत्यधिक विकसित किंतु विशिष्ट होने की होती है। अभी लगभग पिछली दो शताब्दियाँ से ही संस्कत कतियों का क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद होने लगा है और स्मारक आम जनता के लिए खोले जाने लगे हैं।

शताब्दियाँ से लोक और शास्त्रीय संस्कति का सह–अस्तित्व रहा है और दोनों अंतः क्रिया करती रही हैं। दोनों ने एक–दूसरे से विचार लिए और अपनाए हैं।

मानवविज्ञानी संस्कति को कैसे परिभाषित करते हैं

मानवविज्ञान का शाब्दिक अर्थ है, मानवों का अध्ययन। सांस्कतिक और सामाजिक मानवविज्ञानी वर्तमान समय के समाजों का अध्ययन करते हैं जिसमें उनके कर्मकांड, विश्वास, सामाजिक रीति–रिवाज, कार्य का प्रतिरूप आदि शामिल हैं। इसलिए जब मानवविज्ञानी संस्कति के बारे में लिखते हैं, तो वे इनमें से कुछ या सब पहलुओं को शामिल करते हैं।

पुरातत्वेत्ता और संस्कति

अपनी तरह खाने–पहनने वाले लोगों के साथ हम अक्सर कुछ समानता महसूस करते हैं, जबकि अपने से भिन्न तरीके से खाने–पहनने वाले लोगों को हम किसी अलग संस्कृति के प्राणी समझते हैं। संस्कति की यह परिभाषा पुरात्तवेताओं द्वारा दी जाने वाली परिभाषा से बहुत मिलती है। पुरातत्ववेत्ता घरों, औजारों, बर्तनों, प्रतिमाओं आदि का अध्ययन करता है और पुनर्रचना करने की कोशिश करता है कि अतीत में लोग कैसे रहते थे। चूँकि ये सब वस्तुएँ देखी और छुई जा सकती हैं और कमोबेश स्थाई होती हैं, अतः उन्हें हमारी भौतिक संस्कति का अंग माना जाता है। हमारी भौतिक संस्कति के कुछ पहलुओं की उत्पत्ति के बारे में आप अगले पाठ में और पढ़ेंगे।

हालाँकि कपड़े और भोजन भी हमारी भौतिक संस्कति के अंग हैं, पर वे तेजी से नष्ट हो जाते हैं। इसलिए हालाँकि पुरातत्ववेत्ता अक्सर प्रारंभिक कालों में इस्तेमाल किए गए भोजन और वस्त्रों के अवशेष प्राप्त कर लेते हैं, पर वे आम तौर पर बर्तन, औजार या हथियार जैसी चीजों की तुलना में कम होते हैं।

तो हम देख सकते हैं कि संस्कति कई तरीकों से परिभाषित की जा सकती है :

(क) सांस्कतिक अभिव्यक्ति के रूपों में (जैसे गीत, संगीत, नत्य, चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला आदि)

(ख) किसी सांस्कतिक रूप को प्रस्तुत या इस्तेमाल करने वाले सामाजिक समूह के अनुसार (जैसे लोकप्रिय/लोक, शास्त्रीय/अभिजात)

(ग) सामाजिक, धार्मिक और भौतिक जीवन के पहलुओं के अनुसार व्यापक परिभाषाएँ।

क्या आपने ध्यान दिया कि किस तरह ये परिभाषाएँ एक–दूसरे पर व्याप्त हो रही हैं? इस मकान कमी तस्वीर (चित्र 29.5) पर नजर डालें। इसके रूप के अनुसार हम इसे (मूर्तिकला या संगीत के बजाय) वास्तुकला के उदाहरण के तौर पर वर्गीकृत करेंगे। पर साथ ही यह लोक–संस्कति का भी उदाहरण है, क्योंकि यह उन लोगों की भौतिक



चित्र 29.5 एक मकान

संस्कति का अंग है जिन्होंने इसे बनाया और इसमें रहे। अन्य उदाहरण : अजंता के चित्र शास्त्रीय धार्मिक चित्र के रूप में वर्गीकृत किए जा सकते हैं। अगले पाठ में आप बढ़ेंगे कि सांस्कतिक रूप कैसे प्रस्तुत किए जाते हैं।

पाठगत प्रश्न 29.1

1. निम्नलिखित का मिलान करोः

(क) नत्य	संस्कत काव्य
(ख) ताजमहल	सांस्कतिक अभिव्यक्ति का रूप
(ग) कालिदास	मुगल वास्तुकला
(घ) मानवविज्ञान	भौतिक संस्कति
(च) पुरातत्ववेत्ता	सामाजिक रीति–रिवाज

2. सही या गलत का निशान लगाएँ :

(1) फिल्मी गीत कभी लोकधुनों पर आधारित नहीं होते।

(2) कथावाचन लोकधुनों का अंग है।

(3) कर्मकांड हमारी संस्कति का अंग नहीं हैं।

(4) मकान, कपड़े और भोजन हमारी भौतिक संस्कति के अंग हैं।

(5) लोक और शास्त्रीय संस्कृतियों ने एक–दूसरे को प्रभावित नहीं किया।

29.4 संस्कृति कैसे आकार लेती है

सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के हमारे कुछ सबसे भव्य रूप धर्म से जुड़े हैं। वास्तुकला में साँची (मध्य प्रदेश) के स्तूप, ऊपर वर्णित दक्षिण भारत के मंदिर और साथ ही दिलवाड़ा (राजस्थान) के भी, और दिल्ली की जामा मस्जिद (देखिए चित्र) धार्मिक प्रयोजनों से निर्मित सुंदर संरचनाएँ हैं।



चित्र 29.6 सांची स्तूप

धर्म युगों–युगों से हमारे कुछ सर्वोत्तम काव्यों और संगीत का भी प्रेरक रहा है। इनमें वैदिक ऋचाएँ, बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों की रचनाएँ और, शायद सर्वाधिक प्रसिद्ध, भक्तों और सूफी संतों की कतियाँ शामिल हैं।

तमिलनाडु में वैष्णव और शैव भक्ति–साहित्य की समद्ध और सतत परंपरा रही है, जिसमें आंडाल जैसी महिलाओं की रचनाएँ भी शामिल हैं। सुप्रसिद्ध प्राचीनतम कश्मीरी कवियों में से एक लाई देद थी, जो चौदहवीं शताब्दी की महिला संत थी।

आज मीरां बाई, गुरु नानक और कबीर जैसे मध्यकालीन संत–कवि अपने–अपने क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि पूरे भारत में सम्मान पाते हैं। उनके संत छोटी मानी जाने वाली जातियों के थे और आम आदमी की भाषा इस्तेमाल करते थे। उनकी रचनाएँ, जो हमारी लोक–संस्कृति का अंग हैं, शताब्दियों तक मौखिक रूप से संप्रेषित होती रहीं।

हमारे धार्मिक विश्वास भी हमारे दैनिक जीवन को प्रभावित करते हैं। कभी–कभी हमारे वैवाहिक अनुष्ठान, भोजन और पहनावा धार्मिक नियमों से संचालित होते हैं। लेकिन अक्सर हमारा खानपान, पहनावा या वैवाहिक रीति–रिवाज धर्म के बजाय क्षेत्रों के अनुसार भिन्न होते हैं। एक सरल उदाहरण लें। पंजाब में हिंदू, मुस्लिम, ईसाई और सिख महिलाएँ आम तौर पर सलवार–कमीज पहनती हैं, जबकि तमिलनाडु में हिंदू, मुस्लिम और ईसाई महिलाएँ आम तौर पर साड़ी पहनती हैं। इस तरह हमारे धार्मिक विश्वास हमारी सांस्कृतिक प्रथाओं को आकार अवश्य देते हैं, पर ऐसा करने वाले वे अकेले कारक नहीं हैं।



चित्र 29.7 दिलवाड़ा का मंदिर



चित्र 29.8 जामा मस्जिद

29.5 हमारी सामाजिक और आर्थिक स्थिति

हमारी अनेक सांस्कृतिक प्रथाएँ हमारी सामाजिक और आर्थिक स्थिति से प्रभावित होती हैं। उदाहरण के लिए, हमारी सामाजिक स्थिति हमारे पहनावे को प्रभावित कर सकती है। आपने देखा होगा कि विवाहित, अविवाहित और विधवा महिलाओं से अलग–अलग तरह के कपड़े पहनने की अपेक्षा की जाती है।

कभी–कभी हमारी सांस्कृतिक प्रथाएँ हमारी सामाजिक और आर्थिक दोनों स्थितियों से प्रभावित हो सकती हैं। इसमें संगीत संबंधी हमारी रुचि और प्राथमिकता जैसी चीजें आती हैं, जैसे हमें लोकगीत पसंद हैं या फिल्मी गीत, शास्त्रीय संगीत पसंद है या फिर पश्चिमी पॉप संगीत/हिंदी फिल्मों के गाने हम रेडियो वगैरह पर ही सुनकर तेजी से सीख सकते हैं, जबकि शास्त्रीय संगीत कहीं ज्यादा कठिन और महँगा है। इसमें ज्यादा समय भी लगता है और हममे से अनेक लोगों के लिए उतना समय निकालना कठिन हो सकता है।

हमारे द्वारा बनाई और इस्तेमाल की जाने वाली सांस्कृतिक वस्तुएँ भी अक्सर हमारे आर्थिक संसाधनों द्वारा सीमित होती हैं। हममें से कोई चाहकर भी ताजमहल नहीं बना सकता था। यह केवल एक बड़े और समद्ध साम्राज्य के शासक शाहजहाँ के लिए ही संभव था।

शाहजहाँ ने ताजमहल का निर्माण अपनी बेगम मुमताज महल की याद में 1632 में शुरू कराया था। इस स्मारक को बनने में लगभग बाईस वर्ष लगे, वह भी तब जबकि उसके निर्माण के प्रारंभिक चरणों में बीस हजार मजदूर रोजाना काम करते थे। उसके निर्माण की लागत चार करोड़ रुपए थी, जो उस समय की एक बड़ी भारी रकम थी।

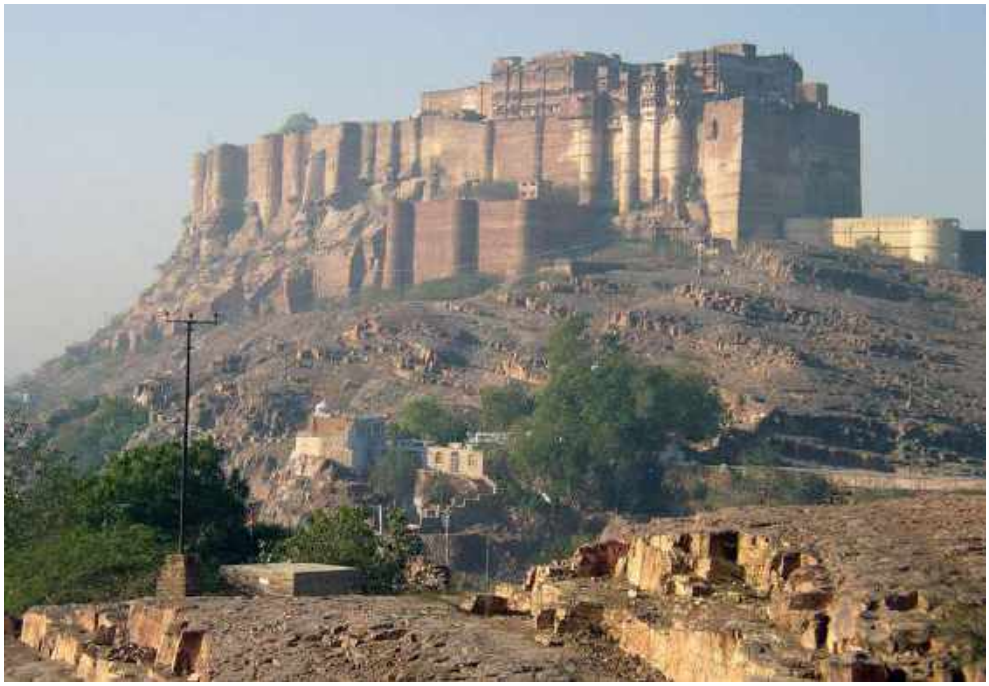

चित्र 29.9 जोधपुर का किला



चित्र 29.10 जयपुर का किला

असल में जितने भी भव्य किले, महल और धार्मिक स्मारक हमें दिखाई देते हैं (देखिए चित्र, जोधपुर/जयपुर), उनमें से ज्यादातर शासकों द्वारा बनवाए गए हैं। शाही निवास स्थानों या पूजा–स्थलों के रूप में काम आने के अलावा वे अपने बनाने वालों की सत्ता और महिला उजागर करने का प्रयोजन भी पूरा करते थे। बहरहाल, यद्यपि भौतिक संसाधनों का महत्व है, पर वे हमेशा निर्णायक नहीं होते। मीरां बाई ने अपने आध्यात्मिक लक्ष्य पूरे करने के लिए चितौड़ के महल की धन–संपदा और शानोशौकत त्यागकर बेघरबार और आजादी का जीवन अपना लिया था। आज हम उनके गीतों को याद करते हैं, उसके पति को नहीं।

पाठगत प्रश्न 29.2

1. रिक्त स्थानों भरें :
   1. _____ का स्तूप धार्मिक वास्तुकला का उदाहरण है।
   2. वैदिक ऋचाएँ _____ संगीत का एक रूप हैं।
   3. _____ तमिलनाडु की प्रसिद्ध महिला संत थी।
   4. _____ सुप्रसिद्ध कश्मीरी कवियों में से एक है।
   5. भक्तों और सूफी संतों ने _____ की भाषा में कविताएँ लिखीं।
   6. ये कविताएँ _____ रूप में संप्रेषित हुईं।

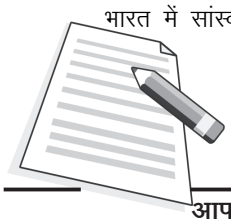

आपकी टिप्पणियाँ

7. हमारा पहनावा _____ के बजाय _____ के अनुसार भिन्न होता है।

8. किले और महल _____ द्वारा बनाए गए।

29.6 सांस्कृतिक अंतः क्रिया

हमारी संस्कृति अक्सर अंतः क्रिया की प्रक्रिया के जरिए आकार लेती है। ऐसा तब होता है जब विभिन्न सांस्कृतिक परंपराओं वाले लोग एक–दूसरे के संपर्क में आते हैं। यह संपर्क सौदागरों और व्यापारियों की खोजों और यात्राओं के जरिए घटित होता है या तब होता है जब आक्रमण–कर्ता किसी देश पर चढ़ाई करते हैं। यह तब भी घटित होता है जब यात्री या तीर्थ यात्री सुदूर देशों की यात्राएँ करते हैं, और जब कारीगर तथा मजदूर स्त्री–पुरुष रोजगार की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह आते–जाते हैं।

इन अंतः क्रियाओं में संलग्न लोग विभिन्न लोगों की प्रथाएँ सीखते हैं और अपने खुद के विचार नई जगहों पर ले जाते हैं। इस अंतः क्रिया में सहभागिता करने वाले समस्त लोगों की सांस्कृतिक प्रथाएँ बदलने लगती हैं।

भोजन का उदाहरण लें। क्या आप जानते हैं कि भारत में आलू और टमाटर जैसी सब्जियाँ लगभग पाँच सौ साल पहले पुर्तगाली व्यापारियों और सैनिकों द्वारा लाए गई थीं, जो वे मध्य अमेरिका से लेकर आए थे, और चाय चीन से आई है? अन्य खाद्य पदार्थ, जैसे चावल और दाल जो हम इस्तेमाल करते हैं, और सरसों व तिल जैसे तिलहन भारत में पाँच हजार सालों से उगाए जा रहे हैं।

अगर आप अपने आज के भोजन पर नजर डालें, तो पाएँगे कि वह परंपरागत रूप से उपलब्ध भोजन और बिलकुल हाल में जुड़ी चीजों का मिश्रण है। साथ ही, विश्व के अन्य भागों, जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन में रहने वाले लोगों में भारतीय भोजन के लिए स्वाद विकसित हो गया है, विशेषकर करी और कबाब के लिए। आगे आने वाले पाठों में आप सांस्कृतिक अंतः क्रिया और उसके प्रभावों के और उदाहरण देखेंगे।

पाठगत प्रश्न 29.3

सही या गलत का निशान लगाएँ :

1. सौदागरों के नए देशों की यात्रा करने पर सांस्कृतिक अंतः क्रिया घटित हो सकती है।
2. हमले सांस्कृतिक अंतः क्रिया की ओर अग्रसर नहीं करते।
3. चाय मध्य अमेरिका में उगाई जाती थी।
4. सरसों और तिल भारत में पुर्तगालियों द्वारा लाए गए थे।
5. करी ग्रेट ब्रिटेन में लोकप्रिय है।

29.7 वैश्वीकरण

उस प्रक्रिया का उल्लेख अक्सर वैश्वीकरण के रूप में किया जाता है, जिसके द्वारा संपूर्ण विश्व को एक एकल आर्थिक और सांस्कृतिक तंत्र के तहत लाया जा रहा है।

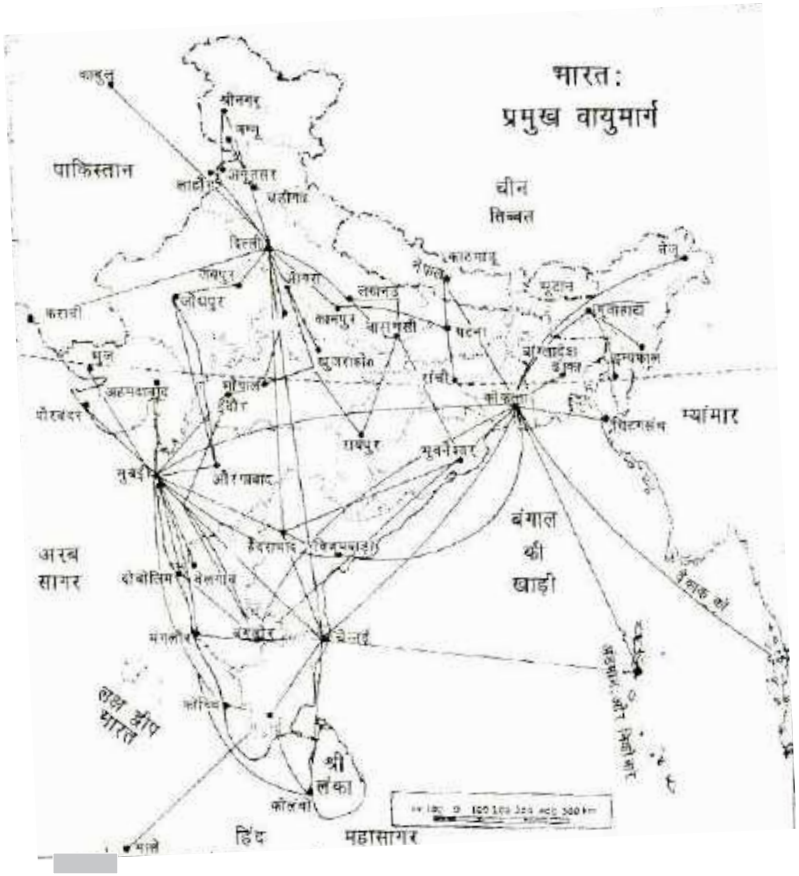

चित्र 29.11 भारत : वायुमार्ग व हवाई अड्डे

29.8 वैश्विक गाँव क्या है

आपने वैश्विक गाँव की अभिव्यक्ति सुनी होगी। पहली नजर में यह विरोधाभासी लग सकती है। कोई चीज एक ही साथ वैश्विक या विश्वव्यापी और गाँव दोनों कैसे हो सकती है?

वैश्विक गाँव का मुहावरा पहली बार मैक–लूहान नामक विद्वान द्वारा इस्तेमाल किया गया था। उसने महसूस किया कि टेलीविजन के बढ़ते प्रयोग के साथ संप्रेषण नाटकीय रूप से बदल जाएगा। इसका मतलब था कि लोग हजारों मील दूर लगभग तत्काल संदेश भेजने में कामयाब होंगे। इसके परिणामस्वरूप भौतिक दूरी अब संप्रेषण रोकने या धीमा करने वाली बाधा प्रतीत नहीं होगी।

पिछले कुछ दशकों में और खासकर पिछले दस साल में उपग्रह और अन्य सशक्त प्रौद्योगिकीय उपकरणों के इस्तेमाल से उभरे व्यापक टीवी नेटवर्क हमें विश्वास दिला

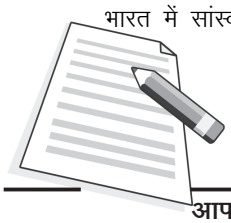

आपकी टिप्पणियाँ

सकते हैं कि मैक–लूहान की भविष्यवाणी सच हो गई है। भारत में बैठे–बैठे हम नेल्सन मंडेला को दक्षिण अफ्रीका का राष्ट्रपति बनते या शारजहा में क्रिकेट मैच होते देख सकते हैं। लेकिन फिर हम यह पूछ सकते हैं कि क्या लोगों के बीच केवल भौतिक दूरी के ही अंतर हैं?

गाँवों में एक साथ रहने वाले लोग ज्यादातर किसान होते हैं, पर धनी भू–स्वामियों, छोटे किसानों, काश्तकारों, कारीगरों और भूमिहीन कृषि–मजदूरों के बीच स्पष्ट अंतर होते हैं। दूसरे शब्दों में, भौतिक रूप से लोग एक–दूसरे के करीब होने के बावजूद सामाजिक या आर्थिक दूरी के कारण अलग हो सकते हैं। ज्यादा ताकतवर होने के कारण भू–स्वामी गाँव में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अंतः क्रिया पर हावी रहते हैं। अतः संप्रेषण सीधा और आमने–सामने होने के बावजूद इस तथ्य से प्रभावित हो सकता है कि उसमें भाग लेने वाले लोग हैसियत में बराबर नहीं हैं।

वैश्विक गाँव में समस्या और बढ़ जाती है। यहाँ संप्रेषण पर शहरों में रहने वाले लोग हावी रहते हैं। आपने गौर किया होगा कि औसतन शहरी लोग गाँववासियों की तुलना में ज्यादा धनी और प्रभावशाली होते हैं। एक कदम और आगे जाकर हम भारत जैसे विकासशील देशों के शहरों और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशों के शहरों के बीच अंतर देख सकते हैं। अमेरिकी शहरों में रहने वाले लोग आम तौर पर भारतीय शहरों में रहने वाले लोगों से ज्यादा धनी होते हैं और विकसित देशों के इन शहरों में रहने वाले लोग सामान्यतः टीवी कार्यक्रम निर्मित और प्रसारित करते हैं जिन्हें फिर हम प्राप्त करते हैं।

वैश्विक गाँव में होता यह है कि हालाँकि दूरियाँ मिट जाती हैं, लेकिन संप्रेषण एक–दिवसीय प्रक्रिया बन जाती है। हम जो कुछ टीवी–प्रोड्यूसरों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, देख सकते हैं, लेकिन कोई वास्तविक संवाद नहीं होता। इसलिए एक छोटे गाँव में आमने–सामने होने वाली बातचीत के विपरीत, जिसमें कि हम चर्चा कर सकते हैं, हस्तक्षेप कर सकते हैं, झगड़ सकते हैं और मना सकते हैं, हम सिर्फ टीवी से बहने वाले संदेश प्राप्त कर सकते हैं और अक्सर उनका अनुसरण करते हैं। जो हमें बताया जाता है, उस पर सवाल उठाना या उसे चुनौती देना बहुत मुश्किल बात है।

29.9 विज्ञापन और उपभोक्तावाद

उन कार्यक्रमों पर गौर कीजिए, जो हम रेडियो पर सुनते या टीवी पर देखते हैं—समाचार, फिल्में, टॉक–शो और विज्ञान, संगीत, इतिहास, खेलों पर कार्यक्रम—विविधतापूर्ण कार्यक्रमों की असीम श्रंखला। बहरहाल, हम देखने के लिए कोई भी कार्यक्रम क्यों न चुनें, हम सैकड़ों नहीं तो दर्जनों विज्ञापन भी देखते हैं। ऐसा क्यों होता है? इसलिए कि विज्ञापनदाता या प्रायोजक उन कार्यक्रमों के लिए भुगतान करते हैं जिन्हें हम देखते हैं। वे आम तौर पर लोकप्रिय कार्यक्रम चुनने का ध्यान रखते हैं ताकि वे एक व्यापक दर्शक–वर्ग तक पहुँचे सकें। तब वे लाखों लोगों तक अपने उत्पाद विज्ञापित कर सकते हैं।

विज्ञापनदाता यह उम्मीद रखते हैं कि अपने पसंदीदा टीवी शो देखते हुए हम उनके उत्पादों पर गौर करेंगे और उन्हें खरीदने के लिए लालायित होंगे। दूसरे शब्दों में, उन्हें हमें अपने ब्रांडों या उत्पादों को खरीदने के लिए प्रेरित करने का अवसर मिलता है, फिर चाहे वे साबुन हों या क्रीम, कारें, घरेलू उपकरणें,सूची अनंत है। अपनी तात्कालिक और

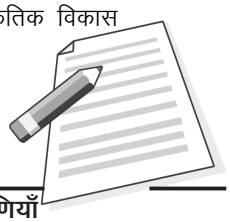

मूलभूत जरूरतों से अलग और अक्सर अपने साधनों से भी परे चीजें खरीदने की यह प्रवत्ति उपभोक्तावाद के रूप में जानी जाती है।

अतः एक ओर जहाँ दूरियाँ बेशक नाटकीय ढंग से मिटा दी गई हैं, वही नई प्रौद्योगिकी बहुराष्ट्रीय कंपनियों सहित बड़े निर्माताओं के हित में इस्तेमाल की जा रही है। वे उपभोक्ताओं की विशाल जनसंख्या पैदा करते हैं जिसे अपनी कमाई विभिन्न 'जरूरत की चीजें' खरीदने पर खर्च करने, बल्कि उधार लेकर भी उन्हें खरीदने के लिए प्रेरित किया जाता है।

अपने मौजूदा रूप में वैश्वीकरण सामान्यतः अन्य सबसे बढ़कर धनी उद्योगपतियों के हित पूरे करता है। वास्तव में लाभप्रद बनने के लिए उसे सांस्कृतिक विविधता के लिए सम्मान और विश्व के संसाधनों के कुछ हाथों में केंन्द्रित होने के बजाय उनके बँटवारे पर आधारित अंतः क्रिया के रूप में विकसित होना होगा।

हमें यह भी याद रखना होगा कि वैश्वीकरण के संभावित लाभों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। टीवी कार्यक्रमों के जरिए विदेशी वस्तुएँ खरीदने के लिए प्रेरित किए जाने के साथ–साथ हम विदेशी संस्कृतियों के बारे में सीखते भी हैं। हमें निर्णय करना होगा कि कौन सी चीज स्वीकार करने योग्य है और किसे अस्वीकार किया जा सकता है। वैश्वीकरण ऐसी चीज है जिसके साथ अब हम जी रहे हैं। हमें समझना चाहिए कि हम उसके साथ अपनी शर्तों पर भी जी सकते हैं।

पाठगत प्रश्न 29.4

रिक्त स्थानों को भरिएः

1. वैश्वीकरण _____ और सांस्कृतिक संप्रेषण के क्षेत्रों में जगह बनाता जा रहा है।
2. _____ का मुहावरा मैक–लूहान द्वारा गढ़ा गया था।
3. विज्ञापनदाता टीवी कार्यक्रमों को _____ करते हैं।
4. वैश्विक संप्रेषण पर _____ देश हावी हैं।

आपने क्या सीखा

संस्कृति मानव के अस्तित्व का अभिन्न अंग है। सांस्कृति अभिव्यक्ति के अनेक रूप हैं। आम आदमी द्वारा या उसके लिए प्रस्तुत रूप लोक–संस्कृति के तौर पर जाने जाते हैं, जबकि ज्यादा अनन्य रूप शास्त्रीय संस्कृति के रूप में जाने जाते हैं। संस्कृति में हमारे सामाजिक रीति–रिवाज और कपड़े व भोजन जैसी चीजें शामिल होती हैं जिनका हम दैनिक जीवन में इस्तेमाल करते हैं। हमारी सांस्कृतिक प्रथाएँ अक्सर हमारे धार्मिक विश्वासों और हमारी सामाजिक व आर्थिक स्थिति से प्रभावित होती हैं। वे लोगों के बीच

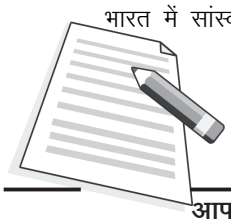

आपकी टिप्पणियाँ

होने वाली अंतः क्रिया से भी आकार ग्रहण करती हैं। आज की स्थिति में वैश्वीकरण अंतः क्रिया का एक विशिष्ट रूप प्रस्तुत करता है। यह एक मिश्रित वरदान है। यह अक्सर उपभोक्तावाद की ओर ले जाता है। इसे अपने उत्पादों का विज्ञापन करने वाले निर्माताओं द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है। फिर भी, वैश्वीकरण एक लाभदायक शक्ति है क्योंकि वह हमें दूर–दूर तक संप्रेषण करने में मदद करता है और हर प्रकार के विचारों और सूचना के आदान–प्रदान को सुविधाजनक बनाता है।

पाठांत प्रश्न

1. पाठ में वर्णित सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के समस्त रूपों की सूची बनाइए। उनमें से जो आपने स्वयं देखे और सुने हों, उन पर सही का निशान लगाइए और बताइए कि उनमें से जो आपको सबसे ज्यादा पसंद है (उदाहरण के लिए आपकी पसंदीदा पेंटिंग, गीत आदि), उसे आपने कहाँ देखा या सुना है।
2. हमारी सामाजिक और आर्थिक स्थिति जिन रूपों में हमारी सांस्कृतिक प्रथाओं को प्रभावित करती है, उनमें से कुछ रूपों का वर्णन कीजिए। क्या आप समझते हैं कि ये सभी महत्वपूर्ण हैं? अपने उत्तर के कारण लिखिए।
3. उस स्थान के बारे में सोचिए, जहाँ आप गए हों। क्या वह आपके (क) जिले में या (ख) राज्य में या (ग) देश में है? उस स्थान के लोगों की संस्कृति जिन रूपों में आपके समान या भिन्न है, उनका वर्णन कीजिए।
4. एक वैश्विक गांव में संप्रेषण के स्वरूप का वर्णन कीजिए। एक साधारण गांव के संप्रेषण की तुलना में यह किस प्रकार भिन्न है?
5. किसी दैनिक समाचार पत्र या पत्रिका से पांच विज्ञापन काटकर चिपकाइए। उनमें विज्ञापित उत्पादों का वर्णन कीजिए – वे कहां निर्मित किए जा रहे हैं, कहां उपलब्ध हैं और उनकी क्या कीमत है। विज्ञापनदाता किस तरह आपको उत्पाद खरीदने के लिए प्रेरित करता है, इसका उल्लेख कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

29.1

1 (क) सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का रूप

(ख) मुगल वास्तुकला

(ग) संस्कृत काव्य

(घ) सामाजिक रीति–रिवाज

(च) भौतिक संस्कृति

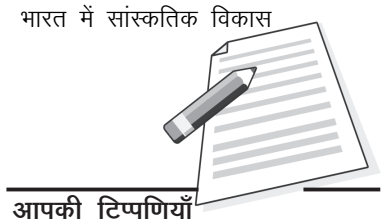

2.

1. गलत, 2. सही, 3. गलत, 4. सही, 5. गलत

29.2

1. सांची, 2. धार्मिक, 3. आंडाल, 4. लाई देद, 5. जनसाधारण,
6. मौखिक, 7. धर्म, क्षेत्र, 8. शासकों

29.3

1. सही, 2. गलत, 3. गलत, 4. गलत, 5. सही

29.4

1. अर्थव्यवस्था, 2. वैश्विक गाँव, 3. स्पोंसर, 4. विकसित

शब्दावली

मानव-विज्ञान : इसका शाब्दिक अर्थ है मानव का विज्ञान। इसमें भौतिक और सामाजिक दोनों पहलुओं पर जोर देते हुए मानवों का पूर्णता सें अध्ययन किया जाता है।

पुरातत्ववेत्ता : अतीत के समाज के भौतिक अवशेषों का विश्लेषण करने वाला और उन्हें समझने में हमारी मदद करने वाला विद्वान।

शास्त्रीय : किसी सही अनुपात रखने वाली चीज के बारे में बताने वाला शब्द। यह आम तौर पर किसी उत्कष्ट समझी जाने वाली चीज का उल्लेख करने के लिए भी इस्तेमाल होता है।

उपभोक्तावाद : वास्तविक जरूरतों की तुलना में ज्यादा वस्तुएँ और सेवाएँ चाहने और कभी–कभी सामर्थ्य न होने के बावजूद उन्हें पाने की इच्छा रखने की प्रवत्ति।

भौतिक संस्कृति : इसमें वे चीजें शामिल हैं, जिन्हें हम अपने दैनिक जीवन में इस्तेमाल करते हैं। वे विचारों के विपरीत मूर्त होती हैं यानी उन्हें हम देख और छू सकते हैं, जबकि विचार हमारी संस्कृति का अंग तो बनते हैं पर अमूर्त होते हैं।

लोकप्रिय : लोगों की कोई चीज, जिस वे आगे ले जाते हैं। इसका अर्थ वह चीज भी है जो लोगों के साधनों के भीतर होने के साथ–साथ उनके द्वारा अनुमोदित या पसंद भी की जाती है।

वैदिक ऋचाएँ : वैद संख्या में चार हैं – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद/इनमें मंत्र हैं, जिनमें से अनेक बलि और अन्य कर्मकांडों के दौरान पढ़े या गाए जाते थे।



30

प्रारंभिक राज्य

प्राचीन भारत के इतिहास में हमें सिंधु घाटी की शहरी सभ्यता से लेकर गुप्त वंश के क्लासिक युग तक समाज के अनेक रूप मिलते हैं। इस अवधि के दौरान हमें केंद्रीक त एवं विकेंद्रीक त सरकारों का स्वरूप मिलता है, जिनमें से कुछ अपनी राजनीतिक संरचना और शासन में अत्यधिक संगठित थीं, तो अन्य अपनी आंतरिक समस्याओं और शक्ति के विभाजन के कारण कमजोर थीं।



उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- प्राचीन भारत में राज्य–प्रणाली का विकास कैसे हुआ, इसकी व्याख्या कर सकेंगे;
- विभिन्न प्रकार के राज्यों में अंतर कर सकेंगे;
- यह समझ सकेंगे कि अत्यधिक शक्तिशाली राज्यों का विकास कैसे हुआ?

30.1 प ष्ठभूमि

प्रारंभ में मानव समाज का मानना था कि सभी मनुष्य समान हैं और सबको समान अधिकार होने चाहिए, क्योंकि मुख्यतया यह एक जनजातीय समाज था। राज्य के विचार का आविर्भाव संसाधनों पर नियंत्रण के लिए हुए युद्धों का परिणाम था और एक विशिष्ट अर्थव्यवस्था या समाज का विकास प थक स्तरों पर हुआ। वर्ग–आधारित समाज का विकास राज्य–प्रणाली में परिवर्तन लाने के लिए अनिवार्य था। जनसंख्या में व द्धि और ग हस्थ जीवन का विकास इसके अन्य कारक थे।

30.2 राज्यतंत्र की विचार धारा का विकास

पुरातत्वीय प्रमाणों ने हड़प्पा में एक सुद ढ़ केंद्रीक त सत्ता को जन्म दिया। वैदिक कालीन राजतंत्रों में कुल का मुखिया राजा बनता था, जिसने धीरे–धीरे ईश्वर के बराबर हैसियत से मिल गई। बौद्ध और जैन मतों ने ईश्वरत्व की विचारधारा को नकारा तथा उसके बजाय यह माना कि मूल प्राक तिक अवस्था में सभी आवश्यकताएं सहज ही पूरी हो जाती थीं, परन्तु शनैः शनैः पतन प्रारंभ हो गया एवं इच्छाओं का विस्तार करते हुए मनुष्य शैतान

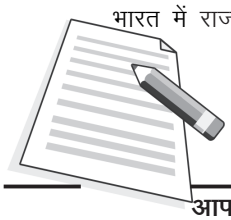

आपकी टिप्पणियाँ

बन गया, जिससे निजी सम्पत्ति और परिवार के भाव मन में आने लगे और अंततः मनुष्य अनैतिक व्यवहार करने लगा। अराजकता की इस स्थिति में लोग एकत्र हुए और अपने में से किसी एक को चुनने का निर्णय लिया। महासम्मत यानी 'महा चयन' जिसे वे कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए अधिकार प्रदान करेंगे। इस प्रकार धीरे–धीरे राज्य संबंधी संस्था अस्तित्व में आई। परवर्ती सिद्धांतों ने शासक और प्रजा के बीच एक करार का स्वरूप बनाए रखा। ब्राह्मण स्रोतों का मानना था कि देवता ही राजा को नियुक्त करते थे और राजा और प्रजा के बीच देनदारियों का अनुबंध संपन्न हुआ। साथ ही मत्स्यन्याय का सिद्धांत भी प्रचलित था, जो बताता है कि अव्यवस्था के वक्त जब कोई शासक नहीं होता तब शक्तिशाली कमजोर को खा जाता है वैसे ही जैसे कि सूखे के समय बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती हैं। इस प्रकार राजा की परम आवश्यकता समझी गई। राज्य का अस्तित्व मुख्यतया दो घटकों पर निर्भर था 'दंड (प्राधिकारी) और धर्म (उसकी सामाजिक व्यवस्था अर्थात्–जाति–ढांचे के संरक्षण के संदर्भ में)। *अर्थशास्त्र* में राज्य के सात अंगों (सप्तांग) का उल्लेख हैं–राजा, प्रशासन, क्षेत्र, राजधानी, राजकोष, प्रबल प्राधिकारी एवं सहयोगी। तथापि, धीरे–धीरे राज्य की राजनीतिक धारणा कमजोर पड़ने लगी, मुख्यतः राजनीतिक परंपरा को विनाश के कारण तथा राजतंत्रीय प्रणाली, के कारण जिसमें राजा के प्रति कि निष्ठा रहती थीं। मौर्य साम्राज्य के आविर्भाव से राजतंत्र के राजनीतिक विचार को मजबूती मिली। सामाजिक व्यवस्था में द्वितीय घटक धर्म था, जो राज्य की अस्पष्ट होती विचार–धारा की तुलना में पहले से कहीं अधिक निष्ठा की मांग करता था। राजा का कर्त्तव्य था धर्म की रक्षा करना तथा जब तक सामाजिक व्यवस्था अंक्षुण्ण रहेगी, अराजकता हावी नहीं होंगी। भारतीय सभ्यता की मूल पहलू रही सामाजिक व्यवस्था के प्रति निष्ठा कई शताब्दियों से मुख्य सामाजिक संस्थाओं की प्रभावशाली निरंतरता के लिए उत्तरदायी रही है। तथापि इसने राज्य के राजनीतिक विचार के प्रति निष्ठा को बदल भी दिया, जिसके कारण अनेक बार और अधिक साम्राज्य अस्तित्व में आ गए होते तथा अधिक राजनीतिक चेतना आ जाती। मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद साम्राज्य के पुनः विकसित होने में कई शताब्दियाँ लगीं।

30.3 सिंधु और वैदिक राजनीतिक या सरकारी संगठनः राज्य पूर्व से लेकर राज्य तक

सिंधु घाटी की शहरी सभ्यता से उस क्षेत्र में प्रारंभ हुई जटिल योजना तथा उस काल के मानक के अनुसार लोगों के रहन–सहन का पता चलता है। पुरातत्वीय प्रमाण के बढ़ते निकाय के बावजूद, सिंधु 'राज्य' की सामाजिक और राजनीतिक संरचनाएं अटकलबाजी की वस्तुएं बनी हुई हैं। संपूर्ण सिंधु क्षेत्र में वजन और माप की महत्त्वपूर्ण समरूपता तथा विशाल अन्न–भंडारों के रूप में ऐसे संभावित नागरिक कार्यों का विकास विशाल क्षेत्र पर राजनीतिक तथा प्रशासनिक नियंत्रण की सुद ढ़ अवस्था के संकेत देते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि आर्य भारत में लगभग 1500 ई. पू. प्रसिद्ध खैबर दर्रे से आए थे तथा इससे भारतीय इतिहास के वैदिक काल में एक और सभ्यता का विकास हुआ था। आर्य कई कबीलों में बंट गए थे, जो उत्तर–पश्चिमी भारत के विभिन्न स्थानों में बसे थे। कबीले के मुखिया का पद धीरे–धीरे वंशानुगत हो गया था, यद्यपि मुखिया अक्सर समिति अथवा संपूर्ण समुदाय की सलाह से कार्य करता था। कबीले का प्रमुख राजा की पदवी

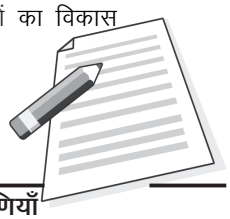

धारण करते तथा युद्ध–नेताओं की तुलना में अधिक महत्त्व रखते थे तथा उनका मुख्य कार्य अपने लोगों का संरक्षण करना था। राजा की शक्ति पुजारियों के उच्चतर प्राधिकार के बराबर निर्धारित की गई थी। वैदिक राजतंत्र आर्य लोगों के आस–पास की स्थितियों का स्वाभाविक परिणाम था। राजा युद्ध में आक्रमण और बचाव की कार्रवाई करने के लिए लोगों का नेत त्व करता था। उसे 'लोगों का संरक्षक' कहा जाता था। ऋग्वेद का एक अध्ययन दर्शाता है कि राजा आदिकालीन कबीले का ही नेत त्व करने वाला नहीं रह गया था बल्कि उसने लोगों में अपनी जगह प्राप्त कर ली थी। लोगों का संरक्षण करना राजा का पवित्र कार्य था। बदले में वह भेंट के रूप में अपनी प्रजा से वफादारी की अपेक्षा करता था और उसे प्राप्त करता था।

आर्य कबीलों के लोग मजबूत राजनीतिक आधार के अभाव में और अपनी जाति–प्रथा की अस्थिर प्रक ति के चलते अनार्य लोगों के विरुद्ध संगठित नहीं हो सके। साम्राज्य का यह कमजोर लक्षण कठोर जाति–प्रथा से आया जिसने लोगों को बांटा तथा उनमें अस्थिरता की भावनाएं पैदा कीं। इन्हीं कुछ कारणों से वैदिक साम्राज्य सिंधु घाटी की सभ्यता की तुलना में बहुत कम संगठित था।

शुरुआत के तौर पर, ही वैदिक काल में *'जन'* जैसी राजनैतिक इकाइयाँ मौजूद थीं, जिन्होंने बाद में जनपद–महाजनपद का रूप धारण कर लिया। जन वह क्षेत्र था जहाँ कबीले के लोग रहते थे। इन कबीलों का नाम उनके लोकप्रिय मुखिया के नाम पर पड़ा था। बाद में क्षेत्र का विस्तार होने से राजनीतिक संगठन के स्वरूप में परिवर्तन आया।

वैदिक काल के बाद सरकार की एक नई प्रणाली के रूप में सरकार की शासन कला का विकास हुआ। कबीलाई राज्य की पूर्ण एकता और श्रेष्ठ योद्धाओं की राजनैतिक शक्ति से राजत्व की नई शैली विकसित हुई।

इसका लक्ष्य अधिक पेशेवर सेनाओं का स जन करना तथा राजा पर और अधिक निर्भरता बढ़ाना था। इस शासनकला का उद्देश्य प्राक तिक संसाधन वाले क्षेत्रों को लूटना तथा कर देने वाले किसानों का शोषण करना था न कि कबीलाई क्षेत्रों का विस्तार करना था।

30.4 महाजनपद

मौर्य साम्राज्य की स्थापना से सदियों पहले की अवधि के दौरान कौशल और मगध राज्यों का विकास हुआ जो कि अपेक्षाक त तीव्र सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन का काल था। इस अवधि में हम कबीलाई राज्यों को छोटे–छोटे टुकड़ों में बिखरते, जाति–मॉडल का विकास होते तथा चावल उपजाने वाली पूर्वी गंगा घाटी की ओर कूच करते हुए देखते हैं। पुराने सामाजिक संबंधों के विघटन के समय में सामाजिक और राजनीतिक संबंधों में नई रीतियों की स्थापना के दौरान हम महापरिवर्तन पर आधारित विचारधारा विकसित होते देखते हैं। बौद्ध और जैनों का आविर्भाव इस परिवर्तन का परिणाम था। 1500 से 800 ई. पू. के बीच गंगा और यमुना के मैदानों में घने जंगलों की सफाई करते हुए और 'कबीलाई' बस्तियों की स्थापना करते हुए आर्यों ने पंजाब क्षेत्र की अपनी मूल बस्तियों से धीरे–धीरे पूर्व की ओर बढ़ना शुरू किया। 500 ई. पूं. के आसपास तक उत्तरी भारत के ज्यादातर भागों में लोग बस गए थे तथा वहां खेती होने

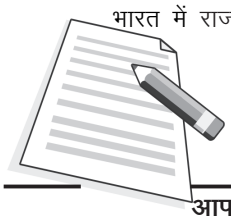

आपकी टिप्पणियाँ

लगी थी। बैल से चलने वाले हलों सहित लोहे के औजारों के उपयोग से बढ़ते ज्ञान की बदौलत स्वैच्छिक तथा बेगार श्रमिक उपलब्ध कराने वाली जनसंख्या व द्धि के चलते, नदी पर आधारित होने और अंतर्देशीय व्यापार के फलने–फूलने से गंगा के तट पर बसे कई नगर व्यापार, संस्क ति और विलासी जीवन के केन्द्र बन गए थे। बढ़ती जनसंख्या और अधिक उत्पादन ने स्वतंत्र राज्यों के विकास के लिए आधार तैयार किए जिनकी अनिश्चित सीमाएँ थीं तथा जिन्हें लेकर अक्सर लड़ाइयां होती रहती थीं। कबीले के मुखिया के नेत त्व वाली मूल प्रशासनिक प्रणाली अनेक प्रादेशिक गणराज्यों अथवा वंशानुगत राज्यों में रूपांतरित की गई। जिसने सुदूर पूर्व और दक्षिण में नर्मदा नदी से आगे बस्ती और क षि क्षेत्रों का विस्तार करने के लिए उपयुक्त राजस्व वसूली तथा श्रमिकों से जबरन काम करने के तरीके ईजाद किए। इन विकसित राज्यों में अधिकारियों द्वारा राजस्व एकत्रित किया गया, सेनाएं रखी गईं और नए शहरों व राजमार्गों का निर्माण किया गया। 600 ई. पू. तक आधुनिक अफगानिस्तान से बंगला देश तक उत्तर भारत के मैदानों में ऐसे सोलह शक्तिशाली राज्य बन गए थे। अपने सिंहासन के लिए राजा के अधिकार को चाहे वह कैसे भी मिला हो, बलिदानयुक्त अनुष्ठानों और पुरोहितों द्वारा, कानूनसम्मत बनाया गया। ग्रंथों में हमें सोलह महाजनपदों के विकास के संदर्भ मिलते हैं। उनमें से मगध कौसल काशी, अवन्ति, वैशाली, लिच्छवि आदि महत्त्वपूर्ण थे। महाजनपद दो प्रकार के थे, जिनका नीचे उल्लेख किया गया है:

(1) राजतंत्रीय महाजनपद

पहले प्रकार का राजतंत्र वह था जिसका राजा अथवा मुखिया उस क्षेत्र का प्रधान होता था। इस प्रकार के राजतंत्र में वैदिक अनुष्ठानों और ब्राह्मणों को महत्त्व दिया जाता था। इन क्षेत्रों में राजा वैदिक बलियाँ देते थे। उदाहरणार्थ, कोसल राजतंत्रीय महाजनपद की श्रेणी में आता था। कोसल का राजा प्रसेनजित अनेक बलियाँ देने के लिए प्रसिद्ध था।

(2) गणराज्य महाजनपद

महाजनपदों का दूसरा प्रकार गणराज्य अथवा कुलीनतंत्रीय था, जो राजतंत्रीय राज्यों से भिन्न था। इस श्रेणी में राजा का चयन 'राजा' कहे जाने वाले लोगों के समूह में से किया जाता था। असेम्बलियों का भी उल्लेख मिलता है, जिन्हें 'सभा' कहा जाता था। इनमें सदस्य विशेष मामलों पर चर्चा करते थे और बाद में उस पर मतदान होता था। ऐसी एक सभा में 7707 राजाओं की मौजूदगी का उल्लेख मिलता है जो राजन्यास की श्रेणी का प्रतिनिधित्व करते थे, जिनकी अपनी भूमि होती थी जिन पर दासों, कर्मकारों अथवा मजदूरों द्वारा खेती की जाती थी। राजा अपनी युद्ध करने की योग्यता से जाने जाते थे। इस श्रेणी में वैदिक बलियों को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता था और ब्राह्मणों को क्षेत्रियों के बाद दूसरे क्रम का सामाजिक दर्जा दिया गया था। इन महाजनपदों के अध्ययन का मुख्य स्रोत बौद्ध ग्रंथ हैं।

(3) राजतंत्रीय महाजनपदों और गणराज्य-महाजनपदों में संघर्ष

हिमालय के बीच निचले भाग के निकट व जि राज्य–संघ (अनेक राज्यों का संघ) शक्तिशाली कुलीन तंत्र था जिसने कुछ राजतंत्रीय राज्यों के प्रभुत्व को चुनौती दी थी मगध और लिच्छवि जैसे राजतंत्रीय राज्य अत्यधिक कठिनाई में थे क्योंकि वे अपने क्षेत्रों का विस्तार करने में असमर्थ थे। महाजनपदों में शक्ति और प्रभुत्व के लिए संघर्ष बढ़ा।

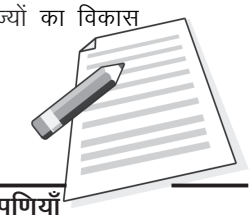

मगध का राजा अजातशत्रु महत्त्वाकांक्षी था। उसने पड़ोसी राज्यों पर विजय हासिल करने का निर्णय लिया। युद्ध और वैवाहिक संबंधों की बदौलत वह कोसल और काशी पर विजय पा सका।

पाठगत प्रश्न 30.1

निम्नलिखित वाक्यों को सही करके पुनः लिखेः

1. प्रारंभ में मानव–समाज मुख्यतया कबीलाई समाज नहीं था।

2. अशोक महान के आविर्भाव से राजतंत्र की राजनीतिक धारणा को मजबूती मिली।

3. आर्य कबीले मजबूत राजनीतिक आधार के अभाव में आर्येतर लोगों के विरूद्ध संगठित हो गए।

4. एक सभा में 7077 राजा थे, जो राज्यों की श्रेणी का प्रतिनिधित्व करते थे।

30.5 मगध और मौर्यों का उदय

इस प्रकार राजतंत्रीय राज्यों में मगध एक महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरा। तथापि उसे लिच्छवियों से अनेक वर्षों तक युद्ध करना पड़ा। अजातशत्रु ने व जि संघ के कबीलों में मतभेद पैदा करने के लिए अपने मंत्री को भेजा। इस प्रयास के कारण अंततोगत्वा अजातशत्रु को लिच्छवि के विरुद्ध सफलता मिली और वह मगध साम्राज्य का हिस्सा बन गया। उत्तरी व्यापार–मार्ग को नियंत्रित करने वाला यह क्षेत्र *उत्तरापथ* कहलाता था, जबकि *दक्षिणापथ* कहलाने वाला दक्षिणी मार्ग मगध के नियंत्रण में था। इन जीतों के कारण मगध आर्थिक संसाधनों, जैसे ऊपजाऊ नदी घाटियां और लौह अयस्क की खानों की व्यवस्था करने में समर्थ हो पाया। इससे विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन इसके लिए कच्चे माल की आवश्यक आपूर्ति होती थी। परिणामस्वरूप हमें इससे मगध में राज्य का निर्माण प्रारंभ होने के संकेत मिलते हैं। मौर्य वंश द्वारा शासित मौर्य साम्राज्य प्राचीन भारत का विशाल एवं अत्यधिक शक्तिशाली राजनीतिक एवं सैन्य साम्राज्य था। आधुनिक बिहार एवं बंगाल के सिंधु–गंगा मैदानों में मगध राज्य उत्पन्न हुआ था। इसकी राजधानी पाटलिपुत्र (आधुनिक पटना के निकट) थी। इस साम्राज्य की स्थापना चन्द्रगुप्त मौर्य ने 322 ई. पू. में की थी, जिसने नंद वंश को पराजित किया और मध्य तथा पश्चिमी भारत में अपनी शक्ति का विस्तार करना प्रारंभ किया। बिन्दुसार द्वारा मध्य तथा दक्षिणी प्रदेशों में इस साम्राज्य का विस्तार किया गया था, परन्तु इसने कलिंग के निकट अज्ञात कबीले के छोटे से हिस्से और जंगल से आच्छादित प्रदेशों को अलग रखा।

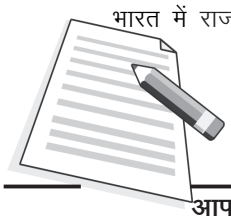

आपकी टिप्पणियाँ

कलिंग के महासंग्राम में विजय के बाद अशोक महान ने साम्राज्य के सैन्य विस्तार को समाप्त कर दिया, अतः मौर्य सम्राट के प्रभुत्व को स्वीकार करते हुए दक्षिण भारत में पांड्य और चेरों के राज्यों ने अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखा। अंग्रेजों के भारतीय उपमहाद्वीप में पहुंचने तक मौर्य साम्राज्य ही महान साम्राज्य था। अशोक के शासन–काल की समाप्ति के पन्द्रह वर्ष बाद इसका पतन प्रारंभ हो गया, और मगध में शुंग वंश की नींव पड़ने के साथ ही 185 ई. पू. में इसका अंत हो गया।

30.6 मौर्य कालीन राज्य

चन्द्रगुप्त के मंत्री कौटिल्य चाणक्य ने अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, विदेश नीति, प्रशासन, सेना, कला, युद्ध और धर्म पर महान शोध–प्रबंध 'अर्थशास्त्र' लिखा। पूर्व में इससे पहले ग्रंथ नहीं रचा गया था। पुरातत्त्वीय रूप से दक्षिण एशिया में मौर्य कालीन शासन की अवधि उत्तर क ष्ण म दभांड युग में आती है। अर्थशास्त्र और अशोक के शासनादेश मौर्य–काल के लिखित अभिलेखों के मुख्य स्रोत हैं। सारनाथ स्थित अशोक के सिंह–शीर्ष भारत का प्रतीक है।

मौर्य साम्राज्य में अनेकों प्रकार के राजनीतिक संगठन और पारिस्थितिकी क्षेत्र सम्मिलित थे, उनमें वनवासी, खानाबदोश, मुखिया तंत्र और कुलीन तंत्र जैसे गण–संघ अर्थात मुखियाओं के संघ सम्मिलित थे। उनमें प्रशासनिक ढांचों वाले छोटे–छोटे राज्य सम्मिलित थे, जो अनिवार्यतः मगध के प्रशासनिक ढाँचों जैसे नहीं थे। साम्राज्य के अलग–अलग भागों, जैसे महानगरों और सीमांत प्रदेशों का प्रशासन अलग–अलग ढंग से चलाया जाता था। इस प्रकार संपूर्ण मौर्य कालीन साम्राज्य में प्रशासन की कोई समान विधि मौजूद नहीं थी। एक ओर जहां केन्द्र और महानगरों में राज्य द्वारा सीधे तौर पर प्रशासन चलाया जाता था, वहीं सीमांत प्रदेशों को अधिक स्वायत्तता दी गई थी, क्योंकि इन क्षेत्रों से कर और उपहार एकत्र करने को अधिक महत्त्व दिया गया था। प्रशासनिक तंत्र में अन्य जाति के लोगों में से भर्ती किए गए उच्च अधिकारी सम्मिलित होते थे, जिन्हें अच्छा वेतन मिलता था। भर्ती करने की कोई केन्द्रीय विधि नहीं थी तथा ऐसा प्रतीत होता है कि स्थानीय लोगों को राज्य व महानगरों से दूर के क्षेत्रों में नियुक्त किया जाता था।

अशोक के शासन–काल के दौरान मौर्य साम्राज्य को औपचारिक रूप से पांच भागों में गठित किया गया था। मगध और कुछ निकटवर्ती महाजनपद सीधे प्रशासन के अधीन थे। ग्रीस के दूत, मैगेस्थनीज की रिपोर्टों और अर्थशास्त्र कें केन्द्रीय भाग में अपेक्षाक त केन्द्रीक त प्रशासन के प्रमाण मिलते हैं।

30.7 मौर्यकालीन नौकरशाही

यह साम्राज्य चार प्रांतों में बंटा था जिसकी शाही राजधानी पाटलिपुत्र में थी। अशोक के शासनादेशों के अनुसार चारों प्रांतीय राजधानियों के नाम हैं– तोसाली (पूर्व में), उज्जैन (पश्चिम में), सुवर्णगिरि (दक्षिण में) और तक्षशिला (उत्तर में)। प्रांतीय प्रशासन का प्रधान *कुमार* (शाही राजकुमार) होता था जो राजा के प्रतिनिधि के रूप में इन प्रांतों पर शासन करता था। कुमार को महामात्य और मंत्रिपरिषद् द्वारा सहायता प्रदान की जाती थी। इस संगठनात्मक ढांचे में शाही स्तर पर सम्राट और उसकी मंत्रिपरिषद होती थी। नौकरशाही

की आवश्यकता जीते हुए क्षेत्रों का समान रूप से पुनर्गठन करने के लिए नहीं अपितु राजस्व का प्रवाह सुनिश्चित करने के लिए पड़ती थी। साम्राज्य के उत्कर्ष काल में मुख्यतया राजस्व–प्रशासन से संबंधित अधिकारियों के समूह का उल्लेख किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी नियुक्ति केन्द्रीक त रूप से की जाती थी और उन्हें अपने क्षेत्राधिकार वाले क्षेत्रों का भ्रमण करना पड़ता था तथा प्रजा की खुशहाली के बारे में पता लगाना पड़ता था। सिंचाई अत्यधिक विकेन्द्रीक त थी और अक्सर लघुस्तरीय प्राणालियों में बँटी थी। जिसमें नदियों, पोखरों, कुओं, झरनों और क त्रिम तालाबों से जल लिया जाता था, जिन्हें कुंड कहा जाता था। स्थानीय संसाधनों से अधिक विस्त त जलाशयों और नदी तटों का निर्माण किया गया तथापि साम्राज्य नई निर्मित भूमियों के सिंचाई कार्यों में सहायता प्रदान करता था। प्रमाण से पता चलता है कि सिंचाई–कार्यों को स्थानीय रूप से नियंत्रित किया जाता था।

ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्यों की व्यापार से राजस्व प्राप्त करने में रुचि थी। लेकिन उन्होंने व्यापार को विनियमित करने में सक्रिय भूमिका नहीं निभाई थी। यह इस तथ्य से इंगित होता है कि वे कोई विशेष किस्म की धात्विक मुद्रा जारी करते दिखाई नहीं देते। उस दौरान पाए गए साधारण पंच–मार्क के सिक्के शिल्पी संघों अथता स्थानीय निकायों द्वारा जारी किए हो सकते हैं। राज्य ने विशिष्ट व्यापारियों और संघों पर नियंत्रण बनाए रखने, उनकी पहचान, उनके माल और उनके लाभ की जांच करने का प्रयास किया था। उत्पादन के स्थान पर वस्तुओं को बेचने की अनुमति नहीं थी, संभवत : इसलिए कि राजस्व एकत्र करने वाले अधिकारियों की बाजारों में बिक्री तक अधिक पहुंच हो जाती थी। राज्य कच्चे माल से उपयोगी वस्तुओं के उत्पादन में विभिन्न बिंदुओं पर अनेक कर एकत्रित करता था। विशेष अधिकारियों की नियुक्ति की गई थी ताकि मानदंडों को सुनिश्चित किया जा सके और धोखेबाजी रोकी जा सके तथा हथियार, गोला बारूद, धातु एवं हीरों जैसी उन मदों के व्यापार पर प्रतिबंध लगाया जा सके, जिन पर राज्य का एकाधिकार होता था। अतः उपयोगी वस्तु का उत्पादन एक स्वतंत्र उपक्रम था जो बाजार के अनुकूल बन गया था तथा व्यापार राज्य के राजस्व का मुख्य संसाधन था।

इतिहासकारों का अनुमान है कि साम्राज्य का संगठन 'अर्थशास्त्र' में कौटिल्य द्वारा उल्लिखित विस्त त नौकरशाही के अनुरूप था। अत्याधुनिक नागरिक सेवा नगर की सफाई से लेकर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तक की प्रत्येक चीज को संचालित करती थी। अपने काल की विशाल स्थाई सेना होने के कारण साम्राज्य का विस्तार एवं सुरक्षा संभव हो पाई। मैगस्थनीज के अनुसार सेना में 6,00,000 पैदल 30,000 घुड़सवार और 9,000 जंगी हाथी शामिल थे। विशाल गुप्तचर प्रणाली आंतरिक एवं बाह्य सुरक्षा प्रयोजनों हेतु सूचना एकत्र करती थी। आक्रामक युद्ध और विस्तारवाद को छोड़ने के बाद भी अशोक ने साम्राज्य की सुरक्षा और संपूर्ण पश्चिम और दक्षिण एशिया में स्थिरता एवं शांति कायम करने के लिए इस विशाल सेना को कायम रखा।

30.8 मौर्य कालीन के बाद के राज्य

मौर्यकाल के बाद की राजनीति को मध्य एशिया के विजेताओं अर्थात भारत–यूनानियों, शासकों, पार्थियनों और कुषाणों के आगमन से रेखांकित किया गया। इन्होंने स्थानीय राजाओं पर अपनी हुकूमत जमाई, जिससे स्वामी और सेवक के संबंधों के

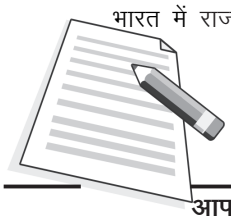

आपकी टिप्पणियाँ

आधार पर संगठन के विकास हेतु मार्ग प्रशस्त हुआ। मध्य एशियाई लोगों ने राजतंत्र के ईश्वरीय मूल वाली विचारधारा को मजबूत किया। कुषाण राजाओं ने स्वयं को भगवान की संतान बताया। मध्य एशियाइयों ने क्षत्रप प्रणाली और सैन्य आधिपत्य भी प्रारंभ किया।

पाठगत प्रश्न 30.2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो :

1. अर्थशास्त्र किसने लिखा?

2. 7 वीं एवं 8वीं शताब्दी में कुमार नाम किसका द्योतक था?

3. मैगस्थनीज कौन था?

4. मौर्यकालीन युग की चार प्रांतीय राजधानियों के नाम बताओ।

5. मैगस्थनीज के अनुसार मौय साम्राज्य की सेना की संख्या कितनी थी?

30.9 गुप्तकालीन राज्य का विस्तार

चौथी शताब्दी ईसवी में विशाल साम्राज्य गुप्त साम्राज्य था, जो भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग का प्रारंभ था। यह साम्राज्य दो शताब्दियों से अधिक समय तक रहा। इसमें भारतीय उपमहाद्वीप का बड़ा भाग सम्मिलित था, परन्तु इसका प्रशासन मौर्यों से अधिक विकेन्द्रीक त किंतु शुंगों से अधिक केन्द्रीक त था। राजाओं का देवत्व सिद्धांत गुप्तकाल में और अधिक लोकप्रिय हो गया था। विकल्प के तौर पर अपने पड़ोस के छोटे–राज्यों से युद्ध या वैवाहिक संबंधों की स्थापना के कारण प्रत्येक राजा के साथ साम्राज्य की सीमाओं में घट–बढ़ होती रहती थी। गुप्त राज्य में उपमहाद्वीप के उत्तरार्ध और मध्य भाग सम्मिलित थे, हालांकि उसका मौर्यकालीन राज्य से कम विस्तार था। गुप्त काल को साम्राज्य युग भी कहा गया है, परन्तु उसमें साम्राज्य–प्रणाली का प्रशासनिक केन्द्रीकरण मौर्य–काल की तुलना में कम दिखाई देता है। मौर्य काल के विपरीत गुप्त शासकों में राजाओं का दास के रूप में सेवा करने की अनुमति देने की प्रक ति थी और उन्होंने प्रत्येक राज्य को एकल प्रशासनिक इकाई में संगठित नहीं किया। यह बाद के मुगल साम्राज्य के लिए मॉडल था तथा ब्रिटिश शासन मुगल प्रतिमानों पर निर्मित हुआ था।

गुप्त शासक अपेक्षाक त अज्ञात परिवार के थे, जो शायद मगध अथवा पूर्वी उत्तर प्रदेश से आया था। त तीय राजा चन्द्रगुप्त–I ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। उसने लिच्छवि वंश की राजकुमारी से विवाह किया तथा यह समारोह एक सोने के सिक्कों की श ंखला में मनाया गया। कहा जाता है कि यदि गुप्त शासकों ने प्रयाग (आधुनिक इलाहाबाद, पूर्वी उत्तर प्रदेश) पर शासन किया होता तो, वे वैवाहिक संबंधों द्वारा मगध को अपने राज्य में मिला सकते थे। गुप्त काल 320 ई.पू. में प्रारंभ हुआ था। चन्द्रगुप्त ने अपने पुत्र समुद्रगुप्त को लगभग 330 ई. पू. में अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था जिसका उल्लेख इलाहाबाद के एक स्तंभ पर अंकित समुद्रगुप्त की एक लंबी प्रशस्ति में मिलता है। एक अज्ञात राजा कच के सिक्कों से पता चलता है कि सिंहासन के लिए अनेक दावेदार रहे होंगे। समुद्रगुप्त ने अलग–अलग दिशाओं में युद्ध किए और अनेक जीत हासिल की। जिनका इसने राज्य लौटाया, वे जो चाहते थे वह करने के इच्छुक थे। वे आर्यव्रत शासकों, विभिन्न वन–मुखियों, उत्तरी कुलीन तंत्रों और पूर्व के सीमांत राज्यों के अतिरिक्त नेपाल से संबंध रखते थे। समुद्रगुप्त के अधिकार क्षेत्र में लाए गए दूरस्थ क्षेत्रों को अधीनस्थ कहा जाता था। उनमें उत्तर–पश्चिम के 'राजाओं के राजा' शका, मुरूंड और सिंहल (श्रीलंका) सहित 'सभी द्वीपों' के निवासी सम्मिलित थे। ये सब इलाहबाद की प्रशस्ति में सूचीबद्ध किए गए हैं। गंगा घाटी और मध्य भारत सीधे प्रशासनिक नियंत्रण वाले क्षेत्र थे। समुद्रगुप्त का पुत्र चन्द्रगुप्त–II लगभग 380 ई. पू. में उसका उत्तराधिकारी बना, तथापि कुछ साक्ष्यों के अनुसार बीच में कोई रामगुप्त नामक राजा भी हुआ था। चन्द्रगुप्त–II का मुख्य युद्ध उज्जैन के शका शासकों के विरुद्ध था, जिसमें प्राप्त सफलता एक चांदी के सिक्कों की श ंखला में मनाई गई। उत्तरी दक्षिण से लगा गुप्त राज्य उस क्षेत्र के सातवाहनों के उत्तराधिकारी वाकाटक वंश से वैवाहिक संबंध स्थापित करके सुरक्षित था। यद्यपि चन्द्रगुप्त ने विक्रमादित्य (शौर्य पुत्र) की पदवी धारण की किंतु इसका शासनकाल सैन्य युद्धों के बजाय सांस्क तिक और बौद्धिक उपब्धि ियों से अधिक जुड़ा है। उसके समकालीन चीनी बौद्ध भिक्षु फाह्यान ने भारत की यात्रा की और अपनी छाप छोड़ी।

30.10 गुप्तकालीन राज्य का स्वरूप

चन्द्रगुप्त–I के शासनकाल से आगे के गुप्त शासकों ने महाराजाधिराज की पदवी धारण की और शिलालेखों से प्राप्त जानकारी के अनुसार *वे परमाराजधिराज,* राजराजाधिराज के रूप में जाने गए। इलाहाबाद के स्तंभ में समुद्रगुप्त को भूमि पर निवास करने वाला भगवान कहा गया है। ऐतिहासिक विवरणों में उसका कुबेर, इन्द्र आदि के रूप में उल्लेख किया गया है। इस काल में वंशानुगत उत्तराधिकार स्थापित किया गया, किंतु प्रत्यतः इस काल में सम्राट अपने उत्तराधिकारी चयन करता था। गुप्त शासकों द्वारा जीते गए अनेक राज्यों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने दिया गया था। उन्हें जीतकर अपने अधीन रखा गया पर अपने साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया गया। ये (सेवक) जमींदार जैसे गुप्त शासकों को उपहार देते थे, परन्तु कई बार उनमें से कुछ अपने अभिलेखों में गुप्त शासकों का अपने अधिराज (अभिलेखों का नियंत्रक) के रूप में उल्लेख नहीं करते थे। गुप्तों के शासन काल में भी सातवाहनों के शासन–काल में प्रचलित भूमि–अनुदानों और गांवों के अनुदान की भी परंपरा जारी रही। इन अनुदान के साथ प्रशासनिक अधिकार भी संलग्न रहते थे, जिससे प्रशासनिक प्राधिकार का विकेन्द्रीकरण होता था। उप–भूदान के

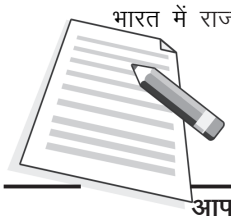

आपकी टिप्पणियाँ

(स्वामित्व) अधिकार भूदान लेने वाले (अनुदान प्राप्त करने वाले) को दिए गए। मध्य और पश्चिमी भारत में गांववालों को बेगार करनी पड़ती थी, जिसे विष्टि (बेगार श्रमिक) कहा जाता था और यह सभी वर्गों के लोगों पर लागू थी।

30.11 गुप्त कालीन प्रशासन

प्रशासन की द ष्टि से गुप्तकालीन राज्यों को प्रांतों में विभाजित किया गया था। वे देश अथवा भक्ति कहलाते थे और उन्हें छोटी–छोटी इकाईयों प्रदेश अथवा विषयों में बांटा गया था। इन प्रांतों पर कुमारमात्य राज्य करते थे जो उच्च राजसी (शाही) अधिकारी अथवा राज परिवार के सदस्य होते थे। नगरपालिका बोर्ड अधिष्ठान अधिकरण के गठन से प्रमाणित है, जिसमें शिल्पी संघ का अध्यक्ष (नगरश्रेष्ठिन), मुख्य व्यापारी (सार्थवाह) और शिल्पियों और मुंशियों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। इस अवधि में सामंत शब्द का उपयोग, जिसका मूल अर्थ है पड़ोसी, या तो मध्यस्थों के लिए होने लगा था, जिन्हें भूमि अनुदान दिया जाता था अथवा विजित हुए जमींदार शासकों के लिए होने लगा था। कुछ उच्च प्रशासनिक कार्यालयों को वंशानुगत बनाने की भी महत्त्वपूर्ण प्रव त्ति थी। जीते हुए क्षेत्रों पर कड़े नियंत्रण के अभाव में वे पुनः स्वतंत्र हो गए थे। बार–बार सैनिक कार्रवाई करने से राज्य के संसाधनों पर अधिक भार पड़ता था। गुप्त राजा स्थाई सेना रखते थे। सेना में घुड़सवार सेना और अश्व–धनुर्विद्या का उपयोग महत्त्वपूर्ण हो गया था। सीमा–क्षेत्रों की सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया था। भूमि–भर और उत्पाद कर एकत्र किए जाते थे। न्याय–प्रणाली विकसित की गई और कानून संबंधी अनेक पुस्तकें लिखी गईं। पहली बार दीवानी और फौजदारी कानूनों में अंतर किया गया।

30.12 गुप्तकाल के बाद भारतीय राजनीति

हर्षवर्धन और पाल, प्रतिहार, राष्ट्रकूट और चालुक्य वंशों के उत्तराधिकारियों की शासन–प्रणाली वंशानुगत पद के राजा के व्यक्तित्व पर केन्द्रित थी। जागीरदारी प्रणाली अत्यधिक प्रचलित थी और राजाओं, उनके जागीरदारों के बीच बार–बार होने वाले युद्धों ने राजनीतिक स्थिति को अस्थिर बना दिया था। इन राज्यों में राजाओं द्वारा प्रत्यक्ष प्रशासन वाले क्षेत्र और जागीर–मुखियाओं के शासन वाले क्षेत्र सम्मिलित थे। इन्हें अपने आंतरिक कार्यों में स्वयं निर्णय लेने की स्वायत्तता थी। अपने अधिपति के प्रति निष्ठा रखना, उसे निर्धारित कर चुकाना और सेनाओं के कोटे की आपूर्ति करना जागीरदारों का सामान्य दायित्व था। सरकार 'सामंतवादी' होने लगी थी।

पाठगत प्रश्न 30.3

रिक्त स्थान भरिए :

1. चौथी शताब्दी में _____ महान शासक था।
2. तीसरे राजा _____ ने _____ की पदवी धारण की।
3. समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी _____ था।

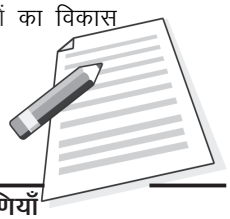

4. _____ का समकालीन फाह्यान एक _____ था, जिसने भारत की यात्रा की और अपनी छाप छोड़ी।

30.13 दक्षिण भारत में चोल राज्य

इस उपमहामद्वीप में चोल इस काल का कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण वंश था, यद्यपि उसकी गतिविधियाँ मुख्यतया प्रायद्वीप और दक्षिण पूर्व एशिया में चलती थीं। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विजयालय के शासन के दौरान चोल शक्ति का केन्द्र तंजावुर था, जहाँ से चोल शासक दसवीं शताब्दी में पल्लव राज्य के शेष भागों को जोड़ते हुए उत्तर की ओर फैले। दक्षिण में उनका पांड्यों से सामना हुआ। चोल–इतिहास का बहुत विस्तार से पुनर्लेखन किया जा सकता है, क्योंकि न सिर्फ शाही परिवार ने बल्कि मंदिर प्राधिकारियों, ग्राम परिषदों और व्यापार–संघों ने बड़ी संख्या में लंबे अभिलेख जारी किए। परांतक–I (907–953) ने राज्य की नींव डाली थी। उत्तर में उसने नेल्लोर आंध्रप्रदेश तक अपने शासन का विस्तार किया जहां इसकी प्रगति राष्ट्रकूट राजा क ष्ण–III के हाथों हुई पराजय से बाधित हुई। परांतक दक्षिण में अधिक सफल हुआ था जहां इसने पांड्य और गंगा दोनों को पराजित किया। उसने श्रीलंका पर भी आक्रमण किया था, जो निष्फल रहा। उसकी म त्यु के 40 वर्षों तक अनेक परस्पर व्याप्त शासनों ने चोल की स्थिति को मजबूत नहीं होने दिया, तत्पश्चात दो श्रेष्ठ शासक हुए, जिन्होंने शीघ्रता से चोल शक्ति को पुनः स्थापित किया और राज्य को इसके शीर्ष पर पहुंचाया। ये थे राजराजा–I और राजेन्द्र।

राजराजा (985–1014) ने पांड्यों और तल मंडलम (श्री लंका) के विरुद्ध आक्रमण कर सत्ता स्थापित करनी प्रारंभ की। उत्तरी श्रीलंका चोल राज्य का प्रांत बन गया। गंग और चालुक्यों के विरुद्ध युद्ध से चोल राज्य की उत्तरी सीमा तुंगभद्रा नदी तक फैल गई। पूर्वी तट पर वेंगी पर आधिपत्य जमाने के लिए चोलों का चालुक्यों से युद्ध हुआ। एक वैवाहिक संबंध ने चोल शासकों को प्रामाणिक स्थिति प्रदान की, परन्तु वेंगी विवाद का विषय बनी रही। एक नौसेना युद्ध ने मालदीव द्वीप समूह, मालाबार तट और उत्तरी श्रीलंका पर विजय दिलवाई जो दक्षिणपूर्व एशिया और अरब तथा पूर्वी अफ्रीका के साथ व्यापार पर चोलों को नियंत्रण स्थापित करने के लिए अनिवार्य थे। ये अरब व्यापारियों और दक्षिण पूर्व एशिया तथा चीन की जोर जाने वाले जहाजों के लिए पारगमन क्षेत्र और आह्वान पत्तन थे, जो यूरोप को उच्च लाभ पर कीमती मसाले बेचने के स्रोत थे।

राजराजा–I के पुत्र राजेन्द्र ने अपने पिता की सत्ता में 1012 से भागीदारी की। दो वर्ष बाद उसका उत्तराधिकारी बना और 1044 तक शासन किया। उसने उत्तर में रायपुर दोआब को जोड़ा और चालुक्य राज्य के केन्द्र में मान्यखेत में प्रवेश किया। श्रीलंका के महिन्द–V के विरुद्ध विद्रोह से राजेन्द्र को दक्षिणी श्रीलंका पर भी विजय हासिल करने का बहाना मिल गया। 1021–22 में उसने प्रसिद्ध उत्तरी युद्ध प्रारंभ किया। चोल सेना ने पूर्वीतर तथा बंगाल के साथ और तत्पश्चात गंगा नदी के उत्तर में युद्ध किया जो लगभग चौथी शताब्दी ईसवीं में कांचीपुरम में समुद्रगुप्त के युद्ध के बिल्कुल विपरीत था। तथापि 1025 में दक्षिण पूर्व एशिया में विजय राज्य के विरुद्ध उसके द्वारा किया गया सबसे अधिक भयानक युद्ध था। श्रीविजय और पड़ोसी क्षेत्रों पर आक्रमण का कारण उनके द्वारा भारतीय जहाजराजी में हस्तक्षेप करना और दक्षिण चीन से सीधे व्यापारिक

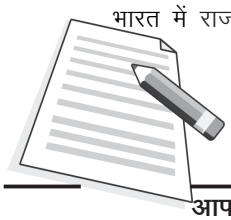

आपकी टिप्पणियाँ

संबंध स्थापित करने के लिए वाणिज्यिक हित थे। चोल शासकों की विजय ने इन स्थितियों को पुनः स्थापित किया तथा संपूर्ण ग्यारहवीं शताब्दी के दौरान चोल व्यापारी–प्रतिनिधिमंडलों ने चीन का दौरा किया।

30.14 चोल प्रशासन का विकास

साम्राज्य काल (850–1200) के दौरान चोल राज्य को इसकी अद्वितीयता एवं नवोन्मेषता के लिए जाना जाता था। चोल ऐसा पहला वंश था, जिसने समग्र दक्षिण भारत को एक सामान्य शासन के तहत लाने का प्रयास किया था और काफी हद तक अपने प्रयासों में सफल रहा। यद्यपि उस सरकार के नवाचारों की तुलना समकालीन सरकार के स्वरूप से नहीं की जा सकती तथापि चोल साम्राज्य का काल हमारे इतिहास में खुशहाली का युग था, जिसमें आदिम प्रतीत होने के बावजूद सरकार और लोगों द्वारा महान सफलताएं हासिल की गई थीं।

राजा सर्वोच्च सेनापति और हितैषी तानाशाह होता था। प्रशासन में उसकी भागीदारी में स्वयं को प्रस्तुत अभ्यावेदनों के संबंध में जिम्मेदार अधिकारियों को मौखिक आदेश देना सम्मिलित था। ऐसे आदेश अक्सर मंदिरों की दीवारों पर अत्यधिक विस्तार से अंकित किए थे। तिरुमंदिर ओलई नायगम नामक एक विशेष अधिकारी मौखिक आदेशों को तत्काल ताड़ के पत्तों की पांडुलिपियों पर दर्ज करते थे और उनकी यथातयता के लिए जिम्मेवार होते थे।

केन्द्रीय सरकार से संबंधित किसी मंत्रिपरिषद अथवा अन्य अधिकारियों को मौजूदगी के कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते तथापि अलग–अलग मंत्रियों के नाम अभिलेखों में पाए जाते हैं। एक सशक्त नौकरशाही प्रशासन के कार्यों और राजा के आदेशों को निष्पादित करने में राजा की सहायता करती थी। आधुनिक अर्थ में विधान–परिषद अथवा विधायी प्रणाली की कमी के कारण राजा के आदेशों की निष्पक्षता उसकी अच्छाई और धर्म निष्पक्षता, एवं–न्याय बोधक में उसके विश्वास पर निर्भर थी। प्राचीन समाज सरकार से सामान्य सुरक्षा से ज्यादा कोई उम्मीद नहीं रखती थी। यहाँ तक कि विवादास्पद मामले न्यायालय के अधिकारियों के पास अंतिम उपाय के रूप में भेजे जाते थे। चोल नौकरशाही अपनी समकालीन नौकरशाहियों अर्थात् इस दौरान इसी से मेल खाती अन्य प्रचलित नौकरशाहियों से अधिक भिन्न नहीं थी। तथापि, इसकी अत्यधिक संगठित प्रक ति इसकी विशेषता थी। केन्द्रीय सरकार और स्थानीय निर्भरता के बीच एक सजगतापूर्ण संतुलन बनाए रखा गया था, तथा स्थानीय सरकार में अहस्तक्षेप अति महत्त्वपूर्ण था। नौकरशाही का एक निश्चित पदानुक्रम और कार्यकाल था 'राजा की खुशी' पर निर्भर होता था। अधिकारी मारयान और आदिगरिगल जैसी विभिन्न उपाधियां धारण करते थे। एक ही संवर्ग में वरिष्ठता पेरून्दनम और सिरुतानम जैसी उपाधियों द्वारा इंगित की जाती थीं। सरकार की आय एवं व्यय के लिए जिम्मेवार राजस्व अधिकारी महत्त्वपूर्ण अधिकारियों में से एक था।

प्रत्येक राज्य स्वयं शासित इकाई था। देश के विभिन्न भागों में ऐसे अनेक गांवों की संख्या से कुर्रम नाडू अथवा कोट्टम बनता था। तनिपूर अपने–आप में कुर्रम से काफी बड़ा गांव होता था। अनेक कुर्रमों से बेलनाडु बनता था। अनेक वेलनाडुओं से मंडलम यानी प्रांत बनता था। चोल साम्राज्य के चरमोत्कर्ष काल में उसके श्रीलंका सहित आठ अथवा नौ प्रांत थे। चोल के समग्रकाल में इनके लगातार विभाजन होते रहते थे और नाम

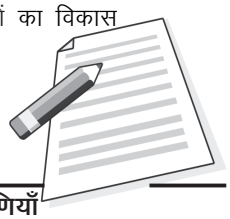

बदलते रहते थे उत्तामेरूर मंदिर में आठवीं शताब्दी के ई. पू. के अभिलेख में स्थानीय परिषद् के गठन, उम्मीदवारों की पात्रता एवं अनर्हताओं, चयन–पद्धति, उनके कार्यों और उनके अधिकारों की सीमा का उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि सामान्य गांव डर अथवा ऊर का प्रशासन ब्राह्मणों को उपहार में दिए जाने वाले गांव से अलग होता था।

नौकरशाही के अधिकारियों की गतिविधियों की लगातार लेखा परीक्षा एवं समीक्षा की जाती थी। उत्तम चोल के शासन के एक अभिलेख में एक ऐसी रिपोर्ट का उदाहरण मिलता है जो हमें विशेष अनुदान के अभिलेखन के विलंब में कुछ अधिकारियों की लापरवाही एवं असावधानी की जानकारी देती है। फलतः विवादी पक्षों में विवाद हो गया कि इस अनुदान से किसको लाभ मिलना चाहिए। इसमें सम्मिलित अधिकारियों को दंडित किया गया। नागरिक प्रशासन का मुखिया होने के नाते राजा स्वयं कभी–कभी देश का दौरा करता और स्थानीय प्रशासन से पूछताछ करता था। चोला राजा कुलोत्तुंग द्वारा 1089 के लगभग एक व्यापक पुनर्सर्वेक्षण करवाया गया था, जिसमें भूमियों की सीमा और उनके कर निर्धारण गांवों की सीमाओं और गांव के भीतर सामान्य अधिकारों तथा सामुदायिक चरागाह का अभिलेखन किया गया था। राजस्व अधिकारी कर संग्रह के लिए उत्तरदायी थे। चोल सरकार राज्य तंत्र को चलाने के लिए उचित एवं यथार्थ संग्रह की आवश्यकता के प्रति अत्यधिक सतर्क थी। राजस्व–अभिलेख लूटखसोट की नियम पुस्तिका नहीं थे, भूमि–अधिकारों के सावधानी पूर्वक रखे गए अभिलेख थे जो यथार्थ सर्वेक्षणों पर आधारित पूर्ण जांच के माध्यम से अद्यतन रखे जाते थे। राजस्व अधिकारियों के कार्यों में अन्य क्षेत्रों की जिम्मेवारियां भी सम्मिलित थीं। ये मंदिरों की आय एवं व्ययों का भी निर्धारण करते थे। उन्हें गांव की ग्राम सभाओं की ओर से भूमि खरीदते हुए भी देखा जाता था। ग्राम परिषदों जैसी स्थानीय सरकारी एजेंसियों द्वारा तैयार किए गए महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों को स्थापित एवं प्रमाणित भी करते थे। उन्हें न्यायधीशों के रूप में कार्य करते हुए भी दिखाया गया था। केन्द्रीय सरकार द्वारा कर संग हीत करने के अतिरिक्त, अनेक स्थानीय निकायों को चुंगी और अन्य संगहीत करने का विशेषाधिकार प्राप्त था।

चोल साम्राज्य में न्याय अधिकतर स्थानीय मामला होता था, जहां छोटे–मोटे विवादों को ग्राम स्तर पर ही निपटा लिया जाता था। छोटे अपराधों के लिए सजाएं जुर्माने के रूप होती थीं अथवा दोषी को कुछ धर्म के लिए दान जैसे निकाय अथवा संस्थान को देने के लिए निदेश दिए जाते थे। नरहत्या अथवा कत्ल जैसे अपराधों के लिए भी जुर्माना द्वारा सजा दी जाती थी। राज्य के प्रति अपराधों जैसे देशद्रोह के बारे में राजा स्वयं सुनवाई करता और निर्णय लेता था तथा ऐसे मामलों में विशिष्ट सजा फांसी अथवा संपत्ति जब्त करना होती थी। प्रथम श्रेणी के कत्ल के मामलों में भी म त्युदंड असामान्य था। अब तक उपलब्ध सभी अभिलेखों में एकमात्र म त्युदंड का एक उदाहरण मिला है। ग्रामीण सभाएं स्थानीय विवादों के संबंध में निर्णय लेने में अत्यधिक शक्तियों का उपयोगी करती थीं। न्यायात्तार कहलाने वाली लघु समितियाँ उन मामलों की सुनवाई करती थी, जो स्वैच्छिक ग्रामीण समितियों के क्षेत्राधिकार में नहीं आते थे। ज्यादातर मामलों में सजा मंदिरों को दान अथवा अन्य दानव त्तियों के रूप में होती थीं। दोषी व्यक्ति को अपना जुर्माना धम्मासन नामक स्थान पर जमा कराना होता था। न्यायिक प्रक्रियाओं अथवा न्यायलय के अभिलेखों के बारे में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। दीवानी और फौजदारी मामलों

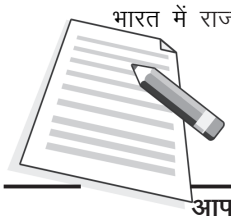

आपकी टिप्पणियाँ

में कोई अंतर नहीं था। कभी–कभी दीवानी विवादों को तब तक चलने दिया जाता था, जब तक समय उनका समाधान नहीं कर देता था। चोरी, मिलावट, धोखेबाजी जैसे अपराध संगीन अपराध माने जाते थे। अधिकतर मामलों में अपराधी को सजा के रूप में मंदिर में निरंतर दीया जलाना पड़ता था। कत्ल तक के लिए जुर्माना के रूप में सजा दी जाती थी। एक मामले में एक व्यक्ति सेना के एक कमांडर को एक व्यक्ति ने छुरा घोंप दिया था। राजेन्द्र चोल –II ने अपराधी को आदेश दिया कि वह पड़ोस के मंदिर में दीया जलाने के लिए 96 भेड़ें दान में दे।



पाठगत प्रश्न 30.4

सही उत्तर पर (सही) का निशान लगाएं

1. शताब्दी में विजयवाड़ा के शासन के दौरान चोल–शक्ति का केन्द्र तंजावूर था। (8 वीं, 9 वीं, 10 वीं)
2. राजाराजा–I के पुत्र राजेन्द्र ने _____ से अपने पिता की सरकार में भाग लिया। (1012, 1102, 2101)
3. उत्त्रामेरुर मंदिर में _____ शताब्दी ई. पू. के एक अभिलेख में स्थानीय परिषद् के गठन का उल्लेख है। (6वीं, 7वीं, 8वीं)



आपने क्या सीखा

प्रारंभ में मानव–समाज का मानना था कि सभी प्राणी समान है और सबको समान अधिकार देने चाहिए, क्योंकि मूलतः यह एक कबीलाई समाज था। वर्ग आधारित समाज का विकास राज–प्रणाली के परिवर्तन के लिए अनिवार्यता थी।

वैदिक राजतंत्रों में गोत्र–मुखिया राजा बने और धीरे–धीरे उन्हें ऐसा दर्जा प्रदान किया गया, जो भगवान के बराबर था। राज्य का अस्तित्व मुख्यतया दो घटकों पर निर्भर थाः दंड (प्राधिकारी) और धर्म। मौर्य साम्राज्य के आविर्भाव से राजतंत्र के राजनीतिक विचार को मजबूती मिली, मौर्यों के पतन के बाद किसी साम्राज्य के पुनः विकास में कई शताब्दियां लगीं।

कहा जाता है कि आर्यों ने भारत में लगभग 1500 ई. पू. प्रसिद्ध खैबर दर्रे से प्रवेश किया और भारतीय इतिहास में एक अन्य सभ्यता वैदिक काल का उदय हुआ। आर्य लोग कबीलों में बंट गए और प्रारंभ में उत्तर पश्चिमी भारत के विभिन्न प्रदेशों में बस गए। छोटे राजा की उपलिब्ध धारण करने वाले कबीले के मुखिया प्रारंभ में योद्धाओं से थोड़े बड़े होते थे और उनका मुख्य कार्य अपने कबीले की सुरक्षा करना था। राजा को दिए गए उपहारों में से बचे हुए उपहारों का पुनः उपयोग करने के लिए राजा आज्ञाकारिता की अपेक्षा करता था। महासंग्राम में कलिंग पर विजय प्राप्त करने के बाद अशोक महान ने

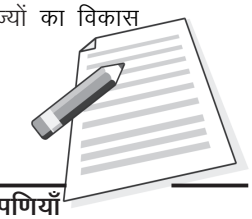

साम्राज्य का सैनिक विस्तार समाप्त कर दिया। मौर्य साम्राज्य शायद भारतीय उपमहाद्वीप पर शासन करने वाला महानतम साम्राज्य था। चन्द्रगुप्त के मंत्री कौटिल्य ने अर्थशास्त्र लिखा, जो अर्थशास्त्र, राजनीति, विदेश नीति, प्रशासन सेना, कला, युद्ध एवं धर्म का महान शोध–प्रबंध है, जैसा कभी नहीं लिखा गया था।

चौथी शताब्दी ईसवी में महान साम्राज्य गुप्त साम्राज्य था, जिसे भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग कहा जाता था। यह साम्राज्य दो शताब्दियों से अधिक तक चला।

इस पाठ में आपने मौर्य कालीन नौकरशाही प्रणाली, गुप्तवंश के प्रशासन तथा चोल कालीन प्रशासन के विकास के बारे में भी जाना। नौकरशाही अथवा प्रशासन के अधिकारियों की गतिविधियों की लगातार लेखा परीक्षा और संवीक्षा होती थी। राजस्व अधिकारी कर–संग्रह के लिए जिम्मेवार थे।

पाठांत प्रश्न

1. राजस्व से क्या अभिप्राय है? राजत्व की विचारधारा का विकास कैसे हुआ?
2. महाजनपदों और राजतंत्रीय महाजनपदों में अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. मगध और मौर्यों के उदय का वर्ण कीजिए।
4. गुप्त कालीन राज्य का विस्तार कैसे हुआ?
5. चोल–प्रशासन के विकास का मूल्यांकन कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

30.1

1. प्रारंभ में मानव–समाज मुख्यतया कबीलाई समाज था।
2. मौर्य वंश के आविर्भाव से राजतंत्र की राजनैतिक विचारधारा को बल मिला।
3. सुद ढ़ राजनैतिक आधार के अभाव में आर्य कबीले आर्येतर लोगों के विरुद्ध संगठित होने में विफल रहे।
4. एक सभा में 7707 से भी अधिक राजा थे जो राज्यों के वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे।

30.2

1. कौटिल्य
2. शाही राजकुमार

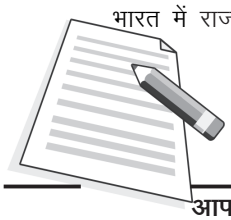

आपकी टिप्पणियाँ

3. एक ग्रीक दूत ने भारत का दौरा किया
4. (क) तोयसाली (ख) उज्जैन (ग) सुवर्णगिरि और (घ) तक्षशिला
5. 6,00,000, पैदल सेना; 30,000 घुड़ सवार और 9000 हाथी

30.3

1. गुप्त साम्राज्य
2. चन्द्रगुप्त–I, महाराजाधिराज
3. चन्द्रगुप्त–II
4. चीनी, बौद्ध

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें अनुच्छेद 30.2 और 30.3
2. देखें अनुच्छेद 30.4
3. देखें अनुच्छेद 30.5
4. देखें अनुच्छेद 30.9
5. देखें अनुच्छेद 30.14

30

सांस्क तिक उत्पादन

बर्तन और तवे, चित्र, कपड़े, साहित्य और भोजन अन्य चीजों के साथ मिलकर हमारी संस्कृति के अंग बनते हैं। इस पाठ में हम देखेंगे कि इनमें से कुछ का उत्पादन किस तरह होता है, कौन उनका उत्पादन करता है और कौन उनका इस्तेमाल करता है।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- चित्र बनाने में किन तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता था और वे किनके लिए बनाई जाती थीं,
- भारत में निर्मित विभिन्न प्रकार के वस्त्र और पोशाकें कैसी थीं,
- महाकाव्यों से लेकर लोकगीतों तक में मिलने वाले भारत के सम द्ध और विविधतापूर्ण साहित्य और
- खाद्य उत्पादन का स्वरूप और भारत के विभिन्न भागों में खाद्य पदार्थों की व्यापक विविधता।

30.1 चित्रकला, कलाकार और संरक्षक

इस भाग में हम अपने कलाकारों और उनकी कला के बारे में समझने की कोशिश करेंगे। उन्होंने क्या पेंट किया, किससे किया और किसके लिए किया?



चित्र 30.1 हड़प्पा के पेंट किए हुए मिट्टी के बर्तन

अतीत में कला और शिल्प दैनिक जीवन के हिस्से थे और जो उपयोगी था, वह सुंदर भी था। हमारे पूर्वजों द्वारा इस्तेमाल किए जानेवाले बर्तनों और तवों, उनके द्वारा पहने जाने वाले कपड़ों और जिन घरों में वे रहते थे, उन पर विभिन्न प्रकार की आक तियाँ बनी होती थीं।

सबसे उत्क ष्ट डिजाइन स्त्रियों द्वारा अपने घरों की देहरी पर चावल के आटे, हल्दी और कुमकुम के चूरे से बनाए जाते थे। मधुबनी चित्रकला बिहार की एक ऐसी ही ग्रामीण परंपरा से विकसित हुई, जिनमें जन्माष्टमी (भगवान क ष्ण का जन्म–दिवस) के त्यौहार पर और साथ ही अन्य उत्सवों पर भी दीवारों, कागज या किसी अन्य चीज पर कृष्ण के जीवन के द श्य उकेरे जाते थे। कला के इन द ष्टांतों का धार्मिक उद्देश्य होता था तथा इन्हें पवित्र माना जाता हैं।

हमें प्राप्त प्राचीनतम कला गुफा–कला हैं, जो शिकार करने और खाद्य–संग्राहक जनजातियों द्वारा बनाई गई है। इनमें से सबसे प्रसिद्ध कला उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर और बांदा, मध्य प्रदेश में भोपाल के निकट भीमबेटका और रायगढ़ के निकट सिंगनपुर, विंध्याचल पर्वतमाला की महादेव पहाड़ियों और कर्नाटक में बेल्लारी की गुफाओं और शैल–आश्रयों में पाई जाती हैं। ये चित्र प्रायः शिकार के द श्य हैं जो हमें उस क्षेत्र की वनस्पति और पशु–जीवन तथा प्रारंभिक स्त्री–पुरुषों द्वारा प्रयुक्त उपकरणों के बारे में जानकारी देते हैं। ये धनुष और बाण या कुल्हाड़ी जैसे सरल उपकरण थे। हमें नहीं पता कि असल में ये चित्र क्यों बनाए जाते थे, पर संभव है कि इनका कोई जादुई महत्व हो और ये शिकार में सफलता सुनिश्चित करने के लिए बनाए जाते रहे हों।

प्रारंभिक स्त्री–पुरुष ने जहां ये कला अपनी खुद की जरूरतों के लिए बनाई, वहीं बाद के समय में कला आम तौर पर शाही संरक्षण में बनाई जाती थी, जिसका मतलब है कि राजा उन्हें बनवाने के लिए भुगतान करते थे और कभी–कभी कलाकार का भरण–पोषण भी करते थे।

इनमें से प्राचीनतम कला बाघ (मध्यप्रदेश) की गुफाओं और एलोरा तथा अजंता (महाराष्ट्र) में पाई जाती हैं। अजंता में चित्र का विषय बुद्ध के जीवन से लिया गया है, विशेषकर जातक कथाओं में किए गए वर्णन से, जिनमें बुद्ध के अनेक जीवनों का उल्लेख है। बौद्ध धर्म के बारे में आप पाठ संख्या 31 में और पढ़ेंगे। उनमें कुछ दश्य दैनिक जीवन के भी हैं, जैसे कि अजंता गुफाओं में अपने श्रंगार में संलग्न राजकुमारी का प्रसिद्ध चित्र अजंता और एलोरा की कलाओं को गुप्त और वाकाटक शासकों ने संरक्षण प्रदान किया था और वे मोटे तौर पर चौथी से छठी शताब्दी के बीच की हैं। ये चित्र अपने अमिट रंगों की दष्टि से उल्लेखनीय हैं। ऐसा माना जाता है कि छठी से दसवीं शताब्दी के बीच शासन करने वाले पल्लव राजाओं के समय की महाबलिपुरम गुफा की कला अजंता और एलोरा की कला में इस्तेमाल की गई कलात्मक तकनीकों से प्रेरित थी।

महाबलिपुरम (चेन्नई के निकट स्थित) के चट्टानें काटकर बनाए गए मंदिर मामल्लन नरसिम्हा पल्लवन के समय के हैं, जिसने सातवीं शताब्दी में शासन किया। यहां गुफाओं के आंतरिक भागों में और चट्टानों की सतह पर महाभारत के द श्य चित्रित करने वाले खूबसूरत चित्र और मूर्तियां बनाए गए हैं।

चित्रकला का कलात्मक वस्तुओं के रूप में विकास शाही दरबारों और कस्बों व शहरों में हुआ। ऐसी परंपराओं में हम मुगलकालीन लघुचित्रों की गणना कर सकते हैं। मुगल चित्रकला (16वीं से 18वीं शताब्दी के बीच बनाई गई) अक्सर ईरानी (सफवी) और हिंदुस्तानी परंपराओं का खूबसूरत मिश्रण होती थी। मुगल और राजपूत कलाकारों ने अपनी अलग शैलियों के बावजूद एक–दूसरे को प्रभावित किया। जिल्दसाजी और पांडुलिपि–चित्रण दो संबद्ध कलाएं थीं, जो इसी समय विकसित हुईं। अत्यधिक चित्रित पादशाहनामा पांडुलिपि–चित्रण की कला में पारंगत कुशल फारसी कारीगरों की कारीगरी का अच्छा उदाहरण है। अन्य प्रसिद्ध सचित्र पांडुलिपियों में अकबरनामा शामिल है। ये दोनों अपनी उपलब्धियों का जश्न राजाओं के जीवन चरित्र हैं।

अन्य उदाहरण सचित्र जैन पांडुलिपियां हैं। ये पांडुलिपियां छठी शताब्दी से प्रकट होनी शुरू हुईं। जैनियों ने अपने प्राचीन ज्ञान को लिखकर सुरक्षित रखने का निश्चय किया। कुछ मामलों में पांडुलिपि तैयार करने के लिए सौदागरों ने कलाकारों को भुगतान किया। ये पांडुलिपियां लघुचित्रों द्वारा खूबसूरती से चित्रित की गई हैं। ऐसा माना जाता है कि प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव खुद भी एक कुशल चित्रकार थे। प्रारंभिक सचित्र जैन पांडुलिपियों में अष्टसहस्रिका प्रज्ञा पारमिता शामिल है। जैन धर्म और दर्शन पर सबसे प्रसिद्ध लघुचित्र चित्रकला त्रिलोक्य दीपिका है।

प्रारंभिक चित्रकला फुरसन में बनाई जानेवाली कला–कृतियां थीं, जबकि कुछ आधुनिक कला–कृतियां तात्कालिक जरूरतों की पूर्ति के लिए तेजी से बनाई जाती हैं। उदाहरण के लिए, होर्डिंग्स, पोस्टर और विज्ञापन–फिल्में जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिए बनाई जाती हैं और हर हफ्ते बदल जाती हैं। प्रारंभिक चित्रकला के विपरीत इन होर्डिंग्स का जीवन छोटा होता है, क्योंकि वे बार–बार बदल दिए जाते हैं।

पाठगत प्रश्न 30.1

1. सही या गलत का निशान लगाएं

   क. मधुबनी चित्रकला कर्मकांडों और धार्मिक परंपराओं के रूप में शुरू हुईं।

   ख. गुफा–चित्रकला को शाही संरक्षण मिला।

   ग. अकबरनामा और पादशाहनामा राजाओं के जीवन–चरित्र?

2. कुछ स्थानों के नाम लिखें जहां प्रारंभिक गुफा–चित्रकला पाई जाती हैं।

30.2 भारतीय वस्त्र और पोशाकें

भौगोलिक और जलवायु संबंधी कारकों ने भारतीय लोगों के पहनावे को बहुत प्रभावित किया है। उत्तर भारत में जहां ऊनी और सूती दोनों तरह के कपड़े पहनते हैं, वहीं गरम जलवायु वाले दक्षिण भारत में लोग केवल सूती पकड़े पहनते हैं। गरम क्षेत्रों में पुरुषों के पहनावे में एक ऊपरी कपड़ा और लगभग डेढ़ गज का निचला कपड़ा शामिल है। उत्तर

भारत में पुरुष सिली हुई कमीज और पतलून भी पहनते हैं, जिन्हें कुरता–पाजामा कहते हैं। स्त्रियां या तो छह गज का बिना सिला कपड़ा पहनती हैं, जिसे साड़ी कहते हैं या फिर पुरुषों जैसे सिले हुए कपड़े, जो कुरता और सलवार कहलाते हैं। साड़ी का पहनावा विभिन्न क्षेत्रों की सांस्क तिक परंपराओं पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र और तमिलनाडु की स्त्रियां नौ गज की साड़ी पहनती हैं, जिसमें टांगों के बीच एक विभाजक होता है, जबकि केरल की स्त्रियां सिर्फ टखनों तक आने वाली चार या पांच गज की साड़ी पहनती हैं।

ऐसा माना जाता है कि प्रारंभिक भारत में पहनावा बिना सिले कपड़ों का होता था। कहना कठिन है कि भारतीयों ने सिले हुए कपड़े कब पहनने शुरू किए, पर प्रारंभिक ईसा युग की चित्रकला और मूर्तियों में कुषाण पहरेदार और सैनिक पतलून और जैकेट पहने दिखाए गए हैं। अमरावती (आंध्र प्रदेश) अथवा ब हदीश्वरम (तमिलनाडु) जैसी प्राचीन मूर्तियों में केवल सेवक वर्ग और नर्तकियां ही सिले हुए कपड़ों में चित्रित की गई हैं, राजा या देवता नहीं।

राष्ट्रीय संग्रहालय में मथुरा संग्रहालय से लाई गई कनिष्क की बिना सिर की मूर्ति कोट पहने है।

भारत में कपास का उत्पादन प्रागैतिहासिक युगों से हो रहा है। हड़प्पा सभ्यता के सबसे बड़े शहरों में से एक मोहनजोदड़ो में कपास के प्रयोग के पक्के प्रमाण मिलते हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओं को खुदाई में तकले प्राप्त हुए हैं। कपड़े बुननेवाले करघे के बारे में प्राचीनतम संदर्भ अथर्ववेद में मिलता है। कताई महिलाओं, खासकर विधवा और अविवाहिता स्त्रियों का काम था।

भारतीय वस्त्रों में संस्कृति झलकती है। उनकी हर चीज महत्वपूर्ण है – चुने गए रंग, आक ति और अवसर, जिन पर वे पहने जाते हैं। लाल उर्वरता का सूचक है और आम तौर पर वधू द्वारा अपनी शादी के अवसर पर पहना जाता है। गेरुआ और सफेद शुद्धता और त्याग के सूचक हैं और आम तौर पर आध्यात्मिक व्यक्तियों और विधवाओं द्वारा पहने जाते हैं। काला अशुभ माना जाता है, हालांकि दक्षिण भारत में गर्भवती स्त्रियां काले कपड़े पहनती हैं। संभवतः बुरी नजर से बचने के लिए वे ऐसा करती हैं। रंगाई परंपरागत रूप से नील और मजीठे जैसे वनस्पति–रंगों से की जाती थी, हालांकि अब ज्यादातर रंगरेजों ने सस्ते रासायनिक रंगों से रंगाई करनी शुरू कर दी है।

वस्त्रों पर आक तियाँ ज्यामितीय होती थीं। विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त वस्त्रों पर विभिन्न प्रकार के पेड़–पौधों और जानवरों के चित्र हमें यह जानकारी देते हैं कि वे लोग किन चीजों से परिचित थे और किन चीजों को महत्वपूर्ण समझते थे। कमल या आम की आक ति भारत के ज्यादातर भागों में लोकप्रिय थी। भारत वस्त्रों की एक सम द्ध विविधता उत्पादित करता है। वाराणसी का जरीदार रेशम जिसे जामदानी और जामेवर कहा जाता है, कांचीपुरम की सोने की किनारियों वाला रेशम और असम, वारंगल और कर्नाटक का टसर रेशम की सुप्रसिद्ध किस्में हैं। सूती वस्त्र साधारण क्षैतिज करघों पर

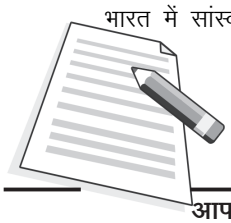

आपकी टिप्पणियाँ

बुने जा सकते हैं, जबकि जरीमदार रेशम के लिए अनेक पैडलों वाले जटिल करघों की जरूरत पड़ती है। रेशमी कपड़े सूती कपड़ों से ज्यादा महंगे पड़ते हैं और कम ही लोग उन्हें खरीद सकते हैं।

विभिन्न प्रकार के वस्त्रों के लिए विभिन्न उत्पादन–तकनीकों की जरूरत पड़ती है। 'टाइ एंड डाइ' नामक वस्त्र, जिन्हें विभिन्न सांस्कृतिक परंपराओं में बंधिनी (राजस्थान और गुजरात), इक़त (उड़ीसा) या चुंगड़ी (तमिलनाडु) कहा जाता है, ऐसी प्रक्रिया से बनाया जाता है, जिसमें कपड़ा और कभी–कभी सूत बांधा और रंगा जाता है।

कलमकारी वस्त्र आंध्र की एक जीवित परंपरा है। 'कलमकारी' शब्द का अर्थ है कलम से कारी यानी कार्य करना। इसके चित्रकारों को (चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दियों तक) दक्कनी सल्तनतों और अमीर वर्गों द्वारा संरक्षण प्रदान किया जाता था। उसमें चित्रित विषय मुस्लिम और हिंदू विषयों का मिश्रण होते थे। कितनी दिलचस्प बात है कि आज बेची जाने वाली 'कलमकारी' मशीन से बनाई और ब्लॉक से प्रिंट की गई होती है! असल में आज उत्पादित किया जाने वाला ज्यादातर कपड़ा बिजली के करघों पर बनाया जाता है।

पाठगत प्रश्न 30.1

1. बंधिनी तकनीक से आप क्या समझते हैं और बंधिनियां कहां बनाई जाती हैं?

2. 'कलमकारी' से क्या अभिप्राय है?, व्याख्या कीजिए।

3. सहीं या गलत का निशान लगाएं–
   (क) सूती कपड़े गरमी के मौसम में पहने जाते हैं।
   (ख) रेशमी कपड़े सूती कपड़ों से सस्ते होते हैं।
   (ग) बांधकर रंगे जानेवाले कपड़े जामदानी कहलाते हैं।
   (घ) नील और मजीठा वनस्पति रंग हैं।

30.3 साहित्य

अब हम अपने सम द्ध और विविधतापूर्ण साहित्य पर नजर डालेंगे, जो महाकाव्यों से लेकर लोकगीतों और शास्त्रीय से लेकर लोकप्रिय तक सभी रूपों में मिलता है।

भारत वह देश है, जहां अनेक भाषाएं बोली जाती हैं। यहां 325 उपभाषाएं या बोलियां बोली जाती हैं। उदाहरण के लिए, हिंदी उत्तर प्रदेश की मुख्य भाषा है और वहां के लोग 85 बोलियां बोलते हैं, जो हिंदी के क्षेत्रीय रूप हैं।

विषय की द ष्टि से हमारा साहित्य धार्मिक भी है और गैर–धार्मिक भी, जिसमें लोगों या महल के जीवन को लेखन का विषय बनाया गया है। संस्कृत में लिखे गए वेद हमारे धार्मिक साहित्य के अंग हैं, जबकि शूद्रक की म च्छाकटिका जिसका शाब्दिक अर्थ है मिट्टी का खिलौना, जैसी कृतियां सांसारिक विषयों पर लिखी गई हैं।

क्षेत्रीय रूपों की एक व्यापक श्ंखला भी पाई जाती है, विशेषकर बड़े महाकाव्यों के पुनर्कथन में। सभी जानते हैं कि जहां वाल्मीकि ने संस्कृत में 'आदिकाव्य' के नाम से प्रसिद्ध रामायण लिखी, वहीं तुलसीदास ने उसे हिंदी में लिखा जो 'रामचरितमानस' के नाम से विख्यात हैं। चोलो के दरबारी कवि कंबन ने तमिल में रामायण लिखी, जबकि तेलुगु में रामायण का लोकप्रिय रूप एक किसान महिला मोल्ला ने लिखा।

यह एक दिलचस्प बात है कि रचना लिखने की शैली भी लेखक की सामाजिक स्थिति से प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए, जहां कंबन कुलीन शासक वर्ग की भाषा और बिंग इस्तेमाल करते हैं, वहीं मोल्ला किसान महिला की तरह लिखती हैं और सूर्यास्त का वर्णन करते हुए वह कहती हैं कि सूरज इस तरह आसमान से नीचे चला गया जैसे कोई मजदूर दिन भर मेहनत करने के बाद लौट जाता है।

अब हम संक्षेप में महाभारत के कुछ क्षेत्रीय और लोक–रूपों को देखेंगे, जिसे संस्कृत में संत वेद व्यास द्वारा लिखा माना जाता है। महाभारत के एक तेलुगु रूप में कहा गया है कि जब युधिष्ठिर के नेत त्व में पांडव दुर्योधन के साथ पांसा खेलते हुए अपनी संपत्ति और स्वतंत्रता हार गए, तो द्रौपदी ने पांसे के खेल में भाग लेने के अपने अधिकार का इस्तेमाल किया। अपने विरोधी के प्रति तिरस्कार दर्शाते हुए उसने पांसे को लात मारकर फेंक दिया और अपने पतियों द्वारा हारी हुई चीजें जीतनी शुरू करदीं। दक्षिण भारत के अनेक भागों में द्रौपदी देवी के रूप में पूजी जाती हैं।

महाभारत के एक तमिल रूप में एक पांड्य रानी अलीरानी का उल्लेख मिलता है, जो पुरुषों से घणा करती थी और केवल स्त्रियों की सहायता से राज करती थी। कहा जाता है कि उसने अर्जुन को युद्ध में हरा दिया और बाद में उससे शादी कर ली। हिमालय क्षेत्र की महाभारत–कथाओं में भीम केंद्रीय पात्र है। हिमाचल प्रदेश के मंडी क्षेत्र में भीम और उसकी कबीलाई पत्नी हिडिंगा मुख्य देवता हैं। द्रौपदी द्वारा पांच भाइयों के साथ शादी करने की महाभारत की परंपरा के अनुसार बहुपति–प्रथा अभी भी मौजूद है। महाभारत के छत्तीसगढ़ी रूप पंडवानी में भी भीम केंद्रीय पात्र है। उत्तर–पूर्व के अनेक कबीली समुदाय सीधे भीम और हिडिंबा के वंशज होने का दावा करते हैं। उदाहरण के लिए, दीमापुर के दारंग कचारी खुद को भीम–नी–फा अर्थात भीम के बच्चे बताते हैं।

हालांकि महाभारत की अनेक घटनाओं और चरित्रों का अभिज्ञान उत्तर भारत से होता है, फिर भी महाभारत की एक समद्ध परंपरा है, जो पूरे भारत में फैली है। विभिन्न संप्रदाय उसे अपने–अपने ढंग से समझते हैं और उसमें विभिन्न स्थानीय कथाएं जोड़ते हुए उसे संप्रेषित करते हैं। इस प्रकार महाभारत लोगों की विभिन्न संस्कृतियों को प्रतिबिंबित करता है। वह शास्त्रीय वर्णनों से लेकर लोकगाथाओं तक में मिलता है।

पाठगत प्रश्न 30.2

1. वेद किस प्रकार के साहित्य का प्रतिनिधित्व करते हैं?

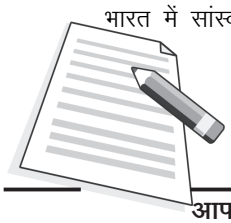

आपकी टिप्पणियाँ

2. भारत के किन क्षेत्रों में आप भीम और हिडिंबा की पूजा किए जाने की अपेक्षा करते हैं?

3. रामायण का हिंदी रूप किसने लिखा और वह किस नाम से जाना जाता है?

30.4 खाद्य संस्कृति

अब हम अपनी खाने की आदतों पर नजर डालते हैं। हम पाएंगे कि किस तरह उनमें एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में अंतर पाया जाता है और समय के साथ–साथ किस तरह वे अंतःक्रिया के कारण बदल गई है।

विभिन्न क्षेत्रों में उगने वाली फसलों के स्वरूप, विभिन्न संप्रदायों की सांस्कृतिक प्रथाओं और उपभोक्ता वर्ग/संप्रदाय या लोगों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति के कारण भारतीयों की खाने की आदतों में अंतर पाया जाता है। सिंधु–गंगा क्षेत्र का मुख्य भोजन जहां गेहूं हैं, वहीं दक्षिण भारतीयों का मुख्य भोजन चावल है क्योंकि विंध्याचल पर्वत के दक्षिण में स्थित क्षेत्रों में गेहूं बहुत कम उगता है।

खाद्यान्नों के पुरातात्विक प्रमाणों से हमें अपने पूर्वजों द्वारा खाए जाने वाले खाने के बारे में कुछ जानकारी मिलती है। उन निवास–स्थानों, जहां लोग वास्तव में रहे थे (जैसे बलूचिस्तान में मेहरग़ का पाषाणकालीन स्थल), गेहूं का प्रमाण मिलता है या फिर कर्नाटक में ब्रह्मगिरी और हल्लूर, आंध्र प्रदेश में पिकलिहल और तमिलनाडु में पैयमपल्ली जैसे दक्षिणी स्थलों पर विशेष रूप से चावल, रागी और कुथली के प्रमाण मिले हैं। पिकलिहल से मिले प्रमाण बताते हैं कि वहां के लोग पशुपालक थे, जो गाय–बैल और भेड़–बकरियां पालते थे।

पानी और अनाज एकत्र करने के साथ ही खाना पकाने के लिए भी बर्तन इस्तेमाल किए जाते थे। भारतीय पुरातत्ववेत्ताओं ने प्राचीन संस्कृतियों को उनके द्वारा बनाए गए बर्तनों, जैसे कि चित्रित धूसर बर्तन, काले पॉलिश किए हुए बर्तन आदि के आधार पर वर्गीकृत किया है। तमिलनाडु में अडिचनल्लूर जैसे कांस्ययुगीन पुरातात्विक स्थलों से कांसे और सोने के बर्तन भी मिले हैं। जाहिर है कि उनका इस्तेमाल धनी लोग करते थे।

ज्यादातर क्षेत्रों की अपनी अलग पाक–प्रणाली है। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु चावल–आधारित संस्कृतियां हैं। दक्षिण भारतीयों द्वारा बनाए जाने वाले इडली, डोसा और उपमा अब उत्तर भारत में भी लोकप्रिय हो गए हैं और उत्तर भारतीय प्रदेशों में इनकी सुलभता विभिन्न संप्रदायों में होने वाली अंतःक्रिया की प्रमाण है। पश्चिम बंगाल की तरह तटीय संस्कृति वाला केरल भी अपने मछली के पकवानों के लिए जाना जाता है। मुगलों के आगमन के साथ तंदूरी चिकन और सींख कवाब जैसे 'मुगलई' पकवान और तरबूज जैसे फल भारतीय पाक–प्रणाली के अंग बन गए। अवधी पाक–प्रणाली (अवध पूर्वी उत्तर प्रदेश का एक क्षेत्र है) आज मुगलई नवाबी संस्कृति को प्रतिबिंबित करती है। सोलहवीं शताब्दी में यूरोपियनों, खासकर पुर्तगालियों ने भारतीय भोजन में आलू, टमाटर और हरी मिर्च का समावेश किया, जो अब हमारी पाक–क्रिया का अनिवार्य अंग है। इस दौरान प्लासबीन (फ्रांसीसी सेम) भी भारतीय पाक–प्रणाली का अंग बन गई। इस प्रकार सांस्कृतिक अंतःक्रिया ने हमारी खाने की आदतों में बदलाव किया है।

परिवार में एक साधारण भोजन में चावल या रोटी, दाल और सब्जी शामिल रहती हैं। घरों में दैनिक भोजन जहां आम तौर पर स्त्रियों द्वारा पकाया जाता है, वहीं बड़े स्तर पर यह काम प्रायः पुरुष करते हैं। भारत में अनेक गरीब लोग केवल दलिया खा पाते हैं। धनी लोग विभिन्न प्रकार का भोजन खा सकते हैं, जिसमें शाकाहारी और मांसाहारी दोनों तरह के पकवान शामिल हैं। मांसाहारी पकवान शाकाहारी पकवानों से ज्यादा महंगे होते हैं। शादी–ब्याह जैसे विशेष अवसरों पर सभी संप्रदाय अनेक पकवानों वाला प्रीतिभोज रखते हैं, जिसमें उनके क्षेत्र की अलग महक रहती है।

पाठगत प्रश्न 30.3

1. भारत की मुख्य फसलें कौन–सी हैं और वे किस तरह खान–पान की आदतों को आकार देती हैं?

2. दक्षिण भारत के कुछ लोकप्रिय पकवानों के नाम लिखिए।

3. निम्नलिखित का मिलान कीजिएः

रोटी	केरल
उपमा	पुर्तगाली
सींख कबाब	तमिलनाडु
मिर्च	उत्तर भारत
मछली	मुगलई

आपने क्या सीखा

हमने सांस्कृतिक उत्पादन के रूपों और क्षेत्रीय भिन्नताओं के साथ–साथ अपनी पहनने–ओढ़ने और खान–पान की आदतों के संदर्भ में सांस्कृतिक अंतःक्रिया के स्वरूप पर नजर डाली। हमने देखा कि हमारे प्रारंभिक पूर्वज मिट्टी के बर्तन जैसी वस्तुएं बनाते थे, जो उपयोगी होने के साथ–साथ सुंदर भी होती थीं। किंतु बाद के समय में चित्र जैसी कलाकृतियां शाही संरक्षण में बनने लगीं।

हमने यह भी देखा कि लोग जलवायु की जरूरतों के मुताबिक कपड़े पहनते हैं और पोशाकें एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बदल जाती हैं। हमने कपड़े की किस्मों, आक तियों और कलमकारी व चुंगडी जैसे कुछ विशेष प्रकारों के बारे में भी जाना। साहित्य के खंड में हमने देखा कि भारतीय भाषाओं की व्यापक श्रंखला ने हमारे साहित्य की सम द्धि में योगदान किया है। यहां हमने महाभारत के कुछ क्षेत्रीय और लोक–रूपों पर भी गौर किया। अंत में हमने भारत के विभिन्न क्षेत्रों की खानपान की आदतों और उनमें सतत सांस्कृतिक अंतःक्रिया के जरिये आए बदलावों का अध्ययन किया।

पाठांत प्रश्न

1. अजंता और एलोरा की कलाओं के बारे में आप क्या जानते हैं?
2. आज के फिल्मी होर्डिंग्स सचित्र पांडुलिपियों में पाई जानेवाली चित्रकला से किस रूप में भिन्न हैं?
3. परंपरागत भारतीय वस्त्रों में रंगों के महत्त्व का वर्णन कीजिए।
4. महाभारत महाकाव्य के कुछ क्षेत्रीय रूपों की संक्षेप में चर्चा कीजिए।
5. भारत में क्षेत्रीय पाक–प्रणाली के स्वरूप और विविधता का वर्णन कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

चित्रकला

1. क. सही, ख. गलत, ग. गलत और घ. सही
2. प्रारंभिक गुफा–चित्र उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर और बांदा, मध्य प्रदेश के भीमबेटका और सिंगनपुर, विंध्याचल पर्वतमाला की महादेव पहाड़ियों और कर्नाटक के बेल्लारी में पाई जाती है।

वस्त्र और पोशाकें

1. बंधिनी की प्रक्रिया में सूत और कभी–कभी कपड़ा बांधकर रंगा जाता है। बंधिनियाँ गुजरात और राजस्थान, उड़ीसा के इकत और मदुरै (तमिलनाडु) मे चुंगडी नाम से बनाई जाती हैं।
2. 'कलमकारी' का शाब्दिक अर्थ है कलम के साथ कारी यानी कार्य करना।
3. क. सही, ख. गलत, ग. गलत और घ. सही
   1. संस्कृति में लिखे गए वेद हमारे धार्मिक साहित्य के अंग हैं।
   2. भीम और हिडिंबा हिमाचल प्रदेश के मंडी और किन्नौर क्षेत्र में पूजे जाते हैं।
   3. रामायण का हिंदी रूप तुलसीदास ने लिखा, जिसे रामचरितमानस के नाम से जाना जाता है।

खाद्य संस्कृति

1. भारत की मुख्य फसलें चावल और गेहूं हैं। चावल दक्षिण भारत की प्रमुख फसल है और इसलिए दक्षिण भारतीय मूलतः चावलभोजी हैं। चूंकि उत्तर भारत में बहुत गेहूं बहुतायत में पैदा होता है, इसलिए वह उत्तर भारतीयों का मुख्य भोजन है।
2. इडली, डोसा और उपमा दक्षिण भारतीरय पाक–प्रणाली के कुछ लोकप्रिय पकवान हैं।

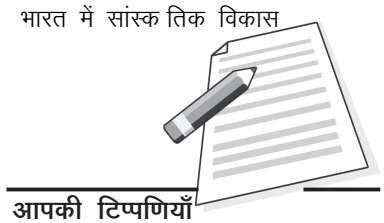

3. निम्नलिखित का मिलान कीजिए के उत्तरः

रोटी	उत्तर भारत
उपमा	तमिलनाडु
सींख कबाब	मुगलई
मिर्च	पुर्तगाली
मछली	केरल

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. देखिए अनुच्छेद 30.1
2. देखिए अनुच्छेद 30.1
3. देखिए अनुच्छेद 30.2
4. देखिए अनुच्छेद 30.3
5. देखिए अनुच्छेद 30.5

शब्दावली

जरी : बुनाई का पैटर्न, जिसमें आम तौर पर रेशमी कपड़े में सोने का धागा लगाया जाता है

पाक-प्रणाली : खाना पकाने की शैली

कुलीन : लोगों का एक चुनिंदा समूह या वर्ग

अग्निसह मिट्टी : भट्ठी में तपाई या पकाई गई मिट्टी के बर्तन या भवन–निर्माण–सामग्री बनाने के काम आती है

हिन्दुस्तानी नील : नील के पौधे से प्राप्त एक नीला रंग

मजीठा : मजीठ नामक लता की जड़ों और डंठलों को उबालकर निकाला जाने वाला लाल रंग

लघुचित्र : छोटे पैमाने पर बनाए गए चित्र

बहुपति-प्रथा : विवाह की पद्धति, जिसमें एक स्त्री के एक से अधिक पति होते हैं

सफ़वी : ईरान के फकीर सफी द्वारा चलाया गया राजवंश। यह शब्द अकसर भारतीय कला और वास्तुकला पर फारसी प्रभाव को सूचित करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है

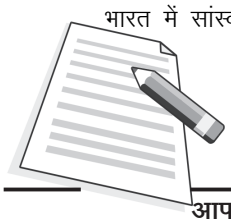

आपकी टिप्पणियाँ



31

मध्यकालीन राज्य

इस अध्ययन–सामग्री में मध्यकालीन भारत में शामिल राज्यों के उदय, स्वरूप और विस्तार पर चर्चा की गई है। यहाँ दो मुख्य राज्य–संरचनाओं, दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य पर चर्चा की गई है। मध्यकालीन शासक मूलतः भारत मे बाहर से आए, इसलिए उन्हें देशी राजनीतिक संरचनाओं को प्रभावित भी करना था और उनसे सीखना भी था। मध्यकालीन राज्य का वर्णन एक ऐसे राज्यतंत्र के रूप में किया जा सकता है, जिसका मुखिया सशक्त शासक था, जिसे पदानुक्रमानुसार संगठित प्रशासनिक तंत्र का समर्थन प्राप्त था और धर्म की सत्ता द्वारा वैधता प्रदान की गई थी। सेना, कुलीन नौकरशाही और भूमि–राजस्व राज्य के मूल तत्त्व बने रहो। लेकिन हर शासक के लिए सत्ता में हिस्सा चाहने वाले एक दूसरे गुटों के बीच संतुलन बिठाना जरूरी था।



उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- मध्यकालीन भारत में राज्य के विकास का विश्लेषण कर सकेंगे;
- मध्यकालीन राज्य के स्वरूप का स्मरण कर सकेंगे; और
- मध्यकालीन राज्य की संस्थाओं का वर्णन कर सकेंगे।

31.1 पृष्ठभूमि

गुप्त राज्य के पतन के बाद भारतीय राज्यतंत्र ने विकेंद्रीकरण और विभिन्न क्षेत्रीय राज्यों का उदय देखा प्रारंभिक युग से मध्यकालीन युग में परिवर्तन के दौरान तीन क्षेत्रीय सत्ताओं – बंगाल के पालों, उत्तर भारत के प्रतिहारों और प्रायद्वीपीय भारत के राष्ट्रकूटों के बीच त्रिपक्षीय संघर्ष देखने को मिला। जल्दी ही उत्तर भारत में साम्राज्य बनने की महत्त्वाकांक्षा रखने वाले छोटे राजपूत राज्यों का विकास हुआ। किंतु उत्तर–पश्चिम दिशा से तुर्कों के आगमन से एक विस्त त मध्यकालीन राज्य के उदय की नई प्रक्रिया दिखाई दी।

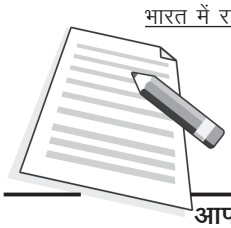

आपकी टिप्पणियाँ

31.2 दिल्ली सल्तनत

इल्बरी तुर्क

तेरहावीं शताब्दी में उत्तर भारत में एक नए प्रकार के राजवंशीय प्रभाव क्षेत्र का उदय हुआ। दिल्ली सल्तनत की उत्पत्ति मुहम्मद गोरी की विजय से हुई है, जिसने 1151 में गजनी को निकाला और फिर 1157 में गजनवियों को पंजाब से खदेड़ दिया। 1186 में गजनवियों को उखाड़ फेंकने के लिए मुहम्मद गोरी ने सिंधु घाटी में कूच किया। मार्ग में उसकी सेनाओं ने मुलतान (1175), सिंध (1182), पेशावर और लाहौर (1186) को जीता। 1190 में उसने भटिंडा पर अधिकार किया जो राजपूत राजा प थ्वीराज चौहान के साथ युद्धों की वजह बन गया, जिसे उसने अंततः 1192 में हरा दिया। गंगा घाटी के पश्चिमी मार्गों से राजपूतों के आधिपत्य को समाप्त कर गोरी की सेनाएं पूर्व की ओर तब तक बढ़ती रहीं, जब तक कि बख्तयार खिलजी ने अंततः 1200 में बंगाल में लक्ष्मणसेन को नहीं हरा दिया। मुहम्मद गोरी की 1206 में म त्यु हो गई। तब उसके विश्वासपात्र मामलुक (पूर्व दास) सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक ने, जो कि दिल्ली का सेनापति था, अपनी स्वतंत्र सत्ता घोषित कर दी। इल्बरी तुर्कों का राजवंश उस कड़ी में पहला था, जो सामूहिक रूप से दिल्ली सल्तनत के रूप में जानी गई। बाद में गोरी और गजनवी के दिल्ली को वापस अपने अधिकार–क्षेत्र में लाने के प्रयासों को अंततः दिल्ली के सुल्तान इल्तुतमिश ने 1211–1236 में असफल कर दिए। इल्तुतमिश को उत्तर भारत में तुर्की विजयों का वास्तविक नेता माना जाना चाहिए। उसने नई राजधानी दिल्ली को राजतंत्रीय किस्म की सरकार और शासक वर्ग प्रदान किए। उसने अनुदान के वेतन के बदले भूमि से राजस्व देने की प्रथा शुरू की। उसने एक केंद्रीय सेना रखी और टंका (चांदी) तथा जीतल (तांबा) के सिक्के चलाए। प्रसिद्ध कुतुब मीनार उसी के शासन–काल में पूरी हुई। इल्तुतमिश ने अपनी बेटी रजिया (रजियाउद्दीन) को अपनी उत्तराधिकारिणी के रूप में नामांकित किया। इसके बावजूद नए राज्य में इल्तुतमिश की म त्यु के बाद के दस वर्षों में गंभीर दलीय विवाद होने के कई कारण थे जिनके चलते उसके चार बच्चे या बच्चों के बच्चे बारी–बारी से गद्दी पर बिठाए और उतार दिए गए। यह मुख्यतः इल्तुतमिश के निजी दासों के प्रयासों से कायम रहा, जो चालीस (चहलगान) के नाम से जाना गया। यह एक राजनीतिक दल था, जिसकी सदस्यता प्रतिभा और इल्तुतमिश के परिवार के प्रति निष्ठा से मिलती थी। 1246 में राजनीतिक स्थिति में बदलाव आया, जब चालीस के एक कनिष्ठ सदस्य गयासुद्दीन बलबन ने नवीनतम सुल्तान नसीरुद्दीन महमूद (शासन–काल 1246–66) के प्रशासन के भीतर मजबूत हैसियत हासिल कर ली। पहले सुल्तान का नायब (सहायक) और बाद में खुद सुल्तान (शासन–काल 1266–87) रहा बलबन अपने समय की सबसे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक हस्ती था। बलबन ने 'खुदा की परछाई' (जिल्ल–अल–अल्लाह) के रूप में सुल्तान की विशेष स्थिति पर जोर दिया। बलबन ने दरबारी शान, मर्यादा और शिष्टाचार पर बल दिया। वह राजपुरुषों तक को ऐसे गंभीर दंड देने में यकीन रखता था, जो उदाहरण बन सकें। किंतु बलबन के आसन्न उत्तराधिकारी न तो प्रशासन संभालने में सक्षम थे, न पुराने तुर्की राजपुरुषों और खिलजियों के नेत त्व वाली नई ताकतों के बीच अंतर्दलीय संघर्षों को टालने में। दोनों गुटों के बीच हुए एक संघर्ष के बाद 1290 में जलालुद्दीन फिरोज खिलजी ने सल्तनत हासिल की।

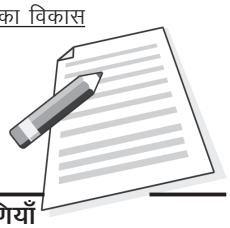

खिलजी

खिलजियों को पुराने राजपुरुषों द्वारा शुद्ध तुर्की कुल से आया हुआ नहीं माना जाता था (हालांकि थे वे तुर्क ही), और उनकी सत्ता–प्राप्ति के लिए उतावले बाहरी व्यक्ति मददगार रहो, जिनमें से कुछ भारत में जन्मे मुसलमान थे, जो बलबन और चहलगान के अनुयायियों की पकड़ ढीली होने पर अपनी हैसियत बढ़ने की उम्मीद कर सकते थे। कुछ हद तक तब खिलजियों की सत्ता पर पकड़ बदलते सत्ता–संतुलन की ओर एक कदम था, जो दिल्ली सल्तनत के बाहर, मध्य एशिया और ईरान में, चलने वाली गतिविधियों और उत्तर भारत में तुर्की शासन की स्थापना के बाद हुए बदलावों, दोनों का नतीजा माना जाता था। खिलजियों के तहत विजयों की बाह्य नीति और पूर्ण नियंत्रण की आंतरिक पद्धतियों का पालन सैनिक अभियानों और नियंत्रणों के जरिये किया जाता था। खिलजियों ने अपने अफगान–आक्रमण का इस्तेमाल उन असंतुष्ट राजपुरुषों की निष्ठा जीतने के लिए किया, जो यह महसूस करते थे कि पिछले सुल्तानों ने उनकी उपेक्षा की थी। जलालुद्दीन खिलजी (1290–1296) ने बलबन के शासन–काल के कुछ कठोर पहलुओं को हलका करने की कोशिश की। वह पहला शासक था, जिसने यह राय जाहिर की कि शासक शासितों के तत्पर समर्थन पर आधारित होना चाहिए और चूंकि हिंदुस्तानियों में बहुमत हिंदुओं का है, इसलिए शासन वास्तव में पूर्ण इस्लामी नहीं हो सकता।

1296 में उसके महत्त्वाकांक्षी भतीजे और उत्तराधिकारी अलाउद्दीन खिलजी द्वारा उसकी हत्या कर दी गई। अलाउद्दीन खिलजी के शासन–काल (1296–1316) में सल्तनत ने संक्षेप में साम्राज्य का स्वरूप ग्रहण कर लिया। केंद्रीकरण और विस्तार के अपने लक्ष्य हासिल करने के लिए अलाउद्दीन को धन, निष्ठावान और पर्याप्त आज्ञाकारी अमीरवर्ग तथा अपने निजी नियंत्रण के अधीन एक दक्ष सेना की दरकार थी। उसने इससे पूर्व 1292 में धन की समस्या आंशिक रूप से सुलझाई थी जब उसने मध्य भारत में भेलसा में धावा बोला था। अपनी स्थिति सुद ढ़ करने और नई सेना गठित करने में उस सफलता का उपयोग करने के लिए उसने 1296 के शुरू में दक्षिण में यादवों की आश्चर्यजनक रूप से सम द्ध राजधानी देवगिरि (आधुनिक दौलताबाद) पर आक्रामक किंतु अनधिक त धावा बोला। देवगिरि की दौलत ने न केवल उसके इस बलात अपहरण के लिए धन जुटाया, बल्कि उसके राज्य–निर्माण की योजनाओं के लिए अच्छा आधार भी प्रदान किया। केंद्रीकरण और भारी क षि–कर अलाउद्दीन के शासन की मुख्य विशेषताएं थीं। क षि–कर उगाहने की मात्रा और क्रियाविधि ने सुल्तान को दो उद्देश्य हासिल करने में सहयता की : 1. अनाज–वाहकों को कम कीमतों पर आपूर्ति सुनिश्चित करना, और 2. राज्य के अनाज के गोदामों को सुरक्षित भंडारों से भरना, जो उसके प्रसिद्ध कीमत–नियंत्रणों से जुड़कर एक विशाल स्थायी सेना रखने की नाजुक वित्तीय समस्या के समाधान के रूप में सामने आया। अलाउद्दीन की म त्यु (1316) के बाद पांच वर्षों के भीतर खिलजियों ने अपनी सत्ता खो दी। उत्तराधिकार के विवाद के परिणामस्वरूप महल के रक्षकों ने मलिक काफूर की हत्या कर दी और सुल्तान के तीसरे बेटे कुतुबुद्दीन मुबारक शाह ने अलाउद्दीन के छह–वर्षीय बेटे को अंधा कर सल्तनत हासिल कर ली (1316–20)। वह अपने पसंदीदा सेनापति हिंदू धर्मांतरित खुसरो खान के हाथों मारा गया। खुसरो के शासन का विरोध तुरंत शुरू हो गया, जिसकी अगुवाई देवपालपुर में

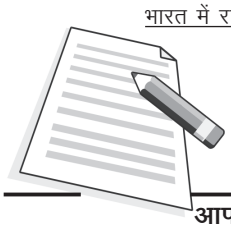

आपकी टिप्पणियाँ

पश्चिमी अभियानों के प्रमुख गाजी मलिक ने की। खुसरो हार गया और चार महीने बाद उसकी हत्या कर दी गई।

तुगलक

गयासुद्दीन तुगलक के नाम से गद्दी पर बैठनेवाले गाजी मलिक (शासन–काल 1320–25) ने ताजपोशी से पहले मंगोलों के खिलाफ सीमाओं की सफलतापूर्वक रक्षा करने के लिए प्रसिद्धि पाई थी। तुगलक भी संपूर्ण भारत पर शासन करने की इच्छा रखते थे। गयासुद्दीन (1320–25) की वारंगल, उड़ीसा और बंगाल की मुहिम इसी उद्देश्य को लेकर थी। उसने दिल्ली के निकट तुगलकाबाद शहर का निर्माण कराया। बंगाल की मुहिम से लौटते हुए सुल्तान की हत्या कर दी गई, जब दिल्ली के निकट अफगानपुर में उस पर लकड़ी का एक मंडप गिर पड़ा। मुहम्मद बिन तुगलक के शासन (1325–51) को सल्तनत के उत्थान और पतन दोनों के रूप में अंकित किया गया। 1296 से 1335 तक का समय लगभग सतत केंद्रीकरण और विस्तार के दौर के रूप में देखा जा सकता है। दिल्ली पर फिरोजशाह तुगलक के शासन–काल के इतिहास में समकालीन इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी कहता है कि 'इतिहास वर्ष क्रम के अनुसार घटनाओं के विवरण अर्थात् पैगंबरों, खलीफाओं, सुल्तानों और धर्म तथा सरकार के महान लोगों के ऐतिहासिक अभिलेखों और परंपराओं का ज्ञान है।' तुगलक वंश तैमूर के हमले के बाद जल्दी ही समाप्त हो गया, लेकिन सल्तनत बची रही, हालांकि वह केवल पुरानी सल्तनत की छाया ही रही। तैमूर के प्रतिनिधि ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया और वह नया सुल्तान घोषित कर दिया गया, जो पंद्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के प्रारंभिक वर्षों तक (1414–1451) शासन करने वाले सैयद वंश का पहला शासक था। उसका शासन अल्पकालिक था और दिल्ली के आसपास लगभग 200 मील के घेरे में सीमित था। उसने तंत्र को चालू रखा, जब तक कि उनसे ज्यादा योग्य लोधी वंश ने उसे नहीं संभाल लिया। लोधी शुद्ध अफगान मूल के थे, जिन्होंने तुर्की कुलीनता पर ग्रहण लगा दिया।

पाठगत प्रश्न 31.1

निम्नलिखित वाक्यों को शुद्ध करके पुनः लिखिएः

1. 1168 में गजनवियों को उखाड़ फेंकने के लिए मुहम्मद गोरी ने सिंधु घाटी में कूच किया।

2. मुहम्मद गोरी की सेनाओं ने 1157 में मुलतान, 1128 में सिंध और 1168 में पेशावर और लाहौर को जीता।

3. इल्तुतमिश को दक्षिण भारत में तुर्की विजयों का वास्तविक नेता माना जाना चाहिए।

4. दो गुटों के बीच हुए संघर्ष के बाद 1209 में जलालुद्दीन फिरोज खिलजी ने सल्तनत हासिल की।

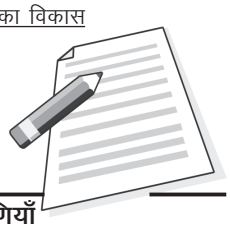

5. 1269 में जलालुद्दीन खिलजी के महत्त्वाकांक्षी भतीजे और उत्तराधिकारी अलाउद्दीन खिलजी द्वारा उसकी हत्या कर दी गई।

31.3 मुगल

1526 में मध्य एशिया से आए बाबर ने भारत में मुगल वंश की स्थापना की। बाबर ने तैमूर और चंगेज खान दोनों से उत्तराधिकार प्राप्त किया। दिल्ली और गंगा घाटी की उसकी जीतें दक्षिण एशिया में सैनिक सत्ता के उभार के आखिरी कदम से पहले की थीं। दक्षिण एशिया में महानतम सुल्तान मुगल सम्राट थे, जिन्होंने (बाबर और तैमूर के जरिये तुर्कों से अलग होकर भी) फारसी शाही संस्क ति अपनाई और तुर्कों, अफगानों और अन्य समस्त सुल्तानों से खुद को प्रतीकात्मक रूप से ऊंचा उठाने के लिए *पादशाह* की फारसी पदवी ग्रहण की। बाबर चुगताई तुर्क था, जो उजबेक सेनाओं से बचने के लिए समरकंद के पास अपनी पुश्तैनी जमीनें छोड़कर भाग निकला था। उसने गंगा घाटी में अवसर पाया, जहाँ उसने विरोधियों को नष्ट करने के लिए उजबेक शैली में बंदूकों और तोपों से लैस रिसाले के साथ कसे हुए तेज घोड़े इस्तेमाल किए। 1526 में उसने पंजाब से बंगाल तक सुल्तानों पर विजय प्राप्त कर ली थी लेकिन विरोधी बचे रहो। तेरहा साल बाद एक अफगान सैनिक ने जो लोधियों और बाबर के लिए युद्ध लड़ चुका था, जौनपुर में अपनी फारसी तालीम का प्रदर्शन करने के लिए अपना नाम शेरशाह रख लिया था, बंगाल और बिहार में एक नए वंश की घोषणा की। शेरशाह की सेनाओं ने तब बाबर के बेटे हुमायूँ को हराकर वापस अफगानिस्तान खदेड़ दिया, जहाँ हुमायूँ ने निर्वासन में अपने बेटे अकबर को पाला। शेर शाह की म त्यु के बाद उसका सूर वंश नहीं बचा, हालांकि प्रशासनिक नवीनताएं और बंगाल से पंजाब तक ट्रंक रोड का निर्माण उसकी स्थायी उपलब्धियां रहीं। शेरशाह की म त्यु के शीघ्र बाद 1555 में हुमायूँ ने दिल्ली को जीत लिया। वहाँ दुर्घटना के कारण उसकी म त्यु हो गई। इसके बाद उसका तेरहा वर्षीय बेटा अकबर अपने संरक्षक बैरम खाँ की देखरेख में गद्दी पर बैठा। अकबर की ताजपोशी 1556 में हुई जब बैरम खाँ ने लाहौर, दिल्ली, आगरा और जौनपुर के फौजी किलों वाले शहर जीते। संरक्षक के पद से हटाकर मार दिए जाने से पहले बैरम खाँ ने मालवा और राजस्थान पर भी फतह हासिल की। अकबर ने पचास साल (1556–1605) राज किया। वह अंत तक जीत हासिल करता गया। उसकी सेनाओं ने आकार, धन–प्राप्ति, नेत त्व, प्रौद्योगिकी और सफलता में पहले की सारी सेनाओं को पीछे छोड़ दिया। उसकी म त्यु के समय उसका अधिकार–क्षेत्र काबुल, कश्मीर और पंजाब से गुजरात, बंगाल और असम तक फैल गया था और अभी भी दक्षिण में तथा चारों तरफ पहाड़ों में बढ़ता जा रहा था। उसकी दमक उसके बेटे जहाँगीर (1605–1627), पोते शाहजहाँ (1627–1658) और परपोते औरंगजेब (1658–1707) तक पहुंची, जिसकी म त्यु के बाद शाही राज्य समाप्त हुआ। हालांकि यह वंश 1858 तक कायम रहा, जब इसे अंग्रेजों द्वारा अपदस्थ कर दिया गया। अपनी चरम अवस्था में मुगल साम्राज्य का भारतीय इतिहास में अभूतपूर्व संसाधनों पर अधिकार था और वह लगभग पूरे उपमहाद्वीप तक फैला था। 1556 से 1707 के बीच अपनी आश्चर्यजनक धन–संपदा और वैभव के स्वर्णिम दौर में मुगल साम्राज्य पर्याप्त सक्षम और केंद्रीक त संगठन था, जिसमें कर्मचारी, धन और सूचना का एक व्यापक समूह मुगल सम्राट और उसके गुप्त अमीर वर्ग को समर्पित था।

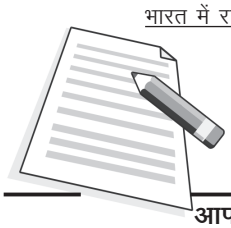

आपकी टिप्पणियाँ

इस अवधि के दौरान साम्राज्य के विस्तार का श्रेय बाहरी दुनिया के साथ भारत के बढ़ते वाणिज्यिक और सांस्क तिक संपर्क को जाता है। उपमहाद्वीप में सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियां यूरोपीय और गैर–यूरोपीय व्यापारिक संगठनों की स्थापना और विस्तार लेकर आई। मुख्य रूप से विदेश में मांग वाली वस्तुओं की प्राप्ति के लिए भारतीय इलाके घने स्थलमार्ग और तटीय व्यापारिक तंत्र के जरिये एक–दूसरे के नजदीक आए। कीमती धातुओं के आंतरिक आधिक्य ने इसे और बढ़ावा दिया। व्यापक विश्व के संग बढ़ते संबंध के साथ नई विचारधाराएं और प्रौद्योगिकियां भी आईं, जिन्होंने शाही प्रासाद को चुनौती दी भी और सम द्ध भी किया। किंतु साम्राज्य अपने–आप में एक विशुद्ध भारतीय ऐतिहासिक अनुभव था। मुगल संस्क ति ने फारसी–इस्लामी और स्थानीय भारतीय तत्त्वों का मेल कर उनका एक अलग किंतु रंग–बिरंगा जोड़ बना दिया। हालांकि अठारहावीं शताब्दी के प्रारंभ तक क्षेत्रों ने पुनः अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करनी शुरू कर दी थी, फिर भी मुगल–काल शाही केंद्रीय सत्ता बना रहा शाही केंद्र वस्तुतः मुगल साम्राज्य के पहले दो सौ वर्षों तक (1526–1748) उसके निर्देशो द्वारा नियंत्रित रहा और इस तरह वह भारतीय उपमहाद्वीप में पूर्व–आधुनिक राज्य–निर्माण की एक मोहक तस्वीर प्रस्तुत करता है।

31.4 मध्यकालीन राज्य का स्वरूप

सुल्तान होने का क्या अर्थ था? कुरान में इस अरबी शब्द का अर्थ है 'आध्यात्मिक शक्तियों वाला व्यक्ति'। महमूद गजनी अपने समकालीनों द्वारा 'सुल्तान' कहा जाने वाला पहला व्यक्ति था, जो अपने प्रशंसको के बीच उसकी सफलता का सूचक है। यह पदवी पहले तुर्कों में लोकप्रिय प्रतीत होती है। पश्चिम और मध्य एशिया में सल्जूक वंश 'सुल्तान' की पदवी का आम तौर पर इस्तेमाल करने वाले पहले शासक थे, बाद में ओट्टोमन तुर्कों ने इसे यूरोप में प्रसिद्ध कर दिया। जब खलीफा यह पदवी प्रदान करने लगा, तो यह तेजी से मुस्लिम शासकों में लोकप्रिय हो गई और पूरी तरहा बदल गई। दिल्ली के सुल्तान बगदाद के खलीफा की प्रभुसत्ता स्वीकार करते थे और अपनी बादशाहत को दारुल इस्लाम का अंग समझते थे, जिसका न्यायिक प्रधान खलीफा था। मुगल सम्राटों के तहत भारत मुस्लिम कानून शरियत से शासित होता था। इसके बावजूद न तो दिल्ली के सुल्तानों के समय और न ही मुगल सम्राटों के दौरान राज्य ने पूर्णतः इस्लामी अध्यादेशों की पुष्टि की, क्योंकि उसे वास्तविकताओं के अनुरूप ढलना था और अक्सर वे सही नहीं भी होते थे। तुर्की और अफगान शासकों को हिंदुओं के साथ, जिनका जनसंख्या में व्यापक बहुमत था, सम्मान और सहनशीलता के साथ व्यवहार करना था। धर्म, संपत्ति और कई अन्य गैर–धार्मिक मामलों में गैर–मुस्लिम जनता को अपने मुकदमे अपनी खुद की सांप्रदायिक अदालतों में चलाने की अनुमति थी। सुल्तान के शासन–काल की भूमि–राजस्व प्रणाली और शाही दरबार में होने वाले समारोह और क्रियाविधियां भारतीय परंपरा का अटूट प्रमाण हैं। प्रश्न उठता है कि क्या मध्यकालीन भारतीय राज्य किसी धार्मिक वर्ग द्वारा शासित था? औपचारिक तौर पर मुस्लिम शासन के तहत मध्यकालीन राज्य निश्चित रूप से धर्मतंत्र था, क्योंकि उसमें इसके सारे अनिवार्य तत्त्व थे ––ईश्वर की प्रभुसत्ता और दैवी कानूनों के अनुसार ईश्वर के निर्देश द्वारा सरकार का संचालन। दिल्ली के सुल्तान खुद को खलीफा के प्रतिनिधि या सहायक समझते थे, जो कि ईश्वर का प्रतिनिधि था। शेरशाह और इस्लाम शाह ने खलीफा की पदवी धारण की और अकबर से लेकर औरंगजेब तक मुगल सम्राटों ने 'खुदा की परछाई' और 'धरती

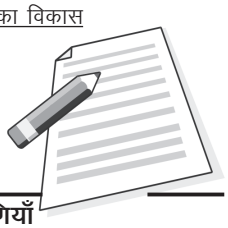

पर ईश्वर का प्रतिनिधि' जैसी पदवियां ग्रहण कीं। ईश्वर की प्रभुसत्ता असंदिग्ध थी। शरियत की सर्वोच्चता सदैव स्वीकार की जाती थी, हालांकि अकबर ने शरियत में राज्य के नियम जोड़ दिए थे। किंतु ये नियम मुस्लिम धर्मज्ञों को राज्य की नीतियां बनवाने की अनुमति नहीं देते थे।

मूलतः रक्षा, कानून और व्यवस्था तथा राजस्व का संग्रह दिल्ली सल्तनत की प्राथमिक चिंताएँ थीं। अन्य मामलो में वह आम तौर पर दखल न देने की नीति का पालन करती थी, क्योंकि जन–कल्याण सुल्तानों की प्राथमिक चिंता नहीं थी। सुल्तानों के शासन–काल में सहनशीलता अपवाद थी, नियम नहीं। इस प्रकार इस्लामी होने का दावा करने वाले दिल्ली सल्तनत के राज्य का चरित्र सैन्यवादी और कुलीन था। इसके विपरीत मुगल साम्राज्य एक बिलकुल अलग जमीन पर खड़ा था। सहनशीलता और दयालुता अकबर की सरकार के निर्देशक तत्त्व थे। अकबर अपनी जनता को अपनी संतान समझता था और इसलिए उसके कल्याण के लिए खुद को जिम्मेदार मानता था। अबुल फज़ल द्वारा परिकल्पित और अकबर द्वारा स्थापित राज्य किसी वर्ग–विशेष तक सीमित नहीं था और 'सबके साथ अमन' (सुल्हिकुल) के सिद्धांत पर आधारित था। लेकिन अकबर की प्रबुद्ध नीति और जहाँगीर तथा शाहजहाँ द्वारा परिस्थितिवश उसे जारी रखने के बावजूद मुगल शासन की कार्यप्रणाली में कम ही गुंजाइश थी। दान देने और उदार राजाओं के होने के बावजूद मुगल राज्य कल्याणकारी राज्य नहीं था। भूमि–राजस्व की वसूली और रक्षा उसके मुख्य कार्य थे। सरकार का स्वरूप राजतंत्रीय था, जो आनुवंशिक होने के बावजूद उत्तराधिकार की व्यवस्थित विधि विकसित नहीं कर पाया था। सिद्धांततः राजा सरकार की सभी शाखाओं का उद्‌भव था, पर शासक का कमजोर व्यक्तित्त्व अमीर वर्ग और उलेमाओं को शाही सता पर नियंत्रण का अवसर प्रदान कर सकता था।

पाठगत प्रश्न 31.2

रिक्त स्थान भरिए

1. बाबर ने _____ और _____ दोनों से उत्तराधिकार प्राप्त किया।
2. शेरशाह सूरी की म त्यु के बाद हुमायूँ ने _____ में दिल्ली पर विजय प्राप्त की।
3. 1556 से _____ के बीच अपनी आश्चर्यजनक धन–संपदा और गौरव के स्वर्णिम दौर में मुगल साम्राज्य एक _____ और _____ संगठन था।
4. _____ साम्राज्य के तहत भारत मुस्लिम कानून _____ द्वारा शासित था।

31.5 राजपद

चाहे उसकी जो भी पदवी है, राजा एक निजी महानता वाला व्यक्ति होता था, सेनानायक के रूप में ही नहीं, बल्कि तहत् आध्यात्मिक और नैतिक प्राणी के रूप में भी। सभ्य आदमी के रूप में उसके युद्ध उपयुक्त कार्य थे, हालांकि इसका क्या अर्थ अलग है जाता और बदल

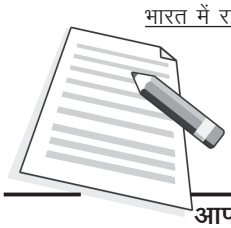

आपकी टिप्पणियाँ

जाता था। सुल्तान की महिमा उसके आसपास के लोगों के काम से उभरती थी। मुस्लिम राजाओं की महिमा की व्याख्या कवियों, विद्वानों (इमामों और उलेमाओं), वास्तुकारों, इतिहासकारों, जीवनी लेखकों, आध्यात्मिक मार्गदर्शकों (सूफियों) और हर क्षेत्र में अनिवार्य रूप से विद्यमान बड़ी सामूहिक मस्जिद जामा मस्जिद में जुमे की नमाज पढ़वाने वालों का काम था। सुल्तानों को महिमामंडित करने, सम्मानित होने के लिए कुशल सेवा दाताओं में होड़ लगी रहाती थी, जिसके परिणामस्वरूप सुल्तान का व्यक्तित्त्व प्रसंगानुसार उभरता था। उसके आसपास रहाने वाले विशेषज्ञ और सहायक उसकी राय, नीतियों और प्राथमिकताओं को आकार देते थे। सफलता पाने के लिए वह लोगों का पोषण करता था और उसकी ताकत उनकी ताकत पर निर्भर करती थी। इस तरहा राजा की ताकत की सामाजिक पहचान ताज से बहुत परे तक फैल गई थी। महमूद गजनी जैसे प्रारंभिक सुल्तान पूर्णतः अपने रिश्तेदारों और नजदीकी सजातीय सहायकों पर आश्रित थे। राजनीतिक परिदश्य के ज्यादा जटिल होने पर ज्यादा जटिल व्यक्तित्त्व विकसित हुए और मुगलों के शासन में व्यापक आयाम ग्रहण करते गए। सुल्तान का शरीर, बोलचाल, धार्मिक श्रद्धा, निजी आदतें, शौक, परिवार, गहस्थी, पुरखे, पत्नियां, पुत्र और ससुराल उसकी सार्वजनिक पहचान का आंतरिक अंग थे, जो सार्वजनिक गपशप, कला, जनश्रुति, गीतों और इतिवत्त में व्यक्त होते थे।

31.6 शाही दरबार

सुल्तान के सार्वजनिक व्यक्तित्त्व का दैनिक प्रदर्शन उसके आम दरबार में होता था, जहाँ वह मेहमानों, दूतों, फरियाद करने वालों, सहायकों और कर तथा उपहार देने वालों से मिलता था। दरबार की परंपरा समय के साथ विकसित हुई। इसका प्रारंभिक मध्य एशियाई मूल स्वरूप युद्ध के मैदान का शाही खेमा था, जिसने बाद की शताब्दियों में वास्तुशिल्पीय महिमा हासिल कर ली, जैसे कि फतेहपुर सीकरी, आगरा और दिल्ली जैसे किले वाले शहर जिनके दरबार में सम्राट की सत्ता के निष्पादन के लिए विशाल मंच हैं। अनेक दरबारों की प्रभावशाली सजावट में हिंदू और मुस्लिम परंपराएँ शामिल हैं। अठारहावीं शताब्दी के चित्रों में दरबार के द श्यों का विस्त त प्रस्तुतीकरण मिलता है, जिनके साथ अब मुगल सम्राट शाहजहाँ का इतिव त्त सत्रहवीं शताब्दी का पादशाहनामा भी है। इन चित्रों में लटकते कालीन दिखाए गए हैं, जो दरबार की भ्रमणशील परंपरा की याद दिलाते हैं। इन चित्रों में चित्रित हर व्यक्ति का दरबार में एक खास दरजा और सम्राट से संबंध था। सुल्तानों के संबंध में परिभाषित की जाने वाली समस्त व्यक्तिगत पहचानों के सार्वजनिक प्रदर्शन का स्थान दरबार बन गया था। अपने अधिकार क्षेत्र में शामिल सत्ता की समस्त विभिन्न हस्तियों के प्रदर्शन के लिए सुल्तान जहाँ जाता था, अपने दरबार को वहीं ले जाता था। दरबार सफर में काफी समय बिताता था खासकर युद्ध के समय। शासक का भ्रमणशील दरबार एक स्थायी सांस्क तिक विशेषता बन गया था, और बाद की शताब्दियों में भ्रमणशील प्रशासक, कर–संग्रहकर्ता और राजनेता कारगर ढंग से आधुनिक युग के भ्रमणशील सुल्तान बन गए।

31.7 राजा का व्यक्तित्त्व

सुल्तान के परिजन (सेवा में उपस्थित परिचारकों का समूह), राजचिह्न धारण करने वाला विशेष सुविधाभोगी वर्ग और राजा व उसका परिवार उसकी महानता के प्रतीक थे। सुल्तान सार्वजनिक शिष्टाचार और सीमित व्यवहार का पालन करते थे, ताकि अधीनस्थ

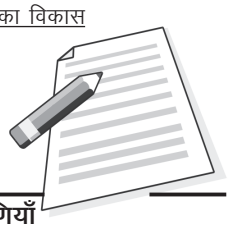

अपनी हद पार न करें। सुल्तान को लगातार अपना प्रभुत्व दर्शाने के लिए सबसे बड़ा, सबसे धनी, सर्वाधिक अलंक त, निरंकुश और शरीर पर मूल्यवान चीजें धारण किए रहाना होता था। विजयनगर के राय अपने शरीर को विदेश व्यापार से प्राप्त कीमती चीजों, खासकर इत्रों और चीनी पोर्सिलेन जैसी कीमती वस्तुओं से सजाकर खुद को 'पूर्वी' और 'पश्चिमी' महासागरों के स्वामी' कहते थे। सुल्तान का घर उसके शरीर का एक बड़ा रूप था, जो संचय, प्रभुत्व और नियंत्रण की ताकत दर्शाता था और धन–संपदा, मूल्य और रुचि को दर्शाता करता था। उस महान प्रभावशाली असरकारक सुल्तान की उपभोग की आडम्बरपूर्ण आदतें दक्षिण एशिया में राजनीतिक जीवन का स्थायी रूप बन गईं।

सुल्तान के व्यक्तित्व की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं सार्वजनिक तौर पर दिखाई देने वाले घरेलू प्रदर्शनों में, और सबसे बढ़कर शादी–ब्याहों में उभरती थीं। शादियां उनके राजनीतिक जीवन की बड़ी घटनाएँ होती थीं, क्योंकि शादी राजनीतिक गठजोड़ का सबसे सुरक्षित तरीका थीं। पादशाहनामा में युद्ध और शादियां कलाकारों द्वारा सबसे ज्यादा विस्तार से चित्रित किए गए हैं। यहाँ तक कि ऐसे में मुगल साम्राज्य भी एक पारिवारिक मामला जैसा बन जाता था। महल के अंदरूनी गुप्त क्षेत्रों में परिवार के सदस्य स्थितियों को प्रभावित करने में होड़ लगाए रहाते थे और गुप्त योजनाओं में शरीक रहाते थे, जो अक्सर अपने चरम बिंदु पर पहुंचकर उत्तराधिकार की लड़ाई में तब्दील हो जाती थीं, जिनमें रिश्तेदार एक–दूसरे को मार डालते थे, जैसा कि महभारत नामक महाकाव्य में देखने को मिलता है। घर में सुल्तान का सम्मान उसकी मां, पत्नियां, पुत्रियों और बहनों के निष्कलंक सद्गुणों पर निर्भर करता था। जनता की नजर से दूर महल की औरतें परदे के पीछे रहाती थीं और एकांत में रहाने वाली ये परदानशीं महिलाएं सुल्तान का सद्गुण बन गई थीं। औरतों के एकांतवास की प्रथा हिंदू और मुसलमान दोनों के विशिष्ट वर्गों में समान रूप से फैल गई थी, जो समाज के समस्त स्तरों पर सुल्तानों के लिए आदर्श बनते थे।

31.8 अभिजात वर्ग

सुल्तान विभिन्न पदवियों की खोज में रहाता था, जो व्यक्तिगत हैसियत बताने के अलावा नैतिक उद्गमों और सांस्क तिक संबंधों की सूचना देता है। हर सुल्तान अपने प्रति वफादारी रखनेवाले अभिजातों का एक दल बनाना और संगठित करना चाहता था। इसलिए न केवल तुर्क–ए–चहलगानी (चालीस अभिजातों का दल) ने समस्त विशेषाधिकारों और सत्ता पर कब्जा करने की कोशिश की, बल्कि सुल्तानों के प्रति व्यक्तिगत निष्ठा रखने वाले दलों, जैसे कुत्बीस (कुतुबुद्दीन ऐबक के प्रति निष्ठा रखने वाले), शम्सी (शम्सुद्दीन अल्तमश के प्रति निष्ठा रखने वाले), बल्बनी और अलाई अभिजात इस पूरी अवधि में प्रभावी बने रहो। तेरहावीं शताब्दी के प्रसिद्ध चालीस अमीरों सहित प्रायः सभी उच्च अभिजात मध्य एशिया मूल के थे, जिनमें से अनेक मध्य एशियाई बाजारों से खरीदे गए दास थे। यही बात तुर्की मामलुकों के केंद्र की अस्थिरता का कारण भी बनी। मंगोलों द्वारा मध्य एशिया और पूर्वी ईरान की लूटपाट के साथ इन क्षेत्रों के विशिष्ट राजनीतिक और धार्मिक वर्गों के और अधिक सदस्य उत्तर भारत में भेज दिए गए, जहाँ दिल्ली के सुल्तानों ने उन्हें सैनिक और प्रशासनिक संवर्गों के विभिन्न स्तरों पर प्रवेश दे दिया। अलाउद्दीन सल्तनत के भीतर राजनीतिक सहभागिता को जानबूझकर बढ़ाने वाले पहले शासकों में से एक था। उससे न केवल गैर–तुर्की मुस्लिम अमीरों के लिए, जिनमें से कुछ धर्मांतरित हिंदू भी थे, आंशिक रूप

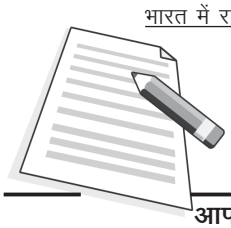

आपकी टिप्पणियाँ

से सत्ता के दरवाजे खोल दिए, बल्कि राजनीतिक दुनिया के भीतर इसे तर्कसंगत भी ठहराया। अलाउद्दीन और उसके बेटे दोनों ने महत्त्वपूर्ण हिंदू शासकों के परिवारों में शादी की और ऐसे अनेक शासकों को दरबार में प्रवेश दिया गया तथा उनका सम्मान किया गया। तुगलकों के शासन–काल में गैर–मुस्लिम भारतीय उच्च और अत्यंत उत्तरदायित्व पूर्ण पदों पर बिठाए गए, यहाँ तक कि उन्हें प्रांतों का हाकिम तक बनाया गया। मुहम्मद बिन तुगलक प्रशासन में हिंदुओं को शामिल करने की योजना बनाने वाला पहला मुस्लिम शासक था।

अकबर के शासन–काल के पहले तीन दशकों के भीतर उच्चतम श्रेणी के शाही लोगों ने बहुत ज्यादा विकास किया। चूंकि मध्य एशियाई अमीर राजसत्ता के साथ सत्ता की हिस्सेदारी करने की तुर्की–मंगोल परंपरा में पले – बढ़े थे—जो मुगल केंद्र को अपने खुद के इर्द–गिर्द संरचित करने की अकबर की महत्त्वाकांक्षा के अनुरूप व्यवस्था नहीं थी – अतः सम्राट का प्रमुख लक्ष्य उनकी ताकत और असर घटाना था। सम्राट ने नए मानदंडों को अपनी सेवा में आने के लिए प्रोत्साहित किया और ईरानी मुगल अभिजात वर्ग का एक महत्त्वपूर्ण भाग बनने के लिए आ गए। अकबर ने भारतीय प ष्ठभूमि के नए लोगों की भी तलाश की। मुगलों के मुख्य विरोधी होने के कारण भारतीय अफगानों को बेशक दूर रखा गया पर बरहा के बुखारी सईदों और भारतीय मुस्लिमों में से कांबुओं की सैनिक और नागरिक पदों के लिए खास तौर से तरफदारी की गई। इससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात थी मुगल अभिजात वर्ग में हिंदू राजपूत नेताओं की भर्ती। यहाँ भारतीय–इस्लामी इतिहास में पूर्णतः नया कदम नहीं था पर एक बड़ा कदम जरूर था, जिसने मुगल तानाशाही और स्थानीय निष्ठुर शासकों के बीच संबंधों के एक मानक प्रतिमान की शुरुआत की।

31.9 कार्यालय और पदानुक्रमिक संरचना

न तो दिल्ली सल्तनत की सरकार और न ही मुगल साम्राज्य की सरकार दास जैसी थी। दोनों सरकारें संगठित नौकरशाही थीं, जिनमें विभागों और अधिकारियों का नियमित श्रेणीकरण था। नागरिक या सैनिक कोई भी कार्यालय वंशानुगत नहीं था, इसलिए अधिकारी राजा द्वारा अपनी इच्छानुसार नियुक्त, स्थानांतरित और बर्खास्त किए जाते थे और वे केवल उसी के प्रति जवाबदेह थे। सल्तनत में सुलतान के ठीक बाद सरकार के सारे मामलों की देखभाल के लिए वजीर का दफ्तर था। मुगल अपने प्रधानमंत्री को वकील कहते थे, जो बाद में वजीर या दीवान का पर्यायवाची हो गया था। सुल्तानों ने दीवाने–अर्ज (सैनिक विभाग) की स्थापना की, जिसका प्रमुख अरीज–ए–मुमालिक होता था, जबकि मुगलों के शासन–काल में मीर बक्शी सेना और शाही प्रतिष्ठान के सामान्य प्रशासन का प्रभारी होता था। सल्तनत में धार्मिक और परोपकार के मामले दीवान–ए–रिसालत नामक विभाग देखता था, जिसका प्रधान सदर–उस–सुदूर (मुख्य सदर) होता था। जहाँ तक कार्यालय का ताल्लुक था, मुगलों ने उसका वही नाम जारी रखा। दोनों शासनों ने प्रधान काजी (मुख्य न्यायाधीश) और सदर के कार्यालयों को मिला दिया था। सल्तनत में मुशारिफ–ए–मामलिक (महालेखाकार), मुशौफी–ए–मामलिक (महालेखापरीक्षक), दबीरे–ए–खास की अध्यक्षता वाला दीवाने–ए–इंशा (राज्य का पत्राचार विभाग)

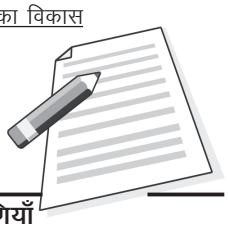

और बरीद–ए–मुमालिक (गुप्तचर विभाग का प्रधान) कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यालय और विभाग थे।

31.10 प्रांतीय प्रशासन

सल्तनत में मुक्ती या वली सूबों के प्रभारी थे। सूबों में आय और व्यय पर नियंत्रण रखने के लिए एक साहिबे–दीवान भी होता था, जिसकी सहयता मुशर्रिफ और कारकुन करते थे। तेरहावीं शताब्दी के अंत में प्रशासनिक प्रभाग के रूप में शिक का उदय हुआ जो बाद में सरकार के नाम से भी जाना गया। न्याय के लिए सूबों में काजी और सदर की अदालतें कार्यरत थी। मुगल साम्राज्य 15 सूबों में बँटा था—इलाहबाद, आगरा, अवध, अजमेर, अहमदाबाद, बिहार, बंगाल, दिल्ली, काबुल, लाहौर, मुल्तान, मालवा, खानदेश, बरार और अहमदनगर। कश्मीर और कंधार काबुल के जिले थे। सिंध, जिसे उस समय थट्टा कहा जाता था, मुल्तान सूबे का एक जिला था। उड़ीसा बंगाल का हिस्सा हुआ करता था। सूबे एक समान क्षेत्र या आमदनी वाले नहीं होते थे। हर सूबे में एक हाकिम, एक दीवान (राजस्व और वित्त अधिकारी), एक बख्शी (सैनिक कमांडर), एक सदर (धार्मिक प्रशासक), एक काजी (न्यायाधीश) और केंद्र सरकार को सूचना पहुंचाने वाले एजेंट होते थे। विभिन्न अधिकारियों के बीच (खासकर हाकिम और दीवान के बीच) शक्तियों का विभाजन शाही प्रशासन में एक महत्त्वपूर्ण कार्य–सिद्धांत था। मुगलकालीन सूबे जिलों (सरकारों) में भी बंटे थे। हर जिले में एक फौजदार (एक सैनिक अधिकारी जिसके कार्य मोटे तौर पर कलक्टर जैसे थे), एक काजी, एक बितिक्ची (प्रधान लिपिक) और एक खजानेदार (कोषपाल) होते थे। न्याय की व्यवस्था अदालतों की एक श्रेणी द्वारा की जाती थी जो ग्राम पंचायत से लेकर (काजी, अमीरे–दाद और मीर अदल के तहत्) परगना, सरकार और प्रांतीय अदालतों और अंततः मुख्य सदर व काजी और सबसे अंत में खुद सम्राट तक जाती थी। सल्तनत और मुगल दोनों के शासन में कोतवाल स्थानीय स्तर पर कानून का पालन करानेवाला था।

31.11 इक्ता, जाग़ीर और मनसब

सल्तनत में इक्ता और मुगलों के तहतजाग़ीर राजस्व एकत्र करनेवाले अधिकारियों के रूप में प्रसिद्ध हुए, जिसे राज्य की ओर से इक्तादार और जागीरदार अपना वेतन प्राप्त करने के उद्देश्य से वसूल करते थे। किंतु उनके न्यायिक अधिकार सम्राट की खुशी पर निर्भर थे। मुक्ती या इक्तादारों से कानून और व्यवस्था बनाए रखने और अपनी इक्ता से राजस्व एकत्र करने के अलावा जरूरत के समय सुल्तानों को सैनिक सहायता प्रदान करने की अपेक्षा की जाती थी। राजस्व का यहाँ आबंटन आमतौर पर आनुवंशिक नहीं होता था और हस्तांतरणीय था। इसी प्रकार मनसब व्यवस्था मुगल साम्राज्य की सार्वजनिक सेवा के संगठन पर आधारित थी। यह न तो आनुवंशिक थी, न ही पदानुक्रमिक। मनसब का शाब्दिक अर्थ है दर्जा या पद, जिसे अधिकारी के व्यक्तिगत गुणों और हैसियत (जात) तथा उसके द्वारा रखे जानेवाले दस्ते (सवार) के मुताबिक तय किया जाता था। आमतौर पर मनसबदारों को एक इलाका दे दिया जाता था, जिसे जागीर कहते थे, जिसका अनुमानित राजस्व (जमा) उसके जात और सवार दोनों मनसबों के वेतन के बराबर होता था, हालांकि कुछ मनसबदारों को शाही खजाने से नकद भुगतान भी किया जाता था।

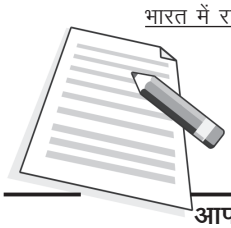

आपकी टिप्पणियाँ

31.12 कर-व्यवस्था

सल्तनत की कर–प्रणाली में ख़राज (कुल उपज के छठे भाग से लेकर एक तिहाई तक), जज़िया (आजीविका के स्वतंत्र साधन रखनेवाले वयस्क गैर–मुस्लिम पुरुषों पर सैनिक सेवा के बदले लगाया जानेवाला कर) और जक़ात (परोपकार के उद्देश्य से धनी मुस्लिमों से वसूला जानेवाला कर) जैसे कर और खम या गनीना (युद्ध में की गई लूट) और अन्य परिवहन और चुंगी शुल्क और साथ में प्राक तिक संसाधन आय के मुख्य साधन थे। चौधरी मुकद्दम और खूत गांव के राजस्व संग्रहकर्ता थे, जो आमिलों, शिकदारों और सूबे के मुक्तियों के अधीन काम करते थे। खालिस भूमि का राजस्व केवल सुल्तान के खजाने के लिए सुरक्षित था। मुगलों ने इस व्यवस्था में सुधार किया, विशेषकर भूमि राजस्व के क्षेत्र में। शेरशाह सूरी द्वारा लागू की गई माप की प्रणाली जब्त अकबर द्वारा अपनाई और सुधारी गई। राजस्व–निपटान की अंतिम पद्धति आइने–दहसाला किसी खेत विशेष के पिछले दस वर्षों की सालाना उपज के औसत पर आधारित थी। भूमि मापने के एक नए गज गजे–इलाही से भूमि–सर्वेक्षण में एकरूपता आई। भूमि की उत्पादकता, फसल का स्वरूप, कीमतें और सिंचाई–सुविधाएं सरकार की राजस्व की मांग का नकद मूल्य निश्चित करने के अन्य प्रमुख कारक थे। लगान चुकाने का विकल्प विभिन्न प्रणालियों के जरिये कार्यान्वित किया जा सकता था। भूमि का स्वामित्व सदैव किसान के पास रहाता था।

31.13 सेना

सल्तनत और मुगल राज्य दोनों सेना पर आश्रित थे, जिसका मुख्य बल घुड़सवार सेना थी। सुल्तानों के तहतअरीज–ए–मुसालिक और मुगल सम्राटों के तहतमीर बख्शी सेना के प्रभारी थे, किंतु शासक खुद सारी सशस्त्र सेनाओं पर नियंत्रण रखता था। एक नियिमत स्थायी सेना रखनेवाला बलबन पहला शासक था। अलाउद्दीन खिलजी ने इस व्यवस्था को और मजबूत किया, जिसने घोड़ों को दागकर चिह्नित करने की प्रणाली लागू की। दिल्ली सल्तनत में शाही घुड़सवार सेना हशम–ए–कल्ब या अफ्वाज–ए–कल्ब कहलाती थी। हशम–ए–अत्राज प्रांतीय स्तर पर पदस्थ घुड़सवार सेना थी। यहाँ सेना दशमलव प्रणाली के आधार पर संगठित की जाती थी। मुगल सेना ऊपर वर्णित मनसब प्रणाली के आधार पर संगठित की जाती थी। अहदी सीधे सम्राट के नियंत्रण के अधीन शाही घुड़सवार सैनिक होते थे। बाबर के आगमन के बाद भारत में तोपखाने तेजी से विकसित हुए। घेरेबंदी अर्थात् किसी किलेबंद जगह को घेरकर उस पर हमला करने की प्रक्रिया के अलावा किलों पर भारी बंदूकें जड़ी रहाती थीं। विशाल संख्या में होने के बावजूद पैदल सेना में लड़ाकू और गैर–लड़ाकू दोनों वर्ग शामिल रहाते थे। लड़ाकू लोग मुख्यतः तोड़ेदार बंदूकों वाले लोग होते थे, जिन्हें बंदूकची कहा जाता था। अकबर के समय तक पैदल सेना में तोड़ेदार बंदूकों वाला दस्ता भी शामिल किया जाने लगा था। दिल्ली के सुल्तान और मुगल दोनों युद्ध के मैदानों में हाथियों का इस्तेमाल करते थे। नौसेना सदैव भारतीय शासकों का कमजोर पहलू बनी रही।

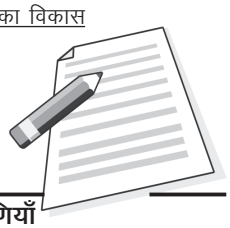

आपकी टिप्पणियाँ

31.14 मुद्रा-प्रणाली

सुल्तानों के शासन में इल्तुतमिश से लेकर आगे तक 175 ग्रेन का चांदी का टका मानक सिक्का बना रहा मुद्रा प्रणाली हालांकि द्विधातुक थी और तांबे का एक समानांतर सिक्का भी प्रचलन में था, जिसकी मूलभूत इकाई जीतल थी। चौदहवीं शताब्दी में 48 या 50 जीतल एक टके के बराबर माने जाते थे। सुल्तानों ने सोने–चांदी के सिक्के भी जारी किए, और सोने के निर्गम भी बरकरार रहो। चांदी का सिक्का कभी जारी न करनेवाले लोधियों ने 145 ग्रेन का एक भारी सोने का सिक्का जारी किया, जिसे बहलोली कहा जाता था। चांदी का रुपया जारी कर और टके को पूर्णतः तांबे का सिक्का बनाकर शेरशाह सूरी ने द्विधातुक प्रणाली स्थापित की। अकबर से लेकर मुगलों ने यह व्यवस्था जारी रखी, उनका रूपए का वजन 178 ग्रेन (औरंगजेब के जमाने में 180) होता था जिसमें मिश्रधातु 4 प्रतिशत से ज्यादा कभी नहीं हुई। तांबे में उन्होंने 323 ग्रेन वजन के दाम ढाले, जो मूलतः शेरशाह के टके के आधे होते थे। अकबर के अंतिम वर्षों में एक रूपया 40 दामों का होता था, जो आगे चलकर रुपए का कागजी मूल्य बन गया। असल में रुपए का तांबागत मूल्य सत्रहवीं शताब्दी में घटता गया। मुगलों ने भी सोने के सिक्के जारी किए, जिन्हें मोहर या अशर्फी कह जाता था, पर वे आमतौर पर बाजार में इस्तेमाल नहीं किए जाते थे। मुगलों की सिक्का–ढलाई में बहुत धात्विक शुद्धता और एकरूपता रहाती थी। ढलाई इस अर्थ में 'निःशुल्क' थी कि कोई भी सोना–चांदी टकसाल में ले जाकर मामूली शुल्क पर सिक्के ढलवा सकता था।

पाठगत प्रश्न 31.3

कोष्ठक में से सही शब्द चुनकर रिक्त स्थान भरिएः

1. सम्राट ने नए तत्त्वों को अपनी सेवा में आने के लिए प्रोत्साहित किया और _____ मुगल अभिजात वर्ग का एक महत्त्वपूर्ण भाग बनने के लिए आ गए। (अफगानी, ईरानी, तुर्क)

2. सल्तनत में सरकार के सारे मामले देखने के लिए सुल्तान के ठीक बाद _____ का कार्यालय था। (मुख्य सदर, मुख्य न्यायाधीश, वजीर)

3. मुगल काल में _____ राजस्व एकत्र करने वाले दफ्तर के रूप में विकसित हो गया जो उसे राज्य की ओर से वसूल करता था। (मसब, सदर, जागीर)

4. सुल्तानों के समय इल्तुतमिश और उसके बाद _____ ग्रेन वजन का चांदी का टका (सिक्का) मानक सिक्का था। (175, 200, 225)

इस प्रकार मध्यकालीन राज्य का विकास विजयों और समन्वय के साथ एक लगातार बढ़नेवाली प्रक्रिया थी। शासन की कला में कुछ मध्य एशियाई संस्थाएं शुरू की गईं, पर साथ ही पिछली प्रथाओं से भी ज्यादा छेड़छाड़ नहीं की गई। जहाँ तक प्रशासन के संगठन और शासक वर्ग का संबंध है, यह कोई अखंड ढांचा नही था। सत्ता के एकमात्र

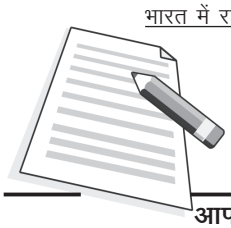

आपकी टिप्पणियाँ

स्रोत के रूप में हर राजा को अपने वंश का स्थायित्व और द ढ़ता सुनिश्चित करने के लिए बदलते समीकरणों और हिताधिकारी समूहों में संतुलन स्थापित करना पड़ता था। लेकिन एक मिश्रित संस्क ति के विश्वासों का हमेशा ध्यान रखा जाता था।



आपने क्या सीखा

गुप्त राज्य के पतन के बाद भारतीय राज्यतंत्र ने विकेंद्रीकरण और विभिन्न क्षेत्रीय राज्यों का उदय देखा तेरहावीं शताब्दी में उत्तर भारत में एक नए प्रकार के राजवंशीय क्षेत्र का उदय हुआ। दिल्ली सल्तनत की उत्पत्ति मुहम्मद गोरी के विजयों से हुई है, जिसने 1151 में गजनी को हटाया। उसकी सेनाओं ने मुलतान, सिंध, पेशावर और लाहौर को जीता। बाद में इल्तुतमिश को उत्तर भारत में तुर्की विजयों का वास्तविक नेत त्वकर्ता माना गया।

1246 में राजनीतिक स्थिति में बदलाव आया जब गयासुद्दीन बलबन ने काफी ताकत हासिल कर ली थी। पहले सुल्तान का नायब (उप) और बाद में खुद सुल्तान (शासन 1266–87) रहा बलबन अपने समय की सबसे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक हस्ती था। 1296 में जलालुद्दीन खिलजी की उसके के महत्त्वाकांक्षी भतीजे और उत्तराधिकारी अलाउद्दीन खिलजी द्वारा हत्या कर दी गई। अलाउद्दीन खिलजी के शासन–काल (1296–1316) में सल्तनत ने संक्षेप में साम्राज्य का स्वरूप ग्रहण कर लिया। किंतु अलाउद्दीन की म त्यु के पांच वर्षों के भीतर खिलजियों ने अपनी सत्ता खो दी।

गयासुद्दीन तुगलक (1320–25) और मुहम्मद बिन तुगलक ने सल्तनत के उच्च बिंदु को चिह्नित किया और पूरे भारत पर राज करना चाहा यह सतत केंद्रीकरण और विस्तार का समय था।

1526 में मध्य एशिया से आए बाबर ने भारत में मुगल वंश की स्थापना की। उसकी दिल्ली और गंगा घाटी और बाद में पंजाब से बंगाल तक की जीतों ने उसे पादशाह की फारसी पदवी ग्रहण करने का हकदार बना दिया। उसका बेटा हुमायूँ शेरशाह से हार गया और अफगानिस्तान लौट गया। शेरशाह की म त्यु के बाद 1555 में हुमायूँ ने दिल्ली को जीत लिया और दुर्घटनावश उसकी म त्यु हो गई। उसका तेरहा वर्षीय बेटा अकबर गद्दी पर बैठा और उसने अपने संरक्षक बैरम खाँ के मार्गदर्शन में लाहौर, दिल्ली, आगरा और जौनपुर के फौजी किलों वाले शहर जीते। अकबर ने 1556–1605 तक राज किया। उसका अधिकार–क्षेत्र काबुल, कश्मीर, पंजाब से गुजरात, बंगाल और असम तक फैला था। उसका बेटा जहाँगीर (1605–1627), पोता शाहजहाँ (1627–1658) और परपोता औरंगजेब (1658–1707) उसके उत्तराधिकारी थे। अपनी चरम अवस्था में मुगल साम्राज्य का भारतीय इतिहास में संसाधनों पर अभूतपूर्व अधिकार था।

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियां इस उपमहाद्वीप में यूरोपीय और गैर–यूरोपीय व्यापारिक संगठनों की स्थापना और विस्तार लेकर आई, मुख्य रूप से विदेश में मांग वाली भारतीय वस्तुओं की खरीद के लिए।

इस पाठ में आपने मध्यकालीन राज्य के स्वरूप, राजत्व, शाही दरबार और अभिजात वर्ग के बारे में भी जाना। इसके अलावा आपने प्रांतीय प्रशासन, कर लेने की प्रक्रिया, मध्यकालीन सेना और मुद्रा–प्रणाली के बारे में भी जानकारी प्राप्त की।

पाठांत प्रश्न

1. मुहम्मद गोरी की भूमिका का संक्षेप में वर्णन किजिए?
2. बलबन और खिलजी के युग की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख किजिए?
3. "मुहम्मद बिन तुगलक के शासन ने सल्तनत के उत्थान और उसके पतन की शुरूआत दोनों को चिह्नित किया।" टिप्पणी किजिए?
4. सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के दौरान मुगलों के शासन का मूल्यांकन किजिए?
5. मध्यकालीन राज्य के स्वरूप की जांच किजिए?
6. राजा के व्यक्तित्त्व का क्या अर्थ है?
7. प्रांतीय प्रशासन पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

31.1

1. 1186
2. 1175, 1182 और 1186
3. उत्तर भारत
4. 1290
5. 1296

31.2 रिक्त स्थान भरो

1. तैमूर, चंगेज खान
2. 1555
3. 1707, सक्षम, केंद्रीक त
4. मुगल, शरियत

31.3 कोष्ठक ( ) में से सही शब्द चुनकर रिक्त स्थान भरोः

1. ईरानी

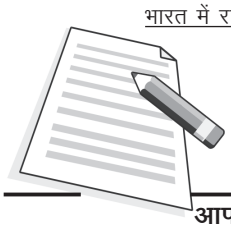

आपकी टिप्पणियाँ

2. वजीर
3. जागीर
4. 175

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. अनुच्छेद 31.2 देखें
2. अनुच्छेद 31.2 देखें
3. अनुच्छेद 31.2 देखें
4. अनुच्छेद 31.3 देखें
5. अनुच्छेद 31.4 देखें
6. अनुच्छेद 31.5 देखें
7. अनुच्छेद 31.10 देखें

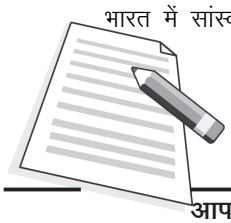

31

सांस्क तिक संप्रेषण

जब आप छोटे थे तो आपके दादा–दादी ने आपको राजा–रानियों, जादुई घटनाओं और पशु–पक्षियों की कहानियां तथा पुराने जमाने की अन्य कहानियां जरूर सुनाई होंगी। उनमें से अनेक कहानियां रामायण और बाइबल जैसे महाकाव्यों और धार्मिक ग्रंथों से या फिर पंचतंत्र या अलिफ लैला जैसे कथा–संग्रहों से ली गई हैं। इन कहानियों के माध्यम से हम सबने अपनी सांस्कृतिक विरासत के अनेक पहलुओं को अपनाया। संस्कृति विभिन्न तरीकों से संप्रेषित की जाती है–मौखिम रूप से, लिखित रूप से, संगीत के माध्यम से, और आजकल फिल्मों और टेलीविजन द्वारा भी।



उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- भाषण लेखन और मुद्रण सांस्कृतिक संप्रषेण में किस तरह सहायक होते हैं इसके बारे में समझा सकेंगे;
- सांस्कृतिक संप्रेषण की कुछ पद्धतियों को सूचीबद्ध कर सकेंगे;
- विभिन्न विचारों को संप्रेषित करने में संगीत के उपयोग का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए विभिन्न सांस्कृतिक रूपों का इस्तेमाल किस प्रकार किया गया था, इसकी व्याख्या कर सकेंगे।

31.1 संस्कृति कैसे संप्रेषित की जाती है

क्या आप भाषा के बिना विश्व की कल्पना कर सकते हैं? भाषा मानव–समाज की मूलभूत विशेषता है। यह लोगों के लिए एक–दूसरे को समझने का साधन ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक विचारों के संप्रेषण का माध्यम भी है। आपस में बोली जानेवाली भाषा लोगों को एक–दूसरे से जोड़ती भी है और उनकी एक–दूसरे से अलग पहचान भी बताती है। पंजाब के लोग अपनी समान भाषा के कारण परस्पर जुड़ते भी हैं, पर उन लोगों से अलग भी दिखते हैं, जिनकी मात भाषा पंजाबी नहीं। क्या आप जानते हैं कि पंजाबी पाकिस्तान की भी दो सबसे ज्यादा बोली जानेवाली भाषाओं में से एक है?

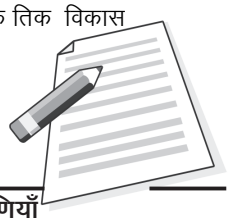

उपमहाद्वीप में विभिन्न देशों के लोगों द्वारा बोली जानेवाली एक अन्य भाषा बँगला है।

भाषा और संस्कृति का प्रसार भौगोलिक कारकों से प्रभावित होता है। आस–पड़ोस के क्षेत्रों में रहनेवाले लोग समान या मिलती–जुलती भाषाएँ बोलते हैं। हजारों मील दूर रहनेवाले लोगों की मात भाषा बहुत अलग होती है। वह इसलिए कि परिवहन के आधुनिक साधन विकसित होने से पहले दूर–दूर तक फैले इलाकों में संप्रेषण कठिन था। संस्कृतियाँ अपेक्षाकृत अलग–अलग विकसित होती थीं और बहुत भिन्न होकर रह जाती थीं।

घने जंगलों वाले और पहाड़ी इलाकों में संप्रेषण आज भी कठिन है। एक पहाड़ी या घाटी के एक तरफ रहनेवाली जनजाति को उसके दूसरी तरफ कुछ ही किलोमीटर दूर रहनेवाली जनजाति के बारे में हो सकता है, पता तक न हो। इसलिए उनके द्वारा बोली जानेवाली भाषाएँ बहुत भिन्न हो सकती हैं।

लेकिन उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे क्षेत्रों में, जहाँ के विशाल मैदान नदियों द्वारा आपस में अच्छी तरह जुड़े हैं, लोग प्राचीन काल में भी आसानी से यात्राएं कर लेते थे। इसलिए उनमें नियमित अंतःक्रिया की वजह से समान भाषाएं और रीति–रिवाज विकसित हो गए।

यहाँ तक कि जहाँ विशाल क्षेत्रों में हिंदी या तमिल जैसी एक ही भाषा बोली जाती है, वहाँ एक जिले से दूसरे जिले में उसके भिन्न रूप पाए जाते हैं। उनमें से कोई भी रूप इतना भिन्न नहीं कि उसे अलग भाषा कहा जा सके, इसलिए उन्हें उस भाषा की बोलियां कहा जाता है।

उच्चरित भाषा संप्रेषण के सबसे महत्त्वपूर्ण साधनों में से एक थी और अभी भी बनी हुई है। लेकिन लिपि के आविष्कार ने संप्रेषण की व्यापकता बढ़ा दी। संदेश अब दूर–दूर तक भेजे जाने लगे और बाद तक सुरक्षित रखे जाने लगे।

भारत में लिपि 4000 वर्ष पहले ज्ञात थी। हड़प्पा की लिपि आज तक पढ़ी नहीं जा सकी है। 1800 ईसा पूर्व के आसपास हड़प्पा सभ्यता के पतन के साथ लिपि भी खो गई। लिपि की जानकारी तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में पुनः प्रकट हुई। ब्राह्मी नामक यह लिपि समस्त आधुनिक भारतीय लिपियों की जननी है।

प्रारंभ में शासकों और अमीर लोगों ने महत्त्वपूर्ण दस्तावेज चट्टान की सतहों, पत्थरों के फलकों और ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण करवाए थे। कपड़ा, चमड़ा, पेड़ की छाल जिसे भोजपत्र कहा जाता था और ताड़ के पत्ते जो तालपत्र कहलाते थे, लिखने के काम आते थे।

आपके विचार में प्रारंभिक समय में किस तरह की पुस्तकें हुआ करती थीं? धार्मिक ग्रंथ होते थे जो पुजारियों द्वारा प्रयोग में लाए जाते थे। कानून की किताबें, जिन्हें शास्त्र कहा जाता था, राजाओं और उनके मंत्रियों के लिए लिखे जाते थे। अमीरों के मनोरंजन के लिए नाटकों और काव्यों की रचना की जाती थी। जाहिर है कि ज्यादातर किताबें केवल विशेषाधिकारप्राप्त थोड़े लोगों के लिए ही होती थीं।

लेकिन तब महाभारत (जिसके बारे में आपने पाठ संख्या 30 में पढ़ा है) जैसे महाकाव्य, जातक कथाओं और हितोपदेश आदि में संग हीत लोकप्रिय कथाएं और पुराणों में बड़ी संख्या में शामिल मिथकीय आख्यान भी थे। इनमें से ली गई कहानियां पेशेवर

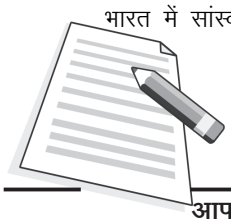

आपकी टिप्पणियाँ

कथावाचकों, भाट–चारणों और यहाँ तक कि स्थानीय मंदिर के पुजारियों द्वारा भी मौखिक रूप से संप्रेषित की जाती थीं। कहानियां सुनाने के दौरान समय के साथ उनमें अनेक भिन्नताएं पैदा हो गईं। इसलिए आज हम लोकप्रिय आख्यानों के अनेक रूप देखते हैं। इस तरह पुस्तकों ने अनेक लोगों के जीवन को स्पर्श किया, बावजूद इसके कि बहुत कम लोग ही लिख–पढ़ सकते थे।

हर पुस्तक की प्रति हाथ से तैयार करनी पड़ती थी। ये हस्तलिखित प्रतियां पांडुलिपि कहलाती हैं। पांडुलिपि–लेखन मध्यकाल में एक विशिष्ट कला बन गई। लिपिक सुंदर हस्तलेख इस्तेमाल करते थे, जिसे खुशनवीसी कहा जाता था। प ष्ठ अक्सर सुंदर चित्रों से सजाए जाते थे। पांडुलिपियों की प्रतियां तैयार करना, एक श्रमसाध्य प्रक्रिया थी, इसलिए बहुत कम प्रतियां ही तैयार की जा सकीं।

मुद्रण की शुरुआत 16वीं शताब्दी में हुई। पुस्तकें अब कम समय और लागत में बहुत बड़ी संख्या में तैयार की जाने लगीं। लेकिन चूंकि बहुत कम लोग ही पढ़े–लिखे थे, अतः तात्कालिक प्रभाव सीमित था। 19वीं शताब्दी में एक ज्यादा नाटकीय परिवर्तन हुआ, जब राष्ट्रवादियों और समाज–सुधारकों ने छापेखाने और मुद्रण–प्रौद्योगिकी का भरपूर प्रयोग किया।

भारत में पहला समाचारपत्र 1760 में ईस्ट इंडिया कंपनी के एक अधिकारी द्वारा अंग्रेजी में प्रकाशित किया गया। इसके बाद अन्य अनेक लोगों ने समाचारपत्र प्रकाशित किए। ये समाचार पत्र भारत में अंग्रेजों को यूरोप के बारे में सूचना देने का काम करते थे।

19वीं शताब्दी के प्रारंभ में अनेक समाचारपत्र देशी भाषाओं में छपने शुरु हो गए। वे राष्ट्रवादियों द्वारा छापे जाते थे, जिनके मन में भारतीयों का हित था। समाचार और विचार चंद शिक्षितों तक ही नहीं, बल्कि उनके माध्यम से अन्य अनेक लोगों तक पहुंचाए जाते थे। अनेक चिंतकों ने देखा कि भारत पर ब्रिटिशों के अधिकार को तभी खत्म किया जा सकता है, जब पहले भारतीय समाज की परंपरागत बुराइयां खत्म कर दी जाएं। इन सुधारकों ने जनमत तैयार करने के लिए सीधे अभियान ही नहीं चलाया, बल्कि प्रेस का भी इस्तेमाल किया। बंगाल के राजा राममोहन राय ऐसे ही एक सुधारक थे।

1821 में राजा राममोहन ने बँगला में 'समाचार कौमुदी' नामक समाचार पत्र का और 1822 में फारसी में 'मीरातुल अकबर' तथा अंग्रेजी में 'ब्राह्मनिकल मैग्जीन' का प्रकाशन शुरु किया। इन समाचारपत्रों के जरिये उन्होंने स्त्री–शिक्षा और विधवा–पुनर्विवाह की वकालत की और सती तथा जाति–प्रथा की बुराइयों पर हमले किए। उन्होंने विश्व के प्रमुख धर्मों की सर्वोत्तम शिक्षाओं पर आधारित अपनी एक आदर्श समाज की कल्पना को रेखांकित करने वाले अनेक पर्चो भी छापे। उन्होंने ब्रह्म समाज नामक संप्रदाय की स्थापना भी की, जिसमें बंगाल के बहुत से शिक्षित और प्रगतिशील लोग शामिल हुए। छापेखाने की बदौलत ही राममोहन के विचार इतने बड़े जनसमूह तक पहुंच सके। प्रेस की ताकत का अंदाजा आप इस बात से लगा सकते हैं कि समाज–सुधार के उनके विचारों का विरोध करने के लिए 1822 में एक प्रतिद्वंद्वी अखबार 'चंद्रिका' भी प्रकाशित होने लगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाचारपत्र और पत्रिकाएं केवल दुनिया की घटनाओं के बारे में सूचना ही नहीं देते, बल्कि हमारे सोच–विचार के तरीके को भी गढ़ते हैं। विचारों और

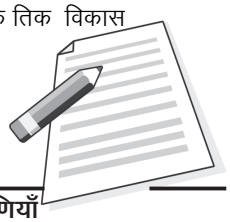

द ष्टियों का आदान–प्रदान बेशक अति प्राचीन काल से होता रहा है। किंतु संप्रेषण के आधुनिक रूपों के संदर्भ में खास बात यह है कि विचारों का संप्रेषण एकतरफा हो गया है। किसी समाचारपत्र का मालिक जहाँ अपने पाठकों के विचारों को प्रभावित कर सकता है, वहीं पाठक उसके विचारों को प्रभावित नहीं कर सकते। क्या आप वैश्वीकरण से इसकी समानता देखते हैं, जिसके बारे में आप पाठ संख्या 29 में पढ़ आए हैं।

पाठगत प्रश्न 31.1

1. किस लिपि से ज्यादातर आधुनिक भारतीय लिपियां निकली हैं?

2. प्रारंभिक समयों में लिखी गई पुस्तकों के दो प्रकारों के नाम बताइए।

3. पांडुलिपि–निर्माण महंगा क्यों था?

4. सही या गलत का निशान लगाइए :
   (क) भाषा संप्रेषण का साधन नहीं है।
   (ख) हितोपदेश कहानियों का एक संग्रह है।
   (ग) राममोहन 19वीं शताब्दी में प्रेस का इस्तेमाल करनेवाले अकेले सुधारक थे।
   (घ) लिपि ने लंबी दूरी के संप्रेषण को संभव बना दिया।

31.2 संस्कृति के वाहक के रूप में संगीत

संगीत और न त्य संस्कृति की प्रारंभिक अभिव्यक्तियों में शामिल हैं। गीत और न त्य में साथ देने के लिए प्रारंभिक मनुष्य ताली बजाता था या ताल मिलाने के लिए छड़ी से धरती को पीटता था। क्रमिक रूप से अनेक प्रकार के ढोल और बाजे इस्तेमाल किए जाने लगे। गरबा गुजरात के, कथकली केरल के और गिद्दा तथा भांगड़ा पंजाब के लोकन त्यों के उदाहरण हैं। ये न त्य त्यौहार मनाने, महत्तवपूर्ण समारोह आयोजित करने और विभिन्न प्रकार की भावनाएं व्यक्त करने के लिए और कभी–कभी विरोध के एक तरीके के रूप में भी किए जाते थे और आज भी किए जाते हैं।

लोक गीतों में वसंत, वर्षा के आगमन या अनाज पकने का उत्सव मनाया जाता है, जो सबके सब कृषि–चक्र पर केंद्रित हैं। राजगीरों और कुम्हारों के गीत भी होते हैं। आपने भारी बोझ उठाए चिनाई–कारीगरों को गाते और उनके दल को उन्हें ध्यान से सुनते देखा होगा, जिनके बोल उनके काम से संबंधित होते हैं।

स्त्रियों द्वारा स्त्रियों से संबंधित गीत भी खूब मिलते हैं, जिनमें परदेस गए प्रेमी की प्रेमिका का दर्द, शादी के बाद पीहर छोड़कर ससुराल जाती लड़की की पीड़ा, यहाँ तक कि सास–बहू के झगड़ों का भी वर्णन होता है।

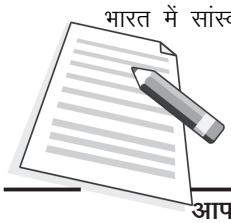

आपकी टिप्पणियाँ

लोकसंगीत स्वभावतः सहभागितापूर्ण होता है। वह लोगों के अनुभव के साथ विकसित होता है। इसलिए लोक कला के बारे में यह कहा जा सकता है कि उसका 'उपयोग' उसके जनकों द्वारा ही किया जाता है।

लोक–संस्कृति किसी श्रोता–वर्ग या दर्शक–वर्ग के लिए नहीं होती। तथापि, आधुनिक युग में इस संस्कृति का मूल उद्देश्य बदल गया है। इसलिए कभी–कभी आप लोक–न त्य मंच पर होता पा सकते हैं, जिन्हें दर्शक देख रहे होते हैं।

पाठ संख्या 29 में आपने शास्त्रीय संस्क ति के बारे में पढ़ा था। शास्त्रीय अथवा शास्त्रीय संगीत, संगीत का अति विकसित रूप है, क्योंकि वह सूक्ष्म नियमों पर आधारित होता है। उसे संगीत का व्याकरण कहा जा सकता है। उसके गायन या वादन (किसी वाद्य पर) के लिए लंबे समय तक गहन प्रशिक्षण अपेक्षित है। किंतु उसे सुनकर हर कोई खूब आनंदित हो सकता है। वस्तुतः फिल्मों और लोकगीतों की अनेक धुनें शास्त्रीय रागों या उनके सरलीक त रूपों पर ही आधारित हैं। सदियों से शास्त्रीय और लोक–संगीत दोनों ने गहन अंतःक्रिया की है और एक–दूसरे को सम द्ध किया है, यहाँ तक कि कभी–कभी दोनों के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना मुश्किल हो जाता है।

शास्त्रीय संगीत को पहले राजाओं ने संरक्षण प्रदान किया। प्रसिद्ध संगीतकार तानसेन मुगल सम्राट अकबर के नवरत्नों में से एक था।

आजकल व्यावसायिक घराने और राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय सांस्क तिक संगठन शास्त्रीय संगीत को संरक्षण प्रदान करते हैं।

संगीत के इन दोनों प्रकारों से जुड़ा संगीत धार्मिक प्रयोजनों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। वस्तुतः अनेक लोक और शास्त्रीय गीतों का विषय धार्मिक होता है।

भारत में धार्मिक संगीत का सबसे पहला उदाहरण सामवेद में मिलता है। इस 3000 साल पुराने ग्रंथ में बलि देते समय गाए जाने वाले वैदिक राग हैं।

मध्यकाल से भक्ति और सूफी संतों की कविताएं उनके अनुयाइयों और आम आदमी द्वारा गाई जाती थीं। ये गीत आज के भजनों और कव्वालियों से समानता रखते हैं। इन गीतों में अपने ईश्वर के प्रति निष्ठा और प्रेम व्यक्त हुआ है। कभी–कभी उनमें सांसारिक समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए देवी सहायता की कामना भी की जाती है। कव्वालियों और भजनों का अक्सर एक शास्त्रीय आधार और लोकप्रिय अथवा लोक–रूप होता है।

भजन कभी–कभी आम आदमी के अनुभवों से संबंध रखते हैं। उदाहरण के लिए, कबीर के दोहों में बार–बार उनके बुनकरी के आनुवंशिक व्यवसाय का संदर्भ आता है।

कव्वालियां खास तौर से दरगाहों अर्थात् सम्मानित सूफी संतों के मकबरों से संबंध रखती हैं। गुरूद्वारों में सिखों के पवित्र ग्रंथ 'ग्रंथ साहिब' को संगीत के रूप में गाया जाता है। ग्रंथ साहिब 10 सिख गुरूओं और साथ ही अनेक भक्ति व सूफी संतों के वचनों का संकलन है।

ग्रंथ साहिब का गायन करनेवाले व्यक्ति को न केवल धार्मिक प्रशिक्षण, बल्कि शास्त्रीय संगीत का भी प्रशिक्षण लेना होता है। इसीलिए वे 'रागी' कहलाते हैं।

संगीत का एक अपेक्षाकृत नया रूप है फिल्मी संगीत। प्रारंभ में फिल्मी संगीत शास्त्रीय और लोक–संगीत पर आधारित होता था। अनेक पुराने, लोकप्रिय फिल्मी गीत भारतीय और पश्चिमी शास्त्रीय संगीत की धुनों पर आधारित हैं। किंतु फिल्मी संगीत ने कुछ नई विशेषताएं भी विकसित कीं। उसने भारतीय वाद्यों के अलावा मूलतः पश्चिमी शास्त्रीय संगीत से संबंध रखनेवाले ऑर्केस्ट्रा का इस्तेमाल किया। और आजकल तो हर दिन फ्यूजन संगीत की नई किस्में विकसित हो रही हैं।

'छाया' फिल्म का लोकप्रिय गाना 'इतना ना मुझसे तू प्यार बढ़ा' 18वीं शताब्दी के ऑस्ट्रियन संगीतकार मोजार्ट की सिंफनी पर आधारित है।'मुगले–आज़म' के प्रायः सभी गाने शास्त्रीय हिंदुस्तानी संगीत पर आधारित हैं। उदाहरण के लिए, 'मुहब्बत की झूठी कहानी' वाला गाना राग दरबारी कनद पर आधारित है।

फिल्मी गाने न केवल फिल्म के विषय, बल्कि प्रौद्योगिकीय चिंतन पर भी निर्भर करते हैं। शताब्दी के प्रारंभ में प्रारंभिक रिकॉर्डिंग प्रक्रिया एक बार में केवल 3–1/2 मिनट चल सकती थी। इसलिए एक फॉर्मेट विकसित हुआ, जिसके द्वारा गाना 3 से 3–1/2 मिनट तक चलता था। प्रौद्योगिकीय उन्नति के साथ अब रिकॉर्डिंग लगातार घंटों तक संभव हैं, लेकिन फिल्मी गानों ने स्थापित फॉर्मेट बरकरार रखा है। अगली बार जब आप रेडियो पर कोई गाना सुनें, तो खुद उसका समय ज्ञात कर सकते हैं।

संस्कृति की समस्त अभिव्यक्तियों की तरह संगीत भी विचार को आगे बढ़ाता है। बंगाल के बाउलों ने परंपरागत रूप से अपने गीतों के माध्यम से विश्व–बंधुत्व और निस्वार्थता के अपने संदेश फैलाए हैं।

भक्ति–गीत न केवल उपासकों की भावनाओं को व्यक्त करते हैं, बल्कि अन्य लोगों को भी अपने समूह में शामिल कर लेते हैं। आज वैश्विक गांव में, जिसके बारे में आप पाठ संख्या 29 में पढ़ आए हैं, संगीत एक महत्त्वपूर्ण पुल के रूप में काम कर रहा है। नए रूपों का समोवश करते समय यह याद रखना आवश्यक है कि हम संगीत की अपनी सम द्ध विरासत को न खोएं।

पाठगत प्रश्न 31.2

1. लोकगीतों और न त्यों में किसका उत्सव मनाया जाता है?

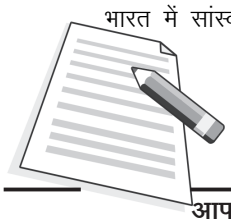

आपकी टिप्पणियाँ

2. रिक्त स्थान भरिए

(क) _____ के लिए गहन प्रशिक्षण जरूरी है।

(ख) भक्ति और सूफी संतों की रचनाए _____ और _____ कहलाती हैं।

(ग) बंगाल के बाउल _____ और _____ के गीत गाते हैं।

3. सही या गलत के निशान लगाइएः

1. लोकन त्य केवल मंच पर किए जाने के लिए होते हैं।
2. शास्त्रीय और लोक–संगीत ने एक–दूसरे के साथ कभी अंतःक्रिया नहीं की।
3. फिल्मी संगीत कभी–कभी शास्त्रीय धुनों पर आधारित होते हैं।

भारत और बाहरी दुनिया के बीच संपर्क दूसरी शताब्दी ई.पू. से दूसरी शताब्दी ई. के बीच बढ़ा। राजनीतिक और वाणिज्यिक अंतःक्रिया ने विचारों के आदान–प्रदान की ओर अग्रसर किया और सामाजिक व सांस्क तिक विकास व्यापक हुआ। बौद्ध धर्म नई परिस्थितियों के अनुकूल था और उसने भारतीय–यूनानियों और मध्य एशियाई लोगों को अपना अनुयायी बनाया। धर्मप्रचारक मठवासियों ने व्यापारियों के साथ यात्राएं कीं और मध्य एशिया में दूर–दूर के क्षेत्रों में मठ स्थापित किए। वहाँ से बौद्ध धर्म और आगे चीन तक फैल गया।

यूनानियों के साथ अंतःक्रिया ने मूर्तिकला का विकास प्रशस्त किया। प्रारंभ में बुद्ध को स्तूपों के प्रवेशद्वारों की नक्काशी में एक चक्र, कमल और पीपल के पेड़ आदि द्वारा केवल प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता था। अब वे अपोलो जैसे यूनानी देवताओं की तरह मानव रूप में प्रस्तुत किए जाने लगे।

इसी के समानांतर एक जटिल मिथक विकसित हुआ। पुनर्जन्म के लोकप्रिय विश्वास ने बुद्ध के सैकड़ों पिछले जीवनों में विश्वास की शुरुआत की। बुद्ध के ये पिछले जन्म बोधिसत्व कहलाते थे। बोधिसत्वों की कल्पना पूर्णतः अपने साथ रहनेवाले प्राणियों के कल्याण के लिए चिंतित रहनेवाले दयालु व्यक्तियों के रूप में की गई। उपासक अपनी समस्याओं की समाप्ति के लिए उनसे प्रार्थना कर सकते थे और सांसारिक कठिनाइयों में उनकी सहायता कर सकते थे।

31.3 सांस्कृतिक रूप और बौद्ध धर्म का प्रसार

आपने पढ़ा है कि धर्म हमारी सांस्कृतिक विरासत की विभिन्न विशेषताओं में से एक है। संस्कृति के माध्यम से धार्मिक विचार स्वतः संप्रेषित हो सकते हैं। आइए, बौद्ध धर्म का उदाहरण लेते हैं।

बुद्ध छठी शताब्दी ई.पू. में हुए। उन्होंने उपदेश दिया कि संसार का स्वरूप दुःखपूर्ण है और इससे मुक्त होने के लिए इच्छा पर काबू पाना होगा। उन्होंने अपने अनुयाइयों को सरल और सदाचारपूर्ण जीवन जीने और परम संयम तथा विलासिता के बीच मध्यम मार्ग अपनाने के लिए कहा।

बुद्ध का संदेश आम आदमी द्वारा तेजी से स्वीकार कर लिया गया, क्योंकि उन्होंने जनभाषा प्राकृत में संवाद किया, जबकि ब्राह्मण संस्कृत बोलते थे, जिसे आम आदमी नहीं समझता था।

बौद्धों ने अनेक धार्मिक और सांस्कृतिक प्रथाएं भी अपना लीं और उनके अनुकूल हो गए। उदाहरण के लिए, व क्षों की पूजा एक लोकप्रिय प्रथा थी। बौद्धों ने कहा कि व क्षों की पूजा बोधगया स्थित बोधिव क्ष की पूजा के समान है। बौद्ध परंपराओं के अनुसार बुद्ध ने वहाँ व क्ष के नीचे बैठकर ध्यान किया था और ज्ञान प्राप्त किया था।

म तक के अवशेषों के ऊपर स्मारक के रूप में गोल टीले बनाना एक अन्य लोकप्रिय प्रथा थी। म तक के रिश्तेदार और मित्र इन टीलों पर पूजा किया करते थे। बुद्ध के अनुयाइयों ने इस प्रथा को अपना लिया और स्तूप या टीले बनाए, जिनमें अक्सर बुद्ध के स्म तिचिह्न रहते थे, जैसे कि उनके दांत या ऐसी चीज़ें, जिनके बारे में यह माना जाता है कि बुद्ध ने उनका इस्तेमाल किया था।



चित्र 31.1 बुद्ध

जब बौद्ध धर्म फैला तो बौद्ध भारतीय–यूनानियों के संपर्क में आए, जो उपमहाद्वीप के उत्तर–पश्चिम में बस गए थे। अपने देवताओं को मानवों के रूप में प्रस्तुत करना यूनानियों की पुरानी परंपरा थी। बौद्धों ने इस परंपरा को भी अपना लिया और बुद्ध को उसी रूप में प्रस्तुत करने लगे।

बिडाल–कुक्कुट जातक (बिल्ली और मुर्गे की जातक कथा) एक छोटी सी जातक कथा है, जो इस प्रकार है–बिल्ली मुर्गे से कहती है कि वह उससे शादी करना चाहती है। उसकी योजना मुर्गे को पेड़ से नीचे उतारकर खाने की है। पर मुर्गा समझदार है और 'शादी' करने से इंकार कर देता है। बौद्ध उपदेशक बताते हैं कि अपने एक पिछले जन्म में बुद्ध ही वह समझदार मुर्गा थे। इस कथा की मूर्तियों के रूप में जीवंत प्रस्तुति भरहुत (मध्य भारत) में देखें।

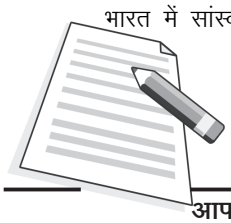

आपकी टिप्पणियाँ

बौद्धों ने सैकड़ों लोकप्रिय लोक–कथाएं भी अपना लीं। बौद्ध परंपरा में वे जातकों अथवा बुद्ध की पूर्व जन्म–कथाओं के रूप में जानी जाती हैं। उन्हें बुद्ध के पिछले जन्मों और जीवनों की कहानियां माना गया। इनमें से अनेक कथाएं मूर्तियों के रूप में भी चित्रित की गई हैं।

जातक कथाएं अजंता की गुफाओं की दीवारों पर और सांची के स्तूप (मध्य प्रदेश) के इर्द–गिर्द रेलिंग पर बने चित्रों में भी चित्रित की गई हैं। इन स्थानों पर आनेवाले और इन कलाकृतियों को देखनेवाले स्त्री–पुरुषों के मन में पहले सुनी इन कथाओं की याद ताजा हो जाया करती होगी। साथ ही, इन कथाओं के माध्यम से उन्हें बौद्ध धर्म की शिक्षा भी दी जाती रही होगी।

अपना संदेश फैलाने के लिए विभिन्न सांस्कृतिक साधनों का उपयोग करनेवाले बौद्ध शिक्षक अकेले नहीं थे। अगर हम ईसाई, हिंदू, इस्लाम और जैन धर्म सहित अपनी प्रमुख धार्मिक परंपराओं पर नजर डालें तो पाएंगे कि उनकी दीर्घकालिक सफलता का श्रेय उन अनेक तरीकों को जाता है, जिनसे उन्होंने अपने संदेश संप्रेषित किए, जैसे कि संगीत, चित्र, कथावाचन और उपासना–केंद्र निर्मित करने के लिए प्रयुक्त वास्तुकला की विभिन्न शैलियां।

देवी माता की पूजा के इर्द–गिर्द केंद्रित प्राचीन और लोकप्रिय प्रजनन–उपासनाएं भी बौद्ध धर्म के बढ़ते मिथकशास्त्र में शामिल कर ली गई। प्रत्येक बोधिसत्व एक स्त्री–देवता से जुड़ा था, जिसे तारा कहते थे।

बोधिसत्व इन देवियों के माध्यम से कार्य करते माने जाते थे। पुरूष और महिला शक्तियों का यह मेल अनेक प्रजनन–संप्रदायों की मुख्य विशेषता है। लोक–विश्वासों और प्रथाओं के ऐसे सांस्क तिक अभिप्रायों को अपनाने से बौद्ध धर्म को अपनाना आसान हो गया।

इन गतिविधियों ने जहाँ बौद्ध धर्म की लोकप्रियता बढ़ाई, वहीं बुद्ध की मूल, सरल शिक्षाएं लगभग भुला दी गई। बुद्ध ने चमत्कार दिखने से द ढ़तापूर्वक मना किया था और पूजे जाने के प्रयासों का विरोध किया था। लेकिन अब वे एक देवता माने जाने लगे और बोधिसत्वों द्वारा किए जानेवाले चमत्कारों की कहानियां विश्वास का आधार बन गईं।

बौद्ध धर्म धीरे–धीरे अपने जन्म के देश में ही लुप्त हो गया, सिर्फ इसलिए नहीं कि उसकी मूल, सरल शिक्षाएं खो गईं, बल्कि इसलिए भी कि मठवासियों का जनता से संपर्क नहीं रह गया था, क्योंकि शासकों और व्यापारियों ने मठों को धनवान बना दिया था। नए बौद्ध ग्रंथ संस्क त में लिखे जाने लगे जो आम आदमी की समझ से बाहर थे।

पाठगत प्रश्न 31.3

1. बुद्ध ने किस भाषा में उपदेश दिए थे?

2. किसके संपर्क से मानव के रूप में बुद्ध की मूर्तियों की प्रस्तुति प्रारंभ हुई?

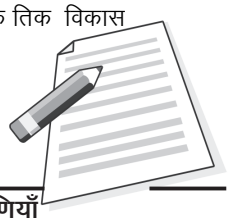

3. जातक कथाएं क्या हैं?

_____

4. रिक्त स्थान भरिए :

   1. स्तूपों की नक्काशी में बुद्ध _____, _____, _____ आदि के रूप में प्रतीकात्मक तौर पर प्रस्तुत किए जाते थे।
   2. ताराएं _____ से जुड़ी स्त्री–देवता थीं।
   3. _____ गोल टीले थे, जिनमें बुद्ध या महत्त्वपूर्ण मठवासियों के स्म तिचिह्न रहते थे।



आपने क्या सीखा

भाषा सांस्कृतिक विचारों की वाहिनी है। संस्कृति का प्रसार जलवायु, भाषा के उच्चारित और लिखित रूप, अभिलेखों, मुद्रण, समाचार पत्र–पत्रिकाओं जैसे कारकों से प्रभावित होता है।

भाषा के साथ–साथ संगीत और न त्य भी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियां हैं। संगीत की सार्वभौमिक अपील है। उसके लोक और शास्त्रीय दोनों रूपों ने संस्कृति को सम द्ध किया है, क्योंकि वे भी विचारों को वहन करते हैं।



पाठांत प्रश्न

1. संस्कृति के संप्रेषण के कौन से साधन हैं?
2. संस्कृति के संप्रेषण में भाषण, लेखन और मुद्रण के महत्व का मूल्यांकन कीजिए?
3. विभिन्न विचार संप्रेषित करने में संगीतकारों का क्या महत्व है?
4. संस्कृति के विभिन्न रूपों ने बौद्ध धर्म के प्रसार में किस प्रकार सहायता की?



पाठगत प्रश्नों के उत्तर

31.1

1. ब्राह्मी
2. धार्मिक ग्रंथ और शास्त्र
3. वे हाथ से लिखी जाती थीं।
4. (क) गलत, (ख) सही, (ग) गलत, (घ) सही

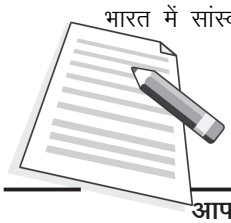

आपकी टिप्पणियाँ

31.2

1. प्रकृति में परिवर्तन की घटनाओं और जीवन के हर्ष–विषाद का
2. (क) शास्त्रीय संगीत
   (ख) भजन; कव्वालियां
   (ग) विश्व–बंधुत्व; निस्स्वार्थता
3. (क) गलत, (ख) गलत, (ग) सही

31.3

1. प्राकृत
2. यूनानियों के
3. बुद्ध की पूर्व जन्म–कथाएं
4. (क) चक्र, कमल और पीपल के पेड़
   (ख) बोधिसत्व
   (ग) स्तूप



32

औपनिवेशिक राज्य

जब ब्रिटेन ने भारत की प्रभुसत्ता यानी सर्वोच्च शक्ति अपने हाथ में ली, तो शाही–औपनिवेशिक संबंध इस आधार पर स्थापित होने लगे थे। भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना स्थानीय भारतीय शासकों की अपनी सत्ता पर नियंत्रण रखने में अक्षमता या पिछड़ेपन के कारण हुई थी। औपनिवेशिक राज्य का राजनीतिक अधिकार अपनी सत्ता बनाए रखने और लागू करने के अनेक उपकरणों से प्राप्त हुआ, जो औपनिवेशिक नीति के निर्माण की पूर्व–शर्त थी। यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि कैसे जनता पर शासन को वैध बनाया गया और कैसे औपनिवेशिक राज्य की सत्ता जनसाधारण के लिए देखने योग्य बनाई गई।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- औपनिवेशिक राज्य का अर्थ और स्वरूप समझा सकेंगे;
- भारत में औपनिवेशिक उद्देश्यों को स्मरण कर सकेंगे;
- औपनिवेशिक नियंत्रण के तत्त्वों की पहचान कर सकेंगे; और
- औपनिवेशिक शासन के प्रतीकों और प्रभावों की खोज कर सकेंगे।

31.1 पृष्ठभूमि

अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। इससे उत्पन राजनीतिक शून्यता को बंगाल, हैदराबाद, अवध, पंजाब और मराठा राज्य जैसे क्षेत्रीय राज्यों के उदय ने भरा। लेकिन ये क्षेत्रीय शक्तियां राजनीतिक स्थिरता प्रदान नहीं कर सकीं, जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत में क्षेत्रीय साम्राज्य स्थापित करने का अवसर मिल गया। अब भारत पर औपनिवेशिक तंत्र के जरिये शासन करने के लिए संस्थाओं और विनियमों का एक ढांचा चाहिए था।

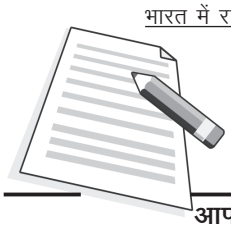

आपकी टिप्पणियाँ

(क) औपनिवेशिक राज्य का अर्थ

ब्रिटिशों की जीत से पूर्व क्षेत्रीय लोगों और परम सत्ता के बीच संबंधों को धर्म द्वारा कभी पूर्णतः परिभाषित नहीं किया गया। आर्थिक और सामाजिक संबंध का एक जाल शाही समन्वयन, संकट और पतन की अवधियों में बचा रहा, जिसने उपमहाद्वीप को परस्पर निर्भरता के एक सरल ढांचे में बाँधे रखा। परम सत्ताओं के अनेक स्तरों को रचनात्मक ढंग से समायोजित करने के एक लंबे इतिहास के बावजूद स्वतंत्र भारत में सत्ता में हिस्सेदारी बांटने के लिए किए गए शर्तों के पुनः बँटवारे ने 'राष्ट्र' के वैयत्तिक और साथ जुड़ते विचार पर आधारित क्षेत्रीय प्रभुसत्ता की एक कड़ी और स्थूल संकल्पना को देखा। औपनिवेशिक राज्य का अर्थ है एक विदेशी राजनीतिक सत्ता द्वारा किसी देश की प्रभुसत्ता (शासन और नियंत्रण करने के लिए कानूनी रूप से स्वतंत्र सत्ता) ग्रहण करना। औपनिवेशिक राज्य को शाही–औपनिवेशिक संबंध के विशेष संदर्भ में प्रभुसत्ता का एक सिद्धांत निरूपित करना था। ऐसा दुतरफा प्रक्रिया द्वारा किया जाता हैः 1. औपनिवेशिक राज्य को वैधता प्रदान करके अर्थात एक विदेशी सत्ता के अस्तित्व को न्यायसंगत ठहराकर, जो स्वतः दूसरी प्रक्रिया की ओर ले जाता है अर्थात 2. औपनिवेशिक–पूर्व देशी राजनीतिक सत्ता को उखाड़कर अथवा उसे अवैध ठहरा कर।

(ख) औपनिवेशिक राज्य का स्वरूप

ब्रिटिशों ने भारत में अपने औपनिवेशिक शासन को अपने विचारों के अनुसार समन्वित किया कि औपनिवेशिक राज्य कैसा हो सकता है, और कुछ आधुनिक विशेषताओं के साथ एक आधुनिक राज्य का उदय हुआ। जैसा कि एक आधुनिक राज्य में होता है, औपनिवेशिक सरकार के पास सेना का एकाधिकार, कर–वसूली के लिए एक केंद्रीक त प्रशासन, एक केंद्रीक त कानून–प्रणाली, प्रशासकों और नौकरशाहों का प्रशिक्षित कर्मचारी –वर्ग और स्पष्ट निर्धारित क्षेत्रीय सीमाएँ थीं। ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासकों का उद्देश्य ऐसा शासन था, जो विधि पर आधारित और विनियमों के अनुसार संचालित हो। किंतु निचले स्तरों पर, जहाँ नीतियों का कार्यान्वयन हुआ, वहाँ जाति, कुल, रिश्तेदारी और संरक्षक–आश्रित संबंधों ने स्थानीय समाज को प्रभावित करने में मुख्य भूमिका निभाई। 1947 में स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद नए राष्ट्र ने औपनिवेशिक सरकार से विरासत में प्राप्त संस्थाओं पर, अपनी संपूर्ण शक्तियों और कमजोरियों के साथ अपनी सरकार गठित की।

(ग) भारत में औपनिवेशिक उद्देश्य

19वीं शताब्दी के दौरान एक ब्रिटिश राजसी या शाही विचारधारा उभरी, जिसमें विश्व के सबसे धनी और प्रगतिशील राष्ट्र के तौर पर इंग्लैंड का यह कर्त्तव्य था कि शेष विश्व को सम द्ध बनने और उन्नति करने में उसकी मदद करे। कानून सभ्य जीवन और संपदा के निर्माण की स्थितियां पैदा करता। भारत में ब्रिटिश शासकीय विचारधारा निम्नानुसार थीः

1. भारतीय खुद पर शासन करने में समर्थ नहीं हैं।
2. ब्रिटेन का कर्त्तव्य था कि वह भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज में हस्तक्षेप अथवा उसका प्रबंधन करने का प्रयास किए बिना कानून पर आधारित एक अच्छी सरकार प्रदान करे।

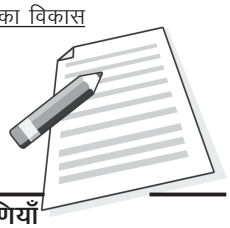

शाही सरकार की मुख्य जिम्मेदारियां निम्नानुसार देखी गईः

(क) भूमि–राजस्व की वसूली और (ख) कानूनी प्रशासन का कार्यान्वयन।

ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा की गई राजस्व–व्यवस्था के प्रकार में इस प्रचलित विचारधारा के अनुसार कि भारत में धन–संपत्ति कैसे बनाई जाए, कंपनी की सुरक्षा संबंधी जरूरतों के अनुसार और नए क्षेत्र कंपनी के नियंत्रण में आने पर प्राप्त अनुभव के अनुसार अंतर बना रहा।

औपनिवेशिक राज्य दो उद्देश्यों के लिए काम कर रहा था : (क) ब्रिटिश राजधानी की जरूरतों के अनुसार भारतीय उपनिवेश को पूर्णरूपेण अपने अधीन करना और (ख) ब्रिटिश राजधानी द्वारा भारतीय उपनिवेश का आर्थिक शोषण या उसके आर्थिक अधिशेष को अपने उपयोग में लाना। किंतु भारतीय उपनिवेश में शाही दिलचस्पी का स्वरूप पूरे समय एक जैसा नहीं रहा और वह मात भूमि की जरूरतों और ब्रिटेन के विभिन्न सामाजिक समूहों के हितों के अनुसार बदलता रहा। 1813 तक भारत में ब्रिटिश शासन के पहले चरण में ब्रिटेन के हित मुख्यतः (क) भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारिक एकाधिकार और अन्य यूरोपीय प्रतिस्पर्धियों की समाप्ति तथा (ख) कर–व्यवस्था के जरिये वित्तीय स्रोतों पर नियंत्रण में निहित थे।

ये दोनों उद्देश्य वर्तमान संस्थाओं और प्रशासनिक तंत्र को छेड़े बिना पूरे किए जा सकते थे। इस चरण में ब्रिटिश शासक परंपरागत शासकों से ज्यादा भिन्न नहीं थे और उनकी मुख्य दिलचस्पी क षि–अधिशेष को प्राप्त करने में भी। अतः इस चरण में एकसमान प्रशासनिक ढांचा निर्मित करने का या पुराने ढांचे को सुधारने तक का कोई प्रयास नहीं किया गया। न्याय–प्रणाली और प्रशासन में कोई मूलभूत बदलाव नहीं लाया गया। प्रशासन के क्षेत्र में जो मामूली परिवर्तन किए भी गए, वे केवल राजस्व–वसूली के शीर्ष पर किए गए जो बिना बाधा राजस्व–वसूली से जुड़े थे। भारत के लिए एक आधुनिक न्याय–प्रणाली और एकसमान प्रशासनिक ढांचा इस चरण में आवश्यक नहीं समझा गया, क्योंकि वह भारत में अंग्रेजी राज के पहले चरण में ब्रिटिशों के लक्ष्य की पूर्ति के लिए प्रासंगिक नहीं माना गया।

1813 के बाद परिद श्य काफी बदल गया था। ब्रिटिश अर्थव्यवस्था और समाज एक बड़े रूपांतरण से गुजर रहे थे, जिसका मुख्य कारण औद्योगिक क्रांति थी। वाणिज्यिक व्यापारिक निगम अब औद्योगिक स्वामित्व को रास्ता दे रहे थे जो ब्रिटिश समाज में प्रबल ताकत बन गया था। भारतीय व्यापार पर से ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार धीरे–धीरे खोता जा रहा था। भारत में ब्रिटिश हित अब कंपनी के हितों का प्रतिनिधित्व न करके औद्योगिक पूंजीपति वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व करते थे। ब्रिटिश उद्योगपतियों की दिलचस्पी भारत में (क) अपनी निर्मित औद्योगिक वस्तुओं के बाजार और (ख) अपने उद्योगों के लिए पटसन और कपास जैसे कच्चे माल तथा निर्यात के लिए खाद्यान्न, अफीम आदि के स्रोत के रूप में इस्तेमाल करने में थी।

इस सबके लिए भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज में कहीं अधिक गहरी पैठ और भारत के ब्रिटेन के साथ ही नहीं, बल्कि अन्य देशों के साथ होने वाले व्यापार पर भी नियंत्रण आवश्यक था। भारत से अब एक नई भूमिका निभाने की अपेक्षा की जा रही थी।

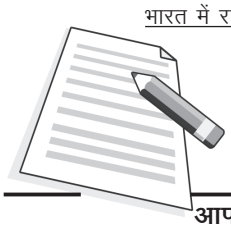

आपकी टिप्पणियाँ

परंपरागत प्रशासनिक संस्थाओं के साथ यह नई भूमिका निभाना शायद संभव नहीं था। उन्हें नई जरूरतों के मुताबिक बदलना और रूपांतरित होना था। अतः भारतीय प्रशासन के रूपांतरण की प्रक्रिया शुरू हुई। इसी प्रकार आधुनिक कानूनों की मदद से आधुनिक व्यवसाय को बढ़ावा देने, एक बाजार–अर्थव्यवस्था निर्मित करने, मुक्त वाणिज्यिक संबंध स्थापित करने और विभिन्न आर्थिक लेन–देनों को सुनियोजित करने के लिए संपूर्ण कानूनी ढांचे की कायापलट करना जरूरी था।

ब्रिटिशों के हित कई प्रकार के थे। सर्वप्रथम तो मुख्य प्रयोजन था एकाधिकारपूर्ण व्यापारिक स्थिति हासिल करना। बाद में यह महसूस किया गया कि मुक्त व्यापार की व्यवस्था भारत को ब्रिटिश वस्तुओं के लिए एक बड़ा बाजार और कच्चे माल का स्रोत बना देगी, किंतु भारत में निवेश करने वाले अथवा यहाँ बैंकिंग या शिपिंग सेवाएं बेचने वाले उद्योगपति कारगर ढंग से विशेष सुविधाओं पर नियंत्रण रखते रहे या उन पर हावी बने रहे। भारत ने ब्रिटेन के उच्च–मध्य वर्ग के एक बड़े भाग के लिए रुचिकर और लाभदायक रोजगार भी उपलब्ध कराया और उनके द्वारा घर भेजे गए धन ने ब्रिटेन के भुगतान–संतुलन और बचत की क्षमता में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। और अंत में, भारत पर नियंत्रण भूगोल, संभार–तंत्र यानी लॉजिस्टिक्स और सैनिक मानव–शक्ति की दष्टि से विश्व की सत्ता–संरचना का एक महत्त्वपूर्ण तत्व था। अंग्रेज भारत के आर्थिक विकास के खिलाफ नहीं थे अगर उससे उसके बाजारों में बढ़ोतरी होती, लेकिन अपने खुद के आर्थिक हितों या राजनीतिक सुरक्षा के साथ टकराव वाले क्षेत्रों में सहायता करने से उन्होंने इंकार कर दिया। इसलिए उन्होंने भारतीय वस्त्र उद्योग को तब तक संरक्षण प्रदान नहीं किया जब तक कि उसका मुख्य प्रतिस्पर्धी मैनचेस्टर के बजाय जापान नहीं बन गया और उन्होंने तकनीकी शिक्षा के विकास के लिए भी लगभग कुछ नहीं किया। उन्होंने संपत्ति की कुछ ब्रिटिश अवधारणाएं लागू कीं, पर अपने हितों की पूर्ति हो जाने पर उन्हें बहुत आगे नहीं बढ़ाया।

पाठगत प्रश्न 32.1

रिक्त स्थान भरिए :

1. _____ शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगल साम्राज्य का पतन हो गया।
2. _____ तक भारत में ब्रिटिश शासन के पहले चरण में ब्रिटेन के हित मुख्यतः भारत के साथ ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारिक एकाधिकार में निहित थे।
3. ब्रिटिश अर्थव्यवस्था और समाज एक बड़े रूपांतरण से गुजर रहे थे, जिसका मुख्य कारण _____ थी।
4. ब्रिटिश उद्योगपतियों की दिलचस्पी भारत को अपनी _____ वस्तुओं के बाजार के रूप में इस्तेमाल करने में थी।



चित्र 32.1 राइटर्स इमारत

32.2 वैधता के रूप

जैसा कि आप जानते हैं, ब्रिटिश राज के ठीक पहले भारत की प्रभुसत्ता मुगल वंश के पास थी। उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत तक ब्रिटिशों ने मुगल वंश के राजत्व के प्रतीकों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। 1835 तक फारसी राजभाषा बनी रही और सिक्कों पर मुगल सम्राटों का नाम चलता रहा। मुगल वंश को तोप की सलामी 1837 तक ही सुरक्षित रही। प्रभुसत्ता के इन प्रतीकों की वापसी ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से एक प्रतीकात्मक कार्रवाई थी, जो यह सूचित करती थी कि उसने भारत की प्रभुसत्ता पर कब्जा कर लिया है। ब्रिटिशों की पहले प्रांतीय राजधानियों में और फिर चुने गए आंतरिक स्थानों में उपस्थिति का अर्थ था कि जो संस्थाएँ साम्राज्य की कुछ मामलों में प्रतीक थीं, वे इस रूप में भी निर्मित की जा सकती थीं। अतः मुंबई का टापू और हुगली डेल्टा के कुछ गांव कंपनी के बाम्बे प्रांत की और फिर भारतीय साम्राज्य की भव्य राजधानियाँ बन गए। मुगल साम्राज्य का उन्नत और परिष्क त ह्रदय–प्रदेश प्रांतीय क्षेत्र बन गया। केंद्र और परिधि का पुनर्लेखन एक नए वास्तुशिल्प के औजारों से किया गया। नई संस्थाओं ने नई सत्ता चिन्हनित की। भवन नई संस्थाओं के सर्वाधिक मूर्त या भौतिक, महत्त्वपूर्ण और प्रभावी रूप थे। राजधानी, जैसे कि बंबई (अब मुंबई) में ठीक वही नजर आता था जिसका उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रांतीय नगर में अभाव था।

कंपनी (जो खुद ब्रिटिश ताज की नौकर थी और अपना कामकाज शाही चार्टर के माध्यम से चलाती थी) भारतीय सम्राट को अपना अधीनस्थ बनाना चाहती थी। अधीनस्थता की शब्दावली में भारत में ब्रिटिश अनुभव से निकले 'सर्वोच्चता', 'संरक्षण', 'सहायक भत्ता', 'अप्रत्यक्ष शासन', 'सहयोग' जैसे शब्द शामिल थे। उन्नीसवीं शताब्दी के

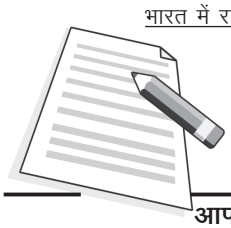

आपकी टिप्पणियाँ

प्रारंभ तक कंपनी और विभिन्न भारतीय राजसी प्रदेशों के बीच संधियों की एक श्रंखला के जरिये 'संरक्षण' व्यवस्था स्थापित हो गई। गवर्नर जनरल लॉर्ड वेलिजेली ने एक प्रणाली तैयार की, जो सहायक संधि प्रणाली के नाम से जानी गई। इस प्रणाली में लगातार हैदराबाद (1798), मराठा पेशवा (1802), नागपुर के भोंसले और ग्वालियर के सिंधिया (1803), जयपुर (1803), बड़ौदा के गायकवाड़ (1805), त्रावणकोर (1805), कोचीन (1807), कोटा (1817), जोधपुर (1818) और बीकानेर (1828) सूचीबद्ध होते गए। प्रणाली का सार था ब्रिटिश संरक्षण का वादा, जिसके लिए देशी राज्य निम्नलिखित में से किसी एक या अधिक तरीकों से भुगतान करते थे : (क) कंपनी की सेना की एक टुकड़ी के रख–रखाव की नकद लागत, (ख) राज्य के एक भाग कंपनी को सौंपा जाना, (ग) राज्य का आंशिक या पूर्ण विसैन्यीकरण यानी राज्य की सशस्त्र सेना का त्याग, (घ) कंपनी के अनुमोदन के बिना अन्य राजनीतिक शक्तियों के साथ संबंध और युद्ध पर प्रतिबंध, (च) सलाह या निर्देश देने के लिए दरबार में कंपनी के रेजिडेंट को रखने की स्वीक ति।

बल–प्रयोग अधीनता उपलब्ध होते ही राज्य के व्यवहार को समस्त अधीनस्थों के लिए दष्टिगोचर बनाया जाना आवश्यक था। औपनिवेशिक राज्य की दश्यता के लिए अपनाए गए व्यवहार 1858 में अंतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर पर उनके अपने महल में चलाए गए मुकदमे या 1877 के दिल्ली दरबार जैसे थे जिसमें ब्रिटिश प्रभुसत्ता के प्रति भारत की अधीनता सार्वजनिक तौर पर अधिनियमित की गई थी। आम जनता के लिए औपनिवेशिक राज्य की प्रतीकात्मक सांस्कतिक रचना राज्य की दूरस्थ एजेंसियों और रोजाना के अनुभवों के मार्फत की गई – दरोगा और पुलिस; कलक्टर की कचहरी में पटेल, अमीन, पटवारी और कानूनगो; नई अदालतों में ताकतवर लोगों के पक्ष में निर्णय लेते, काले कपड़े पहने अनजान भाषा (अंग्रेजी) बोलते अनजान आदमी; शहरों में औपनिवेशिक सत्ता को दष्टिगोचर बनाते विशाल औपनिवेशिक स्मारक; अक्सर छावनियों से बाहर आकर फ्लैगमार्च करते सैनिकों के दश्य और अंततः गोरी जाति के सदस्यों के समक्ष देशी समाज के उच्च लोगों के झुकने और नमन करने के नजारे भारतीय मानस में औपनिवेशिक शासन की छाप छोड़ने वाले कुछ प्रतीक थे।

32.3 औपनिवेशिक नियंत्रण की शुरुआत

औपनिवेशिक नियंत्रण के प्रारंभिक चरण के दौरान देशी नागरिक प्रशासन को बनाए रखा गया। बंगाल की विजय से पहले तक इस व्यवस्था ने बहुत अच्छा काम किया, लेकिन एक बड़े क्षेत्रीय साम्राज्य के पदाधिकारियों को पारिश्रमिक देने के तरीके के रूप में वह अक्षम थी, क्योंकि (क) लाभ का बहुत बड़ा हिस्सा कंपनी की तिजोरी में आने के बजाय निजी हाथों में चला जाता था, और (ख) एक अति लालची अल्पकालिक नीति अर्थव्यवस्था की उत्पादक क्षमता को क्षति पहुंचा रही थी, जो स्थानीय जनता को बगावत करने के लिए प्रेरित कर सकती थी और ये दोनों बातें कंपनी के दीर्घकालिक हितों के खिलाफ थीं। क्लाइव ने एक 'दोहरी' प्रणाली चलाई थी, यानी कंपनी की सत्ता और एक कठपुतली नवाब। वारेन हेस्टिंग्स ने नवाब को हटा दिया और प्रशासन सीधे संभाल लिया, लेकिन भारतीय अधिकारियों को बनाए रखा।

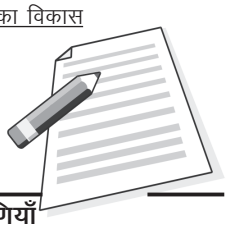

32.4 उपनिवेशवाद की विश्वास की विचारधारा और सिद्धांतकार

ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासन में बेंथमवादी उग्र सुधारवाद की एक प्रबल प्रव त्ति थी। भारतीय संस्थाओं के प्रति घोर अवमानना दर्शाने वाला भारत का एक विशाल इतिहास लिखने के बाद जेम्स मिल 1819 में कंपनी का एक वरिष्ठ अधिकारी बना। 1831 से 1836 तक वह ईस्ट इंडिया कंपनी का मुख्य कार्यपालक अधिकारी यानी सीईओ था। 1823 से 1858 तक उसके बेटे ने कंपनी के लिए कार्य किया। माल्थस हेलीबरी में अर्थशास्त्र का प्रोफेसर था, जहाँ भावी कंपनी अधिकारियों की पढ़ाई उपयोगितावाद से अत्यधिक प्रभावित थी। बेंथम से भी भारतीय संस्थाओं के सुधार के संबंध में परामर्श किया गया था। उपयोगितावादियों ने उन प्रयोगों और विचारों (जैसे सिविल सेवा में प्रतियोगिता के जरिये प्रवेश) को आजमाने के लिए भारत का जानबूझकर इस्तेमाल किया, जिन्हें वे इंग्लैंड में लागू करना चाहते थे। उपयोगितावादी मुक्त अर्थव्यवस्था यानी लेसेज फेयर के प्रबल समर्थक थे और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए राज्य के किसी भी तरह के दखल से घ णा करते थे। अतः उन्होंने अकाल की समस्याओं से निपटने के लिए बाजार की ताकतों पर भरोसा किया और कृषि को बढ़ावा देने या उद्योग के संरक्षण के लिए कुछ नहीं किया। लेसेज फेयर की यह परंपरा भारतीय सिविल सेवा में खुद इंग्लैंड से ज्यादा गहराई से अंतर्निहित थी और 1920 के अंत तक बहुत प्रबलता से जारी रही। प्रशासन दक्ष था या भ्रष्ट नहीं था, किंतु राज्य–तंत्र का स्वरूप निगरानी करने वाला जैसे था, जिसमें कुछ विकासात्मक व्यय सेना, न्याय, पुलिस और जेलों पर किया जाता था और 3 प्रतिशत से कम कृषि पर। भारत के पश्चिमीकरण के लिए ब्रिटिशों द्वारा किए गए सर्वाधिक उल्लेखनीय कार्यों में से एक था अंग्रेजी शिक्षा के एक संशोधित रूप का कार्यान्वयन। शिक्षा पर मैकाले के 1835 के कार्यव त्त का ब्रिटिश शिक्षा–नीति पर निर्णायक प्रभाव पड़ा, जो भारतीय सभ्यता के प्रति पश्चिमी बुद्धिवादी नजरिये का एक विशिष्ट उदाहरण है। ब्रिटिशों के सत्ता संभालने से पहले मुगल अदालतों की भाषा फारसी थी और मुस्लिम जनसंख्या उर्दू बोलती थी, जो फारसी, अरबी और संस्कृत का मिश्रण थी। उच्च शिक्षा ज्यादातर धार्मिक थी और अरबी और संस्कृत के ज्ञान पर जोर देती थी। कंपनी ने कलकत्ता के एक मदरसे को (1718 में) और बनारस के एक संस्कृत महाविद्यालय को (1792 में) कुछ वित्तीय मदद दी थी। 1782 से 1785 तक गवर्नर जनरल रहे वॉरेन हेस्टिंग्स ने खुद भी संस्कृत और फारसी सीखी थी और कंपनी के कुछ अन्य अधिकारी भी प्राच्य विद्या के विद्वान थे। उनमें से एक, सर विलियम जोन्स ने बड़ी मात्रा में संस्कृत साहित्य का अनुवाद किया था और 1785 में एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की स्थापना की थी।

किंतु मैकाले इस प्राच्यवाद का प्रबल विरोधी था, उसने कहा– "मेरा विश्वास है कि वर्तमान प्रणाली सच्चाई को आगे नहीं बढ़ाती है। बल्कि गलतियों की स्वाभाविक समाप्ति को और आगे तक ले जाती है। हमारा बोर्ड जनता के धन को बर्बाद करने के लिए; ऐसी किताबें छापने के लिए जिनका मूल्य उन कागजों के, जिन पर छपे हुए मूल्य से भी कम है जब वे कोरे थे। वे बेतुके इतिहास, बेतुकी तत्वमीमांसा, बेतुकी भौतिकी, बेतुकी ईश्वर–मीमांसा को क त्रिम प्रोत्साहन देने के लिए है।मुझे संस्कृत या अरबी का ज्ञान नहीं हैं पर मैंने उनके मूल्यांकन के लिए जो कर सकता था सो किया है।इस बात से कौन इंकार कर सकता है कि एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय का एक अकेला शेल्फ भी भारत और अरबी के संपूर्ण देशी साहित्य से कहीं ज्यादा मूल्यवान है।संस्कृत भाषा में लिखी

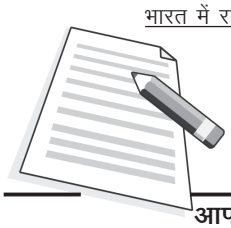

आपकी टिप्पणियाँ

किताबों से एकत्र की गई ऐतिहासिक जानकारी इंग्लैंड के प्राथमिक विद्यालयों में प्रयुक्त सबसे कम महत्त्व की पुस्तकों संक्षेपणों में पाई जानेवाली जानकारी से भी कम मूल्यवान है।

इन कारणों से मैकाले को अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में निर्णय लेने में कोई हिचक नहीं थी, पर वह आम जनता के नहीं थे। "अपने सीमित स्रोतों के चलते आम लोगों को शिक्षित करना हमारे लिए असंभव है। वर्तमान में हमें एक ऐसा वर्ग तैयार करने का भरसक प्रयास करना चाहिए, जो हमारे और उन लाखों लोगों के बीच दुभाषिए का काम कर सकें, जिन पर हम शासन करते हैं; ऐसे लोगों का वर्ग जो रक्त और वर्ण से भारतीय किंतु रुचि, आचरण और मस्तिष्क से अंग्रेज हों। देश की स्थानीय बोलियों को परिष्क त करने और उन्हें पश्चिम से आयातित विज्ञान की शब्दावली से सम द्ध करने का काम हमें उस वर्ग पर छोड़ देना चाहिए और उसे जनसंख्या के बड़े वर्ग को जानकारी देने के लिए उपयुक्त उपकरणों से सम द्ध करना चाहिए।

पाठगत प्रश्न 32.2

सही पर निशान लगाइए :

1. _____ तक फारसी मुगल वंश की प्रतीक बनी रही। (1831, 1833, 1835)
2. राजधानी, जैसे कि बंबई में ठीक वही नजर आता था, जिसका _____ शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रांतीय नगर में अभाव था। (17वीं, 18वीं, 19वीं)
3. भारत का एक विशाल इतिहास लिखने के बाद जेम्स मिल _____ में कंपनी का एक वरिष्ठ अधिकारी बन गया। (1719, 1819, 1919)
4. सर विलियम जोंस ने बड़ी मात्रा में संस्कृत साहित्य का अनुवाद किया था और _____ में एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की स्थापना की थी। (1785, 1835, 1885)

32.5 औपनिवेशिक तंत्र

1785 में कार्नवालिस ने कंपनी के ऐसे सेवकों का एक पेशेवर वर्ग तैयार कर लिया, जिनको भरपूर वेतन मिलता था, जिनके भारत में कोई व्यापारिक या उत्पादन संबंधी हित नहीं थे, जिनकी नियमित पदोन्नति की संभावनाएं थीं और जो पेंशन पाने के पात्र थे। सभी उच्चस्तरीय पद ब्रिटिशों के लिए आरक्षित थे और भारतीय उनसे बहिष्क त थे। कार्नवालिस ने अंग्रेज न्यायाधीशों को नियुक्त किया और बंगाल के हर जिले में अंग्रेज अधिकारियों को राजस्व कलेक्टर और मजिस्ट्रेट बनाया। 1806 से कंपनी अपने युवा रंगरूटों को लंदन के पास हेलीबरी में प्रशिक्षण दिलाने लगी। नियुक्तियां अभी भी संरक्षण की प्रणाली के अनुसार की जाती थीं, पर 1833 के बाद कंपनी ने अपने नामांकित उम्मीदवारों में से प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा चयन करना शुरू कर दिया। 1853 के बाद चयन पूर्णतः योग्यता के आधार पर होने लगा और परीक्षा हर अंग्रेज उम्मीदवार के लिए



खोल दी गई। परीक्षा–प्रणाली चीनी मॉडल से प्रभावित थी, जो 2,000 सालों से अच्छी तरह चल रहा था और जिसका शास्त्रीय शिक्षण और साहित्यिक सक्षमता पर समान जोर था। भारतीय सिविल सेवा में (1) अत्यधिक वेतन मिलता था और (2) राजनीतिक सत्ता भी हासिल थी जिसे इंग्लैंड में कोई नौकरशाह प्राप्त नहीं कर सकता था।

1829 में पूरे ब्रिटिश भारत में छोटे–छोटे जिले स्थापित कर इस व्यवस्था को और सशक्त बना दिया गया, जिन्हें अकेले ब्रिटिश अधिकारी प्रभावशाली ढंग से नियंत्रित कर सकते थे। ये अधिकारी अब राजस्व–कलेक्टर न्यायाधीश और पुलिस के मुखिया (जो मुगल प्रशासन के तहत अलग–अलग कार्य थे) के रूप में कार्य करते हुए पूर्णतः निरंकुश सत्ता का प्रयोग करने लगे। यह व्यवस्था बाद में पूरे ब्रिटिश साम्राज्य में शाही प्रशासन की आधारशिला बन गई। चूँकि सिविल सेवा अंततः ब्रिटिश संसद के नियंत्रण के अधीन थी और भारत में ब्रिटिश समुदाय कड़ी पारस्परिक निगरानी के अधीन था, अतः प्रशासन वस्तुतः ईमानदार था।



चित्र 32.2 भाप का इंजन

कंपनी की सेना 20,000–30,000 ब्रिटिश अधिकारियों और सैनिकों के साथ भाड़े की स्थानीय सेना थी। एशिया में यह अब तक की सबसे आधुनिक और दक्ष सेना थी। 1857 के गदर के बाद ब्रिटिश टुकड़ी का आकार बढ़ाकर कुल संख्या का एक–तिहाई कर दिया गया और 1920 के दशक में बहुत थोड़े से भारतीयों की भर्ती किए जाने तक सारे अधिकारी अंग्रेज होते थे। आम तौर पर सेना की कुल संख्या लगभग 2,00,000 थी। यह सेना मुगल सेना से अत्यधिक छोटी, किंतु बेहतर प्रशिक्षण और उपकरणों से लैस थी और रेलवे नेटवर्क (जो अंशतः सैन्य कारणों से बनाया गया था) ने उसे बेहतर गतिशीलता, बेहतर सुविधाएँ और आवश्यक सूचना प्रदान की।

प्रशासन की उच्च श्रेणियां 1920 के दशक तक लगभग ब्रिटिश बनी रहीं, जब तक कि भारतीय सिविल सेवा परीक्षाएं इंग्लैंड के साथ–साथ भारत में भी नहीं होने लगीं। इसके अलावा, अन्य नौकरशाहियों के संपूर्ण पदानुक्रम में उच्चतर श्रेणियां ब्रिटिश ही थीं, जैसे कि राजस्व, न्याय, पुलिस, शिक्षा, चिकित्सा, लोक–निर्माण, इंजीनियरी, डाक और रेल सेवाओं के साथ–साथ प्रांतीय सिविल सेवाएं। इस प्रकार भारत ने ब्रिटिश मध्य और उच्चतर वर्गों के एक बड़े हिस्से को (खास कर स्कॉटलैंड और आयरलैंड के अपने बाह्य सदस्यों को) अत्यधिक वेतन वाले कॅरियर प्रदान किए।

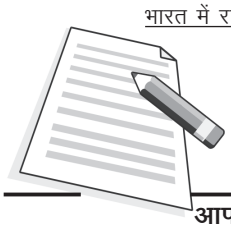

आपकी टिप्पणियाँ

1820 के दशक से 1850 के दशक तक ब्रिटिशों ने भारतीय सामाजिक संस्थाओं को बदलने और भारत का पश्चिमीकरण करने की प्रबल लालसा दिखाई। उन्होंने शिशु–हत्या और विधवाओं को जलाने की प्रथा (सती) को मिटा दिया। उन्होंने दास–प्रथा का उन्मूलन कर दिया और राजमार्गों से डकैतों को उखाड़ फेंका। उन्होंने विधवा–विवाह को वैध बना दिया और धर्म–परिवर्तन कर ईसाई बने हिंदुओं को संयुक्त परिवार की संपत्ति में अपने हिस्से पर दावा करने की अनुमति दे दी। उन्होंने ब्रिटिश कानून पर आधारित दंड–संहिता लागू की (संहिता असल में 1861 में लागू हुई), जिसने समानता के कुछ विचार लोगों के मन में बिठाने में सहायता की। नए कानून के तहत ब्राह्मण और शूद्र समान अपराध के लिए समान दंड के भागी थे। इस प्रकार कानून का राज और कानून के सामने सबकी समानता अब नए मानदंड थे।

1857 तक इस विचार को मानना संभव था कि अंग्रेज धीरे–धीरे परंपरागत भारतीय समाज को नष्ट कर देंगे और देश का पश्चिमीकरण कर देंगे। किंतु पश्चिमीकरण की अतिसक्रियतावादी नीतियों और देशी राज्यों पर कब्जा कर ब्रिटिश राज का विस्तार करने की कोशिशों से 1857 के गदर में हिंदू और मुस्लिम दोनों संप्रदायों के लोगों के बागी बन जाने पर उनका कोई नामलेवा नहीं बचा। हालांकि उसी समय जीते गए सिखों सहित निष्ठावान भारतीय सैन्य दलों की भारी मदद से गदर का सफलतापूर्वक दमन कर दिया गया, किंतु भारतीय संस्थाओं और समाज के प्रति ब्रिटिश नीति कहीं अधिक रूढ़िवादी हो गई। ताज ने सीधी जिम्मेदारी ले ली और ईस्ट इंडिया कंपनी को भंग कर दिया गया। भारतीय सिविल सेवा ने ईस्ट इंडिया कंपनी के मुकाबले नए विचारों वाले कम लोगों को आकर्षित किया और लंदन द्वारा उस पर कड़ा नियंत्रण रखा जाने लगा।

ब्रिटिशों ने बाकी देशी राजकुमारों के साथ गठजोड़ कर लिया और नए क्षेत्रों पर कब्जा करना बंद कर दिया। उनके शासन के अंत तक लगभग एक–तिहाई भारतीय जनसंख्या अर्ध–स्वायत्त देशी राज्यों के रूप में बनी रही। उनके यहाँ आधिकारिक ब्रिटिश रेजिडेंट्स होने के बावजूद वे आंतरिक नीति में काफी आजाद थे। पश्चिमीकरण के प्रयास में एक गतिरोध आ गया। जो शिक्षा–प्रणाली यहाँ विकसित हुई, वह ब्रिटेन की शिक्षा–प्रणाली का धुंधला प्रतिबिंब थी। 1857 में कोलकात्ता (कोलकाता), मद्रास (चेन्नई) और बंबई (मुंबई) में तीन विश्वविद्यालय खोले गए, पर वे केवल परीक्षा लेने वाले निकाय थे और वहां कोई पढ़ाई नहीं होती थी। उच्च शिक्षा संबद्ध महाविद्यालयों में दी जाती थी, जो दो–वर्षीय बीए पाठ्यक्रम चलाते थे जिनमें रटकर सीखने और परीक्षा देने पर जोर रहता था। पढ़ाई बीच में ही छोड़ जाने वालों का अनुपात हमेशा ऊँचा रहता था। विश्लेषण क्षमता या स्वतंत्र चिंतन को बढ़ावा देने के लिए उन्होंने कुछ नहीं किया। उन्होंने ऐसे स्नातकों का समूह तैयार किया जो अंग्रेजी की अधूरी जानकारी रखते थे किंतु इतने पश्चिमीक त हो गए थे कि अपनी स्वयं की संस्क ति से कट गए थे। 1920 के दशक तक भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षण–सुविधाएँ प्रदान नहीं करते थे और उसके बाद भी केवल एम ए के विद्यार्थियों को ही शिक्षा देते थे। इसके अलावा, भारतीय शिक्षा मुख्यतः साक्षरता के स्वरूप वाली थी, जिसमें तकनीकी प्रशिक्षण का प्रावधान यूरोपीय देशों से कम था। लड़कियों की शिक्षा को पूरी उन्नीसवीं सदी के दौरान लगभग पूरी तरह उपेक्षित रखा गया। उच्च शिक्षा अंग्रेजी में थी, इसलिए न तो पश्चिमी साहित्य के स्थानीय भाषाओं में अनुवाद का कोई आधिकारिक

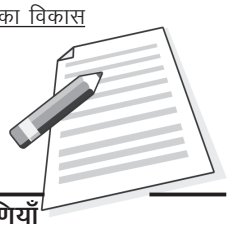

प्रयास हुआ और न ही भारतीय लिपियों का कोई मानकीकरण ही था जिनकी विविधता शिक्षित भारतीयों के बीच बहुभाषावाद में एक बड़ी बाधा थी।

प्राथमिक शिक्षा को सरकारी दायित्व के रूप में गंभीरता से नहीं लिया गया और मुख्यतः कमजोर स्थानीय प्राधिकरणों द्वारा ही उसका आर्थिक पोषण किया गया। परिणामस्वरूप जनसंख्या के एक बड़े हिस्से की शिक्षा तक कोई पहुंच नहीं बनी और 1947 में स्वतंत्रता मिलने तक 88 प्रतिशत लोग अशिक्षित थे। 1930 के दशक से इसकी प्रगति तेज हुई, लेकिन स्वतंत्रता–प्राप्ति के समय बच्चों का पांचवां हिस्सा ही प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर रहा था। सामाजिक गतिशीलता को प्रोत्साहित करने, धार्मिक अंधविश्वासों को मिटाने, उत्पादकता बढ़ाने और स्त्रियों की स्थिति सुधारने में शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती थी। इसके बदले उसका प्रयोग एक छोटे से अभिजात वर्ग को ब्रिटिशों की नकल करने और थोड़े बड़े समूह को सरकारी लिपिक बनाने में किया गया।

32.6 औपनिवेशिक राज्य के अंतर्गत बदलाव

ब्रिटिशों ने जो मुख्य बदलाव भारतीय समाज में किए, वे सब उच्च वर्ग पर किए। उन्होंने बेकार कुलीन नेताओं को व्यावहारिक तकनीकों द्वारा नौकरशाही–सैनिक स्थापना से बदल दिया जो कानून–व्यवस्था बनाए रखने में बहुत दक्ष थी। उच्च सरकारी दक्षता से राजकोषीय बोझ में भारी कमी आ गई और राष्ट्रीय उत्पाद का एक सबसे बड़ा हिस्सा जमींदारों, पूंजीपतियों और नए प्रोफेशनल वर्गों के लिए उपलब्ध हो गया। इस उच्च वर्ग की कुछ आय ब्रिटेन को भेजी जाती थी, पर अधिकांश भारत में ही खर्च की जाती थी। किंतु उपभोग का तरीका बदल गया, क्योंकि नया उच्च वर्ग अब हरम और महल नहीं रखता था और न ही महीन मलमल और सुसज्जित तलवारें धारण करता था। इसके कारण परंपरागत दस्तकारी के क्षेत्र में कुछ कष्टदायक परिणाम हुए। सरकार ने खुद रेलवे और सिंचाई में निवेश किया, जिसके कारण क षि और उद्योग दोनों के उत्पादन में व द्धि हुई। नए कुलीन वर्ग ने अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी विद्यालयों के प्रयोग के साथ एक नई जीवन–शैली स्थापित की। उनके लिए अलग उप नगरों और निवास–स्थानों वाली नई शहरी और कस्बाई सुविधाएं स जित की गई। वकीलों, डॉक्टरों, शिक्षकों, पत्रकारों और व्यवसायियों के नए पेशेवर कुलीन वर्ग ने उनकी आदतों की नकल की। इस समूह के अंतर्गत पुराने जातिगत अवरोध ढीले पड़े और सामाजिक गतिशीलता बढ़ी। जहाँ तक आम जनसंख्या का संबंध है, औपनिवेशिक राज में उसके लिए ज्यादा बदलाव नहीं हुए। ब्रिटिशों के शैक्षिक प्रयास बहुत सीमित थे। ग्रामीण समाज, जाति–प्रथा अछूतों की स्थिति, संयुक्त परिवार प्रणाली या कृषि की उत्पादन–तकनीकों में कोई बड़े बदलाव नहीं हुए। कुल उत्पादन और जनसंख्या बड़ी मात्रा में बढ़े, पर प्रति व्यक्ति आय में बहुत कम या नगण्य व द्धि हुई।

पाठगत प्रश्न 32.3

रिक्त स्थानों भरिए :

1. सभी उच्चस्तरीय पद ब्रिटिशों के लिए आरक्षित थे और भारतीय उनसे _____ थे।

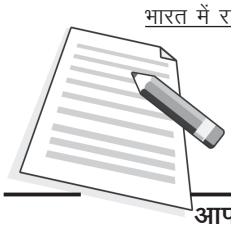

आपकी टिप्पणियाँ

2. चूंकि सिविल सेवा अंततः ब्रिटिश _____ के नियंत्रण के अधीन थी और भारत में ब्रिटिश समुदाय कड़ी पारस्परिक निगरानी के अधीन था, अतः प्रशासन _____ ईमानदार था।
3. ब्रिटिश सेना मुगल सेना से अत्यधिक _____ किंतु बेहतर प्रशिक्षण और _____ लैस थी।
4. _____ ने सीधी जिम्मेदारी ले ली और ईस्ट इंडिया कंपनी को _____ कर दिया गया।

ब्रिटिश राज्य ने अपना अलग लोकाचार विकसित किया। ब्रिटिशों ने निचली (देशी) जातियों में विवाह या खानपान नहीं किया। जीतों और गठजोड़ों के जरिए ही नहीं, बल्कि नई संस्थाओं के विकास के जरिए भी राज्य को कायम रखा गया, जिन्होंने प्रतीकात्मक ढंग से साहबों को देशी लोगों से अलग किया। छोटा आंग्ल–भारतीय क्रिओल वर्ग भारतीय अथवा स्थानीय ब्रिटिश समाज में एकीकत होने में असमर्थ होने के कारण परित्यक्त था। अंग्रेज छावनियों या सिविल लाइंस कहलाने वाले विशेष उपनगरों में स्थित अपने क्लबों और बंगलों तक सीमित रहते थे। उन्होंने मुगलों की सरकारी शानोशौकत, बड़े निवास–स्थानों और बड़ी संख्या में नौकरों की परंपरा कायम रखी। अपनी शास्त्रीय शिक्षा और व्यवसाय की अवहेलना के साथ कुलीन वर्ग कानून–व्यवस्था स्थापित करने और 'बर्बर' लोगों को राज की सीमा से दूर रखने में खुश था। स्वयं को लोकप्रिय नहीं बल्कि अच्छी सरकार देने वाले समझते हुए उन्होंने स्व–न्यायसंगत अक्खड़पन का अपना एक अलग प्रकार विकसित किया। उनके लिए 'ब्रिटिश' शब्द भौगोलिक संबद्धता खो चुका था और भारतीय उपनिवेश पर राज करने के लिए नैतिक औचित्य का उपनाम बन गया था।



आपने क्या सीखा

अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। ब्रिटिशों ने ईस्ट इंडिया कंपनी के माध्यम से भारत में एक क्षेत्रीय साम्राज्य स्थापित करने के प्रयास किए। औपनिवेशिक राज्य का अर्थ है किसी देश की प्रभुसत्ता ग्रहण करना। ब्रिटिशों ने भारत में अपने औपनिवेशिक शासन को इस बारे में अपने विचारों के अनुसार समेकित किया कि औपनिवेशिक राज्य कैसा हो सकता है। जैसा कि एक आधुनिक राज्य में होता है, औपनिवेशिक सरकार के पास सेना का एकाधिकार, एक केंन्द्रीक त प्रशासन और स्पष्ट निर्धारित क्षेत्रीय सीमाएँ थीं। 19वीं शताब्दी के दौरान एक ब्रिटिश राजसी या शाही विचारधारा उभरी, जिसमें विश्व के सबसे धनी और प्रगतिशील राष्ट्र के तौर पर इंग्लैंड का यह कर्त्तव्य था कि शेष विश्व को उन्नति करने और सुधरने में उसकी मदद करे। शाही सरकार की मुख्य जिम्मेदारियां थीं भूमि–राजस्व की वसूली और कानूनी प्रशासन का कार्यान्वयन।

बल–प्रयोग द्वारा अधीनता उपलब्ध होते ही राज्य की प्रथाओं को समस्त अधीनस्थों के लिए द ष्टिगोचर बनाया जाना आवश्यक था। औपनिवेशिक नियंत्रण के प्रारंभिक चरण के दौरान देशी नागरिक प्रशासन को बनाए रखा गया।



आपकी टिप्पणियाँ

1785 में कार्नवालिस ने कंपनी के कर्मचारियों का एक पेशेवर संवर्ग तैयार कर लिया। सभी उच्चस्तरीय पद ब्रिटिशों के लिए आरक्षित थे और भारतीय बहिष्क त कर दिए गए थे। कंपनी की सेना 20,000–30,000 ब्रिटिश अधिकारियों और सैनिकों के साथ भाड़े की स्थानीय सेना थी।

प्रशासन की उच्च श्रेणियां 1920 के दशक तक लगभग ब्रिटिश बनी रहीं, जब तक कि भारतीय सिविल सेवा परीक्षाएं इंग्लैंड के साथ–साथ भारत में भी नहीं होने लगीं। ब्रिटिशों ने भारतीय सामाजिक संस्थाओं को बदलने और भारत का पश्चिमीकरण करने की प्रबल लालसा दिखाई। उन्होंने शिशु–हत्या और विधवाओं को जलाने की प्रथा (सती) को मिटा दिया, विधवा–विवाह को वैध बना दिया और धर्म–परिवर्तन कर ईसाई बने हिंदुओं को संयुक्त परिवार की संपत्ति में अपने हिस्से पर दावा करने की अनुमति दे दी। इसके अलावा 1857 में कोलकात्ता (कोलकाता), मद्रास (चेन्नई) और बंबई (मुंबई) में तीन विश्वविद्यालय खोले गए।

अंग्रेज मुख्यतः छावनियाँ या सिविल लाइंस कहलाने वाले विशेष उपनगरों में स्थित अपने क्लबों और बंगलों तक सीमित रहते थे। ग्रामीण समाज, जाति–प्रथा, अछूतों की स्थिति, संयुक्त परिवार प्रणाली या कृषि की उत्पादन–तकनीकों में कोई बड़े बदलाव नहीं हुए।

पाठांत प्रश्न

1. औपनिवेशिक राज्य के अर्थ और स्वरूप का वर्णन कीजिए।
2. उपनिवेशवाद की विचारधारा क्या थी और सिद्धांतकार कौन थे?
3. औपनिवेशिक उपकरणों पर प्रकाश डालिए।
4. औपनिवेशिक राज्य के अंतर्गत आए बदलावों का उल्लेख कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

32.1

1. अठारहवीं
2. 1813
3. औद्योगिक
4. निर्मित

32.2

1. 1835
2. 19वीं

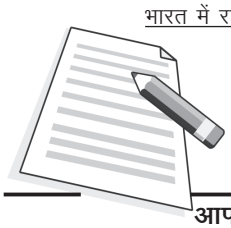

आपकी टिप्पणियाँ

3. 1819
4. 1785

32.3

1. बहिष्क त
2. संसद, ईमानदार
3. छोटी, उपकरणों
4. ताज भंग

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखे अनुच्छेद 32.1
2. देखे अनुच्छेद 32.4
3. देखे अनुच्छेद 32.5
4. देखे अनुच्छेद 32.6

HISTORY

इतिहास

(315)

Question Paper Design

Subject : History **Course : Sr. secondary**

Marks : 100 **Duration : 3 hrs**

1. **Weightage by Objectives**

2. **Weightage by types of Questions.**

Type	Number of Questions	Marks	Total	Estimated time a Candidate is expected
Long Answer Questions	5	10	50	100 Mts
Short Answer Questions	8	4	32	48 Mts
Very Short Answer Questions	4	2	8	12 Mts
Skill (map)	1	10	10	10 Mts
				10 Revision
			180	

3. **Weightage by Content**

	Objective	Level	Units / Sub – units	Marks	Mar
Difficult	Knowledge			26	
	Understanding			52	10
Average	Application / Skill			22	
					60
Easy					
					30

4. **Difficulty Level of Question – Paper**

	Objective	Level	Units / Sub – units	Marks	Mar
Difficult	Knowledge			26	
	Understanding			52	10
Average	Application / Skill			22	
					60
Easy					
					30

Difficult
(can be attempted by top students)

Average
(can be attempted by students who have regularly studied The material but may not have given sufficient time to writing)

Easy
(can be attempted satisfactorily by students who have gone through The study material)

Or

6A Evolution of state

6B Culture in India

HISTORY
इतिहास
(315)
Sample Question Paper

Time: 3 Hours **Maximum Marks: 100**

समय : 3 घण्टे **पूर्णांक : 100**

Note : (i) All Questions are compulsory. Marks are indicated against each questions.

(ii) Answer Question NOS. 1 to 4 in not more than 20 words each, Question NO. 5 to 12 in not more than 80 words each and Question NOS. 13 to 17 is not more than 200 words each.

निर्देश : (i) सभी प्रश्न अनिवार्य है। प्रत्येक प्रश्न के अंक उसके सामने अंकित है।

(ii) प्रश्न संख्या 1 से 4 तक के प्रत्येक प्रश्न का उतर 20 शब्दों में प्रश्न संख्या 5 से 12 तक के प्रत्येक प्रश्न का उतर 80 शब्दों मे और प्रश्न संख्या 13 से 17 तक के प्रत्येक प्रश्न का उतर 200 शब्दों में दीजिए।

1. संगम साहित्य से आप क्या समझते है ? 2

   What do you understand by sangam literature?

2. तमिलनाडु और केरल के तटीय राज्यों में तालाबों से सिंचाई क्यों लोकप्रिय थी ? 2

   Why was Tank irrigation popular in Coastal states of Tamilnadu and Kerala?

3. बाजार नियन्त्रण द्वारा अलाउद्दीन खिलजी किन उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहता था ? किन्ही दों का विश्लेषण कीजिए। 2

   Analyse any two aims that Allouddin Khalji wanted to fulfill by market Regulations ?

4. 'पूंजीवाद' शब्द की व्याख्या कीजिए। 2

   Explain the term Capitalism?

5. हड़प्पा सभ्यता के पतन के सन्दर्भ में दिए गए विभिन्न मतों की चर्चा कीजिए। 4

   अथवा

   पूर्व वैदिक काल को उत्तर वैदिक काल से प थक करने वाले विभिन्न कारक कौन से है ? 4

   Discuss the Various theories put forword to explain the end of Harappa civilization.

   Or

   What were the main causes that separated Early Vedic age from post Vedic age.

6. हुमायूं के समक्ष आने वाली किन्ही चार मुख्य समस्याओं की चर्चा कीजिए। 4

   अथवा

   विजय नगर साम्राज्य के सैन्य व फौजी सगंठन की चर्चा कीजिए। 4

   Discuss any four major problems faced by Humayun ?

   Or

   Discuss the Army and Military Organization of the Vijay Nagar Empire.

7. बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के बीच संघर्ष के मुख्य कारण क्या थे ? 4

अथवा

ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा अपनाई गई विभिन्न भू – राजस्व प्रणालियों कौन – कौन सी थी ? किन्ही चार का उल्लेख कीजिए। 4

What was the main causes of conflict between Sirajuddola Nawab of Bengal and British East India Company?

Or

What were the various Land – Revenue Systems adopted by British East India Company ? Mention any four.

8. ब्रिटिश शासन किस प्रकार आर्थिक रूप से भारत का शोषण कर रहा था ? राष्ट्रवादी नेताओं ने किन बिन्दुओं के आधार पर आर्थिक राष्ट्रवाद की संरचना की ? 4

अथवा

राष्ट्रवाद के विचारों को किस प्रकार सांस्क तिक क्षेत्र में अभिव्यक्त किया गया था ? उदाहरण सहित समझाइये। 4

How was British Rule economically exploiting India? On what counts nationalist leader formulated relevance of economic nationalism?

Or

How the ideas of nationalism were expressed in field of culture? Illustrate them with examples.

9. साम्राज्यवाद के विस्तार ने प्रथम विश्वयुद्व को भड़काने मे किस प्रकार का योगदान दिया था ? 4

अथवा

द्वितीय विश्व–युद्ध के बीज वर्साय में ही बो दिये गऐ थे, कैसे ? 4

How did spread of Imperialism led to the Breakout of First world war.

Or

Some of the seeds of II world war were sown at Versailles. How?

10. अक्टूबर 1929 में अमरीका में आरम्भ होने वाली महामन्दी के दो मुख्य कारणों की व्याख्या कीजिए। इसने यूरोपीय राष्ट्रों को किस प्रकार प्रभावित किया ? 4

अथवा

'ट्रूमैन के सिद्धान्त' को समझाते हुए बताइये कि इसने अमरीका की विदेश नीति पर क्या प्रभाव डाला ? इस संदर्भ में अमरीका की मार्शल योजना की व्याख्या भी कीजिए। 4

Explain the two main causes of Great Depression that hit USA in Oct. 1929. How did it affect the European nations?

Or

Explaining Truman – doctrine. Describe how did it affect American Foreign Policy ? Also explain US Marshall plan in this context.

11. "1945 से, चीन, इतिहास के शायद सर्वाधिक क्रांतिकारी अनुभव से गुजरा है जिसमें इसने स्वय को किसान बहुल स्थानीय अभिजातों (कुलीन) के वर्चस्व वाले समाज से 'पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना' कहे जाने वाले साम्यवादी राज्य मे परिवर्तित होते देखा है।" इस कथन की व्याख्या करे। 4

अथवा

पूंजीवादी औद्योगीकरण द्वारा विकासित दो नए वर्गों की संरचना की व्याख्या कीजिए। 4

"Since 1945, china has experienced propably the Greatest revolution in History, Transforming itself from a peasant majority society dominated by native elites into a socialist-state called people Republic of china". Analyse the statement

Or

Explain the formation of two new classes that emerged with capitalist Industrialization.

12. जनपदों से महाजनपदों में राज्यों की संरचना कैसे परिवर्तित हुई ? 4

अथवा

सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियां हमारे सांस्क तिक व्यवहार को कैसे प्रभावित करती हैं ? अपने द ष्टिकोण की उदाहरणों सहित व्याख्या करें ? 4

How the formation of state took place from Janepadas to Mahajanpadas?

Or

How does social and economic Situation influence our cultural practices? Illustrate your view point with examples

13. गुप्त काल की व्यवस्था का विस्त त विवरण दीजिए। 10

अथवा

आरंभिक मध्यकाल को दर्शाने वाले सामाजिक और आर्थिक बदलावों (परिवर्तनों) की चर्चा कीजिए।

Give the detailed explanation of Administrative system of Gupta period.

Or

Discuss the Social and economic changes that characterized the early medieval period.

14. दिल्ली सल्तनत की केन्द्रीय प्रशासन प्रणाली क्या थी ? उसकी मुख्य विशेषताऐं लिखिए। 10

अथवा

मुगलों का प्रशासनिक ढाचाँ कैसा था ? उसके मुख्य अभिलक्षणों को लिखियें।

What was the central Administrative system of Delhi Sultanate? Mention its salient features?

Or

What was the administrative structure under the Mughals? Mention its Salient features

15. भारत मे पश्चिमी शिक्षा के उदय का उल्लेख कीजिए। हंटर कमीशन की मुख्यें सिफारिशें क्या थी ? 10

अथवा

1857 के विद्रोह के कारणों को लिखिए। इसके मुख्य परिणाम क्या थे ?

Mention the rise of western Education in India? what were the Hunter commission recommendations.

Or

Mention the causes of Revolt of 1857? What were its consequences?

16. सविनय अवज्ञा आन्दोलन के विकास के विभिन्न चरणों की व्याख्या करे साथ ही इसको वापस लिए जाने तथा पुन; आरंभ करने के संदर्भ मे चर्चा कीजिए। 10

अथवा

भारत किस प्रकार स्वतन्त्र हुआ ? "यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति, अत्यधिक प्रसन्नता का विषय था, किन्तु यह सम्पूर्ण विजय नही थी।" चर्चा कीजिए।

Trace the development of civil Disobedience Movement and discuss its withdrawal and Continuance.

Or

How India become free? Discuss "Though attainment of freedom was a matter of great joy but it was not an absolute Victory".

17. आधुनिक काल में भारत के राष्ट्र राज्यों के विकास के विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिए। 10

अथवा

'आहार संस्क ति' पर संक्षिप्त निंबध लिखिये।

Discuss the stages of development of nation state in India in Modern times.

Or

Write a short essay on 'culture of food'.

18. (i) भारत के रेखा मानचित्र पर एक नवपाषाण कालीन स्थल तथा एक हड़प्पा सभ्यता का स्थल चिहित कीजिए । 2

(ii) निम्नलिखित मराठा शासकों की राज्य सीमा भारत के मानचित्र पर दर्शाइये। 4

सिन्धियां, होलकर, भोसले, गायकवाड

अथवा

मलिक काफूर के दक्कन की ओर जाने के किन्ही चार केन्द्रों को भारत के मानचित्र पर दिखाइये।

(iii) कोई एक फ्रांसिसी अथवा पुर्तगाली कॉलोनी भारत के रेखा मानचित्र पर चिन्हित कीजिए। 1

(iv) भारत के मानचित्र पर साबरमती आश्रम अथवा दांड़ी को चिंहित कीजिए। 1

(v) भारत के रेखा मानचित्र पर किसी एक आरंभिक राज्य (महाजनपद) को दशाईये। 1

(vi) यूरोप के रेखा मानचित्र पर प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् कोई एक नवोदित स्वतंत्र राष्ट्र दिखाईये। 1

(i) On the outline map of India mark one Neolithic site and one of Harappan civilization site.

(ii) Mark the territories of following Martha's on outline map of India.

Sindhia, Holkar, Bhosales, Gaikwad.

Or

Mark any four Important centers of Malik Kafur's march to Daccan.

(iii) Mark any one French or Portugues colony on the outline map of India.

(iv) Mark Sabarmati Ashram or Dandi on the out line map of India.

(v) On out line map of Europe indicate one new Independent country after First world war.

Marking Scheme
History Sample Paper

Ans No. 1

1. Major Source of study of south Indian Society, economy and polity during 300BC – 300AD.
2. Written in Tamil and Secular in nature
3. Produced by poets who joined together in assemblies (Sangam) patronized by chiefs and kings during first four centuries.

(Any two points)
Ch.1 Page 3

1×1 = 2

Ans No. 2

1. Rivers are seasonal
2. Peoples have to depend on tank irrigation 1×1 = 2

Ans No. 3

1. To supply commodities of daily use at reasonable price to army
2. To put a stop to the purchase of horses by horse dealer & brokers so as to purchase horses centrally and it could then be supplied to army.

1×2 = 2
P 141

Ans No. 4

Capitalism - Derived from word capital meaning accumulated Wealth and property.

Chapter 22
Page – 85

Ans No. 5 Various theories put forward:-

1. Natural calamities such as floods & earthquakes.
2. Increased aridity and drying up of river Ghaggar – Harka
3. Aryan invasions theory.
4. Civilization didn't collapse all of a sudden, but declined gradually 4×4

Or

1. Beginning of use of iron.
2. Continuous increase in population due to expansion of economy based on agriculture.
3. Change in the family composition.
4. Rise and growth of social differentiation in the form of varna system.
5. Institution of ashrama began to take shape.

(Any Four)

Ans No. 6

1. Newly conquered territories and administration was not consolidated
2. Unlike Babur, Humayun did not command respect & esteem of Mughal nobility.

3. Chaghatai nobles not inclined towards Humanyun.
4. Confronted the hostility of Afghans.
5. Humanyun had to share power with his brothers.

Any four 1× 4 = 4

P 158

Or

Vijay Nagar

1. Artillery &Horses
2. Firearms fitted on wells
3. Amera – Nayaks system
4. Feudal Nayakas 1×4 = 4

P 183 – 184

Ans No. 7

1. The misuse by the company of Imperial Farman.
2. The company's servants extended this priviledge to their own coastal trade, inter – asian trade.
3. The Fortification around Calcutta.
4. The company official also suspected that nawab was going to have an alliance with French in Bengal.

1×4 = 4

(pg 3 – 4)

Or

1. The maximization of revenue from the colony become the primary objective of British Administrative. They tried out various land revenues experiment to this aim.
2. Permanent Settlement
3. Ryotwari System
4. Mahalwari Settlement.

1×4 = 4

(pg 18 – 19)

Ans No. 8

<u>Exploitation</u>

1. Heavy taxation on peasantry
2. Unequal trade with India.

<u>Economic Nationalism</u>

1. Colonial rule harmful to interests of people
2. Powerful Nationalist agitation against exploitation 2+2 = 4

P 56 & 57

Or

1. To shun undesirable features of Indian culture like caste system, religious superstitious, priesthood,, woman discrimination
2. To oppose British encroachment in the Indian culture

Examples

Practice of sati
Remarriage of widows
Resistance to English Dress. Any two

With example
2 + 2
P 54

Ans No. 9

- Spread of imperialism in 2nd half of nineteenth century .
- Spread of colonization from 1876 to 1900
- Formation of Triple alliance and Triple Entente.
- This increased rivalries and conflicts. 1 × 4 = 4

Ch.23 page 96 – 97

Or

- Principles of peace and Freedom ignored at the Treaty of Versailles.
- Germany not invited to sign the Treaty and injustice done in form of compensation and Coal producing areas.
- Poland Problem
- Germany had to give up right on African Colonies 1 × 4 = 4

Ch.24 page 107 – 109

Ans No. 10

Great Depression

Causes – Overproduction and maldistribution
Effect on – Unemployment, Poverty and Starvation of European Nations (2 × 2) = 4

Ch. 24 page 114

Or

1. Truman Doctrine – Contain Communism to areas where it had already triumphed but not let it spread any further
2. Foreign policy changed from isolation to interventionist.
3. Marshall plan – Transfer of 10 million dollars to Europe. 1 + 1 + 2

Ch. 25 page 132

Ans No. 11

1. Mao's Policy
2. Ouster of Japanese, French, British by 1949.
3. Since 1980's promotion of free enterprise in manufacturing and commercial activities
4. Foreign investment (1 × 4) Ch.26 page 148

Or

1. Emergence of Bourgeosic and working class.
2. Bourgeoisic – Middle class, lower middle class.
3. Working class – dependent on wage labour linked directly to growth of capital industry. (2 + 1 + 1) = 4

Ch.27 page 156

Ans No. 12

Jana means region where lived the people, the Tribe.

With extension of territory, creation of more professional Army, Social & Economic changes, national resources expanding Areas emerged large states

There emerged Mahajanpadas.

Or

1. Men & Woman dress differently Cost of Dress limited by economy.
2. Taste of Music limited by our economic situation.
3. Building of Taj Mahal involves a lot of resources.

Any 2 × 2 = 4

Ans No. 13

Gupta Admn.

- Decentralized
- Hereditary Kingship.
- Taxes increased.
- Developed Judicial system.
- Growth of feudalism. (5 × 2)

Page 108

Or

Social and Economic changes.

- Increase in the number of castes.
- Number of land grants increased.
- Instead of hunting – mainprofession – agricultures
- Rise of Rajputs.
- Connection between rajput class and extension of agriculture activities (5 × 2)

page 125 – 126

Ans No. 14

Delhi Sultanate

1. Wizarat
2. Diwan – i – Arz.
3. Diwan – i – Insha.
4. Diwan – I – Rasalat.
5. Other Departments like wakil-i-der.
   Amir-i-Hajib ; sar-i-Jandar
   Amir-i-Akhur ; Amir-i-Majlis

Explanation of points
2 × 5 = 10

Or

Mughal

1. Emperor
2. Wakil and wazir
3. Diwan-i-Kul
4. Mir Bakshi
5. Sadr-u-Suder
6. Mir saman

Explanation of any five points
2 × 5 = 10

Ans No. 15

1. English education was first introduced in India in 18th Century.
2. The beginning was finally made in year 1813 through a charter Act.
3. This Act allowed missionaries to spread western literature and teachings of Christianity through English Medium.
4. Encouraging Indian educated classes.
5. Promotion of sciences among Indians.

Hunter Commission

1. A Commission was set up in 1882 under W.W. Hunter.
2. It was confined mostly to secondary and Primary education.
3. It laid special emphasis on primary education control ought to be transferred to district and municipal board.
4. University education in a practical nature leading to careers in commercial or vocational field
5. Private initiative in the field of education should be encouraged. (Pg. 35 – 37)

5 + 5 = 10

The main causes of Revolt of 1857:-

1. Social
2. Economic
3. Political
4. Sepoys
5. Religions (Describe all these Reason) Any four points

(p – 47) 4 × 2 =8

1. Doctrine of Laps abandoned
2. East India company Rule came to an end, India under British crown.

Anyone 2 × 1 = 2

10

(p – 50)

Ans No. 16

Development

1. Bycot of Simon commission.
2. No Response to eleven point ultimatum.
3. 12th March 1930. Gandhi ji with 72 followers left Sabarmeti Ashram for Dandi.
4. 6th April 1930 reached Dandi & picked handful of salt.
5. Spread to Bengal, Maharashtra, Assam and Karachi. 4 × 1 = 4

Withdrawl

1. Signing of Gandhi Irwin Pact
2. Participation in Round table conference 2 × 4

Continuance

1. No gain from Round table conference & Civil Disobedience Restarted. (2)

10

(p – 74)

Or

1. Second world war in 1939.
2. Congress Government Resigned.
3. Quit India Movement in 1942.
4. Aftermath of World War II negotiation with Congress leaders.
5. India became free in 1947.

Not Absolute Victory

1. Partition into India & Pakistan.
2. Communal Violence. (10)

P – 78

Ans No. 17

With the Advent of Britishers & East India Company transformed India into a colony.

1. Started process of legimization of colonial state.
2. Delegitimization of pre – colonial indigenous political authority.

East India Company's rule being regularized through a number of Acts (Regulating Act, Pitt's India Act) taken over by British crown after 1857.

Or

Culture of Food

1. Food habits differ from region to region.
2. Food habits change due to interaction.
3. Nature of crops grown in different regions are different; wheat grown area & Rice grown Area, fish production in coastal Area.
4. Vegetarians & Non Vegetarian Food.
5. Coming of Mughals & Mughalai Dishes.
6. Coming of Europeans & Continental Foods. $5 \times 2 = 10$

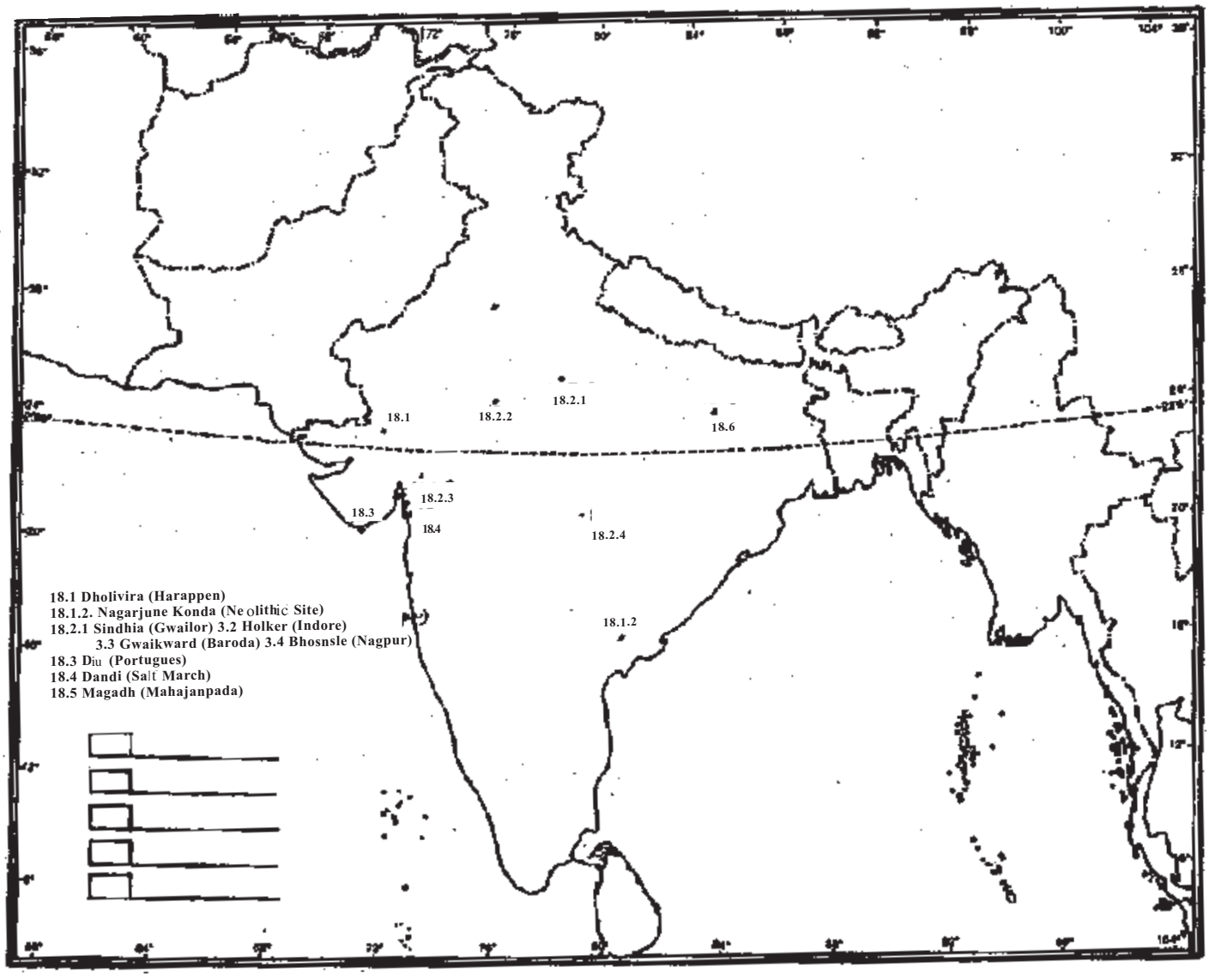

18.1 to 18.5

18.6



Question No. 18.6